# RAM TEERTH

1964

G.K.U.

112558

112558

गुरुकुल कांगड़ी

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

# रामतीर्थ

सम्पादक—
योगीराज
उमेशचन्द्रजी

वर्ष-५-अंक ४
जुलाई १९६४

77.

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 62899
विज्ञापन
तार—प्राणायाम दादर

| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| वैदिक प्रार्थना | संकलित | ७ |
| उमेशवाणी | | ८ |
| श्रद्धांजलि (कविता) | के. अमीन | ९ |
| पंडित नेहरू के प्रति (कविता | नामवर | १० |
| लाल जवाहर | ड. गोपाल प्रसाद 'वंशी' | १२ |
| श्रद्धांजलि अर्पण | सम्पादकीय | १६ |
| स्वामी हरिदास | जॉन मार्टिन | १७ |
| श्रेष्ठ फल (कहानी) | दीप | २४ |
| वीर पृथ्वीसिंह | विनय कुमार | ३३ |
| अद्भुत चिकित्सा (सत्य घटना) | अवध अनुपम | ४३ |
| वीतराग (आध्यात्मिक कथा) | जान्हवी कुमार चक्रवर्ती | ५३ |
| भारत चीन का पुराना सम्बन्ध | देवेन्द्रनाथ शर्मा | ६५ |
| रामचरित मानस | योगीराज उमेशचन्द्रजी | ७१ |
| धर्मोपदेश | स्वामी रामतीर्थ | ८३ |

| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| वैज्ञानिक जल चिकित्सा | डा. जे. पी. वर्मा | ९७ |
| किसी का बुद्धि भेद न करें | ज. रा. कस्तुरे | १०८ |
| खिलौना (कहानी) | भगीरथ शुक्ल 'योगी' | ११५ |
| अमृत फल आम | डा. गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर' | १३० |
| प्रश्नोत्तर | संपादकीय कलम से | १५२ |
| स्वानुभव | श्री. मोहिनी देवी वि. कुंटे | १६८ |
| पाठकों के अभिमत | | १७१ |
| आश्रम समाचार | संवाददाता द्वारा | १७३ |
| लोह भस्म | डा. लल्लन प्रसाद गुप्त | १८२ |

* * *

## मुख पृष्ठ का परिचय

पंडित नेहरू प्रसन्न मुद्रा में

## विशेष सूचना

लेखकों से आग्रह है कि वे लेख भेजने से पूर्व 'लेखकों से' वाले पृष्ठ को पढ़ लें। फिर केवल अपनी रचना को निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११ के पते पर भेजें लेख भेजने के बाद यदि किसी प्रकार का पत्र व्यवहार करना आवश्यक समझें तो उत्तर के लिये जवाबी कार्ड भेजना आवश्यक है। अन्यथा कोई उत्तर न भेजा जायेगा।

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० आर्थर रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्सेन्ट स्क्वेर स्ट्रीट २ बम्बई नं. १४ से प्रकाशित किया।

112558

# रोगों से मुक्ति पाने के लिए
# इसे अवश्य पढ़िये

## योगिक—प्राकृतिक चिकित्सा डाक व्यवस्था विभाग

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.

योगिक और प्राकृतिक चिकित्सा से लाभ उठाकर शारीरिक एवं मानसिक रोगों से मुक्त बनिए।

शारीरिक एवं मानसिक रोग निवारणार्थ रोगी योगिक और प्राकृतिक चिकित्सा के आधार से अपने रोग निदान के डाक द्वारा लिखित सलाह निम्न नियमानुसार ले सकते हैं।

१-व्यक्तिगत रूपसे निदान पूछने के लिये प्रथमबार ५) रु. फीस होगी, दूसरी बार ३) रु. और फिर हर बार के लिए दो रुपये फीस होगी।

२-रोगी को इसके अन्तमें छपी बातों का उत्तर स्पष्ट रूप से अलग कागज पर लिखकर भेजना होगा।

३-रोगी को फीस मनिआर्डर अथवा पोस्टल आडर से ऊपरोक्त पते पर स्पष्ट निर्देश के साथ भेजने होगी।

४-रोगी को उत्तर हिन्दी, अंग्रजी, गुजराती, मराठी मेंसे जिस भाषा में चाहिए उसके लिए लिखना चाहिए।

५-प्रश्नावली रजिस्ट्रीसे भेजनी चाहिए और उत्तर भी रजिस्ट्री से ही भेजा जायगा सामान्य डाक से भेजी गई प्रश्नावली खो जाने की जवाबदारी भेजने वाले की होगी विदेश से प्रश्नावली भेजने वालों को डाकव्यय के लिए अतिरिक्त धन भेजना होगा।

६-योगिक एवं प्राकृतिक चिकित्सा विभाग की सलाह और सूचनानुसार रोगी को पथ्य पालन करना होगा।

७-फीस देकर इलाज करानेवाले रोगी को निदान की शुरूवात से विवरण रख और मांगने पर उसे दे देना होगा।

८–रोगी को योगिक उपचार, और प्राकृतिक चिकित्सा की जानकारी के लिए हिन्दी, अंग्रजी, गुजराती मराठी में छपे उमेश योगदर्शन ग्रंथ को अपनी इच्छित भाषा में रु. १७–५० मनि आर्डर द्वारा भेजकर ऊपरोक्त पते से मंगाना पड़ेगा।

रोगी को सलाह पूछने के लिए निम्न बातों को स्पष्ट करके भेजना चाहिए।

रोगी का नाम व पता, उमर, वजन, ऊंचाई। मल बद्धता रहती है ? अपचन है नींद गाढ़ी आती है ? शरीर में अशक्ति है ? रात को स्वप्न आता है ? रात को कितने घंट सोते हो ? दिन को कितना समय सोतें हो ? वीर्य दोष है ? शरीर में कोई चर्म रोग है ? कफ विकार है ? पित्त विकार है ? वात विकार है ? कोई मानसिक चिन्ता है ? शरीर में जड़ता है ? स्मरण शक्ति कैसी है ? मांसाहारी या शाकाहारी ? विवाहित अथवा अविवाहित ? हाथ पैर के तलुवे गरम या ठंड़े रहते हैं ? पेशाब का रंग कौनसा है ? केवल बौद्धिक परिश्रम है अथवा शारीरिक ? प्रातः भ्रमण, तैरना, और कोई व्यायाम चालू है ? स्नान ठंडे या गरम जल से करते हो ? दारू, गांजा, तम्बाकू, सिगरेट बीड़ी, तपकीर, चाय आदि का व्यसन है ? पहले कौनसा रोग हुआ है ? शिरदर्द कबसे है ? वर्तमान रोग का विवरण ? वर्तमान में कौनसी दवा चालू है। कभी प्राकृतिक अथवा योगिक चिकित्सा करवाई है ? कब ?

नोटः— सर्व सज्जनों को सूचित किया जाता है कि वे सितम्बर १९६४ तक तभी इस संबंध में पत्र व्यवहार करें जब अत्यन्त आवश्यक हो क्योंकि देश विदेश से इतने अधिक पत्र आये पड़े हैं कि उनका उत्तर दो मास तक पूर्ण हो सके।

# जनता जनार्दन का सद्भावनाहस्त

श्री रामतीर्थ योगाश्रम विगत ३० वर्षों से जनता जनार्दनके तन-मन विकासार्थ जिस जी तोड़ प्रयत्न में लगा है, उसी सेवा से प्रभावित होकर उसके सेवा पूर्ण हाथों को अधिक शक्तिशाली बनाने हेतु

जून मास में प्राप्त सद्भावना राशि

(१) श्री. सोनी अंबादास तलकशी हैदराबाद (आंध्र) २५)
(२) ,, मनोहर शिवा पाटील जळगांव (महाराष्ट्र) १५)
(३) ,, मनेलकर वामनराव उप्पीनंगडी (मैसूरराज्य) ११)
(४) ,, गजानन आ. घाटगे सतारा (महाराष्ट्र) ११)
(५) ,, शिवशंकर शंभुशंकर जौनपुर (उ. प्र.) ११)
(६) ,, अमृतलाल शिवलाल मिर्जापुर (उ. प्र.) ११)
(७) ,, महासुखलाल घनजीभाई वांकानेर (सौराष्ट्र) ११)
(८) श्रीमती शकुंतला ज्ञानदेव आचार्य विजयनगरम ११)
(९) ,, दमयंती सत्यमित्र शास्त्री डिंडीगल (मद्रास) ११)
(१०) कुमारी आशादेवी कुळवंतराय देवासर (म. प्र.) ११)

सद्भावनाराशि निम्न पते पर भेजें:—
श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर, बम्बई १.

# लेखकों से

## 'रामतीर्थ' मासिक में स्वीकार करने योग्य मुख्य विषय—

शारीरिक रोग निवारण, सशक्त एवम् सदानिरोगी मानसिक रोग दूर करके मन की शांति, एवम् आत्म साक्षात्कार करने योग्य, उपरोक्त लाभ प्राप्त करा देने योग्यअष्टांग योग, (यम, नियम आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधी, राजयोग, भक्ति योग, लय योग, मंत्रयोग, शिवस्वरोदय, वेद उपनिषद, गीता ,रामायण, महाभारत, महात्माओं का जीवन चरित्र एवम् उपदेश, प्राकृतिक चिकित्सा, (आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी द्वारा इलाज) महिलाओं के जीवन सुधार के लिये, बालकों के संस्कार सुधारने के लिये, अनुरूप लेख, कहानी, धारावाहिक उपन्यास, गीत, कविता, निबंध, प्रवास वर्णन, नाटक, धर्मकथादि रचनायें स्वीकारकी जाती हैं कागजकी एक ओर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी हुई रचनायें भेजनी चाहिये, अश्लील विषयोंकी रचनायें स्वीकार नहीं की जायेंगी।

**विशेषः**—अन्यत्र प्रकाशित रचनायें रामतीर्थ मासिक के लिये न भेजें. केवल स्वीकृत रचनाओं की सूचना एक मास द दी जाती है, अस्वीकृत रचना को वापस मंगाने वाले लेखकों को पोस्टल टिकिट साथ में अवश्य भेजना चाहिए, स्वीकृत रचनायें समयानुकूल छपेंगी, लेखकों को चाहिये कि वे इस विषय में वारंवार पत्र लिखने का कष्ट न लें, रचना प्रकाशित होने के बाद, रचना जिसमें छपी होगी वह मासिक अंक, और आश्रम की ओर से निर्धारित किया गया पुरष्कार भेजा जायेगा, रचना में लिया गया कोई द्रष्टांत हो तो वह किस ग्रन्थ के आधार से लिया गया है यह अवश्य लिखें। अन्य पत्र पत्रिकाओंमें रामतीर्थ मासिककी रचना अन्य भाषाओं में अनुवादित की इच्छावालोंको रामतीर्थ मासिकके संपादकसे लिखित अनुमति लेना आवश्यक है

रचना भेजनेका पता: निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११.

भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥

सम्पादक - **रामतीर्थ** योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ५] जुलाई १९६४ [संख्या ४

# वैदिक-प्रार्थना

न वि जानामि यदिवेदमस्मि निण्यः संनद्धो मनसा चरामि।
यदा मागन् प्रथमजा ऋतस्या दिद्वाचो अश्नुवे भागमस्याः॥

ऋ. वे. आ. सू. १-१६४-३७

भावार्थ— इदं (यह) शब्द से बोधित आत्मा मैं हूँ, परंतु जिसके साथ उसकी समानता कर सकें, ऐसा कोई आत्म-सदृश पदार्थ है, ऐसा मैं नहीं जानता क्योंकि वह आत्मा स्वयं अत्यन्त गूढ़ होकर भी देह के साथ संबद्ध और मन के साथ आवृत होकर ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों के द्वारा संसार में विचरता है। ऋत-नीति का प्रथम धर्म यज्ञ से जब पैदा हुआ और जब वह परमार्थ ज्ञान मुझको मिला, उसके बाद ही इस वाणी का परम रहस्य-भजनीय स्वरूप मैंने प्राप्त किया।

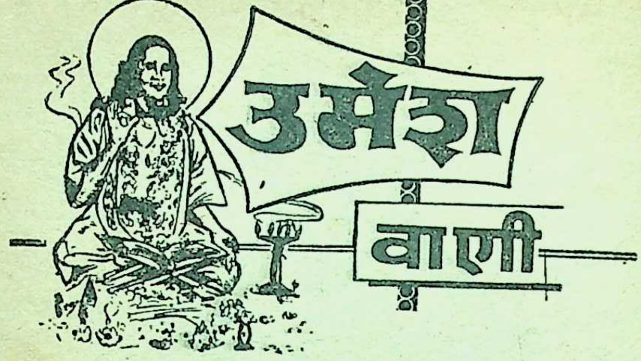

(२५१) गहरी निद्रा, दिन में दो बार मल विसर्जन, मन में शुभविचार, सत्शास्त्र पढ़ने की अभिलाषा, यथोचित परोपकार जीवन; सात्विक आहार का सेवन, योगाभ्यास, पवित्र स्थान में निवास, सत्संग से प्रेम तथा आत्म दर्शन यह श्रेष्ठ पुरुषों के लक्षण हैं।

(२५२) उच्च कोटि को भावना के साथ सतत प्रयत्न से मनुष्य जन्म सार्थक बन सकता है।

(२५३) चातुर्मास के सांझ-सवेरे के इन्द्र धनुष के समान सारा संसार की स्थिति समझिये। सूर्य किरण, जलका सूक्ष्म तत्व से पीला, लाल, हरा, आदि अनेक चित्ताकर्षक गोलाकार में इन्द्र धनुष दीखता है। थोड़े समय के लिये सत्य प्रतीत होता है। किन्तु असत्य वस्तु को थोड़ी सी देर के लिये सत्य माना जाता है। यह केवल असल वस्तु का पता लगने तक भ्रम जाल में फंसे रहना पड़ता है। ऐसे ही संसार के सुख-भोग वैभव-विलास की हालत है। केवल समय का अंतर है। इंद्र धनुष का अल्प समय तक अनुभव होता है और संसार सुखका दीर्घ काल तक।

# श्रद्धांजलि

गीतकार— के. अमीन

मानवता का दीप बुझ गया, जग में ज्यों आया भू चाल।
आज अचानक बिछड़ गये, हम से वीर जवाहर लाल॥

उमड़ पड़ा जब मानव सागर, उनकी अर्थी के पीछे।
मौत भी शरमाई होगी तब, सर को झुकाये नीचे॥

जिसकी कमी से भारत वासी, आज हो गये हैं कंगाल।
आज अचानक बिछड़ गये... .... ....

स्वतंत्रता संग्राम में उनका, योगदान जो हमें मिला।
युग मानव ना भूल सकेंगे, चले गये वे हमें रुला॥

धरा में कम्पन आई जैसे, घबराया खुद महाकाल।
आज अचानक बिछड़ गये.... ..... .....

युगद्रष्टा वह युग निर्माता, आज हमारे साथ नहीं।
याद में उनकी शीश झुकायें, सभी प्रतिज्ञा करें यही॥

आजादी की करेंगे रक्षा, एकता अपनी रहे विशाल।
आज अचानक बिछड़ गये.... .... ....

वीरों की यह परंपरा क्या, शायद यहीं खतम होगी!
तपो भूमि की शान हमारे, वीर रहित क्या कम होगी॥

श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं, शोकातुर भारत के लाल।
आज अचानक बिछड़ गये.... ..... .....

(कविता)

# स्व. पं. जवाहरलाल नेहरू

ले.- नामवर

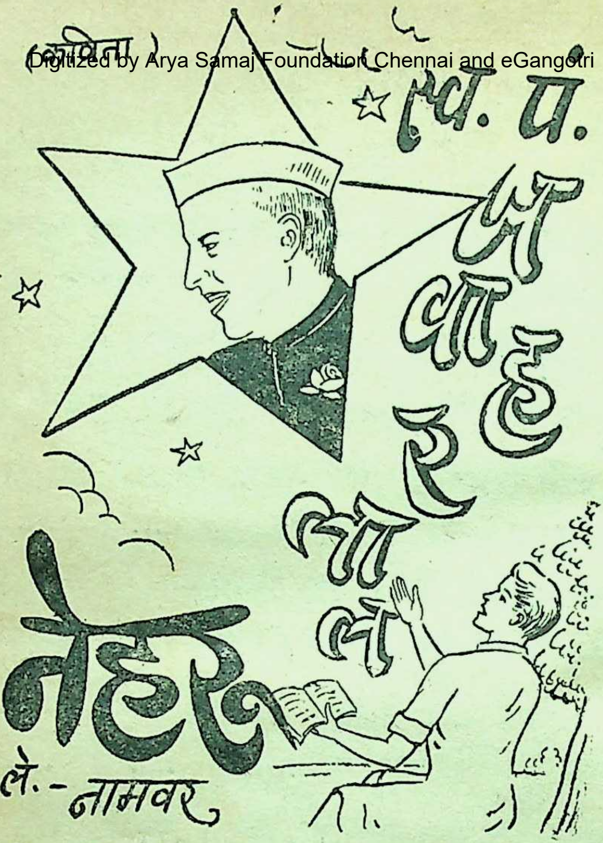

मन को होता विश्वास नहीं,
तन में जैसे अब श्वास नहीं,
कुछ हुई दशा यों दुनियाँ की,—
आगे कुछ कहा नहीं जाता !

हे युग-मानव ! तू लगता कोई जीव नया अवतारी था,
गौतम-गाँधी का धन्य भक्त मानवता का व्रतधारी था।
तू कर्म लोक की थाती था, भारत माँ का सच्चा—सपूत,
गीता का परम पुजारी था, सम्पूर्ण विश्व का शान्ति-दूत।

अब छोड़ गया इस दुनिया को,—कानों से सुना नहीं जाता !

जीने न दिया तुझको पूरा कुछ हैवानों के पुत्रों ने,
कुछ अमन के कातिल कंसोंने कुछ दकियानूसी सूत्रोंने,।
तू सत्य-अहिंसा धैर्य प्रेम कर्मों का महा उदय-सा था,
गाँधी कबीर गौतम ईसा का अद्भुत एक समन्वय था।
तेरा बिछोह अब भारत की,—आँखों से सहा नहीं जाता !
बालक से लेकर वृद्धों का तू ही विश्वास-सितारा था,
'भारत नेहरू' 'नेहरू भारत' बस एक हमारा नारा था।
भारत में रह कर दुनियाँ में भी तू प्रकाश फैलाता था,
यदि सच पूछो पूरे जग से नेहरू का प्यारा नाता था।
अब कौन राह दिखलायेगा,—आगे कुछ कहा नहीं जाता !

नैतिक एवं सांस्कृतिक विचारों का श्रेष्ठ मासिक

## ज्ञान यज्ञ

- आध्यात्मिकता का सही-सही स्वरूप देने वाला।
- जीवन-निर्माण में सहायक। ○ वैयक्तिक दोष एवं सामाजिक कुरीतियों को उखाड़ फेंकने में तत्पर।
- आकर्षक कलेवर। ○ शिक्षाप्रद लेख ○ मर्म-स्पर्शी साहित्य से परिपूर्ण।

वार्षिक मूल्य आज ही ३)रु. भेजकर ग्राहक बनिए। नमूने के लिये ३१ पै. के टिकिट भेजें।

पता—'ज्ञान-यज्ञ' मासिक
युग निर्माण प्रेस, बिलासपुर ( म. प्र. )

# लाल जवाहर

ले. डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

पंडित नेहरू कभी थकते नहीं थे। उन्हें नींद की आवश्यकता नहीं थी। जहां घंटा-आध घंटा फुरसत मिलती थी वे सो लेते थे। वे गुडाकेश थे। किताबें पढ़ने के लिए भी उन्हें एकान्त की आवश्यकता नहीं थी। मोटर में चलते-चलते और ट्रेन में लेटे-लेटे वे उन्हें पढ़ लेते थे। उनके साथ वाले थक जाते थे पर वे हमेशा ही ताजे जवान नजर आते थे।

नेहरू जी सच्चे अर्थ में लोक नेता थे, वे किसानों-मजदूरों के थे, वे अखिल भारतीय थे, और अखिल भारतीय जनता की भाषा में ही उनसे बोलते थे, उनको समझाते थे, और उनका मार्ग निर्देशन करते थे। नेहरू जीके मन लायक जरा-जरा सी बात न होने पर भी बिगड़ जाते थे, और उनके इस रौद्र रूप का सामना करने की किसी की हिम्मत नहीं होती थी। पर इस रुद्र रूप में भी विशेषता यह होती थी कि बहुत अल्पकालिक रहता था, और पंडित जी उसे तुरंत भूल जाते थे।

नेहरू जी को विभिन्न प्रान्तों की भाषाओं के वैचित्र्य से कोई तकलीफ नहीं होती थी। वे श्रोताओं को उनकी भाषा में बोल कर मुग्ध करना जानते थे। इतना होने पर भी उनकी भाषा कहीं भी कृत्रिम नहीं मालूम होती थी। नेहरू जी की

कलाप्रियता और हास्यप्रियता भी प्रसिद्ध है। खूसट व्यक्ति से उनको बड़ी घृणा थी।

पंडित जवाहर लाल को निकट से देखने पर पता चलता था कि वे हमारे जैसे ही साधारण व्यक्ति थे। उनसे मिलने जुलने, नमस्कार आदि का कोई खास सलीका नहीं था। उनमें एक साधारण मनुष्य के गुण तथा अवगुण थे। बातके सिलसिले में कभी वे गम्भीर हो जाते थे, कभी मुस्कराने लगते थे और कभी अचानक बिगड़ जाते थे। बनावट उनमें जरा भी नहीं थी।

जवाहर लाल जो के जीवन का मुख्य राग आत्म व्यंजना था, आत्म नियंत्रण नहीं। यहां उनके विचारों में पूर्व अपेक्षा पश्चिम से अधिक साम्य का। पूर्व के जीवन की गंभीर उच्चता उन्हें इंगित करती की और उस ओर वे आकर्षित भी होते थे लेकिन संसार से संबंध-विच्छेद हो जाने के भय से वे हिचकते थे।

नेहरू जो जनता के सच्चे प्रतीक थे। उनकी यही विशेषता थी कि जनता की भावनाओं को वे अच्छे और स्पष्ट शब्दों में सामने रख देते थे—उनमें साधारण मनुष्यों जैसी कमियां भी थीं। नेहरू जी की सर्वप्रियता का एक प्रमुख कारण उनकी व्यवहारिकता भी थी। लोग उन्हें नेहरू कहना उतना पसन्द नहीं करते थे जितना कि 'जवाहर'। 'जवाहर' सम्बोधित कर लोग उन्हें अपना छोटा या बड़ा भाई समझते थे पर उन्हें समझते थे अपना ही। पंडित जी जहां जाते थे

आबल-वृद्ध-वनिता केवल दर्शन की अभिलाषा से दौड़ पड़ते थे। उनके एक-एक शब्द से सहस्रों में नव जीवन का संचार होता था, जनता अपने दुख-दर्दों को भूल जाती थी। सहानुभूति का एक शब्द लाखों की सम्पदा से बढ़कर सन्तोष प्रदान करता है। जवाहर इस सत्य को समझते थे और अपने आपको जनता के और निकट लाने की कोशिश करते थे। वे जनता की भावना को छूने वाले कार्य करते थे।

राजनीति में ही नहीं वरन सम्पूर्ण जीवन में भी आपका दृष्टिकोण भौतिकवादी था। आपकी जितनी भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उन सब में इसी दृष्टिकोण का समावेश है। किन्तु भौतिकता को आप मार्क्स.के सिधान्तानुसार सर्वव्यापी रूप में नहीं लेते थे। और न आपका यही कहना था कि मनुष्य का जीवन पूर्ण रूप में केवल आर्थिक नियमों द्वारा शासित है। सामाजिक तथा राजनीतिक क्षेत्र में आप नैतिकता की महत्ता स्वीकार करते थे किन्तु गांधी जी की भांति आध्यात्मिकता पर उतना जोर नहीं देते थे। मनुष्य जीवन अनेक सत्यों और नियमों का एक समूह है और नैतिकता उनमें से एक है—यही नेहरू जी का यथार्थवाद है।

प्रचलित रूप में धर्म आपकी विचारधारा में कोई स्थान नहीं रखता और न वे आम जनता पर प्रभाव डालने के लिए धर्म का ढोंग ही रचते थे। मानव धर्म ही आपका धर्म था। भारत माता ही उपास्य देवी थी और राष्ट्रीयता ही आपकी आराधना थी। इस क्षेत्र में भी आपका व्यक्तिगत जीवन

जितना उज्वल रहा है उतना कम लोगों का होता है। मानव समाज के लिए आपके जो सिद्धान्त और विचार थे उनमें आप किसी भी प्रकार की आध्यात्मिकता का रंग आने नहीं देते थे। वे सब मनुष्य कृत हैं, मनुष्य के लिये हैं। वे वेद-वाक्य नहीं, परिवर्त्तनशील हैं। यही कारण है कि आप संसार के इतिहास में क्रांतियों को इतना महत्व देते थे।

नेहरू जी की मानवीय दृष्टि पर भी लिखना आवश्यक है। भोजन करते समय ये हमेशा यह देख लेते थे कि अपने साथ आये हुए सभी लोगों को, लाउड-स्पीकर वालों को और मोटर ड्राइवर को भी भोजन मिला है या नहीं। एक बार मोटर में जगह की कमी के कारण जब एक पत्रकार पीछे रह गया, तो तीन मील जाने के बाद पंडित जी को यह बात मालूम होने पर उन्होंने तबतक वहीं रुकने को कहा जबतक वह साथी आ न जाय। आज भी, जब वे जीवित थे, विशेष प्रसन्न और सुखपूर्ण मुद्रा में छोटे बच्चों के बीच में दिखाई देते थे। बच्चों से उन्हें बड़ा प्रेम था और वे भी उन्हें बहुत चाहने लगते थे। चाहे कितने ही कार्यव्यस्त वे रहते हों पर यदि घर में एक दो बच्चे भी हों तो उनके साथ खेलने के लिये कुछ न कुछ समय निकाल ही लेते थे। उनके साथ वे स्वयं बच्चे बन जाते थे। इसी से वे उनके 'अच्छे दोस्त' साबित होते थे। इससे उनका भी दिल बहलाव हो जाता था—थोड़ी देर के लिये वे अपनी सब चिन्ताएं, परेशानियां और उत्तरदायित्व भूल जाते थे।

जवाहर लाल जी का व्यक्तित्व बहुमुखी था। उनके

(शेष पृष्ठ २०३ पर)

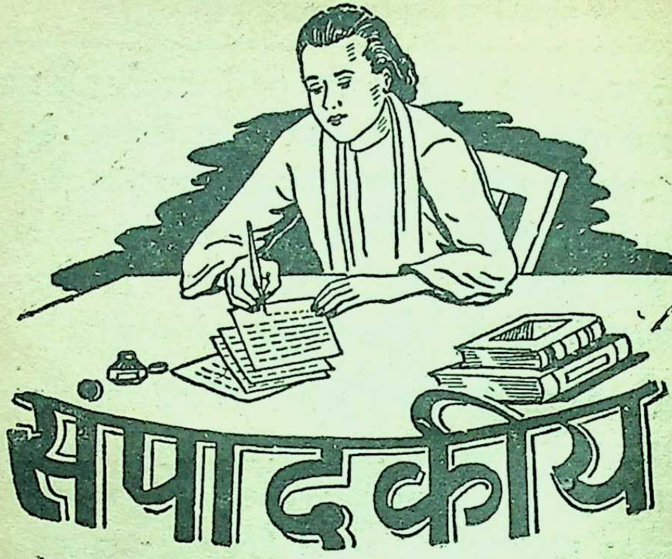

# संपादकीय

## श्रद्धांजलि अर्पण

हमें बड़े खेद के साथ व्यक्त करना पड़ता है कि काँग्रेस के कर्णधार और भारत के सूत्रधार पं. जवाहरलाल नेहरूजी की जीती जागती मूर्ति अब इस दुनिया में नहीं रही, परन्तु यह हर्ष का विषय है कि पंडित नेहरू जिन आदर्शों के लिये जिये उनपर आज भारत ही नहीं अपितु विश्वमानव चलने की तैयारी प्रदर्शित कर रहा है। अतः सिद्ध है कि पंडितजी का भौतिक शरीर भले ही हमारे बीच नहीं परन्तु उनके आदर्शों की मशाल जग का मार्गदर्शन करने को सदैव यहां बनी रहेगी जो उन्हें अमर बना चुका है।

### निष्काम कर्मयोगी

पंडितजीने सदा निष्कामता को अपने जीवन में रखकर

(शेष पृष्ठ १८६ पर)

( समाधि [illegible] )

# स्वामी हरिदास

मूल लेखक - जॉन मार्टिन
अनुवादक - वाङ्मयी अभिनन्द

सन् १८३५ के 'कलकत्ता मेडिकल जरनल' में स्वामी हरिदास के बारे में विस्तृत विवरण मिलता है, जिस से पता लगता है कि स्वामीजी लोहे के संदूक को जमीन में गड़वाने के बजाय ऊपर हवा में लटकवाने के अधिक पक्ष में रहते थे, क्योंकि उन्हें डर था कि समाधि की अवस्था में जमीन के अंदर शरीर में दीमक आदि लग जायेंगे। स्वामी हरिदास ने अपनी इस क्रिया का प्रदर्शन अमृतसर में भी किया था और अंग्रेजों के सामने भी।

* * * *

महाराजा रणजीतसिंह के दरबार में एक दिन साधु-महात्माओं तथा उनके अद्भुत चमत्कारों का प्रसंग चल पड़ा, बात आगे बढ़ी तो महाराज रणजीतसिंह के मंत्री राजा

ध्यानसिंह ने कहा, महाराज कश्मीर के पहाड़ों में अभी भी एक महात्मा हैं, जो अपने को महीनों मरणासन्न अवस्था में रख सकते हैं। यही नहीं वे अपने को इस अवस्था में जमीन में भी गड़वाने को राजी हो जाते हैं बशर्ते कि उन्हें निश्चित् समय के बाद तुरन्त निकलवाने का आश्वासन दिया जाय।

'असंभव !'.......महाराज रणजीतसिंह साश्चर्य बोले।

'नहीं महाराज !'...राजा ध्यानसिंह ने विश्वास दिलाते हुये कहा।" जब मैं जम्मू में था तब मैंने स्वयं उनकी परीक्षा ली थी। मैंने उन्हें चार महीने जमीन के अंदर गड़वा कर रखा था, और गड़वाने के पूर्व उनकी दाढ़ी और सिर के बाल मुड़वा दिये थे। चार महीने बाद जब उनको जमीन से निकलवाया गया तो वे एकदम जिन्दा निकले और उनकी दाढ़ी और सिर के बाल उसी तरह साफ थे जैसे कि गाड़ते समय। इससे पता चलता है कि उस अवस्था में ही उनके शरीर की समस्त इंद्रियां शांत थी।

इस बात ने महाराज रणजीतसिंह की उत्सुकता को बढ़ा दिया और उन्होंने उन महात्मा को अविलंब दरबार में उपस्थित करने की आज्ञा प्रदान की। कुछ ही दिनों में स्वामी हरिदास दरबार में उपस्थित किये गये। गौर वर्ण, उन्नत ललाट, तेजस्वी चेहरा और आंखों में अद्भुत प्रकाश। महात्मा हरिदास का व्यक्तित्व किसी को भी बिना प्रभावित किये न रह सका।

महाराज रणजीतसिंह ने पूछा—"क्या यह सत्य है कि

आप अपने को महीनों मरणासन्न अवस्था में रखने के बाद फिर जीवित हो जाते हैं ?'

स्वामीजी ने सहज भाव से कहा, 'महाराज ! भगवत कृपा है । मैं तो इस क्रिया का प्रयोग केवल उन्हीं के ध्यान के निमित्त करता हूं ।'

महाराज रणजीतसिंह के कहने पर स्वामीजी अपनी इस प्रक्रिया के प्रदर्शन के लिये राजी हो गये । इस के लिये एक दिन निर्धारित कर दिया गया । इस बीच स्वामीजी ने कुछ जुलाब लिया और पेट की अतड़ियों को साफ किया । प्रदर्शन के निश्चित् दिन तक उन्होंने दूध के अतिरिक्त और कुछ ग्रहण नहीं किया ।

निर्धारित दिवस पर दरबार में अच्छी खासी भीड़ एकत्रित हो गई जिस में राजा ध्यानसिंह, जनरल वैनच्यूरा, कर्नल वाड तथा और बहुत से यूरोपियन उपस्थित थे । सर्वप्रथम स्वामी हरिदास ने एक टब मंगवाया और उस में बैठ गये । तदुपरांत उसमें कंधे तक पानी भरवाया फिर एक नली के सहारे अपनी गुदा से उन्होंने अंतड़ियों में पानी खींचा, जिस से वे भली प्रकार साफ हो जांय । उसके पश्चात् उन्होंने तीन अंगुल चौड़ी और तीस गज लंबी एक कपड़े की पट्टी मगवायी और उसे धीरे-धीरे निगलने लगे ।

इस क्रिया को देखकर जनरल वैनच्यूरा को बड़ा ही आश्चर्य हुआ । उन्होंने राजा ध्यानसिंह से पूछा, "राजा साहब ! यह फकीर कपड़ा क्यों निगल रहा है ?"

राजा ध्यानसिंह ने उत्तर दिया, 'यह एक यौगिक क्रिया है। इसे धौती क्रिया कहते हैं। यह महात्मा जब कपड़े की पट्टी पूरी निगल जायेंगे तो इसे अपनी गुदा के भाग से बाहर निकाल देंगे। इस से इन के पेट में से सब मल आदि बाहर निकल जायेगा और वह एकदम खाली हो जायगा।

स्वामी हरिदास जब धौती क्रिया समाप्त कर चुके तो वे एक कपड़े पर पद्मासन लगा कर बैठ गये। दो चार बार प्राणायाम करने के पश्चात् उन्होंने मोम से अपने कान और नाक के छेद आदि बंद करवा दिये। इसके पश्चात् एक नजर चारों ओर दौड़ा कर मुंह खोला जीभ को अंदर की ओर मोड़ा, मुह बंद कर लिया, दोनों हाथ मोड़ कर छाती पर रख लिये, तथा फिर सांस रोक कर आंखें बंद कर ली। महाराज रणजीतसिंह ने तत्काल स्वामी हरिदास को उसी कपड़े में लिपटवा दिया और गांठ लगवा कर उस पर अपनी मोहर लगवा दी। उन्होंने उस गठरी को एक बड़े लोहे के संदूक में बंद करवा कर एक मजबूत ताला लगवा दिया। इस संदूक को महाराज रणजीतसिंह ने शहर के बाहर एक मंत्री के बगीचे में गड़वा दिया और उस पर हल चलवा कर जौ बुवा दी। तदुपरांत उसके चारों ओर दीवार खड़ी करवा दी और पहरा बैठा दिया।

जनरल वेनच्यूरा की उत्सुकता इस दृश्य को देख कर अत्यधिक बढ़ गयी और उन्होंने राजा ध्यानसिंह से पूछा, 'राजा साहब! आखिर ऐसा क्या तिलस्म इस फकीर के पास है जिस से यह अपने को फिर जिन्दा कर लेता है?'

यह एक विशेष यौगिक क्रिया है"

राजा ध्यानसिंह ने समझाते हुए कहा। 'इसे खेचरी मुद्रा' कहते हैं। इसमें साधक अपनी जीभ के निचले जोड़ को कटवा देता है, जिससे जीभ एकदम ढीली हो जाती है। फिर मक्खन में कुछ जड़ी मिला कर वे जीभ पर रगड़ २ कर उसे लम्बा करते हैं। जब जीभ यथेष्ठ लंबी हो जाती है तो उसे अंदर की ओर मोड़ते हैं। नाक और तालू के जोड़ के पास एक छेद होता है जिसे 'ब्रह्म-रंध्र' कहते हैं। समाधि लगाने के पूर्व जब वे सांस रोकते हैं तो प्राण-वायु को उसी छेद में रोक कर जीभ से बंद कर देते हैं। निर्धारित अवधि के बीतने पर वे प्राण-वायु को फिर शरीर में ले लेते हैं और इस प्रकार जीवित हो जाते हैं। समाधि की अवस्था में इनके शरीर के सब कार्य-व्यापार स्थगित रहते हैं।

पूर्व निर्धारित (चालीसवें) दिन महाराज रणजीतसिंह, राजा ध्यानसिंह, कर्नल सी. एम. वाड, जनरल वैनच्यूरा तथा अनेक यूरोपियन उस बाग में एकत्रित हुये। जमीन खोदी गई और सन्दूक को बाहर निकाला गया। महाराज रणजीतसिंह ने स्वयं ताले की जांच की और फिर उसको खुलवाने के बाद कपड़े की गठरी पर लगी मोहर की जांच की। सब कुछ पूर्ववत् निकला। स्वामी जी भी जिस मुद्रा में समाधि लगाने के समय थे, वैसे ही निकले।

पुस्तकालय 112557

इसके पश्चात् सर्वप्रथम उनकी जीभ को छेद से हटा कर स्वाभाविक स्थिति में लाया गया फिर पिसी हुई दाल

की गरम पिठी उन के सिर पर रखी गई। कान आंख आदि से मोम हटाई गई और शिष्यों ने मुह के द्वारा उनके फेफड़े में हवा फूकनी शुरू की। यही क्रिया कान में भी की गई। इस क्रिया के परिणाम स्वरूप नाक के छेद में भरे हुए मोम के टुकड़े जोर से आवाज करते हुये बाहर निकल पड़े। इसे जीवन लौटने का प्रथम लक्षण माना गया। इसके बाद लोगों ने उनके शरीर को अपने हाथों से रगड़ना शुरू किया जिस से शनैः शनैः रक्त-संचार शुरू होने लगा, कुछ ही देर पश्चात् स्वाभाविक श्वास-क्रिया प्रारंभ हो गई और स्वामी जी ने आंखें खोल दीं।

उस दिन अपने घर वापस जाकर कर्नल सर सी. एम. वाड ने अपनी डायरी में लिखा—स्वामी हरिदास को अपने शरीर पर गजब का अधिकार प्राप्त है। लोग साधारण रूप से रोटी के एक बड़े टुकड़े को निगलने में हिचकते हैं और वह फकीर ३० गज लंबी कपड़े की पट्टी निगल गया। हो सकता है कि इस व्यक्ति की स्वाद-ग्रंथियां एकदम नष्ट हो गयी हों, और गले की मांस-पेशियां इतनी ढीली हो गई हों कि पट्टी को निगलने में कोई रुकावट न पड़ती हो। लोगों ने बताया कि ढाई सौ साल पहले गुरु अर्जुन के समय में भी अमृतसर का एक फकीर बैठी हुई हालत में एक समाधि लीन था, जो कि पुनः जीवित हो गया था। लोगों का कहना हैं कि वह सौ साल तक जमीन के अन्दर रहा और जब वह पुनः होश में आया तो उसने सौ साल पूर्व की घटना का सही-सही वर्णन भी किया। यह कहना असम्भव है कि यह बात सही

है या गलत परन्तु मेरी राय से जो व्यक्ति चार माह तक जमीन के अन्दर रह कर फिर जीवित हो सकता है वह एक साल तक भी उसी तरह रह सकता है। फिर तो इस आधार पर इस प्रकार की क्रिया के लिये समय निर्धारित करना असम्भव सा ही है जिसमें कि जीवन के समस्त अनिवार्य कार्य व्यापारों को बिना शरीर को किसी हानि के स्थगित रखा जाय और फिर जीवन धारण कर लिया जाय।

* * *

प्राकृतिक चिकित्सा-साहित्य का अग्रदूत
'प्राकृतिक जीवन'
प्रधान सम्पादक : डा० के० आर० दिलकश
संयुक्त सम्पादक : डा० गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'
एक प्रति—३७ नये पैसे : वार्षिक ४) रुपये मात्र

स्वास्थ्य सम्बन्धी सुन्दर और उपयोगी साहित्य के साथ अपने प्रश्नों के उत्तर लें। शंकाओं का समाधान करावें तथा अपने स्वास्थ्य को उन्नत करने, नीरोग रहने तथा दीर्घजीवी बनने के उपाय जानें। आज ही ४) रुपया भेजकर ग्राहक बन जाइये और मौका न चूकिये। नमूने की प्रति मुफ्त मंगावें।

कार्यालय—
आरोग्य निकेतन, डालीगंज
लखनऊ (उ. प्र.)

(कहानी)

# श्रेष्ठ फल

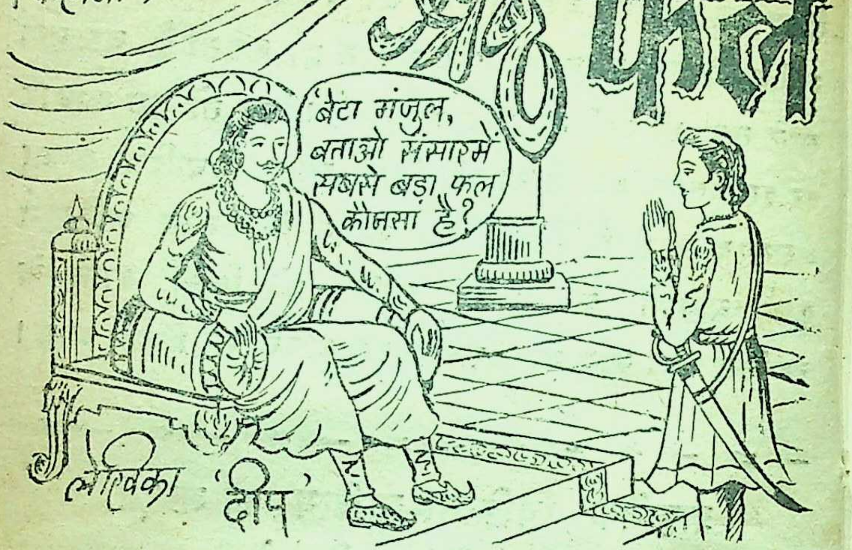

लेखिका 'दीप'

बात उस समय की है जब देवता स्वर्ग से मृत्यु लोक में बेरोक-टोक आते थे। उस समय में एक राजा छोटे से राज्य में शासन करता था।

जब वह बूढ़ा हुआ तो उस ने राज-पाट त्यागकर ईश्वर भजन में जीवन बिताने का निश्चय कर अपने एकमात्र पुत्र को राज्य-भार देने का निर्णय किया।

उचित समय पर राजा ने युवराज को बुलाया और उससे अपना मन्तव्य स्पष्ट किया। साथ ही, उन्होंने यह भी कहा कि राज्य के संचालन के लिये पर्याप्त ज्ञान की आवश्यकता है। अतएव उन्होंने युवराज की योग्यता परखने के विचार से प्रश्न किया, —"बेटा मंजुल, बताओ संसार में सबसे बड़ा फल कौन सा है ?"

मंजुल कुछ क्षण विचार में पड़ा रहा। वह स्थिर नहीं कर सका कि वह इस सरल से प्रश्न का क्या उत्तर दे, फल बहुत खाये हैं उसने और हर फल का स्वाद भिन्न होता है। अपने-अपने विशेष स्वाद के कारण सभी फल अपना महत्व रखते हैं। आम को फलों का राजा कहा जाता है किन्तु आकार-प्रकार में तरबूज बड़ा होता है। खरबूजे का भी महत्व कम नहीं होता।

मंजुल प्रश्न की उधेड़ बुन में खोया रहा। बूढ़े राजा उत्तर की प्रतीक्षा कर रहे थे। मंजुल और अधिक बिलम्ब नहीं कर सका, उसने कहा—"पिताजी मेरे विचार से तरबूज ही सबसे बड़ा फल है।"

वृद्ध राजा पर जैसे वज्रपात हो गया। वह अपने पुत्र की अयोग्यता पर क्षुब्ध हो उठे। क्रोधावेश को दबाने में असमर्थ हो कठोर शब्दों में बोले, "वज्रमूर्ख, तू शासन करने के योग्य नहीं। जा, मेरे सामने से हट जा। मूर्ख अज्ञानी राजा से प्रजा का अकल्याण ही होता है।"

युवराज मंजुल को वैभव विलास त्याग राह की धूल फांकने पर विवश होना पड़ा। राज्य-भवन का वैभव छोड़कर संसार के कठिन मार्ग पर चल पड़ा वह। वह निरन्तर चलता रहा। एक पल.... दो पल.... एक दिन... दो दिन... तीन दिन। भूख प्यास से विकल हो जाने पर भी वह चलता रहा।

निरन्तर चलने से, भूख-प्यास से विकल शरीर अत्यधिक परिश्रान्त हो चुका था। श्रमित शरीर जब साथ न दे सका तब वह आम के वृक्ष तले आ बैठा। तेज प्यास से गला सूख

चुका था। वह नैराश्यपूर्ण नेत्रों से इधर उधर देखता रहा। अचानक सामने ही, कुछ पग के अन्तर पर एक सरोवर दृष्टिगोचर हुआ। वह लड़खड़ाता हुआ सरोवर के तट पर जा पहुंचा। उसने अंजुलि में जल लेकर मुंह लगाना चाहा तभी वहां के सुनसान वातावरण में एक स्वर गुंजरित हो उठा—"ठहरो"

मंजुल ठिठक गया, अंजुलि से पानी गिरकर फिर सरोवर के पानी में मिल गया। उसने इधर-उधर देखा। दायीं ओर से एक जर्जर तन लिये साधु आ रहा था। साधु ने कहा—"बेटा, यह जल विषमय है इसे न पियो।"

"महाराज, प्यास से विकल हूँ।"

"लो, बेटा, यह पानी पियो।"—साधु ने कमण्डल का पानी दिया।

मंजुल के शरीर में पुनः प्राण जाग उठे।

'बेटा, इस सुनसान नीरव निर्जन वन में कहां से आ रहे हो?'

'संसार की राह का अकेला राही हूं महाराज! पथ से भटक गया हूं।'

'आओ, वत्स, आओ, वन बीहड़ है अतएव आज की रात कुटिया पर विश्राम करो। सबेरे की नवकिरण फूटते ही राह पर चल देना।'

मंजुल साधु के पास कुटिया पर आया।

साधुने गाय का दूध दुहा। मंजुल मुग्ध-दृष्टि से गाय का

सौन्दर्य देखता रहा। साधु ने दूध दिया। मंजुल उसे पीकर तृप्त हो उठा।

साधु ने अभ्यागत की अभ्यर्थना हेतु मंजुल के सोने की व्यवस्था कुटिया में की और अपनी बाहर। किन्तु मंजुल ने शिष्टाचारवश स्वयं बाहर सोने का आग्रह किया।

मंजुल की नींद अचानक ही टूटी तो उसने देखा कि गाय को कुछ व्यक्ति खोल कर लिए जा रहे हैं। उसने अपना कर्तव्य स्थिर किया और वह चोरों के पीछे दौड़ पड़ा।

चोरों ने भागने का रास्ता न देख मंजुल को पकड़ लिया और चिल्लाने लगे—यही चोर है....साधु महाराज की गाय चुराकर लिये जा रहा था, हमने पकड़ा है।'

मंजुल अपने को निर्दोष सिद्ध करता रहा किन्तु दोष उस पर आरोपित हो गया। साधु ने उसे कृतघ्न, विश्वासघाती आदि कहा।

अभियोग के लिए मंजुल को वहां के राजा के सामने प्रस्तुत किया गया। राजा ने अभियोग सुनकर आश्चर्यचकित दृष्टि से मंजुल को निहारा—'इतना शांत व्यक्ति चोर। देखने में तो यह राजपुत्र लगता है।'

अभियोग गम्भीर था। राजा कुछ अपनी ही उलझन में उलझे थे। अस्त-व्यस्त मस्तिष्क से न्याय के स्थान पर अन्याय हो जाने की आशंका थी। अतः निर्णय की तिथि एक मास पश्चात् की घोषित की।

मंजुल को निर्णय के समय तक राजउद्यान की देख-रेख पर नियुक्त किया गया। राजा की एकमात्र पुत्री मांडवी ने इस नवीन माली को देखा और वह अचकचा गई। मंजुल हावभाव से राजवंशी सरीखा लगता है। ललाट की ऊंचाई इसकी प्रत्यक्ष साक्षी है फिर भी यह माली है। युवराज्ञी मांडवी आश्चर्य की गठरी लिए अपने भवन में आ गई।

राजा जब अपनी पुत्री से मिलने आए तो वह विचारों के गहन सागर में डूबते उतराते आये। मांडवी ने अपने पिता को जब खोये-खोये देखा तो वह जिज्ञासा का दमन न कर सकी, पूछ ही लिया—'पिता जी आप उदास क्यों हैं?'

राजा अपनी पुत्री की तीक्ष्ण बुद्धि से परिचित थे, अतएव हृदय की उथल-पुथल, मानस की चिन्ता गोपनीय न रख सके। बोले—'बेटी, हम पर एक महान् संकट आने वाला है।'

'क्यों?'

'स्वर्गलोक के देवताओं में विवाद छिड़ गया है, कौन सबसे बड़ा देवता है? नारायण, लक्ष्मी, सरस्वती और कर्म में परस्पर विवाद है। नारायण का दावा है वह सारे धरातल का संचालन करते हैं, अतएव वह बड़े है। लक्ष्मी कहती है संसार के सारे कार्य बिना उनके सम्पन्न नहीं हो सकते, जीवन को क्रम वही देती है, गति वही देती हैं। धन के अभाव में सांसारिक जीवन ठप्प है—अतएव वह बड़ी है। सरस्वती का मत है ज्ञान के अभाव में संसार में सार नहीं,

जब सार नहीं, तब संसार ही क्या है ? और ज्ञान देना उनका ही काम है अतएव वह बड़ी है। कर्म का विश्वास है कि सारे कार्य कर्म के अनुसार चलते हैं। अतएव वह बड़ा है। इसके निर्णय का भार देवताओं ने हम पर डाला है। अब हमारे सामने संकट यह है कि हम किस को महान् घोषित करें ? किसी भी एक देवता को प्रसन्न करने से शेष देवता रुष्ट हो जायेंगे और हमारा विनाश निश्चित है।'

युवराज्ञी मांडवी विचार में पड़ गई। उन्हें कोई मार्ग ही नहीं सूझ पा रहा था। मांडवी ने पूछा, 'निर्णय की तिथि कब है ?'

'कल—हताश स्वर में राजा ने कहा।'

युवराज्ञी चिन्ता में लीन उद्यान में आ गई। मंजुल ने राजपुत्री को उदास देखा, साहस एकत्र कर उसने कारण पूछा।

मांडवी ने उत्तर दिया—'तुम नहीं समझोगे युवक। लोगों का ख्याल है कि राज परिवार का जीवन निश्चिन्त होता है किन्तु राजा को कितनी दुर्गमताओं का बोझ ढोते रहना पड़ता है यह कोई नहीं जानता।'

मंजुल ने कहा—'मैं जानता हूं इसी हेतु अनधिकार चेष्टा कर बैठा हूं पूछने की। सम्भव है कुछ सेवा कर सकूं।' युवराज्ञी ने मंजुल का अनुरोध स्वीकार किया। मंजुल ने सुना और कहा—मैं राजन से मिलना चाहता हूं।'

मांडवी आश्वस्त हुई और उसने पिता से जाकर कहा।

किन्तु राजा आश्वस्त न हो सके, उन्हें विश्वास न हो सक कि एक चोर इस कठिन समस्या का समाधान कर सकेगा किन्तु और चारा भी न था। उन्होंने युवक को बुलाया।

मंजुल ने कहा—'राजन आप निश्चिन्त रहें, समाधान हो जायगा। आप केवल मेरे कथनानुसार व्यवस्था कर दें।'

'कहो।'

आप एक कक्ष में चार आसन लगा दें—इनमें से तीन समान हों एक विशेष रूप से कुछ बड़ा हो। चार लेखनियां और चार भोज पत्र भी हों। इनमें से एक एक कुछ विशेष सुन्दर हों। शेष भार मैं स्वयं वहन करूंगा। स्वागत अभ्यर्थना में आपकी उपस्थिति अनिवार्य है।'

'ऐसा ही होगा। किन्तु यदि समाधान सन्तोषजनक न हुआ तो ?

'तो मुझे मृत्यु दण्ड मिले।'

'एवमस्तु'

प्रातः की स्वर्णिम वेला में मंजुल आकर्षक वेष-भूषा में देवताओं के स्वागत कक्ष में पहुंचा। वहां जाकर उसने संपूर्ण व्यवस्था का अवलोकन किया और सन्तुष्ट हो गया। उसके कथनानुसार सब व्यवस्थित था। वह कक्ष से निकलकर दरवाजे पर आ खड़ा हुआ।

शंख ध्वनि से वातावरण गुञ्जरित हुआ। भगवान् नारायण का आगमन हुआ। मंजुल ने कहा—'आइये भगवन्, पधारिये, कक्ष में आसन लगे हैं, विश्राम कीजिये।'

तदुपरान्त लक्ष्मी आयीं, सरस्वती आयीं। मंजुल ने स्वागत अभ्यर्थना के उपरान्त उन्हें भी कक्ष में भेज दिया। सबसे बाद 'कर्म' ने प्रवेश किया। उन्हें भी मंजुल ने कक्ष में आकर आसनारूढ़ हो विश्राम करने को कहा।

मंजुल ने प्रतिहारी को आदेश दिया—'राजन को अभ्यागतों के आगमन की सूचना दो।'

राजा आये। मंजुल उनको साथ ले अन्दर गया। कक्ष में बड़े आसन पर कर्म आसीन था। शेष देवी देवता छोटे आसन पर थे। राजा को उपस्थित देख सभी देवी-देवताओं ने एक स्वर में कहा—'हमारा समाधान करो, राजन।'

राजा ने प्रश्नात्मक मुद्रा में मंजुल की ओर देखा। मंजुल ने आगे बढ़कर कहा—'समाधान ? समाधान तो आप लोगोंने स्वयं कर लिया।'

'वह कैसे ?'—सभी आश्चर्य से बोले।

'देखिये ! यहां चार आसन हैं तीन एक आकार के और एक बड़ा। मैंने आपको निर्देश तो नहीं दिया था कि आप किस पर बैठें ? आप लोग 'कर्म' से पहले आये, फिर भी छोटे आसन पर बैठे। 'कर्म' बाद में आये और वे अपनी महानता के बल पर खाली पड़े हुये एक बड़े आसन पर बैठे। इसीलिये कर्म ही सबसे बड़े हैं।'

मंजुल ने देखा और अनुभव किया देवता संतुष्ट न हो रहे हैं। अतएव उसने नारायण से प्रश्न किया—'आप जानते हैं, मैं कौन हूँ ?'

'हां तुम कलिंग देश के राजा के पुत्र हो। तुम पर चोरी का मिथ्या आरोप है।' फिर लक्ष्मी से प्रश्न किया—'आप जानती हैं मुझपर आपकी कृपा थी। मैं सम्पन्न था।

'हां जानती हूं।'

और आप सरस्वती जी, भली प्रकार जानती होंगी मैं ज्ञानवान था अतएव आपकी कृपा का पात्र था।'

'हां वत्स।'

'पर आज वह सब कुछ होते हुये भी मुझ पर चोरी का झूठा आरोप क्यों?'

'तुम्हारा कर्म।'—सबने कहा

'आपकी कृपा से कर्म टल नहीं सकता।

'नहीं 'कर्मफल' नहीं टलता।'

'तो फिर आप कर्म के सामने विवश हैं न?'

नारायण, लक्ष्मी और सरस्वती परास्त स्वर में बोले—'हां'

'तो उठाइये लेखनी और लिखिये भोजपत्र में 'कर्म' प्रधान है।'

देवी देवताओं को लिखना पड़ा--'कर्म प्रधान है।'

कर्म मंजुल की न्याय प्रतिभापर मुग्ध हो उठा। उसने प्रसन्न हो मंजुल को वर दिया--'धन धान्य सम्पन्न हो!'

कहना न होगा, मांडवी मंजुल का जीवन अंग बन गयी। और विश्व पर खुल गया-- कर्म प्रधान विश्व रचि राखा।'

मंजुल को अपने पिता के प्रश्न का उत्तर मिल गया था। फलों में "कर्मफल" सबसे बड़ा है।

# वीर पृथ्वीसिंह

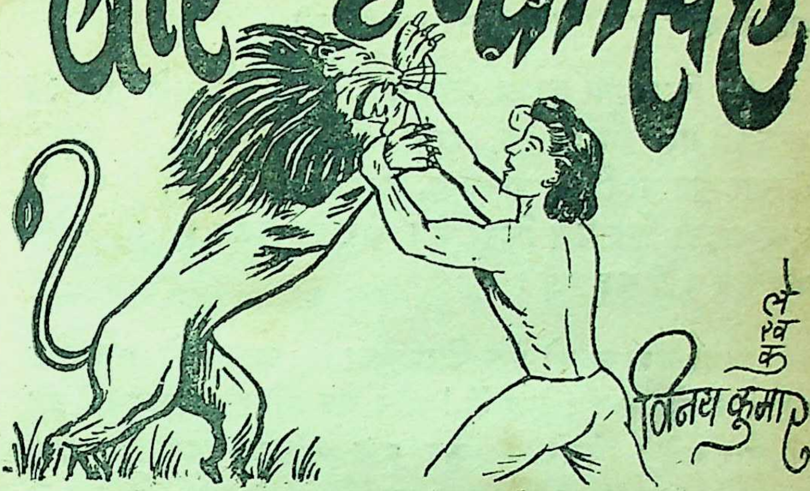

लेखक विनय कुमार

प्रातः का सुहावना समय था। सूरज का सोने जैसा पीत प्रकाश जहां तहां विखरा हुआ था, बादशाह औरंगजेब अपने कुछ इने गिने सामन्तों के साथ छावनी के बाहर बैठा सुनहली धूप का आस्वाद ले गप-शप उड़ा रहा था।

'न जाने कैसे कम्बख्त हैं ये मरहटे!' दांत पीसता हुआ औरंगजेब बोला और उसने घुटने पर मुट्ठी पटकते हुये हुक्के का एक प्रदीर्घ कश खींचा।

'क्या कहें सरकार?' अफजलखान बोला, 'हमारी बलवान मोगल सेना उनके किले तो ले लेती है, मगर लौटते समय यह पहाड़ी चूहे उसे परेशान कर देते हैं। हमारा मुह फिरा कि, हुए इनके कारनामे शुरू! बड़ा परेशान कर

दिया है पाजियों ने !' और जी हां सरकार ! ऐसा कह कर महाबतखान ने भी उसकी तरफदारी की।

'तो फिर ऐसा करना चाहिये. . . . .' औरंगजेब ने बात शुरू भी नहीं की थी कि, इतने में एक सिपाही ने आकर संदेशा सुनाया कि 'जहांपनाह, अब्दुल ने आपकी सेवा में एक बढ़िया शेर पेश किया है। और इस वजह से औरंगज़ेब की बात वहीं रुक गई।

'क्या अब्दुल को शेर मिल गया ?' प्रसन्न हो बादशाह बोला 'चलो, चलो, देख लें ! और सब लोग उठकर पिंजरे की ओर गये। पिंजरे में कैद एक गठिले बदन का शेर गुस्से से इधर-उधर घूम रहा था और जोर जोर से दहाड़ रहा था।

'वाह वाह ! बहुत खूब ! !' बादशाह खुशी से बोला क्या शेर है ? लाखों में एक ! कमाल किया अब्दुल ने तो ! महावतखान अब्दुल को एक सौ मुहरें बख्श दो।' अभिवादन कर महाबतखान और अब्दुल वहां से चले गये।

'क्या बढ़िया शेर है ? मेरे ख्याल में इससे भी अधिक बलवान शेर कोई दुनियां में होगा ही नहीं, क्यों क्या राय है आपकी ?' औरंगजेब अफजलखान की ओर देख कर बोला।

'हां, हां, जहांपनाह ! आपका अन्दाज बिलकुल सच है। अफजलखान ने अपनी लंबी दाढ़ी पर हाथ फेरते हुए कहा।

अन्य सरदारों ने भी हंस कर अफजल की बात पर सम्मती प्रकट की। इससे प्रफुल्लित हो बादशाह ने सस्मित वदन से एक बार सब सरदारों की ओर देखा। किन्तु एक सरदार के माथे का टोप अभी नंवा नहीं था। उस सरदार की आंखों में तिरस्कार था और मुख पर सगर्व हास्य! बादशाह की तीक्ष्ण नजर से यह उपहास छुटा नहीं। उसे गुस्सा तो बहुत आया। किन्तु उसे छुपाते हुए बादशाह ने हंसने की कोशिश करते हुये कहा। 'क्या सोच रहे हो जसवंतसिंह?

'कुछ नहीं सरकार!' जसवंतसिंह ने शेर पर से नजर हटा बादशाह के मुख पर गाड़ी और कहा—'सोच रहा हूं कि, इस से कई गुणा बलवान शेर इस दुनियां में मौजूद हैं।'

'क्या कहा? गुस्से से तर हो बादशाह चिल्लाया। क्यों कि, जसवंतसिंह ने उसका मानभंग कर मर्म पर घाव किया था। सब सरदार तिरस्कार युक्त नजर से जसवंतसिंह की ओर देख रहे थे। बादशाह पैर पटक बोला, 'क्या आपने ऐसा कोई शेर देखा भी है?

'जी हां सरकार! वह शेर मेरे पास है और मैं यह दावे से कहता हूं कि, वह इससे कई अधिक बलवान् हैं।' जसवंतसिंह का हाथ तलवार की मूठ पर गया। यह प्रत्बक्ष बादशाह के वैभव और गरिमा को चुनौती थी। इसलिये वह खफा हुआ और उसकी क्रुद्ध मुद्रा को देख अन्य सामन्तों ने बादशाह का पक्ष लेना ही उचित समझा।

'जसवंत, घमण्ड न करो। अगर तुम्हें इतना विश्वास हो तो हम कल ही देखेंगे कि, किसका शेर अधिक बलवान है। मुकाबला होकर ही रहेगा।' अफजलखान बोला।

'गर तुम्हारा शेर मुकाबले में पराजित हुआ, तो जान से हाथ धोने पड़ेंगे, है मंजूर? शहेनशाह से टक्कर लेना बच्चों का खेल नहीं है, समझे? आसफखान ने अपना घोड़ा आगे भगाया।

'यदि जहांपनाह की आज्ञा हो, तो मुझे शर्त मंजूर है। जसवंतसिंह बोला।

'तो फिर ऐसा ही होगा! बादशाह के स्वर में उपहास था। कल ठीक इसी वक्त तुम को अपना शेर यहां पेश करना होगा बाकी इंतजाम हम करेंगे। अब तुम जा सकते हो!

'किन्तु सरकार, मगर आप का शेर हारा तो, मुझे क्या मिलेगा, यह तो आपने नहीं बताया? जसवंतसिंह ने बादशाह के दिल को जानने की कोशिश की।

'१० हजार मुहरें बख्शीश मिलेंगी!' बादशाह ने आगे छावनी की ओर बढ़ते हुए कहा।

'तो इसका मतलब यह हुआ कि, बादशाह की नजरों में हमारी कीमत केवल १० हजार मुहरें हैं, ऐसा ही न?' जसवंतसिंह ने पूछा।

'ऐसा नहीं जसवन्तसिंह! 'औरंगजेब ने नकली हंसी होंठों पर लाते हुये कहा 'यह तो तुम्हारे शेर के पराक्रम का

पुरस्कार है।' और बादशाह गुस्से से छावनी में चला गया। जसवन्तसिंह भी वहां ज्यादा देर न ठहर कर अपने तम्बु में वापस लौटा।

* * * *

दूसरे दिन छावनी के आगे का मैदान सरदार, सैनिक तथा साधारण लोगों से खचाखच भरा हुआ था। सब लोग शेरों की लड़ाई देखने को उतावले थे। सब अपनी अपनी योग्यता के अनुसार विराजमान हुये थे। आखाड़े के बिलकुल निकट साधारण जनसमुदाय बैठा था। उसके पीछे थोड़ी दूर ऊँचे टीले पर अधिकारी सामंतों की कुर्सियां थीं। सबसे ऊंचा सुवर्णासन था, बादशाह औरंगजेब के लिये। सब सामन्त तथा बादशाह उपस्थित थे। किन्तु जसवंतसिंह की कुर्सी अभी तक खाली थी, जिससे बादशाह क्रुद्ध हुआ था। सब लोगों की आंखें जसवंतसिंह की राह की ओर लगी हुई थीं। सब लोग अधीर हो उठे थे। इतने में ही सामने से जसवंतसिंह अपने द्वादशवर्षीय पुत्र पृथ्वीसिंह की अंगुली पकड़कर जल्दी से आता दिखाई दिया। लोगों ने हर्ष से तालियां बजाई।

नजदीक आ अभिवादन कर जसवंतसिंह बोला 'जहांपनाह, गुनाह माफ हो..." "देखा शहेनशाह, जसवंत ने अपनी हार मान ली है। वह खाली हाथ आया है सरकार!" अफजलखान ने ताना कसा।

बादशाह ने गुस्से से पूछा "जसवंतसिंह, यह क्या

मखौल लगाई है तुमने ? अपना शेर नहीं लाये तुम ?"

इस पर शांति से जसवंतसिंह बोला "जी हां, लाया हूं सरकार !"

"कहां है ?" क्रोध से पूछा औरंगज़ेब ने।

अपने पुत्र की ओर अंगुली निर्देश कर जसवंतसिंह बोला "यही मेरा शेर है जहांपनाह !"

"क्या कहा ?" आंखें फाड़ आश्चर्य से औरंगजेब बोला "तो क्या यह मासूम बच्चा इस बलशाली शेर से टक्कर लेगा ? अभी तो इसके ओठों पर का दूध भी नहीं सूखा।"

"सरकार ! यह बच्चा मासूम है या आपका शेर कमजोर है, इसका निर्णय अभी लगकर ही रहेगा। आप हुक्म दें, तो मैं मेरे शेरको आज्ञा देता हूं।" जशवंतसिंह नम्रता से बोला। सब लोग और अधिकारी वर्ग अचरज भरी निगाहों से यह सब देख और सुन रहे थे। सब लोग पृथ्वीसिंह के गठिले बदन की सराहना कर रहे थे। उन्हें जसवंतसिंह की मूर्खता पर गुस्सा और बेचारे पृथ्वीसिंह के भाग्यपर तरस आ रहा था।

"जसवंतसिंह, हमें आपके बल और चातुर्यपर नाज है। किन्तु इसका मतलब यह नहीं कि, तुम उसका नाजायज फायदा उठाओ। कहीं आज तुमने भंग वंग तो नहीं पी ? क्या तुम सोचते हो कि, यह बच्चा उस शेर को पराभूत कर सकेगा ? जाओ, अपनी और बच्चे की जान खतरे में क्यों डालते हो ? हम अपनी शर्त पीछे ले लेने की उदारता दिखा

सकते हैं।" औरंगजेबने मुस्कराते हुये कहा। "शहेनशाह, इसकी कोई जरूरत नहीं है। मैं पूरे होश में हूँ और दावे से यह कहता हूं कि, मेरा यह लाडला उस शेर को निश्चय ही पराभूत करेगा। अगर आप शर्त पीछे लेना चाहते हैं तो पहले अपनी हार कबूल करो!" जसवंतसिंह का विश्वास निश्चल था। सब लोग कानों में प्राण उंडेल यह संवाद सुनने लगे।

"जसवंतसिंह!" गुस्से से बादशाह और अफजलखान चिल्लाये। अफजलखान आगे बोला "जानते हो तुम किस से बात कर रहे हो? शहेनशाह ने तुम्हारे ऊपर रहम खाकर यह बात कही है। इस का मतलब यह नहीं कि, वे हार गये हैं। इतना घमंड है, तो करो प्रस्तुत तुम्हारे शेर को!'

"मेरा शेर तो कब ही का प्रस्तुत है।" जसवंतसिंह बोला।

बादशाह के इशारा करते ही भूखे शेर का पिंजरा खोला गया। क्रुद्ध शेर दहाड़ता हुआ आखाड़े में आया। पृथ्वीसिंह ने कपड़े उतारे और उसने पिता को प्रणाम किया। जसवंतसिंह का हृदय सदगदीत हुआ। बार बार चुम्बन लेकर उसने कहा "मेरे शेर! डरना मत! और इनको राजपूत माता के दूध का प्रताप बताना!" और पृथ्वीसिंह बड़ी उमंग के साथ आखाड़े में कूदा। वह शेर से लड़ने के लिये उचित दांव में सज्ज हो खड़ा रहा।

उसका यह अतुलनीय धैर्य देख सब लोगों ने अचरज से

दांतों तले अंगुली दबाई। कुछ लोगों ने प्रोत्साहन के उपलक्ष्य में तालियां बजाई। तो कुछ लोगों को 'अब क्या होगा!' की चिन्ता होने लगी। सब मोगल सरदार दांत कटकटाते हुये जीवन मृत्यु का यह संघर्ष देखने लगे।

शेर ने सामने शिकार को देख हर्ष से एक जोरसे गर्जना की, जिससे समूची छावनी कांप उठी, और हाथ में कटार लेकर खड़े हुये पृथ्वीसिंह पर झंप डाली। पृथ्वीसिंह सावधान था ही। उसने इस प्रकार कौशल से काम लिया कि बेचारा शेर अपना विशाल डीलडौल ले जोर से जमीन पर गिरा। उसकी फजिहत देख प्रेक्षकों ने तालियां बजाकर पृथ्वीसिंह के कौशल की सराहना की। पृथ्वीसिंह ने जल्दी से समय का फायदा उठा शेर पर कटार का वार कर उसका काम तमाम कर देना चाहा और वह उसके नजदीक भी गया। अब वह शेरकी छाती में कटार भोंकने वाला था ही कि, उसके कानों पर पिता के शब्द गिरे "पृथू! यह क्या अन्याय है! एक निःशस्त्र पर शस्त्र से वार करना वीरोचित नहीं है।" और इसी समय कटार फेंक फिर से पृथ्वीसिंह सावधान हो कर खड़ा रहा। लोग आंखों में प्राण उंडेल यह दृश्य देख रहे थे। बहुत से चिन्तित नजर आ रहे थे। पृथ्वीसिंह को कटार फेंका हुआ देख आश्चर्य चकित हो अफजल ने औरंगजेब की ओर देखा।

पहला हमला फिजूल जाने से शेर बहुत ही क्रुद्ध हुआ था। इसलिए इस वक्त वह बड़े जोर से उस पर झपटा। किन्तु इस बार भी उसे पहले की तरह धरती की धूल

चाटनी पड़ी। अब उसकी क्रोधाग्नि में घी पड़ गया और धीरे धीरे चलते हुये उसने पृथ्वीसिंह से कुश्ती लड़ी। इस बार बेचारा पृथ्वीसिंह जमीन पर गिरा और शेर उस पर बैठने लगा। यह देख जसवंतासिंह को तो बेचारे को दिन में ही तारे दिखाई देने लगे उसने अपनी आंखें मूंद ली और वह शोक करते हुये बोला "हे प्रभु मैं यह क्या कर बैठा? अपने बल के घमंड में आ बेचारे निष्पाप पृथू को मृत्यु के मुंह में ढकेला। प्रभु मेरे पृथू को बचा! मेरे बच्चे को बचा!! "सब लोग चिन्तित मुद्रा में सांस रोके यह देख रहे थे। कुछ लोग यह दृश्य देख न सके और उस निस्सहाय बालकपर तरस खा उन्होंने आंखें मूंद ली। कुछ औरतों के मुंह से तो चीखें निकल गई। अफजल प्रफुल्लित हो संघर्ष देखने लगा।

जसवंतसिंह ने आंखें खोली और देखा तो वह फूला न समाया। इस बार भी पृथ्वीसिंह ने कौशल से काम ले शेर को दूर किया था और वह उठकर खड़ा हुआ था। लोगोंने हर्ष से तालियां बजा उसे उत्साहित किया। जसवंतसिंह ने ईश्वर का शुक्रिया अदा किया और बादशाहने दांत कटकटाए।

इस बार शेर ने प्रतिस्पर्धी के बल को तौल लेने की ठानी और वह कुछ नजर से पृथ्वीसिंह की ओर देखने लगा। किन्तु पृथ्वीसिंह कोई कच्चे गुरु का चेला न था उसने भी एक टक से उस शेर की नजर से नजर मिलाई। शेर ने ताड़ लिया कि प्रतिस्पर्धी अपने सामर्थ्य से परे है।

अतः वह नम्र बन पैर में पूछ छिपाकर पीछे जाने लगा। किन्तु उसे ऐसा जाने दे, तो पृथ्वीसिंह वीर काहे का! उसने तत्काल पीछे से शेर पर हमला किया और उसे जमीन पर गिराया। बहुत समय के परिश्रम के पश्चात् वह शेर का जबड़ा पकड़ने में समर्थ हुआ। तत्पश्चात् उसने दोनों हाथों से जबड़ा पकड़ा शेर को बलपूर्वक चीर डाला। बेचारा शेर। वनराज!! मिट्टी में खून से लथपथ हो मर पड़ा।

तालियां और हर्षोद्गारों से समूचा गगन गूंज उठने की आशंका उत्पन्न होने लगी। पृथ्वीसिंह दौड़ता हुआ पिता के पास गया और उसने पिता की बाहों में अपना शरीर फेंक दिया। 'वाह वाह। शाबास, आदि प्रशंसोद्गार निकालते हुए सब लोग जसवन्तसिंह के इर्द-गिर्द इकठ्ठे हुए और उसके पराक्रम की सराहना करने लगे। जसवन्तसिंह की आंखों में हर्षाश्रुओं का सागर उमड़ पड़ा। उसने बालक को अपने अधिक निकट खींचा और छाती से लगाया। बार२ चूमने पर भी आज उसकी तृप्ति नहीं हो रही थी। उसने बच्चे को उठाया और वह अपने तंबु की ओर जाने लगा। इसी समय उसका पैर किसी वस्तु से टकराया और 'छन्-छन की आवाज कानों में गूञ्जी। उसने नीचे देखा, वह मुहरों की थैली थी, पृथ्वीराज के पराक्रम का इनाम। जसवन्तसिंह ने पीछे घूम कर देखा। अफजलखान और बादशाह गुस्से से पैर पटकते हुये छावनी की ओर बढ़ रहे थे। जसवन्तसिंह मुस्काया और उसने उन पैसों की थैली

पर एक जोर की ठोकर मारी जिसकी आवाज से चौंक कर अफजल ने पीछे मुड़कर देखा। जसवन्तसिंह अपने तम्बू में लौटा। उसका मुखारविन्द समाधान के तेज से दमक रहा था।

धन्य है वह मात्रभूमि ! जहां एसे निरीच्छ और बलवान् लोग पैदा होते हैं। ऐसी पावन भूमि की ओर बुरी निगाहों से देखने की किसी की हिम्मत है भला ?

प्रेम, सेवा और जागृति का प्रमुख हिन्दी पाक्षिक

समाज--हितैषी

जिसमें साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, व आर्थिक लेख, कवितायें एवं कहानियों के अतिरिक्त निम्नलिखित स्तम्भ भी रहते हैं।

* सम्पादकीय
* महिला-जगत
* शिशु-जगत
* जनमत
* राजस्थान का रंगमंच
* हास्य-व्यंग
* प्रश्नोत्तर
* भविष्य फल

साधारण एक प्रति २५ पै. विशेषांक के सहित वार्षिक ६)
आज ही नमूने की प्रति के लिए लिखें अथवा वार्षिक ग्राहक बनकर लाभ उठावें।

पता-समाज-हितैषी कार्यालय, बिसाऊ (राजस्थान)

सत्य घटना पर आधारित

# अद्भुत चिकित्सा

ले० अनुपम एम. ए.

सेठ दमड़ीलाल नगर के सम्पन्न व्यक्ति हैं। भगवान् का दिया उनके पास सबकुछ था। उनकी पत्नी का स्वर्गवास हो चुका था किन्तु उनका एकमात्र पुत्र अब तक युवा हो चुका था। उसका विवाह एक सुन्दर युवती से हो गया था। और उन दिनों वह गर्भवती थी। तभी उस दिन दमड़ीलाल के पारिवारिक जीवन में एक भयंकर कोलाहल छा गया।

सेठजी की पुत्रवधू उर्मिला कुछ सिलाई कर रही थी। अचानक काम में लगे लगे उसने सुई होटों में दबाई और धागा ठीक करने लगी। फिर अचानक न जाने क्या हुआ कि सुई उसके गले के नीचे उतर गई। उर्मिला के हाथों के तोते उड़ गये। उसने अपने पति से कहा। श्यामलाल ने अपने पिता दमड़ीलाल को बताया।

दमड़ीलाल का कलेजा धक से रह गया। आनन-फानन में बहू को ले अस्पताल में पहुँचे। डाक्टर ने शरीर को देखा। वह नहीं जान सके कि शरीर में सुई किस स्थान पर होगी। उन्होंने सुझाव दिया एक्सरे कराना होगा।

सेठजी को इस समय बहू की जान की चिन्ता थी। पैसे के बारेमें उन्होंने सोचना व्यर्थ समझा और तत्परता से बोले, "डाक्टर साहब जो कुछ करना हो करे, पैसे की फिक्र न

करें एक के बदले दस दूंगा। मेरे बेटे की बहू की जान बचा लीजिये।"

डाक्टर ने साहस बंधाया। बोले, "सेठजी, सुई निगल जाना कोई मामूली बात नहीं है, फिर भी इतनी बात जरूर है कि हम पहले यह पता लगा लें कि सुई कहां है तब बतायेंगे क्या होगा ?"

एक्स-रे हुये। डाक्टर ने देखा सुई आंत में जाकर चुभी हुई है तो उसके माथे पर भी परेशानी की शिकन पड़ गई। आंत में सुई चुभना कोई साधारण बात न थी उस पर रोगिणी को सात माह का गर्भ। डाक्टर कुछ कह न सका एक दम से। वह सोचने लगा।

दमड़ीलाल और श्यामलाल ने डाक्टर को सोच में पड़ा देखा तो उनका भी धीरज छूट गया। वह पहले तो डाक्टर की ओर टुकुर टुकुर देखते रहे फिर शामलाल ने उतावली से कहा, "क्यों डाक्टर साहब, क्या बात है, मुझे मेरी पत्नी का जीवन चाहिये। आप इस तरह चुपचाप क्यों हैं क्या वह नहीं बचेगी। नहीं डाक्टर नहीं, ऐसा न कहना। मैं बहुत बड़ी फीस दूंगा। बस आप मेरी पत्नी का जीवन बचा लीजिये।"

डाक्टर ने अपनी आंखें श्यामलाल पर तरेरीं। फिर कहा "इस तरह उतावली किस काम की। खुद तो परेशान हो ही रहे हैं हमें और रोगी को भी परेशान कर रहे हैं। अब हम सोच लें कि क्या करना है तभी कुछ कहेंगे।"

श्यामलाल अपने बाप का कंधा पकड़कर जोर जोर से हिचकी लेने लगा। वह अपनी रुलाई पर जबरदस्ती का रखने की कोशिश कर रहा था। सेठने बेटेकी पीठ थपथपा और अपने आंसुओं को पोछते पोछते कहा "बेटा, डाक्टर कुछ न कुछ करेंगे ही। परेशान मत हो। जाओ तुम बाहर जाकर बैठो। मैं यहां सम्हाल लूंगा।"

श्यामलाल रोता बिसूरता सा बाहर आकर बैठ गया। दमड़ीलाल ने घिघयाते हुए पूछा, "डाक्टर साहब कुछ बताइये न क्या बात है ?"

डाक्टर ने कहा, "सेठ, केस बहुत सीरियस है। सुई जाकर आंत में लगी है। आप्रेशन करना होगा, इसके अलावा कोई चारा भी नहीं है। और यह भी समझ लीजिए यह आप्रेशन बहुत खतरनाक होगा। इसमें बच्चे की जिन्दगी का तो कोई भरोसा है ही नहीं, बचा दे तो भगवान् मालिक। आपकी बहू को भी खतरे से गुजरना होगा।"

सेठ दमड़ीलाल की आंखों के सामने अंधेरा छा गया। कितनी आशाएं उनके मन में हिलोरे ले रही थीं कि पौत्र होगा। उनका घर छोटे बच्चेकी किलकारियोंसे गूंज उठेगा। किन्तु अब तो सब तरफ अंधेरा ही अंधेरा नजर आने लगा उन्हें।

भर्राये स्वर में बोले, "डाक्टर ! मैं अपनी सारी पूंजी भी दांव पर लगाने को तैयार हू। मेरी जिन्दगी अंधेरी होने से बचा लो मेरे बेटे की जिन्दगी अंधेरी होने से बचा लो।"

"तो बताइये आप्रेशन करना मंजूर है या नहीं।"

"है डाक्टर साहब, है। मरता क्या न करता मंजूर करना ही होगा।"

"ठीक है। तो जाओ, दफ्तर में ढाई सौ रुपये फीस के जमा करा देना कल। हम अभी तो इंजेक्शन लगा देते हैं, आप्रेशन कल ही करना ठीक होगा।"

सेठजी बेताब थे, बोले, "डाक्टर कल तक क्यों, आज ही क्यों नहीं।"

"नहीं, जो हम ठीक समझ रहे हैं वही करेंगे।"

सेठजी अपने बेटे के साथ घर लौटे। बहू को अस्पताल में ही भर्ती करके आना पड़ा था।

घर पर सेठजी के नातेदारों और सम्बन्धियों की भीड़ लगी थी। सभी सहानुभूति जताने आए थे। अच्छी खासी भीड़ थी। सभी लोग सेठजी और श्यामलाल को धैर्य बंधा रहे थे।

उन्हीं सहानुभूति प्रदर्शकों में एक वैद्यजी भी आये थे। वह भी अपनी बारी आने पर सेठजी के निकट आये। कोमल स्वर में बोले, "सेठजी डाक्टर ने क्या कहा है?"

सेठजी ने अपनी भीगी आंखों को ऊपर उठाकर कहा, "और क्या कहेंगे, बस आप्रेशन होगा। सुई आंत के अंदर जा चुभी है।"

"लेकिन बहू तो गर्भवती है, बच्चे का जीवन बचेगा न।"

"उम्मीद तो बिल्कुल नहीं है, आगे भगवान् की मर्जी

अब वैद्यजी तन्ना गये। बोले, सेठजी! कुछ कहूंगा छोटे मुँह बड़ी बात होगी किन्तु यह बात जरूर है कि आ कल की नई रोशनी ने लोगों को अन्धा कर दिया है। व पास की चीज तो देखते नहीं दूर की चीज पर लपकते हैं।

सेठजी ने जिज्ञासु हो वैद्यजी की ओर देखा।

वैद्य जी ने कहा, 'ठीक ही तो कह रहा हूं। आप्रेश कराने की जरूरत ही क्या है जब रोग को बिना आप्रेशन ठीक किया जा सके।'

दमड़ीलाल ने अचकचाते हुए कहा, 'क्या कह रहे आप। बिना आप्रेशन के कैसे सुई निकाली जा सकती है!

'निकाली जा सकती है, बहुत आसानी से निकाली ज सकती है। लेकिन कोई देखने के लिये तैयार भी तो हो।

'वैद्यजी! यहां मेरी बहू की जान पर बीत रही है वह आप उल्टे प्रयोग करने की बात कर रहे हैं। अगर आपकी बात मानूं तो दोनों जानों से हाथ धो बैठूं।'

'मैं दोनों जीवन की सुरक्षा का वचन देता हूं। सेठ ज आप नहीं जानते हम लोगों की चिकित्सा प्राकृतिक चिकित्सा पर आधारित होती है। हम रोग को नष्ट करते है त समूल। बड़ी बात तो कहते नहीं किन्तु इतनी बात को

झूठला भी नहीं सकता कि संसार में कोई भी ऐसा रोग नहीं जिसका निदान प्राकृतिक या आयुर्वेदिक पद्धति से सम्भव न हो। उल्टे इस पद्धति से चिकित्सा कराने में तत्काल लाभ दिखाई भले ही न पड़े किन्तु विपरीत प्रभाव भी नहीं पड़ता है।'

बैठे हुए लोगों में से अधिकांश एलोपेथिक चिकित्सा के महत्व को ही मानने वाले थे। केवल दो चार व्यक्ति ही ऐसे थे जो वैद्य जी की बात से सहमत हुए। उन्होंने कहा भी, 'सेठ जी! वैद्य जी को एक अवसर तो दीजिए, देखिए कुछ न कुछ होगा ही।'

किन्तु अन्य व्यक्ति भी बोले, 'नहीं सेठ जी! आप इन बातों में हरगिज न आइये। जब मामला डाक्टर के हाथों ही में सौंपा जा चुका है तो बस राम भरोसे रहिए। कहीं दो हाथ मामला ही न बिगाड़ दें।'

वैद्य जी अपना अपमान तो सह सकते थे। किन्तु भारतीय चिकित्सा पद्धति का अपमान उन्हें सहन न हो सका। बोले, 'सेठ जी। सच कहता हूं मुझे इस बात की चिन्ता नहीं आप का क्या होगा या मेरा क्या होगा किन्तु मुझे चिकित्सा पद्धति का अपमान नहीं देखा जाता। दूसरे यह भी सोच लीजिये आप अपने पौत्र या पुत्र वधू की असमय मृत्यु के उत्तरदायी होंगे। अगर आप केवल छः घण्टे का समय भी दें तो मैं आपको विश्वास दिला दूंगा कि भारतीयता में

अभी भी कितने गुण हैं जो पाश्चात्य पद्धति में कहीं भी दृष्टिगोचर नहीं होंगे।'

सेठ जी ने दबे स्वर में कहा, 'वह तो ठीक है, आप बताइये क्या करूं, मुझे तो कुछ सूझ ही न रहा है।'

'आप निश्चित होकर रवे का हलवा बहू को खिलाइये, और प्रातःकाल जो मल वह त्याग करे। उसे लेकर मेरे पास आइये। फिर मैं आपको अपनी चिकित्सा का चमत्कार दिखाऊंगा।'

'अरे अगर डाक्टर ने रवे का हलुआ खिलाने से इन्कार किया तो?'

'तो भी आपको भगवान् का नाम लेकर किसी भी ढंग से खिलाना होगा।'

'और अगर मामला कुछ बिगड़ गया। उसके बाद डाक्टर कुछ भी न करे तो क्या होगा?

'तो मैं अपना शिर आपके आगे कर दूंगा, जो सजा चाहो दे लेना।'

'सेठ जी ने सोचा जब मौत उधर भी है इधर भी है तो क्यों न वैद्य जी का हठ ही मान लिया जाए।

डाक्टर की चिकित्सा में सन्देह है कि वह जीवन दे भी सकेगी या नहीं। जबकि वैद्य जी की बात में आत्मविश्वास तो है। और उन्हें वैद्य जी से हां कर ली।

सेठ जी एकदम गरम हलुआ लेकर अस्पताल पहुंचे। डाक्टर से पूछा भी नहीं क्यों कि वह जानते थे कि डाक्टर कुछ भी देने को ना कर चुका है।

वह बहू को हलुआ खिला ही रहे थे तभी नर्स आ गई उसने सेठ जी को रोका किन्तु जब वह नहीं माने तो वह डाक्टर को बुला लाई।

डाक्टर आया। आते ही सेठ जी पर बरस पड़ा, 'क्या करते हो सेठ जी? वह मर जाएगी तो कौन जिम्मेदारी होगा? मैंने कहा था न वह कुछ नहीं खाएगी।'

सेठ जी चुप रह गए। कुछ भी कहना उन्होंने बेकार समझा। केवल अपराधी की भांति मौन खड़े रहे।

श्यामलाल को अपने बाप पर गुस्सा आ रहा था। अभी तक वह चुप था किन्तु अब डाक्टर के पास जाकर बोला, डाक्टर! मैं अपने पिता की ओर से क्षमा मांगता हूं। अब जो हुआ, आगे आप की मर्जी।'

डाक्टर ने कह दिया, 'अब जो हुआ सो हुआ। अब कुछ नहीं खिलाना वरना मैं आप्रेशन में हाथ नहीं लगाऊंगा।'

राम राम जपते सेठ जी और श्यामलाल ने रात बिताई, बहू बेचारी भी घबड़ाई हुई थी। सारी रात उसे भावी आशंका के कारण नींद की एक झपकी भी न आई।

प्रातः होते ही बहू ने मल त्याग किया। सेठ जी ने उसे एक बर्तन में लिया और जाने ही वाले थे वैद्य जी स्वयं ही आ पहुंचे। चैन सारी रात उन्हें भी न पड़ा था।

एक तीली की सहायता से वैद्य जी ने मल को बर्तन में छितरा दिया। दूसरे ही क्षण उनके मुखसे प्रसन्नता की चीख निकल पड़ी। सेठ जी ने भी देखा। वैद्य जी बर्तन में एक ओर सुई दबाये थे। वैद्य जी ने कहा, 'देखो, सेठ जी आंखें खोल कर देखो यह रही वह सुई—अब डाक्टर को दिखला लो, शरीर में कहीं दूसरी सुई तो नहीं रह गई।'

वैद्य जी की बातों में व्यंग था। सेठ जी और श्यामलाल प्रसन्नता से झूम उठे। बहू भी स्वयं को पूर्णतया स्वस्थ एवं निशंक अनुभव कर रही थी।

डाक्टर आया। उसने भी देखा। उसे विश्वास न हुआ। उसने पुनः एक्स-रे उतार ने को कहा। और एक्स-रे देख कर मानना ही पड़ा उसे। बैद्य के पास आकर बोला, 'भई मैंने सुना ही सुना था कि आयुर्वेदिक पद्धति बहुत अच्छी है आज देख भी लिया। लेकिन यह तो बताइये कि जिस काम को आप्रेशन भी सरलता से नहीं कर सकता था वह आपने कैसे कर डाला।'

वैद्य जी गौरव से भर गये थे, बोले 'बहुत साधारण सी बात है, रवे का हलुवा आंतों को कोमल बनाकर फुला देता है जिसमें से सुई बहुत सरलता से निकल आती है उसके बाद गुदा अंग भी कोमल होता है इससे सुई आने में कोई कठिनाई ही नहीं हुई।'

डाक्टर नत मस्तक हो गया।

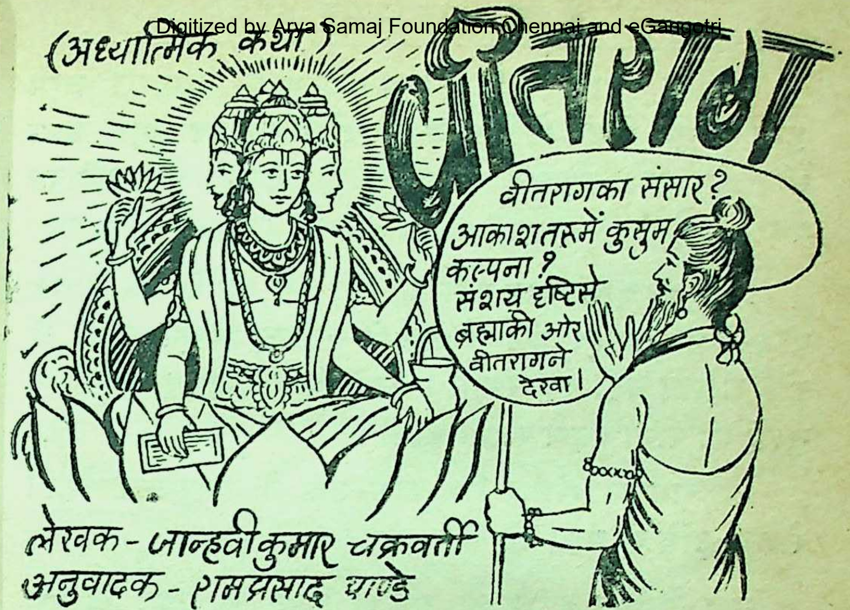
वीतरागका संसार?
आकाशतरुमें कुसुम कल्पना?
संशय दृष्टिसे ब्रह्माको ओर वीतरागने देखा।

(अध्यात्मिक कथा)

# वीतराग

लेखक - जान्हवीकुमार चक्रवर्ती
अनुवादक - रामप्रसाद पाण्डे

'कौन हो तुम ?'

'आप की पत्नी ।'

'मेरी पत्नी ! मेरा तो संसार नहीं है ।'

'क्या आपका संसार नहीं था ?'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'भक्तिलता ।'

'भक्तिलता—चकित हुए विषय-विरागी वीतराग ।

यह बहुत पहले की बात है ।

सृष्टि के प्रथम लग्न में ब्रह्मा के वक्ष से वीतराग का जन्म हुआ था । चीवर धारी दंडी–चेहरे पर वैराग्य की सुकठिन दीप्ति । सृष्टि को मानो स्वप्न जैसा देख रहे हों ।

ब्रह्मा ने कहा था—'मेरी शुद्ध तपस्या से तुम्हारा जन्म हुआ है, तुम विषय विविक्त वैराग्य हो। तुम्हारा नाम हुआ वीतराग। माया-मोह के संसार में तुम वैराग्य की वाणी का प्रचार करो।'

ब्रह्मा की वाणी शेष नहीं हुई थी, हंस उठे थे परमानन्द बीज-कृष्ण। मधुर कंठ से बोले थे—वत्स, मिथुन सृष्टि में कोई अकेला नहीं रह सकता। सस्त्री कृष्ण जगत् सर्वम्—तुम्हें भी पत्नी ग्रहण करनी होगी।

वीतराग का संसार! आकाश-तरु में कुसुम-कल्पना! संशय-दृष्टि से ब्रह्मा की ओर वीतराग ने देखा।

मुख से कुछ कहने से पूर्व ही कृष्ण के उदर से एक नारी का जन्म हुआ—अपूर्व स्त्री मूर्ति। प्रेम के पुलक में रोमांचित तनु, अश्रुपूर्ण नयन, भाव से गदगद कंठ। हाथ जोड़ कर वह कृष्ण के समक्ष खड़ी हुई। स्वप्नावेशमय सजल नयन-मानो मूर्तिमती सेवा और करुणा हों।

पल में भक्ति की मधुर रागिनी सृष्टि में बज उठी, जैसे प्रेममय कृष्ण के हृदय-राग से बज उठी हो मधुर रागिनी। भक्ति से गदगद हो हाथ जोड़ खड़े हुए गंधर्व, किन्नर, विद्याधर। स्मित हास्य से कृष्ण बोले—'भक्ति के आवेश में मेरे हृदय से इसका जन्म हुआ, आज से इसका नाम पड़ा भक्तिलता। वैराग्य साधना की सहायिका वह वैराग्य श्री है, आज से वह वीतराग की पत्नी हुई।

धीरे-धीरे सुकन्या वीतराग के पास जा खड़ी हुई थी।

निस्पृह वीतराग ने अनिच्छा रहने पर भी उसे ग्रहण किया था, किन्तु सिर उठाकर के कभी उसकी ओर देखा नहीं। वह जानते-अनर्थ का मूल योषित् कुल है। अनादि नित्या माया की सहचरी सब हैं। किसी भी समय उन्हें पथ-भ्रष्ट कर सकती है नारी।

इसी से रमणी को वह रूप के मलपिंड रूप में देख रहे थे। अस्थि-मांस-मज्जा की पंजर-एक पंक पिण्ड। नारी-देह श्लेष्मा कृमि का आगार, वीभत्स है। मायामोह में वह सुन्दर दीखती है, मालूम पड़ता है-रूप की लहरी उसकी देह में है, रस की माधुरी उसके मन में है।

घृणा से वीतराग ने मुह फिरा लिया था। नारी के रूप ने उनकी दृष्टि में कभी मोह सृष्टि नहीं की। वह निर्मोह, उन्होंने सोचा है--दो दिन का खेल यह संसार है, पांथशाला में जैसे पथिक एकत्रित होते हैं, वैसे ही यहां पति-पत्नी मिलते हैं। इसके बाद सुख-रात्रि का स्वप्न टूट जाता है, दुरन्त काल के कवल में तत्क्षण मिल जाती है माया-घोर मायाविनी नारी। वह जादू जानती है।

घृणा से मुख वक्र कर लिया था वीतराग ने। भक्तिलता की ओर मुख फिरा कर भी नहीं देखा-सोचा भी नहीं-कहां से सेवा यत्न, कहां से समयानुसार आसन, पाद्य-अर्घ्य मिलते हैं। नारी की सेवा-यत्न से मुखरित प्राण का संसार में क्या मूल्य है, वीतराग ने यह कभी नहीं सोचा।

उनके मन में केवल एक चिन्ता थी--संसार असार, विषय विष, नारी नरक का द्वार है अनेक क्लेश का कारण

यह जीव-जन्म है। दुःख। चारों ओर केवल दुःख का जाल बिछा है। जन्म से मृत्यु पर्यन्त केवल भोग, दुर्गति-केवल दुख का बन्धन है दुःख अर्थ, दुःख पत्नी, दुख विषय-भोग। एक मात्र सुख, ज्ञान, विषय-वैराग्य, ब्रह्म-चेतना। आनन्द का आनन्द सन्यास है।

इसीसे एक दिन गंभीर रजनी में सन्यास लिया था वीतराग ने। निद्रित पत्नी को घर पर छोड़ संसार त्याग दिया था। वह गृहस्थ नहीं, गृहिणी के रहते हुये भी उसका अस्तित्व किसी दिन स्वीकार नहीं किया। तो भी एक दिन सब बन्धन तोड़ वीतराग घर से निकल पड़े।

यह बहुत पहले की बात है। अभी वह कठोर सन्यासी। अज्ञानांध जीव के नयन में ज्ञानांजन लेपन करना ही कर्म त्यागी वीतराग का धर्म है। अधोवास चीवर, ऊर्ध्ववास गैरिक वसन-मुण्डित मस्तक या हाथ में ज्ञानयष्टि, मुंह में मोह मुद्गर—का तव कान्ता कस्ते पुत्रः।

आज इस घोर कलि में उनके काम बढ़ गए हैं। कलि के प्रकोप से मनुष्य धर्माधर्म बोध शून्य-अति प्रबल उनकी विषय-तृष्णा उनके लिए सत्य है यह मिथ्या संसार, चरम सत्य मदिर-नयना अंगना का आकर्षण। रूपसी की देह मानो रूपनगर की भोगवती—उस भोग में प्रमत्त जीव हैं। वे भूल कर भी नहीं सोचते—जगत मिथ्या, जीवन मिथ्या, अति नश्वर भोग देह है। वीतराग जानते हैं-यह मोह गंधर्व कलि की इन्द्रमाया है। उसके प्रताप से चतुष्पद धर्म के त्रिपद भग्न हुए। अवशेष केवल एक पद है। माया धर कलि

प्राणपण से उसे भी विनष्ट करने की चेष्टा में रत है। तब आशा है कि कलि के दर्प चूर्ण करने संभल ग्राम में अवत्तीर्ण होंगे भगवान् के अंशावतार। कलि में रक्तक्षरा संग्राम होगा। वीतराग को भी उस साधन-समर में योग देना होगा। इसीलिये वह प्रस्तुत हो रहे थे। सहसा सामने यह बाधा उठ खड़ी हुई।

विरक्त हुये वीतराग। शुभ काम के अंतराल में कौन जाने, यह मायाधर कलि का ही कौशल हो! मोहिनी नारी कलि का प्रधान अस्त्र। नारी को असाध्य कुछ नहीं। सिर उठाकर उन्होंने नहीं देखा। आश्रम तरु की ओर मुख रख गंभीर कंठ से बोले विरक्त वीतराग,—'बहुत दिन हुये मैंने संसार त्याग कर दिया है।'

भक्तिलता आकुल भाव से बोली,—'यद्यपि आपने संसार छोड़ दिया है, तथापि संसार ने आपको नहीं छोड़ा है स्वामी। मैं पागल हो आपको खोजती फिर रही हूं।'

'व्यर्थ है यह अनुसंधान।'

'व्यर्थ क्यों? आप ही मेरे पति हैं। पति का आश्रय ही पत्नी का आश्रय है।'

'पतित्व से मैं विरक्त हूं, पत्नी बंधन है।'

'पत्नी क्या केवल बंधन है? पत्नी क्या केवल पतन का द्वार है?'

'शास्त्रों का यही कथन है।'

'शास्त्र में यह भी कहा गया है कि साध्वी पत्नी धर्म-

निष्ठा की सहायिका होती है। भार्या से ही चतुर्वर्ग साधना होती है।'

'यह विधान उनके लिये है जो सांसारिक हैं।'

स्वामी की बात हृदय में वज्र की तरह लगी। आकु हो उठी भक्तिलता। वीतराग ने ग्राह्य भी नहीं किया। शुष् कण्ठ से बोले,—'वैरागी का गृह नहीं होता, उसके सा गृहिणी नहीं होती, उसके साथ केवल त्याग होता है विस्मय से भक्तिलता ने स्वामी को देखा, उनकी ओर देख हुये बोली,—'कर्म का त्याग ही त्याग है, निष्काम कर्म सन्यास है। संसार मिथ्या नहीं है। प्रेममय भगवान् क प्रेमांश यह संसार है, आनन्द का अंश जीव है। जीव आनन की बात भूल जाता है, दुःख पाता है। जीव आज दुःखी है दुःखी जीवों की उपेक्षा करके मनुष्य सुख की कल्पन करता है।'

भक्तिलता के नील नयन कांप रहे थे, अधर फड़क र थे। उसने पुनः प्रश्न किया,—'कुछ नहीं रहने से क्य त्याग करोगे स्वामी? कर्म बिना यह संन्यास कैसा प्रभु? रा बिना वैराग्य कैसा?'

क्रोध से कठिन हो उठे वीतराग। शुष्क वैराग्य चि कठिन है। वज्र स्वर में वे बोले,—'तुमने माया को ही सत माना है भामिनी। ज्ञान की दृष्टि में संसार मिथ्या है। य छोड़ दोनों का अस्तित्व नहीं, दोनों केवल भ्रांति हैं। भक्तिलता प्रतिवाद करते हुये बोलीं,—'एक जिस प्रका सत्य है, दूसरा भी उसी प्रकार मिथ्या नहीं है स्वामी। ए

ही कांचन की अनेक मूर्तियां होती हैं—कटक, कुंडल। कुंडल तो उससे भिन्न नहीं है। एक ही प्रकाश दोनों में-बहुतों में है। यदि दोनों नहीं रहते, कौन किसको जानता प्रभु? दोनों हैं, इसीसे सुर्य प्रकाश देता है, चांद सुधा बरसाता है। दोनों हैं, इसीसे स्नेह, प्रेम, प्यार में संसार सुन्दर हो उठता है। दोनों यदि नहीं होते, जगत् में अंधकार हो जाता। मिथ्या होती सेवा, सख्य, भक्ति, प्रीति। मिथ्या होती भगवान् की लीला।'

गंभीर कंठ से वीतराग बोले—'यह युक्ति भ्रांत द्वैतवादियों की है। ब्रह्म की कोई लीला नहीं होती। ब्रह्म निर्विशेष, निर्गुण, निराकार है।' मधुर वाणी में भक्तिलता ने उत्तर दिया, —'सविशेष लीलामय भगवान्—वे ही निर्विशेष निर्गुण, निराकार प्रभु हैं। अनन्त असीम उनका विशेषत्व—इसीसे वे निर्विशेष, अनन्त, असीम उनकी गुणावली—इसीसे वे गुण सीमा के अतीत हैं लीला में विभोर हैं वे, मत्त, अलि की तरह निष्कंप, इसीसे वे निर्विकार मालूम पड़ते हैं।'

विस्मित हुये वीतराग! यह भ्रांत मत कहां से सीखा इस नारी ने? अथवा यह कलि का कौशल है? माया-संभूति के बल पर वह मतिभ्रष्ट, पथ भ्रष्ट करना चाहती है?

रुक्ष कंठ से बोले,—'चुप करो। निश्चय मायाधर कलि की सहयोगिनी तुम हो। उसी की प्रेरणा से मुझ पर आक्रमण कर रही हो। सुनो योगिनी, वैराग्य का कोई मोह नहीं होता। वैराग्य मोहमुक्त, निर्मम, कठिन—वैराग्य रिक्त होता है।'

'वैराग्य रिक्त नहीं होता प्रभु ! वैराग्य कृपण होता है।

वैराग्य की कठोर दीप्ति से आरक्त हुये वीतराग, दुर्ज क्रोध से स्तब्ध रहे। उनके पैरों पर गिर पड़ी भक्तिलता वीतराग दो कदम पीछे हट गये। नतजानु हो आकुल कं से भक्तिलता ने कहा,—'मुझ पर दया करिये प्रभु, मे नाम भक्ति है। भक्ति के लिये आकुल मन है। अपनी भक्ति करने का अधिकार मुझे दीजिये।' भक्तिलता कांपती रही तो भी वीतराग का हृदय द्रवीभूत नहीं हुआ। नारी की ओ फिरकर भी नहीं देखा।

वीतराग ने कहा, —'ज्ञान-भ्रष्टा मत बनो कामिनी।'

भक्तिलता करुण कंठ से बोली, —मैं ज्ञान नहीं चाहती प्रभु ! ब्रह्मसायुज्य नहीं चाहती। अन्ध भक्ति में मेरी आस्थ नहीं है। मैं चाहती हूं कि जो भक्ति का पात्र है उसके चरण पर अपनी भक्ति अर्पित कर दूं।' वज्र की तरह सुगंभी वाणी में वीतराग ने कहा,—'पथ छोड़ दो नारी।'

'पथ नहीं छोड़ूंगी—नहीं छोड़ूंगी। यदि जाना ही तो मेरे वक्ष से वैराग्य का रथ चला जाय।'

वही हुआ। ममता रहित नीरस ज्ञान। भक्ति की उपेक्ष कर दृढ़ पदक्षेप से बढ़ गये रुद्र कठिन वीतराग, जैसे कमल मृणाल को दलित कर बढ़ जाता है शक्तिधर मातंग।

आश्रम की धूल में लुंठित हो पड़ रही भक्तिलता। स्वामी उसका इतना निष्ठुर ! नयनों में आषाढ़ की धारा जै अश्रुकण उतर आये। वेदना में हृदय विदीर्ण होता गया।

क्या वह करेगी, और किसके आश्रय में जायेगी ?

धीरे उठ बैठी भक्तिलता। अनेक क्षणतक सोचती रहीं। दिन पर दिन बीतने लगे, ऋतु परिवर्तन होता गया। युग पर युग बीत चले। किन्तु पति के ध्यान में ही तन्मय रहती भक्तिलता। हृदय में वह रुद्र, कठोर मूर्ति तिर जाती-वैराग्य गैरिक वसन पहने, हाथ में ज्ञान-दंड लिये पतिदेव। पत्नी को वह घृणा की दृष्टि से देखते हैं, देखें, उनकी जो इच्छा वही करें। भक्ति प्रतिदान नहीं चाहती, इसी से पति के ध्यान में विभोर भक्तिलता है।

सहसा एक दिन अवाक हुई भक्तिलता। कोई मानो पति की मूर्ति के पास खड़ा हो। स्वामी की मूर्ति की आड में करके वह मूर्ति सामने आकर खड़ी हुई। क्या सुन्दर! नवीन नीरद जैसा विनोद अंग, चिरकिशोर की चारु मूर्ति। दृग में मधुर अवलोकन। क्या कोमल? क्या करुण? मधुर! मधुर!

दृष्टि फिरा नही सकी भक्तिलता, मानों रस में आविष्ट षट्पद हो। केवल कानों में मोहन मुरली की आवाज आती रही। मधुर सुर में झंकार दे कोई बोल रहा हो,-'भक्ति कौन तुम्हारा पति है? किसकी दुहिता तुम हो? तुम मेरा हृदय, मेरी ही नित्य-प्रिया हो। देखो तो, मुझे पहचान पाती हो?'

देह सिहर उठी। पुलकांचित तनु। समस्त रोमकूप व्रण जैसे रंग गये। स्वेद कण झरने लगे। विस्फारित अश्रु-सजल नयन। कैसी मानो होती गयीं भक्तिलता। विवश अंग। वह कौन हैं। स्वप्न जैसा स्मरण हुआ सृष्टि का प्रथम-लग्न। इनके

ही हृदय में एक दिन वह लीन हुई थी। आलिंगन में ब हुई थीं दुहिता जैसी। वे ही भक्ति के पति हैं। यह कया क रही हैं भक्तिलता ? इतने दिनों से किसे पति मानती आ र हैं, किसकी भक्ति करती रही हैं ? किसके चरणों पर आत्म निवेदन करने को बढ़ी हैं ? विश्व के पति–विश्वरंजन कृ हैं। वे ही सकल के स्वामी, दयित हैं।

भक्तिलता का अन्तर उनके रूप में जगमग हुआ। श्याम श्याम–सुन्दर मुख में मृदु हंसी, नयनों में आवेशमय दृ दो भुजाओं को बढ़ा के व्याकुल भाव से भक्तिलता पुकारत रहीं।

आवेग से कंठ अवरुद्ध होता गया, कातर कंठ से भक्ति लता बोलीं, स्वामी। दयित !। कोई उत्तर नहीं मिलता फिर भी निरस्त नहीं होतीं भक्तिलता।

सहज कृष्णरति बहुत दिनों के बाद उदास हो उठी, मा निर्बाध रुद्ध निर्झर। भक्ति के पति की चिन्ता छोड़ अन्तर बैठ गई परम पति की मूर्ति। किन्तु कहां है वह ? एक बा दिखाई पड़े वह कहां गए ?

पागल की तरह भक्तिलता खोजती, पागल की तर पुकारती, 'दिखायी दो, कहां गए। अहो दयित।

परम आकुलतामयी प्रेम भक्तिलता व्याकुल पागल हुई उसे और कोई चिन्ता नहीं। एकाग्रमन, एक चिन्ता विभोर। मुख से केवल एक वाणी निकलती—अहो प्राणप अहा प्रियत्तम आओ, आओ। मुझे हृदय से लगा लो।

बद्ध उन्मत दशा। अधीर क्रंदन। मत विजल्प। आका

पवन, लता, पल्लव, पुष्प, भ्रमर-झंकार में श्यामसुन्दर का स्वप्न। यही मालूम पड़ता—वे आये हैं कुटि प्रकाश से जगमगा उठी है, यही मालूम पड़ता--वे चले गए, अंधकार से भरा जगत है।

वैराग्य-श्री से प्रदीप्त भक्तिलता। अन्तर श्याममय। निखिल भुवन, श्याम तपोवन श्यामल में श्यामल।

बहुत दिनों के बाद आश्रम में प्रवेश किया तपोधीश वीतराग ने--निर्मम, निर्मोह, निर्बांधव। प्रवेश करते ही देखा कि आश्रम प्रकाशमय हो गया है। सविस्मय वीतराग ने देखा। 'वह कौन ! भक्तिलता !'

नारी के प्रति किसी दिन दृष्टि उठाकर उन्होंने नहीं देखा था। आज बिना देखे नहीं रह सके। क्या अपूर्व दीप्ति। आकाश फोड़कर चन्द्रलोक पृथ्वी पर उतर आया है। रूपसी क्या मोहिनी है ? केवल माया ? यह तो प्रदीप्त वैराग्य-श्री है। किसी ओर चेतना नहीं। 'स्वामी' बोलते अधीर है भक्तिलता।

विस्मित हो वीतराग ने पुकारा—'भक्तिलता !'

'कौन, कृष्ण।'

'मैं तुम्हारा स्वामी।'

'मेरे स्वामी।—विमूढ़ की तरह भक्तिलता ने देखा। शून्य उदास दृष्टि उठा कर देखती रहीं। इसके बाद उन्माद जैसी हंसी, इसके बाद रोती रही। पर क्षण ही समस्त देह पुलक से रोमांचित हो उठी, आपादमस्तक स्वेद कण फूट पड़े। अश्रु-उच्छ्वास में गदगद कंठ से बोली--मेरे स्वामी कृष्ण श्यामसुन्दर। वही तो, वही हैं। क्या करुण। क्या

कोमल, क्या प्राणमय। कृष्ण मेरे स्वामी।

मूर्छित हो पृथ्वी पर पड़ रहीं भक्तिलता। नयन, हो कांपते रहे। श्वास-प्रश्वास में अब नाम छन्द में अद्भु कंपन। इसके बाद स्तब्ध, जड़ीभूत हुई देह-शिथिल अंग-प्रत्यंग, मानो कृष्णानन्द में मूर्छित भक्ति-तरंगहीन निष्कंप।

भक्ति संक्रामक।

विषय-विविक्त वीतराग के नयनों में ममता के अश्रुजा गए। प्राणपण से चेष्टा करके भी अश्रु रोक नहीं सके। भक्ति का वैराग्य उन्हें रुलाने लगा, मतवाला बना छोड़। उन्हें ऐसा लगा कि रंजिनी भक्ति का गंभीर अनुराग मानो सबक विराग को विलीन कर प्रेम का एक राग भुवन में फैला रह हो भक्ति जैसा गंभीर वैराग्य है क्या?

इसी भक्ति के छन्द में छन्दित भारत के प्राण हैं।

( ब्रह्मवैवर्त और कल्कि पुराण के अवलम्बन से। )

धर्म + संस्कृति + उपासना और ज्ञान का
प्रचारक मराठी मासिक
श्रीधर संदेश
वार्षिक चंदा रु. ४) ( वी. पी. की पद्धत बंद है।)
श्रीधर सन्देश कार्यालय
७२२, सुन्दर नारायण, नासिक शहर

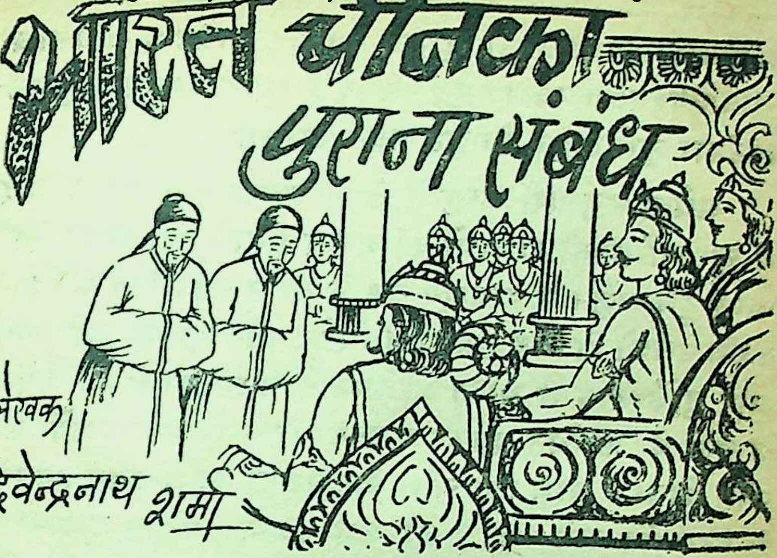

# भारत चीन का पुराना संबंध

लेखक
देवेन्द्रनाथ शर्मा

गत २० अक्टूबर १९६२ को चीन ने जो भारत पर आक्रमण किया था उसे हम शायद ही शदियों तक भूल सकेंगे। हमारे राष्ट्रपति ने उस समय संविधान की धारा ३५२ / १ के अन्तर्गत गंभीर आपात स्थिति की घोषणा कर दी थी की जिसे संसद के दोनों सदनों ने स्वीकृति प्रदान की।

आज का चीन बौद्धकाल में भारत का शिष्य रहा है। चीन का अधिकांश भूभाग भारत के ही कब्जे में था। इतना ही नहीं चीन निवासी भारतीयों के गुलाम तक रह चुके हैं जिसका वर्णन भारतीय ग्रन्थों में है।

वाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में हर्षवर्धन का उद्बोधन करते समय जहां अन्य बातें कही हैं वहीं पर यह भी कहा है--

शरासन द्वितीयः करदीचकार चक्र क्रमागतः। भुज बला-

भिजनधनमदावलिप्तानां भूभुजां पाण्डुः । पाण्डवः सव्यसाची चीनविषयमतिक्रम्यराजसूय संपदे । क्रुध्यद्गन्धर्व धनुष्कोटिटंकार कूजितकुंजं हेमकूट पर्वतं पराजेष्टः ।'

अर्थात् धनुर्धारी पाण्डु ने वंशपरम्परागत भुजबल के मद में चूर अभिमानी राजाओं को अपना गुलाम बना लिया और पाण्डु पुत्र अर्जुन ने राजसूय यज्ञ के समय चीन देश को पार करके उसको रौंदकर हेमकूट (बोलोर पर्वत श्रृंखला, जो चीन और तुर्किस्तान से भारत को सम्प्रति अलग करती है) पर्वत के वनों में क्रोधित होकर धनुषटंकार करनेवाले गन्धर्वों को जीत लिया।' आज वही चीन हिन्दुस्तान का भू-भाग हड़पने के लिये मुंह बाये खड़ा है जो कभी हमारे सम्मुख नतमस्तक था और बाद में हमारी आध्यात्मशक्ति के समक्ष जिसने आत्मार्पण करके हमें अपना गुरु बनाया था। हमारे धर्म में दीक्षित हो गया। जब यह चारों ओर से थपेड़े खा रहा था तो सर्व प्रथम हमने ही इसके नये रूप लाल चीन को मान्यता दी। राष्ट्रसंघ में इसके लिये अपने मित्रों को नाराज किया। हिन्दी चीनी भाई भाई का उद्घोष किया। उसी चीन ने भाई कहकर हमारे साथ विश्वासघात किया।

बाणभट्ट द्वारा इंगित चीन और हैमवत पर्वत श्रृंखला पर अर्जुन द्वारा विजय प्राप्ति और इनको अपना करद राज्य बनाये जाने का उल्लेख केवल कवि कल्पना नहीं, यह इतिहास सिद्ध सत्य है। महाभारत के सभापर्व में उन राजाओं और राज्यों की सूची दी गयी है जिन्होंने राजसूय यज्ञ के समय आकर युधिष्ठिर को भेंट अर्पित की। इन देशों

में चीन का स्पष्ट उल्लेख है--

चीनान् हूणान् शकान्-ओड्रान् पार्वतान्तर वासिनः ।
वार्ष्णयान् हारहूणांश्च कृष्णान् हैमवतांस्तथा ।.
(अध्या० ४७ श्लोक १९)

इस श्लोक का अर्थ वही है जो बाणभट्ट ने बताया है। चीन अर्जुन द्वारा विजीत और आधीन राज्य था। अर्जुन द्वारा विजीत अधिपतियोंने भारतीय सम्राट युधिष्ठिर के चरणों में जो वस्तुएं भेंट कीं उनका उल्लेख इस प्रकार है--

कृष्णग्रीवान्महाकायान् रासभान्-शतपातिनः ।
आह्वार्षुर्दशसाहस्रान् विनीतान् दिक्षुविश्रुतान् ॥
प्रमाणरागस्पर्शाढ्यं बाह्ली-चीन-समुद्भवम् ।
और्णंच संकलं चैव कीटजं पट्टजं तथा ॥

--काली गर्दनवाले दशहजार ऐसे खच्चर थे जो एक दिन में सौ कोस चल सकते थे। बकरे के रोएं के बने वस्त्र, (ऊनके रंकु) और पाराम्बर भी थे। कीटज अर्थात् रेशमी वस्त्र भी थे। 'प्रमाण-राग-स्पर्शाढ्य' अर्थात् श्रेष्ठ रंग के और ठीक नाप के वस्त्र थे। अथवा चीनी भेंट देने के लिये जो ऊनी और रेशमी वस्त्र लाये, वह ठीक नाप के बनवा के लाये। ठीक नाप का अर्थ दुपट्टा, पगड़ी, शाल आदि उस युग में नित्योपयोगी वस्त्र भी हो सकता है और यह भी हो सकता है कि वे पाण्डवों के लिये उनके शरीर पूरे तौर से समा जानेवाले ठीक नाप के कपड़े बनवाकर लाये। यहां यह भी स्मरणीय है कि भेंट में लायी इन वस्तुओं का विवरण

राजसूय यज्ञ के अवसर पर दुर्योधन धृतराष्ट्र को बतर
रहा है।

श्री जयचन्द्र विद्यालंकार ने 'यू-शी' लोगों को ऋषि
माना है। 'यू शी' लोगों का उल्लेख इतिहास में उत्तर-
पच्छिमी चीन के कांसू प्रदेश में प्राप्त है। डाक्टर मोतीच
की विवेचना के अनुसार अर्जुन ने कांबोजों की मदद से दर
को जीतकर लोह, परम कांबोज, ऋषिक और परमर्षि
राजाओं को गहरी हार दी। महाभारत में चीन, हूण, श
और ओड्रों का क्रमश: उल्लेख है। हूणों के उल्लेख से अधि
कांश व्यक्ति भ्रम में पड़ जाते हैं कि यह वही हूण होंगे
जिन्होंने गुप्त साम्राज्य का अन्त कर डाला था। पर महाभार
के हूणा न तो सम्भवतः गुप्त कालीन हूण थे और न इनकी
खोज वर्तमान भारत की सीमा के अन्दर करनी चाहिए।
हूण चीन की उत्तरी-पश्चिमी सीमा पर निवास करने वा
हयूंग्नू थे; जिनसे बचने के लिए हान राजाओं ने चीन की
दीवार बनाई। अर्जुन की दिग्विजय यात्रा पर दृष्टिपा
करने के पश्चात् यह प्रतीत होगा कि लोह, कांबोज तथ
दास्यगणों की स्थिति उस प्रदेश में रही होगी जिसे ह
आज 'सोवियट-रिपब्लिक' के नाम से अबगत हैं। यह प्रदे
आज से कुछ ही वर्षों पूर्व तक बखान, शिग्नाम, रोशनदवी
आदि छोटे छोटे राज्यों में विभक्त था। मोतीचन्द जी
दृढ़ विश्वास है कि महाभारत से प्रकट होता है कि भारतव
की सीमा उक्त समय पूर्वी अफगानिस्तान तथा वंक्षु के पा
के प्रदेशों तक थी। अर्जुन अपनी दिग्विजय यात्रा में जि

मार्गों से आगे बढ़े और वापस लौटे, उन मार्गों की खोज महाभारतीय भूगोल के आधार पर विदेशी विद्वानों ने भी की है। महाभारत में बतलाया गया है कि....अर्जुन कांबोजों की मदद से दरदों को जीतकर उत्तर की ओर बढ़े। (सभापर्व-२४, २२) बाशें को जीतकर उसने दरद और कांबोज की संयुक्त सेना को और दस्य जनपदों को जीतते हुए लोह, परम, कांबोज, ऋषिक तथा परम ऋषिक राजाओं को उन्होंने गहरी हार दी। (सभापर्व २४, २३, २५ और स. प. २३, २१) तत्पश्चात् उत्तर की ओर आगे बढ़े। निःसन्देह कांबोज प्रदेश न तो चित्राल था और न काबुल। वह प्राचीन पामीर प्रदेश था, जैसा कि जयचन्द्र जी ने बतलाया है। अब हमें देखना है कि अर्जुन ने बाल्हीक से उत्तर की ओर जाने के लिये कौन सा मार्ग अपनाया। इस प्रश्न का दारोमदार बल्गु शब्द की पहचान में है। विचार करने पर पता चलता है कि बल्गु पूर्वी अफगानिस्तानी बलगान नदी ही है।

वक्षु प्रदेशों के निरीक्षण करते हुए वुड और लार्ड नामक अंग्रेज अफ़सरों ने उस रास्ते की जांच पड़ताल की जो कुंदूज से दक्षिण की ओर कुंदूज नदी के साथ साथ कुंदूज और बलगान के संगम तक जाता है। वहां तक पहुंच कर वे लोग नदी के ऊपर चलते हुए मुर्गदर्रे से होकर अंदराव की घाटी आये और फिर पूर्व की ओर होते हुए खावर के दर्रे को पार करते हुए पंजशीर घाटी पहुंचे और वहां से काबुल। क्यों कि यह रास्ता कठिन नहीं था। वक्षु और काबुल के बीच

केवल दो दर्रे मिले, जो इतने ऊंचे न थे कि उनसे को कठिनाई पड़ सके। (होलिडशदि गेटस आवइण्डिया पृ.४३५) सम्भवतः अर्जुन इसी रास्ते से श्वेत पर्वत जिसे सफेद कोह भी कहते हैं लौटे लेकिन उत्तर में परम कंबोज तथा ऋषिको से लड़ने जाते हुए उन्होंने बलगान का रास्ता छोड़ दिया, नहीं तो वे सीधे काबुल पहुंच जाते। वे सीधे उत्तर की ओर बढ़े और लड़ाई में काबोजों को दरदों के साथ हराया। (होलिडश पृ० ४३५) जयचन्द्र विद्यालंकारजी ने अपनी पुस्तक 'भारतभूमि और उसके निवासी' के पृष्ठ ११३-१४ में गल्चा बोलनेवाले यारनोबियों से की है जो यान्नुब नदी के ऊपरी हिस्से में पामीर के उत्तर में रहते हैं। आप ने 'यू-शी' लोगों की पहचान ऋषिकों से की है। ऋषिकों का पता उत्तरी पश्चिमी चीन के आंसु प्रदेश में प्राप्त होता है।

आपके विचार में भारतीय साहित्य में चीन एक नस्ल का बाधक है। खास चीन के लिये उसका व्यवहार सभापर्व में हुआ है। चीन के लोग आसाम के राजा भगदत्त की फौज में थे (सभापर्व २३। -१९)।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत का चीन पर परम्परागत संबंध रहा। वहाँ के लोगों की विचार धारा को मोड़ देने में हमारा सहयोग था।

# रामचरित मानस

## (रामायण)

टीकाकार-
योगीराज
श्री उमेशचन्द्रजी

(गतांक से आगे)

रूख बदन करि वचन मृदु, बोले श्री भगवान;
तुम्हरे सुमिरनते मिटहिं, मोह मार मद मान।

(नारद के कथन में गर्व का अंश देखकर) श्री भगवान् ने रूखे-शुष्क मुंह से मृदुल ढंगसे कहा— हे मुनिवर ! तुम्हारा नाम याद करके ही लोग मोह मार (काम), मद, मान आदि के विकारों से अनायास मुक्त हो सकते हैं।

सुनु मुनि मोह होय मन ताके,
ज्ञान-विराग हृदय नहिं जाके,
ब्रह्मचर्य व्रत-रत मतिधीरा,
तुमहिं कि करहि मनोभव पीरा।

हे मुनिवर ! सुनो मोहादि विकार उसीको घेर सकते हैं, जिसके हृदय में ज्ञान-विराग आदि का लेश मात्र भी नहीं। तुम तो ब्रह्मचर्य-व्रत के कठोर साधक और धीरमती अर्थात्

स्थिरबुद्धि हो, तुम्हें भला कामदेव प्रभाव-पीड़ने द्वारा मार्ग से विचलित कर सकता है ? कभी नहीं।

नारद कहेउ सहित अभिमाना,
कृपा तुम्हारि सकल भगवाना,
करुणानिधि मन दीख विचारी,
उर अंकुरेउ गर्व-तरु भारी ।

नारदजी ने अहंकार पूर्वक कहा—हे भगवन् ! आपकी कृपासे ही यह सब हुआ है। करुणानिधि भगवान् ने मन में विचार करके देखा कि नारदजी के हृदय में अभिमान का अंकुर फूट चुका है और यह कालान्तर में विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हो जायेगा।

वेगि सो मैं डारिहौं उपारी,
प्रण हमार सेवक हितकारी,
मुनिकर हित मम कौतुक होई,
अवशि उपाय करब हम सोई ।

इसको मैं तत्काल-अंकुरित अवस्था में ही उखाड़ फेकूंगा। मेरा प्रण है—मेरा शुभ संकल्प है कि मैं अपने सेवक-भक्त का हित साधन करूं। मुनिवर की भलाई हो और मेरा एक तमाशा हो, अवश्यमेव वैसा ही उपाय करूंगा।

तब नारद हरि-पद शिरनाई,
चले हृदय अहमिति अधिकाई,

श्रीपति निज माया तब प्रेरी,
सुनहु कठिन करनी तेहि केरी।

तब नारदजी प्रभु के चरणों में शिर झुकाकर चल पड़े। उनका हृदय अहंकार से अधिकाधिक भरता जा रहा था—प्रतिक्षण उसमें अभिवृद्धि हो रही थी। इसी समय भगवान् ने अपनी माया को भेजा। उसने जो कठिन करनी—भयंकर आयोजन किया, वह सब सुनो।

बिरचेउ मगमहुँ जाय तेहि, शतयोजन विस्तार,
श्रीनिवास पुरते अधिक, रचना विविध प्रकार।

रास्तेमें—जिसपर नारदजी आ रहे थे—उस माया ने एक नगर का निर्माण किया, जिसका विस्तार १०० योजन तक था और विविध प्रकार की रचना श्रीनिवासपुर—वैकुण्ठ से भी अधिक रमणीय थी।

बसहिं नगर सुन्दर नर-नारी,
जनु बहु मनसिज रति तनुधारी,
तेहि पुर बसै शीलनिधि राजा,
अगणित हय गज सेन समाजा।

उस नगर में सुन्दर नर-नारी निवास करते थे, मानो अनेकशः कामदेव और रति स्वयं शरीर-धारण कर यहां रहते हों। इसी नगर में शीलनिधि नामक राजा भी रहता था, जो अगणित अश्व, हाथी, सेना, परिजन, पुरजन-समाज से परिपूर्ण था।

शत सुरेश-समविभव-विलासा,
रूप-तेज-बल-नीति निवासा,
विश्व मोहिनी तासु कुमारी,
श्री-बिमोह जेहि रूप निहारी।

जिसका वैभव विलास—ऐश्वर्य और सुख-साधन शत सुरेश--इन्द्रों के समान था। वह रूपवान् था, तेजस प्रतापी था, नीतिनिपुण था। उसी राजा को विश्वमोहि नाम की कन्या थी, जिसका रूप-माधुर्य स्वयं लक्ष्मी को मोह-मुग्ध बना देनेवाला था।

सो हरिमाया सब गुण खानी,
शोभा तासु कि जाय बखानी,
करै स्वयंवर सो नृपबाला,
आये तहँ अगणित महिपाला।

भगवान् की वह माया सब गुणों की खानि है, उस दिव्य शोभा, उसके सौंदर्य का वर्णन कौन कर सकता है ? वह नृपबाला--राजकन्या के स्वयंवर का आयोजन हुआ है औ वहां देश-देशान्तरों के अगणित महिपाल एकत्रित हुए।

मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ,
पुरवासिन सन बूझत भयऊ,
सुनि सब चरित भूपगृह आये,
करि पूजा नृप मुनि बैठाये।

कौतुकप्रिय मुनि नारद कौतूहलवश ही उस नगर में पहुंचे और पुरवासियों से पूछताछ की। सब बातें जान लेने पर वह राजा के महल में गये। राजाने मुनिवर को आदर-सम्मानपूर्वक बैठाया।

आनि दिखाई नारदहिं, भूपति राजकुमारि,
कहहु नाथ गुण-दोष सब, इहिकर हृदय बिचारि।

राजाने अपनी राजकुमारीको लाकर नारदजीको दिखलाया और कहा--हे मुनिवर, हृदय में विचार करके इस कन्या के गुण-दोष बताने की कृपा करो।

देखि रूप मुनि विरति बिसारी,
बड़ी बार लगि रहे निहारी,
लक्षण तासु विलोकि भुलाने,
हृदय हर्ष, नहिं प्रकट बखाने।

राजकन्या का रूप देखते ही मुनिवर नारद समग्र संचित ज्ञान-वैराग्य सब भूल बैठे। बहुत देरतक उस कन्या को एकटक देखते रहे और उसके लक्षणों को अवलोकन करने के बाद तो वे आत्म-विस्मृत ही हो गये--वे अपने आपको ही भुला बैठे। उनका हृदय प्रसन्न हो उठा, परन्तु उन्होंने प्रकट रूप में कुछ नहीं कहा।

जो यहि बरै अमर सो होई,
समरभूमि तेहि जीत न कोई,

सेवहिं सकल चराचर ताही,
बरै शीलनिधि कन्या जाही।

जो इसका वरण करेगा अर्थात् जिसके साथ इसका विवाह होगा, वह अमर होगा--मृत्युविजयी होगा। संग्राम भूमि में उसे कोई जीत नहीं सकेगा--वह 'अजेय' होगा--उसके पराक्रम का पराभव त्रिकाल में भी संभव नहीं। समग्र चराचर जगत् उसकी सेवा में लगा रहेगा, जिसके साथ शील-निधि की इस कन्या का पाणिग्रहण होगा।

[नारदजी के मतिभ्रम की यह पराकाष्ठा है, क्योंकि यहां तात्पर्य यह है कि जिस भाग्यवान् महानुभाव में अजरामर होने, अजित होने, चराचर-स्वामी होने के लक्षण पहले ही वर्तमान होंगे, अर्थात् वह स्वाभावतः उक्त गुणों से समलंकृत होगा, उसी के साथ राजकन्या का विवाह संभव होगा, परन्तु नारदजी बुद्धि-व्यामोह के प्रभाव से यह समझ बैठे कि कन्या के साथ पाणिग्रहण होने के बाद उसके स्वामी में उपर्युक्त गुण अपने आप आ जुटेंगे और वह स्वयंभू बन जायेगा।]

लक्षण सब बिचारि उर राखे,
कछुक बनाय भूपसन भाखे,

सुता सुलक्षणि कहि नृप पाहीं,
नारद चले शोच मनमाहीं।

नारदजी ने राजकुमारी के सभी लक्षणों को विचार कर हृदय में धारण कर लिया। राजाको कुछ बता कर सुना दिया। राजा से कहा—तुम्हारी कन्या सुलक्षणा है। इतना कह कर वह चल पड़े और साथ उनके हृदय में विचार मंथन भी चल पड़ा। वे सोचने लगे--

करौं जाय सोइ जतन विचारी,
जेहि प्रकार मोहिं बरै कुमारी।
जप-तप कछु न होय यहि काला,
हे विधि मिलै कवन विधि बाला॥

अब जाकर विचार पूर्वक यही प्रयत्न करूं कि जिस से राज कन्या मुझे वरण कर ले। इस समय तो जप-तप का भी अनुष्ठान सम्भव नहीं। हे भगवान! किन उपायों का अवलम्बन लेने से यह बाला—राजपुत्री मुझे मिलेगी।

इहि अवसर चाहिय परम, शोभा-रूप बिशाल।
जो विलोकि रीझै कुंवरि, तो मेलै जयमाल॥

इस अवसर पर तो परम शोभा-सौन्दर्य और अत्यन्त रूप की आवश्यकता है। हमारा रूप-सौन्दर्य देख कर राजकन्या रीझेगी-मुग्ध होगी, तभी हमको जयमाला पहनायेगी।

हरिसन मांगौं सुन्दरताई,
होइहि जात गहरु अति भाई!
मोरे हित हरिसम नहिं कोऊ,
इहि अवसर सहाय सोई होऊ॥

यदि भगवान् से सुन्दरता की मांग करूं तो भा उनके पास तक पहुंचने में बहुत विलंब हो जायगा। भगवा के समान मेरा कोई हितकारी नहीं—मेरा हित (स्वार्थ) व साधन कर सकते हैं। वही इस समय भी मेरी सहाय करें।

बहुविधि विनय कीन तेहि काला,
प्रकटे प्रभु कौतुकी कृपाला।
प्रभु विलोकि मुनि नयन जुड़ाने,
होइहि कारज हिय हरसाने॥

उस समय नारदजी ने बहुत प्रकार से भगवान् की प्रार्थना की, अतः कौतुकी कृपालु-दयामय प्रभु तत्का नारद जी के समक्ष प्रकट हो गये। प्रभु को देख कर मुनिव के नेत्र शीतल हुए और कर्मसिद्धि की आशा में हृदय आनं से भर गया।

अति आरत सब कथा सुनाई,
करहु कृपा प्रभु होउ सहाई।
आपन रूप देहु प्रभु मोही,
आन भांति नहिं पावौं ओही॥

अत्यन्त आर्त-वाणी से—कातर वाणी से नारद ने भगवान् को सब कथा बताई और कहा कि हे प्रभु! अब आप ही मेरी सहायता करें। आप अपना यह मनोहारी रूप-सौन्दर्य मुझे प्रदान करने की कृपा करें, अन्य किसी प्रकार से भी मैं उस राजकन्या को पा नहीं सकता।

जेहि विधि होय नाथ हित मोरा,
करौ सो वेगि दास मैं तोरा।
निज मायाबल देखि विशाला,
हिय हंसि बोले दीनदयाला॥

हे भगवान्! जिस तरह से मेरा हित हो, मेरा स्वार्थ सिद्ध हो, वह सब आप अविलंब करें। मैं आप का दास हूं। नारद पर अपनी माया का यह प्रबल प्रभाव देख कर वह दीनदयाल–दीनों पर दया करने वाले प्रभु मन ही मन हंस कर बोले—

जेहि विधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार॥

हे नारद! सुनो जिस प्रकार तुम्हारा परम कल्याण होगा, वही मैं करूंगा। अन्य कुछ नहीं। मेरे कथन में मिथ्या का लेश मात्र भी नहीं है। तुम निश्चिन्त रहो।

कुपथ मांग रुज व्याकुल रोगी,
वैद्य न देय सुनहु मुनि योगी।
इहि विधि हित तुम्हार मैं ठयऊ,
कहि अस अन्तर्हित प्रभु भयऊ॥

हे मुनिवर्य, हे योगिराज! मेरी एक बात और सुनो। जैसे रोगपीड़ित रोगी कुपथ्यपूर्ण–अहित कर वस्तुएं खाने को मांगता है, किन्तु सुहृद् बुद्धिमान् वैद्य नहीं देता। इसी

प्रकार मैंने भी तुम्हारे हित-साधन का संकल्प कर रखा इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।

माया विवश भये मुनि मूढ़ा,
समुझी नहीं हरिगिरा निगूढ़ा।
गवने तुरन्त तहां रिषिराई,
जहां स्वयंवर भूमि बनाई॥

माया के वशीभूत होकर नारदजी इतने मोह-अज्ञा तमसावृत हो गये थे कि वे भगवान् की निगूढ़ अर्थनि वाणी को समझ न सके। इसके बाद वे ऋषिराज नारद तुरन्त ही उस स्थान पर पहुंचे, जहां स्वयंवर-भूमि निर्माण किया गया था।

निज-निज आसन बैठे राजा,
बहु बनाव करि सहित समाजा।
मुनि मन हर्ष रूप अति मोरे,
मोहिं तजि आनहिं बरिहिं न भोरे॥

समागत सभी राजा-महाराजा अपना अनेक वि बनाव कर समाज सहित अपने-अपने आसनों पर सुशोभि हुए। इधर मुनिवर नारद भी अपने आपको परम रूपव मानकर अत्यन्त प्रसन्न मन सोच रहे थे कि राजकन्या को छोड़ कर अन्य किसी का भूल कर भी वरन न करेगी।

परन्तु मुनिवर के कल्याण-साधन के कृपानिधान भगवान् ने उन्हें ऐसा कुरूप प्रदान किया, जिसका वर्णन करना संभव नहीं। मंगलमय के इस चरित्र को–उनके इस लीला विधान को वहां उपस्थित कोई भी व्यक्ति समझ न सका। सबने मुनिवर को नारद समझ कर प्रणाम किया। उनका कुरूप किसी पर प्रकट नहीं हुआ। मंगलमय की कैसी महिमा है!

रहे तहां दुइ रुद्रगण, ते जानहिं सब भेउ।
विप्र रूप देखत फिरहिं, परम कौतुकी तेउ॥

उस–स्वयंवर सभा में शिवजी के दो गण भी उपस्थित थे वे सब रहस्य जानते थे और ब्राह्मण-वेश में इधर-उधर अवलोकन करते हुए घूम रहे थे। वे भी परम कौतुकी बड़े तमाशबीन थे।

जेहि समाज बैठे मुनि जाई,
हृदय रूप अहमिति अधिकाई।
तहं बैठे महेशगण दोऊ,
विप्र वेश गति लखै न कोऊ॥

जिस समाज में जाकर नारदजी जाकर बैठे–हृदय में रूप-सौन्दर्य का अधिकाधिक अहंभाव भरकर—वहीं मुनिवर के निकट शिवजी के दोनों गण भी बैठ गये। वे ब्राह्मण वेश में थे, अतः उनके यथार्थ रूप को कोई जान न सका। उनकी गतिविधि पर किसी ने लक्ष्य नहीं किया।

करहिं कूट नारदहिं सुनाई,
नीकि दीन हरि सुन्दरताई ।
रीझहिं राजकुंवरि छवि देखी,
इनहिं बरिहि हरि जानि विशेखी ॥

वे शंभुगण नारदजीको सुनाकर कूट वचन-व्यंग्यवा
बोलने लगे—भगवान् ने इन को बड़ी अच्छी सुन्दरता
है । इनके सौन्दर्य को देखते ही राजकुमारी रीझ उठेगी
साक्षात् हरि-विष्णु समझ कर इनका वरण कर लेगी ।

( हरि बन्दर को भी कहते हैं, अतः 'इनहिं बरिहिं ह
जानि विशेषी' का अर्थ यह भी हो सकता है कि राजक
मुनिवर को हरि (बंदर) मान कर बरहि अर्थात् जल उठेगी
क्रोधित हो उठेगी ।)

मुनिहि मोह मन हाथ पराये,
हंसहि शंभुगण अति सचुपाये ।
यदपि सुनहि मुनि अटपट बानी,
समुझि न परै बुद्धि-भ्रम सानी ॥

मुनिवर का मन तो पराये हाथ में पहुंच कर मोह मु
हो उठा और शिवजी के गण इस सुअवसर को पाकर उम
उपहास कर रहे थे । यद्यपि नारदजी शिवगणों की अटप
वाणी सुन रहे । किन्तु उनकी समझ में कुछ आ न सका
ये दोनों क्या कह कर हंस रहे हैं ? उनकी बुद्धि विभ्रम
कारण जड़ हो गई थी । —क्रमशः

# धर्मोपदेश

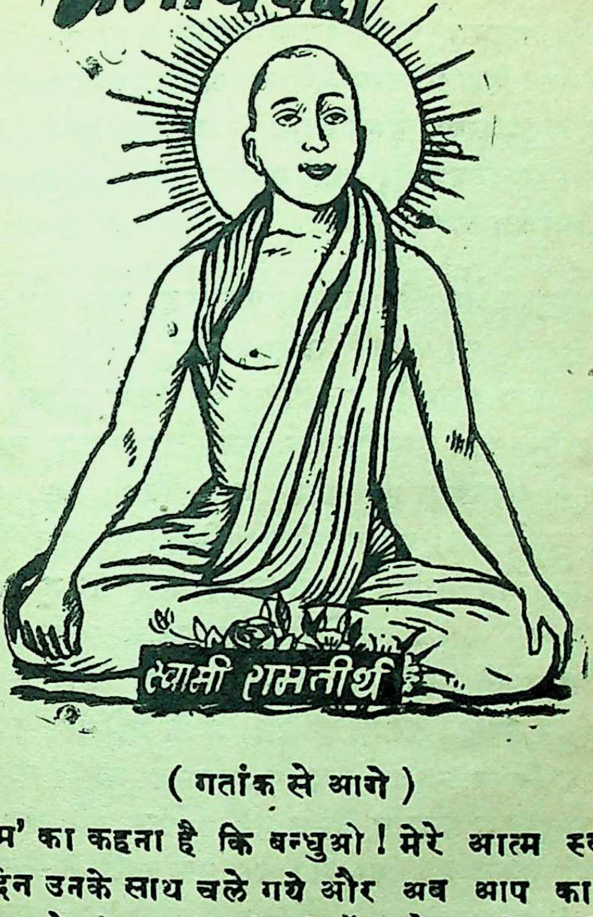

( गतांक से आगे )

'राम' का कहना है कि बन्धुओ ! मेरे आत्म स्वरूपो ! उनके दिन उनके साथ चले गये और अब आप का समय आया है । जो भी महात्मा हो गये हैं । और उन्होंने जो उपदेश किये, उनका आप स्वयमेव अनुभव करें, तभी उनके उपदेशों का मर्म उचित रूप से हृदयंगम कर सकेंग । गीता-ज्ञान को हृदय-पटल पर अंकित करने के लिये श्री कृष्ण-

जैसे ज्ञान की आवश्यकता है, मिल्टन को समझने के लि मिल्टन की जरूरत है, परन्तु मोहम्मद के कुरानको समझ के लिये अरब देश में जन्म लेने की आवश्यकता नहीं। अस् मोहम्मद, बुद्ध, कृष्ण, ईसा आदि के पदपर पहुंचने के लि क्या करना आवश्यक है, यह एक कहानी के उदाहरण से समझ लेना चाहिये।

एक मनुष्य प्रेम की कविता पढ़ रहा था। यह कवित बड़ी ही सुन्दर थी। इसमें लैला-मजनू की प्रेम कथा क चित्रांकन किया गया है। इस पाठक को मजनू जीवन विशे पसन्द आया--यहां तक कि वह स्वयं भी मजनू बनने क आकांक्षा से ओतप्रोत हो उठा। अतः किसी के परामर्श अनुसार उसने लैला की तसवीर खरीदी। वह उस तसवीरके प्रति वैसा ही प्रेम-नाटक खेलने लगा, जैसा मजनू लैला प प्रेम रखता था। वह उसके लिये आंसु बहाने लगता, तसवी को हमेशा अपनी छाती से लगाये रखता और कभी भी उससे दूर न जाता। परन्तु कृत्रिम प्रेम के अस्तित्व का अधिक समय तक स्थिर रहना कदापि सम्भव नहीं। स्वाभाविक प्रेम का अनुकरण कदापि संभव नहीं। फिर भी, वह मानव तो प्रेम की नकल कर रहा था। उसे एक व्यक्तिने आकर पूछा अरे भाई! यह क्या करते हो? कहीं इस तरह मजनू बना जा सकता है? मजनू बनने के लिये लैला की जरूरत नहीं, अपितु मजनू की तरह तीव्रतम प्रेमभाव चाहिये। प्रेम पात्र लैला न हो, तो भी कोई हर्ज नहीं, परन्तु मजनू के हृदय में जितना प्रेम था, उतना प्रेम तो तेरे हृदय में अवश्य होना ही चाहिये।

इसी प्रकार 'राम' का कहना है कि यदि ईसा, कृष्ण, बुद्ध या मोहम्मद बनना हो तो उन्होंने जो कुछ किया, उसका अनुकरण करने-उसकी नकल करने की आवश्यकता नहीं; उनके कृत्यों का अनुचर बनना अनिवार्य नहीं, उनके कार्य कर अपनी स्वतंत्रता खोना उचित नहीं, अपितु अपने निजी स्वतन्त्र कार्य करते चलो और उनके हृदय में जो बल था, उनके जीवन में जो गहनता थी, उन्होंने जिस प्रकार साक्षात्कार किया, वही मात्र आपको प्राप्त करने की आवश्यकता है। यदि इसको प्राप्त कर लोगे तो सम्प्रति आप जिस स्थिति में हैं; वह सारी वस्तु स्थिति बदल जायेगी। आज रात में ईसा का जन्म हो वे क्या करेंगे? आज तो ईसा-जैसा महान् जीवन विताने के लिये शूलीपर चढ़ने की आवश्यकता नहीं। अपने दृढ़ श्रद्धा-विश्वास के लिये ईसा ने आत्म-बलिदान किया और शोपेनहरने अपनी दृढ़ मान्यता और श्रद्धा के लिये शरीर को नष्ट न कर जीना पसन्द किया। अपनी दृढ़ मान्यता और श्रद्धा के लिये शरीर का बलिदान करने की अपेक्षा उसके लिये जीवन धारण करना ही कभी कभी बहुत कठिन होता है।

अतः प्रत्येक बात का उसके अपने ही गुण-दोष के अनुसार मूल्यांकन करना चाहिये। उपदेश किसके द्वारा आता है, कौन देता है? इस पर आधार न रखना चाहिये, किसी भी महापुरुष के बोध की बात भिन्न है और उसके जीवन के कृत्य भी भिन्न बात हैं।

रामतीर्थ

अस्तु पहला प्रश्न यह पूछा गया है कि 'यदि पुनर्जन्म होता है, तो उससे क्या कुटुम्ब के बन्धन टूट नहीं जाते। और जो लोग इस जगत् में एक साथ रहते हैं, वे क्या परलोक में तदनुसार एक साथ नहीं रहते ?' प्रश्न उत्तम है और इस को विभक्त करके टुकड़े करके विचार किया जायेगा। पहले यह प्रश्न लेना चाहिये कि 'यदि यह सत्य है कि पुनर्जन्म होता है, तो उसके फलस्वरूप कुटुम्ब का बंधन नहीं टूटता ?'

'राम' केवल इतना ही जानना चाहता है कि इस जगत् में किसी भी स्थानपर 'कुटुम्ब का सम्बन्ध' जैसा कुछ है। स्वयं अपना ही कुछ सम्बन्ध है ? एक मानव जबतक बालक रहता है, तबतक अपने माता-पिता के साथ रहता है। वयस्क और शिक्षित हो जाने पर अपने धन्धे-रोजगार से लग जाता और पिताका साथ छोड़ देता है और अपना कुटुम्ब लेकर देश-विदेश में जा रहता है। इस प्रकार स्वार्थ के प्रश्न पर कुटुम्ब का बन्धन टूट जाता है। अपनी कमाई अपने पिता को न देकर वह अपने पास रखता है और कभी ऐसा होता है कि पुत्र तो भारत में है और पिता जर्मनी या अन्य किसी देश में घूम-फिर रहा है। इन परिस्थितियों में कौटुम्बिक सम्बन्ध कहां रहा ? स्वीकार करना चाहिये कि यह सभी सम्बन्ध मात्र कहनेतक ही सीमित हैं। मैं फलाना हूँ और हमारे पिता का नाम फलाना है। बस इसी का नाम सम्बन्ध है। और देखें। अमेरिकन पति और जर्मन पत्नी परस्पर वैवाहिक ग्रन्थि में बंधते हैं। फलतः कन्या का

सम्बन्ध स्वदेश के जन्म-कुटुम्ब से विच्छिन्न हो जाता है और नया बनता है। एक ही घर में कई बहनें विभिन्न स्थलोंपर परिणीत होकर एक दूसरे से दूर हो जाती हैं, उनका सम्बन्ध-विच्छेदन हो जाता है; अतः उनका सम्बन्ध कहाँ रहा? प्रश्न मात्र यह रहता है कि पुनर्जन्म होने पर कुटुम्ब का संबंध टूटता है या नहीं? इसका उत्तर यही है कि जगत् में कौटुम्बिक सम्बन्ध-जैसी कोई वास्तविक स्थिति ही नहीं, तो फिर टूटेगा क्या? फिर भी मान लें कि ऐसा कुछ है, तो भी पुनर्जन्म से वह सम्बन्ध सदाके लिये टूट नहीं जाता। एक आदमी के बहुत से लड़के हैं और उनमें से एक की मृत्यु हो जाती है, तब कुछ लोगों की यह धारणा हो जाती है कि इसकी मृत्यु हो जाने से इस जगत् से उसका सम्बन्ध टूट गया, परन्तु परलोक में यह सम्बन्ध स्थापित होगा। यदि यह संबंध स्वर्ग में पुनः जुड़ता होगा तो वह कौन-सा स्वर्ग है? किसी भी शास्त्र ने स्वर्ग की भौगोलिक स्थिति का परिचय नहीं कराया। वह उसका पता-ठिकाना भी नहीं बताते, जिससे मनुष्य समझे कि हम विगत जन्म के कुटुम्बीजन यहाँ एकत्र हुये हैं। पुनर्जन्म के सिद्धान्तानुसार मानव अपने कुटुम्ब का सम्बन्ध स्थिर रखना चाहे तो ऐसा कदापि सम्भव नहीं, क्योंकि मनुष्य स्वयं अपने भविष्य का निर्माता है, प्रारब्ध की तुलना में पुरुषार्थ ही प्रमुख स्थान का अधिकारी है। मनुष्य अपने संबंध या बन्धन स्वयमेव उत्पन्न करता है। मृत्यु-काल में यदि किसी के साथ संबंध रखने की तीव्र इच्छा होगी तो निश्चय ही ऐसा किया जा

सकता है। और यदि किसी मनुष्य के साथ कोई सं रखना नहीं चाहते, तो आगे के जन्म में उसके साथ लेन-देन नहीं रहेगा। इसी प्रकार मृत्यु के पश्चात् जिस तुम पृथक् होना चाहते हो, उसके साथ तुम्हारा संबंध नहीं सकता। यह एक निश्चित वस्तुस्थिति है। वेदा डंका बजाते हुये यह घोषणा कर रहा है।

इस सम्बन्ध में बड़ी ही भ्रान्त धारणाएं प्रचलित है सबपर क्रमशः प्रकाश डाला जायेगा। युरोप और अमेरि में स्वर्ग के सम्बन्ध में जो मान्यता है, इस संबंध में कु विवेचन कर रहे हैं। स्वर्ग को वे एक ऐसा स्थान समझ हैं, जहां सभी एकत्र मिलकर आनन्द करते हैं। मैं कहत हूं कि जरा विचार करो जो स्थान सीमा से बंध जाता है वहां कभी भी पूर्ण सुख की प्राप्ति असंभव है। क्योंकि स्व में जाकर सुख-प्राप्ति की इच्छा से तुम यह प्रयत्न करते कि मुझ से कोई ऊंचा या मेरी बराबरी का न हो। पर स्वर्ग में तो ऊंचा भी मिल सकता है। बुद्ध और ईसा वहां मिलेंगे और उनका सुख देखकर असन्तोष उत्पन्न होन स्वाभाविक है। जहां भेद है, वहां सुख कभी रहता ही नहीं यह सुख कैसे भंग होता है? भेद से, अन्य के किसी उ सुख के दर्शन से। बाइबल में कहा गया है कि स्वर्ग कह बाहर नहीं। प्रत्येक हृदय में स्वर्ग विद्यमान है। स्वर्ग की कल्पना अपने से बाहर करना ही दुःख का मूल कारण है आकाश में या नक्षत्रों में स्वर्ग नहीं। स्वर्ग सबके हृदय में ही विद्यमान है। सुख में विक्षेप कैसे पड़ता है? दूसरे का

अपने से अधिक सुख देखकर हमारे सुख का नाश होता है। प्रत्येक मनुष्य अपने को अद्वितीय देखने को इच्छुक है। बाइबल में कहा है कि "स्वर्ग में हम मिलते हैं"—इसका अर्थ क्या है? न्यू टेस्टामेण्ट में भी कहा है कि "स्वर्ग का राज्य हृदय में है" "प्रभु का राज्य हृदय में है।" अतः यह कल्पना ही मिथ्या है कि कहीं बाहर स्वर्ग नाम का स्थान विद्यमान है, किसी दूसरे ही जगत् में स्वर्ग स्थिर है। वे बेचारे प्रभु पर दया रखो। प्रभु यदि बादलों में—शून्य में स्वर्ग की रचना स्थिर बनाये होता तो उसे शरदी हो जाती, इसपर तो विचार करो! प्रभु कहो, स्वर्ग कहो, जो कुछ भी कहो, सब तुम्हारे अन्दर ही विद्यमान है।

आत्मा में प्रविष्ट होकर निर्वाण-पद प्राप्त करो, प्रभु का साक्षात्कार करो तो स्वर्ग स्वयं ही बन जाओगे। इस प्रकार समग्र सृष्टि के साथ संबंध बना रहेगा। मित्रो, कुटुम्बियो आदि से स्वर्ग में मिलन होगा। जीवन्मुक्त पुरुष सदैव स्वर्ग में विचरण करता है। उस पर कभी भेदबुद्धि का प्रभाव नहीं होता।

जन साधारण को अपने इष्ट पदार्थ प्राप्त करने की तीव्र इच्छा होती है। इस इच्छा की पूर्ति के लिये वह निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। फिर भी उद्देश्य-सिद्धि नहीं होती—अभीष्ट वस्तु नहीं मिलती। इस का कारण क्या है और कैसे उद्देश्य-सिद्धि की जा सकती है? क्यों लोगों का हृदय भग्न हो जाता है और क्यों वे हताश तथा दुखी होते हैं। इस

निराशा तथा दुःख का कारण क्या है ? इसका कारण यह है कि उन्होंने जो स्वर्ग मान रखा है, वहां पहुंच कर वह अभीष्ट सिद्ध कर नहीं सकते। हे विश्वमानव ! यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारे मित्रों से तुम्हारा मिलाप हो, जगत के समग्र पदार्थ तुम्हें प्राप्त हों तो तुम अपनी शक्ति निरर्थक ही नष्ट करते हो। कृपा करके मेरा कहना मानें तो एक ऐसी कुंजी बतलायेंगे, जिससे सभी इच्छित वस्तुएं अपने आप आ मिलेंगी। स्वर्ग में सबसे मिलाप होगा और यह अनुभव भी होगा कि सभी वस्तुएं दौड़ती चली आती हैं। जोर-जुल्म से किसी का प्रेम मांगने और भिखारी की तरह किसी वस्तु की इच्छा करने पर वह तुमसे दूर-ही-दूर भागेंगे। मात्र जब निःस्पृह बनोगे, तभी यह बात आगे-आगे आकर खड़ी रहेगी। जिस क्षण इच्छा को दूर करदोगे-इच्छा ऊपर उठ जाओगे, उसी क्षण इच्छित वस्तु तुम्हारे सामने आ खड़ी होगी। परन्तु जिस क्षण पुनः लालसा करोगे--भीख मांगोगे, उसी क्षण तुम उससे दूर हट जाओगे, लोग कहते हैं कि 'प्रयास करो, इष्टसिद्धि होगी, द्वार खटखटाओ, तत्काल खुल जायेगा, परन्तु इसका अर्थ लोग समुचित रूप से समझ नहीं पाते। खोजोगे, इच्छा से व्याप्त होकर अधैर्य से ही वस्तु को मांगोगे तो कभी नहीं मिलेगी। जाना है ईश्वर के समीप और जाना चाहते हो भिखारी के वेश में, परन्तु मलिन मन से भीख मांगने के उद्देश्यसे कभी भी वहां के द्वार तुम्हारे लिये उन्मुक्त न होंगे। राजा के पास जाते समय जैसे उत्कृष्ट साज सज्जा बनानी पड़ती है, जैसे मैले वस्त्र वहां काम नहीं आते, उसी तरह ईश्वर के

पास जाते समय भी इच्छारूपी मैले वस्त्र उतार देने पड़ते हैं, इन इच्छाओं को दूर करके ही वहां पहुंचा जा सकता है। ईश्वर का दर्शन करना हो, स्वर्ग को हृदय में व्यक्त करना हो तो लालसा, इच्छा, और आसक्ति से ऊपर उठने पर ही ऐसा सम्भव है।

कर्म का नियम है कि मानव अपने प्रारब्ध का स्वामी है, उत्पादक है। हम ही अपने आसपास की स्थिति उत्पन्न करते हैं। कर्म का नियम है कि जब किसी वस्तु की इच्छा होती है—उसके लिये प्रयत्नशील होते हो, तब वह मिलती ही नहीं, परन्तु इस प्रकार लालसा में कुछ समय के बाद निराश होकर निःस्पृह होकर वापस लौटते हैं, उसी समय वह वस्तु तुम्हारे पीछे-पीछे चली आती है। कर्म का यह नियम है। जिस प्रकार चलते-चलते पैर ऊंचा करके फिर नीचे रखना पड़ता है, उसी तरह कर्म के नियमानुसार पहले लालसा उत्पन्न होती है और उसे दूर करना पड़ता है। लालसा के बाद एक ऐसा समय आता है जब निराश होकर लालसाएँ-इच्छाएँ दूर करनी पड़ती हैं, अतः यदि इच्छाओं को तृप्त करना हो तो इच्छाओं को पहले दूर करो। 'राम' का कहना है कि सभी इच्छाएँ, आसक्तियां पूर्ण होनी ही चाहिएं, उसके फल मिलेंगे ही, परन्तु एक शर्त पर, और वह यह कि इच्छा उत्पन्न होने के पश्चात् उस इच्छा का त्याग किया जाये, तभी वह इच्छा परिपूर्ण होती है। बहुतेरे लोगों की इच्छा होती है कि जगत् के साथ अपने सम्बन्ध स्थिर रखे जायें, परन्तु डंका बजाकर कहने दो कि यह मूर्खता है, सम्बन्ध को

स्थायी रूप देना कदापि सम्भव नहीं। माया से लिप्त ज में कुछ भी शाश्वत नहीं। ऐसी आशा निराशा में परिणि होगी। कभी भी ऐसी इच्छा न रखना। हृदय से उसे कर देना चाहिये। 'राम' बल पूर्वक कहता है—बार कहता है कि यह आशा मृग तृष्णावत् है। शाश्वत तो म अपनी स्वयं भू दिव्यता ही है। तुम स्वयं प्रभु हो, व शाश्वत है सत्य है, परमानन्द रूप है यह बात नहीं क्षणभंगुर शरीर और तत्संबन्धी सभी वस्तुएं कहीं भी नि तर स्थिर नहीं रह सकती, करोड़ों वर्ष जीवित रहो, पर अन्ततः मृत्यु तो है ही। सूर्य भी एक दिन नष्ट होगा, पृथ भी नष्ट हो जायेगी, ग्रहगण, तारामण्डल आदि अशाश्व हैं। सभी वस्तुओं का रूपान्तर होता ही रहता है। मा एक परम सत्य ही शाश्वत है। कौटुम्बिक सम्बन्ध में परिवर्तन होता रहता है। कुटुंबिजन भी शाश्वत नहीं र सकते, अतः इनमें यदि आसक्ति हो तो एकदम भंग कर दो नदियां उलटी बहें, पवन नीचे की ओर बहे, अग्नि शीतलता आये और सूर्य में अन्धकार व्याप्त हो जाये, पर जगत् की अशाश्वत स्थिति कभी मिट नहीं सकती। नदी प्रवाह में जैसे अनेक वस्तुएं भिन्न २ दिशाओं से आकर ए स्थान पर मिलती हैं, परन्तु पुनः दूर हट जाता है और जि प्रकार एक बलशाली लहर आकर एक-दूसरे को अलग करत है, ऐसा ही इस जगत् का विधान है। कदाचित पुनः एका बार पुनः आ मिलें, परन्तु पृथक होने के लिये ही कभी ए साथ रह नहीं सकते। जैसे एक घर में माता-पिता भाई

बहन आदि मिलते हैं, परन्तु पुनः अपने-अपने काम में लग जाने से अलग हो जाते हैं, उसी तरह अखिल जगत् में निरन्तर अशाश्वत सुख के लिये प्रयत्न करने की अपेक्षा शाश्वत सुख, शाश्वत आनन्द है, एतदर्थ प्रयत्न किसलिये नहीं करता? परम सत्य, आत्मा के सम्बन्ध में विचार करो और उसका साक्षात्कार करो।

एक नववधू अपनी ससुराल में सब के साथ बैठी थी और मधुर बातचीत करती थी। इस स्त्री का स्वामी अत्यन्त दूर देश में था। ननद आदि ने उसे उसके पति के सम्बन्ध में, अर्थात् अपने भाई के सम्बन्ध में कुछ हीनतामूलक बात की। मैं वहां उस समय उपस्थित था। वह स्त्री बोली—'तुम तो मेरे पति के साथ बहुत कम समय तक रहोगी, मैं अपने पति के सम्बन्ध में कोई अनुचित बात सुन नहीं सकती। मुझे तो सारा जीवन ही उनके साथ बिताना है।' इस प्रकार जगत् के बन्धन थोड़े ही समय के लिये हैं, अतः जो शाश्वत है, उसी पर विचार करो। जगत् के बन्धनों की अपेक्षा रख कर भगवान् के साथ बैर न बांधो।

महात्मा बुद्ध के पास एक व्यक्ति आकर कहने लगा कि आप अपने पिता के राज्य में जाओ और वहां भीख मांगो। महात्मा बुद्ध महाराजके पुत्र थे और उस समय राजपाट छोड़ कर एक भिक्षु के रूप में विचरण करते थे। उनका भीख मांगने का धन्धा न था। वह तो एक महान् अवधूत योगी थे। कुछ मिला भी ठीक और न मिला, तो भी ठीक ऐसी

उनकी मनोवृत्ति थी। शरीर की किसी प्रकार की भी अपे रखे बिना वह जगत् में घूम रहे थे। वे अपने पिता के रा में भी इसी प्रकार विचरण करने लगे थे।

राजा ने-बुद्ध के पिता ने यह बात सुनी तो वे दौ हुए उनके पास पहुंचे, रो पड़े, आंसू बहाने लगे और बोले-पुत्र ! राज्याधिकारी को इस प्रकार दर-दर भटकने जरूरत नहीं, हमें बुरा लगे, अनुचित बातें कही जायें, अ यह सब छोड़ दो। हमें ऐसा कुछ भी करना उचित नहीं, पूर्वजों की कीर्तिको लांछित करे। महात्मा बुद्ध ने हंसते हु कहा—'जिस कुटुम्ब का मैं हूं वह तो पीछे रह गया है। तो अपने पूर्वजन्म का विचार करता हूं और यह विचा करते हुए बात होती है कि मैं तो भिक्षा देहि कहने वा कुटुम्ब का एक सदस्य हूं। हमारा तो रास्ता चलते एकाए मिलाप हो गया है--परस्पर टकरा गये हैं, हमारा रास्त अलग है और आपका अलग। आप अपने रास्ते जाइये औ मैं अपने रास्ते चला जाऊंगा।'

सभी सम्बन्ध ऐसे ही हैं, तब फिर कुटुम्ब के बन्धन रा ही कहां ? आप कहते हैं कि हमारे बालबच्चे हैं और उन्हीं लिप्त रहते हैं, उन्हें चाहते हैं, चुम्बन करते हैं और अने प्रकार से लाड़-प्यार दिखाते हैं, परन्तु जरा अपने तत्वज्ञा पर विचार करें। यह बच्चे तुम्हारे अपने हैं, यह मानकर य सम्बन्ध अनन्तकाल स्थिर रखने की आप इच्छा रखते हैं

परन्तु एक अश्लील बात कहनी पड़ती है। आप कहते हैं, आपके पुत्र हैं, आपके रक्त से उनका जन्म हुआ है, आपका मांस भी उसके शरीर में है, तो फिर आपका थूक, लार, कफ, नाक तथा अन्य श्लेष्मक द्रव्य भी आपके शरीर से समुद्भूत हुये हैं, इन्हें क्या मानना चाहिये ? इसका उत्तर दीजिये। अपने से ही उत्पन्न जूं, लीख, खटमल आदि को तो नष्ट कर दिया जाता है और इसी तरह से उत्पन्न अपने पुत्रपर आसक्त होकर उसपर वात्सल्य-प्रेम और स्नेह की वर्षा करते हैं, यह कहां का न्याय है ? जरा तर्कशास्त्र पर विचार करें। 'राम' का कहना यह नहीं कि अपने पुत्र पर वात्सल्य-रस की वर्षा न कर क्रूरतापूर्वक प्रहार करें। मैं तो मात्र इतना ही कहना चाहता हूँ कि समग्र विश्व को एक ही दृष्टि से देखो। कुटुम्ब बन्धन को अपनी प्रवृत्ति में बाधक बनने देना उचित नहीं।

जब इस शरीर (स्वयं स्वामी रामतीर्थ) ने कुटुम्ब-बंधन छोड़े, तब कुछ लोग आकर कहने लगे "तुम अपने, स्त्री-बच्चों और सम्बन्धियों का स्वार्थ क्यों नहीं देखते, तुम्हारे ऊपर ही उनका आधार है।" प्रश्न पूछनेवाला 'राम' के साथ का एक प्रोफेसर था। 'राम' ने उनसे कहा—"आप प्रोफेसर हैं, स्कूल में तत्वज्ञान पर भाषण देते हैं, अतः आप मुझे बतायें कि क्या आपके जैसा ही ज्ञान आपके घरवालों में है ? आपके अन्य भाई-बन्धु आपके जैसा ज्ञान रखते हैं ? उन्होंने कहा—"नहीं।" रामने कहा—"स्कूल में आकर भाषण देते हो, उसी तरह घरमें स्त्री-पुत्रादि के पास क्यों नहीं देते ? आपके घरमें मां मौसी आदि को तो तत्वज्ञान समझाते नहीं, पाठशाला में क्यों भाषण देते हो ?" प्रोफेसर ने कहा—"यह लोग ऐसे नहीं कि भाषण समझ सकें।"

अतः उस प्रोफेसर को कहा गया—देखो भाई ! यह आपके सच्चे सगे-सम्बन्धी नहीं, आपके पड़ोसी नहीं । आप कौन हैं ? आप कुछ यह शरीर नहीं । आप स्वयंभू हैं । परंतु यह आप स्वीकार नहीं करते । जहां आपका मन है, वहीं आपके सगे-सम्बन्धी नहीं । जो लोग आपके विचार की परम्परा समझ सकते हैं, आपके ज्ञान में भाग ले सकते हैं और आपके मन के साथ एक हो सकते हैं, वही सगे-संबंधी हैं । अध्ययन के समय आपके बच्चे, नौकर-चाकर आदि कमरे में आते-जाते रहते हैं, परन्तु आपके मन में उसका कोई महत्त्व नहीं रहता । यदि ऐसा ही है तो फिर आप तत्त्वज्ञान के जिस उच्च शिखर पर बैठकर आप अपने शिष्यों के समक्ष भाषण देते हैं । आप जो पढ़ते हैं, विचार करते हैं, वही आपके सगे-सम्बन्धी हैं, अन्य कोई भी नहीं । वैसे तो आप जिस मकान में रहते हैं, वहां अन्य भी बहुतेरे जीव-जन्तुओं का निवास है । चूहे-बिल्ली, कीड़े-पतिंग आदि अनेक प्राणी रहते हैं, परन्तु वे आपके पड़ोसी नहीं; परन्तु जो आपके आत्मज्ञान के साथ निकट सम्पर्क रखते हैं: वही आप के सगे हैं—साथी हैं । प्रोफेसर साहब, आप अपना आगामी जन्म कहां होने की इच्छा रखते हैं ? घर के चूहे-बिल्लियों या अज्ञानी कुटुम्बियों के साथ ? प्रेम क्या है ? जैसी भावना व्यक्ति करता है वैसा ही वह बन जाता है । जगत में प्रेम तो प्राणिमात्र से करना वह भी इसलिये नहीं कि यह मेरा है, बल्कि वह सब मेरे साथी हैं । उनके साथ ही इस संसार में सदैव रहना है । इस भावना से सब हितैषी कार्य सम्पन्न हो सकते हैं ।

१७७५६

# वैज्ञानिक जलचिकित्सा

नित्यं भागिरथी स्नानात्
भास्करस्यच दर्शनात्
नश्यन्ति सकला रोगाः
सत्यं सत्यं न संशयः

लेखक
डॉ. जे. पी. वर्मा,
डी. एन. एम. एम. डी. एस.

(गतांक से आगे)

(२) कटिस्नानः— रोगी को टब में निःवस्त्र होकर कमर तक बैठना चाहिये। पैर तथा शरीर का ऊपरी भाग पानी के बाहर रखना चाहिये। ठण्डा लगने पर गर्म कपड़े से ढंक लेना चाहिये। प्रारंभ में कम पानी रखना चाहिये। पश्चात् टब को पूरा भर देना चाहिये। पानी प्रारंभ से ताजा लेना चाहिये। उत्तरोत्तर शीतल जल का प्रयोग करना चाहिये। यह स्नान ५ मिनट से प्रारंभ कर ३० मिनट तक लिया जा सकता है। पानी जितना शीतल होगा उतना कम समय स्नान लेना चाहिये। स्नान लेते समय तौलिये या किसी नरम कपड़े से पेट को ऊपर से नीचे की ओर घर्षण करना चाहिये। स्नान के बाद व्यायाम, टहलना, कमजोरी की हालत में कम्बल ओढ़कर सो जाना नहीं भूलना चाहिये।

इससे मंदाग्नि, अम्लता, वायुविकार, कब्ज, बवासीर, भगंदर, गुदभ्रंश, चिड़चिड़ापन, न्युरेस्थेनिया, मस्तिष्क विकार, हृदय का धड़कना, फेफड़े के रोग, यकृत, प्लीहा, गुर्दे आदि सभी बीमारियों के अतिरिक्त स्त्रियों के रोग जैसे--अतिरज, रजोरोध, प्रदररोग, बच्चेदानी का हटना आदि ठीक होता है। बीमारी की हालत में दिन में दो बार लेना चाहिये। कोष्ठबद्धता, अपच, पुरानी पेचिश, बच्चेदानी से रक्त जाना, बच्चेदानी का हटना आदि में ५ से ६ बार लेना आवश्यक है। शिर गर्म रखते हुये यह स्नान लेना चाहिये। फोड़ा, घाव, एक्जीमा आदि में बहुत ही गुणकारी है। डा. लुई कूने तो केवल कटिस्नान, बाष्पस्नान एवं मेहनस्नान की सहायता से संपूर्ण रोगों की चिकित्सा करते थे और उन्होंने हजारों रोगियों को स्वस्थ बनाया।

( ल ) मेहनस्नानः-- डा. लुई कूने का कथन है कि स्त्री, पुरुष सीधे टब में न बैठकर बल्कि एक तिकोनी पटरी टब पर रख लें, बीच में पानी लेने के लिये खुली हो उसी पर बैठकर एक स्वच्छ लिनन का कपड़ा चार पर्त कर पानी में डुबाकर जननेन्द्रिय को धोयें। जननेन्द्रिय के भीतरी भाग को बचाना चाहिये। मुसलमान भाइयों को इस स्नान का लाभ निम्न भाग (सोवन) को धोकर लेना चाहिये। यह स्नान भी सभी बीमारियों को दूर करता है। टानिक का काम करता है। मानसिक एवं जननेन्द्रिय सम्बन्धी बीमारियों में बहुत ही लाभकारी है। ५ मिनट से ३० मिनट तक बढ़ाया जा सकता है। व्यायाम तथा टहलना आवश्यक है।

(व) घुटना स्नानः-- आवश्यकतानुसार ठण्डे, गर्म पानी में घुटने को डुबाना। सूजन में गर्म पानी ठीक पड़ता है।

(श) पैरस्नानः-- पूरे पैर को ठण्डे या गर्म पानी में १० से ३० मिनट तक रखना। इससे पैर की शक्ति बढ़ती है। ठण्डे जल से शक्ति, गर्म जल से रक्त सिंचता है। श्वास क्रिया ठीक होती है। गहरी नींद आती है। अल्परज, रजोरोध, पेडू में दर्द होना, हिस्टीरिया, मूर्च्छा, धनुर्वात, मिर्गी, उन्माद एवं स्नायुविक रोगों में लाभकारी है।

(ष) गर्म पैरस्नान :—पैरों को १०५ से १८० तक के गर्म पानी में ५ से २० मिनट तक रखना। सिर को ठण्डे पानी से धोना या भीगा तौलिया रखना, तथा पानी का ताप धीरे धीरे बढ़ाना आवश्यक है। पश्चात् कुछ सेकंड ठण्डे जल में रखना चाहिए। यह अनिद्रा, सर्दी, जुकाम, स्वर भंग, सिर दुखना, अल्परज, रजोरोध, हिस्टीरिया, बच्चों के चौंकने आदि में लाभकारी है।

(स) पैर का शीतल स्नान :—यह ४५° से ५४° के ताप पानी में पैर के गर्म स्नान के समान ही लेना चाहिए। पैर की प्रथम गर्म कर लेना आवश्यक है ५ से ६ मिनट पानी में रखना तथा पैर को हाथ से बराबर रगड़ते जाना चाहिए। इससे मस्तिष्क विकार, बच्चेदानी से रक्त जाना, दर्द, सूजन, चिड़चिड़ापन आदि ठीक होता है। बच्चेदानी की तकलीफ, उदर रोग, जननेंद्रिय रोगों में नहीं लेना चाहिए। इसमें उपर्युक्त गर्म स्नान लाभप्रद है।

(ह) पैर का गर्म-ठण्डा स्नान :—दो पात्रों में अ
अलग ठण्डा-एवं गर्म पानी रखना चाहिए। सिर पर भी
तौलिया रखना चाहिए। प्रथम तीन मिनट गर्म पानी
रखकर पुनः आधा मिनट ठण्डे पानी में रखना चाहि
यह क्रिया १० से १५ बार दुहरानी चाहिए। इससे ठ
लगना, पैर में पसीना निकलना, अनिद्रा, श्वास अव
होना ठीक होता है।

(क) तलवा-स्नान :—बर्तन में चौथाई इंच गहरा पा
आवश्यकतानुसार ठण्ठा-गर्म प्रयोग करना चाहिए। ठ
पानी का प्रयोग करने पर मालिश आवश्यक है। गर्म पा
के प्रयोग करने पर ठण्डी पट्टी सिर पर रखनी चाहिए
ठण्डे पानी के प्रयोग से पसीना निकलना, जलन होना ठी
होता है, जबकि गर्म पानी के प्रयोग से गठिया, चक्
आना, सिर दर्द, नेत्र प्रदाह, कर्ण प्रदाह, दन्तशूल ठीक हो
है। ठण्डा प्रयोग करने के पूर्व तलवे गर्म करना एवं प्रयो
के बाद भी मालिश, व्यायाम, टहलना आवश्यक है।

जिस रोगी के शरीर में रक्त की कमी हो उसके लि
अधिक शीतल या गर्म जल ठीक नहीं पड़ता। अतए
शीतल स्नान लेने के पूर्व थोड़ीसी धूप लेनी चाहिए। स्ना
समाप्त होने के बाद भी धूप लेनी चाहिए। गर्म-ठण्डा-स्ना
अधिक लाभदायक है। प्रथम तीन मिनट गर्म, पश्चात् प
मिनट ठण्डा स्नान, इस प्रकार तीन बार स्नान लेना चाहिए
गर्म स्नान के समय सिर पर भीगा तौलिया स्नान के बा

शरीर गर्म करना, ठण्डे स्नान से अन्त करना न भूलना चाहिए।

(७) डूश-स्नान:—इसका प्रयोग शरीर के किसी भाग को शक्ति देने के लिए होता है ६ से १२ फीट की ऊँचाई से रबर की नली द्वारा पानी प्रथम हथेलियों, से प्रारम्भकर चेहरे, छाती, पैर, कंधे, हाथ, गर्दन, रीढ़, मेरूदण्ड, नितम्ब, जाँघ आदिपर क्रमशः गिराया जाता है। इससे सिर-दर्द, स्नायुविक दर्द, वात, गठिया, सूजन, दर्द, ट्युमर, हिस्टीरिया, यकृत विकार, हृदय रोग आदि ठीक होता है। परन्तु एक या दो मिनट तक ही प्रत्येक अंग पर प्रयोग करना श्रेयस्कर है। जिसप्रकार शरीर में विभिन्न पट्टियों के लिये प्रिस्नीज का नाम लिया जाता है—

उसी प्रकार डूश स्नान के लिए क्नाइप का नाम लेना पड़ता है क्योंकि यह प्रयोग उसी के द्वारा परीक्षित हुआ है। उसका कहना था कि अल्प समय के लिए ठण्डे जल का डूश-स्नान शरीर में जल्दी प्रतिक्रिया उत्पन्न करता है। (प्लेटन)

डूश स्नान लम्बे समय तक नहीं लेना चाहिए। इसका भी वैज्ञानिक कारण है। डूश द्वारा पानी जब चमड़ीपर पड़ता है। उसका प्रभाव नसों द्वारा मस्तिष्क केन्द्र तक पहुँचता है वह तुरन्त रक्त वाहिनी नलियों को सूचित करता है। रक्त का दबाव बढ़ने लगता है तथा ऊपरी दबाव घटता जाता है। रक्त तमाम नसों में भर जाता है। शरीर गर्म हो जाता है। यदि देर तक प्रयोग किया जायेगा तो यह प्रतिक्रिया न हो

सकेगी। शरीर ठण्डा पड़ जाएगा। अल्प कालिक प्रयो अधिक प्रभावशाली होता है। (प्लेटन)

इस प्रकार डूशस्नान अजानकार मनुष्य के लिए भयान है। परन्तु अच्छे जानकार द्वारा प्रयोग करने पर बहुत ही उपयोगी है। इससे शरीर का विकार निकालने, सूजन दू करने, अन्तर्बाह्य सूजन का बढ़ना रोकने के लिए बहु उपयोगी है। (प्लेटन)

शोथ, हड्डी के खिसकने पर डूश स्नान का प्रयोग कर के पूर्व सिर को तथा समस्त शरीर को १० से १५ मिन तक भिगा लेना चाहिए। शरीर पर अधिक समय तक ठण्डे पानी का प्रयोग पारा खाने की अवस्था में करना चाहिए। सीसा का विषस्नायुविक लकवा, पूर्ण शरीर का लकवा, एकांगी लकवा, आदि में ५ मिनट से १५ मिनट तक डूशस्ना सावधानी से लेना चाहिए। (मुण्डे)

७ (क) सिर का डूशस्नानः—सिर दर्द, स्नायुविक दर्द सिर में गर्मी, रूसी आदि में लाभकारी है।

(ख) चेहरे का डूश स्नानः—फोड़े, मुहाँसे, दांत का दर्द, स्नायुविक पीड़ा में हितकर है।

(ग) कर्ण डूश-स्नानः—कान का दर्द, बहना, बहरापन, आदि कर्ण रोग ठीक होते हैं। डूश स्नान के पश्चात मालिश करना नहीं भूलना चाहिए।

(घ) पीठ का डूश-स्नानः—यह स्नान रीढ़, मेरूदण्ड, गुर्दे, नितम्ब पर दिया जाता है रीढ़, कूबड़, नपुंसकता,

जननेन्द्रिय की निर्बलता, रजोरोध में लाभ पहुँचाता है यह स्नान दाहिने पैर की एड़ी से प्रारंभ कर धीरे धीरे पृष्ठ भाग से दाहिने गुर्दे तक पुनः दाहिने गुर्दे से नीचे की ओर दाहिनी एड़ी तक। पश्चात् बायें पैर की एड़ी से बायें गुर्दे तक, पुनः नीचे की ओर बायें पैर की एड़ी तक। दाहिने गुर्दे से बायें गुर्दे से प्रारंभकर दाहिने कंधे तक पुनः नीचे ओर दाहिने गुर्दे तक एवं बायें गुर्दे से बायें कंधे तक पुनः नीचे की ओर बायें गुर्दे तक लाना। पानी कंधे के ऊपरी भाग, छाती एवं पेट पर फैलने न पावे।

(च) भुजा-डूशस्नान:--ऊँगलियों से प्रारंभकर कंधे के निकट ले जाना पुनः नीचे की ओर लाना चाहिए। इस प्रकार दो तीन बार (दिन में) करना चाहिए। खिचना, लकवा, गठिया, सुन्न पड़ना, वातादि में हितकारी है।

(छ) छाती का डूस-स्नान:—एक कटिस्नान लेने के टब में बैठकर एक करवट होकर प्रथम हथेली से प्रारंभ कर भुजा तक भिगा लेना चाहिये। पश्चात् छाती पर एक से दो मिनट तक प्रयोग करना चाहिये। छाती का कफ दूर होता है हृदय रोग में नहीं देना चाहिये।

(ज) जांघ का डूश स्नानः—गुर्दे की क्रिया को उत्तेजित करता है। यकृत, मूत्रपिंड, जननेन्द्रिय, आंतों की शक्ति बढ़ाता है। कब्ज, रक्त जाना, आंव, रक्त की कमी, अलपरज, हिस्टीरिया, नपुंसकता में उपयोगी है। रक्त संचालन ठीक करता है। यह दांई एड़ी से प्रारंभ कर पृष्ट भाग से दाहिने

गुर्दे तक लेना। इसी प्रकार बांई तरफ। पश्चात् सामने भाग से दांई ओर, बांई ओर, छाती एवं पेट बचाना चाहिये इस प्रकार तीन से चार बार करना चाहिए। इसे लेने के बा व्यायाम, मालिश या टहलना नहीं भूलना चाहिये।

(झ) घुटना-डूश-स्नान:—यह स्नान भी दाहिनी प से प्रारम्भ कर घुटने तक एवं इसी प्रकार बांई तरफ। सप्ता में तीन बार प्रयोग करना चाहिए। पैर के रक्त चाप क ठीक करता है। पैर में ठण्ड लगना, चक्कर, छाती की तकलीफ, रक्त जाना, गुर्दे एवं मूत्रपिंड के रोग ठीक होते हैं

(ञ) टखने का डूश-स्नान:—इसे भी उपर्युक्त प्रकार से प्रारम्भ कर घुटने पर समाप्त करना चाहिए। यह सूजन, द हड्डी का खिसकना, गठिये में हितकर है।

(ट) तलवे का डूश स्नान:—इसे सोकर लिया जाता है यह जलन, पसीना निकलना आंखों में जलन, दर्द आदि मे गुणकारी है। शीतल डूश पेट के सूजन, यकृत, प्लीहा गुर्दे, मूत्रपिण्ड, डिंब कोष, हृदय रोग, दर्द कुलंज, नयावात रोग, स्नायु-प्रदाह में नहीं देना चाहिए, बल्कि साधारण गर्म डूश लाभकारी है।

(८) जेट डूश:—दो इंच से अधिक गोलाई लेकर पानी गिरे उसे जेट डूश कहते हैं ऐसे स्थान गोकर्ण तथा उत्तर कनाडा जिले के होनावार में जहां पर प्राकृतिक चश्मे हैं लोग उसमें स्नान कर स्नायु-सम्बन्धी रोगों से मुक्त हुये हैं

(९) बाल डूश:—सिर पर बालों के समान पतली धार गिराना। इससे मस्तिष्क वृद्धि होती है। स्नायुविक रोग ठीक होते हैं।

(१०) पंखा-डूश:--रबर नली से पानी निकलते समय अंगुठा लगाने से पानी पंखे की तरह फैलकर गिरता है इसे ही पंखा डूश ( वाटर फैन डूश ) कहते हैं। यह सिर, हृदय नेत्र, जननेन्द्रिय, यकृत,प्लीहा गुर्दे आदि बीमारियों में बहुत ही गुणकारी सिद्ध हुआ है। यह स्नायु-प्रदाह, रीढ़-प्रदाह दमा, कटिवात, दर्द कुलंज, वातरोग, लकवा में परीक्षित है। शीतल जल का प्रयोग थोड़े समय के लिए हो। स्नान के बाद शरीर गर्म करना आवश्यक है।

(११) तरेरा स्नान:--यह स्नान माली के सींचने वाली बाल्टी से अच्छी तरह लिया जा सकता है। शहरों में नल द्वारा फौवारा बना होता है। नल खोलने पर उपर से फौवारे के रूप में पानी गिरता है। यह आवश्यकतानुसार शरीर के समस्त भागों पर प्रयोग किया जाता है। एक मिनट से अधिक समय नहीं देना चाहिये। स्नान के मध्य एवं बाद में शरीर की मालिश अवश्य करनी चाहिये। शीतल डूश लेने पर शक्ति बढ़ती है। भूख बढ़ती है शरीरिक एवं मानसिक शक्ति मिलती है। थकावट दूर होकर स्फूर्ति आती है। स्वस्थ नींद आती है। गर्म स्नान प्रदाहावस्था में ५ मिनट के लिए लेना चाहिये। गर्मस्नान लेने पूर्व सिर पर गीली पट्टी एवं पश्चात् शीतल स्नान (अल्प काल) लेना एवं मालिश करना

नहीं भूलना चाहिये ।

जीर्णस्नायु रोग, यकृत या प्लीहा वृद्धि, कटिवात, स टिका, पीठ का दर्द। गर्दन प्रदाह, जीर्णवात, में गर्म-ठ डूश स्नान या तरेरास्नान देना चाहिये। ठण्डे जल के प्रयो से समाप्ति कर शरीर की मालिश, व्यायाम या टहल आवश्यक है।

## जल का आन्तरिक प्रयोग

१-(अ) एक टब में ६०° से ९०° के ताप के पानी भरकर उसी में आंखें खोलकर देखना। यह क्रिया कई ब दुहरानी चाहिये। यह आंखों की कमजोरी, धुन्धला दर्द, जलन, सूजन, पागल पशु के काटने आदि में लाभप्र है। यदि चिकित्साकाल में तकलीफ बढ़े तो शुभ चिन्ह है घबराना नहीं चाहिए।

(ब) नेत्र स्नानः—उपर्युक्त विधि के अनुसार 'आई क में पानी भर कर सिर झुका कर आंख डुबा कर खोल चाहिए। इस प्रकार कई बार करना चाहिए। पानी से बाह निकालकर सूर्य के सामने आंखें बन्द कर ५ मिनट तक देख चाहिए।

(स) आई ड्राप्सः—'आई ड्रापर' से दो तीन बून्द पान आंखों में डालना चाहिए-गर्म होते ही गिरा देना चाहिए इस प्रकार प्रातः दोपहर, शाम को तीन चार बार प्रयोग कर चाहिए। कभी कभी भोजन अव्यवस्था के कारण भी आंख

रोगी होती है ऐसी अवस्था में यूफ्रेशिया, कलेण्डुला, रूटा (होम्योपैथी दवायें) फेरमफास कालीमूर, कालीसल्फ, कल्केरियासल्फ (बायोकेमिक दवायें) मिलाना चाहिये।

२-(कान में पिचकारी लगाना:—पिचकारी द्वारा कान में ९०° से ९५° ताप का पानी कान में डालना। जबतक पानी स्वच्छ रूप में न निकले, दुहराना चाहिए। पश्चात् सुखा देना चाहिये।

—क्रमशः

शीतल और सुगन्धित
हिमकान्ति तेल
रजिस्टर्ड
दिमागी, ताकत व बालों को बढ़ाने वाला सर्वोत्तम केशतेल.
हिमकान्ति तेल
HIMKANTH OIL
उत्पादक - राजा बालकृष्णलाल हीरालाल कं.
१२७ मेनरोड, दादर (पो.बॉ ५५२०) बाम्बई १४.

# किसीका बुद्धिभेद न करें

लेखक
श्री ज. रा. कास्तुरे बी. ए. बी. टी.
साहित्यपारंगत, गीतालंकार

जब किसी व्यक्ति के जीवन में उसके सामने कर्तव्य क
और अकर्तव्य क्या इसका निर्णय करने का प्रसंग आता है, त
प्रायः उसकी बुद्धि काम न देती। उसे उस समय किसी औ
के मार्गदर्शन की अपेक्षा रहती। ऐसे समय मार्गदर्शन क
वाले को ही हमारे संस्कृति में गुरु कहते हैं। अज्ञानरू
अन्धकार दूर करके ज्ञान का प्रकाश देने का कार्य गुरु क
हैं, इसलिये गुरुकी योग्यता ईश्वर से भी अधिक मानी ग
है। बिना गुरु के मनुष्य को आत्मज्ञान नहीं होता, मोक्षप्रा

नहीं होती यह हमारे संस्कृति का एक महान् सिद्धान्त है। गुरु श्रेष्ठ अथवा ईश्वर श्रेष्ठ इस प्रश्न का उत्तर देते समय महात्मा कबीर ने गुरु की योग्यता ईश्वर से अधिक बताई है। वे कहते हैं "गुरु गोविन्द दोऊ खडे काकौ लागो पाय। बलिहारी गुरु आपने गोविन्द दियो बताय।" गुरु से ईश्वर प्राप्ति हो सकती है परंतु ईश्वर से गुरुप्राप्ति नहीं होती। महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध संत नामदेवजी महाराज की कथा तो इस विषय पर बहुत प्रकाश डालती है। अस्तु।

व्यक्ति के समान राष्ट्र के जीवन में जब कर्तव्य और अकर्तव्य का प्रश्न उत्पन्न होता है, तब उसे किसी महान् आचार्य अथवा ग्रन्थ का मार्गदर्शन लेना अपरिहार्य होता है। ऐसे मार्गदर्शन करनेवाले भारतीय ग्रंथों में से श्रीमद् भगवद्गीता यह एक सर्वमान्य तथा सर्वश्रेष्ठ है।

वैसे तो भारतीय प्राचीन साहित्य में अनेक गीताएँ दिखाई देती हैं। जैसे रामगीता, हंसगीता, शिवगीता इत्यादि। परंतु गीता शब्द उच्चारते ही सबके सामने एक ही ग्रंथ आता है, और वह है श्रीमद्भगवद्गीता। इतना चिर परिणाम हमारे जीवन पर इस ग्रन्थने किया है। गीता किसी एक पंथ का प्रमाण ग्रन्थ नहीं है। वह तो सारे भारत का एकमात्र धर्मग्रन्थ कहलाने का योग्यता रखता है। वैदिक ग्रंथों का अध्ययन करने का अधिकार परंपराने केवल त्रैवार्णियों को देने के कारण सारे भारतवासियों को योग्य मार्गदर्शन करनेवाला गीता यही एकमात्र ग्रन्थ है। वेद

ईश्वर के निश्वसित कहलाते हैं। (यस्य निश्वसितं वेद उसी ईश्वर ने अपनी जागृतावस्था में अपने ही मुख गीतोपदेश देने के कारण उसकी योग्यता वैदिक ग्रन्थों से अधिक मानी जाती है। स्वयं भगवान् ने भी गीता उपनिषद् रूपी गायों का दूध कहा है। (सर्वोपनिषदो गावो दुग्ध गीतामृतं महत्) इसीलिये भारतीय मनुष्य किसी विचार अथवा प्रवृत्ति का हो उसे अपने मत स्पष्ट करने लिये गीता का आधार लेना पड़ता है। द्वैतवादी, अद्वैतवा संन्यासमार्गी, कर्ममार्गी, योगमार्गी, आतंकवादी, अनास वादी आदि भिन्न भिन्न विचार को अपनाने वाले पंडितों अपने मत पुष्ट्यर्थ गीतापर विवेचक टीकायें लिखी हैं। गीत के समान किसी अन्य तत्वज्ञान विषयक ग्रंथ पर पृथक् विचा प्रगट करनेवाली टीकायें उपलब्ध नहीं हैं। केवल भारती ही नहीं अलबेरुनी के समान अभारतीय पंडितोंने भी अप गीता विषयक विचार प्रगट किये हैं। इसीलिये श्री गीत को भारत का एकमेव धर्मग्रंथ कहने में कोई अत्युक्ति होगी। प्रत्युत वह गीता का यथार्थ वर्णन होगा।

भारतीय युद्ध के पूर्व अर्जुन ने अपने सारथी बने हुये भगवान श्रीकृष्ण को कहा, "जिन लोगों से मुझे युद्ध करना है उनको देख लूं इसीलिये आप मेरा रथ दोनों सेनाओं के बीच खड़ा कीजिये।" अर्जुन के कहने पर जब भगवान ने रथ खड़ा किया तब अर्जुन ने कौरव सेनामें भीष्मद्रोण के समान आचार्य तथा अपने ही भाइयों को देखा। उन्हें देखकर उसके मन में एक शंका उत्पन्न हुयी। इन सब महापुरुषों को

मैं कैसे मारूं? इससे मुझे कुलहत्या का पाप लगेगा।" ऐसा विचार आते ही अर्जुन के मन में कर्तव्य और अकर्तव्य का झगड़ा उत्पन्न हुआ। उसकी बुद्धि को मोह हुआ। और वह निष्क्रियसा हो गया।

ऐसी मोहग्रस्त अवस्था प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कभी न कभी आती है। इस अवस्था का जगप्रसिद्ध उदाहरण डेनमार्क का राजपुत्र हैम्लेट है। उसके सामने "टु बी ऑर नॉट टु बी" का सवाल पैदा हुआ। इस सवाल का उत्तर देनेवाला कोई मार्गदर्शक न मिलने के कारण उसे मोहग्रस्त अवस्थामें ही आत्महत्याद्वारा अपना जीवन नष्ट करना पड़ा। परन्तु ईश्वर की दया से और भारतीय लोगों के सौभाग्य से उस समय अर्जुन को श्रीकृष्ण के समान मार्गदर्शक सारथी के रूप में मिला। उसके उपदेश से अर्जुन का सारा मोह नष्ट हो गया। वह फिर से नये उत्साह के साथ युद्ध करने के लिये सिद्ध हुआ। महाभारत युद्ध के समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन का मोह दूर करने के लिये उसे जो उपदेश दिया उसे ही श्रीमद्भगवद्गीता कहते हैं।

परंतु यहां एक प्रश्न उत्पन्न होता है, अर्जुन के मनमें ऐसी शंका आने का क्या कारण होगा? भीष्म द्रोणादि आचार्य और कौरवादि बंधुजनों के साथ युद्ध करने का अर्जुन का यह पहला समय नहीं था। बृहन्नला के रूप में जब अर्जुन विराट राजाके घर रहता था तब विराटपुत्र उत्तर का सारथी बनकर कौरवों से युद्ध करने के लिये वह गया था। कौरवों

की सेना देखकर बालक उत्तर भागने लगा तब अर्जुन ने उसे धीरज देकर स्वयं कौरवों से युद्ध करके उन्हें परा किया था। उस समय उसके मन में साहस था, उत्साह थ शंका या मोह उत्पन्न नहीं हुआ। तो फिर महाभारत युद्ध पूर्व उन्हीं बंधुजनों के और आचार्यों के साथ युद्ध करने समय आ पहुंचा तब उसके मनमें मोह उत्पन्न होने का क कारण होगा?

कारण ढूंढ़ने के लिए दूर जाने की कोई जरूरत नह कौरव-पांडवों के बीच युद्ध न हो इसलिये अनेक लोगों प्रयत्न किये थे। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने भी इस विषय पांडवों के दूत बनकर युद्ध मिटाने की कोशिश की थी परन्तु दुर्योधन के हटाग्रह से सब प्रयत्न असफल सिद्ध हु युद्ध अनिवार्य हुआ। उस समय पांडवों के मन मे मो उत्पन्न करने के लिये कौरवों द्वारा संजय को पांडवों के पा भेजा गया था। उसने पांडवों के सामने युद्ध के भीषण परि णामों का वर्णन किया। संजय के इस प्रयत्न से पांडवों में केवल अर्जुन के सामने संदेह उत्पन्न हुआ। उसका मन मो ग्रस्त हुआ। संजय ने उस समय जो प्रश्न उपस्थित किये थ उसी को ही अर्जुन ने श्रीकृष्ण के सामने दोहराया। यह थ संजय शिष्टाई का फल। यह सब कथा उद्योगपर्वांतर्गत संजय यान पर्व में विस्तार के साथ दी गई है। संजय के कहने महावीर अर्जुन का बुद्धिभेद हो गया।

युद्ध के समान किसी महत्वपूर्ण कार्य के समय शत्रुपक्ष प्रमुख नेताओं के सामने भ्रम निर्माण करना, उनका धै

कर करना यह राजनीति का एक प्रधान अंग हैं। खुद की शक्ति बढाने से शत्रु की शक्ति कम कर देना अधिक प्रभावशाली उपाय है। शत्रु के मन मे यदि स्वपक्ष के विषय में संदेह-मोह–उत्पन्न हुआ तो वह दिल लगाकर कार्य नहीं कर सकता। इसीलिये पांडवों का युद्धोत्साह कम करने का तथा उनके बुद्धि में भ्रम उत्पन्न करने का राजकीय कार्य संजय ने पूरा किया।

श्री गीता के पहिले अध्याय में अर्जुन के प्रगट किये हुये विचार और संजय यानपर्व में संजय के विचार इन दोनों की तुलना करने से ऐसे लगता है कि मानो अर्जुन के मुख से खुद संजय ही बोल रहा है। अर्जुन का यह बुद्धिभेद दूर करना कोई सामान्य बात नहीं थी। शस्त्र का जखम समय से खुद ही भर आता है। औषधियों का उपयोग करने से तो शीघ्र ही आराम मिल सकता है। परन्तु मनपर किया हुआ परिणाम नष्ट करना कोई खेल नहीं। शत्रु के शरीर का नाश करने की अपेक्षा उसके मन का नाश करना चिरपरिणामकारक होता है। "शस्त्रै हंतास्तु रिपवो न हताः भवन्ति। प्रज्ञाहताः तु नितरां सुहताः भवन्ति।" यह सुभाषित इसी सत्य को प्रगट करता है। इसीलिये आपत्ति के समय दिल न हारना, मनमें संशय अथवा भ्रम उत्पन्न न होने देना, सर्वसामान्य जनता की हिम्मत बढ़ाना यह राजनीति का तथा राष्ट्रसंरक्षण का एक प्रधान अंग है। शत्रु से शस्त्रोंद्वारा पराभूत होनेवाले योग्य समय आनेपर पराक्रम से अपने अपयश का बदला लेनेकी हिंमत रखते हैं। परन्तु बुद्धि से पराभूत हमेशा के लिये ही मारे जाते हैं। उनका पुनुरुत्थान करना अत्यन्त कठिन काम है। देशकी वर्तमान स्थिति को

देखकर तो यह सिद्धान्त अधिकाधिक सत्य सिद्ध होता है संजय ने भारतीय युद्ध के पूर्व अपने वक्तव्य से अर्जुन बुद्धिभेद किया था। इसीलिये अपने बंधुजनों को देख अर्जुन निष्क्रिय बन गया।

उस निष्क्रिय, अर्जुन को मोहरहित, ज्ञानी, सोत्साह औ सक्रीय बनाने के लिये ही गीता का अवतार हुआ। गीता अनेक सिद्धान्तोंका विवेचन किया गया है। परन्तु गी आरम्भ और अंत देखकर यही एकमात्र निश्चय होता है कि निष्क्रिय को सक्रीय बनाना, हतोत्साह को सोत्साह बनाना, मोहग्रस्त का मोह दूर करना तथा अज्ञानी को ज्ञानी बना यही गीता का मुख्य उद्देश है। इस उद्देश्य को पूरा करने के लिये भगवान् श्रीकृष्ण ने स्फूर्ति देनेवाला ज्ञान प्रगट किया और उसका अज्ञानजन्य मोह तथा बुद्धिभेद नष्ट कर उ कौरवों के साथ युद्ध करने के लिये प्रवृत्त किया।

शिक्षक, शिक्षार्थी और पालकों के लिए
समान रूप से उपयोगी

विचार पूर्ण
शैक्षणिक मासिक
शिक्षा प्रदीप
अवश्य पढ़िये

पत्र व्यवहार का पताः—
व्यवस्थापक,
शिक्षा प्रदीप,
हवेली निकट सिटी कोतवाली
भोपाल (म. प्र.)

# खिलौना

(कहानी)

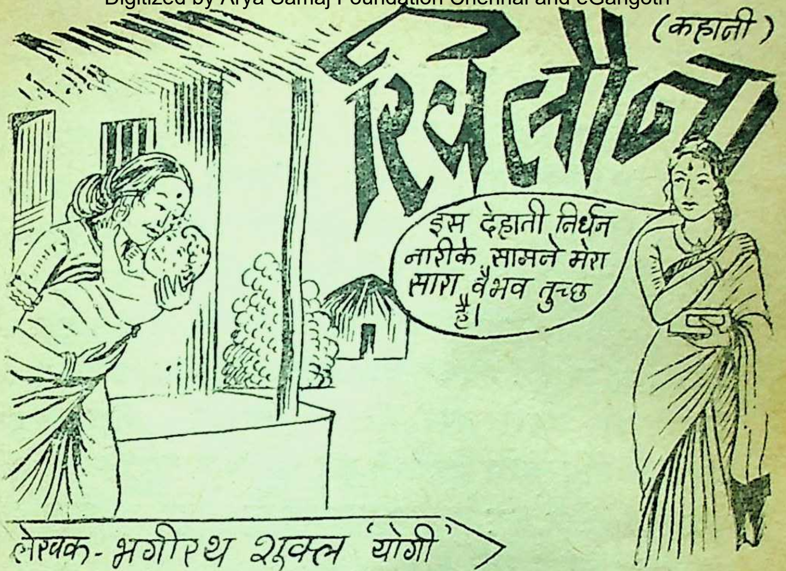
इस देहाती निर्धन नारीके सामने मेरा सारा वैभव तुच्छ है।

लेखक- भगीरथ शुक्ल 'योगी'

जीवन में कभी-कभी कोई ऐसी छोटी-सी दुर्घटना हो जाती है कि पहले तो हमारा मन खीझ, क्षोभ और क्रोध से व्याकुल-सा हो उठता है; लेकिन थोड़ी-ही देर बाद हमें ऐसा महसूस होने लगता है, जैसे इस छोटी-सी दुर्घटनाने हमारे मन पर का परदा दूर हटा दिया है और हमारे अंतरकी बहुत दिनों की अव्यक्त, अस्पष्ट पीड़ा सहसा व्यक्त हो उठी है और तब उस दुर्घटना के प्रति हमारी उकताहट सहसा अपनत्व में परिणत हो जाती है।...

...सभी के जीवन में ऐसा होता है या नहीं—यह तो मैं नहीं जानती, लेकिन मेरे जीवन में तो ठीक ऐसी ही दुर्घटना एक दिन हो गई।...

....मेरा जीवन !....हां, मेरा जीवन ! मेरे पास भी जीव है-ऐसा मुझे महसूस होता है। मैं देखती हूं, सुनती बोलती हूं, सांस लेती हूं, नाटक के मंचपर, सिनेमा के प पर रेडियो के स्टूडियो में अभिनय करती हूं, गाती हूं, हंस हूं, रोती हूं, कारकी सैर करती हूं—इससे मुझे मानना पड़ है कि मैं जीवित हूं, मेरे पास भी जीवन है, लेकिन क्या य जीवन, जीवन है ? जीवन की सार्थकता क्या इतनी ही है सागर की लहरों पर बिना पतवार और मांझी लहरों के साथ-साथ अनजाने तट की ओर बढ़ते रहना औ एक दिन किसी चट्टान से टकराकर चूर-चूर हो जाना-क्य नौका का उद्देश्य यही है ? ...

...हां, मेरी जिन्दगी ठीक ऐसी ही है-बिना पतवार औ मांझी की नौका के समान जो अदृश्य चट्टान से टकराने क प्रतीक्षा कर रही है। पता नहीं, कब ठोकर लगे, कब अ आ जाय।

—इस तरह के विचार आजकल मेरे मनमें हमेश मँडराया करते हैं। एक विचित्र-सी शून्यता, अजीब- घुटन मैं हमेशा महसूस किया करती हूं। मन किसी अज्ञा अभाव की पीड़ा से छटपटाया करता है और दिन-प्रति मेरी यह बेचैनी बढ़ती ही जा रही है'....

....अभाव की पीड़ा ? अभाव ??... कितनी विचित्र बा है यह ! कोई सुनेगा तो क्या कहेगा ! भारत की सर्वश्रे अभिनेत्री निर्मलादेवी के जीवन में भी कभी कोई अभाव

सकता है ? उसे भी किसी चीजकी कमी हो सकती है ? लाखों की सम्पदा जिसके पास है, संयमी, स्थितप्रज्ञ पुरुष के मनको भी चंचल बना देने वाला रूप जिसके पास है, भारत के कोने-कोने में फैली हुई कीर्ति जिसके पास है, बड़े-बड़े दिग्दर्शक, कलाकार, साहित्यिक और कुबेरपुत्र जिसके कटाक्ष के इशारों पर नाचा करते हैं, जो बिलकुल निरंकुश और स्वतंत्र है—उस निर्मलादेवी को भला किसी चीजका अभाव हो सकता है ? इस बातपर क्या कभी कोई विश्वास कर सकेगा ?....

...हाँ, बात तो सर्वथा अविश्वसनीय है ही। स्वयं मुझे भी इस पर विश्वास नहीं होता। जब अनजाने अभाव की पीड़ा से मेरा मन तलमलाने लगता है तो मैं उससे पूछती हूं—"अरे! इतनी व्याकुलता, इतनी तड़पन किसलिये ? तुझे किस चीज की कमी है ? किस अज्ञात आकांक्षा से तू इतना बेचैन हो उठा है ? राजा-महाराजाओंका-सा वैभव, जीवन का दुर्लभ आनन्द तुझे मिल रहा है—उसे लेकर मस्त क्यों नहीं रहता ? यह व्यर्थ की जलन, निरर्थक व्याकुलता किस लिये ?"

लेकिन मन यह उपदेश नहीं सुनता। उसकी पीड़ा किंचित् भी कम नहीं होती, अंतर का दाह तनिक भी शान्त नहीं होता। न तो उसे संतोष ही मिलता है और न अपने अभाव, अपनी आकांक्षा का स्वरूप ही वह प्रकट कर पाता है। कितनी विचित्र बात है यह! कितनी तीव्र, कितनी दुखदायी, कितनी अनोखी पीड़ा!!....

....अपनी इस अनोखी पीड़ा को भूलने के लिये मैं आजकल निरंतर प्रयत्न किया करती हूं। एक साथ कई फिल्मों के काँट्रैक्ट मैंने ले रक्खे हैं, आकाशवाणी के प्रत्येक निमंत्रण को भी मैं स्वीकार कर लेती हूं, रंगमंचवालों को भी मैं निराश नहीं लौटाती और इस तरह प्रतिदिन सोलह-सोलह, अठारह-अठारह घंटे अथक परिश्रम किया करती हूं। लोग कहते हैं कि मैं संपत्ति और कीर्ति के पीछे दीवानी हो गई हूं और वे मेरी हँसी उड़ाते हैं, लेकिन मैं उन्हें कुछ भी नहीं कहती बेचारे क्या जानें कि निर्मलादेवी संपत्ति और कीर्ति के लिये नहीं, बल्कि अपने मनकी असह्य पीड़ा को भुलाने के लिये यह सब कर रही है। इस तरह दिन-रात कार्यव्यस्त रहने में मेरा उद्देश्य केवल यही है कि अपने अंतर की अनजानी वेदना को मैं भूली रहूं और दिनभर की मेहनत से थककर, चूर-चूर होकर रातको अपने बिस्तरे पर लेटूं तो लेटते ही तुरन्त सो जाऊं और इस तरह अपनी पीड़ाको महसूस करने का अवसर ही मुझे न मिले !....

...लेकिन मेरा यह उद्देश्य सफल नहीं हो पाता। दिनभर के कठोर परिश्रम के बाद भी रातको मुझे नींद तनिक भी नहीं आती। मेरे हृदय की दिनभर दबी हुई पीड़ा बड़े जोर से ऊपर उभर आती है और तब उस पीड़ा की तलमलाहट में नींद न जाने कहां भाग जाती है....

....इधर इधर तो मेरी यह पीड़ा इतनी अधिक बढ़ गई थी कि मैं पागल होने के बिलकुल पास पहुंच गई थी और अबतक तो मैं पागल हो भी जाती, लेकिन....

....लेकिन कल शामको एक ऐसी छोटी--सी दुर्घटना हो गई जिसने मुझे पगली बनने से बचा लिया और इसीलिये तो मैंने अभी-अभी आपको बताया कि दुर्घटनायें भी कभी २ हमारे लिये आशीर्वाद बन जाती हैं और जो दुर्घटना आशीर्वाद बन जाती है उसे दुर्घटना भी कैसे कहा जाय ? लेकिन फिर भी, थी तो वह दुर्घटना ही !....

....मेरी यह आदत बहुत पहले की है कि 'आउट--डोर--शूटिंग' के लिए जब मैं कहीं बाहर जाती हूं तब शहर की उकताहट को भूलने के लिए अवकाश के क्षणों में आसपास के ग्राम्य प्रदेश की खूब सैर करती हूं—और सो भी लगभग अकेले—मैं और मेरा ड्राइवर बस, कारमें और कोई नहीं रहता।

सो कल भी जब हमारा कैम्प उस छोटे--से देहाती गांव में पड़ा और शामके समय थोड़ी देर के लिए शूटिंग बन्द हुई तब मैं अपनी कारमें बैठकर निकल पड़ी आसपास का पर्वतीय सौन्दर्य देखने ! सूरज डूबने में अभी कुछ देरी थी और उसकी अंतिम, सुनहली, ठंडी किरणें सड़क के दोनों ओर खड़े हुए पेड़ों के पत्तोंपर, दुर--दुर तक फैले हुये खेतों में धीरे-धीरे झूमनेवाले धान के हरे--भरे पौधों पर और कारके चमकील बॉनेट पर नाच रही थीं। ठंडी २ हवाके मंद २ झोंके शरीर में मीठी सिहरन पैदा कर रहे थे और निर्जन, चिकनी सड़क पर कारकी धीमी २ सरसराहट संगीत की तरह सुरीली लग रही थी।...

....लेकिन यह सुरीला संगीत मैं अधिक समय तक न सुन सकी। थोड़ी देर बाद कार की रफ्तार कम हो गई, उसके इंजन की सरसराहट बन्द हो गई और एक हल्का सा झटका देकर वह रुक गई।

मैंने ड्राइवर से पूछा—'क्यों जी, क्या हो गया?'

'मालूम नहीं साहब! इंजन क्यों बन्द हो गया?' ड्राइवर ने कार से उतरते हुए कहा, 'मैं अभी देखता हूं।'

मैंने कहा, 'जल्दी देखो, शूटिंग में देरी हो जायगी तो डाइरेक्टर साहब का मिजाज बिगड़ जायेगा। 'सेट' तैयार गया होगा।'

ड्राइवर ने तबतक बॉनेट उठा दिया था और वह इंजिन के अन्दर झांक रहा था। एकाध मिनट के बाद उसने कहा··'पेट्रोल खत्म हो गया साहब!'

सुनते ही मैं क्रोध से जल उठी और व्यंग-भरे स्वर से बोली···'शाबाश मेरे शेर। इस वीरान जंगल में लाकर तुमने बहुत बड़ी खुशखबरी सुनाई। अब हम सारी रात इस जंगल के पेड़ गिनेंगे और वहां सेट पर इन्तजार करते हुए डाइरेक्टर साहब मेरा गुणगान करेंगे।...मैं पूछती हूं, चलते समय पेट्रोल की टंकी देख लेने को क्या तुम्हारी आंखें फूट गई थीं?'

ड्राइवर ने लज्जित स्वर से कहा----'कसूर माफ कर दो साहब।...मैं अभी दौड़ कर पेट्रोल लिये आता हूं।'

मैंने कुछ नर्म होकर पूछा···'कहां से लायेगा?'

'जी, अपने कैम्प से ले आऊंगा।'

'कैम्प से ?'

'जी हां!...और तो आसपास कहीं नहीं मिलेगा।'

'कैम्प यहां से कितनी दूर होगा?'

'जी, छ: मील के करीब तो होगा ही।'

'छ: मील?....तो यह कहो कि तीन घंटे के लिए फ़ुर्सत हो गई!' मुझे पुनः क्रोध आ गया।

इस पर ड्राइवर ने गिड़गिड़ा कर कहा—'तीन घण्टे लगेंगे साहब!....मैं दौड़ता हुआ जाऊंगा और वहां से कोई गाड़ी ही लेता आऊंगा बहुत जल्दी।'

इस प्रस्ताव को चुपचाप मान लेने के अतिरिक्त मेरे पास और चारा ही क्या रह गया था? सो मैंने कहा—'अच्छा तो जा, लेकिन फौरन लौटना!'

'मैं अभी आया साहब!' कह कर ड्राइवर कैम्पकी ओर दौड़ पड़ा और मैं पीछे की गद्दी से सिर टेक कर अधलेटी सी बैठ गई। अभी थोड़ी देर पहले अपनी जिस कार पर मुझे गर्व हो रहा था, वही अब मुझे जेल की कोठरी-सी प्रतीत होने लगी, और इस दुर्घटना को लेकर मेरे मन में रह कर खीझ उत्पन्न होने लगी। कहां तो निकली थी सैर को और कहां इस व्यर्थ की परेशानी में फंस गई! अब कम से कम दो घंटे तक तो यहां अकेली बैठे २ मक्खियां मारनी पड़ेंगी! इस कम्बख्त ड्राइवर को तो निकाल ही देना चाहिए।...

...धीरे-धीरे मेरी खीझ बहुत अधिक बढ़ गई और तब

मनको बहलाने के लिये मैं कार से नीचे उतर कर सड़ पर टहलने लगी।

अबतक सूरज अस्त चुका था, लेकिन अन्धेरा घिरने अभी देरी थी। हवा अब तनिक और तेजी से बहने लगी थ और पेड़ की पत्तियों में हल्की-हल्की सरसराहट हो लगी थी। पंछी भी चहचहाने लगे थे।

इस लुभाने वातावरण को देखकर मेरा मन पुनः प्रफुल्लित हो उठा। दुर्घटना की बात जैसे मैं बिलकुल भूल ग और चारों ओर की प्रकृति-सुषमा देखते हुए आगे बढ़ने लगी।

लेकिन अभी थोड़ी ही दूर मैं चल पाई थी कि ए अनोखे दृश्य को देख कर ठिठक कर खड़ी हो गई। धान खेत की मेंड पर एक बहुत छोटी सी कुटिया बनी हुई थी और उसमें बैठी हुई एक युवती अपने शिशु को दुग्धपान करा रही थी। मां और शिशु-दोनों के मुख पर परम तृ नाच रही थी—ऐसी तृप्ति जैसे उन्हें अखिल विश्व का एक छत्र साम्राज्य ही मिल गया हो ....!

इस दृश्यको देखते ही, जाने क्यों, मेरे अन्तर में ए हूक सी उठी। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे इस देहाती, निर्धन नारी के सामने मेरा सारा वैभव तुच्छ है, नगण्य है! मेरे मन के गवाक्ष खुल गए। अपनी चिर-कालीन अस्पष्ट, अव्यक्त पीड़ा को मैं समझ गई। अपनी वेदना का स्वरूप मेरे सामने साकार हो उठा। इच्छा हुई कि इस सौभाग्य-शालीनी नारी के चरण दौड़कर पकड़ लूं और कहूं—'सखी मेरा सारा धन, वैभव, रूप, सम्मान-सब कुछ तू ले ले और

बदले में अपना सुख मुझे दे दे! सच कहती हूं, तेरा निहोरा मैं जीवन भर नहीं भूलूंगी।'

लेकिन मैंने ऐसा नहीं किया। हृदय की भावनाओं तथा आंखों के आंसुओं को प्रयास-पूर्वक रोककर मैं आगे बढ़ी। लेकिन इस समय मैं बहुत धीरे-धीरे चल रही थी। लग रहा था जैसे पैरों में मन-मन भर की बेड़ियां पड़ी हुई हैं। मन परबस उसी कुटिया की ओर लौटा जा रहा था। आंखों की सामने उसी मां और उसके शिशु की आकृति बराबर नाच रही थी....।

...आह! आज मुझे मालूम हुआ कि मेरा जीवन कितना व्यर्थ है—कितना विफल! लांखों की सम्पदा, अप्सरा-सा सौन्दर्य और देश भर में व्याप्त कीर्ति पाकर मैं सोच रही थी कि मुझे सब कुछ मिल गया, पाने के लिये कुछ भी नहीं बचा, लकिन आज मैंने जाना कि मुझे कुछ भी नहीं मिला! नारी की चिर-शाश्वत मातृत्व की पिपासा मेरे अन्तर में जाग उठी और मेरा तन-मन अकुला उठा। काश! मेरी भी छोठी सी गृहस्थी होती! मेरे भी कोई 'वे' होते! मेरी गोद में भी नन्हा सा, प्यारा सा मुन्ना होता!

....ओह! मैंने कितनी बड़ी भूल की! अपने आपको कितना बड़ा धोखा दिया--कितना बड़ा धोखा!...जिस वैभव भरे निरंकुश, स्वच्छंद जीवन में सुख ढूण्ढ़ने चली थी वह कितना बड़ा मृगजल सिद्ध हुआ!....अभिनेत्री-जीवन की चमक-दमक से मेरी आंखें इस तरह चौंधिया गई थीं कि

वास्तविक सुख को मैं देख ही नहीं पाई।... आह। सुख कि दिशा में था और मैं बढ़ किस दिशा में रही थी।... विधाता। यह मैंने क्या कर डाला !....

....लेकिन अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। अभी बहुत नहीं हुई है।....हां हां, अभी भी मैं सच्चा सुख पा सकती निर्मला अब अधिक समय तक दुःखी नहीं रह सकती। आज ही अभिनेत्री-जीवन का पाश तोड़ देगी और स सुख ढूंढेगी। अब अपने आपको वह लोगों का खिलौना न बनने देगी—एक क्षण के लिए भी नहीं।

'सम्पदा'

हिन्दीमें अर्थ शास्त्रीय साहित्य का पर्याय बन गई है।
सम्पदा हिन्दी की सबसे पुरानी आर्थिक पत्रिका है।
सम्पदा में सार्वजनिक और निजी उद्योग विषयक संतुलित
और युक्ति संगत दृष्टिकोण
सम्पदा के विशेषांक अनुपम होते हैं।
सम्पदा के स्थायी स्तंभ-योजना, कृषि, उद्योग, श्र
परिवहन, कोयला, बिजली, बैंक, बीमा, सर्वोदय आदि
सम्पदा विविध राज्योंद्वारा शिक्षालयों के लिए स्वीकृत है।
सम्पदा छात्रों, कालेज के प्राध्यापकों के लिए आर्थिक
विश्व कोष है।
ज्ञान वर्द्धक, नवीनतम आर्थिक जानकारी से युक्त 'सम्पद
के आज ही ग्राहक बनिये। वार्षिक मूल्य ८ रु. ५० न. पै.
नमूनांक के लिए ६० न. पै. भेजें।
व्यवस्थापक—सम्पदा २८/११ शक्ति नगर दिल्ली

RAMTIRTH
REGD. SPECIAL
Ramtirth
SHRI RAMTIRTH YOGASHRAM
BOMBAY - INDIA

# रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

## स्पेशल नं. १

(रजिस्टर्ड)

## रामतीर्थ ब्राह्मी तेल [स्पेशल नं. १] का महत्व और लाभ

विगत २० वर्षों से यह तेल अनेक महत्व पूर्ण वनस्पतियों (जड़ी बूटियों) से निर्मित किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु (गर्मी के दिन) वर्षा ऋतु (बरसात के दिन) हेमन्त ऋतु (ठंडी के दिन) में स्वास्थ्य के लिये सर्वथा उपयोगी रहे, ऐसी शास्त्रीय विधि से तैयार किया जाता है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में वनौषधीय मधुर सुगंध होने से उपयोग करने वाली महिलायें तथा पुरुष वर्ग हमेशा के लिये इसे अपना लेते हैं, और अन्य लोगों को महत्व बताकर व्यवहार में लाने के लिए सलाह देते हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल युवक तथा वृद्धों के लिए ही उपयोगी नहीं अपितु छोटे से छोटे बच्चे तक के लिए लाभ-

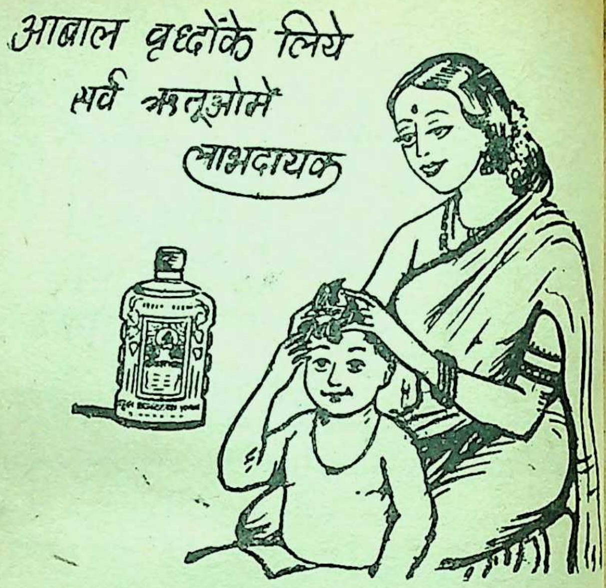

दायी है ऊपरोक्त रेखाचित्र में माता अपने बच्चो के सि रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की मालिश करके सौन्दर्य, स्मरण वृद्धि तथा आंखों की दृष्टि अच्छी बनाए रखने के प्रयत्नशील है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल सिर के बालों के लिये ही है, किन्तु शरीर मालिश के लिये भी लाभ दायक आगे के रेखा चित्र में आप देख सकते हैं कि अपने हाथों से तेल मालिश कर सारे शारीरिक अवयवों नीरोग एवं सशक्त बना रहे हैं प्रतिदिन प्रातःकाल स्ना १० मिनट पहले सारे शरीर तथा सिर की तैल मालिश से २५ मिनिट तक अवश्य करें। ऊंचाई और आयु के हि

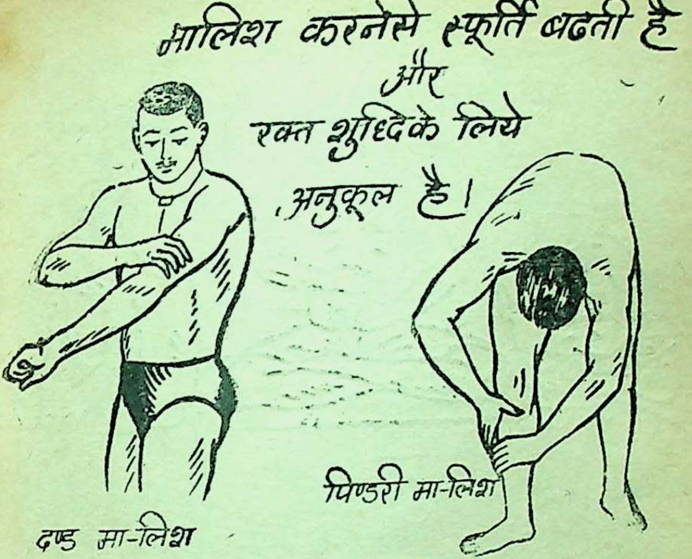
मालिश करनेसे स्फूर्ति बढती है
और
रक्त शुध्दिके लिये
अनुकूल है।
पिण्डरी मा-लिश
दण्ड मा-लिश

से शरीर का वजन कम होने से वजन बढ़ जायगा। अधिक वजन होने की हालत में आहार परिवर्तन के साथ २ रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का प्रयोग करने से आवश्यक परिमाण में रहेगा।

आप आगे के रेखाचित्र को सूक्ष्म दृष्टि से देखिये। हाथों को, पेट को तथा पीठ के ऊपर मालिश करने के सुलभ तरीके बताए गये हैं। अनेक महिलाओं तथा पुरुषों का विचार है कि अपने हाथों से तैल मालिश अच्छी प्रकार से नहीं कर सकते हैं। दूसरों से करानी पड़ेगी। यदि दूसरों से मालिश कराने की सुविधा होवे तो अवश्य करा सकते हैं। सुविधान होने पर आलस्य, शंका, और शर्म को छोड़कर अपने हाथों से हर दिन मालिश करने की आदत डालें, किसी कारण से

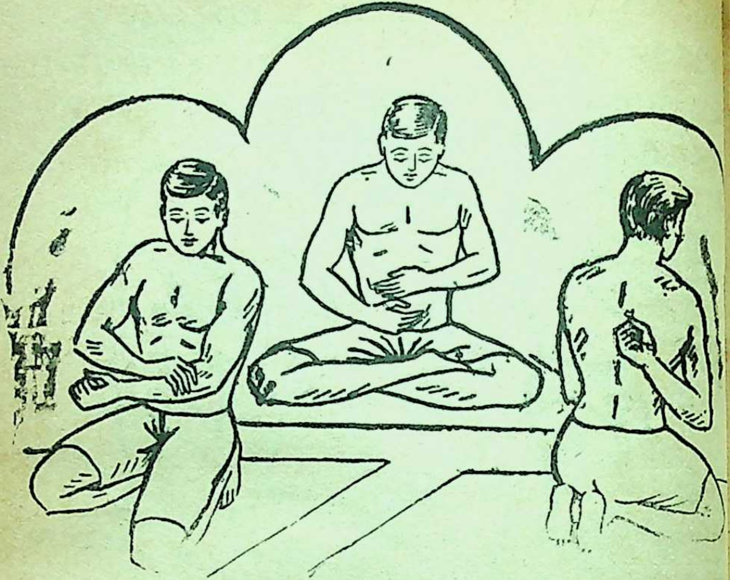

यदि हर रोज मालिश न हो सके तो सप्ताह में १ से ३ रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य मालिश करें या करावें।

## विशेष सूचना और लाभ

आपने ऊपर छपे सर्व रेखा चित्रों को देखकर यह लिया ही होगा कि रामतीर्थ ब्राह्मी तैल की मालिश से वृद्ध-बालक, माता, (महिला) तथा पुरुष वर्ग कितने मय सुडौल शरीर वाले तथा आकर्षक मुख मुद्रा वाले कितनी सुन्दर केशभूषा वाले हैं। इतना ही नहीं अवयवों को हृष्ट-पुष्ट बनाने में सामर्थ्यवान बन गये हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के प्रयोग से गहरी नींद, स्मरण की वृद्धि, बाल काले, घने तथा लम्बे बनाने में अनुकूल है इससे बालों का झड़ना बन्द कर गंजा पन दूर करने में

दायी है। कान में डालने से कान के सूक्ष्म अवयव नीरोग बने रहते हैं। ऐसे अनेकानेक महत्त्वपूर्ण लाभों की दृष्टि से ही वैद्यराज, डाक्टर, प्रख्यात विद्वान् वर्ग, राजनीतिज्ञ और अन्य प्रतिष्ठित वर्गों से रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के गुणों के विषय में स्वानुभव पूर्ण अनेक प्रमाण पत्र प्राप्त हो चुके हैं।

## छात्र वर्ग के लिये लाभदायक

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी ऋषि--मुनि, साधु--सन्त, त्यागी--वैरागी उदासीन वृत्ति के लोगों को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अनेक प्रकार के लाभ अवश्य ही प्राप्त होंगे।

महत्वपूर्ण जड़ी बूटियों के कारण से छात्र--छात्राओं, (लिक स्कूल, मिडिल स्कूल, हायस्कूल तथा कालेज के) को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य लाभ प्राप्त होगा। जैसे, आंखों की दृष्टि सतेज रहेगी। मस्तिष्क शान्त रहेगा। स्मरण शक्ति बढ़ जायेगी। शरीर मालिश से शरीर में स्फूर्ति बढ़ेगी, स्नायु संस्थान तथा रस ग्रन्थियों में शक्ति का संचार होगा।

वैसे तो त्वचा की कान्ति, रक्त परिभ्रमण के साथ २ स्वस्थ रहना, चर्मरोग निवारण, शारीरिक जोड़ों में बल, समस्त शरीर में समशीतोष्णता आदि अनेक लाभ सबको प्राप्त होता है। यदि आपने अभी तक रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का उपयोग कर लाभ नहीं लिया हो तो आज ही अपने शहर अथवा गांव के दवा बेचने वाले अथवा जनरल मर्चेन्ट से खरीद करें। दो साइजों में प्राप्त है।

न मिलने पर निम्न पते पर लिखें।

**श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.**

# ग्रीष्म ऋतु क अमृतफ आम

लेखक
गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'
एन. डी. (प्राकृतिक चिकित्सक)

आम का मौसम आ गया है। आम के इस पूरे मौसम में, आम का विधिवत् सेवन करके शरीर में नयी शक्ति, नसों में नया वेग, मन में नयी उमंग तथा आंखों में नय तेज लाइये।

अमृत-फल—आम का नाम जबान पर आते ही मस्तिष्क जैसे उसकी मधुर एवं मादक गंध से भर-सा जाता है औ तबियत हरी हो जाती है। इसीसे यह बात आसानी से समझ में आ सकती है कि जिस वस्तु के स्मरणमात्र से दिलोदिमाग तरोताजा हो जाता है, उसके प्रत्यक्ष देखने औ खाने में कितना स्वाद एवं आनन्द आयेगा। आम की एक ऋतु में उसी स्वर्गीय आनन्द की अनुभूति से प्रेरित

होकर एक समय महाकवि अकबर ने अपने लखनऊ स्थित एक मित्र को लिखा था:—

'नामा न भेजिये, न तो पैगाम भेजिये।
इस ऋतु में अगर भेजिये तो आम भेजिये॥
इसका रहे खयाल कि रख के भी खा सकूँ।
पच्चीस गर हों पक्के तो दस खाम भेजिये॥

कहते हैं, आम भूतल पर अमरपुरी से आया है, इसीसे उसका एकनाम 'अमृतफल' हुआ और दूसरा 'देवफल'। इसे भारतवर्ष के ही नहीं, अपितु संसार भरके फलों का राजा कहा जाता है।

आम के कई नाम हैं, जैसे-रसाल, आम्र, सहकार, कामशर, कामवल्लभ, भृंगाभीष्ट, वसन्तदूत, मन्मथालय, कोकिलावास, पिकप्रिय, अम्बरिया, अंबम् तथा अंबो आदि। ईरानी भाषा में आम को अम्बाह, अरबी में अम्बज, अंग्रेजी में मैंगो, पुर्तगाली में मैंग, तमिल में मांगई, तथा मलयालम में मआंग कहते हैं। गुजराती में आंबो, मराठी में आंबा, तथा लैटिन में मंगीफराइंडिका इसके नाम हैं।

राजनिघण्टुकार ने आम के मुख्यतः पांच भेद माने हैं:—

(१) साधारण आम, यानी बागों में गुठली से उत्पन्न होनेवाले देशी आम।

(२) कोशाम्र। इसे रानी आम भी कहते हैं। यह जंगलों में स्वतः उत्पन्न होता है। इसके फल और पत्ते साधारण

आम की अपेक्षा छोटे होते हैं।

(३) राजाम्र। यह साधारण से बड़ा होता है।

(४) महाराजाम्र। यह आधुनिक बड़े कलमी आमों जाति का होता है।

(५) रसालाम्र। यह भी महाराजाम्र के समान ही होत है।

आम की लगभग १२०० किस्में होती हैं। कुछ वर्ष पू लखनऊ में आमों की प्रदर्शनी हुई थी जिसमें एक साथ ३ किस्म के आम प्रदर्शित हुये थे।

कुछ प्रसिद्ध आम ये हैं:— दसहरी, (लखनऊ), लंग (बनारस), बथुआ (पूसा), जर्दालू (भागलपुर) सीपि (हाजीपुर) सुकुल (हाजीपुर) आलफान्सो (रत्नागिरी), फज (मालदह), सफेदा, कपुरी, तोतापरी, लालदिया, दिलपसं कृष्णभोग, माड़ी, चौसा, सरौली तथा बेगनपल्ली, आदि।

आम के पेड़ जो बीज से उगाये जाते हैं, उनके फल बी कहलाते हैं और जिनकी कलम लगाये जाती हैं, उनके फ कलमी कहलाते हैं।

कच्चे आम की गुठली जबतक सख्त नहीं होती तब ऐसे आम को अमिया टिकोला, या कैरी कहते हैं और ज वह सख्त हो जाती है तब उस आम को कच्चा आम क जाता है।

पक्के आम भी तीन प्रकार के होते हैं। पहला वह जो डाल पर ही पकता है और पक जाने पर स्वयं गिर पड़ता है। इसे टपका आम कहते हैं। दूसरा वह जो डालपर पूरा पका नहीं रहता कि तोड़ लिया जाता है। तीसरे प्रकार का आम 'पाल का आम' कहलाता है। कच्चे या अधपके आमों को भूसे के ढेर आदि में गाड़कर जब पकाया जाता है तो उसे 'पाल का आम' कहते हैं। ये मीठे तो होते हैं, पर गुण में डाल के पके आमों का मुकाबला नहीं कर सकते।

इन तीनों प्रकार के आमों में सबसे अच्छा और गुणकारी आम डालपर का पका और टपका होता है।

हमारे यहां आम का धार्मिक तथा सांस्कृतिक महत्व भी कम नहीं है। हवन तथा यज्ञादि में आम की ही लकड़ियों का उपयोग होता है। मांगलिक अवसरों पर आम के पत्तों के तोरण अथवा बंदनवार घरों, मंडपों, एवं मन्दिरों पर बांधे जाते हैं, और नवरात्र में कलश-स्थापन के समय आम्रपत्रों का उपयोग अनिवार्य माना जाता है।

आम के सम्बन्ध में एक खास बात यह है कि यह भारत वर्ष के अतिरिक्त संसार के और किसी भी देश में अधिकता से नहीं पाया जाता। आमका फल भारत में ४०००वर्ष पुराना है। इसकी सबसे पहली फसल भारत में ही हुई।

बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र तथा मद्रास आदि प्रान्तों में आम विशेषरूप से उत्पन्न होता है। सरकारी हिसाब

से जाना गया है कि सारे भारत में ६६ लाख बीघा जमीन मे आम के बगीचों में आम उत्पन्न होता है। बंगाल के मालद ज़िले में आम की उत्पत्ति सब जगहों से अधिक होती है। बिहार के दरभंगा जिले में कलमी आम के बगीचे अन्य स्थानों से अधिक हैं। जिन स्थानों में आम की उत्पत्ति अधिक होती है, वहां आम की फसल अच्छी होने पर लोग दो-तीन महीने प्रधान खाद्य के रूप में आम का व्यवहार करते हैं।

आम अप्रैल मास से लेकर सितम्बर मास तक प्राप्त होता है। लेकिन मई, जून, जुलाई में इसकी बहुतायत रहती है।

पिछले वर्ष महाराष्ट्रका सुप्रसिद्ध आलफान्जो आम वायुयान द्वारा विलायत भी भेजा गया था जहां उसकी बड़ी तारीफ हुई थी। किन्तु अभी यह व्यापार बाहरी देशों में व्यापक रूप से चालू हो रहा है। अमेरिका में आम की पैदावार और शौक दिनोंदिन उन्नति पर है। एक अमरीकी लेखक के अनुसार अमेरिका दो बातों के लिये भारत का सदा ऋणी रहेगा— (१) आम और (२) वेदांत। वास्कोडिगामा जब भारत आया था तो वापस जाते समय वह अपने साथ आम भी ले गया। तभी से आम का प्रचार-प्रसार पश्चिमी देशों में भी शुरू हुआ।

## रासायनिक विश्लेषण

पके बीजू आम में ८६.१ प्रतिशत जल, .६ प्रतिशत प्रत्यामिन, .१ प्रतिशत बसा, .३ प्रतिशत खनिज लवण, १. प्रतिशत रेशा, ११.८ प्रतिशत कार्बोज, .०१ प्रतिशत खटिकम

.०२ प्रतिशत स्फुर, १०० ग्राम में ५ मिलोग्राम लोहम, खाद्योज 'ए' और 'डी' तथा काफी मात्रा में खाद्योज 'सी' होता है। सेल्युलोज ४.७०, राल १.९१, तथा टाटरिक और साइट्रिक एसिड ७.४० भी होता है।

कच्चे आम में ४.५ प्रतिशत लोहा, गर्मी प्रति एक आउंस में ११ कैलोरी और विटामिन 'ए' २० प्रतिशत होता है। इसमें भी टार्टरिक एसिड, साइट्रिक एसिड और गालिक एसिड पाये जाते हैं।

'लिस्टर इन्स्टीट्यूट लण्डन' में परीक्षा करने पर आम में 'ए' और 'सी' विटामिन अधिक मात्रा में पाये गये। इसी सम्बन्ध में कुछ दिन हुये वहां के 'एम्पायर मार्केटिंग बोर्ड' की ओर से एक विज्ञप्ति निकाल कर बताया गया कि आम में 'ए', 'सी' और 'डी' विटामिन अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं। विटामिन 'ए' बाहरी विष एवं रोग कीटाणुओंके अभाव-प्रभाव को रोकता है, आंखों की ज्योति बढ़ाता है, फेफड़ों को साफ रखता है, हृदय को बल देता है, रक्त को शुद्ध करता है और बढ़ाता है, पाचन और काम-शक्ति में वृद्धि करता है तथा मूत्र खुलकर लाता है। विटामिन 'सी' का काम हर प्रकार के रोगों से बचाना होता है। तथा विटामिन 'डी' दांतों एवं शरीर की हड्डियों को मजबूत करता है।

### आम के स्वास्थ्यवर्द्धक गुण

आम में, विशेषकर पके आम में इतने स्वास्थ्यवर्द्धक गुण होते हैं कि यदि उनके बारे में लिखा जाय तो एक पूरी पुस्तक

तैयार हो सकती है। इसीलिये आमको गुणों का भण्डार कहते हैं। अकेले आम पर रहकर मनुष्य बहुत समय तक स्वस्थ रह सकता है।

अमेरिका के अग्रगण्य डाक्टर विलसन ने बड़े जोरदार शब्दों में स्वीकार किया है कि आम में मक्खन से सौगुना अधिक पोषकतत्व विद्यमान होते हैं। उन्होंने परीक्षा करके यह भी सिद्ध किया है कि आम के उचित प्रयोग से शरीर के स्नायविक संस्थान को शक्ति मिलती है, शुद्ध रक्त बहुतायत से उत्पन्न होता है, तथा शौर्य-वीर्य की वृद्धि होती है।

होमियोपैथी के मत से आम, 'शोरा' विष को शरीर से निकाल देने की शक्ति रखता है। इसी से आम के अधिक सेवन करने से प्रायः फोड़े निकलते हैं, जो इस बात का प्रमाण है कि शरीरस्थित विष का आम शत्रु है।

कलमी आम शीघ्र पाची नहीं होता, पर बीजू होता है, विशेष कर रेशे वाला, जो कब्ज को भी दूर करने वाला होता है। इसी लिये बीजू आम, कलमी से अधिक गुणकारी होता है।

पका हुआ बीजू आम स्वादिष्ट मीठा, स्निग्ध, बल एवं वीर्य का बढ़ाने वाला ठण्डा, भारी तथा वायु को नष्ट करने वाला होता है। यह हृदय के लिये प्रिय, सुख अनुभव कराने वाला, तृप्ति दायक त्वचा के वर्ण को स्वच्छ करने वाला, व कान्ति को बढ़ाने में सहायक होता है। इसको चूसने के बाद दूध पीने से इसके ये गुण और भी बढ़ जाते हैं। पका बीजू

आम सेवन करने से मेदा खूब साफ होता है। जिन को कब्ज की शिकायत रहती हो, या शौच साफ न होता हो, ऐसे लोगों को पका बीजू आम दवा का काम करता है। कब्ज ही क्यों, आमाशय सम्बन्धि सभी रोगों में पके बीजू आमों का सेवन अधिक लाभकारी सिद्ध होता है। भाव प्रकाश में लिखा है कि आम से नया खून पैदा होता है और तपेदिक के रोगियों के लिए यह रामबाण औषधि है।

## आम खाने का ढंग

अगर स्वास्थ्य को उत्तम बनाने के ख्याल से आम खाना हो तो डाल के पके और गिरे ताजे एवं मीठे बीजू आम, भोजन के साथ नहीं, अकेले खाइये। ऐसे थोड़े से आमों को लेकर ठंडे पानी से भरे मिट्टी के घड़े में डाल दें और रात भर या कम से कम दो घंटे तक उन्हें जल में ही रहने दें। ऐसा करने से उनकी अनावश्यक गर्मी शान्त हो जायगी। अब एक-एक आम निकाल कर और उसकी टेपी तोड़ कर उसका लेसदार चोप बहा देने के बाद उसका पतला-पतला सुस्वादु रस चूसना आरम्भ करें। जब पेट भर जाय तो रस चूसना छोड़ दें। पेट भरने का मतलब यह समझना चाहिये कि पेट का केवल तीन चौथाई रस से भरे और एक चौथाई खाली रहे। रस चूस लेने के बाद ऊपर से एक गिलास देशी शक्कर का शरबत अथवा थोड़ा सा धारोष्ण या एक उबाल का दूध पी लें। यह सोने में सुगन्ध का काम करेगा। क्यों कि दूध को आम का पूरक कहा गया है। इसीलिये आम के रस को दूध में मिलाकर भी पीते हैं। इस से शरीर

की उष्णता शांत हो जाती है।

यदि कोई अधिक आम खाले जिसकी वजह से अजीर्ण, अग्निमान्द्य, विषमज्वर, मल की रुकावट, पेट भारीपन, तथा श्वास कष्ट आदि के होने का भय हो तो चाहिये कि आम खाने के बाद थोड़े जामुन खालें। करने से सारे का सारा खाया हुआ आम हजम हो जाय यदि जामुन न मिले तो सोंठ, नमक पीस कर चुटकी फांक लें, तब भी खाये हुए आम के पचने में देर न लगेगी आम खाने के बाद जीरे का पानी पी लेने से भी वह शी पच जाता है। मगर जीरे का पानी बहुत थोड़ा पीना चाहि आम को काट कर या उसका रस निकाल कर सेवन करने वह भारी हो जाता है। क्यों कि तब उससे वायु का सम्प हो जाने से उसका गुरदा बढ़ जाता है।

### आम-कल्प

कितने ही रोगों को दूर करने, बिगड़ा स्वास्थ्य सुधा एवं शरीर को नया बनाने के लिये आम-कल्प बड़ा ला कारी सिद्ध होता है। प्रति वर्ष एक बार आम के दिनों यदि यह कल्प नियम पूर्वक कर लिया जाया करे तो शरी आजीवन किसी रोग का शिकार बने ही नहीं। आम-कल्प दुबले मोटे होते हैं, आंखों की रोशनी बढ़ती है, दांत मो की तरह मृत्यु पर्यन्त चमकते रहते हैं, और दृढ़ बनते यौवन स्थायी होता है, सौन्दर्य में वृद्धि होती है; गालों सुर्खी छा जाती है, भूख बढ़ जाती है, और शरीर बिलकु नया हो जाता है।

संग्रहणी व अन्य उदर के रोग, क्षय, श्वास, वीर्य की दुर्बलता, रक्त-विकृति, यकृत व प्लीहा के रोग, व अर्श-रोग आदि इस कल्प से आश्चर्य जनक ढंग से दूर हो जाते हैं।

आम्र-कल्प इस प्रकार कीजिए:—

आम्र-कल्प आरम्भ करने के पूर्व सर्व प्रथम शरीर को तैयार करना चाहिये। अर्थात् शरीर में स्थित पहले के विजातीय द्रव्य (मल) से उसे मुक्त करके निर्मल बना लेना चाहिए। इसके लिए पहले शक्ति के अनुसार से तीन दिनों का उपवास करना चाहिए। उपवास-काल में नित्य सबेरे आध घण्टे तक पेट पर गीली मिट्टी की पट्टी उसे ऊनी कपड़े से ढक कर रखने के बाद एनिमा लेना न भूलना चाहिए, तथा उन दिनों कागजी नींबू का रस मिला हुआ जल भी थोड़ा २ करके प्रचुर मात्रा में पीना चाहिए। यदि शरीर किसी रोग से पीड़ित हो तो उपवास-काल में एक के बजाय दोनों वक्त एनिमा लेना चाहिए। तीन दिन के उपवास के बाद चौथे दिन रसदार बीजू आमों से रस निकाल कर और उतना ही पानी मिलाकर पाव-पाव भर की मात्रा से सबेरे दोपहर और शाम को लेना चाहिये। दूसरे दिन इन्हीं तीन समयों पर रसदार बीजू आम धीरे २ चूसना चाहिए। तीसरे दिन से आम चूसने के बाद पाव २ भर गाय का धारोष्ण दूध भी पीना आरंभ कर देना चाहिए। दोपहर के लिए एक उफान का गरम दूध रखा जा सकता है। दूध की मात्रा डेढ़ पाव से आध सेर तक बढ़ाई जा सकती है। बहुतों के लिये आम-दूध का यह आहार दिन में दो बार ही

काफी होगा। जो यह आहार तीन बार करेंगे उन्हें इस का ध्यान रखना चाहिए कि मात्रा अधिक होकर अपचन जाय। सबेरे और शाम का यह आहार बहुत थोड़ी मात्रा ही होना चाहिए। इस प्रकार आम-दूध पर महीने-महिने अथवा इच्छानुसार अधिक दिनों तक रह कर स्वा को उन्नत एवं शरीर को नया बनाया जा सकता है।

यदि उपर्युक्त कल्प के बाद पुनः आहार-विहार में अस न किया जाय और सादे प्राकृतिक भोजन पर जीवन-या किया जाय, तथा व्यायाम और आराम पर उचित ध्यान दि जाय तो कोई कारण नहीं कि स्वास्थ्य फिर गिरता दिख दे।

## कच्चे आम के विविध प्रयोग

**अमिया का सलाद**—सलाद के लिए अमिया या टिको टीक रहता है। क्यों कि उसमें खटास थोड़ी कम रहती एक तस्तरी में छिले आम के टिकोलों के छोटे-छोटे टु सजादें। साथ में नरम ककड़ी के छोटे-छोटे कुछ टुकड़े रहें। मूंग की थोड़ी अंकुरी और पोदीना की कुछ पत्ति भी मिला सकते हैं। इस प्रकार सलाद तैयार हो जाने ऊपर से जरा सा नमक छिड़क कर उसका मजा लें।

**दाल-अमिया**—दालों को सुस्वादु बनाने के लिए उ पकते समय कच्चे आमों को छील कर और काट कर उ डाल देना चाहिए। इससे दाल में कुछ खट्टापन आ जाता

जिससे उसका स्वाद बढ़ जाता है। इस प्रकार दाल में पड़ा हुआ कच्चा आम दाल को शीघ्रपाची बनाने में भी सहायक होता है।

**आम का पना**—शाम को कच्चे आमों को धीमी आंच में भून कर किसी खुली जगह पर ओस में रात भर पड़ा रहने दें। सबेरे जलपान के समय उनका छिलका उतार कर और मसल कर ठंडा पानी में घोल लें। यही पना है। इसमें एक चुटकी भुना हुआ और पीसा जीरा काली मिच तथा जरा सा नमक डाल कर पीयें। मजा आ जायगा। इस पने से लू के दिनों में लू लगने का भय नहीं रहता। साथ ही लू लगने पर यह पना लू की दवा भी है। इसके सेवन से गर्मियों में आवश्यक प्यास नहीं लगती और दिन भर तबियत में ताजगी बनी रहती है। यह पना पाचक, रुचिकर, भूख को बढ़ाने वाला तथा उल्टियों में भी लाभकारी है।

**अमिया का शरबत**—थोड़ी हरी अमियों को छीलकर हरे पोदीने की पत्तियों के साथ सिल पर महीन पीस लें। तत्पश्चात् उसमें अन्दाज से देशी खांड मिला कर मिट्टी या शीशे या पत्थर के वर्तन में घोंट कर एक रस कर लें और छान कर रसास्वादन करें। लाजवाब पेय साबीत होगा। गर्मियों में यदाकदा उस शर्बत के भी पीने वालों को लू लगने का खतरा नहीं रहता। यह इस वजह से कि कच्चा आम पसीना निकालने वाला और ठंडक पहुंचाने वाला होता है।

**चटनी**—कच्चे आमों के छिल्के और गुठलियां निकाल

कर अलग कर दें और गुदे को सिलपर हरी मिर्च पोदीने की पत्तियों के साथ पीस कर चटनी बना लें भोजन के साथ खायें। बड़ी स्वादिष्ट होती है। कुछ इसे चटनी में अन्दाज से गुड़ मिला कर भी खाना करते हैं।

गुड़ अम्मा—कच्चे आमों को छील कर उसमें से की चार-चार फांकें कर लें। फिर बीज निकाल कर धो तत्पश्चात् घी या मक्खन में जीरे का बघार देकर गु घोल के साथ छौंक दें। जब चाशनी उबाल खाने लगे उतार कर उसमें कुछ खुश्बू आदि डालकर रख छोड़ें ठंडा होने पर वैसे ही या रोटी के साथ खायें। यह दे पाक, जिसको गुड़-अम्मा कहते हैं, अत्यन्त स्वादिष्ट होता

अमचुर, आचार, खटाई—कच्चे आमों को काट कर धूप में सुखाकर सूखी खटाई बनाई जाती है, जिसके को अमचूर्ण या अमचुर कहते हैं। इस सूखी खटाई को कर पिसी खटाई बनाई जाती है। इन दोनों प्रकार खटाइयों से चटनी आदि का उस वक्त काम लिया जाता जब आम का मौसम नहीं होता और हरे कच्चे आम उप नहीं होते। इन सूखी खटाइयों का अधिक इस्तेमाल स्वा के लिये हानिकारक है।

कच्चे आमों को तेल-मसालों के योग से अचार के में सुरक्षित रख कर खाने को भी हमारे यहां प्रथा है विविध प्रकार से बनाये जाते हैं जो स्वादिष्ट तो होते हैं

स्वास्थ्य के लिये अत्यन्त हानिकारक होते हैं। इनको न खाना ही ठीक है।

## पके आम के विविध प्रयोग

**सलाद—** मीठे और पके बीजू आमों को लेकर उनके छिलके उतारकर उनके कतले काट लीजिये और करीने से एक प्लेट में सजा दीजिये। उसके ऊपर भी चाहे तो किसी अन्य गूदेदार मीठे फल, जैसे पपीता, केला, अमरूद, सेब, या नाशपाती आदि के भी कतले सजा दें। अब इन सब कतलों के ऊपर एक तह शहद, दूध, दही, मक्खन, क्रीम या मलाई की उचित परिमाण में जमादें। और आम के सुस्वादु सलाद का आनन्द लें।

**आम-चिउड़ा—** आवश्यकतानुसार थोड़ा साफ और नरम चिउड़ा लेकर उसे पानी द्वारा नम कर लें। तत्पश्चात् उसमें पतले रसवाले मीठे बीजू आमों का रस डालकर उसे तर करें। उसके बाद उसके साथ कुछ कलमी पके आम के छोटे-छोटे टुकड़े मिलावें। आम-चिउड़ा तैय्यार है। चम्मच से उठाउठा कर खायें, साथ ही ऊपर से थोड़ा धारोष्ण दूध पीना न भूलें।

**आम-दूध—** पतले रसवाले मीठे बीजू आमों का थोड़ा रस निचोड़ और आवश्यकतानुसार उसमें थोड़ा पानी डालकर उसे और पतला कर लें। फिर अन्दाज से शहद और दूध डालकर सुस्वादु पेय बनालें और काम में लावें। शहद की जगह गुड़ भी डाला जा सकता है। पेय में इच्छानुसार

कोई खुशबू भी मिलाई जा सकती है। यह पेय ब
पुष्टिकारक और स्वादिष्ट होता है। दुबले व्यक्ति यदि
दिनों तक इस पेय को पीयें तो अवश्य तन्दुरुस्त और
हो जायं। सुबह-शाम और दोपहर नास्ते के बाद
गिलास यह पेय कुछ दिनों तक सेवन करने से बड़ा
होता है। जिनको आम का रस गरम करता हो और न प
हो, उनके लिये आम और दूध का यह मिश्रित पेय अमृ
समान लाभकारी है। इस पेय को दिन और रात के भो
के साथ व्यवहार में ही करना चाहिये। यह पेय आंतों
लिये टॉनिक है। यह रस, रक्त, मांस, मेद, तथा वीर्य
बढ़ानेवाला, वात-संस्थान को उत्तेजना प्रदान करनेवा
तथा नाड़ी मण्डल को मजबूत बनानेवाला है।

**हलवा**— पके आम का हलवा भी बनता है। पका
गूदेदार कलमी आम लेकर पहले उसका गूदा निकालें।
उस गूदे को हाथ से मलकर उसमें का सब रेशा अलग
दें। अब कड़ाई में घी डालकर उसमें मले हुये आम के
को डाल दें और भूनें। जब गाढ़ा होने लगे तो उसमें
सा गुड़ डालकर पकावें और जब हलवा सदृश पाक तैय
हो जाय तो उतार कर ठंडा करके खायें।

**बर्फी**-- पके और मीठे बीजू आमों के रस को एक
में डालकर धीमी आंच पर रखें और उसमें चम्मच से
थोड़ा घी या मक्खन डालते रहें। जब रस गाढ़ा हो जाय
उसमें अन्दाज से थोड़ा खोया और खांड छोड़ें। तत्प

थाली में फैला दें और ठंडा होनेपर बर्फियां काट लें। यदि इच्छा हो तो किशमिश, पिस्ता, बादाम, और इलायची भी कतर कर डाल दें।

कुल्फी-- दसहरी अथवा लंगड़ा जैसे मीठे कलमी आमों को लेकर उनके फांक काट लें। बाद को सुतुही या चम्मच की मददसे उनसे उनका गूदा अलग करके उन्हें किसी चीनी, मिट्टी, या शीशे की रकाबी में एकत्र करें। तत्पश्चात उसमें मलाई, क्रीम, या मीठा दही अन्दाज से मिलाकर सबको एक रस कर लें और ऊपर से गुलाब या केवड़ा जल छिड़क कर उसे रकाबी सहित बरफ के चूरों के ढेर पर रख दें। थोड़ी देर में आम की कुल्फी तयार मिलेगी।

यह कुल्फी साधारण कुल्फी नहीं है। इसके सेवन से रक्त शुद्ध और सतेज होता है, शरीर का विकार निकलता है, चमड़ी का रंग निखरता है, पेट साफ होता है तथा कब्ज दूर होता है। केवल इस कुल्फी को खाकर ही मनुष्य ३-४ मास मजे से रह सकता है और लाभ प्राप्त कर सकता है। यह एक पूर्ण भोजन है। इस कुल्फी को खाकर यदि ऊपर से डेढ़ पाव-आधसेर दूध पी लिया जाय तो इसके गुण और भी बढ़ जाते हैं और यह अमृततुल्य हो जाता है।

आमावट या आम-पापड़:— पतले रसवाले बीजू आमों के रस से अमावट या आम-पापड़ बनाया जाता है। काठ या मिट्टी के बड़े बड़े थालों पर जरासा घी या तेल पोतकर उन

पर बीजू आमों के रस की एक एक पतली तह बिछादी जाती है। उसके बाद उन थालों को रस समेत धूप में सुखने को रख दिया जाता है। थालों का रस सुखकर जब उनकी रोटी या पापड़ सी बन जाती है तब उन्हें थालों से उतारकर और लपेटकर रख लिया जाता है, यही अमावट या आम-पापड़ है। पोदीना वगैरः डालकर इसकी चटनी बनती है जो बड़ी ही स्वादिष्ट होती है। उत्तर भारतीय इसे बड़े चाव से खाते हैं। महाराष्ट्रीय लोग वर्षाऋतु में आमावट के टुकड़े कर और पानी में डालकर सरगुडियां (सेवईं से मिलता जुलता एक खाद्य पदार्थ) के साथ खाते हैं।

यह आमावट सालभर तक रह सकता है। यह कै की बीमारी में बड़ा ही लाभकर होता है।

पके आम का चूर्ण-- पके आमों का चूर्ण बनाने के लिये पहले उन्हें लगभग आठ मिनट तक कास्टिक सोडे के गर्म जल में रखना होता है। इससे उनका छिल्का बिना छिले सहज ही में अलग हो जाता है। फिर उनकी गुठलियों को भी अलग कर देते हैं और गूदे को यन्त्र द्वारा गाढ़े मांड के रूपमें परिणत कर देते हैं। क्यों कि गूदे में प्रतिशत ८६ भाग जलीय अंश रहता है। यह जलीय अंश जब प्रतिशत १५ भाग बचा रहता है तब उस मांड़को एक दूसरे यन्त्र द्वारा सुखाकर उससे आमावट की तरह पतला बना देते हैं। फिर उसे एक तीसरे यन्त्र में रख कर उसका चूर्ण प्रस्तुत किया जाता है। पके आमों का इस प्रकार का चूर्ण कलकत्ता के निकट यादव

पुर में इन्जिनीयरिंग और टेकनालोजी विद्या कालेज है उसके साथ परीक्षा-विभाग में सर्व प्रथम तैयार किया गया था। यह चूर्ण बहुत दिनों तक नष्ट नहीं होता, इसलिये विदेशों में इसे भेजकर व्यापारिक लाभ उठाया जा सकता है। पर अपने देश में इसकी खपत होने की संभावना इसलिये नहीं है कि यहां के लोगों को सस्ते दामों में साल के तीन-चार महीनों आम मिलते रहते हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से पके आम का यह चूर्ण उतना ठीक भी नहीं होता जितना कि ताजा पका आम।

**सूखा पका आम**—पके आमों को खण्ड-खण्ड करके सुखा लेते हैं। यही सूखा पका आम है। इस खाद्य का भी व्यापार विदेशों में भले ही किया जाय, पर भारत वासियों के लिये ताजे पके आमों के सामने यह तुच्छ ही है, कुछ दिन हुए बम्बई प्रदेश के अलफान्सो आम को सुखा कर युरोप भेजा गया था। किन्तु वहां वालों ने उसे विशेष पसन्द नहीं किया। उनका कहना था कि उससे तारपीन की सी गन्ध आती है।

**मुरब्बा**—आंवले आदि के मुरब्बों की तरह चीनी की चाशनी में आम का मुरब्बा भी बनता है, मगर आम के अचार, खटाई की तरह आम के मुरब्बे के सेवन की मिठास नहीं दी जा सकती। कारण इसके खाने से भी कोरे स्वाद की ही उपलब्धि होती है, स्वास्थ्य की नहीं।

### आम के अन्य अवयवों का प्रयोग

आयुर्वेद के अनुसार आम का वृक्ष बड़ा उपयोगी माना

गया है। आम के वृक्ष की शीतल छाया गर्मियों में यात्रि एवं जानवरों का बड़ा उपकार करती है। आम की जड़ अनेक दवायें बनाई जाती हैं और तने से गोन्द निकाला जा है। इसी गोन्द से राल बनायी जाती है। आम के पत्तों सड़ाकर गरीब लोग अपने घरों की दीवारों की लिपाई क हैं। आम के वृक्ष की लकड़ी जलाने और भोजन बनाने काम में आती है।

गेहूं, अथवा जौ की भांति ही आम की गुठलियों की रो बना कर गांवों की गरीब जनता खाती है। आम की गुठ में प्रोटीन, श्वेतसार तथा चर्बी अधिक होती है। इसके अति रिक्त इसमें क्रूडप्रोटीन ८.५ प्रतिशत, ईथर एघर एक्सट्रै ८.८५ प्रतिशत व घुलनशील कार्बोज ७३.४२ प्रतिशत पा जाता है। आम की गुठलियों को रोटी की भांति प्रयोग कर ग्रामीण जनता 'आम के आम, गुठलियों के दाम' वा लोकोक्ति को चरितार्थ करती है।

आजकल आम की गुठलियों से तरह-तरह की दव तथा खाद भी तैयार की जाने लगी हैं।

आम की गुठली दस्तों की बीमारी में अत्यन्त लाभ सिद्ध होती है, तथा पाचन-संस्थान पर भी इसका बड़ा अच्छा प्रभाव पड़ता है। यह गर्भाशय व फेफड़ों से हुए स्राव को बंद कर देती है। प्रमेह व प्रदर की बीमारी में भी श्लेष्मा के स्राव में भी उपयुक्त होती है।

## आम : रोगों की औषधि

लू लगना—लू अथवा कड़ी धूप लगजाने पर कच्चे आमों का पना, जिसका जिक्र ऊपर आ चुका है बनाकर रोगी को पिलाना और उसी को उसके सारे शरीर पर कई बार लगाना चाहिये ।

अनिद्रा—थोड़े से मीठे बीजू आम खाकर ऊपर से गुनगुना दूध पी लीजिये, नींद बिना बुलाये आपसे आप आजायेगी ।

सूखा रोग—आम के अमचुर के प्रयोग से बच्चों का सूखा रोग दूर हो जाता है ।

तिल्ली बढ़ना—आम के रस में शहद मिला कर प्रयोग करने से बढ़ी तिल्ली ठीक हो जाती है ।

स्कर्वी-रोग—आधुनिक विज्ञान की दृष्टि से कच्चा आम स्कर्वी रोग में लाभकर माना गया है । क्यों कि स्कर्वी-रोग में साइट्रिक एसिड लाभकारी होता है और वह कच्चे आम में अधिक मात्रा में पाया जाता है ।

आंख की पीड़ा—कच्चे आम को पीसकर उसकी गरम-गरम पुल्टिस आंख पर रखने से आंख की पीड़ा और अन्य रोगों में लाभ होता है ।

आग से जलना—आम के पत्तों को जलाकर उसका भस्म जले स्थान पर लगाने से लाभ होता है ।

घाव—आम की छाल का काढ़ा बना कर और उसे ठंडा बनाकर और उसे ठंडा करके घाव पर लगाने से घाव शीघ्र भरता है ।

पेट की कृमि—आम फल की छाल व पेड़ के अन्दर छाल पेट की कृमियों को नष्ट करने व निकालने में लाभ होती है।

दाद—आम का फल तोड़ने पर जो रस निकलता उसको दाद पर लगाने से दाद अच्छी हो जाती है।

कान की पीड़ा—आम के पत्तों का रस गुनगुना का कान में डालने से कान का दर्द दूर हो जाता है। आम के को पीसकर और सरसों के तेल में मिलाकर कान में डा से यदि कान में फोड़ा होगा तो वह फूट कर बह जायगा।

दमा और हिचकी—आम के पत्तों को बीड़ी के सम पीने से दमा और हिचकी रोग ठीक हो जाते हैं।

खूनी बवासीर—आम की छाल का रस नियमित रूप सेवन करने से खूनी बवासीर ठीक हो जाती है।

ज्वर—गर्मी के दिनों में तेज ज्वर चढ़ने पर आम जड़ को पीस कर गले या हथेलियों पर बांधने से ज्वर उत ने लगता है।

प्रदर—आम के तने की एक सेर छाल को ५ सेर पा में उबाल कर काढ़ा बनाकर और उसमें थोड़ी शक्कर मिल कर दिन में ३-४ बार पीने से प्रदर-रोग बिल्कुल ठीक जाता है।

नकसीर—आम की गुठली का रस नाक में डालने नकसीर ठीक हो जाती है।

सिर दर्द—आम की गुठली और छोटी हरड़ को बकरी दूध में घिसकर मस्तक पर लेप करने से सिर दर्द दूर जाता है।

खून की उल्टी—आम की गुठली का रस कान में डालने से खून की उल्टी बन्द हो जाती है।

राजयक्ष्मा—किसी पत्थर या तामचीनी के पात्र में मीठे तथा रस पूर्ण बीजू आमों का १५-२० तोले रस निचोड़ कर उसमें छोटी मक्खियों का शहद ५ तोला मिलाइये और रोगी को प्रातःकाल सेवन करा दीजिये, साथ ही दिन-रात में २-३ बार गाय या बकरी का थोड़ा धारोष्णदूध वैसे ही या ज़रा सा शहद डालकर पिलाइये, पानी के बजाय रोगी यदि दूध का ही सेवन करे तो अति उत्तम। ऐसा कुछ दिनों तक करने से राजयक्ष्मा जैसा असाध्य रोग भी अच्छा हो जाता है, ऐसा आम्र प्रकाश में उल्लेख है।

संग्रहणी या अन्य पेट के रोग—प्रातःकाल ९ बजे दो बड़े और पके हुए बीजू आमों के छिलके छील और उनके छोटे-छोटे टुकड़े कर एक कलईदार कटोरे में रख दें। बाद में उस कटोरे में एक उबाल का ठंडा किया हुआ दूध इतना डालें कि आम के टुकड़े डूब जायें। अब उन टुकड़ों को चम्मच से खाकर ऊपर से वही दूध पीलें। प्रातःकाल इस प्रकार आम खा लेने के बाद दिनभर ३-३ घंटे पर पुनः तीन-तीन छटांक दूध पीना चाहिये। इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि रोग जबतक न जाय तबतक आम और दूध के सिवा और कोई चीज खाई-पी न जाय। जब तक दस्तों की संख्या में कमी आजाय तो दो-दो आम दोपहर के समय भी प्रातःकाल की भांति ही दूध के साथ लेना चाहिये। दो सप्ताह तक इसी तरह विधिवत आम का सेवन करते रहने से संग्रहणी आदि कठिन से कठिन पेट के रोग पूरे तौर से दूर हो जाते हैं।

# प्रश्नोत्तर

[ यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या समाधान चाहते हों तो लिख कर भेजें—सम्पादक ]

श्री दशरथलाल बरनवाल मु. पो. लौन्द-गया
पत्र १ प्रश्न संख्या १

जब हैजा (कोलरा) पूर्ण रूपेण हो जाय और होने के बा हाथ-पैर में पेंठन (सिकुड़ण) होने लगे तो उसका प्राकृति आयुर्वेदिक तथा यौगिक उपचार क्या है ? जिससे पू सफलता प्राप्त हो।

प्रश्न -२ जिसे सफेद कुष्ठ हो गया हो, या जहां-तहां हो रहा हो, तो वह किन-किन दूषित आहार-विहार से तथा

कौन से विटामिन के अभाव में होता है। उसे फिर किस संयम तथा किन–किन विटामिन पदार्थ के आहार सेवन से निरोग हो सकेगा ? या उसका प्राकृतिक, आयुर्वेदिक तथा यौगिक उपचार क्या है ? जिससे पूर्ण सफलता प्राप्त हो।

उत्तर–१ उल्टी और मल त्याग बारम्बार होने से मनमें घबराहट और शारीरिक अवयवों में कमजोरी आ जाती है तथा वायुविकार बढ़ जाता है उस समय धैर्यपूर्वक शारीरिक अवयवों में स्थिरता तथा शक्ति बढ़े ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये। एक माशे नींबू के रस में आधे माशा शहद मिलाकर पीने के बदले चाटना चाहिये क्योंके पीने से उल्टी होने का भय रहता है। नींबू का गुण उल्टी बंद करने का है और शहद का गुण कम्पन और सिकुड़न को बन्द करना है। इससे शक्ति शनैः शनैः बढ़ती जायगी। दोनों के मिश्रण से शरीर में समशीतोष्णता बनी रहेगी। थोड़ी देर के बाद प्याज (कांदा) का रस २ से ४ माशे मुख के लार के साथ मिलाते हुये धीरे २ घुटते जायं। ऐसा उपचार एकेक घंटे के बाद करते रहें। पहले नींबू का रस और शहद फिर थोड़ी देर में प्याज का रस। कच्चा प्याज चबाकर भी खा सकते हैं। नाभि स्थान (उदर) में ठंडे पानी में भिगाकर कपड़ा रखें। १०–१० मिनट में कपड़े का जल निचोड़कर दूसरे जल में भिगाकर रखें। या दूसरा कपड़ा बदलते जायं। ६ से ८ घंटे तक इस प्रकार उपचार करने से उल्टी–जुलाब बन्द हो जायगी।

पहले दिन मूंग उबालकर उसके पानी में जीरे का चूर्ण

मिलाकर मुख में हिलाकर थूक के साथ उदर में जाने दूसरे दिन नीबू का शरबत दिन में दो बार लें। दो बार का रस और दो बार उबली हुई मूंग का पानी जीरे के के साथ लें। ५ दिन में जबतक हैजा का सर्वथा नि न हो जाय तब तक ऐसा ही आहार लेते रहना चाहिये

पवित्र स्थान, स्वच्छ वस्त्र, आशावादी विचार रखें दिन के बाद (हैजा बंद होने पर) चावल की कांजी नीबू का अचार कम मिर्चवाला दिन में दो बार सेवन चावल की कांजी मुख में रखकर ८ से १० बार तक च जब थूक के साथ एक रूप हो जाय तो निगल जायं। प जैसे २ आहार पचने में आने लगे वैसे २ आहार में परि करना चाहिये। पेट पर मिट्टी का लेप भी लगा सकते हैजा की बीमारी से निवृत्त होने के बाद भी शुद्ध जल सात्विक शुद्ध आहार का सेवन आवश्यक है। गरम म तथा तली हुई वस्तुएं त्याज्य हैं

## आसन प्रयोग

हैजा से निवृत्त होने के एक मास बाद उत्थानपाद २ मिनट करें। उससे नाभि चक्र में शक्ति बढ़ जाती नाभि के निम्न भागीय अवयवों में संकोच विकास करते बल बढ़ता है। पाचन शक्ति बढ़ती है। मलकोश शक्ति बनता है। वीर्याशय, मूत्रनली, तथा मूत्राशय कोष, पृच्छ, अपान वायु का स्थान, मणिपूरक चक्र, समान का स्थान अत्यन्त बलवान बनेंगे। नाभि में समशीतो

बनी रहेगी। उर्ध्वहस्तासन २ मिनट करें। इससे अन्नाशय कोष, पित्ताशय कोष में बल तथा नीरोग्यावस्था प्राप्त होगी। पाचनशक्ति बढ़ेगी। पेट के छोटे-मोटे अवयवों में हमेशा के लिये अरोग्य सम्पन्न रखनेवाले रसायनिक रस-गैस्ट्रिक, पेनाक्रीस, पित्त तथा इन्टेस्टाइनल रस समुचित मात्रामें बनते रहेंगे।

भुजंगासन २ मिनट करें। कंठ नलिका, हृदय, फेफड़े, कंधे, गला और पसलियों के आरोग्य और बल बढ़ाने के के लिये तथा मेरूदंड-कमर के लिये विशेष लाभदायक है। योगिक तथा प्राकृतिक उपचारों से अधिक महत्व आयुर्वेद का नहीं। इसीसे आयुर्वेदिक अन्य औषधियों का उल्लेख नहीं दिया गया।

उत्तर-२— सफेद कोढ़ के कारण को विना विस्तार रूप से समझे इलाज बताने में कठिनाई होती है। परम्परा से हुआ है या मांसाहार, दारू (मदिरा), बीड़ी-सिगरेट के व्यसन से, तली हुई वस्तुओं से, गर्म मशाले के सेवन से, गन्दी हवा, गन्दा स्थान, गन्दे कपड़े पहनने से, सात्त्विक आहार होते हुये भी आहार के साथ दूध के सेवन से, पित्त विकार आदि अनेक कारण हैं। जिस किसी भी कारण से हो उसे प्रथमतः दूर करना अनिवार्य है। केवल जन्मतः होने की अवस्था में दूर न हो सकेगा।

आहार का आयोजन— चाय, बीड़ी-सिगरेट आदि तम्बाकू के पदार्थ, शराब, भांग आदि नशीली वस्तुओं का

सर्वथा त्याग करना होगा। चावल, चना, उड़द, कुल चौलाई, मूंग आदि का सेवन करें और जौ, ज्वार रोटी लें। गेहूँ तथा बाजरा, बैंगन, लहसुन, हींग तथा मसाला का सेवन वर्ज्य है। सलाद में टमाटर न डा गाजर, पत्ता गोभी, हरी धनिया, ककड़ी, मूली से सल तैयार करें। मिर्च, इमली, नमक का उपयोग अल्पाति मात्रा में करें। गाय का घी, मक्खन, दही छाछ का उपयो करें। हरी पत्ती की भाजी बनाकर खायें। मीठे फलों सेवन ही करें। आम, जामुन, सीताफल, पपीता, ची मौसम्बी तथा केला उपयोग में लावें।

तैल मालिश— सफेद कोढ़ के रोगी प्रातःकाल स्ना करने से पहले तेल की मालिश अवश्य करें। नीम का ते ब्राह्मी तेल, भृंगराज तेल, आंवला तेल, गाय के घी में किसी का उपयोग कर सकते हैं। रामतीर्थ ब्राह्मी ते उपरोक्त पदार्थों के अलावा लौकी, नींबू आदि ५२ प्रकार महत्वपूर्ण वनौषधियों से युक्त होने से अधिक गुणका होगा। मालिश ३० से ४० मिनट तक करें। मालिश के मिनट बाद (शरद और हेमन्त ऋतुओं में सामान्य गर्म ज से) ठंडे जल से स्नान करें।

स्नान करते समय साबुन का उपयोग वर्ज्य है। का अथवा पीली चिकनी मिट्टी छाछ में ६ घंटे पहले से भिगा रखी हुई में चने का आटा और गाय का गोबर मिला सारे शरीर पर लगावें। गोबर कम मात्रा में मिट्टी और च

का आटा सम मात्रा में लें। ३ से ५ मिनट तक सिर तथा शरीर में लगाकर स्नान करें।

योगाभ्यास— शीर्षासन १० मिनट रक्तशुद्धि के लिये उत्तम है। शवासन ६ मिनट, विपरीत करणी २ से ५ मिनट तक रस ग्रंथियों में रासायनिक वर्गीकरण और शुद्धिकरण के लिये उत्तम है। पित्त विकार से यह रोग हुआ करता है। आहार परिवर्तन तथा आसन प्राणायाम के अभ्यास से अवश्य लाभ होगा।

श्री वीरेन्द्र टी. जाडेजा, मांडवी (कच्छ)
पत्र संख्या २. प्रश्न १.

देव दुर्लभ मनुष्य जीवन का प्रयोजन क्या है और यह प्रयोजन कैसे सिद्ध किया जाय?

प्रश्न २— मुझे दिन में पढ़ने लिखने का ६ घंटे काम रहता है जिससे आंखें लाल रहती है तो आंखों को सम्पूर्ण स्वस्थ रखने का प्राकृतिक उपचार लिखने की कृपा करें।

प्रश्न-३— मेरे शरीर से निकलनेवाले पसीने से कपड़े पीले हो जाते हैं इसका क्या कारण है? कृपया उपचार बतावें।

उत्तर १— धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष प्राप्त करने के लिये मनुष्य जन्म प्राप्त होता है। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि के अभ्यास से मनुष्य जीवन का महत्व समझा जायगा। व्यवहार चलाने

हुये धर्म, अर्थ का सम्पादन करते हुये काम (मोक्ष की इच्
और मोक्ष की प्राप्ति करना सर्वोत्तम है। नौकरी अथ
व्यवसाय करते हुये सत्संग, योगाभ्यास, व्रतों का पाल
मुद्राओं का अभ्यास, प्राणायाम का अभ्यास, धारणा, ध्या
समाधि का अभ्यास चालू रखने से मानव जीवन सफ
होगा।

उत्तर-२— आपको दिन में लिखने पढ़ने का काम
करना पड़ता है उससे ही आपकी आंखें लाल हो जाती
ऐसा आपका विचार है। पर इसका कारण असात्विक आहा
भी हो सकता है। मिर्च मशाले का अधिक सेवन और
सब्जियों का कम उपयोग भी इसके कारण हो सकते हैं
विटामिन ए. जिन पदार्थों में अधिक हो उनका उपयो
करना आवश्यक है। हरे पत्तोंवाली भाजी, बादाम की गि
इसके लिये बहुत उपयुक्त माने जाते हैं। गुलाब जल
उपयोग आंखें धोने के लिये कर सकते हैं। जितनी बार पा
पियें उतनी बार आंखों को ठंडे पानी से अवश्य धो दि
करें।

समय, पाचनशक्ति और ऋतु के अनुकूल शुद्ध सात्वि
आहार का सेवन करें। तैल मालिश शरीर और सिर
करें। जहांतक बन सके सिर को हमेशा स्नान करते सम
ठंडे जल से ही धोयें सर्दी का मौसम होवे तो साधारण
जल से शरीर का स्नान कर लें और सिर को ठण्डे पा
से धोयें। छः प्रकार के मलशोधन कर्म (नेति, धौति, नौ

त्राटक, कपाल भाति तथा बस्ति) करें। आसन प्राणायाम का अभ्यास प्रतिदिन करें। खादी के वस्त्र पहनें। शुद्ध जलवायु का सेवन करें निवासस्थान की पवित्रता बनाये रखें। मानसिक चिन्ता से दूर रहें। दुर्जनों से दूर रहें। सिनेमा न देखें, विभत्स साहित्य न पढ़ें। गीता, स्वामी रामतीर्थ के उपदेश, उमेश योग दर्शन, रामतीर्थ जैसे मासिक पत्र, उपनिषदादि सत्साहित्य का पठन करें। प्राकृतिक सौंदर्य, वन, पर्वतीय स्थानों में घूमने जावें। वहां पर प्रकृति में रमण करें। आत्मचिंतन करें। रातको ८ घंटे की नींद लें। दो बार मलविसर्जन करें। जल सेवन यथेष्ठ मात्रा में करें। ऋतु में उपलब्ध फल का सेवन करें। भोजन के समय नींबू की खटाई के अलावा खटाई न लें। निमक, मिर्च का कमसे कम सेवन करें। वनस्पति का सेवन न कर शुद्ध गाय-भैंस का घी उपयोग में लावें या शुद्ध तेल। चाय, तम्बाकू का सेवन न करें। इस प्रकार अपने जीवन में उपयोगी तथ्यों का समावेश करने से जीवन स्वर्ग तो बनेगा ही आपकी आंखें लाल होनी भी बन्द हो जावेंगी।

उत्तर-३— रक्त में पित्त की मात्रा अधिक होने से पसीने का असर कपड़ों पर पीलापन लिये हुये होता है। पसीने में दुर्गंध होवे तो रक्त अशुद्धि समझनी चाहिये। प्रश्न २ के उत्तर में बताये गये आहार व्यवहार से दुर्गंधी पसीने में न रहेगी। पित्त को व्यवस्थित करने के लिये आंवले का सेवन एक दो मास तक दो तीन ताले प्रतिदिन करें।

**श्री लक्ष्मनसिंह बबीना**

**पत्र संख्या ३ प्रश्न १**

दूध और मूली साथ-साथ नहीं खाना चाहि एक साथ सेवन से स्वास्थ्य पर बहुत हानिकारक प्र पड़ता है क्या यह सत्य है ? यदि ३ घण्टे के अन्तर से से किया जाय तो हानिकारक है या लाभदायक ?

(२) दूध और गुड़ भी साथ-साथ नहीं खाने चाहि क्या यह सत्य है ? यदि ३ घण्टे के अन्दर से सेवन कि जाय तो हानिकारक है या लाभ दायक ?

उत्तर १—हरी शाक भाजियों के साथ दूध का से वर्ज्य है। हानिकारक है। जैसे मिर्च, इमली, नमक व शाक भाजियों के साथ दूध का सेवन करने से त्वचा रो रक्त रोग आदि रोग हुआ करते हैं उसी प्रकार मूली के स दूध के सेवन से वायु रोग आदि विकार होंगे अतः ऐ वस्तुओं को साथ २ न लेकर ३ घंटे के अन्तर से लेने लाभदायक सिद्ध होंगी। भोजन के समय मूली और बाद दूध ले सकते हैं। या भोजन के ३ घंटे पहले दूध ले मूली खा सकते हैं। ३ घंटे के अन्तर से कोई हानि न होगी

उत्तर-२—दूध में प्राकृतिक रूप से ही शर्करा का रहता है। अतः उसमें ऊपर से किसी भी प्रकार का श पदार्थ मिलाना हानिकर ही है।

आज कल जिन लोगों को बाह्य रूप से चीनी, गुड़ आ

मिलाकर दूध को मीठा करके पीने की आवश्यकता लगती है उसका कारण यह है कि उनकी जीभ से प्राकृतिक मिठास को ग्रहण करने की शक्ति क्षीण हो चुकी है। यदि थोड़े दिन बिना मीठा मिलाये दुध को ग्रहण किया जाय तो थोड़े दिन बाद ही प्राकृतिक मिठास का अनुभव होने लगेगा।

श्री एन. यू. बैरागुडे नांदेड
पत्र संख्या ४ प्रश्न १

प्रश्न १-- श्रमजीवियों के लिये (दंडबैठकादि) व्यायाम आसन प्राणायामादि करने से लाभ के शिवाय कुछ हानि तो नहीं होगी; जो हमेशा खेती का काम करता है और जिनका खाद्य ज्वारी, बाजरी, तुवर की दाल ही है।

प्रश्न २--संतति नियमन के लिये कृत्रिम संतति नियमन श्रेष्ठ है या आत्मसंयम ?

प्रश्न ३--आत्म चिंतन और आत्मानुभव की विधि बताने की कृपा करें ?

प्रश्न ४-- संसार में "मैं" ध्वनि कार्य का प्रधान अंग बनकर कार्यान्वित क्यों हुआ है और उसकी उत्पत्ति स्थिति प्रलय कैसे होता है।

प्रश्न ५-- महाराज मिथिलेश्वरजी को "विदेहि जनक" की संज्ञा कैसे प्राप्त हुई ? वर्तमान युग की मानव जाति के लिये विदेहत्त्व को प्राप्त करने के लिये किस मार्ग का अंगिकार करना आवश्यक है।

उत्तर १—आपका प्रश्न महत्वपूर्ण है। शरीर के सा
वाले भाग जैसे छाती पेट आदि और पीछे के भाग जै
पीठ, रीढ़, कमर आदि के लिए एवं सर्वांगों के लिये
रूपेण व्यायाम प्राप्त हो ऐसा परिश्रम तथा आसन के अला
अन्य व्यायाम, खेल आदि समस्त संसार में कोई नहीं
अपवाद रूप से धनुर्विद्या के अमुक प्रयोगों में शरीर के पी
के भाग के लिये थोड़ा सा झुकाव प्राप्त होता है। कि
सर्वांग के लिये नहीं। अखिल विश्व में अन्य व्यायामों
आसनाभ्यास सर्वोपरि भूत काल में सिद्ध हो चुका है औ
वर्तमान में सिद्ध हो रहा है और भविष्य में होता रहेगा।
एक समय ऐसा अवश्य आयेगा भले ही दीर्घ काल में आ
कि समस्त विश्व मानव, योगाभ्यास को जीवन में उतार क
तन, मन, धन से परिपूर्ण हो आत्म दर्शन युक्त दिव्य जीव
प्राप्ति में लगेंगे। श्रमजीवियों के लिए भी आसन कर
आवश्यक है। तमोगुणी आहार को सात्विक आहार में बद
कर वे भी तन मन से नीरोगी हो सकते हैं।

उत्तर २—संतति नियमन कृत्रिम साधनों तथा अनै
गिक जीवन बिताने से सुव्यवस्थित नहीं हो सकता। कृत्रि
साधनों से मानव जाति का अधः पतन होगा। शारीरि
अवयवों में शिथिलता बढ़ जायेगी। हृदय, कलेजा, मूत्रपि
वीर्याशय कोष के रोग बढ़ेंगे। मानसिक रोग वृद्धि वे
रूप से होगी। सच पूछा जाय तो कृत्रिम साधनों से संत
नियमित करना मुसीबत को मोल लेने के समान है। य
मानव जाति को अधः पतन से बचाना हो तो संतति नि

मन कृत्रिम साधनों से कतई बंद करना होगा। यदि सच्चे मानों में संतति नियमन होना चाहिये तो उसके लिये निम्न नियम, अभ्यास, तथा प्रक्रियायें करनी होंगी। केवल आत्म संयम शब्द के उच्चारण अथवा लिख-पढ़ लेने से कुछ नहीं होगा। तदनुसार जीवन नौका को उस ओर ले जाने की तैयारी करनी होगी। (१) प्रथमतः कामोत्तेजक आहार का त्याग, शुद्ध सात्विक आहार का ग्रहण, (२) सिनेमा, नाटक तमाशे आदि विषय विकार को बढ़ाने-ले जाने वाले देखना बन्द करना होगा। (३) योगाभ्यास जीवन का संगाती है ऐसा समझ कर नेती, धौती, बस्ती, नौली, त्राटक, कपाल भाति, आसन प्राणायाम कम से कम आधे से १ घण्टे तक करने होंगे। क्यों कि योग संतति नियमन में विशेष रूप से लाभदायी होगा। (४) पति-पत्नी अलग २ बिस्तर पर शयन करें। (५) रंग बिरंगे आकर्षक, मन मोहक वस्त्रों का परिधान न कर शुद्ध खादी अथवा सादे मिल के कपड़े उपयोग में लावें। सत्संग नित्य प्रति करें। हर दिन अपने आस पास के परिवार वालों के साथ बैठ कर रामायण, महाभारत, महात्मा, योगी महापुरुषों के उपदेश. जीवन चरित्र पढ़ें अथवा पढ़ायें। अवधूत गीता, गीता, उमेशयोगदर्श, स्वामी राम तथा विवेकानन्द, रामकृष्ण परम हंस के उपदेश तथा जीवन चरित्र, योगवाशिष्ठ, सदाचार स्तोत्र, चर्पट पंजरी, शिव महिम्न स्तोत्र आदि महत्वपूर्ण एवं मनोनिग्रह करने वाला साहित्य पढ़ें। भजन, कीर्तन, जप, तप करें। सोमवार मध्यान्ह को एक बार भोजन करें हर एकादशी के

दिन उपवास करें। रात को नींद आने तक भगवान्
स्मृति मन मन्दिर में बसाये रखे। इस प्रकार से जीवन
देने से अपने आप ही संतति नियमन होता जायगा,
उससे मानसिक रोगों के मिलने के बदले मानसिक शां
प्राप्त होगी।

उत्तर ३—आत्म चिंतन तथा आत्मानुभव में अन्तर
एक प्रारम्भ है तो दूसरा अन्त। एक साधन है तो दूस
साध्य। अष्टांग योगाभ्यास के आधार से धारणा-ध्यान
अन्तिम अभ्यास आत्म चिन्तन करना है। धारणा से
समाधि अवस्था की आरंभिक स्थिति सविकल्प समाधि
अनुभव भी आत्मचिन्तन ही है किन्तु उस अवस्था में मह
कारण शरीर काम करने लग जाने से आत्म चिन्तन का ला
विशेष रूप से प्राप्त होता है। आत्म चिन्तन का अभ्या
बढ़ाते २ जब मन से आत्मानुभव होता है याने अपने मू
स्वरूप सत्-चित्, आनन्द स्वरूप का अनुभव होने लगता
वही दूसरे शब्दों में आत्मानुभव कहा जाता है। आत्मचिन्त
में भावनामय अन्तःकरण रहता है और आत्मानुभवमें भाव
से परे। जब निर्विकल्प समाधि एवं तुर्यगा अवस्था में
चला जाता है। तब प्राण की बहिर्गति समाप्त प्रायः हो
आत्मा में विलीन हो जाता है। यह अवस्था आत्मानुभव
परे आत्मा स्वयं निज स्वरूप में अवस्थित हो जाता है
यहां पर विविधा भावना, अभ्यास, चिन्तन, अनुभव न
रहता। जब तक दो वस्तु हो तभी तक चिन्तन तथा अनुभ
का लाभ हुआ करता है परन्तु एकाकार होने पर उस

आवश्यकता ही नहीं रहा करती। आरम्भ में आत्म चिन्तन क्रमेण आगे बढ़ कर आत्मानुभव को प्राप्त हो जाता है। अर्थात् सत्, चित्, आनन्द स्वरूप ही मैं स्वयं हूं ऐसा मन में समझ लेने पर मन को आत्मस्वरूप में विलीन करना पड़ता है तभी आनन्द स्वरूप बन जाता है। ऐसी स्थिति प्राप्त होने पर सब प्रकार के शोक दुःख आदि से मुक्ति अपने आप ही मिल जाती है।

उत्तर ४—मैं और मेरा कह कर प्रवृत्तिमय जीवन से संसार चलता है, उत्पत्ति स्थिति और परिवर्तन यही संसार का गुण है। सत्व, रज और तमगुणों के मेल से संसार का कार्य कलाप चल रहा है। व्यवहारिक गति विधियों में मैं और मेरा ये दो शब्द बने रहेंगे। तदनुसार संसार चलता रहेगा। नित्य नैमित्तिक प्रलय हैं। नित्य प्रलय होता रहता है किन्तु इस क्षणिक परिवर्तन की ओर हम गौर भी नहीं करते। यदि ध्यान दिया जाय तो जीवन जीना कठिन हो जाय। नव रक्त निर्मित होकर सारे शरीर में प्रसरित होता है पुराना उसकी जगह से हट जाता है। रक्त में भी महीनतर जीवाणुओं की विद्यमानता है। उन जीवाणुओं में तो नित्यप्रति परिवर्तन चालू है। वैसे ही स्थावर, जंगम, स्थिर–अस्थिर, खेचर–भूचर, जलचर, चराचर स्थूल सूक्ष्म की अवस्था है। जैसे समुद्र में तरंगों की हालत है। समुद्र का जल त्रिकाल में स्थिर नहीं रहता है। ज्वार भाटा अनादि काल से चल रहा है। और अनन्त काल तक चलता रहेगा। यह प्रकृति का नियम है। इस नियम को स्वाधीन रखने

वाले योगी लोग होते हैं। समाधि अवस्था में अपने मू स्वरूप को प्राप्त कर स्वानन्द में मग्न रहा करते हैं। इसी भगवान् श्री कृष्ण ने अर्जुन को उपदेश देकर योगी बनने आदेश देते हैं।

उत्तर ५—मिथिलापुरी के महाराजा जनक का जीव जल में कमलवत था। जीवन का ध्येय आत्म दर्शन में था त्रिगुणमयी माया में रहते हुये भी उनका मन ब्रह्मानन्द लीन रहता था। इसी से वे संसार में रहते हुए भी मुक्त थे त्याग वैराग्य के आदर्शमय महापुरुष थे। उनके जीवन अनेक प्रसंग देखने से पता चलता है कि वे राजमद, धनम मानमदसे अलिप्त थे। राज कारबार से छुट्टी पाते ही प्रति दिन आत्मज्ञानियों के संपर्क में रहकर सत्संग किया करते थे चर्चा होती थी, परीक्षा लेते थे एवं श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगि महात्माओं के लिये आत्म समर्पण करते थे। आडंबर यु आत्म ज्ञान का स्वांग बनाने वाले व्यक्तियों को दंडित कर थे। फल स्वरूप स्वयं श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ आत्मज्ञानी थे।

वर्तमान में वैसे लोग इस धरती पर विद्यमान हैं। उत्त अधिकारी ही उनकी पहचान कर सकते हैं। वर्तमान में सच्चे आत्मज्ञानी लोग हैं। आद्य शंकराचार्य जी ने अपने मतानुसार त्याग वैराग्य का, मठ मंदिर वासी महन्त, सन्यासियों क प्रमुखता दी है। उनके अनुयाइयोंने ब्रह्मचारी, गृहस्थ, तथ वानप्रस्थियों को गौण स्थान दिया है फलतः सर्व सामान्य वर्ग श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ, योगी उपरोक्त तीन प्रकार के आश्रम वासी होते हुए भी श्रद्धा के पात्र नहीं होते क्योंकि विशे

श्रद्धा के साथ भगवा वस्त्रधारी साधु महात्माओं को प्रेम किया जाता है। फल स्वरूप सर्व सामान्य वर्ग में भेद भाव का अभाव देखने में नहीं आता है। सत्संग करते हुये भी दूसरे का जीवन तथा स्वयं का जीवन सुधार नहीं करते हैं। यह एक समाज का बड़ा कलंक है। राजा जनक के जमाने में इतने मौज शौक के साधन, साहित्य न थे। वर्तमान में भोग विलास के साधन पराकाष्ठा पर पहुंच चुके हैं। उनका सेवन करते हुए उनसे अलिप्त रहना बड़ी कठिन समस्या है। क्योंकि भिन्न २ प्रकार के साधन पंचज्ञानेंद्रिय को अपनी ओर खींचकर मायारूपी कीचड़ के गड्ढे में डुबो देने के लिए अत्यंत वेगवान भोग-विलास के साधन जहां जावें वहीं उपलब्ध होते हैं। उनसे अलिप्त रहने के लिये समाज की निन्दा की परवाह न कर सादा एवं त्यागमय जीवन व्यतीत करना होगा, अमूल्य त्यागमय जीवन के अधिकारी ब्रह्मचारी, ग्रहस्थी, वानप्रस्थी और सन्यासी सभी हो सकते हैं।

पृथ्वी के स्वर्ग काश्मीर की रमणीय धरती से प्रकाशित हो रहे
उत्तर भारत के एक मात्र सांस्कृतिक व साहित्यिक पत्र
"हिम-हास" मासिक में पढ़िए :—

* आकर्षक कहानियाँ, ज्ञानवर्धक तथा मनोवैज्ञानिक लेख, धारावाहिक उपन्यास
* महिलाओं, बालकों और सामयिक राष्ट्रीय-अन्तराष्ट्रीय समस्याओं से संबन्धित स्थायी स्तंभ।
* तीन निःशुल्क प्रतियोगितायें।
एक प्रति :५ पैसे वार्षिक ४ रुपये मात्र।

एजेन्सी के लिए आज ही लिखें :—

व्यवस्थापक "हिम हास" मासिक,
पुष्प निवास, बारामूला, काश्मीर।

# स्वानुभव

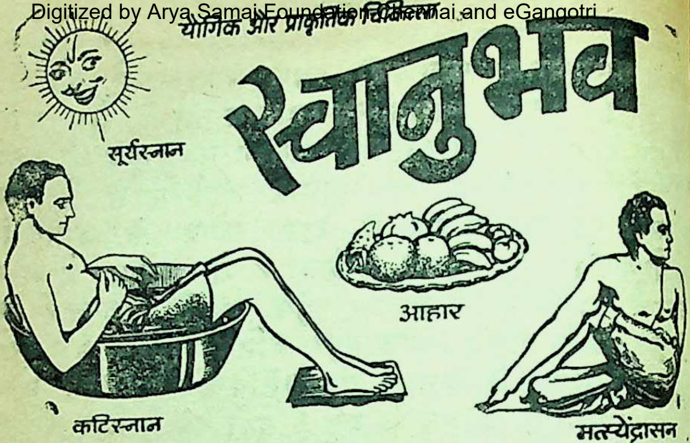

भारत भर में ७ लाख से ऊपर गांव हैं। उनमें से ए मेरा भी गांव है जिसमें ५५२ की जनसंख्या है। सुहावना, प्राकृतिक सौन्दर्य से सुसज्जित मेरा गांव है। मनोरमा उसका नाम भी है। यथा नाम तथा गुण भी हैं। हमारे गांव में दिन में एक बार डाक बँटती है। आधुनिक युग की देन बिजली, जल का नल, टेलीफोन आदि साधनों से अपना गां अभी तक वंचित है।

## मोहपाश के विविध स्थान

सामान्यतः देहातवाले कस्बे की ओर, कस्बे वाले शह की ओर, शहरवाले राजधानी, बन्दरगाह आदि व्यापारि स्थानों की ओर आकर्षित होते हैं। मेरे जीवन में अनेक बा ऐसी घटना घटी। किन्तु मुझे प्राकृतिक जीवन की ती इच्छा ने उनसे बचाया। पांच कर्मेन्द्रिय एवं पांच ज्ञानेंद्रि के साथ मन मोहनगरी के अनेक सुख भोग के साथ लाला

यित होकर जीवन नष्ट कर देता है। ऐसी समझ मुझे वहां के लोगों से तथा वहां से वापस आये हुये लोगों से ज्ञात हुई। दीपक की ओर विना बुलाये ही जीव जन्तु चले आते हैं और अपने जीवन का उत्सर्ग कर ही चुप होते हैं। यह कोई सामान्य बात नहीं।

## धन, मान तथा विषय सुख

अधिकांश लोग धन, मान तथा विषयसुख प्राप्त करने के लिये शहरों की ओर जाते हैं। अधिकांश लोग सफलता मिलने पर विषयांध बनकर जीवन बर्वाद करते हैं और असफलता मिलने पर भाग्य का आधार लेकर हताश होते हैं। असफल लोगों में से अनेक लोग धार्मिक वृत्ति से शेष जीवन व्यतीत करते हैं और अनेक लोग अनीतिमय जीवन-यापन करते हैं।

## कुदरती जीवन

मनोरमा ग्राम के प्राकृतिक सौन्दर्य ने मेरे जीवन का उद्धार किया है। सघन वृक्षों से भरे हुये पर्वत से निकलते हुए जलप्रपात में स्नान करती हूं। मन्द मन्द सूर्य के प्रकाश में मुझे खेतों में जाना पड़ता है। धान के हरे भरे खेत मेरे मन को प्रसन्न करते हैं नैसर्गिक रूप से तैयार होनेवाले विभिन्न ऋतुओं के अनेक प्रकार के वन्य फलों का सेवन करती हूं जिनमें आम, जामुन, काजू, सीताफल, रामफल, फणस, जमरूख आदि मुख्य हैं।

मेरी आयु इस समय ४५ वर्ष हैं। ४ संतान हैं। शरीर के

अवयव, इन्द्रीय, हावभाव, हलन चलन, कंठ का स्वर २० वर्ष की आयुवालों के समान है। भोजन दो बार करती दूध-फल का सेवन करती हूं। क्षुधा अच्छी लगती है। गा नींद आती है। योगाभ्यास ब्राह्ममुहूर्त में एक घंटा करती

## तुच्छ-जीवन

मनोरमा गांव में कभी २ नगर के सैलानी लोग गर्मि की छुट्टी में आते हैं। उनकी मुख मुद्रा, शरीर की हाल मनकी दशा और व्यसनों की गुलामी देखकर मुझे हंसी आ करती है। चिन्ता ही उनका जीवन, रोग ही उनका शरी तथा विषयभोग ही उनकी प्रकृति बन बैठी है। बनाव प्रसन्न वदन रखते हैं। कुदरती आनंद से वंचित रहते हैं और अपने आपको बड़े बुद्धिमान, चतुर तथा ज्ञानी सम बैठे रहते हैं। प्राकृतिक नियम पालन नहीं करते। दुःखी तुच्छ जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

### कुदरत ने पैदा किया उसमें ही जाना है।

प्राकृतिक जीवन का अनुभव लेना योग्य है। सत्संग समय कानों से सुनते समय जो आनन्द थोड़ी देर के लि मालूम पड़ता होगा किन्तु प्राकृतिक सौन्दर्य आनन्द, सुख शान्ति के लिये सुरम्य शान्तिमय देहात के उच्च प्रदेशों अनुभव लेना होगा।

सदा निसर्ग जीवनाभिलाषिणी
श्रीमती मोहिनीदेवी वि. कुंटे
मनोरमा (जि. कारवार मेसूर राज्य)

# पाठकों के अभिमत

(१) हिन्दी जगत् के 'रामतीर्थ' मासिक पत्रिकामें विविध प्रकार की रचनाएं पढ़कर आनन्दित होती हूं। मनकी खिन्नता दूर होती है।

श्रीमती सरयू बहेन वालचन्द
नान्देड (महाराष्ट्र)

(२) कभी गंभीर कभी सामान्य विषयों से लिखे गये रामतीर्थ मासिक के लेख, कविता ने मेरे मन में गहरा प्रभाव डाला है। आदत सी बन गई है। मेरे लिये यह आदत अच्छी मालूम पड़ती है।

श्रीमती मिन्नामा मुदलीवार
लंका (सिलोन)

(३) इष्ट वस्तु की आवेशपूर्ण आंतरिक संवेदना जीवन में बनी रहती है। हर महिने की पहली के बाद 'रामतीर्थ' मासिक के लिये उपरोक्त शब्द संबंधित हैं। घरका वातावरण सात्विक बना हुआ है।

श्रीमती अंजनीताई घ. कुडाल
वास्कोडी-गामा (गोवा)

(४) 'रामतीर्थ' मासिक में आयुर्वेदिक लेख छपते मेरा विषय आयुर्वेद होनेसे अतीव प्रसन्नता के साथ पढ़ता अन्य मित्र वर्ग एवं रुग्णों को पढ़ने के लिये आग्रह करता

वैद्य गंभीरनाथ शिवनाथ
काठमांडु (नेपाल)

(५) देश-विदेशों में प्रख्यात रामतीर्थ मासिक के बार अधिक प्रशंसा करना अतिशयोक्ति होगी। वेदांत के में मुझे पढ़ने की तीव्र अभिलाषा रहती थी। स्वामी रामत के उपदेशों ने मेरे जीवन के लिये बहुत सुन्दर कार्य किया धन्य है मेरा जीवन और धन्य है रामतीर्थ मासिक संचालक।

डॉ. सुमित्रानन्दन बाजपेई
ढाका (पाकिस्तान)

(६) लंडन से आते समय विमानतल में मेरे मित्र हाथ में रामतीर्थ मासिक देखकरके मुझ से रहा नहीं गया मित्रने पूछा रामतीर्थ मासिक चाहिये। तुरन्त लेकर घर जाकर पढ़ा। बहुत अच्छा लगा।

कुमारी ललितादेवी
हैदराबाद

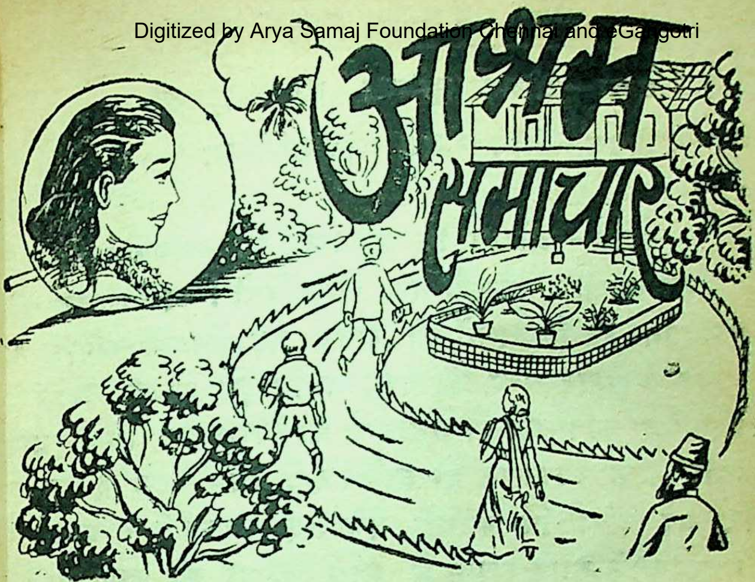

[श्री रामतीर्थ योगाश्रम के व्याख्यान खंड में हर शनिवार सायंकाल ७ बजे और हर रविवार प्रातःकाल १० बजे व्याख्यान होता है। उसके सारांश रूप में आश्रम समाचार स्तंभ से प्रकट किया जाता है। सप्ताह में एकबार आश्रम के संचालक योगीराज श्री० उमेशचन्द्रजी का व्याख्यान होता है और एक बार अन्य आगन्तुक उच्चकोटि के योगी, ऋषि, महात्मा, साधु संत एवं प्रखर विद्वानों का व्याख्यान होता है। बहुधा सप्ताह में एक बार शारीरिक आरोग्य और एक बार आत्मदर्शन के बारे में योग, वेदान्त, भक्ति आदि के बारेमें सार्वजनिक सत्संग होने से सर्व धर्म के अनुयायी वर्ग इस सत्संग का लाभ उठा सकते हैं। —व्यवस्थापक]

## वक्ता—श्रीमती सुमित्रा देवी मिश्रा जी

## विषय—आर्य समाज और मूर्तिपूजा

स्थान—श्रीरामतीर्थ योगाश्रम का व्याख्यान कक्ष

समादरणीय सज्जनो तथा सन्नारियो ! आर्य समाज प्रस्थापना उन सिद्धान्तों को लेकर हुई, जिनसे समाज भीतर विद्यमान अन्ध विश्वास, अज्ञान दूर होकर समा सत्यविद्या का प्रचार हो अज्ञानता का निराकरण होकर रूपी प्रकाश प्रज्वलित हो जाये। सर्व प्रथम आज से लग ९० वर्ष पूर्व महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बम्ब काकड़वाड़ी नामक स्थान में आर्य समाज की स्थापना थी, उसी प्रकाश स्तम्भ से आज अखिल विश्व में जहां भी भारतवासी बसते हैं आर्य समाज की स्थापना हो चु है।

स्वामी दयानन्द ने अपने सुधारवादी विचारों के सं के रूप में सत्यार्थ प्रकाश की रचना कर सारे मत-मता की खामियों को प्रकाशित कर यह सिद्ध किया यदि मानव अपनी समुन्नति करना चाहता है तो उसे कही गई सत्य विद्या का सहारा लेना ही चाहिये। ई की सभी संतानें हैं फिर भेदाभेद किस लिये ! छुआछूत बीमारी क्यों ? इस प्रकार आर्य समाज उन रूढिगत अं विश्वासों को उखाड़ फेकने के लिए कटिबद्ध है जिनके का हिन्दू धर्म छिन्न-भिन्न हो रहा था।

आद्य शंकराचार्य ने भारत से बौद्ध धर्म को हटाकर वैदिक धर्म की स्थापना की और बौद्धों के मंदिरों की होड़ में सामान्य जन समुदाय को वैदिक धर्म की ओर आकर्षित करने के लिए मंदिरों और मूर्ति का प्रचार किया था। कालान्तर में स्वार्थी लोगों ने रूढ़ि बना कर मूर्ति पूजा को अपने उदर पूर्ति का साधन बनाया। अनाचार फैलाया सच्चे प्रभु से दूर भगाया। अतः इन सब दोषों को दूर करने के लिए स्वामी दयानन्द ने मूर्ति पूजा का खण्डन किया और वेदों में वर्णित ईश्वर की उपासना को ध्येय बनाया। ईश्वर के विशेषण जैसे अनादि, अनन्त, सर्वाधार, निराकार, सच्चिदानन्द आदि रूप से ईश्वर की उपासना करनी योग्य है। परमात्मा किसी भी मूर्ति विशेष में नहीं अपितु सर्व व्यापक है। जैसे शिव भगवान् का मुख्य अर्थ कल्याण स्वरूप है। परन्तु उसी शिव को लिंग रूप में जानकर उसकी उपासना करते हैं। ऐसा ठीक नहीं हम जिसकी उपासना करते हैं वैसे ही हो जाते हैं।

जन्मनां जायते शूद्रः संस्कार द्विज उच्यते।
वेदाभ्यासी भवेत विप्रः ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः॥

इस सिद्धान्त के अनुसार गुण कर्म स्वभाव एवं उत्तम संस्कारोंको जीवनमें धारण करने वाला ब्राह्मण कहा जायगा। जो जैसा कर्म करेगा उसी के अनुसार उसकी जाति बन जायगी।

आर्य समाज संस्कार कर विश्व की आर्य सिद्धा
आवेष्टित करना चाहता है। अतः अन्य धर्मावलम्बियो
शुद्धि कर अपने वैदिक धर्म में प्रवेश देने का वे कार्य
हैं। बहुत से मुसलमान, ईसाई, पारसी, यहूदी आदि
समाज की वेदि से वैदिक धर्म में प्रवेश कर अपना
सुधार कर रहे हैं।

### मूर्ति पूजन का अर्थ और समझ

परमात्मा केवल मूर्ति में विराजमान है अन्य स्थलों
नहीं यह समझना अनुचित है। पंच महाभूतों में परम
नहीं? अवश्य ही है। निराकार स्वरूप में मूर्ति का
स्थान नहीं। पंच महाभूत परमात्मा का स्थूल शरीर
मूर्ति है। पंच तन्मात्रा शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श
सूक्ष्म शक्तियां है। अगाध जलाशय में रहने वाली मछलि
भूचर जीव जन्तु तथा खेचर पक्षी एवं चराचर के प्राणि
तथा स्थावर जंगम यह परमात्मा का विराट स्वरूप
अज्ञानावस्था में, बाल्यावस्था में परमात्मा के लक्षण
रंगादि समझने के लिए पत्थर, धातु, लकड़ी आदि से ब
गई मूर्ति को नमन पूजन, अर्चन आदि विविध रूप से द
करने का साधन केवल सीमित रूप से समझना चाहिये।
हुए को मार्ग दर्शन के लिए मन्दिर है किन्तु मन्दि
विराजमान मूर्ति में भगवान् के दर्शन शिवाय मुक्ति
ऐसी समझ अज्ञान मूलक है। मूर्ति पूजन के बारे में म
मतान्तर होने का संभव है किन्तु मूल कारण विना स
केवल तर्क वितर्क से खंडन मंडन करने से समाधान नहीं

भाषण कर्ता—योगीराज उमेशचन्द्र जी
विषय—प्राणायाम और संध्या विधि
स्थान—श्रीरामतीर्थ योगाश्रम का प्रवचन कक्ष

उपस्थित सज्जन वृन्द तथा माताओ! स्थूल, सूक्ष्म, कारण, और महाकारण शरीर के साथ प्राण का घनिष्ट संबंध है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरियावस्था के साथ प्राण के विशेष सम्बन्ध हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोष के साथ प्राण का विशेष सम्बन्ध है। जन्म से मरण पर्यन्त प्राण की गति चालू रहती है। गाढ़ निद्रावस्था में माया-मोह-प्रेम, बन्धन, चिन्ता, हर्ष, शोक से हम मुक्त हैं किन्तु प्राण से युक्त ही रहते हैं उसका कार्यक्रम बराबर चलता ही करता है।

## प्रात: संध्याविधि और प्राणायाम

प्रातः स्नान के बाद संध्यावंदन किया जाता है। वेदमन्त्रों के उच्चारण से मधुर ध्वनि से दीर्घ श्वास प्रश्वास के पश्चात् अनुलोम विलोम प्रणायाम किया जाता है।

## अनुलोम-विलोम प्रणायाम की विधि

प्रथम सुखासन में बैठ जाइये। आंखें बंद रखिए। कुम्भक के समय सूर्य तथा चन्द्र नाड़ी को दाहिने हाथ की अंगुलियों से बन्द रखिए। १६ बार ॐ का मन में स्मरण करने के बाद दाहिनी नाड़ी से (नासिका) रेचक करिए। रेचक के समय उड्डीयान बन्ध करें। और जलंधर बन्ध छोड़ दें। मूल बन्ध

चालू रखें। १६ बार ॐ का मन में स्मरण करके चन्द्र (बाईं नासिका) से रेचक ८ बार ॐ के उच्चारण के समय करें पूरक ४ ॐ के उच्चारण के समय तक करें। इस प्र एक प्राणायाम हुआ समझना चाहिए। ऐसे क्रमसे क और अधिकतम १२ बार प्राणायाम करें। पश्चात् वेद को संध्या वंदनार्थ उपयोग में लायें। ऐसे ही सायंकाल संध्या वंदन के साथ ३-से १२ प्राणायाम करें। विना प्रा याम संध्या अधूरी ही कही जाती है। प्राणायाम के स मूल बन्ध, उड्डीयान बन्ध, जालंधर बन्ध करने में भूल न करें और ४ मात्रा पूरक, १६ मात्रा कुम्भक, और ८ मा रेचक करें। यह मात्रा की अवधि केवल प्रारंभिक साध के लिए है बाद में १६ मात्रा पूरक, ६४ मात्रा कुम्भक औ ३२ मात्रा रेचक कर सकते हैं।

## शरीर और ग्राम्य जीवन

प्रातः सूर्योदय के समय, मध्यान्ह १२ बजे, सायंका सूर्यास्त के समय संध्या वंदन करना चाहिए। शहरों में रोज इतना समय नहीं मिल सकता है ग्राम्य जीवन समय का उपयोग कर सकते हैं। अपवाद रूप से शहरों कोई त्रिकालिक संध्या करता होगा। भोजन, शयन, यो अभ्यास, उपवास, श्रवण, मनन, निदिध्यासन मल-मूत्र त्याग, ताम्बूल भक्षण, दुग्ध सेवन तथा हवन-होम आ नित्य नैमितिक कर्म उपासना की विधि विधानानुसार संध्या वंदन भी अवश्य ही करना चाहिए। यह महिलाओं के लि भी लाभप्रद है।

## प्राणायाम का लाभ

प्राणाम के आरम्भ में बताए गए सर्व शरीर, कोष, अवस्था के लिए लाभप्रद है। इन्द्रियों की शिथिलता दूर होती है, स्फूर्ति, शांति, आन्तरिक दिव्य शक्ति को बल मिलता है। उल्लासमय जीवन का अनुभव होता है। शरीर में स्थित अशुद्ध तत्व श्वास-प्रश्वास द्वारा प्राणायाम के समय बाहर अच्छी तरह से निकलता है। नाड़ियां शुद्ध होती हैं उन की कमजोरी दूर होती है। मस्तिष्क शांत रहता है उसके सूक्ष्म परमाणुओं में दिव्य प्रकाश का अनुभव होता है। आलस्य-प्रमाद, बुद्धि मंदत्व दूर होता है। प्राणायाम के प्रभाव से मूलाधार स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा तथा सहस्र दल चक्र में अच्छा प्रभाव पड़ता है। सात चक्रों में बल बढ़ता है। देह का संचालन सुचारू रूप से करने में योग मिलता है। इसके अलावा अनेकानेक प्राणायाम हैं जैसे सूर्य भेदन, चन्द्र भेदन, उज्जांई, शीतली, शीतकारी, भ्रामरी, मूर्छा, भस्त्रिका नं. १ और २ हैं। भिन्न २ प्राणायाम का लाभ भी जुदा २ है। और भिन्न-भिन्न ऋतुओं में करने लायक हैं। प्रकृति अनुसार प्राणायाम करना चाहिये। अनुलोम-विलोम प्राणायाम सब के लिये सर्वऋतु में लाभकारी है।

प्रवचन कर्ता— योगीराज उमेशचन्द्रजी

विषय— सूर्य किरण चिकित्सा

समादरणीय सज्जनो तथा माताओ! सूर्य में कितनी

प्रचण्ड शक्ति है इस विषय में विज्ञानवादी जान सकते है सामान्य मानव की पहुंच से परे की यह बात है। इस वि में लगभग पौना भाग पानी और चौथाई भाग स्थल का है इस विषय में संदेह करने की गुंजाइश नहीं। अग्नि का प्रचं प्रवाह सूर्य का केन्द्र है। इसीसे वेद में सूर्य की महिमा, स्तुति में उसे परमात्मा कहा गया है। पृथ्वी, जल, वायु, आका के भीतर और बाहर अपनी अगाध शक्ति का परिचय सू भगवान् दे रहे हैं। ज्वालामुखी, भूकंप आदि लक्षणों से भूमि के नीचे रहकर जलाशय, नदी, समुद्र आदि स्थानों से पानी के भाप के रूप में वायु का आधार लेकर आकाश में ले जाकर वर्षा गिराने के काम में, प्रत्येक प्राणी के नाभि कमल में वैश्वानर अग्नि के रूप में, पित्ताशय कोष में एवं सूक्ष्म रूप से आंख, जीभ, रक्त, आदि शारीरिक अवयवों में भगवान् सूर्य प्रत्यक्ष रूप में विद्यमान है। प्रत्यक्ष रूप से साकार रूपसे जो भगवान् विराजमान है वह सूर्य ही है। समस्त जीवधारियों और वनस्पतियों की उत्पत्ति, स्थिति और लय में सूर्य ही कारण है।

कहावत है कि जिस घरमें सूर्य किरणों का प्रवेश नहीं उस घर में वैद्य, यौगिक, तथा प्राकृतिक चिकित्सकों का प्रवेश है। अर्थात् अंधेरे कमरे अथवा घर में अशुद्ध वायु जीव-जन्तुओं की उत्पत्ति, मलिन स्थान, अविकसित मन की वृत्तियां, उदासी, अपचन आदि अनेक लक्षण उत्पन्न होते हैं। फलतः रोग विना निमंत्रण परेशान करते हैं।

## भिन्न २ प्रकार के रंग

सूर्य किरणों में अनेक प्रकार के रंग विद्यमान हैं। इनका स्पष्टीकरण वैज्ञानिकों ने तो किया ही है परंतु प्रकृति में वर्षा के दिनों तथा ठंडी की मौसम में वर्षा होने पर इन्द्रधनुष के रूप में देख सकते हैं।

## आकर्षक रंग

बादलों के ऊपर सूर्य की किरणों के प्रभाव से शांत, गंभीर, मनमोहक, आकर्षक, देदीप्यमान एवं चित्ताकर्षक अनेक रंगों का दर्शन कर थोड़ी देर के लिये बुद्धि स्थिर हो जाती है। बारंबार उस धनुषाकार के रंगों की ओर मन दौड़ता है। उन रंगों का स्पष्टीकरण में मुख्य पीला, हरा, नीला, लाल, सफेद, सुनहरा, बैंगनी रंग देखने में आते हैं। इन सभी रंगों से जीवमात्र के शरीर की रचना हो रखी है।

## सूर्य किरणों के रंग और षट्रस

मधुर, लवण, आम्ल, कषाय, तिक्त और कटु छः प्रकार के रसों में छः प्रकार के रंग तथा स्वाद हैं जो भिन्न २ अवयवों में रहकर भिन्न २ प्रकार के काम कर रहे हैं। हरेक का रंग भिन्न है। रक्त लाल है, पित्त पीला है, कफ सफेद और काला है। इस प्रकार ही वात, पित्त, कफ का जुदा २ रंग है।

## सप्ताश्वारूढ़ भगवान् सूर्य

सात घोड़ों से युक्त रथ में बैठकर सवारी करनेवाले सूर्य भगवान् हैं। ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि सूर्य भगवान् में अनेक रंगवाली किरणों के समूह है। उनमें

सप्तरंग मुख्य कहे गये हैं। लाल, पीला, नीला, सुनहरा हरा और बैंगनी जैसे रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, हड्डी औ वीर्य के भिन्न २ रंग हैं वैसे ही सूर्य किरणों में अलग प्रकार के रंग हैं। शरीर में विटामिनों की कमी हो जाने प उन्हें स्वास्थ्य के लिये पूर्ण करना पड़ता है। उदाहरणार्थ- शरीर में रक्त का अंश कम होने पर शरीर में पांडुरोग, अशक्ति, बुद्धि मंदता, निस्तेजावस्था, अन्य धातुओंमें क्षीणता, अपचन, मंदाग्नि आदि अनेक रोग के लक्षण मालूम पड़ते हैं। रक्त का प्रमाण बढ़ाने के लिये आहार द्वारा तथा सूर्यकिर चिकित्सा द्वारा लाल रंग का प्रमाण बढ़ाना पड़ता है।

## जल, तेल, शक्कर (चीनी) तैयार करने की विधि

तालाब, नदी का शुद्ध जल रंगीन बोतल में पौना भरें। बोतल का मुख बन्द रखें। प्रातःकाल १० बजे लकड़ी के ऊपर जल भरी हुई बोतल धूपमें रखें। ४ बजे बोतल को धूप में से उठाकर के कबाट में रखें। आकाश स्वच्छ होना चाहिये। घर, पेड़, या अन्य किसी भी वस्तु की छाया धूप में रखे जल पर नहीं पड़ने देना। चार बजे के बाद अन्य प्रकाश बोतल में नहीं पड़ने पावे। अतः कपड़े या कागज से ढककर कबाट में रखें। जल एक दिन की धूप में तैयार किया जाता है।

शक्कर (चीनी) तैयार करने की रीत— रंगीन बोतल में शक्कर भर देवें। लकड़ी के ऊपर धूप में प्रातः १० बजे रखें और ४ बजे उठाकर कपड़े में लपेटकर कबाट में रखी जाय। २२ दिन से १ मास तक हर रोज उपरोक्त विधि से

धूप में रखा जाय। इतनी अवधि में शक्कर में विटामिन सूर्य किरणों द्वारा पहुंच जायेंगे।

तैल तैयार करने की विधि— रंगीन बोतल में पौना भाग तेल भरकर धूप में उपरोक्त विधि से रखें। तेल २२ से ३० दिन में तैयार हो जाता है।

## कांच द्वारा सूर्य किरण चिकित्सा

७ फुट लम्बी लकड़ी की पट्टी से दो फ्रेम तैयार करें। एक बाजू पट्टियों से बंद रखें। दूसरी बाजू में चार रंग के कांच उस फ्रेम के खांचों में बिठावें। १८ इंच चौड़ा और २४ इंच लम्बा कांच होना चाहिये। पीला, लाल, हरा और नीला और सफेद रंग के कांच फ्रेम में बिठावें।

## जैसा रोग वैसा इलाज

दमा के रोगियों के लिये:—प्रातः ८-९ बजे के मध्यकाल में सूर्य के सामने कांच का फ्रेम रखा जाय। उसके मध्य भाग में रोगी को लिटाया जाय, सर पर हरे रंग का कांच, छाती पर लाल रंग, पेट पर पीले रंग का कांच और पैरों में सफेद रंग के कांच ० सूर्य की किरणें कांच द्वारा शरीर पर छोड़ें। सूर्य किरण का सेंक लेकर के आधा घण्टे के बाद गरम जल से स्नान करें। तीन दिन तक ७ मिनट, ३ से १० दिन तक १० मिनट; १० से १६ दिन तक १५ मिनट, १६ से २५ दिन तक २० मिनट, पश्चात् २० से ३० मिनट तक रंगीन कांच का सेंक लेना चाहिये। २ वर्ष तक के दमा वाले रोगी ४५ दिन तक। ४ वर्ष तक के रोगी ६० दिन तक और पुराने रोगी ३ से ४ मास तक कांच द्वारा सेंक लेना चाहिये।

## जल का सेवन

प्रातःकाल ७ बजे पीले रंग की बोतल में पहले से धू में तैयार किये जल का २ आँस सेवन करें। दोपहर को १ बजे लाल रंग की बोतल का जल, ४ बजे सुनहरी बोतल का जल, ७ बजे सायंकाल लाल रंग की बोतल का जल दो आँस की मात्रा से सेवन करें। रात को पीले रंग की बोतल का जल १ बजे दो आंस लें। बड़ों के लिये जल की मात्रा २ आंस और १२ वष से कम आयु वालों के लिये १ आंस की मात्रा है।

## सूर्य किरण द्वारा तैयार जल और सेंक का लाभ

हरे रंग की बोतल में तैयार किये जल से मस्तिष्क में ठंडक रहती है। लाल रंग के कांच से फेफड़ों के ऊपर सूर्य किरणों की सेंक लेने से कफ पतला होकर मल द्वारा दूर होगा। फेफड़ों में यथा योग्य उष्णता निर्माण होगी। श्वास की गति प्रमाण बद्ध रहेगी। पेट पर पीले रंग के कांच से सेंक लेने से मंदाग्नि दूर होगी। भूख बढ़ जायेगी। मलावरोध की शिकायत नहीं रहेगी। प्रात: तथा रात्रि को मल विसर्जन अच्छी तरह से होगा। अन्नाशय कोष, छोटी अंतड़ी तथा बड़ी अन्तड़ी में कफ का अंश पतला होकर मल विसर्जन के समय दूर होगा। अन्नाशय कोष में कफ नहीं बनेगा। अन्यान्य प्रकार से लाभ होगा। पैरों में सुनहरी रंग के कांच का सेंक लेने से पैरों की कमजोरी दूर दूर होगी। स्फूर्ति बढ़ेगी। चलते समय बल बढ़ेगा। सफेद रंग के कांच से पैरों के ऊपर सेक लेने से तलुवे तथा घुटने के भाग में योग्य रीति से उष्णता बनी रहेगी। दमा के रोग दूर करने के लिये केवल यहां उदाहरणार्थ उपरोक्त चिकित्सा बताई गई है। उसके साथ आहार का परिवर्तन आवश्यक है। नौली, धौती

नेती, कपाल भाति क्रियायें तथा आसन तथा सूर्य भेदन तथा भस्त्रिका प्राणायाम करना चाहिये ।

सज्जनो ! आज का भाषण केवल सूर्य किरण चिकित्सा द्वारा रोग निवारणार्थ रखा गया था । इस कारण से अन्य विषयों को गौण रखा गया है । आयु, ऋतु, शक्ति, प्रधान प्रकृति, रोग के लक्षण आदि अनेक विषयों में ध्यान रख करके रोगियों को सूर्य किरण चिकित्सा करनी चाहिये । आज आपके सामने सूर्य किरण चिकित्सा का महत्व, तेल, जल, शक्कर तैयार करने की रीत बताई गई है । अन्त में दमा के रोगियों के लिए उदाहरणार्थ उपचार बताया गया है । वैसे अलग २ रोगों के लिए अलग २ रंग की बोतलों के जल का उपयोग करना पड़ता है । और भिन्न २ अवयवों पर जुदे रंग के कांच का सेंक देना होता है । प्रातः यदि सेंक का समय न मिले तो सायंकाल ४॥ बजे के बाद दे सकते हैं । यह चिकित्सा प्रणाली सब रोगों पर सभी के लिए है ।

पंजाब, यू. पी., मध्य प्रदेश, राजस्थान, जम्मू,
काश्मीर तथा दिल्ली की सबसे अधिक
प्रकाशित होने वाली पत्रिका

मासिक भारत ज्योति

जो कि हिन्दी और पंजाबी में अलग अलग प्रकाशित होती है। अति सुन्दर, दिलचस्प, रचनाओं से भरपूर पत्रिका पढ़े और विज्ञापन दाता अपने व्यापार बढ़ाने के लिए इस पत्रिका को न भूलें क्योंकि यह उनके व्यापार के लिए अति लाभदायक होगा। पूर्ण विवरण के लिए निम्न पते पर लिखें :—

भारत ज्योति "मासिक"
जालंधर नगर (पंजाब)

( शेष पृष्ठ १६ का )

एक निष्काम कर्म योगी की भांति पहले अपने जीवन अमूल्य समय को राष्ट्र को स्वतंत्र कराने में व्यतीत कि फिर अन्त समय तक स्वदेश को आत्मनिर्भर बनाने अपना जीवन सर्वस्व लुटाया।

## योगाभ्यास के पुजारी

योगाभ्यास का महत्व पंडितजी को पूर्ण रूप से था तभी तो तरोताजा बने रहने के लिये वे नित्यप्र शीर्षासन व अन्य आसनाभ्यास किया करते थे। फल दिन रात के चौबीस घंटों में से थोड़े घंटे आराम कर कार्यरत रहा करते थे फिर भी उनका स्वास्थ्य बुढ़ापे में अच्छा बना रहा। यदि बुढ़ापे में पंडितजाने आठ घंटे प्रति दिन आराम लिया होता तो पंडितजी अभी और कई वर्ष जीवित रहते। खैर जो कुछ भी पंडितजीने किया उससे वे कई वर्ष जिन्दा रहने की अपेक्षा अमर ही हो गये हैं।

## धर्म निरपेक्षता

पंडितजी सर्व धर्मों को मन से आदर करते थे। वे मान धर्म को सर्वोपरि समझते थे। तदर्थ उनसे जो कुछ भी सका उन्होंने कुछ भी उठा न रखा। वे किसी के धर्म निन्दा–स्तुति को पसन्द नहीं किया करते थे। जिस धर्म अंधश्रद्धा, धर्म के नाम पर अधर्म पालन होता था उस को घृणा की दृष्टि से देखा करते थे।

## आत्म विश्वास

भाग्य, ज्योतिष, भविष्य वक्तव्य, ग्रह आदि के ऊपर कोई विश्वास न था। ध्येयनिष्ठा कर्तव्यपालन को ही मुख्य समझ कर आत्म विश्वास से आगे बढ़ते थे। सुख-दुःख को समान मानकर एवं आत्म विश्वास ही सर्वोपरि शक्ति का पुंज है ऐसे विचारों से सम्पन्न थे।

## पंचशील

समस्त विश्व में शांति प्रस्थापित करने हेतु पंचशील सिद्धान्त को जगत् के सामने रखा। उस सिद्धान्त के प्रति कुछ लोगों ने अपना सर्वस्व समझकर अपनाया और कुछने गौण रूप से अपनाया। पंडितजीने अपने जीवन के अन्तिम क्षण तक पंचशील के सिद्धान्त को मन, वचन, कर्म से पालन किया।

## पंचवर्षीय योजना

सैकड़ों वर्ष तक भारत के पराधीन रहने से भारतवासी परावलम्बन में ही अपने को धन्य समझते थे। पंडितजी ने देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भारत की सुसम्पन्नता के लिये पंचवर्षीय योजना का आयोजन किया। फलतः दो पंचवर्षीय योजनाओं के पूर्ण होने तक देश में अनेक क्षेत्र में आशातीत सफलता प्राप्त की।

## स्वदेश-विदेश

पंडितजी ने अपने को निष्काम कर्म योगी बनाकर अपने

देश वासियों के हृदय में स्थान प्राप्त किया। विश्व मानव के प्रति अपनी संवेदना प्रकट कर अपनी प्रतिभा के द्वा संसार के हरएक देश वासियों के प्रेम के भाजन बने।

अन्त में हम आदरपूर्वक सम्बोधन करते हैं कि पंडितज सदाचार संपन्न, सद्गुणों के भंडार, कर्तव्य परायण, आत्मविश्वासी, योगाभ्यास के उपासक, परोपकारी थे। प्रभु परमात्म आपकी आत्मा को शान्ति प्रदान करे। हम सहृदयता पूर्व श्री रामतीर्थ योगाश्रम के लाखों योगाभ्यासी एवं अनुयाइयों की ओर से श्रद्धांजलि अर्पण करते हैं।

* * *

उन्नति के पथ पर निरंतर अग्रसर
आयुर्वेद और स्वस्थ-साहित्यकी प्रतिनिधि-पत्रिका
स्वास्थ्य सरिता
श्री ज्ञानप्रकाश जैन–द्वारा सम्पादित]
प्रतिमास पढ़े :
* स्वास्थ्य-सम्बन्धी बौद्धिक-लेख
* सामाजिक-पृष्ठभूमि पर लिखी मनोरंजक-कहानियां
* नवोदित-रचयिताओं की कवितायें
* पारिवारिक-गुत्थियोंको सुलझानेवाले स्थायी-स्तम्भ
और * नये साहित्य पर कृष्णमुनि प्रभाकर का निर्भीक-विवेचन
एक प्रति पचास नये पैसे * वार्षिक-शुल्क केवल पाँच रुपये
नमूनांक मुफ्त नहीं भेजा जाता। अपना चन्दा आज ही भेजें
स्वास्थ्य-सरिता प्रकाशन, कोटगेट, बीकानेर (राजस्थान)

# लौह भस्म

लेखक
डॉ. लल्लन प्रसाद गुप्त

विविध नामावली—लोहा, लौह, स्टील आयरन आदि। लौह सेवन से रक्त कणों की वृद्धि होती है। प्रत्येक भारतीय भोजन के साथ बराबर लौह सेवन करता है। पाठकों का अचंभा होगा कि भोजन के साथ या अलग से कोई भी मानव लौह नहीं खा सकता है। ऐसा सोचना भूल है। जब रोटियाँ लौह के तवे पर पकाई जाती हैं या विविध भोज्य पदार्थ लौह पात्र में बनाया जाता है तो अग्नि की प्रबलता से लौह कण पिघल-पिघल कर रोटियों और भोज्य पदार्थों में अपने आप घुल-मिल जाता है। उसी को मनुष्य सेवन करता है। भोजन बनाने के लिये केवल लौह पात्रों का उपयोग करने की आज्ञा आयुर्वेद ने दी है। लोह पात्र के अलावा भोजन बनाने के दूसरे धातु से बने पात्र स्वास्थ्य की दृष्टि कोण से

हानिकर सिद्ध हुए हैं।

लौह भस्म का गुणः—आयुर्वेद में प्रमाण मिलता है कि-
आयुः प्रदाता बलवीर्यकर्त्ता रोग्यपहर्त्ता मदनस्यकर्त्ता
अयः समानं न हि किंचिदस्ति रसायनं श्रेष्ठतमं नराणाम्।

लौह भस्म आयुवर्द्धक, बल, ओज, कान्ति और शु की वृद्धि करता है। रक्त को बढ़ाता है और शुद्ध भी करता है। आयुवर्द्धक, सौन्दर्य वर्द्धक, बल–वीर्य को बढ़ाने वाला पौष्टिक रसायन है। नाना प्रकार के प्राण घातक रोगों को नाश करने की महान शक्ति लौह भस्म को प्राप्त है। लौह द्वारा निर्मित अस्त्र-शस्त्रों द्वारा शत्रुओं का नाश हो जाता है उसी प्रकार लौह भस्म से रोग रूपी शत्रुओं का नाश हो जाता है। पाण्डु, पित्त विकार, उन्माद, धातु दौर्बल्य, शुक्र क्षीणता, बीस प्रकार के प्रमेह, पीनस, क्षयी, नासूर, गन्दे व्रण, संग्रहणी, मन्दाग्नि, प्रदर, मेदवृद्धि, कृमि, उदररोग, आमवात, प्रसूति ज्वर, काला जार, जीर्ण ज्वर, दूषित मलेरिया, आमदोष, हृदयरोग, बवासीर, रक्तपित्त, अम्लपित्त, शोथ, कुष्ठ यकृत दोष, रक्ताल्पता आदि भयंकर बीमारियों का नाश लौह भस्म से लेकर शरीर में नये मांस, रस और रक्त कि वृद्धि होती है। शरीर को हृष्ट और सबल बनाने में लौह भस्म का प्रथम स्थान है। यह भस्म कुछ अंशों में कामोद्दीपक भी है। आयुर्वेदिक और एलोपैथिक दोनों चिकित्सा प्रणाली में लौह भस्म को एक मात्र स्थान प्राप्त है। निर्बल (कमजोर), जीर्ण–शीर्ण शरीर का पोषण लौह भस्म से हो जाता है। अमीर–गरीब, सब पर समान दृष्टि

लौह भस्म रखता है और सर्व सुलभ है।

उपयोग—पाण्डुरोग में लौह भस्म का प्रयोग भली-भाँति किया जा सकता है। कृमि जन्य पाण्डु रोग में कृमिघ्न औषधि के साथ लौह भस्म का सेवन करने से अधिक लाभ होता है। आँतों में रहने वाले कीटाणुओं से जो पाण्डु रोग उत्पन्न होता है वह लौह भस्म को भाभीरंग (वायबिडंग), पलर बन्दा (पलास फली) या अजवाईन के चूर्ण के साथ लेने से आश्चर्य जनक लाभ होते हुए देखा गया है। लौह भस्म सेवन करने से रक्त कणों की वृद्धि होती है और रक्त की निस्तेजता नष्ट हो जाती है। अतः लौह भस्म का उपयोग पाण्डु रोग में अधिक किया जाता है। पाण्डु रोगी के लिये लौह भस्म उत्तम और विश्वविख्यात सुप्रसिद्ध महौषधि है।

पित्ताशय को आवश्यक रक्त मिलने या पित्त के परिमाण में कमी आ जाने से अजीर्ण, बदहजमी, अपचन, मदाग्नि अफारा, खट्टी डकारों का आना, मिचली, कफ और पित्त मिश्रित, कै इत्यादि उपद्रव होने पर लोह भस्म पुदीना या सौंफ के चूर्ण के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

वात वाहिनियों, माँस पेशियों या स्नायु के संकोच या वायु की तीव्र वेदनाओं को शमन करने के लिये शुद्ध हिंगुल में लौह भस्म मिश्रण करके सेवन करने से शीघ्र ही लाभ होता है। अधिक रक्तस्राव होने से रक्त वाहिनियों, मस्तिष्क या अन्य अवयवों में शून्यता आ जाने, हृदय की धड़कन और घबराहट, निर्बलता, चक्कर, हाथ-पांव का थर थराना आदि

उपसर्ग उत्पन्न होने पर लौह भस्म का सेवन मधु के लाभदायक सिद्ध हुआ है। यद्यपि ये उपसर्ग रक्त-पित्त मिले हुये हों तो लौह भस्म का सेवन चन्दनादि क्वाथ करना चाहिये। अगर आराम न मिले तो चरकोक्त लौहासव का सेवन सबसे लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

रक्तार्श में खून गिरने के शुरू-शुरू में लौह भस्म सेवन निषेध माना गया है। लेकिन पित्तार्श अथवा वाता की प्रारंभिक अवस्था में अधिक दुर्बलता आ जाने पर लौ भस्म का सेवन करना बहुत ही लाभप्रद है। रक्तार्श में र के अधिक गिर जाने से हृद शूल, शोथ, कामला (एनेमियाँ) पाण्डु, रक्ताल्पता आदि लक्षण प्रकट होने पर लौह भस्म प्रयोग अति उत्तम माना गया है। अतिसार और संग्रहणी रो में संग्रहणी के साथ ही साथ पक्वाशय निर्बल हो जाता है जिससे दुर्गन्ध श्वेत रंग का मल गिरने लगता है। इस रो में लौह भस्म का प्रयोग शक्ति उत्पन्न करने के लिये कि जाता है। संग्रहणी के कारण यदि अधिक कमजोरी उत्पन्न हो गई हो माँस, रस, रक्त, बल और वीर्य क्षीण हो गया हो तो लौह भस्म का प्रयोग लाभ कारक सिद्ध हुआ है। हृदय रोग होने पर यदि श्वास की अधिकता हो तो लौह भस्म अच्छा काम करता है। जब वक्ष स्थल में अधिक श्वास वायु भरा रहे और साथ ही साथ निस्तेजता, बेचैनी और नाड़ी की गति तीव्र हो जाये तो ऐसी स्थिति में लौह भस्म का सेवन कल्याणकारी होगा।

पित्तप्रकोपः-जिसमें आँखों का रक्त वर्ण हो जाना, मुं

हाथ-पैरों पर तुरन्त प्रस्वेद आजाना, शरीर का लाल होना, कुछ समय बाद अनिद्रा, बैचैनी और घबराहट होकर शरीर निस्तेज और अग्नि के समान गर्म होना, सारे शरीर तथा रक्त वाहिनियों में अति वेग से रक्त प्रवाह की गति बढ़ना, हृदय और नाड़ी की गति-विधि में वृद्धि होना, मानसिक उद्वेग और बेचैनी का उत्पन्न होना, चमड़ी का अधिक गर्म होना आदि उत्पात पित्त प्रधान प्रकोप का लक्षण है। इस रोग की एक मात्र महौषधि लौह भस्म ही है। आंवला के मुरब्बे में लौह भस्म का सेवन नियम पूर्वक करने से इस दुष्ट रोग से छुटकारा मिल जाता है। गुलकन्द के साथ भी लौह भस्म पित्तज उपसर्ग में किया जा सकता है।

विषम ज्वर-या शीत लगकर आनेवाले ज्वरों से प्लीहा (यकृत) आदि दोष पैदा होकर शरीर को अस्थि पंजर मात्र ही छोड़ता है-एवं कुनाइन से अटवा ज्वर, घबराहट, बेचैनी, अनिद्रा, श्वास-कास, मुँह पर सूजन का आना, मुख मण्डल का श्वेत अथवा पीत वर्ण का होना, कान का बहिरापन होना, दस्त आदि उपसर्ग के उत्पन्न होते ही लौह भस्म का सेवन लाभप्रद है। परन्तु जिन रोगियों को लौह भस्म लाभ की अपेक्षा हानि करता हो तो उनको स्वर्ण माक्षिक भस्म के साथ लौह भस्म का सेवन लाभदायक है। यकृत, ताप और तिल्ली के लिये लौह अमृततुल्य सिद्ध हुआ है।

सर्वांग शोथ, सर्वांग सन्धि शोथ और सर्वांग शोथ के निचले हिस्से में लसीका का संचय होना, यहां तक कि अँगुली के स्पर्श से गढ्ढा हो जाता है तथा अत्यन्त पाण्डुता,

अधिक घबराहट, मुंह पर अधिक रूखापन, सम्पूर्ण श
की शिरायें उड़ती हुई मालूम पड़ती हों, रोगी कष्ट से बोल
हो, मूत्राशय की निर्बलता से बार-बार मूत्र त्यागना अ
उपसर्ग जब शोथ में हों और यकृत-प्लीहा की वृद्धि भी
तो लौह भस्म का प्रयोग ताम्र भस्म के साथ करने से अधि
लाभ होता है।

किसी भी भयंकर बीमारी से मुक्त होने के बाद रो
अधिक दुर्बल और बलहीन हो जाता है। रक्त के रक्त
कमजोर पड़ जाते हैं। बड़े २ रोगों में दोष प्रकोप से धु
और धातु साम्य स्थापित करते रहने से सभी इन्द्रि
बिलकुल थककर निर्बल हो जाती हैं और मांस, रस, र
और बल भी क्षीण हो जाता है। इस प्रकार की दुर्बलता औ
शरीर की क्षीणता लौह भस्म मधु के साथ सेवन करने
पुनः सबल हो जाती हैं। विशेषतः रक्त की अशक्तता
कारण आई हुई कमजोरी निःसन्देह लौह भस्म के प्रयोग
जाती रहती है।

पित्तज और कफज प्रमेहः— जिस रोगी को बार-बा
मूत्र होता है, मूत्र मात्रा अधिक और कम दोनों
चमड़ी में शुष्कपन हो, शरीर का रंग श्वेत या पीला हो
अन्दरिय दाह, मूत्र का बहुत कम मात्रा में होना और बार
बार मूत्र त्याग को इच्छा हो, त्वचा में चकत्ता हो
जस्ता भस्म के साथ लौह भस्म का सेवन करने से आश्च
जनक लाभ होता है।

गुल्म, अष्ठीला, प्लीहा और यकृत दोष से रक्त के रक्ता

बहुत ही कम होकर पाण्डुरोग को उत्पन्न कर देता है। इस तरह के रोगों में लौह भस्म को मन्डूर भस्म में मिलाकर सेवन करने से शीघ्र ही लाभ होता है। उपरोक्त रोगों के कारण अगर शरीर अधिक क्षीण हो गया हो और मन्द मन्द ज्वर बराबर रहता रहे तो लौह भस्म का सेवन अभ्रक भस्म, स्वर्ण भस्म, शिलाजीत अथवा त्रिफला चूर्ण के साथ नियम पूर्वक सेवन करना चाहिये। लौह भस्म महान रसायन है अतः इस भस्म को बढ़ते और उतरते क्रम से प्रयोग में लाना चाहिये।

सम्पूर्ण शरीर में सब धातुओं को उचित मात्रा में यथा समय पहुंचानेवाली धातु रक्त है। रक्त धातु के रक्त कण और घटक शरीर पोषण का कार्य करते हैं। रक्त धातु को प्रचुर मात्रा में पैदा करने के लिये लौह भस्म का सेवन परमावश्यक है। तरुण के लिये लौह भस्म और शिशुओं के लिये मण्डूर भस्म अधिक लाभकारी होता है। आरोग्य मनुष्य को बिना रोग के ही जब निर्बलता का आभास विदित होता हो तो लौह भस्म का सेवन करना चाहिये। मनुष्य को दीर्घायु बनाने में भी लौह भस्म सहायक है। लौह भस्म से अण्डकोशों में नवीन शक्ति उत्पन्न होती है। अण्डकोष के कारण उत्पन्न नपुंसकता और वीर्य हीनता आदि लौह के प्रयोग से दूर हो जाता है। इसके अलावा सप्त धातुओं को पुष्ट करता है और शरीर के प्रत्येक अवयवों में नवीन शक्ति उत्पन्न करता है। कोष्टगत वेदना, आमजन्य शूल, अर्श के कारण से शरीर का रक्त बह जाने पर लौह भस्म का प्रयोग

सफलतापूर्वक किया जाता है। इन रोगों में जब लौह भ हानिकर प्रतीत हो तो मुण्ड लौह भस्म का उपयोग ला दायक होगा।

वात वाहिनियों या रक्त वाहिनियों के संकुचन से वेद उत्पन्न हुई हो, तो लौह भस्म के प्रयोग से रक्ताभिसरण क्रि की वृद्धि होकर वेदनाओं का नाश हो जाते देखा गया है यदि वेदना आमवात या रक्त जन्य हो, तो योगराज गुग् या महा योगराज गुगुल, आक्षेपक समान हो, तो महा वा विध्वंसन रस, वात-पित्त प्रधान आक्षेप रहित हो, तो सू शेखर रस और पित्त प्रधान हो, तो तारयादि लौह दे लाभकारी है।

आमवात रोग से स्वस्थ होने के बाद उत्पन्न हुई दुर्बल को समाप्त करने के लिये आम विकार के मूल कारण आम उत्पादन बन्द करना आवश्यक है। आम दोष के उत्पाद बन्द करना आवश्यक है। आम दोष के उत्पादन करने प्रधान कारण अग्निमन्द होने को कहते हैं। जब पाचक अग्नि सबल और कार्यक्षम हो जाय, तब नये आम दोष के उत्प होने की सम्भावना नहीं रहती है। ऐसे ही पाचक पित्त न्यूनता के कारण कोष्ट वद्धता और वेदना, मदाग्नि आदि रोगों की नींव पड़ते ही मुण्ड लौह भस्म का प्रयोग प्रारम् करना आवश्यक है। कामला रोग में पित्त, पित्ताशय में कोष्ट में नहीं जाता, किन्तु रक्त में पित्त मिल जाता है ऐसे समय में प्रायः पित्ताशय कमजोर हो जाता है। त्वचा

नख और मूत्र आदि पीले रंग के हो जाते है। अगर ऐसे रोगी को दुर्बलता अधिक मालूम पड़े तो मुण्ड लौह भस्म का सेवन करना ही हितकर होगा।

पित्त प्रधान कुष्ठ रोगों में दोषों के कारण चमड़ी और रक्त दूषित हो गया है तो लौह भस्म का प्रयोग करना चाहिये, पित्त प्रधान कुष्ठ रोगों में प्रदाह, लाली, त्वचा का दाह, अंगुलियों पर छाले या फफोले, गन्दे व्रणों में से पानीके सदृश्य चिकने पूय का निकलना, कभी-कभी अंगुलियों की त्वचा पर दूषित व्रणों का काले या रंगों में निकलना, व्रण में खुजली के साथ ही साथ छोटे २ दानों का निकलना आदि लक्षण दिखाई दे तो लौह भस्म का प्रयोग त्रिफला चूर्ण या अन्य कुष्ठघ्न नाशक औषधियों के साथ करना चाहिए। आरोग्य वर्द्धनी बटिका का भी सेवन किया जा सकता है। इस चिकित्सा से पित्तज कुष्ठ समूल नष्ट होते देखा गया है।

लौह भस्म निर्माण विधि:—शुद्ध लौह चूर्ण (१० पुटी लौह भस्म) ४० तोला, सफेद शंखिया, तबकिया हरताल, शुद्ध गंधक, शुद्ध पारद ८-८ तोले, शुद्ध कपूर ४ तोला लें। पहले लौह भस्म १० पुटी या लौह चूर्ण उपरोक्त द्रव्यों के साथ सोमल २ तोला और कपुर ३ मासा मिला कर घृतकुमारी के रस में ६ घन्टे तक खरल कर ३-३ तोले की टिकिली बना कर तीव्र धूप में सुखा लेना चाहिये। इसके बाद मिट्टी के पात्र में बन्द कर १५ सेर कन्डों की आंच दें। दूसरी बार उसी लोह में हरताल २ तोला, कपूर ३ मासा

मिलाकर घृतकुमारी के रस में ६ घन्टे तक घोट कर १० सेर कन्डों की आंच में फूंक देना चाहिये। तीसरी बार गंधक २ तोला और कपूर ३ माशा मिला घृत कुमारी के रस में पुनः ६ घंटे तक खरल कर टिकली उपरोक्त वजन की बना लेना चाहिये। मिट्टी के पात्र में बन्द कर उसी प्रकार कन्डों की आंच देते रहना चाहिये। चौथी बार पारद २ तोला और कपुर ३ माशा मिलाकर घृतकुमारी के रस में खरल कर उपरोक्त टिकली बना कर उसी प्रकार अग्नि में फूंक दें। इसी विधि से १६ बार आंच दें, फिर भस्म को लोहे की कढ़ाई में डाल कर समभाग वीर बहूटी मिलाकर नीचे से मन्द-मन्द अग्नि की आंच देनी चाहिए और इधर-उधर द्रव्य को हिलाते-डुलाते रहे, जब वीरबहूटी जल जाय तब भस्म को लोहे के तवे से ढक देना चाहिए और ५-६ घण्टे तक प्रबल अग्नि की आंच देना चाहिये। स्वांग ठण्डा होने पर निकाल लें। यह लौह भस्म अति मुलायम खील की हो जायेगी। इस लौह भस्म को लोगों ने बाजी करके साथ-साथ महा रसायन की संज्ञा दी है। उस तरह लौह भस्म, मुण्ड लौह भस्म, साधारण लौह भस्म, १० पुटी लौह भस्म, लौहसार भस्म, तीक्ष्ण लौह भस्म, शत पुटी लौह भस्म, सहस्त्र पुटी लौह भस्म आदि अनेकों तरह का लौह भस्म होता है। लेकिन सबका गुण एक समान नहीं होता।

**लौह भस्मों की मात्रा**— आधी से तीन रत्ती तक। प्रति दिन दो बार पीपल चूर्ण और मधु, मक्खन, मिश्री, त्रिफला घी-मिश्री, मलाई या च्यवनप्राश अवलेह, संग्रहणी में

मलावरोधक अनुपान के साथ लौहभस्म का सेवन करना चाहिये।

विविध अनुपानः— प्रमेह में-हरड़ और गोखरू ३-३ माशा, तालमखाना ५ माशा तथा मिश्री ६ माशे के साथ लौह भस्म प्रयोग करें ऊपर जल पीना चाहिये। त्रिफला का चूर्ण और शहद के साथ भी प्रयोग कर ऊपर से गुण्च (गिलोय) का रस पीना चाहिये।

दारूण अश्मरीः— शहद के साथ लौह भस्म सेवन करना चाहिये, ऊपर से ५ तोले गोखरू का क्वाथ पीना अधिक लाभदायक होगा।

कफज श्वासः— रस सिन्दूर, मिश्री और त्रिकुटा-मधु के साथ लौह भस्म का प्रयोग करना चाहिये।

जीर्णज्वरः-- पीपल का चूर्ण और मधु के साथ लौह भस्म का सेवन करें।

वात वृद्धि में:-- लहसुन और घृत के साथ लौहभस्म का प्रयोग लाभदायक है।

पित्त ज्वरः--शहद के साथ लौह भस्म सेवनीय है।

कफ-पित्त ज्वरः--अदरख रस और मधु के साथ प्रयोग करना चाहिये।

पाण्डुः— लौह भस्म को १० दिन तक गो मूत्र में खरल कर ३-३ दिन में दो-तीन बार दुग्ध से सेवन करना लाभप्रद है।

मंडल कुष्ठ:-- ( पाया और खुजली )--आंवला, शक्क और नीम पंचाग के साथ २३ दिन ४-४ रत्ती दिन में २ बार लौह भस्म का सेवन आवश्यक है।

उदावर्त:-- शक्कर और बिल्व पत्ती के स्वरस में लौह का सेवन आवश्यक है।

सर्वांग शूल:-- शम्बूक भस्म और शक्कर के साथ लौह भस्म सेवन करें, ऊपर से उष्ण जल पीना चाहिये।

हिक्का और श्वास:— कचूर-पुष्कर मूल और आंवले का चूर्ण ३ माशे और लौह भस्म २ रत्ती मधु के साथ प्रति दिन ३ बार देना लाभकारी है।

उदर शूल:— गो मूत्र में उबाली हुई छोटी हरड़ का चूर्ण और गुण के साथ लौह भस्म सेवन करें, ऊपर शीतल जल पीना चाहिये।

८० प्रकार के वात रोगों में:— निर्गुण्डी के रस के साथ सेवन करें।

कफ वृद्धि में:— शहद और कजली अथवा पीपल का चूर्ण और मधु के साथ लौह भस्म सेवन करने से लाभ होता है।

पित्त रोगों में— दाल चीनी, छोटी इलायची अथवा तेज पत्र के साथ सेवन करें।

रक्त पित्त:— चतुर्जात और मिश्री के साथ, या आंवला, पीपल और मिश्री अथवा अदरख रस और मधु के साथ बराबर सेवन करना चाहिये।

पाण्डु और हलीमकः— पुनर्नवा रस, नागर मोथा के चूर्ण के साथ देकर ऊपर से खैर का क्वाथ पीना अधिक लाभकारी है।

२० प्रकार के प्रमेहों में:— हल्दी, पीपल और मधु के साथ लेना चाहिये।

मूत्र कृच्छ्रः— शिलाजीत के साथ दें।

मन्दाग्नि पर:— नागर वेल या पानी के साथ दें।

रसायन के लिये:— त्रिफला और मधु के साथ दें।

धातु दोषों परः— त्रिकटु, भारंगी और शहद के साथ प्रयोग करना चाहिये।

बलवृद्धि के लिये:— पुनर्नवादि चूर्ण गो दुग्ध के साथ सेवनीय है।

कास में:— वासा स्वास, पीपल; मुन्नका और शहद के साथ सेवन करें।

त्रिदोषज शूलः— त्रिफला चूर्ण, घृत और शहद के साथ प्रयोग में लाना चाहिये। घृत और शहद की मात्रा बराबर न रहनी चाहिये।

हृदय दौर्बल्यः— अर्जुनारिष्ट के साथ दें।

सम्पूर्ण प्रदर रोगों:— अशोकारिष्ट के साथ।

उन्माद:— ब्राह्मी स्वरस या सारस्वतारिष्ट के साथ सेवन करें।

विशेषः— कान्त लौह भस्म कुछ कोष्ठबध्यता उत्पन्न करता है, जिनको पुरानी कोष्ठबध्यता रहती है। उनको मण्डूर भस्म और मुन्नका क्वाथ के साथ प्रयोग करना चाहिये।

साधारण लौह भस्म में भी उपरोक्त दोष कुछ अंशों पाया जाता है, लेकिन इसका प्रभाव बहुत ही अल्प होता है,

पथ्यापथ्य:— लौह भस्म या लौह मिश्रित औषधि के सेवन करते समय तेल, उड़द, राई, शराब, गांजा, अफी खट्टे पदार्थ, कुष्माण्ड, ककड़ी, तरबूजा, करौंदा, नींबू, कशे बकोड़ा, कांजी, कुलथी करेला, कैथ, आमला, इमली, बांगनी, मुर्गे आदि का मांस, अण्डा, धूम्रपान, लाल मिर्च, गुड़, खट्टी चटनी, अचार, कटहल, लहसुन आदि का खा मना है। हल्का और सुपाच्य भोजन तथा फलों का र लाभकारी पथ्य है।

* * *

## सुखमार्ग

### मासिक-पत्र

सुख सम्पति पाने के लिये सामाजिक, धार्मिक, वैद्यक एवं स्वास्थ्य आदि सभी सामायिक समस्याओं से ओत-प्रोत ५० वर्षों से भारतीयों में जागरण का शंखनाद करने वाले सचित्र 'सुखमार्ग' को अवश्य पढ़ें। यह बड़े-बड़े विद्वानों के लेख लेकर हजारों की संख्या में छपता है। विशेषांक भी निकलते हैं। प्रश्न उत्तर और लेख समाचार मुफ्त छापता है।

वार्षिक मूल्य केवल १) नमूना मुफ्त।

पता—सुखमार्ग, केमीकल प्रेस, अलीगढ़

* * *

(शेष पृष्ठ १५ का)

जीवन का मुख्य उद्देश्य एक होते हुए कई गौण लक्ष्य भी थे। वे जीवन को अनेक दृष्टिकोणों से देखते और प्यार करते थे। इसीलिये उनमें किसी समस्या के अनेक पहलुओं को देख सकने की क्षमता थी जो साधारण राजनीतिज्ञ में नहीं। इसी से कभी कभी नाजुक परिस्थितियों में उनकी काल्पनिक या यथार्थ असमर्थता उनके साफ-साफ निर्णय करने में बाधक होती थी।

जब सारी दुनिया की चिन्ता पंडित जी के दिमाग में फेरे लगाने लगती थी, तो उसकी प्रतिक्रिया उनके चेहरे पर होती थी। और वे गंभीर हो जाते थे। पंडित जी वक्तृत-कला की दृष्टि से कोई बहुत बड़े वक्ता नहीं थे, शब्दों के लिये उन्हें कई बार लड़खड़ाना पड़ता था, पर जो कुछ उनके मुख से निकलता था, वह हृदय की सच्ची तड़पन होती थी, और इसीलिए सुनने वालों के दिल में घर कर जाती थी। सभा नियंत्रण करने वाला शायद पंडित जी जैसा भारत भर में कोई नहीं है। १९४५ में बलिया में सभा शुरू होने के समय स्कूल की छत गिर गई। ऊपर सैकड़ों आदमी बैठे थे और उसके नीचे-गिरते ही बाहर के हजारों आदमी उनकी ओर दौड़ने को तैयार हुए थे कि पंडित जी ने माइक्रोफोन पर जोर-जोर से चिल्लाकर उनको नियंत्रित कर लिया। पंडित जी खुद मंच से उतर कर दुर्घटना-स्थल पर गये और सभा के बाद रसड़ा जाने की जल्दी रहने पर भी घायलों को देखने अस्पताल गये। पंडित जी की यह आत्मानुभूति भारत में कितने नेताओं के पास है ?

एक और घटना है। अमेरिकन पत्र 'टाइम' और 'लाइफ' की ओर से उन्हें निमंत्रण मिला। वहां 'मार्च आफ टाइम' नामक संवाद-फिल्म ली जाने वाली थी। आफिस सजाया गया था। नेहरू जी के लिये वहां के प्रधान श्री ग्रेन्नर ने एक विशेष कुर्सी रक्खी थी। नेहरू जी आये। उनसे कुछ 'माइक' पर बोलने के लिये कहा गया। नेहरू जी पहले से लिखकर नहीं ले आये थे। अतः वे तुरन्त श्री ग्रेन्नर की कुर्सी खींचकर बैठ गये और वहीं भाषण तैयार कर डाला।

बाद में श्री ग्रेन्नर बराबर आगन्तुकों से सगर्व कहा करते थे कि श्री नेहरू मेरी इस कुर्सी पर बैठ चुके हैं। वहां आपकी फिल्म ली गई। उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त में नागरिकों के ऊपर की गई बम वर्षा की आपने कटु आलोचना की। उस समय आप विदेशी लिबास में थे। एक पत्रकार ने कहा कि यदि आप भारतीय वेश-भूषा में होते तो कितना अच्छा होता। पर कम से कम यदि गांधी टोपी ही सर पर होती तो ज्यादा उपयुक्त होता। इस पर आप ने तुरन्त कहा—'आपने पहले क्यों नहीं बताया, मेरे पास तो एक टोपी थी।'

एक दूसरी घटना है जो उस जादू पर प्रकाश डालती है जो जवाहर लाल के नाम में मौजूद है। गाजीपुर में दौरे के समय एक रास्ते से मोटर पर जवाहर लाल जा रहे थे। शाम हो चुकी थी और सड़क के किनारे थोड़ा हटकर बड़े मैदान में रामलीला हो रही थी। दो-ढाई हजार आदमी लीला देख रहे थे, और छोटे-छोटे बच्चे राम-लक्ष्मण बने हुए थे। झाँझ बज रही थी और रामायण गायी जा रही थी।

सबका ध्यान लीला की ओर लगा हुआ था। इतने में जवाहर लाल की मोटर उसी रास्ते पर जाती हुई पास से गुजरी। सड़क के बगल में खड़े किसी आदमी ने यह पहचाना कि मोटर में जवाहरलाल हैं और सहसा चिल्ला उठा, 'जवाहर लाल नेहरू की जय।' उसका चिल्लाना था कि वह सारा मेला जो एकाग्र चित्त से लीला देख रहा था, सहसा सड़क की ओर मुड़ा और दौड़ पड़ा। मोटर रुकी नहीं आगे बढ़ गई पर डेढ़ दो-हजार आदमी जय-जयकार करते हुये मोटर के पीछे दौड़ते और पीछा करते दिखाई पड़े। देखा गया कि राम जी के पास एक चिड़िया का पूत भी नहीं रह गया। रामायण गानेवाले भी, दो एक तो हाथ में झांझ लिये हुये भी दौड़ते दिखाई दिये। मोटर थोड़ी देर में ओझल हो गई और पता नहीं कि कहां तक दौड़ने के बाद भीड़ फिर रामलीला देखने के लिये वापस चली गई।

पंडितजी काम बेहद करते थे। बहुत ही व्यस्त रहते थे। उनका एक-एक मिनट का समय बँधा रहता था। एक उदाहरण लीजिये। आम चुनावों से पूर्व १८ अक्टूबर १९५१ को दिल्ली में कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन नेहरूजी की ही अध्यक्षता में होना था। १३ अक्टूबर या संभवतः १४ को सायंकाल सात बजे जब पंडितजी केन्द्रीय कांग्रेस कार्यालय से जाने लगे तो उन्होंने स्थायी मंत्री श्री भार्गव से सहसा चौंक कर कहा, 'अरे भई, १८ अक्टूबर को कांग्रेस की बैठक होगी और मैंने अभीतक अपनी तकरीर नहीं लिखी है।'

और दूसरे दिन १० बजे पंडितजी का पूरा भाषण कार्यालय में आ गया और उस पर उनकी हस्तलिपि में लिखा था

कि प्रूफ अगले दिन मेरे पास डेढ़ बजे दिन में घर पर पहुं प्रेस के कम्पोजीटरों ने जान लगाकर काम किया, प्रे रीडरों और कार्यालय के लोगों ने भी बड़ी ही गौर से प पढ़ा कि कोई गलती न रह जाय। दूसरे दिन १ बजे ही प लेकर कार्यालय वाले उनके घर पहुंचे। उनके प्रा सेक्रेटरी मथाई से पता चला कि २ बजे रफी साहब मि आ रहे, फिर कुछ और काम, फिर कुछ और, आदि। अभी पंडितजीने खाना भी नहीं खाया है। उन्होंने वायदा किया कि जैसे ही प्रधानमंत्री खाने के कमरे के बा आयेंगे वैसे ही उनके हाथ में प्रूफ दे दिया जायगा। इतने मोटर आई और पंडितजी उतरे। कार्यालयवाले सोच र थे कि अब खाना खायेंगे। लगभग २७ या २८ पन्ने प्रूफ के शायद ही वे उसे देख पायें। वास्तव में वह चलने की सो रहे थे। पर प्रधान मंत्री के कर्मचारियों ने रुकने को कहा

ठीक दो बजे रफी साहब की मोटर आ पहुंची और ठी उसी समय चपरासी पंडितजी द्वारा पढ़े प्रूफों को देने आया पंडितजी ने प्रूफ की एक-एक लाइन पढ़ी, जो अशुद्धि प्रेसवाले और कार्यालयवाले अपनी गहरी सतर्कता के बावजू छोड़ गये थे, उन्हें उन्होंने ढूंढ़ निकाला। सात या आठ पृ पर कार्यालय के प्रूफ पढ़नेवालों ने कुछ प्रश्न प्रूफ संबं पूछे थे, जिनका उन्होंने उत्तर लिख दिया और सबके ऊ आवरण पृष्ठ का एक डिजाइन भी बना दिया। यह डिजा भी ठीक उसी किस्म का था जैसा लाहौर, लखनऊ औ फैजपुर कांग्रेसों के उनके अध्यक्षीय अभिभाषणों पर छ था। खाने के कमरे से वह डेढ़ बजे निकले थे।

नेहरूजी के किसी बात पर उत्तेजित हो उठने के क

उदाहरण दिया करते हैं। एक बार उन्हें आंध्र प्रान्त के गुंटूर जिले में, जहां बहुत ही प्रखर गरमी पड़ती है, एक गांव में एकत्र भारी भीड़ के सामने भाषण करने जाना पड़ा। तेज धूप से उनका बचाव करने के लिये ठीक उस स्थान पर के ऊपर जहां उन्हें खड़े होना था, वृक्ष के पत्तों का एक छत्र सा बना दिया गया था। वहां पहुंचते ही नेहरू जी ने चारों तरफ एक नजर दौड़ाई। उस झुलसाने वाली गरमी में उन्होंने जनता को बेहाल देखा। उन्होंने दुबक कर एक हाथ मारा और सारे आच्छादन को नीचे गिरा दिया। फिर आलोचकों को लक्ष्य कर जोर से गरज उठे—"मैं इतना सुकुमार नहीं हो गया हूं कि थोड़ी देर के लिये गरमी बरदाश्त न कर सकूं।" और सचमुच उस दावानल में अम्लान भाव से खड़े रहकर उन्होंने घंटे डेढ़ घंटे तक भाषण किया।

---

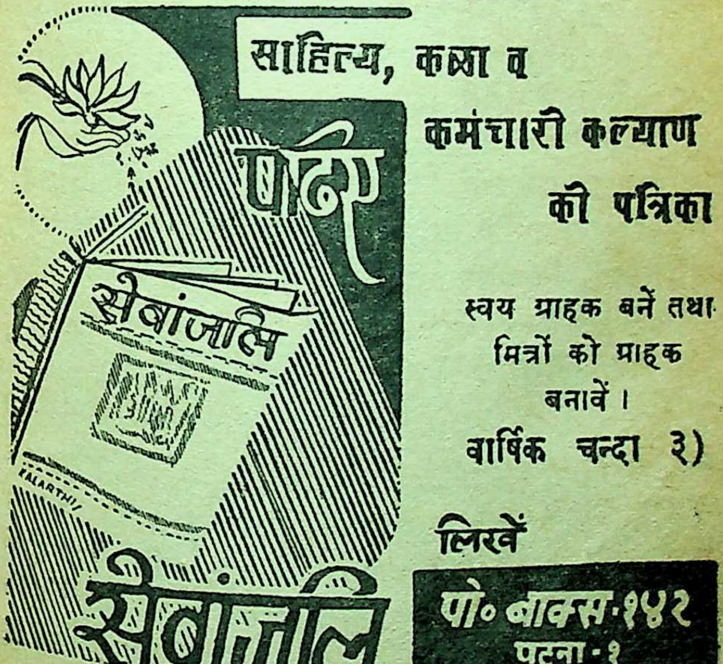

साहित्य, कला व
कर्मचारी कल्याण
की पत्रिका

स्वय ग्राहक बनें तथा
मित्रों को ग्राहक
बनावें।
वार्षिक चन्दा ३)

लिखें
पो० बाक्स-१५२
पटना-१

# ❋ श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम ❋

१-इस योगाश्रम में प्रविष्ठ होने के बाद साधक को बी सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आ से हटा दिया जायेगा।

२-ली ई फीस किसी भी दशामें वापस न हों

३-दूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आव साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर नि स्थान में रखनी होंगी।

४-सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण सं होना आवश्यक होगा।

५-योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दा स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचाल की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६-कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वा ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७-आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के २७रु. है

८-नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है बीच प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारी से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी हो समय प्रातःकाल ७॥ से ९॥ और सायंकाल ६ से ७॥ है। दो में से किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं

# श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

## (महत्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचर आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

**पुरुषों के लिये समय:**—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

**महिलाओंके लिये समयः**—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सबेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आनेवाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता हे।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन, कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

**विशेष सूचना:**— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबंध नहीं है।

WHEN
TRAVELLING
IN
TRAINS

*Be Careful*

TO EXTINGUISH THAT LIGHTED CIGARETTE END BEFORE THROWING AWAY OR USE THE ASHTRAY

●

DO NOT LIGHT STOVES IN COMPARTMENTS

*FOR* **SAFETY**
*OBSERVE*
***FIRE PREVENTION RULES***
*IN TRAINS*

DO NOT CARRY INFLAMMABLE ARTICLES IN COMPARTMENTS

NEGLIGENCE CAN CAUSE SERIOUS FIRES RESULTING IN LOSS OF LIFE & PROPERTY

Inserted in the interest of *SAFETY in TRAVEL*
by the **CENTRAL RAILWAY**

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

# रामतीर्थ

सम्पादक—
योगीराज
उमेशचन्द्रजी

वर्ष—५—अंक ६
सितम्बर १९६४

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 62899
विज्ञापन
तार—प्राणायाम दादर

| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| वैदिक प्रार्थना | | |
| उमेशवाणी | | |
| ौति कर्म | | |

…थ महत्वपूर्ण …
संकृति के श्लाघनीय विषयों से
। इसमें जगत्प्रसिद्ध श्री रामतीर्थ योगाश्रम
के संचालकजी के बहुरंगी अलंकृत चित्र के साथ २ मल-
शोधन कर्म तथा आसनों के एक सौ से अधिक आर्ट …चे
हैं। भारत भर के ग्रंथों में ४०८ पृष्ठों का यह … कीजिये।
ग्रंथ है। अनेक दुःखों से पीड़ित … चित्रपट का मूल्य
उमेश योग दर्शन आशीर्वा…त डाक व्यय सहित दो ही
ऐसे ग्रंथ का आपके …नराशि भेजते समय रामतीर्थ मासिक
मूल्य …ापन का उल्लेख करना अनिवार्य है अन्यथा कम
ीमत में नहीं मिलेगा।

उपरोक्त सभी पुस्तकें तथा चित्रपट के लिये धनराशि
जने का पता—

**श्री रामतीथ योगाश्रम दादर बम्बई १४.**

वैज्ञानिक जल चिकित्सा डा० जे. पी. वर्मा १४
हीन भाव नरेशचन्द्र भार्गव १५
प्राकृतिक जीवन योगीराज उमेशचन्द्रजी १
मनोबोध वाय. बी. खेडकर १६
मानसिकरोगों की आयुर्वेदिक चिकित्सा देवेन्द्रनाथ शर्मा १७
अखिल भा. गोरक्षा सम्मेलन सेठ श्रीगजाधरजी सोमाणी १८

## मुख पृष्ठ का परिचय

श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संस्थापक संचालक को धौति कर्म करते हुए अवलोकन कीजिए। विशेष विवरण हेतु १८ अंक के पृष्ठ १६ पर देखें।

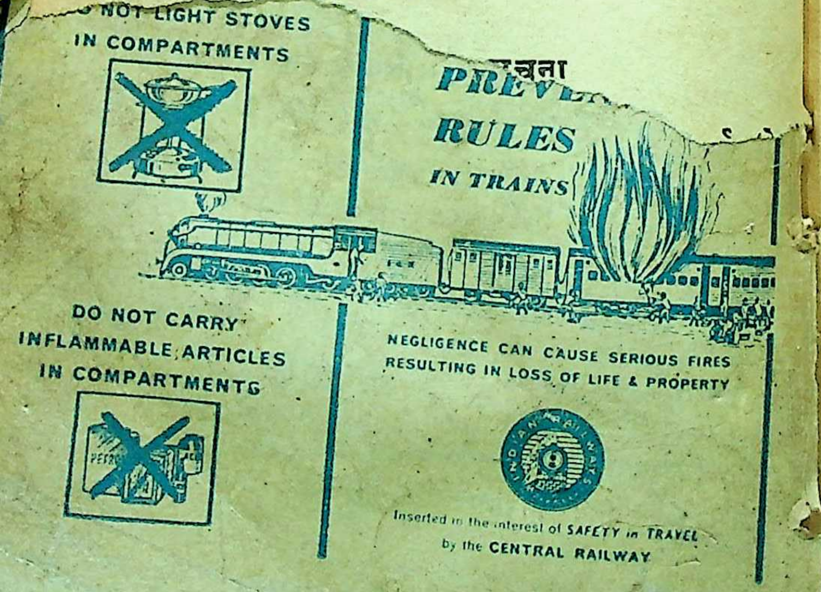

NOT LIGHT STOVES
IN COMPARTMENTS

सूचना

PREV
RULES
IN TRAINS

DO NOT CARRY
INFLAMMABLE ARTICLES
IN COMPARTMENTS

NEGLIGENCE CAN CAUSE SERIOUS FIRES
RESULTING IN LOSS OF LIFE & PROPERTY

Inserted in the interest of SAFETY in TRAVEL
by the CENTRAL RAILWAY

# चातुर्मासके निमित्त ज्ञान यज्ञ

## उमेश योगदर्शन (प्रथम खंड)

लेखक—योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

(अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी और गुजराती भाषाओंमें)

योग ही जीवन और जीवन ही योग है। जैसे त्रिवेणी संगम (गंगा, यमुना, सरस्वती) में स्नान करने से अनेक जन्म जन्मान्तर के पाप ताप निर्मूल होकर पुण्य का उदय होता है। वैसे ही उमेश योगदर्शन प्रथम खंड का महत्व है। शरीर नीरोग, मनकी शांति तथा आत्म कल्याण के लिये उपयुक्त ग्रंथ रत्न है। शारीरिक रोग दूर करने के लिये सरल उपाय, मानसिक चिन्ता दूर करने के लिये महत्वपूर्ण मनोचिकित्सा तथा अन्य अनेक प्रकार के श्लाघनीय विषयों से परिपूर्ण यह ग्रंथ है। इसमें जगत्प्रसिद्ध श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संचालकजी के बहुरंगी अलंकृत चित्र के साथ २ मलशोधन कर्म तथा आसनों के एक सौ से अधिक आर्ट [illegible] हैं। भारत भर के ग्रंथों में ४०८ पृष्ठों का यह [illegible] कीजिये। ग्रंथ है। अनेक दुःखों से पीड़ित [illegible] चित्रपट का मूल्य उमेश योग दर्शन आशीर्वा[illegible]त डाक व्यय सहित दो ही ऐसे ग्रंथ का आपके [illegible]नराशि भेजते समय रामतीर्थ मासिक मूल्य [illegible]ापन का उल्लेख करना अनिवार्य है अन्यथा कम [illegible]मत में नहीं मिलेगा।

उपरोक्त सभी पुस्तकें तथा चित्रपट के लिये धनराशि भेजने का पता—

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.

## चातुर्मास निमित्त आधे मूल्य में

# धर्मोपदेश

भारत भूमि वैदिक धर्म का मुख्य स्थान गिना जाता है। स्वामी रामतीर्थजी ने भारतीय संस्कृति के मौलिक सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार विश्व के अमेरिका, जापान, मिश्र, इंग्लैण्ड आदि देशों में इस प्रकार किया कि जहाँ वे गये वहीं के लोग उनके सिद्धान्तों को मानने के लिये मचल पड़े। फलतः उन्हें जीवन का परमानन्द प्राप्त हुआ।

धर्मोपदेश में स्वामी राम की जीवनी तथा उपदेश हैं। आप पढ़ते ही प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। जहाँ धर्मोपदेश वहाँ आनन्द का स्रोत, जहाँ धर्मोपदेश वहाँ दैवी सम्पत्ति। मुखपृष्ठ स्वामी राम के बहुरंगी चित्र से सुशोभित है। पृष्ठ संख्या ४०० के लगभग है फिर भी मूल्य ४) रु. ही है। किन्तु चातुर्मास के निमित्त चातुर्मास समाप्त होने तक डाक व्यय ने ) रु. मात्र में उपलब्ध होगा।

सर का लाभ लेने के लिये शीघ्रातिशीघ्र

आर्डर से २) रु. भेजने की

---

DO NOT CARRY
INFLAMMABLE ARTICLES
IN COMPARTMENTS

NEGLIGENCE CAN
RESULTING IN LOSS OF LI

Inserted in the interest of SAFETY in TRAVEL
by the CENTRAL RAILWAY

कार, व्यक्तित्व, मूल प्रवृत्तियाँ आदि विशिष्ट लेख, किस्मत का खेल (कहानी). सचित्र कटिस्नान व तैलमालिश। सुखमय जीवन यापन हेतु यह ५६० पृष्ठों का अंक संग्रहणीय है। इस सचित्र अंक का मूल्य वैसे ५) रु. है। किन्तु चातुर्मास निमित्त चातुर्मास पर्यन्त डाकव्यय सहित केवल रु. २-५० पै. में मिलेगा। अंक थोड़े ही बचे हैं अतः निराशा से बचने के लिये यथाशीघ्र मनिआर्डर अथवा पोस्टल आर्डर से रु. २-५० भेजें।

## योगासन चित्रपट

### दो तिहाई कीमत में लेकर लाभ उठाइये

बहुरंगी आकर्षक योगासन चित्रपट का लाभ उठाइये। प्रत्येक स्त्री पुरुष की यह हार्दिक इच्छा हुआ करती है कि उनकी सुन्दर काया, विकसित अवयव, सुडौल शरीर, मनोहारी मुखमुद्रा, निरोगी शरीर, विशुद्ध सप्त धातु हों। आप अपने घर में बैठकर योगासन चित्रपट में बताये अनुसार योगासन करके उपरोक्त लाभ की प्राप्ति कीजिये। २० इंच × ३० इंच आकार के इस बहुरंगी चित्रपट का मूल्य ३) रु. किन्तु चातुर्मास पर्यन्त डाक व्यय सहित दो ही रुपये में मिलेगा। धनराशि भेजते समय रामतीर्थ मासिक के इस विज्ञापन का उल्लेख करना अनिवार्य है अन्यथा कम कीमत में नहीं मिलेगा।

उपरोक्त सभी पुस्तकें तथा चित्रपट के लिये धनराशि भेजने का पता—

**श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.**

# जनता जनार्दन का सद्भावनाहस्त

श्री रामतीर्थ योगाश्रम विगत ३० वर्षों से जनता जनार्दनके तन-मन विकासार्थ जिस जी तोड़ प्रयत्न में लगा है, उसी सेवा से प्रभावित होकर उसके सेवा पूर्ण हाथों को अधिक शक्तिशाली बनाने हेतु

## अगस्त मास में प्राप्त सद्भावना राशि

| | | |
|---|---|---|
| १-श्रीसेठ गजाधर सोमाणी | बम्बई | १०१) रु. |
| २-,, नरेन्द्रमूलजी और दुलेराय मूलजी | बम्बई | १५) ,, |
| ३-,, स्वामी निर्मलानन्दजी | विजयवाड़ा | ११) ,, |
| ४-,, महन्त सत्यदेव जी | कलकत्ता | ११) ,, |
| ५-,, राघवजी मूलजी तन्ना | जंजीबार | १५) ,, |
| ६-,, ब्रह्मचारी अनन्तनाथ जी | हैदराबाद सिंध | १५) ,, |
| ७-,, महात्मा वेंकटरमण | रामेश्वर (मद्रास) | १५) ,, |
| ८-,, अलक्लेस जॉनसन | त्रिवेन्द्रम (केरल) | १५) ,, |
| ९-,, रहीम तुल्ला इब्राहीम | कुवेत(अरेबियन गल्फ, | ११),, |
| १०-,, चान्द्र वरदराजन | लंका | ११) ,, |
| ११-,, वनिता ताई महादेव | कोल्हापुर | ११) ,, |
| १२-,, जंगदम्बा वडीयार | संबलपुर | ११) ,, |
| १३-,, कुमारी विद्यावती धनराज | कोयम्बतूर | २५) ,, |

सद्भावनाराशि निम्न पते पर भेजेंः—

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर, बम्बई १.

# लेखकों से

## 'रामतीर्थ' मासिक में स्वीकार करने योग्य मुख्य विषय—

शारीरिक रोग निवारण, सशक्त एवम् सदानिरोगी मानसिक रोग दूर करके मन की शांति, एवम् आत्म साक्षात्कार करने योग्य, उपरोक्त लाभ प्राप्त करा देने योग्यअष्टांग योग, (यम, नियम आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधी, राजयोग, भक्ति योग, लय योग, मंत्रयोग, शिवस्वरोदय, वेद उपनिषद, गीता ,रामायण, महाभारत, महात्माओं का जीवन चरित्र एवम् उपदेश, प्राकृतिक चिकित्सा, (आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी द्वारा इलाज) महिलाओं के जीवन सुधार के लिये, बालकों के संस्कार सुधारने के लिये, अनुरूप लेख, कहानी, धारावाहिक उपन्यास, गीत, कविता, निबंध, प्रवास वर्णन, नाटक, धर्मकथादि रचनायें स्वीकारकी जाती हैं कागजकी एक ओर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी हुई रचनायें भेजनी चाहिये, अश्लील विषयोंकी रचनायें स्वीकार नहीं की जायेंगी।

**विशेषः**—अन्यत्र प्रकाशित रचनायें रामतीर्थ मासिक के लिये न भेजें केवल स्वीकृत रचनाओं की सूचना एक मास बाद दी जाती है, अस्वीकृत रचना को वापस मंगाने वाले लेखकों को पोस्टल टिकिट साथ में अवश्य भेजना चाहिए, स्वीकृत रचनायें समयानुकूल छपेंगी, लेखकों को चाहिये कि वे इस विषय में वारंवार पत्र लिखने का कष्ट न लें, रचना प्रकाशित होने के बाद, रचना जिसमें छपी होगी वह मासिक अंक, और आश्रम की ओर से निर्धारित किया गया पुरष्कार भेजा जायेगा, रचना में लिया गया कोई द्रष्टांत हो तो वह किस ग्रन्थ के आधार से लिया गया है य अवश्य लिखें। अन्य पत्र पत्रिकाओंमें रामतीर्थ मासिककी रचना अन्य भाषाओं में अनुवादित की इच्छावालोंको रामतीर्थ मासिकके संपादकसे लिखित अनुमति लेना आवश्यक है रचना भेजनेका पता: निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११.

## ग्राहकोंसे

१. 'रामतीर्थ' अंग्रेजी मासकी पहली तारीख को प्रकाशित होकर
को डाक से भेजा जाता है।

२. वार्षिक शुल्क रु. ५ विदेशों के लिए १५ शिलिंग अथवा रु. ७॥

३. रामतीर्थ का नया वर्ष अप्रैल से शुरू होकर मार्च में पूरा होता है
परन्तु ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

४. ग्राहकों को अंक विशेष देखभाल से भेजा जाता है तिस पर
यदि किसी को १५ तारीख तक अंक न मिले तो अपने डाक
से पूछिए वहाँ से जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेज दीजिए ता
उस पर गौर किया जावे।

५. पताबदलने के लिए कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचना साफ
अक्षरों में लिखे पतेके साथ मिलनी चाहिए। वह भी अधिक सम
के लिए पता बदलना हो तभी हमें लिखें।

६. ६५ न० पैं० मिलने पर ही नमूना अंक भेजा जाता है परदेशवा
को एक शिलिंग भेजना चाहिए।

७. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपना पता तथा ग्राहक संख्या
अवश्य लिखें।

८. वार्षिक शुल्क मनीआर्डर से भेजना लाभदायक है क्योंकि वी० पी०
से एक तो रजिस्ट्री खर्च लगकर ६ रु० पड़ेगा दूसरे देरी से
अंक मिलेगा तथा विदेश में वी० पी० तो होती ही नहीं।

९. रामतीर्थ के साथ पुस्तकें आदि नहीं भेजी जातीं।

१०. व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पतेपर करें।

व्यवस्थापक

रामतीर्थ मासिक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दाद

भद्रकर्णेभिः श्रणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

सम्पादक – **रामतीर्थ** योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ५ ] सितम्बर १९६४ [ संख्या ६

# वैदिक-प्रार्थना

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन् देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ॥
ऋ. वे. आ. सू. १-१६४-३९

भावार्थ—वेद के मंत्ररूप वाणी का वह अक्षर अविनाशी स्वरूप है, जो परम ओंकार रूप में प्रकट है। विश्व के सब प्रकार के दिव्य पदार्थ उस अक्षर धाम परम पद में स्थिर हैं। उस आदि अक्षर पद ओंकार को जो मानव नहीं जान सकता, वह वेद के मंत्र रूप वाणी से क्या कर सकता है? जो मानव उस अक्षर पद को भली भांति जान लेता है। वही अविनाशी अक्षर धाम में नित्य स्थान को प्राप्त कर सकता है।

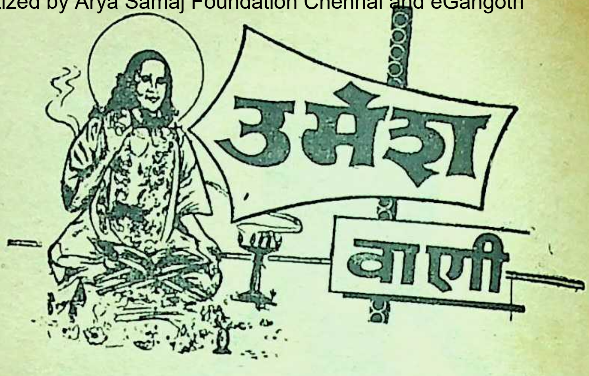

# उमेश वाणी

(२६१) भगवद् जनों के साथ रहते समय निष्कपट, ई से रहित तथा आनन्दमय मन रहता है। दुष्ट, निन्द्य जनों के साथ रहते समय भय, शंका, चिन्ता तथा ग्लानि मन रहता है।

(२६२) मन को पवित्र करने हेतु एकादशी व्रत, भज पूजन, सत्संग तथा योगाभ्यास उत्तम उपाय कहे गये है

(२६३) मैं जब से छात्र जगत् में और वर्तमानकाल त अनेक भाषाओं के अनेक देश विदेशों के अखबार पढ़ता हूँ इतने वर्ष के अनुभव से पता लगा है कि सारे जगतभर प्रतिक्षण उत्पत्ति, स्थिति तथा लय का सप्रमाण प्राप्त ह गया है। अर्थात् सारी पृथ्वी पर जन्म-मृत्यु की श्रृंखल अविराम रूप में चालू है।

(२६४) जंगलों की जड़ी-बूटी एवं काष्ठ औषधिओं में रो निवारण के विशेष गुण रहते हैं। मनुष्य को स्वाभावि आहार शाकाहार होने से आयुर्वेदिक वनौषधि विशेष लाभ दाई होती है।

(२६५) प्रगतिके पथमें प्रयाण करने वाले परनिन्दा, वास्तविक सुख में शंका तथा अपनी स्तुति से दुर रहें। पराये दोष के संस्कारों से स्वयं दोषमय जीवन बन जाने का संभव रहता है।

(२६६) समयानुसार ईश्वर स्मरण, मेहमानों का सन्मान, मितभाषण तथा दीन दुखियों की सेवा की भावना सदा रखें।

(२६७) पथ भ्रष्ट पथिक, निर्धन, अवयवोंमें हीनता, पागल, अबला, तथा बालकों के ऊपर निर्दोष प्रेम-भावना रखें।

(२६८) माता, पिता, विद्यागुरु, आत्मोपदेश देनेवाले सद्गुरु, संतपुरुष, पंडित गण तथा योगियों के समक्ष नम्रता स्वभाव दिखावे, आशीर्वाद की भिक्षा मांगे, पर्वकाल, दीवाली गुरु पूर्णिमा तथा जब अनुकूल एवं इच्छा हो तब धन, बस्त्र, फूल. हार, फल आदि पवित्र वस्तुएं अवश्य चढ़ावे। संपूर्ण ऋणविमोचन नहीं होते हुए भी यथा शक्ति ऋण से मुक्ति पाने का यह सुगम उपाय है।

(२६९) विशुद्धवायु में भ्रमण तथा प्राणायाम करने से आरोग्यके साथ मन प्रसन्न रहता है। उच्च स्थान की हवा में अधिक प्रमाण में प्राणवायु का अंश रहता है। प्राणशक्ति बढ़ाने हेतु समयानुसार निसर्ग प्रदेश की पवित्र वायुका सेवन अभिनन्दनीय है।

(२७०) पढ़ने से अधिक महत्व मननमें, मननसे अधिक महत्व निधिध्यासन में, निधिध्यासन से अधिक तत् त्वं पद के शोधन में है।

# धौति कर्म

उमेशयोगदर्शन ग्रंथ से

## धौति क्या है ?

धौति मुलायम मलमल के कपड़े की बनी होती उसके दोनों सिरे सिले हुए होते हैं। १५ से २४ फीट उसकी लम्बाई रखी जाती है। आरम्भ करने वालों के लि १५ फीट की पर्याप्त होगी। अभ्यस्त लोग २४ फीट तक कर सकते हैं।

## धौति कैसे करें ?

धौति के एक छोर को फैला कर पहले जल में भि फिर दाहिने हाथ की ऊंगलियों के सहारे छोटी जीभ के रखें। तत्पश्चात् उसे निगलना प्रारम्भ करें। पहले दि तीन बार प्रयास करें। दूसरे दिन से ८ दिन तक बार प्रयास करें। पहले दिन से तीसरे दिन तक १ फीट नि सकें तो अच्छी बात है। यदि न निगल सकें तो सन्देह कोई बात नहीं। अभ्यास चालू रखें। वात-पित्त-कफ जो अन्नाशय-कोष में भरे हुए हैं, उनके विकार के का संभव है कि एक फुट भी धौति निगली न जा सके। गले अवयव का अभ्यस्त न होना भी इसका एक कारण हो सक है। वारंवार उल्टी भी हो सकती है। लेकिन घबराने आवश्यकता नहीं। थोड़े दिनों के बाद अल्पप्रयास से ही कार्य संपन्न हो जाया करेगा। धौति अन्नाशय-कोष में पहुं जायेगी। धौति के साथ १-२ आँस पानी पीने से धौति निगलने में सहायता प्राप्त होगी। इस प्रकार भी यदि धौ का निगलना सम्भव न हो तो धौति को दूध में भिगो

सरलता से निगल सकते हैं। एक फुट तक धौति को विशेष प्रयास करना पड़ता है। शेष अल्पप्रयास से ही निगली जा सकती है। धौतिकर्म के समय श्वास-प्रश्वास की क्रिया को स्वाभाविक गति से चालू रखना चाहिए। धौति कर्म के नये साधक को जबतक पूरा अभ्यास हो न जाये, तबतक पांच मिनट से अधिक प्रयास नहीं करना चाहिये। पांच मिनट में जितनी धौति निगली जा सके, उतनी ही निगलनी चाहिये, आगे प्रयास नहीं करना चाहिए। किसी निष्णात योगाभ्यासी के आश्रम में जो लोग धौति कर्म करते हैं, उनके लिए यह समय-व्यवस्था नहीं दी जा रही है। यह नियम पुस्तक पढ़कर स्वयमेव अभ्यास करने वालों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। कभी-कभी अन्नाशय कोष के ऊपर के मुह के बन्द हो जाने पर धौति को निकालने में कठिनाई उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय घबराने की आवश्यकता नहीं, तुरंत ही स्वच्छ जल पी लेना चाहिए। इससे धौति सरलता से निकल आयेगी। सामान्यतः १५ दिनों में धौतिकर्म में साधक सुदक्ष हो जाता है। यदि १५ फीट की धौति हो तो १४॥ फीट भीतर और आधा फीट बाहर रखनी चाहिये। धौति के भीतर जाने पर १२ औन्स से ४ औन्स तक गरम या ठण्डा पानी पीना चाहिये। इसके बाद यदि सम्भव हो तो नवलिकर्म करें अथवा पेट को हिला कर, अर्थात् उड्डीयान बन्ध करके धौति को बाहर निकाल लें। यदि स्वयं न निकले तो दोनों हाथों की ऊंगलियों से शनैः-शनैः मुह से बाहर निकालें। तत्पश्चात् धौति को साबुन से अच्छी तरह साफ कर लें और स्वच्छ जल से कुल्ला कर लें।

# प्रश्नोत्तर

[ यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नो समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या समाधान चाहते हों तो लिख कर भेजें—सम्पादक ]

**श्री अरुण मोहन, बक्सर शाहाबाद बिहार।**

पत्र संख्या १ प्रश्न १. कर्म और भाग्य, इन दोनों कौन बड़ा है ? और क्यों ? उदाहरण के साथ बताइये।

उत्तर-१— भाग्य से बड़ा कर्म है। जैसा विचार वै कर्म हुआ करता है। और कर्म फल ही भाग्य बन जाता है राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक आदि क्षेत्रों में महान् प्रग शाली व्यक्ति हुये हैं। वे ध्येय युक्त हो दृढ़ निश्चय पूर्व एक निष्ठा से कर्म क्षेत्र में पदार्पण किये, फलतः भाग्यव

(शेष पृष्ठ २०० पर)

# महाभारत के कुछ अनमोल रत्न

परोऽपि
हितवान
बंधु:......

लेखक

प्रो. जनमेजय विद्यालंकार, एम. ए. शास्त्री

महाभारत संस्कृत साहित्य का अनुपम रत्नसंचय है। यहां हम कुछ थोड़े से उद्धरण अपने पाठकों की सेवा में उपस्थित करते हैं। निश्चय ही इनसे हमारे पाठकों की ज्ञानवृद्धि होगी, मार्गप्रदर्शन प्राप्त होगा, स्वाध्याय बढ़ेगा, अनेक प्रकार के लाभ प्राप्त होंगे।

स सुहृद् यो विपन्नानामापदुद्धरणे रतः।
न तु भीतिपरित्राणवस्तूपालम्भपण्डितः॥

वास्तविक मित्र वह है जो विपत्ति में पड़े हुये की

क्रियात्मक सेवा सहायता करे, न कि वह जो उस समय केवल उपदेश ही देता रहे। अर्थात् विपत्ति में पड़े हु व्यक्ति को भी जो यही उलाहना देता रहे कि देखो तुमने मे अमुक सलाह नहीं मानी थी, देखो तुमने अमुक कार्य गल कर डाला था, देखो ऐसा काम कभी नहीं करना चाहिये इत्यादि इत्यादि अनेक जबानी बातें ही जो बनाता रहे, कि कोई क्रियात्मक सहायता न करे, वह मित्र नहीं होता है।

परोऽपि हितवान् बन्धुः बन्धुरप्यहितः परः।
अहितो देह जो व्याधिः हितमारण्यमौषधम्॥

जो मनुष्य पराया है, गैर हैं, सगा अपना नहीं है, वह यदि आपका हित करता है, अर्थात् आपकी सेवा सहाय करता है, तो वही आपका सगा सम्बन्धी समझना चाहिये वही आपका बन्धु है, सम्बन्धी है, असली सगा वही है किन्तु जो आपका अहित करता है और आपकी सेवा सहाय नहीं करता, वह चाहे कितना भी आपका हकीकी हो औ चाहे कितना ही निकट सम्बन्धी हो, वह असल में गैर है, पराया ही है। देखो, बीमारी अपने शरीर से ही पै होती है और शरीर में ही रहती है, कितनी सगी है, किन्तु उसे गैर ही समझा जाता है क्योंकि वह अहित करती है। परन्तु जंगली जड़ी बूटी जिसका हम से कोई भी सम्ब नहीं होता, जो न मालूम किस देश में और किस जंगल में पैदा हुई है, किन्तु जो हमारा हित कर देती है, उसे ही हम लोग सबसे सगी और सबसे निकटतम सम्बन्धी मानते हैं।

रिश्ता नाता तो मामूली बातें हैं, असली सगा वह है जो वक्त पर काम आवे ।

न देवाः दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्षितुमिच्छन्ति बुद्ध्या संविभजन्तितम् ॥

परमात्मा जिसकी रक्षा करना चाहता है उसके पीछे डण्डा लेकर नहीं चलता । अर्थात् जिस प्रकार ग्वाले और गड़रिए अपने पालतु पशुओं की रक्षा करने के लिये डण्डा लेकर उन पशुओं के पीछे पीछे घूमते हैं इसी प्रकार परमात्मा नहीं घूमा करता । रक्षा करने की परमात्मा की विधि कुछ दूसरी ही है । परमात्मा जिसकी रक्षा करना चाहता है उसकी बुद्धि ठीक कर देता है । जब परमात्मा बुद्धि को अच्छी प्रेरणा कर देता है तब मनुष्य की रक्षा बहुत उत्तम प्रकार से स्वयमेव हो जाती है ।

यस्मै देवाः प्रयच्छन्ति पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धि तस्यापकर्षन्ति सोऽवाचीनानि पश्यति ॥

परमात्मा जिसको पराजय अथवा तिरस्कार देना चाहते हैं उसकी बुद्धि को छीन लेते हैं । बस फिर वह पुरुष स्वयं सबकुछ गलत ही देखने लगता है और इस प्रकार हानि उठाता है ।

रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न प्ररोहति वाक्क्षतम् ॥

तीरों से जो घाव होता है वह कुशलचिकित्सा द्वारा ठीक कर दिया जा सकता है । कुल्हाड़ों से काटा हुआ जंगल

भी पुनः उग आता है। किन्तु वाणी से जो घाव पैदा कि
जाता है वह कभी नहीं भरता।

वाक् सायका वदनान्निःसरन्तियैराहतः शोचति रात्र्यहा
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः

वाणी रूपी तीर मनुष्य के मुँह से निकलते हैं, उन तीरों से घायल किया हुआ मनुष्य लगातार दिन रात हर सम घोर पीड़ा से तड़पा करता है, वह तीर सीधे मर्मस्थल पर अर्थात् हृदय पर जाकर घोर आघात करते हैं, बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिये कि कभी भी दूसरों पर वाणी के ती न मारे।

मिथ्योयेतानि कर्माणि सिध्येयुर्यानि भारत।
अनुपाय प्रयुक्तानि मास्म तेषु मनः कृथाः॥

✓ यदि झूठ का सहारा लेकर कभी किसी कार्य में सफलता मिल भी जाय तो भी उस सफलता पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिये। धूर्तता, झूठ, ढोंग, मक्कारी आदि उपायों से जो सिद्धि प्राप्त होती हैं वह या तो क्षणिक होती है या अन्त में स्वयं हानिकारक होती है, अतः ऐसी सफलताओं पर कभी भी भरोसा नहीं करना चाहिये।

तथैव योगविहितंयत्तु कर्म न सिध्यति।
उपाययुक्तं मेधावी न तत्र ग्लपयेत्मनः॥

इसी प्रकार विधिपूर्वक किया हुआ कार्य तथा वह कार्य जिसमें सत्य का आश्रय लिया गया है, यदि कभी असफल भी हो जाये तो भी मनुष्य को उदास अथवा निराश नहीं होना चाहिये। बात यह है कि पुरुषार्थ सत्य आदि श्रेष्ठ उपायों का आश्रय लेने पर भी यदि कभी किसी को असफलता ही मिले तो भी उसे निराश या दुःखी नहीं होना चाहिये।

अनुबन्धानवेक्षेत सानुबन्धेषु कर्मसु।
सम्प्रधार्य तु कुर्वीत न वेगेन समाचरेत्॥

बात यह है कि प्रायः हर मामले में कोई रहस्य की बात छिपी रहती है। सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि सबसे पहले उस रहस्य की बात को अवश्य पहिचान लेना चाहिये। सत्य का आश्रय लेकर किया हुआ कार्य यदि असफल हुआ है और असत्य का आश्रय लेकर किया हुआ कार्य यदि सफल हुआ है तो दोनों ही दशाओं में कुछ रहस्य अवश्यमेव छिपा हुआ है। उस रहस्य को ढूँढ़ निकालना परमावश्यक है। ऐसे ही रहस्य को संस्कृत में अनुबन्ध कहते हैं। बुद्धिमान् को चाहिये कि उस अनुबन्ध का अवश्य पता लगावे। यदि सत्य आदि का आश्रय लेकर किया हुआ कोई शुभ कार्य असफल हो जाए तो समझना चाहिये कि बीच में कहीं कोई अनुबन्ध अवश्य छिपा हुआ है, उस अनुबन्ध को ढूँढ़ निकालना चाहिये। यदि असत्य आदि का आश्रय लेकर किया हुआ कोई अशुभ कार्य सफल हो जाये तो समझना

चाहिये कि बीच में कहीं कोई अनुबन्ध अवश्य छिपा हु है, उस अनुबन्ध को अवश्य ढूंढ़ निकालना चाहिये।

भक्ष्योत्तमप्रतिच्छन्नं मत्स्यो वडिशमायसम्।
लोभाभिपाती ग्रसते नानुबन्धमवेक्षते ॥

अनुबन्ध का एक उदाहरण देखिये। मछली फंसाने का जो कांटा होता है उसके ऊपर आटा आदि कोई अच्छे भोजन की वस्तु मच्छीमार लोग लगा देते हैं। जब उसे मच्छीमार पानी में डालता है तो मछली को केवल वह खाने की उत्तम वस्तु ही दिखाई देती है, मछली नहीं जानती कि इस भोज्य वस्तु के भीतर एक भयंकर कांटा भी छिपा हुआ है। बस, मछली लालच के वशीभूत होकर ज्यों ही उस भोज्य पदार्थ को निगलने लगती है त्यों ही वह उस कांटे में फंस जाती है और पकड़ी जाती है। मछली फंस गई क्योंकि वह उस अनुबन्ध को, अर्थात् छिपे हुये कांटे को, नहीं जानती थी।

न सा वृद्धिर्महाराज या वृद्धिः क्षयमावहेत्।
क्षयोऽपि बहुमन्तव्यः यः क्षयो वृद्धिमावहेत्॥

जो वृद्धि अन्त में क्षय को पैदा करे वह वस्तुतः वृद्धि नहीं है। ऐसी वृद्धि से तो क्षय ही अच्छा है, क्योंकि कभी कभी क्षय ही वृद्धि को उत्पन्न करता है। उसके भावार्थ को समझ लेना चाहिये। वृद्धि बढ़ना, संचय, अधिकता, एकत्रित होना, भरना, आदि शब्दों का भाव एक ही है। संचय, वृद्धि आदि हमेशा अच्छे ही हों, सो बात नहीं है। कंजूसी कर के बहुत साधन एकत्र कर लेना, पाप के द्वारा बहुत सा धन

बटोर लेना, आदि जो वृद्धियां हैं वह हानिकारक हैं अर्थात् असली बढ़ती नहीं, किन्तु घाटा है, नुकसान है। ऐसी वृद्धियां नहीं होनी चाहिये। इसी प्रकार क्षय को अथवा घटती को हमेशा बुरा भी नहीं समझना चाहिये, कभी कभी क्षय ही वृद्धि को पैदा करता है। शरीर पर मैल चढ़ा हुआ है तो उसे दूर कर ही देना चाहिये, तभी मनुष्य में बल स्वास्थ्य आयु आदि की वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार पाप से एकत्र किया हुआ बहुत सा धन यदि किसीने एकत्र कर रखा है तो सत्पात्र में दान आदि के द्वारा उसे अपना धन कम करना चाहिये। जब इस दान आदि के द्वारा वह पाप का धन क्षीण हो जायेगा तभी उस मनुष्य को निश्चिन्तता सुख, स्वास्थ्य आदि की असली प्राप्ति होगी और सच्चे अर्थों में उसकी तरक्की होगी।

आचार हीनं न पुनन्ति वेदाः ॥

जिसका चरित्र अच्छा नहीं है उसकी रक्षा वेदशास्त्र भी नहीं कर सकते। मनुष्य को सब से अधिक ध्यान अपने सदाचार पर हमेशा रखना चाहिये। सबको सदा सच्चरित्र होना चाहिये।

* * *

मद्रास, केरल, मैसूर, तथा आंध्र प्रदेश में हिग्गिन बूथमस के रेल्वे बुक स्टालों पर रामतीर्थ मासिक मिलता है। तथा उत्तर भारत मे ए. एच. ह्वीलर के रेल्वे बुक स्टालों पर रामतीर्थ मासिक मिलता है।

* * *

जीवन परिचय

# कविवर श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

लेखक
भोलानाथ मिश्र 'राज'

आज इस नश्वर संसार के बीच कविवर 'निराला' दिव्य शरीर, वही शरीर जिसके प्रथमावलोकन पर स्वर्गी श्रीमती सरोजनी नायडू को किसी यूनानी दार्शनिक का हो गया था, वही हृदयग्राही स्निग्ध रूपवाला शरीर जिस दर्शनमात्र से आनन्दित होकर एक अमरीकी पत्रकार-महि ने आपको 'अपोलो का पुत्र' कहा था तो दूसरी ने 'सीजर अवतार', वही अनोखा व्यक्तित्व जिसके लिये 'महाक निराला अभिनन्दन ग्रन्थ' में श्री महावीर अधिकारी लि हैं—'निराला' जी का व्यक्तित्व इतना विराट है (उस स महाकवि जीवित थे) कि केवल मौखिक परिचय पर ही आ उन्हें लाखों की भीड़ में पहिचान लेंगे। 'निराला' जी आ बढ़ कर अपने निकट आने वाले को और भी निकट कर ले

हैं। उनके नेत्र मस्तक में ऐसे ही दीप्त होते हैं, जैसे किसी दुरन्त बीहड़ बन की यात्रा करके केहरि अपनी गुफा के द्वार पर सो जाय और उसके ज्योतित नेत्र उन्मीलित रह जांय। उनकी वज्रदेह हमें अपने पूर्वजों की कल्पना करने में सहायता करती है।'—फिर आगे आप लिखते हैं—'तुम हो, तो हमें विश्वास है कि हम हैं! तुम हो, तो हमें विश्वास है कि सत्य की जय होती है। तुम हो, तो हमें विश्वास है कि मनुष्य के लिये इतना महान् हो सकना कवि-कल्पना मात्र नहीं है। वही विराट रूप जो चुनौती देता हुआ कहा करता था—हिन्दी साहित्य तो क्या, विश्व-साहित्य में भी इस कोटि की कविता कोई (जुही की कली) मुझे दिखा दे, यह मैं चुनौती देता हूं।' अपने प्रेमियों के बीच तो उपस्थित रहा, परन्तु न जाने बात क्या है कि ऐसा भी तो नहीं महसूस होता कि महाकवि 'निराला' जी कहीं और चले गये हैं।

शायद यह हमारी उनके प्रति या उनकी हमारे प्रति ममता रही हो और इस ममत्व व स्नेह वात्सल्य की डोर ने एक दूसरे की आत्मा में प्रेम उत्पन्न कर दिया हो—क्यों कि 'प्रेम' ही तो एक ऐसा रिश्ता है इस दुनिया में, नश्वरता की सीढ़ियों से अलग, जो अजर है, अमर है, अमिट है।

'प्रेम' का सम्बन्ध शरीर से नहीं होता, आत्मा से होता है—शरीर का संबन्ध 'प्रेम' नहीं 'मोह' कहलाता है, 'प्रेम' में आनन्द की अनुभूति होती है परन्तु इच्छा नहीं-जहां इच्छा समाधिस्थ है वहां 'प्रेम' न होकर 'वासना' का जन्म होता है,

'प्रेम' तो गंगा की शुभ्र धवल लहरों की तरह है-मां शिशु के प्रति वात्सल्य—साधक का इष्टदेव के प्रति अनु प्रेम कहलाता है और शायद इसीलिए प्रेम भी अमर, अ होता है—आत्मा की ही तरह और शायद इसी 'प्रेम' डोर से काव्य प्रेमियों ने उनकी आत्मा को, 'महाकवि निरा को, कलकता के 'निराला' को, लखनऊ के 'निराला' को, प्र के 'निराला' को, बांध लिया है जो शायद अब तोड़े भी टूटेगी और बढ़ती ही चली जायगी शायद !

और इसीलिए सदैव 'महाकवि 'निराला'—अपने प्रेमियों के बीच—हिन्दी साहित्य के बीच—छायावाद-रह वाद व प्रगतिवाद के बीच—अजर अमर रहेगा।

न हिन्दी साहित्य भुला सकेगा न साहित्य प्रेमीगण भु सकेंगे, उस जबर्दस्त हस्ती को जिसने उपेक्षित-निन्दित हो अपनी ही निर्झरी का राग अलापा है, जिसने साहित्य नवचेतना दी है, जिसने 'मुक्त छन्द' का अन्वेषण किया जिसने एक-एक सप्ताह तक गंगा जल मात्र ले जीवन निर्वाह किया है, जिसने—'वह तोड़ती पत्थर, दे मैंने उसे इलाहाबाद के पथ पर' भी देखा है और देखा 'विजन वन वल्लरी पर'। अथाह सागर में पड़े—कहीं औ कहीं और-सब से अलग, एकाकी इस महाकवि की अमू निधियों का गर्व करेगा हिन्दी साहित्य और सदैव इस म प्राण के प्रति आभारी रहेगा जिसने उसे उच्च से उच्च कर दिया है—सदैव २ के लिए अपनी सफल क्रांति

सफलता को देकर गौरवान्वित कर दिया है महिमामय बना दिया है।

छायावाद और रहस्यवाद—

कविवर 'निराला' की रचनाओं का माध्यम 'रहस्यवाद, छायावाद, प्रगतिवाद,' रहा है। स्वामी विवेकानन्द के अद्वैत वाद का प्रभाव भी उनके काव्य में कहीं-कहीं प्रकट हुआ है। आध्यात्मिकवाद भी प्रकट है। छायावादी कवियों में सब से अधिक कथा का आश्रय लेकर कविता करने वाले आप ही हैं, इसलिये इन वादों की एक रूप रेखा अवश्य समझनी चाहिए।

'छायावाद' और 'रहस्यवाद' के सम्बन्ध में अनेक धारणाएं उपस्थित हुई हैं। अपने-अपने विचारों-दृष्टिकोणों से स्वयं कवियों ने मत दिए हैं। जैसे श्री राम कुमार वर्मा ने 'कबीर का रहस्यवाद' लिखा है।

—'रहस्यवाद आत्मा की उस अंतर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और आलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्चल सम्बन्ध जोड़ना चाहती है और यह संबन्ध यहां तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ अन्तर नहीं रह जाता।'

'छायावाद' की परिभाषा देते हुए 'सांध्यगीत' की भूमिका में श्रीमती महादेवी वर्मा ने लिखा है—

'छायावाद ने मनुष्य के हृदय और प्रकृति के उस सम्बन्ध में प्राण डाल दिये जो प्राचीन काल से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के रूप में चला आ रहा था और जिसके कारण मनुष्यों को अपने

अपने दुःख में प्रकृति उदास और सुख में पुलकित पड़ती है।'

श्री जैनेन्द्र कुमार ने इसे और स्पष्ट करते हुए लिखा है

"छायावाद में अभाव को अनुभूति से अधिक कल्पना भरा गया है। वियोग उसके लिये मानो एक दृष्टि (कल्ट) हो गया। आंसू मानो छिपाने की चीज नहीं, दिखाने वस्तु हो चला। व्यथा संग्रहणीय न होकर बिखेरी लगी। जो वेदना संजोयी जाकर बल बनती, वह साज स से प्रस्तुत की जाकर छायामात्र रह गई।'

( साहित्य संदेश, नवम्बर १९३९)

'रहस्यवाद'—अंग्रेजी के 'मिस्टिसिज्म' से ही लेता है और एक खास किस्म की अनुभूति कराता है और अनुभूति खड़ी बोली के काव्य के लिये प्रयुक्त होती संवत् १८०० ई. से पहले रहस्यवाद उस धार्मिक अनुभूति लिए प्रयुक्त होता था जो ईसाई-पादरियों का परमात्मा परमात्मा के प्रेम में विस्मृत मानवीय भावनाओं या फिर 'ब की 'वाइल्ड मिस्टिसिज्म' के लिये प्रयुक्त होता था। अंग्रेजों ने भारतवर्ष की काव्य परंपरा को कुछ २ समझा 'मिस्टिक' और 'मिस्टिसिज्म' के आधार पर उन्होंने धार्मि प्रेरणा से परिपूर्ण या उससे ही ओतप्रोत काव्य को 'रहस्य वादी' कहा।

१९१३ के पास रवि बाबू की 'गीतांजलि' से प्रभावित होकर फिर खड़ी बोली के कवियों में खड़ी बोली के द्वार

काव्य में पुनः चेतन व जागरण आया। भक्ति तथा वेदांत से परिपूर्ण 'गीतांजलि' का आधुनिक रहस्यवाद खड़ी बोली के आधुनिक काव्य की प्रमुख शाखा बन चला। आधुनिक रहस्यवादी कविताएं कई प्रकार की बन चलीं—

(१) मानवीकरण की भक्ति के आधार पर व्यंजना।
(२) दार्शनिक आधारों पर स्थिर रहस्यवाद।
(३) दुःखवाद और नश्वरवाद।

१९१३-२५ तक इस प्रकार की कविताओं का विकास होता गया। प्रधान कवियों में-मैथलीशरण, 'निराला' 'प्रसाद' आदि। '२५ के बाद के कवियों में रामकुमार वर्मा व महादेवी वर्मा सर्व प्रथम हैं। १९३६ के बाद काव्य पर समाजवाद की नई राजनीतिक धाराओं से कुछ २ उलझी प्रवृत्तियां सुलझ गयीं। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय चेतना के प्रति भी कवि जागृत हुए और काव्य में अब देश प्रेम व राष्ट्र की पुकार में भी जागृति हुई।

जहां कवि हृदय में नई नई विचार धारायें, नवीन कोमलतायें जन्म लेकर पनप रहीं थी वहीं उन्नीसवीं शताब्दि के अंग्रेजी कवियों ने कई प्रकार की शाखा लिए 'रहस्यवाद' को निर्मित किया था। कवियों ने प्रेम, प्रकृति, बालक और सौन्दर्य को सहजानुभूति के माध्यम द्वारा देखा था, रहस्यवाद 'इनट्यूशन' पर खड़ा भी है वास्तव में इसलिये रहस्यवाद की निम्न प्रकार की शाखायों पर भी गहरा प्रभाव

पड़ा और उसका भी कोमल हृदय निम्न माध्यमो चिन्तना करने गला ।

रहस्यवाद की वह शाखायें जिनका जन्म अंग्रेजी सा से हुआ--

(१) लव मिस्टिसिज्म—शैली
(२) नेचर मिस्टिसिज्म—वर्ड्सवर्थ
(३) चाइल्ड मिस्टिसिज्म—ब्लैक
(४) ब्यूटी मिस्टिसिज्म—कीट्स

हमारे कवियों ने चिंतना शुरू कर दी थी और उप 'मिस्टिसिज्म' से प्रभावित हुए थे इसलिये जल्द ही काव्यमें भी नये-नये रंग उपस्थित हुए, जैसे 'लव मिस्टि 'प्रसाद' की कवितायों 'नेचर मिस्टिसिज्म'--'चाइल्ड मि सिज्म' 'पंत' की कविताओं में मिलता है । परन्तु सबसे अ हमारे कवि 'कीट्स मिस्टिसिज्म'. से ही प्रभावित हुए उसमें श्री जयशंकर 'प्रसाद,' श्री सुमित्रानन्दन 'पंत,' श्री कान्त त्रिपाठी 'निराला' प्रमुख थे ।

उदाहरणार्थ--

"अगर वह तू है तो आ चली
विहग गण के इस कुलकूजन में--
लताकुञ्ज में मधुपपुञ्ज के 'गुनगुन' गुञ्जन में,
क्या सुख है यह कौन कहे सखि,
निर्जन में इस नीरव मुख चुम्बन में ?

'प्रलाप'--निराला

इन 'मिस्टिसिज़्म' पर, आध्यात्म-वेदांत पर चिंतना करते हुए हमारे कवियों ने एक नये 'मिस्टिसिज्म' को जन्म दिया जिसे 'नेशनल मिस्टिसिज्म' कहा जा सकता है क्योंकि उसमें 'नेशनल एनथम' ही प्रयुक्त हुए हैं। उदाहरणार्थ—

"सिंही की गोद से छीनता है शिशु कौन ?
मौन भी क्या रहती है वह रहते प्राण ?
रे अजान
एक मेष माता ही
रहती है निर्निमेष,
दुर्बल वह,
छिनती संतान जब,
जन्म पर अपने अभिशप्त
तप्त आंसू बहाती है।
किन्तु क्या ?
योग्य जन जीता है,
पश्चिम की उक्ति नहीं,
गीता है, गीता है,
स्मरण करो बार बार !

जागो फिर एक बार !"

—'निराला'

और 'छायावाद' का सहज अर्थ है—'आधुनिक काव्य' या १९१३ के बाद का हिन्दी गीतिकाव्य। आधुनिक रहस्य-वादी कविता' एक अंग है। १९१३ के बाद कवि व जनता भी इसी अंग की ओर आकर्षित हो चली, अपने नये पन के

कारण जहां यह लोकप्रिय हुआ वहां इसकी दुरुहत गूढ़ता को (मिस्ट्री) सरलता से (काल्पनिक-मिथिकल हुए भी) समझा न जा सका और इसीलिए यह 'मिस्ट्री' चर्चा का विषय बनकर, व्यंग- प्रधान नामावली प्राप्त क लगी।

वास्तव में 'निराला,-पंत,--प्रसाद' ने ऐसे समय लिखना आरम्भ किया था जब कि आज के समाज की तब मौडर्न इजेशन का अत्यधिक अभाव था, आज की मौ लाइफ तब नहीं थी, बल्कि सामाजिक बन्धन बहुत ही दृढ़ यौन सम्बन्धी आकर्षण को प्रकट करना बहुत महान अपरा होता था और इसीलिए इस सम्बन्ध में कवि 'म्यूट' था साहित्य पर नीति की गहरी छाप थी। इसलिए कवि जबान, काव्य हृदयता 'मौन' थी इस तरफ परन्तु यह मौन 'म्यूटनेस' उन्हें खल रही थी और बदनामी का डर था इसलिये बहुत सोच कर उन्हें आगे बढ़ना था। इसलि नीति नियंत्रणा व समय के नियंत्रण को लेकर उनके हृदय 'सौन्दर्यवाद' ने नारी का चित्रण किया परन्तु या तो उस शारीरिक आकर्षण व रूप की उपेक्षा करते हुए या उ साहित्य की लाक्षणिकता में अपने आकर्षण को छिपाते हुए

धीरे धीरे जमाने में कुछ परिवर्तन हुआ कुछ आधुनिक का प्रादुर्भाव हुआ और कवि कि 'एसथेटिक' भाव म्यूटनेस को छोड़ कर उभर उठी। नारी सौन्दर्य की ओर ध्यान गया और कवि की कायिक वृत्ति ने सांस ली। 'नारी

सौन्दर्य' उनकी चिंतना में समाधिस्थ हुई और कल्पना ने काव्यक्षेत्र में एक नवीन सृष्टि की।

'प्रसाद' जी अन्त तक शुद्ध सौन्दर्यवादी रहे हैं।

'पंत' और 'निराला' की सौन्दर्यानुभूति नारी के रूप की ओर बढ़ती रही! और नारी का रूप अधिक स्पष्ट कर देता है कवि।

अब कवियों की चिंतना, अज्ञात सत्ता, प्रेम आत्मसमर्पण नारी और प्रकृति से गुजर कर, नई काव्यधारा को जन्म देती हैं। 'छायावाद' की यही प्रमुख विशेषता है। कि उसने अशरीरी सौन्दर्य प्रियता को जन्म दिया। 'प्रसाद' ने छायावाद को जन्म दिया है, पंत जी ने छायावाद को मधुरता दी है, महादेवी ने छायावाद को करुणा दी है और 'निराला' ने उसमें 'ओज' भरा है, क्रान्ति की है, मुक्त छन्द युक्त कविता का जन्म दिया है और प्रौढ़ता प्रदान करने में भी उन्हीं का हाथ रहा है।

और वास्तव में 'छायावाद' के प्रतिष्ठापकों में 'निराला' जी सदैव अमर रहेंगे।

जीवन रेखा:—'महाकवि 'निराला' का जन्म महिषादल राजवाड़ी के एक कोने में एक झोपड़ी में हुआ था। जन्म समय ही आपकी माता का देहान्त हो गया तो उसी समय आपको राजबाड़ी के पिछवाड़े एक दूसरी झोपड़ी में रखा गया और इसके बाद आपको मातृविहीन अवस्था में एक तीसरी झोपड़ी में पालन पोषण दिया गया। बंगला भाषा के

माध्यम से निराला जी का प्रारम्भिक शिक्षण महि
राज्य हाईस्कूल में हुआ। निकटवर्ती नदी से निःसृत
बड़ी नहर यहां की राज्य बाड़ी को करबे की बस्ती
विभक्त करती है। इसी नहर के तट पर यह स्कूल
बाड़ी की शोभनीय चारदीवारी से बाहर खड़ा हुआ
स्थान के अनुरूप छोटी सी बिल्डिंग।'

—'निराला अभिनंदन ग्रन्थ' की यह पंक्तिया श्री
जी द्वारा 'संपादकीय' कालम से उद्धृत हैं —

सं. १९५३ में आपका जन्म हुआ था, आपके पिता
जिले के गढ़कोला गांव के निवासी थे पर महिषादल
की नौकरी में थे। युवावस्था आते आते पिता का देहान
गया। स. १९७५ में इनफ्लूएंजा के कारण स्त्री, चाचा,
भौजाई का देहान्त हो गया। अपनी दो सन्तानों
भतीजों का बोझ आप पर आ पड़ा। तत्पश्चात् स्टोर वि
में एक साधारण कलर्क की हैसियत से आपने नौकरी
परन्तु वहां (महिषादल) में पटी नहीं और आपने नौ
छोड़ दी। संतानों का बोझ, आपकी स्वर्गीय पत्नी की
ने संभाला और इस तरह पुनः आप स्वच्छन्द हुए। आ
संकट तो था ही।

—पुनः निम्न पक्तियां महाकवि की जीवन रेखा
करने के लिए, 'महाकवि निराला अभिनन्दन ग्रंथ' के
कत्ता में श्री निराला जी' के २६-२७ पृष्ठ से उद्धृत की
रही हैं—

'जीवन से विरक्त, परिवार के स्वजनों से अनाथ, बंगाली सामन्त शाही में परिपुष्ट और पोषित, लेकिन उसी सामन्त शाही से विद्रोह किये एक सुकुमार (कविवर) और सुन्दर युवक स्वामी विवेकानन्द के ज्ञान पीठ में आध्यात्मवाद से अपनी आन्तरिक मूर्छित शान्ति को पुनः सजीव करने के लिये कलकत्ता में आ ठहरा। अभी उसे कुछ ही समय लगा था कि वह इस कठोर साधना से विचलित हो उठा। यह भी कह सकते हैं कि इस साधना में एक सांस डूबे रहते हुए वह अपनी तरुणाई का असली पड़ाव खोजने के लिये व्यग्र हो उठा। रामकृष्ण-मिशन से प्रकाशित होने वाले 'समन्वय' नामक आध्यत्मिक मासिक का सम्पादन करते हुए यह युवक हिन्दी पत्रकारिता की दीक्षा ले रहा था। विचित्र आरंभ था यह।

सन्यासियों के बीच घिरे रह कर लाड़ और मस्ती की जिन्दगी से पालित यह युवक अपने उद्विग्न मन का ठहराव शायद पा लेकिन कि दुघटना यह घटी, की इस युवक ने रामकृष्ण-मिशन में रहते हुए अपना निजी जीवन जीना शुरू कर दिया। अपने अवकाश के क्षणों में वह जीवन का दीर्घ सूत्र पकड़ कर खींचा करता। दुःशासन ने द्रौपदी का जो कि उस युग की भोग्या तरुणी रह चुकी थी अपने संयुक्त पांच पतियों की, चीरहरण किया था। संभवतः दुःशासन का यह दुःप्रयास रहा हो कि वह अनेक पतियों की प्रथा को सरेबाजार भ्रष्ट कर देना चाहता था। और, निस्सन्देह

उसका यह प्रयास इतिहास में ज्वलन्त बनकर रह गया
कि वह प्रथा आज दिन धूलधूसरित हो गई है। यह यु
दुःशासन बनकर अपने जीवन के गत्यवरोध पर स
रूमानी राजकुमार की नाई, जीवन का दीर्घ चीरहरण क
की जिद्द पकड़ बैठा था। विचित्र प्रतिक्रिया थी इस यु
पर रामकृष्ण मिशन की आध्यात्मिकता की। दुर्घटना
घटी कि इस युवक ने कवितायें रचना शुरू कर दिया
यही नहीं, फुर्सत के समय बाहर जाकर उस जमाने के व
वृद्ध साहित्यिकों को अपनी रचनायें सुनाना भी शुरू
दिया।

इस प्रकार भारतीय कवियों की जो महामहिम परा
रही है कि उन्होंने जीवन-संघर्ष को हस्तामलक बना
महाकाव्य रचे हैं, उसी का शुभ श्री गणेश करते हुए
युवक ने जीवन में सन्यास का गुरु-मंत्र लेकर एकनिष्ठ
से सरस और कर्ममय जीवन की मधुर प्रिय सूक्तियों
पाठ और गायन प्रारम्भ कर दिया। इस युवक का नाम
श्री सूर्यकांत त्रिपाठी। मिशन के बंगाली संन्यासीगण
युवक को शूरजोकांत कह कर पुकारा करते थे। बंगा
खानपान और बंगाली प्रकृति से अभ्यस्त होने के कारण इ
लिए सरल था कि यह अपने सन्यासियों के बीच परम
बन गया। और इसी विश्वास को लेकर हिन्दी भाषा-भा
के बीच परमप्रिय बनने के लिये यह हिन्दी कविता के
पथ पर चल पड़ा।'

अपनी श्रद्धांजलि प्रस्तुत करते हुए हिन्दी साहित्य के वयोवृद्ध सेवी पं. झाबरमल शर्मा ने अंकित किया ही है कि एक दिन यह युवक स्वयं उन्हें उनके कार्यालय में जाकर अपनी कविता सुना आया था।

--अब पृष्ठ २८ और २९ से महाकवि का 'समन्वय' को छोड़ कर सेठ महादेव प्रसाद के साथ उनकी टीम में सम्मिलित होकर 'मतवाला' के संपादक के रूप में आने का वर्णन किया गया है—

'ऊपर बताया जा चुका है कि सेठ महादेव प्रसाद हिंदी पत्रकार बनने का स्वप्न देख रहे थे। यद्यपि उन्होंने अपना एक हिंदी प्रेस लगा लिया था और उससे 'मारवाड़ी सुधार' नामक पत्र भी कुछ मारवाड़ियों के सञ्चालकत्व में निकलने लगा था, पर वे तो अपना एक ही पत्र निकालने की चिन्ता ग्रस्त थे। जब मारवाड़ी सुधार बन्द हुआ तो उन्होंने उसके सम्पादक श्री शिवपूजन सहाय जी से अनुरोध किया कि वे प्रेस में ही रह जायें और वे रह भी गये। इसी प्रेस से रामकृष्ण मिशन का 'समन्वय' निकलता था और उसका अदृश्य संपादक (!) सूर्यकांत त्रिपाठी नामक युवक था। उसका मोहक ताना-बाना, चित्ताकर्षक रूपरंग, हृदयग्राही केश लहरी, साधारण व्यक्तित्व से अलग एक निराली शान की चाल, सहज मित्रवत् प्रेम की उच्छ्वास से लब्ध प्रतिष्ठित वह हर मिलनेवाले हिन्दी प्रेमी को अपनी कवितायें सुनाने की जिद्द पकड़े बैठा था। नखरे के साथ पचास आग्रह करने

पर कविता सुनाने का चस्का शायरों ने प्रचलित किया है। और, यहां पर यह स्पष्ट कर दिया जाय कि शायरों ने क्यों कि आशिकी-माशुकी पर ही अपना व्यक्तित्व और अपना अन्तस केन्द्रित कर लिया, इसलिये उनमें नखरों की स्त्रैण-बहुलता कोई अस्वाभाविक नहीं थी! लेकिन यह युवक बाहरी मोटी-बुद्धि से कुछ वैसा ही शायर-पथानुगामी लगता हुआ भी, अपने प्रथम परिचय में ही जता दिया करता था कि वह विशुद्ध ओजस्वी पुरुष है। और उसका काव्य परम-पुरुषनिष्ठ है।

इस युवक ने सेठ महादेव प्रसाद को भी अपनी कविताएं सुनाईं। सेठ जी स्वयं पत्रकार थे, कवि थे। उस स्वदेशी लहर में हिंदी साहित्य किस स्वदेशी दिशा में चले, संभवतः वे अपना एक प्रोग्राम भी चुपके से बना चुके थे। शिव पूजन सहाय जी को उन्होंने अपने इसी प्रोग्राम की पूर्ति के लिये रोक लिया था। इस युवक से भेंट होते उन्हें कुछ निर्णय करने की रुचि को बल मिला। और जब दस-बीस वे इस युवक की कविता सुन चुके, इसके विचारों से, जो कि युवकोचित थे और भविष्यद्रष्टा थे, हृदयंगम कर चुके और उससे पारस्परिक विचारों के दोहन-मंथन से आश्वस्त हो गये, तो उन्होंने एक संकल्प कर लिया।

पिछले पांच सालों से वे कुछ कर गुजरना चाहते थे। आखिर उन्होंने फैसला कर लिया। लेकिन यह फैसला इस युवक की इस स्वीकृती के साथ ही कार्यरूप में आया कि वह

'समन्वय' से संबंध विच्छेद कर लेगा और सेठ जी की टीम में आकर शामिल हो जायगा इस युवक ने भी देखा कि आध्यात्म से सम्बन्ध-विच्छेद तो अब असम्भव ही है और पत्रकार होने के नाते जब तक पत्र में अपना नाम न चले, तो ऐसी पत्रकारिता का श्रम कुछ अर्थ नहीं रखता। जो नया प्रोग्राम है, उसमें उसका नाम चलेगा। भविष्य की इस उमंग से यह युवक इतना मचला कि संन्यासियों का संग-साथ छोड़ कर, जीवन की विरक्ति पर जो आगे बढ़ रहा था, सो उल्टे पैरों न सिर्फ लौट आया था, बल्कि दौड़ भागा, परिवार का निःसंग उसके साथ था, नये उत्साही मित्रों का संग वह पकड़ बैठने का लोभ संवरण न कर सका। प्रचुर जीवन शक्ति से जो ओत-प्रोत था, वह भला क्यूं पलायन वादी बने ?'

और इस तरह रामकृष्ण मिशन को छोड़कर 'निराला' जी महादेव प्रसाद सेठ के यहां 'मतवाला' मंडल में सम्मिलित हो गए। इस मंडल के सदस्य--सम्पादक श्री महादेव प्रसाद सेठ, मुंशी नवजादिक लाल श्रीवास्तव, श्री निराला जी, पं. ईश्वरी प्रसाद शर्मा, पं. रामगोविंद त्रिवेदी, वेदांत शास्त्री पं. चन्द्रशेखर पाठक, श्री शिवपूजन सहाय आदि थे, इसी मतवाला मण्डल से सन् १९२३ में उक्त प्रसिद्ध हिन्दी साप्ताहिक 'मतवाला' निकला, जिसमें प्रकाशित निम्न दोहा शायद ही 'मतवाला' पाठक भूल सके होंगे--

'अमिय-गरल, शशिशीकर-रविकर, राग विराग भरा प्याला,

पीते हैं जो साधक उनका प्यारा है यह 'मतवाला

'मतवाला' चल निकला और उसकी ख्याति समस्त भा में होने लगी।

युवक सूर्यकान्त ने 'मतवाला' के तुक से ही मिल जुलता अपना नाम तब 'निराला' रख लिया।

और इस तरह सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' सामने आ

'मतवाला' में ही उनकी रचनायें प्रकाशित हुईं औ उनका संकलन 'अनामिका' नामक पुस्तिका में हुआ। १९ में यह संग्रहीत पुस्तक प्रकाशित हुई। भूमिका में महा प्रसाद सेठ ने लिखा है—

"इतना मैं अवश्य कहूँगा कि त्रिपाठीजी ने पंचव प्रसंग, अधिवास, जूही की कली नामक कविताओं को लिख हिन्दी के पद्य-साहित्य में एक अद्भुत पूर्ण नई शैली का सम वेश किया है और यदि आज का हिन्दी कविसमाज इस शै का आदर और अनुगमन करेगा तो मातृभाषा का बड़ा उपक होगा और उसके लालित्य में एक नई बात पैदा हो जायगी।

काश कि सेठजी द्वारा इंगित व कविवर 'निराला' द्वा निर्मित 'शैली' का कवि समाज ने आदर कर लिया होता शायद 'निराला' आक्षेप व संघर्ष से बच जाते और उनकी प्रतिभा और विकसित होकर निखर उठती परन्तु यह भी भारत का दुर्भाग्य है कि 'वह' गुदड़ी में छिपे लाल 'निराला की प्रतिभा को समझ न पाया। कवि समाज ने उनकी शैली की खिल्ली उड़ाई और उसे रबर छन्द या केचुआ छन्द कहा

जिसके लिये 'निराला'जी अपने तर्क द्वारा कहते हैं—"मनुष्यों की मुक्ति की तरह कविता की भी मुक्ति होती है। मनुष्यों की मुक्ति कर्म के बंधन से छुटकारा पाना है, और कविता की मुक्ति छन्दों के शासन से अलग हो जाना है।"

इसी बीच उन्होंने कई पुस्तकों के अनुवाद भी किये। 'निराला' जी 'मतवाला' में कायदे से सिर्फ एक वर्ष ही रहे वैसे उनका संबंध १९२६ तक रहा। एक वर्ष के बीच, 'मतवाला' में निम्नलिखित कार्य किया, जिसे मैं फिर 'निराला अभिनन्दन ग्रन्थ' से लिख रहा हूँ—'निराला' जी ने जिससे उनकी 'लगन' का पता चलता है।

१. श्रेष्ठ कविताओं का सृजन और 'अनामिका' का प्रकाशन।

२. हिन्दी के महान आचार्यों, साहित्यिकों और लेखकों के साहित्य पर जो उनकी प्रान्तीय बोलियों का भूत सर पर चढ़कर बोलने लगा था, उन भूतों की जमकर खबर ली और सभी क्षेत्रों में इस 'वैयाकरण' की आलोचनाओं का स्वागत किया गया और उसकी ईमानदारी पर दाद दी गई।

३. कलकत्ता में पारसी थियेटर-कम्पनियोंने जो असंगत और असंबद्ध नाटकों से साहित्य और जन-रुचि और जन शिष्टता का अपमान करना शुरू कर दिया था, उसके विरुद्ध कसकर आन्दोलन चलाया और उसमें विशेष सफलता पाई।

४. १९२४ में दिल्ली के हिन्दी साहित्य सम्मेलन में भाग लिया। सेठ महादेव प्रसादजी जब वहां गये तो साथ में

अपने एकमात्र प्रिय कवि को भी लेते गये। इस अधिवे के सभापति पं. अयोध्यासिंहजी उपाध्याय थे। निरालाजी इसके एक अधिवेशन में मुक्त छन्द पढ़ा और एक वन्दना गीत गाया।

५. अतिरिक्त बीस पुस्तकें लिखीं।

६. बंगला साहित्य के सम्मोहन से अपना संबंध अलग कर, वे हिन्दी साहित्य का विशद अध्ययन कर थे।

७. ब्रजभाषा की रीति-परंपरा का, जिसका अन्त की आजादी की लड़ाई को देखते हुये अनिवार्य रूप से जाना चाहिये था, खुले मैदान में उन्मूलन किया।

८. नये कवियों को, संघर्ष की भाषा, हिन्दी गद्य लिखने के लिये उत्साहित किया और अतुकांत छन्द निर्भीक भाव से काव्य लिखने की प्रेरणायें दीं।

९. नाटकों के भांडों और मुंशियों की तर्ज पर लिखे जा वाले अश्लील हास्य के संतुलन में, सामाजिक मजाक नीव डाली।

१०. साहित्यिकों के आदर्श तपस्वी जीवन की परम्परा का पुनरुद्धार किया।

यह थी कविवर की लगन का फल, जिसने अपनी वर्ष की आयु में ही 'समन्वय' का संपादन भार सँभाला और 'मतवाला' को भी अपनी प्रतिभा से सर्वांग सुन्दर बना दिया

१९२५,में 'निराला जी कलकत्ता से अपने गांव चले गये। १९२६ में दंगे के दिनों में 'मतवाला' में बड़ा ओज रहा और जिसके फलस्वरूप महादेव प्रसाद सेठ सरकारी मेहमान बना लिये गये। जब छूटे तो अपना प्रेस मिरजापुर उठाकर चले गये। 'पत्र' बन्द हो गया था और पत्रकार 'निराला' काम से बेकार परन्तु आत्म चिंतना में लीन।

सन् २६से२९ तक तीन वर्ष का समय, कभी कलकत्ता, कभी कहीं नौकरी के उद्देश्य से यात्रा, कभी लखनऊ, कभी पुनः कलकत्ता कविवर आते जाते रहे। अर्थात् अस्त-व्यस्त और फाकेमस्ती की जिन्दगी बीती।

सन् २९. से वे स्थायी रूप से गंगा-पुस्तक-माला कार्यालय में कार्य करने लगे। 'सुधा' का संपादनभार संभालते हुए यहीं पर 'अप्सरा', 'अलका' उपन्यास व 'लिलि' की कहानियां लिखीं। इसी युग में पन्तजी से साक्षात् दर्शन न होते हुये भी पत्र व्यवहार से सम्बन्ध बढ़ा। 'प्रसाद' जी तो आपसे स्नेह ही नहीं आपकी सेवा-शुश्रुसा भी कई बार कर चुके हैं। शायद ही कभी तीन हस्तियां एक साथ इस दुनियां में फिर दिखाई पड़ें।

४ जून १९३२ को आपके द्वारा संपादित पत्र 'रंगीला' निकला, परन्तु यह पत्र निकल न सका शायद इसका प्रकाशन तीसरे अंक के बाद ही ठप्प हो गया। फिर आर्थिक संकट ने आ घेरा। जीवीकोपार्जन किसी तरह हो रहा था।

सन् १९३५ में कविवर की पुत्री सरोज का देहान्त हो

गया। सन् १९३८ के अन्तिम सप्ताह में विद्यासागर का की हिन्दी समिति के वार्षिकोत्सव में बड़ा बाजार ला की ओर से अभिनंदन पत्र दिया गया।

आर्थिक आघातों से, मानसिक पीड़ाओं से, दुख, को झेलते-झेलते 'निराला' विचलित हो उठे और तत्पश् एक दीर्घकाल से 'प्रयाग' में दारागंज में रह रहे अपने मित्र कमला शंकरजी के यहां चले आये और यहीं फि ही गये। आर्थिक आघातों से हार्निया के रोग में छटप महाकवि 'निराला' का देहान्त सन् १९६३ में हुआ।

एक दीपक, जो अपने जीवनकाल में सदैव जलते ह हुये भी अपनी प्रतिभा से हिन्दी काव्य को महिमामय रहा था उसका इस प्रकार अन्त हुआ।

'निराला' जी की काव्य विलक्षणतायें:—

१. 'निराला' जी की भाषा संस्कृत-गर्भित खड़ी बो है। एक अजीब सी क्लिष्टता है जिसके कारण उ 'अर्वाचीन काव्य का कठिन प्रेत' भी कहा है परन्तु क्लिष्ट दुरूहता के बावजूद भी आपकी भाषा, कोमल, सरस औ माधुर्य लिये हुये है।

उदाहरणार्थ—

—"रवि हुआ अस्तः ज्योति के पत्र में लिखा अमर
रह गया राम-रावण का अपराजेय समर

आज का, तीक्ष्ण-शर-विधृत-क्षिप्र-कर, वेग प्रखर
शतशेलसम्वरण शील, नील नभ-गर्जित-स्वर,
प्रतिपल परिवर्तित व्यूह-भेद-कौशल-समूह--
राक्षस-विरुद्ध प्रत्यूह-क्रुद्ध-कपि-विषम हूह,"—

* * * *

—"रावण-प्रहार-दुर्वार-विकल-वानर-दल-बल--
मूर्च्छित-सुग्रीवांगद-भीषण-गवाक्ष-गय-नल,
वारित-प्रलयाब्धि-क्षुब्ध-हनुमत्--केवल--प्रबोध
उद्‌गीरित--वह्नि-भीम-पर्वत-कपि-चतुः प्रहर
जानकी-भीरु-उरु-आशाभर--रावण सम्बर"—

२. 'निराला' जी के काव्य में 'नेचर मिस्टिसिज्म'—

"वासंती की गोद में तरुण
सोहता स्वस्थ मुख बालारुण।
किसलयों के अधर यौवन--मद
रक्ताभ; मंजु उड़ते षट्पद
खुलती कलियों--से कलियों पर
नव आशा, नवल स्पंद, भर-भर
व्यंजित सुख का जो मधु गुंजन
वह पुंजी कृत वन--वन उपवन।
हेम-हार पहने अमलतास,
हँसता रक्तांबर धर पलास।
कुंद के शेष पूजार्घ्यदान,
मल्लिका प्रथम यौवन शयान।" —(दान)

* * * *

"लता मुकुल-हार-गंध भार भर
बही पवन बंद मंद मंदतर
जागी नयनों में बन—
यौवन की माया।
आवृत-सरसी उर सरसिज उठे
केशर के केश कली के छुटे,
स्वर्ण-शस्य-अंचल
पृथ्वी का लहराया।
सखि, बसंत आया।
भरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया।"

o o o o

संध्या का एक बड़ा ही सुन्दर चित्र—

"देकर अंतिम कर
रवि गये अपर पार,
श्रमित चरण आये
गृहिजन निज-निज द्वार
अम्बर-पथ से मन्थर
संध्या श्यामा,
उतर रही पृथ्वी पर कोमल-पद-भा
मन्द-मन्द बही पवन, खुल गई जुही
अञ्जलि कल विनत नवल पदतल उपहार।
सुवासना उठी प्रिया
आनत-नयना,

भवन-दीप जला, रही
आरती उतार।"—

o o o o

"अस्ताचल रवि, जल छल छल छवि,
स्तब्ध विश्व कवि, जीवन उन्मन,
मन्द पवन बहती सुधि रह-रह
परिमल की वह कथा पुरातन
दूर नदी पर नौका सुन्दर
दीखी मृदुतर बहती ज्यों स्वर,
वहां स्नेह की प्रतनु देह की
बिना गेह की बैठी नूतन
ऊपर शोभित मेघ छत्र सित,
नीचे अमित नील जल दोलित;
ध्यान-नयन-मन-चिन्त्य प्राण-धन,
किया शेष रवि ने कर अर्पण।"

o o o o

"बन्द कंचुकी के सब खोल दिये प्यार से
यौवन-उभार ने
पल्लव-पर्यंक पर सोती शेफालि के।
मूक-आह्वान भरे लालसी कपोलों के
व्याकुल विकास पर
झरते हैं शिशिर से चुम्बन गगन के।
जागती प्रिया के नक्षत्रदीप कक्ष में
वक्ष पर संतरण-आशी आकाश है,

पार करना चाहता
सुरभिमय समीर-लोक,
शोक-दुःख जर्जर इस नश्वर संसार की क्षुद्रसी
पहुँच कर प्रणय छाए
अमर विश्राम के
सप्तम सोपान पर।"

o o o o

संध्या का ही एक दूसरा वर्णन—

"अस्ताचल ढले रवि,
शशि-छवि विभावरी में
चित्रित हुई है देख
यामिनी-गंधा जगी,
एकटक चकोर-कोर दर्शन प्रिय,
आशाओं भरी मौन भाषा बहुभावमयी
घेर रही चन्द्र को चाव से,
शिशिर-भार-व्याकुल कुल
खुले फूल झुके हुए
आया कलियों में मधुर
मद-उर यौवन उभार।"

३. 'निराला' जी के काव्य में 'लव मिस्टिसिज्म'—

"याद थी आई एक दिन जब शांत
वायु थी, आकाश हो रहा था क्लांत
ढल रहे थे मलिन-मुख रवि, दुख-किरण
पम मन पर थी, रहा अवसन्न वन,

देखती यह छवि खड़ी मैं, साथ वे
कह रहे थे हाथ में यह हाथ ले
एक दिन होगा जब न मैं हूँगा..."

○ ○ ○ ○

मन्द पवन के झोंको से लहराते काले बाल
कवियों के मानस की मृदुल कल्पना के से जाल
वह विचर रही थी मानस की प्रतिभा-सी
उतरी इस जगती तल में
बन के फूलों को चुनकर बड़े चाव से
रखती थी लघु अंचल में।"

—कितना मार्मिक वर्णन किया है कवि ने. 'प्रिया की स्मृति' में विभोर हो कर—उपरोक्त पंक्तियों में।

४. 'निराला' जी के काव्य में "नेशलन मिस्टिसिज्म"—

"पशु नहीं, वीर तुम,
समर-शूर, क्रूर नहीं,
काल-चक्र में हो दबे
आज तुम राज-कुँअर!
समर-सरताज!
मुक्त हो सदा ही तुम,
बाधा-विहीन बंध छंद ज्यों
डूबे आनन्द में सच्चिदानन्द-रूप।
महा-मंत्र ऋषियों का
अणुओं-परमाणुओं में फूंका हुआ—
तुम हो महान्,

तुम सदा हो महान्
है नश्वर यह दीन-भाव,
कायरता, काम-परता ।
ब्रह्म हो तुम
पद-रज भर भी है नहीं
पूरा यह विश्व-भार !
जागो फिर एक बार !"

५. निराला जी के काव्य में "मोनिज्म मिस्टिसिज्म" विछोह के क्षणों में आत्मा का चीत्कार—

"हुआ प्रात, प्रियतम तुम जावगे चले ?
कैसी थी रात, बन्धु, थे गले-गले ।"

० ० ० ०

"मौन रही हार—
प्रिय पथ पर चलती,
सब कहते शृङ्गार !
कण-कण कर कंठकंण, प्रिय
किण्-किण् रव किंकिणी,
रणन रणन नूपुर, उर लाज,
लौटी रंकिणी,
और मुखर पायल स्वर करें बार-बार,
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृङ्गार !
शब्द सुना हो, तो अब
लौट कहां जाऊँ ?
उन चरणों को छोड़, और

शरण कहां पाऊं ?---
बजे सजे उर के इस सुर के सब तार
प्रिय पथ पर चलती, सब कहते शृङ्गार !

६. 'निराला' जी के काव्य में....' ब्यूटी मिस्टिसिज्म''

निराला 'एस्थेटस' वादियों में से हैं और इस वाद में उन्हें अत्यन्त सफलता मिली है। आपके शृंगार में कहीं कहीं नग्न चित्र उपस्थित है परन्तु उसमें अश्लीलता का आभास नहीं होता। उदाहरणार्थ----

"खड़ा हुआ स्फटिक शिला में देखता ही रहा।
आँख पड़ी युवती पर
आई थी जो नहाकर,
गीली धोती सटी हुई भरी देह में, सुघर
उठे पुष्ट तन, दुष्ट मन को मरोड़कर,
आयत दृगों का मुख खुला हुआ छोड़कर,
बदन कहीं से नहीं कांपता।
कुछ भी संकोच नहीं ढाँपता।
वर्तुल उठे हुए उरोजों पर पड़ी थी निगाह
चोंच जैसे जयन्त की, नहीं जैसे कोई चाह
देखने की मुझे और,
कैसे भरे दिव्य स्तन, हैं ये कितने कठोर
मेरा मन कांप उठा, याद आई जानकी।
कहा, तुम राम की,
कैसे दिये हैं दर्शन !"

'उपरोक्त कविता अचेतन और अर्ध चेतन का रचना के पहले प्रयत्न हैं। कवि बहता चला जाता भाव जैसा आया लिख दिया।'

० ० ० ०

"हारे हैं सारे नेत्रों को हेर··हेर····
विश्वभर को मदोन्मात करने की मादकता
भरी है विधाता ने इन्हीं दोनों नेत्रों में।
मीन-·मदन फांसने की बंशी सी विचित्र नासा
फूल दल तुल्य कोमल लाल ये कपोल गोल
चिबुक चारु और हँसी बिजली सी—
योजन··गंध पुष्प जैसा प्यारा यह मुख मंडल-
फैलते पराग दिङ्मंडल आमोदित कर—
खिंच आते भौंरे प्यारे।
देख यह कपोत–कंठ
बाहुबल्ली कर· सरोज
उन्नत उरोज पीन-·क्षीण कटि—
नितम्ब भार-चरण सुकुमार—
गति मन्द मन्द,
छूट जाता धैर्य ऋषि मुनियों का,
देवों··भोगियों की तो बात ही निराली है।"

० ० ० ०

"आओ मधुर··सरण, मानसि, मन।
नूपुर·चरण-·रणन जीवन नित
बंकिम चितवन चित· चारु··मरण!

नील वसन शतद्रु तन उर्मिल,
किरण चुम्बी मुख अंबुज रे खिल,
अंतस्तल मधु गंध अनामिल,
उर उर तव नव राग जागरण।
पलक पात उत्थित जग कारण,
स्मिति आशा चल जीवन धारण,
शब्द अर्थ भ्रम भेद निवारण,
ध्वनि शाश्वत–समुद्र–जग मज्जन।"

o o o o

प्रियतमा के साथ होली खेलता कवि—

नयनों के डोरे लाल गुलाल भरे, खेली होली!
जागी रात सेज प्रिय पति संग सनेह रंग घोली;
दीपित दीप प्रकाश, कंज छवि मंजु मंजु हँस खोली
मली मुख चुम्बन रोली।

अंत में—

बीती रात सुखद बातों में प्रात पवन प्रिय डोली,
उठी सँभाल बाल, मुखलट, पट, दीप बुझा हँस बोली
रही यह एक ठठोली।"

o o o o o

७. 'निराला' जी के काव्य में 'व्यंग' की प्रचुरता—

"मुआफ करें खता,
कुकुरमुत्ता उगाया नहीं जाता।"

o o o o

हाईकोर्ट के वकीलों के प्रति—

"दौड़ते हैं बादल ये काले--काले
हाईकोर्ट के बगुले मतवाले
जहां चाहिये वहां नहीं बरसे,
धान सूखा देखकर नहीं तरसे,
जहां पानी भरा वहां छूट पड़े,
कह कहे लगाते हुये टूट पड़े।"

* * *

'कैपिटलिस्ट के प्रति—

"खून चूसा खाद का तूने अशिष्ट,
डाल पर इतरा रहा कैपिटलिस्ट,
कितनों को तूने बनाया है गुलाम,
माली कर रखा, खिलाया जाड़ा घाम।"

* * *

स्त्री पूजा के प्रति—

"हाथ जिसके तू लगा
पैर सर रखकर वह पीछे को भगा
जानिब औरत की, लड़ाई छोड़कर,
टट्टू-जैसे तबेले को तोड़कर।"

अंग्रेजी काव्य के प्रति—

'कहीं का रोड़ा, कहीं का लिया पत्थर,
टी. एस. इलियट ने जैसे दे मारा,
पढ़ने वालों ने जिगर पर हाथ रख कर,
कहा, 'कैसे लिख दिया संसार सारा'
आगे—'जैसे प्रोग्रेसीव का, लेखनी लेते,

नहीं रोका रुकता जोश का पारा।'

या— आगे चली गोली जैसे डिक्टेटर
उसके पीछे बाहर, जैसे भुक्खड फालोअर,
उसके पीछे दुम हिलाता टेरियर--
आधुनिक पोएट
पीछे बांदी बचत की सोचती,
कैपिटलिस्ट, क्वेट

८. 'निराला' जी के काव्य में 'प्रगतिवाद'—

'वह आता--
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया टेक,
मुट्ठी भर दाने को–भूख मिटाने को
मुँह फटी पुरानी झोली को फैलाता--
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

* * * *

इसी प्रकार विधवा की पवित्रता और उसके करुणापूर्ण जीवन पर कवि लिखता है--

'वह इष्टदेव के मन्दिर की पूजा सी,
वह दीप शिखा सी शांत, भाव में लीन,
वह क्रूर काल तांडव की स्मृति रेखा सी,
वह टूटे तरु की छुटी लता सी दीन
दलित भारत की विधवा है।
षड्ऋतुओं का शृंगार,

कुसुमित कानन में नीरव पद संचार,
अमर कल्पना में स्वछंद बिहार--
व्यथा की भूली हुई कथा है,
उसका एक स्वप्न अथवा है।
'इसी प्रकार वह तोड़ती पत्थर-
'वह तोड़ती पत्थर,
देखा उसे मैंने इलाहाबाद के पथ पर
वह तोड़ती पत्थर।
कोई न छायादार
पेड़ वह जिसके तले बैठी हुई स्वीकार,
श्याम तन, भर बंधा यौवन,
नत नयन, प्रिय-कर्म रत मन,
गुरु हथौड़ा हाथ,
करती बार बार प्रहार,
सामने तरु-मालिका अट्टालिका प्राकार।
चढ़ रही थी धूप,
गर्मियों के दिन
दिवा का तमतमाता रूप,
उठी झुलसाती हुई लू,
रुई ज्यों जलती हुई भू
गर्द चिनगी छा गई,
प्रायः हुई दुपहर
वह तोड़ती पत्थर।

९. 'निराला जी के काव्य में सरल हिन्दी का प्रयोग ह
गीतों की गेयता का गुणः--

जिस तरह कविवर संस्कृत-गर्भित शब्दों के साथ निखरते हैं वैसे ही सरल बोली में।

'रस की बूंदें बरसो, नव घन !
पावन सावन सरसो नव घन !
कमलों के वन वारि-विमोचन,
छा लो गगन बला इक बाहन,
धान जुवार उड़द अरहर घन
धारण कर कर हरसो, नव घन !
खेत निराती ग्राम कामिनी
नभ नयनों दमकती दामनी
लख कर लौटी वास भामिनी
सुख समीर तन परसो नवघन।

१०. 'निराला जी की रचित प्रार्थनात्मक कवितायें—

'वरदे, वीणावादिनी वर दे !
प्रिय स्वतंत्र-रव, अमृत मन्त्र नव
भारत में भर दे !

काट अन्ध उर के बन्धन स्तर
बहा जननि ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष-भेद-तम हर, प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे !

नव गति, नवलय, ताल छन्द नव,
नवल कंठ, नव जलद-मंद्र रव,
नव नभ के नव विहग वृंद को
नव पर, नव स्वर दे !
वर दे वीणावादिनी वर दे !

इस प्रकार हमें मालूम होता है कि कविवर के पसंद अलंकार, रूपक, उपमा और अनुप्रास हैं। आपकी में प्रसाद, ओज, माधुर्य तीनों गुण मिलते हैं। आपका शृंगार तथा वीर रस अद्वितीय।

११. कविवर की एक महान रचना 'जूही की क
(मुक्त छंद की प्रतीक)

विजन वन वल्लरी पर
सोती थी सुहाग भरी
स्नेह स्वप्न मग्न अमल कोमल तनु तरुणी
जूही की कली,
दृग बन्द किये, शिथिल, पत्रांङ्क में
वासन्ती निशा थी,
विरह विधुर प्रिया संग छोड़
किस दूर देश में था पवन
जिसे कहते हैं मलयानिल।
आई याद बिछुड़न से मिलन की
वह मधुर बात,
आई याद चांदनी की धुली हुई आधी रात,
आई याद कांता की कम्पित कमनीय गात,
फिर क्या? पवन
उपवन सर सरित् गहन गिरी कानन
कुञ्ज लता पुञ्जों को पार कर
पहुंचा जहां उसने की केलि
कली खिली साथ!
सोती थी,

जाने कहो कैसे प्रिय आगमन वह ?
नायक ने चूमे कपोल
डोल उठी बल्लरी की लड़ी जैसे हिंडोल
इस पर भी जागी नहीं
चूक क्षमा मांगी नहीं
निद्रा लस वंकिम विशाल नेत्र मून्दे रही
किम्बा मतवाली थी यौवन की मदिरा पिये
कौन कहे ?

निर्दय उस नायक ने
निपट निठुराई की,
कि झोंकों की झड़ियों से
सुन्दर सकुमार देह सारी झकझोर डाली,
मसल दिये गोरे कपोल गोल
चौंक पड़ी युवती
चकित चितवन निज चारों ओर फेर
हेर प्यारे को सेज पास
नम्रमुखी हंसी, खिली
खेल रंग प्यारे संग !'

* * *

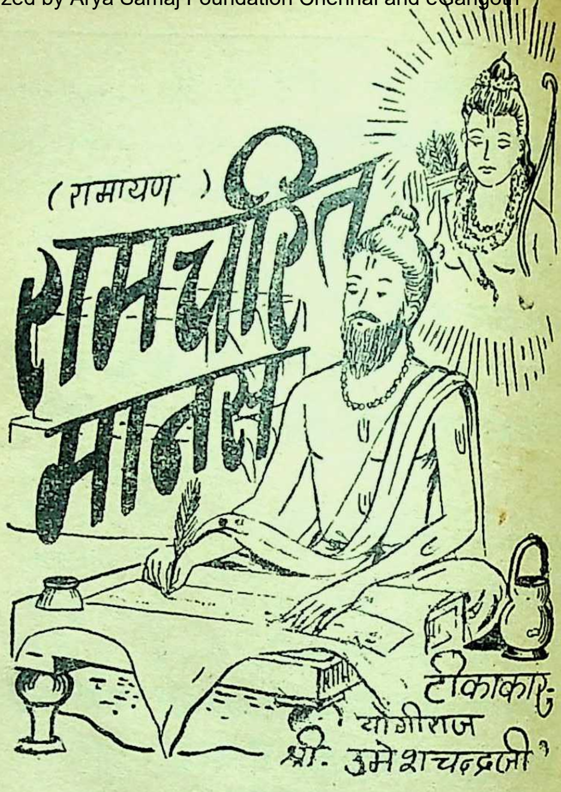
(रामायण)
रामचरित
मानस
टीकाकार:
योगीराज
श्री उमेशचन्द्रजी

( गतांक से आगे )

जो प्रभु विपिन फिरत तुम देखा,
बन्धु समेत किये मुनि वेषा,
जासु चरित अवलोकि भवानी,
सती शरीर रहिउ बौरानी।

जिन भगवान् को तुमने बनमें फिरते हुए देखा, जो स्वबन्धु के साथ थे और मुनियों का वेश धारण किये

हुए थे, हे भवानी, जिनके लीला-विधान को देखकर तुम भी सती के देह में थीं, तब तुम्हें भी पतिभ्रम हो गया था।

अजहूं न छाया मिटति तुम्हारी,
तासु चरित सुनु भ्रम-रुज हारी,
लीला कीन्ह जो तेहि अवतारा,
सो सब कहिहौं मति अनुसारा।

आज भी उस विभ्रम की छाया से तुम मुक्त नहीं, उसका प्रभाव तुमपर स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रहा है। उन भगवान् की भ्रमरूपी रोग-विकार नाशक दिव्य लीला सुनो। उस अवतार के समय प्रभु ने अपने पावन चरित का जो आदर्श प्रस्तुत किया, वह सब मैं अपनी बुद्धि के अनुसार तुम्हें कह सुनाऊंगा।

भरद्वाज सुनि शंकर बानी,
सकुचि सप्रेम उमा मुसकानी,
लगे बहुरि बरणै वृषकेतू,
सो अवतार भयौ जेहि हेतू।

याज्ञ वल्क्य मुनि कहते हैं—हे भरद्वाज भगवान् शिवका यह कथन सुनकर भगवती उमा संकोच और प्रेम-भाव से मुसकरा पड़ी। तदुपरान्त वृषभध्वज शंकर ने पुनः वर्णन करना प्रारंभ किया, जिस कारण भगवान् का वह अवतार हुआ।

सो मैं तुमसन कहब सब, सुनु मुनीश मन लाय,
रामकथा कलिमल हरणि, मंगलकरणि सुहाय।

वह मैं तुमसे विस्तार पूर्वक सुनाऊँगा। हे मु भरद्वाज मन लगाकर सुनो। राम की यह कथा परम मं कारिणी है, कलिकाल के पापों से मुक्त रखनेवाली है सुनने में अत्यन्त कर्णप्रिय है।

स्वायंभुव मनु अरु शतरूपा,
जिनते भइ नर-सृष्टि अनूपा,
दंपति धरम, आचरण नीका,
अजहुं गाव श्रुति जिनकै लीका।

सृष्टि के आरम्भ-काल में स्वायंभुव मनु और शतरूपा उदय हुआ, जिनसे यह मानव-सृष्टि शुरू हुई। वे दं परम धर्मशील थे, और उनका आचरण अत्युत्तम था। भी उनकी आदर्श जीवन-मर्यादा का गान करते हैं।

नृप उत्तानपाद सुत तासू,
ध्रुव हरिभक्त भये सुत जासू,
लघु सुत नाम प्रियव्रत ताही,
वेद-पुराण प्रशंसत जाही।

उसके मनु-शतरूपा के बड़े पुत्र राजा उत्तानपाद हुए और उत्तानपाद के पुत्र परम हरिभक्त-भगवद्भक्ति-परायण ध्रु हुए और इन्हीं स्वायंभुव मनु के लघु पुत्र का नाम प्रियव्र था, जिसकी प्रशंसा वेदों और पुराणों में भी की गई है।

देवहूति पुनि तासु कुमारी,
जो मुनि कर्दम की प्रिय नारी,

आदिदेव पुनि दीन दयाला,
जठर धरेउ प्रभु कपिल कृपाला।

उन्हीं स्वायंभुव मनु की पुत्रीका नाम देवहूति था, जो महर्षि कर्दम की प्रिय पत्नी थी, जिसकी पावन कुक्षि से स्वयं आदिदेव दीन दयालु भगवान् कपिल के रूपमें शरीर धारण कर इस पृथ्वीतलपर अवतरित हुए।

सांख्य शास्त्र जिन प्रकट बखाना,
तत्वविचार निगुण भगवाना,
तेहि मनु राज्य कीन बहुकाला,
प्रभु आयसु बहुविधि प्रतिपाला।

इन्हीं भगवान् कपिलने सांख्य शास्त्र का विशद वर्णन किया है, जिसमें जगत्-तत्व का सूक्ष्म विवेचन किया है, उन्हीं स्वायंभुवने पृथ्वीपर दीर्घकालतक राज शासन का संचालन किया और भगवान् के आदेश का हर तरह से पालन किया।

होय न विषय-विराग, भवन बसत भा चौथपन,
हृदय बहुत दुख लाग, जन्म गयौ हरिभक्ति बिनु।

यद्यपि गृहस्थ धर्म का पालन करते चौथापन आ गया अर्थात् वृद्धावस्था आ पहुंची, फिर भी, मन विषय-सुखसे विरक्त नहीं हो रहा है, इसलिये हृदय में अत्यन्त दुःख का अनुभव हुआ कि सारा जीवन भगवद्भक्ति के बिना व्यतीत हो गया।

बरबस राज्य सुतहिं तब दीना,
रानी सहित गमन वन कीना,
तीरथ वर नैमिष विख्याता,
अति पुनीत, साधक सिधिदाता।

तब मनुने अपने पुत्र को बलवत्–जबरन् राजसिं
पर बैठाकर अपनी राजमहिषी-शतरूपाको साथ लेकर
की ओर प्रस्थान किया। नैमिषारण्य--जिसे तीर्थों मे
मोत्तम माना जाता है और जो अति पवित्र और साधको
सिद्धिदायक है।

बसहिं जहां मुनि सिद्ध समाजा,
तहंहिय हरषि चले मनु राजा,
पंथ जात सोहहिं मतिधीरा,
ज्ञान–भक्ति जनु धरे शरीरा।

जहां ऋषि–महर्षि और सिद्धों का समुदाय निवास क
है, उस नैमिषारण्य तीर्थ के लिये वे मनु महाराज प्र
चित्त चल पड़े। रास्ते में जाते हुए वे मतिधीर इस प्र
सुशोभित देख पड़ते हैं, मानो ज्ञान और भक्ति सा
शरीर धारण कर धरती तलपर अवतीर्ण हुए हैं।

पहुंचे जाय धेनुमति तीरा,
हरषि नहाने निर्मल नीरा,
आये मिलन सिद्ध मुनि ज्ञानी,
धर्मधुरन्धर नृपरिषि जानी।

चलते हुए वे दम्पती धेनुमति–गोमती नदी के तट

जा पहुंचे और नदी के निर्मल नीर में सानन्द स्नान किया। वहां उन्हें धर्मधुरीण राजर्षि मानकर सिद्ध, मुनि और ज्ञानी जन मिलने के लिये आये।

जहँा-तहँ तीरथ रहे सुहाये,
मुनिन सकल सादर करवाये,
कृश शरीर मुनि-पट परिधाना,
सन्त-सभा नित सुनहिं पुराणा।

वहां यत्र-तत्र जो पावन तीर्थस्थान थे, मुनिवरोंने उन सब के दर्शन राजदम्पती को करवाये। उनके कृश-दुर्बल शरीर पर मुनियों के वस्त्रोंका परिधान सुशोभित है और वे प्रतिदिन सन्तों की सभा में बैठकर पौराणिक कथाएं सुनते हैं।

द्वादश अक्षर मन्त्रवर, जपहिं सहित अनुराग,
वासुदेव पद-पंकरुह, दंपति मन अति लाग।

वे राजदम्पति द्वादशाक्षरीय पावन मन्त्र-'ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'—का अनुराग सहित-भक्तिभावपूर्वक जप करने लगे और भगवान् वासुदेव के चरण कमलों में उनका मन अतिशय तन्मय हो गया।

करहिं अहार शाक-फल-कन्दा,
सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानन्दा,
पुनि हरि हेतु करन तप लागे,
वारि अहार मूल फल त्यागे।

वे अहार रूपमें शाक, फल, कन्द आदिका सेवन क हुए सत्-चित्-आनन्दघन ब्रह्म-परमात्माके स्मरण- अहर्निश लवलीन रहने लगे। पुनः वे भगवान् अपना ध्येय-केन्द्र बनाकर तपश्चर्या में निरत हो ग इस अवस्था में उन्होंने कन्द-मूल-फलादिका आहार जल-पान करना भी त्याग दिया। केवल भगवान् में त रहने लगे।

उर अभिलाष निरन्तर होई,
देखिय नयन परम प्रभु सोई,
अगुण अखंड अनंत अनादी,
जेहिं चिन्तहिं परमारथवादी।

उनके हृदयमें उत्तरोत्तर यही महत्त्वाकांक्षा बलवती चली कि हम अपनी आंखों से उन्हीं परम प्रभुका दर्श लाभ प्राप्त करें जो अगुण--गुणहीन है, जो अखण्ड है, अनादि है, अर्थात् जिसका कहीं आदि नहीं और अन अर्थात् अन्तरहित है और जिसका चिन्तन परमार्थिक करते हैं मुक्ति के आकांक्षी जिसके दिव्य दर्शनकी इच्छा रखते हैं।

नेति--नेति जेहि वेद निरूपा,
चिदानन्द निरुपाधि अनूपा,
शंभु विरंचि विष्णु भगवाना,
उपजहिं जासु अंशते नाना।

वेदोंने 'नेति--नेति' कह कर जिसका निरूपण किया है

जो ज्ञानानन्द की दिव्य राशि है, जो उपाधिसे परे और अनुपमेय है, जिसके अंश से अनेकशः शिव ब्रह्मा, और विष्णु भगवान् जन्म धारण करते हैं।

ऐसो प्रभु सेवकवश अहई,
भक्त हेतु लीला-तनु गहई,
जो यह वचन सत्यश्रुतिभाषा,
तौ हमारिपूजहिं अभिलाषा।

ऐसा ही-उपर्युक्त समस्त महत्ताओंसे संपन्न प्रभु भी अपने प्रिय भक्तों का कल्याण करने के हेतु को लेकर लीला-देह धारण करता है, ऐसा वेदोंका कथन आदि सत्य है, तो निस्सन्देह हमारी अभिलाषा-प्रभु-दर्शन की आकांक्षा सफल होकर ही रहेगी।

यहि विधि बीते बरस षट्-सहस वारि आहार,
संवत् सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर आधार।

इस प्रकार केवल जलका आहार ग्रहण करते हुए ६ हजार वर्ष व्यतीत हो गये और तत्पश्चात्‌वर्ती सात हजार वर्ष केवल समीर-वायुके आधारपर-केवल श्वासोछ्वास के बलपर व्यतीत कर दिये।

वर्ष सहसदश त्यागेउ सोऊ,
ठाढ़े रहे एक पद दोऊ,
विधि हरि-हर तप देखि अपारा,
मनु समीप आये बहुबारा।

दश हजार वर्षपर्यन्त वायुका आहार भी पूर्ण परित्यक्त

रहा और दोनों-राजदंपती एक पैर के आधारपर ही ख रहें-ब्रह्मा,विष्णु, शिव ने यह अगम्य तप देखकर कई बा मनु के पास आये।

मांगहु वर बहु भांति लुभाये,
परम धीर नहिं चलहिं चलाये,
अस्थिमात्र होई रहे शरीरा,
तदपि मनागमनहि नहिं पीरा।

उस त्रिमूर्ति ने वारंवार वर मांगने का प्रलोभन दिया परन्तु वे परम धीरमति थे, अतः अपने मुख्य ध्येय से विचलित नहीं हुए। उनका शरीर अस्थिमात्र शेष रह गया, फि भी उन्होंने कभी मानसिक पीड़ा का अनुभव नहीं किया।

प्रभु सर्वज्ञ दास निज जानी,
गति अनन्य तापस नृप-रानी,
मांगु-मांगु वर भई नभवानी,
परम गंभीर, कृपामृत सानी।

सर्वज्ञ प्रभुने उन तपस्वी राजदम्पती को अपना अनन्य दास-भक्त जानकर अति गंभीर और अनुग्रह अमृत से सिक दिव्य आकाशवाणी की—

“वर मांगो, वर मांगो”।

मृतक जियावनि गिरा सुहाई,
श्रवण-रन्ध्र होइ उर जब आई,
हष्ट-पुष्ट तनु भये सुहाये,
मानहुं अबहिं भवन ते आये।

मृतकों को भी सजीव बना देनेवाली वह दिव्य वाणी जब राजदम्पती के कर्ण-कुहरों के माध्यम से हृदय में जा पहुंची, तब उनके शरीर पूर्ववत् हृष्ट पुष्ट और सुन्दर बन गये मानो अभी घरसे आये हों।

श्रवण-सुधासम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात,
बोले मनु करि दंडवत्, प्रेम न हृदय समात।

श्रवण-रन्ध्रों में यह अमृतोपम वाणी पहुंचते ही मनुका समग्र शरीर प्रफुल्लित और पुलकायमान हो उठा, प्रेम-प्रवाह हृदय की सीमा को तोड़कर बह चला और उस अदृश्य शक्ति को दण्डवत्-प्रणाम कर बोल उठे।

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू,
विधि-हरि—हर—वंदित पदरेनू,
सेवत सुलभ सकल सुखदायक,
प्रणतपाल सचराचर नायक।

हे सेवक भक्त की कामनापूर्ति करने वाले कल्पवृक्ष और कामधेनु! हे वह महान् विभूति! जिसकी पद-रजकी वन्दना ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वर भी करते हैं, हे भक्त के लिये नित्य सुलभ और समस्त सुखों के दाता, हे प्रणत का पालन करने वाले और चराचर जगत् के नायक प्रभु!

जौ अनाथ-हित हमपर नेहू,
तौ प्रसन्न होइ यह वर देहू,
जो स्वरूप बस शिव मन माहीं,
जेहि कारण मुनि जतन कराहीं।

हे अनाथों के हितू-दीनानाथ ! यदि सचमुच आ हमपर स्नेहभाव है, तो प्रसन्न होकर मुझे यही वर दीजिये कि आपका जो दिव्य स्वरूप शिव के हृदय-नि में निरन्तर निवास करता है और जिसके दर्शनों की के लिये ऋषि-मुनिगण अहर्निश प्रयत्नशील रहते हैं।

जो भुशुण्डि मन मानस-हंसा,
सगुण-निगुण जेहि निगम प्रशंसा,
देखहिं हम सो रूप भरि लोचन,
कृपा करहु प्रणतारति मोचन।

जो काकभुशुण्डि के मन-मानस सरोवर में हंस के स निरन्तर विहार करता है, और वेद निर्गुण-कहकर जिस प्रशंसा करते है, उसी दिव्य स्वरूप का दर्शन आंख भर प्राप्त करने के लिये भाग्यशाली हों, हे भक्त-दुःख भंज ऐसी कृपा हमपर करें।

दंपति बचन परम प्रिय लागे,
मृदुल विनीत प्रेम-रस पागे,
भक्तवछल प्रभु कृपानिधाना,
विश्व-वास प्रकटे भगवाना।

भगवान् को उन राजदंपतीके विनम्र, विनीत और प्रे रसरंजित वचन परम प्रिय लगे-बहुत अच्छे लगे, अतः कृपानिधान, भक्तवत्सल प्रभु उनके सामने प्रत्यक्षतः प्रकट गये, जिनमें अखिल विश्व निवास करता है—जिनके क्रोड़ समग्र जगत् आनन्द क्रीड़ा-निरत है।

नील सरोरुह नीलमणि, नील नीलधर श्याम,
लाजहिं तनु-शोभा निरखि, कोटि कोटि-शतकाम ॥

वे भगवान् नीलकमल नीलमणि और नील-जल मेघ की तरह श्याम हैं। उनकी दिव्य शरीर शोभा को देख कर कोटि-कोटि शत-अरबों-असंख्य कामदेवोंकी संयुक्त शोभा भी मन्द होकर लज्जित हो उठती है।

शरद् मयंक बदन छबि सींवा,
चारु कपोल चिबुकदर ग्रीवा,
अधर अरुण, रद सुन्दर नासा,
विधुकर निकर विनिंदक हासा।

शरत् कालीन चन्द्र के समान उनका मुख-मण्डल तेजोमय सौन्दर्य की पराकाष्ठा पर पहुंचा हुआ है उनके परम सुन्दर कपोल-गाल हैं, सुन्दर ठोढ़ी है और शंख के समान मनोहर उनका कण्ठ है। अरुणिमारंजित अधरोष्ठ, सुन्दर दन्तावली और नासिका है। उनकी मनोहर मुसकान के समक्ष विधु-कर--निकर चन्द्रमाकी किरणों का समुदाय भी मन्द पड़ जाता है।

नव अंबुज अंबक छबिनीकी,
चितवनि ललित भावती जीकी,
भ्रुकुटि मनोज-चाप -छबिहारी,
तिलक ललाट पटल द्युतिकारी।

नवोत्फुल्ल अंबुज (कमल) के समान उनके अम्बक (नेत्रों) की शोभा परम रमणीय थी और दिव्य दृष्टि हृदय को

प्रसन्नता प्रदान करती थी। भ्रुकुटी मनोज-चाप (कामदे धनुष) की शोभा को मन्द कर रही थी और ललाट अंकित तिलक पटल (विद्युद्--रेखा) के समान दीप्तिमान थ

कुण्डल मकर, मुकुट शिर भ्राजा,
कुटिल केश जनु मधुप समाजा,
उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला,
पदिक हार भूषण मणि--जाला।

कानोंमें मकर की आकृति के कुंडल थे और शि मुकुट सुशोभित था कुटिल—घुंघराले केश भ्रमर समूह तरह दिखाई दे रहे थे। वक्षःस्थलपर श्रीवत्स का चि रुचिकर वनमाला और पदिक (हीरोंका) हार तथा मणि-मुक्ताओं के आभूषण अतीव शोभायमान प्रतीत होते थे।

केहरि कन्धर चारु जनेऊ,
बाहु विभूषण सुन्दर तेऊ,
करि-कर सरिस सुभग भुजदंडा,
कटि निषंग, कर शर-कोदण्डा।

सिंह के समान प्रभु के विशाल कन्धे थे और यज्ञोपवीत चारुता निराली थी। बाहुओं के आभूषण भी सुन्दर दीख रहे थे। करि-कर (हाथी की सूंड) के समान सुभग भुजदण्ड थे, कमर में निषंग (तरकश) बंधा हुआ था और हाथोंमें धनुष-बाण सुशोभित था।

तड़ित-विनिन्दक पीतपट, उदर रेख वर तीनि,
नाभि मनोहर लेत जनु, यमुन-भँवर छबिछीनि।

उनका पीत-पट (पीला वस्त्र) विद्युत्-कान्ति को मलिन

कर रहा था। पेटपर तीन सुन्दर रेखाएं लक्षित थीं और नाभि इतनी मनोहर थी उसके समक्ष यमुना-नदी के भँवर की छबि भी क्षीण हो रही थी।

पद राजीव वरनि नहिं जाहीं,
मुनि-मन-मधुप बसहिं जिनमाहीं,
वाम-भाग शोभति अनुकूला,
आदिशक्ति छबिनिधि जगमूला।

उन चरण-कमलों का तो वर्णन करना ही संभव नहीं, जिनमें मुनिवरों का मानस-भ्रमर सदैव निवास करता है। उनके वाम-पार्श्वमें जगत् की मूलाधार शोभानिधि आदि शक्ति विराजमान थीं।

जासु अंश उपजहिं गुणखानी,
अगणित उमा—रमा—ब्रह्मानी,
भ्रकुटि विलास जासु जग होई,
राम-वाम दिशि सीता सोई।

जिस आदिशक्ति के अंश से गुण राशि अगणित उमा, लक्ष्मी, और ब्रह्माणी (सरस्वती) उत्पन्न होती हैं, यह जगत जिसकी भ्रकुटियों का विलास मात्र है, वही जगदम्बा सीता राम के वाम भागमें स्थित थी।

छबि-समुद्र हरि रूप विलोकी,
इकटक रहे नयनपट रोकी,
चितवहिं सादर रूप अनूपा,
तृप्ति न मानहिं मनु-शतरूपा।

सौन्दर्य--सिन्धु भगवान् के उस दिव्य रूपको देखकर
नेत्र अपलक हो गये— वे उन्हें एक टक देखते रहे।
अनुपम रूपमाधुरी का पान करते हुए भी वे राजदम्प
और शतरूपाका मन तृप्तिका अनुभव नहीं कर रहा
वे भगवान् को अतृप्त भावसे अपलक देखते रहे।

हर्ष–विवश तनु–दशा भुलानी,
परे डण्ड इव गहि पद पानी,
शिर परसे प्रभु निजकर-कंजा,
तुरत उठाये करुणा—पुंजा ।

अतिशय प्रसन्नता के वशीभूत होकर वे दम्पती
शारीरिक स्थिति को भी भूल गये और हाथों से प्र
चरण पकड़ कर दण्डवत् (डण्डे की तरह) गिर पड़
गये। भगवान् ने उनके शिरपर अपने कर–कमल का
किया--उनके शिरपर हाथ रखा और करुणा--पुंज प्रभुने
तुरन्त उठा लिया।

बोले कृपानिधान प्रभु, अति प्रसन्न मोहिं जानि,
मांगौ वर जो भाव मन, महादानि अनुमानि।

तदुपरान्त करुणा वरुणालय प्रभु कहने लगे—
अत्यन्त प्रसन्न जान कर और महादानी मानकर जैसा
वर मांग लो।

सुनि प्रभु वचन जोरि युग पानी,
धरि धीरज बोले मृदु बानी,

नाथ देखि पद-कमल तुम्हारे,
अब पूजे सब काम हमारे ।

भगवान् यह वचन सुनकर दोनों हाथ जोड़कर धैर्यपूर्वक वे—राजदम्पती कोमल वाणीसे कहने लगे—हे नाथ ! आप के चरणारविन्दों का दर्शन पा कर हमारी सभी मनोकामनाएं फलीभूत हो गई हैं

—क्रमशः

* * *

'सम्पदा'

हिन्दीमें अर्थ शास्त्रीय साहित्य का पर्याय बन गई है ।
सम्पदा हिन्दी की सबसे पुरानी आर्थिक पत्रिका है ।
सम्पदा मेंसार्वजनिक और निजी उद्योग विषयक संतुलित
और युक्ति संगत दृष्टिकोण
सम्पदा के विशेषांक अनुपम होते हैं ।
सम्पदा के स्थायी स्तंभ-योजना, कृषि, उद्योग, श्रम, परिवहन, कोयला, बिजली, बैंक, बीमा, सर्वोदय आदि
सम्पदा विविध राज्योंद्वारा शिक्षालयों के लिए स्वीकृत है ।
सम्पदा छात्रों, कालेज के प्राध्यापकों के लिए आर्थिक
विश्व कोष है ।
ज्ञान वर्द्धक, नवीनतम आर्थिक जानकारी से युक्त 'सम्पदा' के आज ही ग्राहक बनिये । वार्षिक मूल्य ८ रु. ५० न. पै.
नमूनांक के लिए ६० न. पै. भेजें ।
व्यवस्थापक—सम्पदा २८/११ शक्ति नगर दिल्ली ६.

RAMTIRTH
REGD. SPECIAL
Ramtirth
SHRI RAMTIRTH YOGASH
BOMBAY - INDIA

रामती
ब्राह्मी तै
स्पेशल नं. १
(रजिस्टर्ड)

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल [स्पेशल नं. १] का महत्व और ल

विगत २० वर्षों से यह तेल अनेक महत्व पूर्ण वनस्पति (जड़ी बूटियों) से निर्मित किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु ( के दिन) वर्षा ऋतु (बरसात के दिन) हेमन्त ऋतु (ठंडी दिन) में स्वास्थ्य के लिये सर्वथा उपयोगी रहे, ऐसी शा विधि से तैयार किया जाता है। रामतीर्थ ब्राह्मी ते वनौषधीय मधुर सुगंध होने से उपयोग करने वाली महिल तथा पुरुष वर्ग हमेशा के लिये इसे अपना लेते हैं, और लोगों को महत्व बताकर व्यवहार में लाने के लिए सला देते हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल युवक तथा वृद्धों के लिए उपयोगी नहीं अपितु छोटे से छोटे बच्चे तक के लिए ला

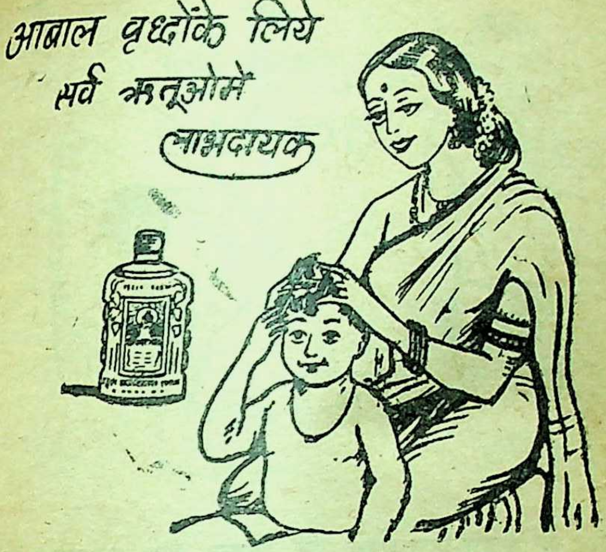

दायी है ऊपरोक्त रेखाचित्र में माता अपने बच्चो के सिर में रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की मालिश करके सौन्दर्य, स्मरण शक्ति वृद्धि तथा आंखों की दृष्टि अच्छी बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल सिर के बालों के लिये ही नहीं है, किन्तु शरीर मालिश के लिये भी लाभ दायक है। आगे के रेखा चित्र में आप देख सकते हैं कि लोग अपने हाथों से तैल मालिश कर सारे शारीरिक अवयवों को नीरोग एवं सशक्त बना रहे हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के १० मिनट पहले सारे शरीर तथा सिर की तैल मालिश १० से २५ मिनिट तक, अवश्य करें। ऊंचाई और आयु के हिसाब

मालिश करनेसे स्फूर्ति बढ़ती है
और
रक्त शुद्धिके लिये
अनुकूल है।

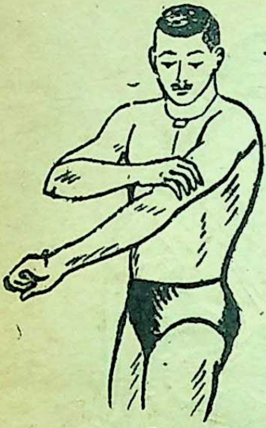

दण्ड मा-लिश

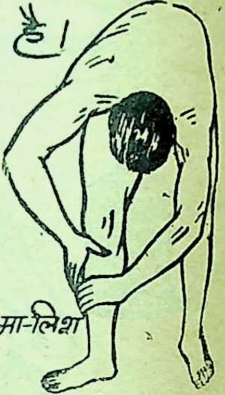

पिण्डरी मा-लिश

से शरीर का वजन कम होने से वजन बढ़ जायगा। अधि वजन होने की हालत में आहार परिवर्तन के साथ २ रामती ब्राह्मी तेल का प्रयोग करने से आवश्यक परिमाण में रहेगा।

आप आगे के रेखाचित्र को सूक्ष्म दृष्टि से देखिये। हा को, पेट को तथा पीठ के ऊपर मालिश करने के सुलभ तरी बताए गये हैं। अनेक महिलाओं तथा पुरुषों का विचा है कि अपने हाथों से तैल मालिश अच्छी प्रकार से नहीं क सकते हैं। दूसरों से करानी पड़ेगी। यदि दूसरों से मालि कराने की सुविधा होवे तो अवश्य करा सकते हैं। सुविधा होने पर आलस्य, शंका, और शर्म को छोड़कर अपने हा से हर दिन मालिश करने की आदत डालें, किसी कारण

## योग द्वारा तन मन का विकास कीजिए

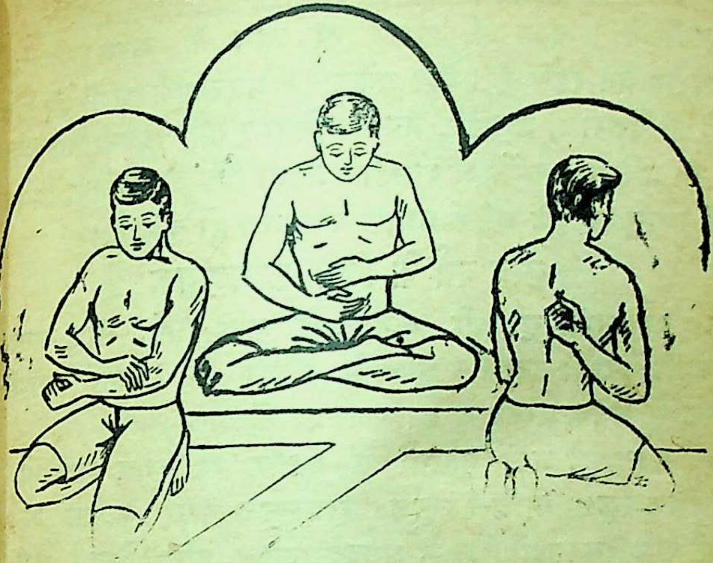

यदि हर रोज मालिश न हो सके तो सप्ताह में १ से ३ बार रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य मालिश करें या करावें।

## विशेष सूचना और लाभ

आपने ऊपर छपे सर्व रेखा चित्रों को देखकर यह समझ लिया ही होगा कि रामतीर्थ ब्राह्मी तैल की मालिश से आबाल वृद्ध-बालक, माता, (महिला) तथा पुरुष वर्ग कितने आरोग्य-मय सुडौल शरीर वाले तथा आकर्षक मुख मुद्रा वाले और कितनी सुन्दर केशभूषा वाले हैं। इतना ही नहीं हरेक अवयवों को हृष्ट-पुष्ट बनाने में सामर्थ्यवान बन गये हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के प्रयोग से गहरी नींद, स्मरण शक्ति की वृद्धि, बाल काले, घने तथा लम्बे बनाने में अनुकूल है तथा इससे बालों का झड़ना बन्द कर गंजा पन दूर करने में लाभ

दायी है। कान में डालने से कान के सूक्ष्म नीरोग बने रहते हैं। ऐसे अनेकानेक महत्त्वपूर्ण लाभों की से ही वैद्यराज, डाक्टर, प्रख्यात विद्वान् वर्ग, राजनीतिज्ञ अन्य प्रतिष्ठित वर्गों से रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के गुणों के में स्वानुभव पूर्ण अनेक प्रमाण पत्र प्राप्त हो चुके हैं।

## छात्र वर्ग के लिये लाभदायक

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी ऋषि--मुनि, साधु-- त्यागी--वैरागी उदासीन वृत्ति के लोगों को रामतीर्थ तेल से अनेक प्रकार के लाभ अवश्य ही प्राप्त होंगे।

महत्वपूर्ण जड़ी बूटियों के कारण से छात्र--छात्रा (लिक स्कूल, मिडिल स्कूल, हायस्कूल तथा कालेज को रामतीथ ब्राह्मी तेल से अवश्य लाभ प्राप्त होगा।

। मस्तिष्क शान्त रहेगा। स्म शक्ति बढ़ जायेगी। शरीर मालिश से शरीर में स्फूर्ति स्नायु संस्थान तथा रस ग्रन्थियों में शक्ति का संचार हो

वैसे तो त्वचा की कान्ति, रक्त परिभ्रमण के साथ स्वस्थ रहना, चर्मरोग निवारण, शारीरिक जोड़ों में समस्त शरीर में समशीतोष्णता आदि अनेक लाभ प्राप्त होता। यदि आपने अभी तक रामतीर्थ ब्राह्मी तेल उपयोग कर लाभ नहीं लिया हो तो आज ही अपने शह अथवा गांव के दवा बेचने वाले अथवा जनरल मर्चेन्ट खरीद करें। दो साइजों में प्राप्त है।

न मिलने पर निम्न पते पर लिखें।

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.

(विजयनगर साम्राज्य संस्थापनाचार्य)

# श्री स्वामी विद्यारण्य

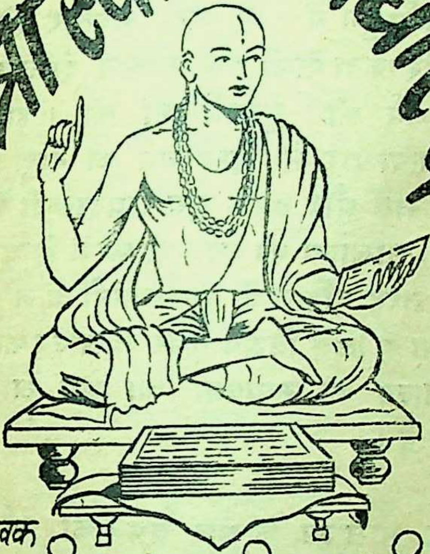

लेखक
श्री. कृपानन्दजी बसवानी

महात्माओं के जन्म सहेतुक होते हैं। जब जगत में धर्म का ह्रास होता है तब धर्म के उद्धार के लिये महात्मा जन्म लेते हैं। इसलिये उनको अवतार पुरुष कहते हैं। भगवान् ही महात्माओं के रूप में अवतार लेते हैं। जब दुनिया में अधर्म फैलता है अनाचार बढ़ता है तब भगवान् अवतार लेकर धर्मोद्धार करते हैं। पुराण और इतिहास की ओर दृष्टि डालने से यह बात सत्य समझ में आती है। जब

त्रेतायुग में रावणादि राक्षसों के उपद्रव बढ़े तब भगवा रामावतार से दुष्ट शक्ति का निग्रह किया। द्वापर यु कृष्ण भगवान् के रूप में अवतार लेकर दुष्ट निग्रह और की रक्षा की। कलियुग में भी ऐसे अवतार हो गये भारत में जब नास्तिकता फैली तब भगवान् शंकराचार्य अवतार लेकर धर्म की पुनर्स्थापना की। इसी प्र मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दु धर्म का नाश होने तब शिवाजी महाराज और उनके गुरु रामदासजी के अव हुये। महा मराठा साम्राज्य की स्थापना करके हिन्दू धर्म रक्षा की। इसी तरह दक्षिण में मुसलमानों के अत्याचार हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये विजय नगर साम्राज्य की स्था की। इस साम्राज्य की स्थापना का श्रेय श्री स्वा विद्यारण्यजी को है।

विजय नगर साम्राज्य के धन वैभव की कई विदे मुसाफिरों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। पुर्तगाल के यात्रि ने इसके वैभव और संपत्ति का वर्णन खूब किया है। जमाने में ऐसा धन संपन्न राज्य दूसरा कोई न था। वह बलवान राज्य था। इस राज्य की राजधानी विजय नगर नया, सुसंस्कृत ढंग का नगर था। इस नगर का कला वैभ अपूर्व था। उसके खंडहर आज भी देखने योग्य हैं। आज खंडहरों को देखकर देश विदेश के यात्री आश्चर्य चकित हो जाते हैं। यह खंडहर मैसूर राज्य के अंतर्गत, बल्लारी जि में तुंगभद्रा नदी के तट पर हैं। इसकी कलाकृति देखने

लिये हजारों यात्री हर साल आते हैं, और उसे देखकर मन्त्रमुग्ध हो जाते हैं। इस जगह को आजकल "हंपा या पंपा" कहते हैं।

पंपा पुरातन प्रसिद्ध तीर्थस्थान है। पंपा क्षेत्र का वर्णन पुराण में किया है। यह अनादि काल से पवित्र स्थान माना जाता है। उस समय में इस पवित्र पंपाक्षेत्र के नजदीक एक ब्राह्मणों की बस्ती थी। वहां के ब्राह्मण कर्मनिष्ठ और तपोनिष्ठ थे। वहां के एक घर में 'मायण' नामक एक तपोनिष्ठ ब्राह्मण रहता था। उस की पत्नी का नाम श्रीमती देवी थी। वे दंपत्ति बड़े भक्त थे। इनके यहां १२६८ ई. में एक बालक का जन्म हुआ। माता पिता ने उसका नाम माधव रखा और बहुत प्रेम से उसका लालन पालन करने लगे।

बालक माधव बहुत सुन्दर था। वह अपनी बाल लीला से सबका मन बहलाता था। यह देख कर माता पिता को आनन्द होता था। मायण ने अपने पुत्र का ब्राह्मण धर्म के अनुसार तीन साल की उम्र में चौल (केश मुंडन) कर्म किया और पांचवें वरस में उपनयन संस्कार करके (ब्रह्मोपदेश) अक्षराभ्यास करवाया। माधव बचपन में ही बहुत समझदार थे। कठिन से कठिन विषयों को बहुत जल्दी सीख लेते। उसने पांचवें और छटे साल की आयु में ही अमर कोश और भगवान के कई स्तोत्रों को कंठपाठ किया था। अपने पुत्र की कुशाग्र बुद्धि देखकर माता पिता के आनन्द का ठिकाना न रहता था।

वहां ब्राह्मणों की बस्ती में एक छोटा सा गुरुकुल पहले माधव उसी गुरुकुल में विद्या सीखने लगा। पर कुछ ही समय में वहां की विद्या सीख लिया। पर उसके की तृष्णा न बुझ सकी। उसने वेद वेदांतों को सीखने इच्छा अपने पिता के सामने प्रकट की। मायण को भी पुत्र को प्रचुर विद्या शिक्षण दिलाने की आशा थी। पास में बड़े गुरुकुल न थे। इसलिये वह श्रेष्ठ गुरु खोजने लगा।

माधव के बाद उस दम्पति को दो बेटे हुये। पहले नाम सायण और दूसरे का नाम भोगनाथ था। और लड़की भी हुई। वे तीनों लड़के माता पिता को त्रीमूर्ति समान थे मायण माधव को वेद वेदान्त सिखानेवाले गुरु खोज में घुमा फिरा करते थे।

उस जमाने में उत्तर में जैसे काशी नगर था उसी त दक्षिण हिन्दुस्थान में कांची नगर था। काशी के जैसे विद्या और ज्ञान का धाम बन गया था। यह नगर विद्वा लोगोंसे भरा था। वे विद्वान अपने गुरुकुल में अनगिनत बटुओं को वेद वेदान्त और शास्त्र के तत्वार्थ को सिखा हिन्दू संस्कृति की रक्षा करने के काम में लग गये थे। नग के कोने-कोने में वेद का सुश्राव्य पाठ सुनाते थे। दक्षि के सभी देशों से ज्ञान पीपासु छात्र लोग वहां आते थे। ज्ञा प्राप्त करके लौट जाते थे।

वहां के विद्वानों में बिल्वारण्य के शांर्गपाणि के पुत्र सर्वज्ञ विष्णुशर्मा मशहूर थे। वह सर्व वेद वेदान्त और शास्त्र पारंगत थे। मायण माधव को विष्णुशर्मा के यहां ले गया और उनके सुपूर्द कर खुशीसे घर लौट आया। माधव बहुत श्रद्धा से गुरु सेवा करते थे और विद्या भी सीखते थे। माधव की तीव्र बुद्धि देखकर विष्णुशर्माने संतुष्ट होकर सर्व विद्या सिखाई। उसके बाद माधव ने और दूसरे तीन गुरुओं के पास जाकर विद्या सीखी। उन गुरुओं के नाम क्रमशः शंकरानंद, श्रीकंठनाथ और भारती तीर्थ थे। इनके यहां गुरु सेवा करके बहुत श्रद्धा भक्ति से विद्या प्राप्त करके सर्व विद्या में पारंगत हो गये।

माधव केवल कुशाग्र बुद्धि ही न था बल्कि बहादुर भी था और महा धीरजवाला आदमी था। जब वह कांची में विद्याभ्यास करता था उस समय की एक घटना उल्लेखनीय है।

संध्या होनेवाली थी। आकाश में लालिमा छाई हुई थी। सूर्य भगवान् पश्चिमाँबुधि के समीप जा रहा था। चिड़ियाँ कलरव करती अपने-अपने घोंसले की ओर उड़ रही थीं। संध्या बहुत सुहावनी दीखती थी। उस समय माधव अपने साथियों के साथ कांची नगर के बाहर मैदान में शीतल वायु में टहल रहे थे। वे संध्या की सुंदरता में इतने तल्लीन होकर चले जाते थे। इस तल्लीनता में उनको यह बात भी न समझ आई कि साथी पीछे पड़ रहे हैं। एकाएक उनकी

तल्लीनता टूट गयी। उसको एक हृदय विदारक दृश्य दी पड़ा। चार-पांच मुसलमान इकट्ठे होकर एक हिन्दू नारी पकड़कर ले जाने के लिये घसीट रहे थे। वह अबला रक्षा के लिये चिल्ला रही थी और मुसलमानों से अपने छोड़ देने की प्रार्थना कर रही थी पर उन पत्थर अत्याचारियों के मन में उस प्रार्थना का प्रभाव तनिक भी हुआ। वह रमणी हताश होकर भगवान् की प्रार्थना क लगी। उसका रुदन अरण्य रुदन बन गया था। वह निराश हो गई थी फिर भी उनसे छुटकारा पाने के उसका प्रयत्न तो जारी ही था। वह रमणी उनसे अर्ज कर रही थी कि आप मुझे अपनी बहन समझकर छोड़ दो पर उन कामांधों के कान तक प्रार्थना न पहुँच सकी। वे अबला को जबरदस्ती से घसीटकर लिये चले जा रहे थे।

यह दृश्य देखते ही माधव अपने आपको न संभ सका। उसके शरीर के रोम-रोम में आग निकलने लगी आंख में बिजली कौंध गई। वह क्रोधवश सब भूल गया। अकेले ही बिना शस्त्र से दौड़ कर उन दुष्टों पर टूट पड़ा। उसके शरीरमें दस आदमियों का बल समाया हुआ था। उस सबके मुखपर जोर २ से एक-एक लात मारी। एक के हा से एक कटारी छीन ली और उससे उनके साथ लड़ने लगा। यह अचानक घटना से वे दुर्वृत्त डर गये। इतने में माध के साथी भी वहां आ पहुँचे। यह देखकर वे उस नारी वहीं छोड़कर भाग लिये। इसी तरह उसने एक नारी मान की रक्षा की।

उस समय में इसी तरह मुसलमानों के अधिकार मद से अंधे होकर देश भर में अत्याचार मचे थे। उनका विरोध करनेवाला भी न था। निर्भाग्य हिन्दू महिलाओं का मान खतरे में पड़ा था। वे हिन्दू स्त्रियों को जबरदस्ती से मान हरण करके मतांतर करने का कार्य कर रहे थे। यह नीच वृत्ति देखकर माधव के मन में मुसलमानों की इस नीचता पर क्रोध आया। उसने इस नीचता का नाश करने का प्रण अपने मन में किया। यह घटना देख कर उसके हृदय में जो देश प्रेम और राष्ट्राभिमान सुप्त था वह जागृत हो गया। उसका धर्माभिमान भी सचेत हो गया। वह हिन्दू धर्म की रक्षा करने का निश्चय किया। यह घटना अंत तक उसके मन में जीवित रहकर सदा उसको जागृत करती रहती थी। उसके हृदय में वह स्मरण मार्ग दिखानेवाला दीपक बन गया था।

माधव कांची नगर में सकल विद्या को प्राप्त करके घर लौट आया। विद्या से परिपूर्ण पुत्र को देख माता-पिता के आनन्द का ठिकाना न रहा। तब मायण भी बूढ़ा हो गया था। उसके शरीर में गृहस्थी के कारबार चलाने की शक्ति न बची थी। इसी कारण उसके घर में गरीबी का तांडव नृत्य हो रहा था। माता भी बूढ़ी हो गई थी। अब घर के सब कारबार चलाने का उत्तरदायित्व उनके जेष्ठ पुत्र माधव पर ही पड़ा।

मायण ने अपने पुत्र का विवाह करके घर की जिम्मेदारी को सौंप देने का निश्चय किया। वह एक कुल-शील संपन्न

कन्या को खोजने लगा। पर उसको इस कार्य में बहुत न सहना पड़ा। चालुक्य राजा के मंत्रीने माधव की वि की प्रशंसा सुना थी। उसकी एक विवाह योग्य पुत्री उसने अपनी पुत्री का विवाह माधव के साथ किया। मा गृहस्थी बनकर घरकी जिम्मेदारी सँभालने लगा और पिता की सेवा शुश्रूषा करने लगा।

कुछ ही दिन में मायण स्वर्ग सिधार गये और मा भी वैधव्य के दुख में छटपटाते हुये पति का पीछा कि घर में दिनों दिन गरीबी बढ़ी जा रही थी। जिससे संसार बंधन से कोई महापुरुष भी हताश हो बैठते हैं। संसार के बंधन से छुटकारा पाये कोई महाकार्य नहीं सकते हैं। माधव को भी संसार के बंधन से छुटकारा की इच्छा हुई। इसलिये उसने घर को त्याग करके दूर जा भगवान् के ध्यान में जीवन बिताने का निश्चय किया।

सन् १३३१ ई. माधव संसार त्याग करके पंपा में आया। वह वहां भुवनेश्वरी देवी की आराधना करने ल व्रत-नियम योग से शरीर को कांटा बनाया। भुवनेश्वरी कृपा पाने के लिये घोर तप करने लगा। पर इसी तरह बा वर्ष बीतने पर भी देवी प्रकट न हुई। यह देखकर भी मा हताश न हुआ और भी लगन से और भी घोर तप क लगा। देवीने अंत में संतुष्ट होकर दर्शना दी। और प्र होकर कहा कि तुझे इस जन्म में मुक्ति नहीं मिलेगी अ

जन्म में मिलेगी। यह बात कहकर देवी अंतर्धान हो गई।

ज्ञानी माधव देवी की बात का मर्म समझ गया। वह शृंगेरी चला गया। जो पहले माधव के विद्यागुरु थे वह शंकरानंदजी शृंगेरी शारदा जगद्गुरु पीठ पर विराजमान थे। माधव ने शंकरानंदजी से संन्यास ग्रहण किया। शंकरानंदजीने यों सोचा कि ऐसे एक विद्वान् और ज्ञानी को इस जगद्गुरु पीठ के उत्तराधिकारी बनाने से इस पीठ की भी वृद्धि होगी धर्म का भी उद्धार होगा। यों सोचकर शंकरानंदजीने माधव को शृंगेरी शारदा जगद्गुरु पीठ का उत्तराधिकारी बना लिया और उसका नाम विद्यारण्य रखा। उस दिन से माधव विद्यारण्य नाम से प्रख्यात हो गया।

शंकरानंदजी समाधिस्थ हो गये। माधव शृंगेरी शारदा पीठ का गुरु बन गया। वहां विद्या और वेदाध्ययन का खूब प्रबंध किया।

विद्यारण्यजी शृंगेरी पीठ के गुरु बने, तो भी वे अधिक काल पंपा क्षेत्र में ही रहते थे। भुवनेश्वरी देवी के मंदिर के पास ही एक कुटि बनाकर उसमें अपने शिष्यों के साथ रहते थे। वे अपने शिष्यों को पारमार्थिक के साथ-साथ देश-प्रेम, धर्म श्रद्धा का भी बोधन कराते थे। उनके मन में यह इच्छा घर बना कर बैठी थी कि मुसलमानों के दुष्टाचारों को रोकने के लिये और हिन्दू धर्म की रक्षा के लिये एक बलवान् हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करनी चाहिये। मुसलमान हिन्दू राष्ट्रपर ही नहीं हिन्दू धर्म पर भी आक्रमण कर बैठे थे।

मुसलमानों के राज्य में हिन्दु लोगों के कष्ट का ठिका था । यह सब मुसलमानों का अत्याचार दे विद्यारण्यजी के मन में ग्लानि होती थी । वे अपनी आ देवी भुवनेश्वरीजी से यह प्रार्थना करते थे कि हिन्दु शरीर में मुसलमानों के अत्याचार को रोकने की शक्ति और हिन्दू धर्म का पुनरुद्धार करने के लिये मुझे शक्ति

विद्यारण्यजी अपने आश्रम में चुप न बैठ सके। वे क्षेत्र के चारों ओर बहुत दूर तक घूम-घूम कर जन देशप्रेम, मुसलमानों के दुराचारों के विरुद्ध प्रतिभटना, एकता का प्रचार करने लगे। इससे जो लोग मुसलमानों नाम सुनते ही डरते थे, वे डरना छोड़ दिये और धै उनके अत्याचार का विरोध करने लगे। धैर्य से अत्या के विरुद्ध लड़ने लगे। दिनों-दिन हिन्दू लोगों के देश और धर्म रक्षा की प्रगति देखकर विद्यारण्यजी के शरी शक्ति और उत्साह बढ़ गया। वे अपने समय का अधिक राष्ट्र और धर्म शक्ति के उद्दीपन करने में व्यय लगे। वे राष्ट्रभक्ति के प्रचार के लिये दक्षिण भारत बहुत से भाग में चक्कर लगाये। सभी जगह में उनको आ और उत्साह और प्रेम का स्वागत मिलता था।

o o o o

२

मुसलमानों के अत्याचार चारों ओर फैल गये थे। अत्याचारों से लोगों में हाहाकार मच गया था। उन

अत्याचार का ठिकाना न रहा था। वे विजय मद से पागल बन गये थे। उनके मन में बुरे-भले का भी ख्याल न था। हिन्दू, अपने आपस की फूट से उनके साथ सामना करने की शक्ति को खो बैठे थे। भारत के अधिकाधिक भाग मुसलमानों के हाथ लग गये थे। सभी जगह में उनको विजय ही विजय स्वागत करती थी। इस विजय से मुसलमान अंधे होकर अत्याचार कर रहे थे।

विद्यारण्यजी इस अत्याचार का नामावशेष करने के लिये अटल परिश्रम करते थे। एक दिन वे पंपा क्षेत्र के समीप के गांव से अपने शिष्यों के साथ आश्रम की ओर आ रहे थे। वे उस गांव के लोगों का मन परिवर्तन कर उनसे राष्ट्र रक्षा का प्रमाण पाकर प्रफुल्ल वदन से आ रहे थे। उनको एक जंगल से होकर आश्रममें पहुँचना पड़ता था। वे जंगल के मार्ग में होकर आ रहे थे तब उनको एक आश्चर्य का दृश्य दीख पड़ा।

दोपहर का समय था। धूप बहुत तेज थी। एक विशाल पीपल वृक्ष की विशाल छाया के नीचे दो तरुण व्यक्ति बेफिक्र सो रहे थे। यह आश्चर्य की बात है कि एक सांप उनमें से एक व्यक्ति के सिर के पास फन फैलाकर खड़ा था। विद्यारण्यजी समझ गये कि इन लोगों को देवी ने धर्म रक्षा कार्य के लिये भेजा है। विद्यारण्यजी को देखते ही सांप वहां से हट गया। वे जवान लोग विद्यारण्यजी की पादुका

की आहट सुनकर जाग पड़े। विद्यारण्यजी उनके पास

वे दोनों सुन्दर नव जवान थे। उनके चेहरे पर रा था। उनके मुख कान्तिमान थे और शरीर सुदृढ़ था। पास एक महान तेजस्वी संन्यासी को देखकर उन्होंने वंदना की और आशीश देनेकी प्रार्थना की। विद्यार ने उनको आशीर्वाद देते हुये कहा "दीर्घायुश्यमान प्रतापवन भव! बेटे! तुम्हारा परिचय जानना चाहता

"स्वामिन! हम दोनों भाई-भाई हैं। मेरा ना हरिहरराय और मेरे भाई का नाम बुक्कराय। हम मंगलनिलय नगर के राजा संगमराय के बेटे हैं। हमारे पि हम पांच बेटे हैं। हम दोनों ओरंगल में थे। ओरंगल राजा प्रतापरुद्र के यहां मैं सेनाधिपति और बुक्कराय धिकारी था। देहली के बादशाह तुगलकने ओरंगल पर आक्रमण किया। उसकी असंख्य सेना के सामने ह अल्प संख्या को हार खानी पड़ी। ओरंगलमुसलमानों के में आ गया। हम उसके बाद द्वार समुद्र में जाकर व राजा बल्लालराय के यहां सेनापति होकर रहते थे। मुसलमानों ने उस पर भी आक्रमण करके प्राप्त किया। हमारा प्राण तो किसी तरह बचा है। उससे अब प्रयो नहीं है। हम बिना आश्रय से पहाड़ों और जंगलों में मारे मारे फिर रहे हैं। इसी तरह हमारा जीवन व्यर्थ बन है।

"आप की इच्छा अब क्या है?"

"हमारी इच्छा तो बहुत है। पर हमारा बदनसीब हमारा पीछा कर रहा है। हमारे हृदय में मुसलमानोंके दुष्टाचार के विरुद्ध दावानल दहक रहे हैं। ओरंगल के बाद हमारे द्वारसमुद्र जाने का कारण भी वही था। उस राजा के आश्रय से सेना को बलवान् करके मुसलमानों से बदला लेने को चाहते थे। पर हमारी आशा निराशा हो गई। वहां भी हमारी हार हुई। अब भी समय मिलते ही मुसलमानों को बदला लेने का मौका ढूंढ़ते फिरते हैं। यही हमारा पूर्ण परिचय है। हम आपके परिचय पाने को चाहते हैं। कृपाकर अपना परिचय दीजिये।"

'मैं एक सन्यासी हूं। मेरा नाम विद्यारण्य है। यहां से कुछ दूरी पर पंपा क्षेत्र है। वहां मैं एकपर्ण कुटि में रहता हूं। मेरा संकल्प भी यह है कि मुसलमानों के दुष्टाचार से लोगों को छुड़ा करके भारत की सनातन संस्कृति को पुनरुज्जीवन करना है। मैं यही कार्य में प्रयत्नशील हूं। लोगों के मन में हमारा धर्म ओर संस्कृति को जागृत करना ही मेरा कार्य है। मेरे इस कार्य के लिए तुम्हारे जैसे लोगों की आवश्यकता थी। मैं इस कार्य के लिए योग्य वीरों की खोजमें था, आज भुवनेश्वरी की कृपा से मिल गये।'

'स्वामिन! आप के दर्शन से हमारा जन्म पवित्र हुआ। आप की महिमा को यहां के आस-पास गांव वालों के मुंह से सुन चुके हैं। हम आप के दर्शन के लिए आतुर थे। दैव योग

से आज आप से भेंट हुई । आप के दर्शन से हमें रेतली पर के मार्ग में प्यास के मारे मरने वालों को पानी मि जैसा हुआ ।”

‘अब तुम कहां जाने वाले हैं ।

‘हमें मालूम नहीं । आश्रय के लिए ढूंढ़ते २ फिर हम आश्रय चाहते हैं ।’

‘तो हमारे आश्रम चलिए । अब देश को आप की की जरूरत बहुत है । अब हम को मुसलमानों का करने का मौका जल्दी मिलने वाला है । यह खबर मि कि दिल्ली के बादशाह तुगलक ने आनेगोंदी राज्य पर मण करने के लिए तैयारी कर रहे हैं । अवश्य शी उस पर आक्रमण होने वाला हैं । तब आप उनको क्षात्रतेज का प्रभाव दिखाएं ।’

वे दोनों वीर, विद्यारण्य जी के साथ आश्रम पहुं स्वामीजी ने उनको वहां ठहरने का प्रबन्ध करवाया । दिन आनेगोंदी राजा को एक पत्र लिखा । उसमें उन्होंने से आकर उनसे मिलने का आग्रह किया । आनेगोंदी राजा जम्बुकेश्वर ने स्वामी जी का पत्र मिलते ही मंत्री महाशय रामराय को स्वामी जी के पास भेजा । उनके आने में कुछ कठिनाई थी । इसलिए स्वामीजी से क्षमा कर एक पत्र भी साथ भेजा । आनेगोंदी के सब राजा प्रजा विद्यारण्य जी की महिमा से परिचित थे । मंत्री राम गुरु जी का वन्दन करके आसन पर बैठा । हरिहर और बु

राय भी वहां उपस्थित थे। गुरुजी ने आनेगोंदी राज्य की प्रजा के सुख विषयक पूछते हुये कहा।

'देश में राजा और प्रजा कुशल से हैं क्या? कोई विशेष वार्ता है?'

'आपके अनुग्रह से राजा और प्रजा कुशल हैं। पर यह खबर सुन कर प्रजा घबरा गई हैं कि दिल्ली का बादशाह आनेगोंदी पर चढ़ाई करने के लिये निकला है।'

'आक्रमण का सामना करने के लिए आप लोग तैयारी किये हैं या नहीं?

'तैयारी तो चली है पर भरोसा नहीं है कि उनकी अनगिनित सेना के साथ लड़ कर हम जीत सकते हैं।

हार और जीत किसी के वश में नहीं रह सकती। केवल संख्या बल से जीत न पा सकते। महाभारत का युद्ध इसका उदाहरण है। धर्म के पक्ष में है जीत। ऐसे दृढ़ मन से काम करना चाहिए। इसमें घबराने की कोई बात नहीं। हम आज आप को मुसलमानों से लड़ने के लिए दो वीरों को देने के लिये बुलवाये हैं।

'आप की कृपा ही हमारी रक्षक है। हमें भरोसा है कि आप के अनुग्रह से सब भला ही होगा? आप का आशीश सदा हमारे देश की रक्षा करे। 'वे वीर कौन हैं?

विद्यारण्य जी ने उन दोनों की ओर संकेत करते हुए कहा ये ही वे दोनों वीर हैं। इन से आप को इस बाकी के युद्ध में भारी लाभ होगा। ये युद्ध शास्त्र में प्रवीण हैं। ये

पहले ओरंगल और द्वार समुद्र में सेनाधिपति थे। आप को सेना संचालन सौंप कर बेफिक्र हो सकते हैं।

'स्वामिन्! आप के अनुग्रह से ही हिन्दू राज्य जी रह सकते हैं। आपका आशीर्वाद सदा हमारी रक्षा करता मंत्री रामराय ने गुरुजी के चरण रज शिरोधारण उनकी आज्ञा पाकर उन वीरों को साथ ले अपने राज्य के चले।

स्वामी जी की आज्ञानुसार आनेगोंदी के राजा जंबुके ने गुरु से अनुग्रहीत उन दोनों वीरों को सेना संचालन जिम्मेदारी सौंप दी। इतने में यह खबर आई कि मुस मानों ने उनके पड़ोसी राज्य कंपिलराज्य पर आक्रमण क उसका नाश किया।

यह खबर मिलते ही राजा जंबुकेश्वर डर गया। उ एक मंत्रालोचना सभा बुलाई। उस सभा में मंत्री, सेना और मुख्य सामंतगण, विद्यारण्य जी आदि उपस्थित राजा की एकलौती बेटी गिरिजांबिका भी हाजिर थी।

राजा को अपनी इकलौती बेटी पर बड़ा प्रेम था। उसके में यह चिंता खटकती थी कि ऐसी कठिन परिस्थिति में बे की रक्षा कैसे हो सकती है। राजा ने गुरुजी से अपने मन चिन्ता प्रकट की। गुरु जी ने यह सलाह दी कि पहले उस विवाह एक वीर के साथ करना उचित है। राजा को यह अच्छी लगी। वर खोजना कठिन न हुआ। वीर हरिहर के साथ गिरिजांबिका का विवाह शीघ्र ही हो गया।

वीर नारी गिरिजांबिका ने अपने आप भी युद्ध में भाग लेने की इच्छा प्रकट की। पर जम्बुकेश्वर ने अनुमति न दी। राजा ने उसकी रक्षा का बोझ विद्यारण्य जी को सौंप दिया। गिरिजांबिका विद्यारण्य जी के आश्रम में आकर रहने लगी। विद्यारण्यजी ने उसकी अपनी पुत्री के समान रक्षा की।

मुसलमानों की मदमत्त सेना ने आनेगोंदी पर आक्रमण किया। राजा जंबुकेश्वर ने मुसलमानों की सेना का डट कर सामना किया। हरिहरराय और बुक्करायने बहुत वीरावेश से लड़ कर अपनी बहादुरी दिखाई। पर राजा जंबुकेश्वर युद्ध में काम आया। हरिहरराय और बुक्कराय कैद हो गये, अन्त में मुसलमानों की जीत हुई।

बादशाह तुगलक हरिहरराय और बुक्कराय की बहादुरी देख कर खुश हुआ। उनको उसने छुड़ा करके सेनाधिपति पद पर नियुक्त किया। मल्लीकाफर नामक एक अधिकारी को आनेगोंदी में रख कर वह दिल्ली चला गया।

कुछ समय बीत गया। मुसलमानों का अत्याचार दिनोंदिन बढ़ता रहा। आनेगोंदी में हरिहरराय ने अपने सेनापत्य से जन प्रेम पाया। वह बारंबार पंपा क्षेत्र में आकर गुरु सेवा करता था। तब वे हिन्दू धर्म के पुनरुद्धार के मार्ग पर चर्चा करते थे। गुरु जीने उसको सैन्य वृद्धि करने को कहा और आप स्वयं सभी जगह घूम कर जन मन में हिन्दू संस्कृति का प्रचार किया और मुसलमानों के विरुद्ध प्रजा के हृदय में विद्रोह का बीज बोया। वे अपने निरन्तर प्रयत्न से विद्रोह

बीज को सींच कर बड़ा वृक्ष बनाये। अब लोग मु मानों के अत्याचार का कड़े से कड़े विरोध करने लगे कर देने को इन्कार करने लगे।

मल्लीककाफर महा नीच मुसलमान था। वह म और अनाचारी था। अधिकार मद से वह अन्ध हो गया वह कई कामांध धूर्त मुसलमानों का आश्रयदाता था। अत्याचार का प्रोत्साहक भी था। ऐसी हालत में विद्यारण्य का प्रवचन और प्रचार ने लोगों के मन में बड़ा असर दिया।

हरिहरराय भी मुसलमानों के इन अनाचारों को दे कर चुप न रह सका। वे दोनों भाई गुप्त रूप से मु मानों के विरुद्ध आक्रमण करने का इन्तजाम कर रहे थे। गुप्त रूपसे विद्यारण्य जी से मिलकर समस्या के बारे में बिचार करते थे।

मल्लीककाफर की समझ में यह बात आ गई कि विद्यार जी मुसलमानों के राज के विरुद्ध प्रचार कर रहे यह पता मिलते ही उसकी आंख क्रोध से लाल हो ग यदि एक सामान्य व्यक्ति हो तो उसको पकड़वा करके फां सजा देता था। पर विद्यारण्य एक असाधारण व्यक्ति वे हिन्दू धर्म के आचार्य थे। महा जगद्गुरु पीठ के गुरु इसलिए उसको आसानी से कड़ी सजा देना सुलभ न

उसने विद्यारण्य जी को एक पत्र लिख कर एक जासूस साथ भेज दिया। जासूस ने जब विद्यारण्य जी को पत्र दि

दुग्ध-पान, फिर बड़े होने पर सखाओं के साथ खेलना, परस्पर झगड़ना, गलियों में घूमने आदि का ऐसा सजीव व सरस चित्रण सूर ने किया है कि कभी कभी जी में ऐसा आता है कि सूर अन्धे नहीं रहे होंगे और कम से कम जन्मान्ध मानने को चित्त नहीं चाहता। बिन देखे बालकों की क्रियाओं का ऐसा सुन्दर वर्णन होसकता है—सहसा चित्त इस पर नहीं जमता, पर प्रज्ञाचक्षु सूरदास समर्थ कवि थे। और उनके लिए सब कुछ सम्भव प्रतीत होता है।

महरि यशोदा के अद्भुत 'ढ़ोटा' होने से आज नन्द-ग्राम में आनन्द की बधाई की धूम है—

"आजु निशान बाजै नंद महर के।
आनन्द मगन नर गोकुल शहर के॥"

उस दिन गोकुल में सार्वजनिक छुट्टी भी मनाई गई—

"आजु बन कोउ जिनि जाइ।'

यशोदा बढ़ई से सुन्दर पालना गढ़ने के लिये कहती है और बढ़ई बहुत ही सुन्दर पालना ले आता है और उस सुन्दर पालने में—

"यशोदा हरि पालने झुलावै।
हलरावै दुलराइ मल्हावै जोइ सोइ कछु गावै।"

उस समय ऐसा लगता है यशोदा नहीं, मानो स्वयं सूर ही हरि को पालने में झुला रहे हैं।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से किंचित् इसकी आगे की पंक्ति पर ध्यान दीजिये—

'मेरे लाल को आउ निंदरिया काहे न आनि सुवावै।

और इसी नींद को बुलाने के लिये मां 'जो सो गाती है और हम सब यह जानते हैं कि छोटे बाल सुलाना कितना कठिन कार्य है जिसे माता ही सरल रहती है। उसको इसमें परम सुख भी मिलता है। इसी सूर ने इस पद के अन्त में कहा है—

'जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंद-भामिनि पावै।

माता यशोदा के हृदय की स्वाभाविक इच्छा का ही सरस चित्रण सूर ने किया है—

"मेरो नान्हरियो गोपाल वेगि बड़ो किनि होहि।
इहि मुख मधुरे बचनन हँसि कबहूँ जननि कहोगे मोहि

माताओं के हृदय में यह प्राकृतिक भावना उत्पन्न है कि उनके शिशु बड़े हो जाँय और वे अपने मुख से माँ कहकर पुकारने लगें। अवस्थानुसार शिशु बढ़ते हैं पर माँ की इच्छा तो बस या तो माँ ही जानती है या जैसा महाकवि—जो कह उठता है—

"यशुमति मन अभिलाष करै।
कब मेरो लाल घुटुरुवन रेंगै,
कब धरनी पग द्वैक धरे।
कब द्वै दंत दूध के देखौं,
कब तुतरे मुख बैन झरै॥"

माता यशोदा की निरन्तर कामना से कृष्ण बढ़ने लगे

कुछ समय बाद ही माता की इच्छायें पूरी हुयीं। वे बड़े होकर नंद के आंगन में खेलने लगे—

किलकत कान्ह घुटुरुवन आवत।
मणिमय कनक नंद के आंगन।
बिम्ब पकरिवे धावत ॥

o o o o

कान्ह चलत पग द्वै द्वै धरनी।
जो मन में अभिलास करत ही।
सो देखत नंद घरनी ॥

o o o o

कहन लगे मोहन मैया मैया।
पिता नन्द सों बाबा बाबा।
अरु हलधर सों भैया ॥

कृष्ण घुटनों से चलते और आंगन में गिरते हुये धूल-धूसरित शरीर से सभी का चित्त आकर्षित करने लगे—

"शोभित कर नवनीत लिये।
घुटरुन चलत, रेनु तन मंडित।
मुख दधि लेप किये ॥"

वे अब कुछ बोलने लगे हैं और माता से कहने लगे—

"तनिक दैरी माइ माखन तनिक दैरी माइ।
तनिक कर पर तनिक रोटी मँागत चरन चलाइ॥"

तथा माता भी बढ़वा देने लगी—

"कजरी को पय पियहु लाल, जासों तेरी बेनि बढ़ै।"

बस, कृष्ण दूध गटागट पीने लगे पर साथ ही बीच में चोटी को भी टटोल २ कर देखते जाते हैं कि उसमें कु फर्क हो रहा है या नहीं। कृष्ण ने देखा कि चोटी तो ब ही नहीं। यहां बालोचित अधैर्य दर्शनीय है—

'पुनि पीवत ही कच टकटोरत, झूठहिं जननि रढ़ै।

कृष्ण मां से कहते हैं—

'किती बार मोंहि दूध पियत भई यह अजहूं है छोटी।'

कृष्ण और कुछ बड़े होते हैं तथा खेलने के लिये बा चले जाते हैं। बलदाऊ उन्हें न जाने क्या २ कह कर खि देते हैं और बालक कृष्ण माता यशोदा से उलाहना आते हैं—

"मैया मोंहि दाऊ बहुत खिजायो।
मोसों कहत मोल को लीनो तू यशुमति कब जायो॥"

बेचारी माता को श्रीकृष्ण की माता होने के लि कितना बड़ा प्रयास करना पड़ता है—

"सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई जनमत ही को धूत।
सूर श्याम मोंहि गोधन की सौं हौं माता तू पूत॥"

कृष्ण और अधिक बड़े होने पर घर से बाहर आते हैं, गायें चराने जाते हैं, साथियों के साथ खेलते हैं और सा ही दानवों का नाश भी करते हैं। कालिय-दमन, पूतना-व आदि इसी समय की लीलायें हैं। कृष्ण पकड़े जाने पर कि प्रकार भोलेपन से सफाई देते हैं—

मैया मोरी मैं माखन नहिं खायो।
ग्वाल-बाल सब बैर पड़े हैं।
बरबस मुख लपटायो ॥

एक दिन उन्होंने नन्द को भी छकाया—

पूजा करत नन्द रहे बैठे,
ध्यान समाधि लगाई,
चुपकेहि आनि कान्ह मुख मेल्यो,
देखौं देव बड़ाई।

आंख खोलने पर नन्द खूब परेशान हुए, तब यशोदा ने पुत्र की बात बताई।

इस प्रकार शैशव से लेकर कौमार अवस्था तक के क्रमानुसार अनेक चित्र सूर-सागर में भरे पड़े हैं। सूरने बालकों की अन्तः प्रकृति में प्रविष्ठ होकर बाल-सुलभ भावों का बड़ा ही स्वाभाविक उद्घाटन किया है।

पृथ्वी के स्वर्ग काश्मीर की रमणीय धरती से प्रकाशित हो रहे
उत्तर भारत के एक मात्र सांस्कृतिक व साहित्यिक पत्र
"हिम-हास" मासिक में पढ़िए :—
* आकर्षक कहानियाँ, ज्ञानवर्धक तथा मनोवैज्ञानिक लेख, धारावाहिक उपन्यास
* महिलाओं, बालकों और सामयिक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से संबन्धित स्थायी स्तंभ।
* तीन निःशुल्क प्रतियोगितायें।
एक प्रति ३५ पैसे वार्षिक ४ रुपये मात्र।
एजेन्सी के लिए आज ही लिखें :—
व्यवस्थापक "हिम हास" मासिक,
पुष्प निवास, बारामूला, काश्मीर

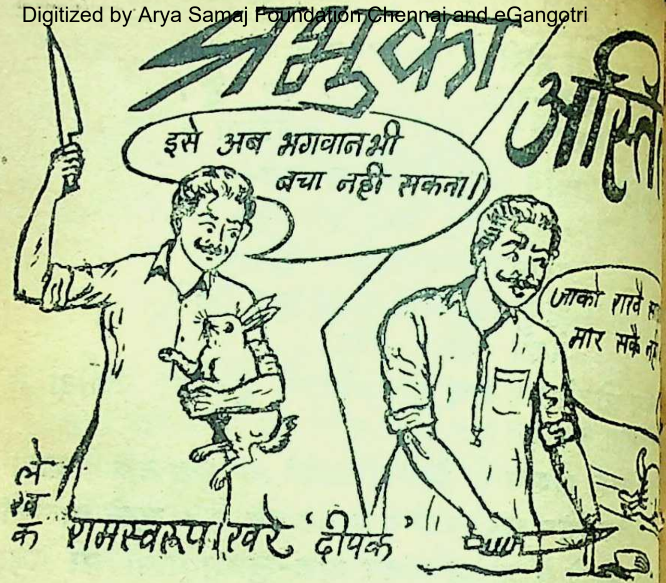
प्रभु का
अस्ति
इसे अब भगवान भी बचा नहीं सकता।
जाको राखै सा
मार सकै न
ले रेखक रामस्वरूप खरे 'दीपक'

[ प्रभु के अस्तित्व के बारे में भोले लोग तर्क किया करते हैं उनकी बुद्धि के परिमारजनार्थ निम्न कथाएँ योग्य शाबित होंगी —सम्पादक]

कैसी चमत्कार से परिपूर्ण है यह दुनिया! सूर्य आदि नक्षत्रों के नियमित सम्बन्ध तथा उन नक्षत्रों के से यथानुसार जीवों का पंचभूत में प्रविष्ट होकर करना—प्राणियों का आवागमन और समय का अबाध से चलता हुआ चक्र। वस्तुतः यह सब प्रभु की लीला इसका रहस्य जान सकना असम्भव है, तभी तो वेद नेति नेति कहकर मौन हो गये। जिस वृक्ष का बीज में डालते हैं वही वृक्ष निश्चित रूप से उगता है।

धोखा कभी हो नहीं सकता। इसी प्रकार प्रकृति के समस्त कार्य नियमित रूप से चलते रहते हैं। वायु व जल का वेग देखकर आश्चर्य की सीमा टूट जाती है। इस विराट शक्ति का संचालनकर्ता कोई अवश्य है। उसी के संकेत पर उत्पत्ति, स्थिति और लय का क्रम चलता रहता है। प्राणी के कर्मानुसार प्रारब्ध का निर्धारण कर्ता वही है। सबसे बड़ा और पूर्ण निष्पक्ष न्यायाधीश वही है। उसके द्वारा दिया गया निर्णय कोई काट नहीं सकता। इसके लिये वह स्वयं भी विवश रहता है।

वह सर्वश्रेष्ठ शक्ति है परब्रह्म, जिसे हम ईश्वर, भगवान्, खुदा, गॉड आदि नामों से पुकारते हैं। उसकी विलक्षण शक्ति के प्रमाणों से पुराण भरे पड़े हैं। आज विज्ञान के युग में पौराणिक कथायें समय की चादर से ढकते-ढकते धुंधली पड़ती जा रही हैं। कुछ भी हो हम जो प्रकृति के कार्य-कलाप अपनी आंखों से देख रहे हैं उन पर विचार करते हुये सर्वशक्तिमान प्रभु के अस्तित्व को मानना ही पड़ेगा।

आधुनिक युग की कुछ विलक्षण घटनाओं का यहां उल्लेख करता हूं। आप आश्चर्यचकित हो जायेंगे और जीते जागते सत्य को स्वीकार किये बिना न रहेंगे।

### (१) प्रह्लाद और बिल्ली के बच्चे।

एक समय किसी कुम्भकार के आँवे में बिल्ली के बच्चे दब गये थे। कुम्भकार बुढ़िया की प्रभु प्रार्थना के प्रभाव से

वे चार दिन भीषण अग्नि में पड़े रहने के पश्चा
जीवित निकलकर कूदते हुये भाग गये। इस घटना
प्रभाव बालक प्रह्लाद के मन पर पड़ा था वह
चित्र के रूप में एक पौराणिक कथा के नाम से जाना
है।

० ० ० ०

अभी कुछ वर्ष पूर्व एक गांव में किसी तामसी
एक खरगोश का बच्चा पकड़ा था। कृषक नास्तिक
नाते अहंकारी था। उसने एक हाथ में बच्चे को पकड़ा
दूसरे हाथ में तेज गंडासा (फरसा जैसा हथियार)
कहा "सभी कहते हैं भगवान् हर जगह है। अब
इसका भगवान् कहां है! इसे अब भगवान् भी चाहे तो
बचा सकता। अभी यह हमारी कड़ाही में पकता हुआ
देगा। भगवान् जहाँ कहीं भी हो, यदि शक्ति रखता
इस खरगोश को बचा ले।"

प्रातःकाल का समय था। एक वृद्ध ब्राह्मण
निकला। उसके मन में दया का भाव उमड़ पड़ा।
कृषक को बहुत समझाया, किन्तु वह अपनी बात पर
रहा। उसे कोई बलात तो रोक ही नहीं सकता था,
स्वतंत्र नागरिक जो ठहरा। कुछ अन्य व्यक्ति उत्सुक
वह सब देख रहे थे। एक बार उस नास्तिक ने भगवान्
पुनः आह्वान करके, बच्चे को दृढ़ता से हाथ में
शक्तिभर प्रहार कर दिया। बस, क्या था, हो गया जो

था। क्या खरगोश कट गया? क्या भगवान् उसकी रक्षा न कर सका? क्या बूढ़े ब्राह्मण की प्रार्थना टाल दी गई? नहीं, गंडासा कृषक के हाथ की कलाई में लगा। दूसरे ही क्षण लोगों ने देखा कि खरगोश मुक्त वायु में चौकड़ी भरता हुआ जा रहा है और कृषक की आधी से अधिक कटी हुई कलाई में से शोणित की वेगवती धारा प्रवाहित हो रही है।

क्या यह प्रभु के अस्तित्व का प्रमाण नहीं है? वह मूढ़ फिर भी हृदय से नास्तिक रहा हो, किन्तु दर्शकों पर इसका जो मर्मस्पर्शी प्रभाव पड़ा होगा उसकी आप कल्पना करें।

"जा को राखै साइयाँ, मार सकै नहिं कोय।"

* * * *

## (२) नरसी भक्त के भगवान्

भक्त नरसी मेहता के सम्बन्ध में ऐसा लेख है कि उनकी सहायतार्थे भगवान् कई बार प्रत्यक्ष प्रकट हुये थे। बड़ी-बड़ी भीषण परिस्थितियों में भी उन्होंने अपने प्रिय भक्त को आँच नहीं आने दी थी। नरसीने अपना सारा भार प्रभु को ही सौंप रखा था, इसी से उनके अनर्थ का उत्तरदायित्व भगवान् पर ही था।

o o o o

कुछ वर्ष पूर्व की घटना है। एक स्टेशन मास्टर प्रतिदिन सायंकाल स्टेशन से दो मील की दूरी पर स्थित बस्ती में मुरली मनोहर के मन्दिर में दर्शनार्थ जाते थे। वहां कुछ समय सुविधानुसार भाव सहित कीर्तन में सम्मिलित होते

थे। एक दिन वह नरसी की भांति कीर्तन में तन्मय हो अपना कार्यक्रम भूल कर बैठे रहे। उस समय उनका म मस्तिष्क केवल भक्ति में पिरोया था। ड्यूटी पर पहुँच था आठ बजे, ध्यान टूटा दस बजे से कुछ पूर्व। घड़ी देख स्टेशन मास्टर किंकर्तव्यविमूढ़ होकर रह गये। रेल्वे कर्मचारियों का उत्तरदायित्व किसी भी प्रकार एक सैनिक कम नहीं होता। तनिक सी असावधानी में सहस्रों जी संकट ग्रस्त हो सकती हैं।

स्टेशन मास्टर शीघ्रता से स्टेशन के कार्यालय त पहुँचे। वहां रेल्वे का वरिष्ठ अधिकारी पूर्व से ही विराजमा था। उसे अभिवादन करते हुये संकुचित मुद्रा एवं अनुन पूर्ण स्वर में कहा, “सर, आज बहुत बड़ी भूल हो गई।”

अधिकारी ने आश्चर्य एवं उत्सुकता से पूछा, “क हुआ?”

“कभी ऐसा नहीं होता, पर आज देर हो गई। इसी लिये क्षमायाचना करने का भी साहस नहीं हो रहा है श्रीमान् जो उचित समझें वह दंड पाने के लिये मैं सहर्ष तैयार हूँ।” दबे हुये स्वर में स्टेशन मास्टर ने कहा।

अधिकारी विस्मित होकर कहने लगा, “आपको क्या हो गया है? अभी जब से मुआयना करवा रहे हैं और आ कहते हैं देर हो गई। मैं नहीं समझा क्या बात है।”

सभी उपस्थित कर्मचारियों ने बताया कि वह आठ बजे से बराबर अधिकारी के साथ रहे हैं। कुछ पूर्व लिखा हुआ

मुआयना तथा ड्यूटी चार्ट पर अपना हस्ताक्षर देखकर स्टेशन मास्टर चकित हो गया। समय पड़ा था आठ बजे सायं।

उसने तुरन्त इस्तीफा लिखकर साहब के समक्ष प्रेषित कर दिया। अधिकारीने तथा अन्य सहयोगियों ने बहुतेरा मनाया, पदोन्नति का आश्वासन दिया, किन्तु वह लौकिक सेवा से अब मुक्त हो चुका था। इससे अधिक पदोन्नति अब और क्या हो सकती है ?

भगवान् अपने भक्तों के लिये स्वयं लौकिक कार्यों में हाथ बटाकर कल्याण करने को सदैव प्रस्तुत रहते हैं। उसके लिये भगवान् को ऐसा कष्ट उठाना पड़ा, तब वह ऐसी नौकरी अब नहीं कर सकता। विश्व प्रपंच से मुक्त होकर वह स्टेशन मास्टर कहाँ चला गया, कोई नहीं जानता। नरसी भक्त की कथा की यह पुनरावृत्ति देखकर कलियुग के लोग चकित हो गये।

### (३) मत कर तू अभिमान।

लगभग पन्द्रह वर्ष पूर्व की एक घटना अभिमानियों को कड़ी चेतावनी के रूप में घटित हुई थी। एक अत्यन्त सुन्दर युवक का विवाह एक साधारण युवती से हुआ था। युवक को अपने आकर्षक रूप तथा सुडौल शरीर का बड़ा अभिमान था। उसकी धर्मपत्नी कुरूप तो नहीं थी, फिर भी वह उसे अपने योग्य न समझता था। उसकी इच्छा थी कि कोई अत्यन्त सुन्दर-मनमोहक तरुणी उसकी अर्द्धांगिनी बनती।

उस युवक ने अभिमान के नशे में चूर होकर
टक्कर ले ली और एक घृणित कार्य वह कर बैठा।
विवाहिता पत्नी को छोड़कर एक सुन्दरी से सम्पर्क
कर लिया। वह बेचारी विवश होकर पीहर में रहकर
युक्त जीवन बिताने लगी। नये दम्पति का रंगीला
नाट्य प्रारम्भ हुआ। घटनाएँ कभी-कभी आश्चर्य का
लेकर प्रकट होती हैं। उनकी रंगरलियां अल्पकालि
रहीं। युवक को कुष्ठ का भयंकर रोग लग गया।
कामदेव से होड़ लगानेवाले अवयव गलने लगे तथा
सा खिला हुआ मुख मुरझा गया। गौर वर्ण पर स्थान-
पर लाल, सफेद व काले दाग पड़ गये। रोग प्रारम्भ
ही उसके हृदयमन्दिर की नई रानी कूच कर गई थी,
रह गया अकेला अपने पापों का प्रायश्चित करने के
शरीर से आभा के स्थान पर मवाद चूने लगा और
कर चलनेवाली चाल बदल गई। अभिमान चूर हुआ।
हृदय में अब उसका स्थान करुणा ने ले लिया। शारी
शक्ति दिन प्रतिदिन क्षीण होने लगी।

उसकी प्रथम पत्नी ने दूसरा विवाह नहीं किया था।
माता-पिता के पास यथाशक्ति श्रम करके जीविको
करते हुये संयम पूर्वक जीवन यापन करती थी। युवक
बार वहाँ गिड़गिड़ाता हुआ पहुँचा और पत्नी से तथा
सम्बन्धियों से क्षमा याचना करते हुये पुनः उसे प्राप्त
की हार्दिक इच्छा प्रकट की। इस समय उसके शुष्क
में सहारा देनेवाला कोई न था। लड़की के माता-पिता

सगे-सम्बन्धियोंने स्पष्ट इनकार करते हुये फटकार कर भगा दिया। उसकी पत्नी आग्रह करते हुये अपने पति के साथ जाने को सहमत हो गई। एक अभिमानी की सेवा कुष्ट रोग में भी करना उसने भगवान् की पूजा समझा। यह है भारत की नारी के चरित्र का आदर्श!

किसी को अपने गुण या वैभव पर अभिमान कदापि न करना चाहिये, क्योंकि पल भर में क्या हो जाय, यह कोई कल्पना भी नहीं कर सकता। जो भगवान् का दिया हुआ प्राप्त हो उसमें संतोष करना श्रेयस्कर है।

### (४) दण्ड का विधान

कुछ ही वर्ष पूर्व एक बड़ी विचित्र घटना हुई थी। एक कुटुम्ब में तीन सदस्य थे—पति-पत्नी और बुढ़िया माँ। बहू अपनी सास से वैमनस्यता रखती थी, किन्तु उसका पति मातृभक्त था। एक दिन उसके पति को कहीं अन्यत्र भोजन करने जाना था। बहूने अपने व बुढ़िया के लिये भोजन बनाया। स्वयं खाने के पश्चात् उसने एक थाली में बुढ़िया के लिये भोजन लगाकर उसमें विष्टा रख दी। बुढ़िया ने जब ढकी हुई थाली भोजन करने को उठाई तो उसे शंका हो गई कि उसमें विष्टा रखी है। वहीं की वहीं थाली ढककर वह बिना भोजन किये ही लेट रही। जब उसका पुत्र घर पर आया तो उसने पूछा, "माँ, क्या भोजन कर लिया?"

बुढ़ियाने कहा, "नहीं किया।"

कारण पूछने पर पहिले तो उसने कुछ नहीं बताया, पर बहुत आग्रह करने पर थाली देखने को कहा। युवक थाली

देखकर आग बबुला हो गया। उसने अपनी स्त्री को पीटा और एक कमरे में बन्द कर दिया। प्रातः कमरा खो पर पड़ोसियों के महान् आश्चर्य के लिये वह स्त्री सु मुख वाली होकर निकली। मुख को छोड़कर शेष उसके मानव की भाँति ही थे। वह बाहर निकल कर के संडासों में मुँह डालती फिरने लगी और कुछ पश्चात् उसका देहान्त हो गया।

० ० ० ०

ऐसी अनेकों घटनायें हो चुकी हैं और होती रहती विश्वास करना पड़ेगा तथा मानना ही पड़ेगा कि प्रभु अस्तित्व है और उसके नियम अटल हैं।

शिक्षक, शिक्षार्थी और पालकों के लिए
समान रूप से उपयोगी
विचार पूर्ण
शैक्षणिक मासिक
शिक्षा प्रदीप
अवश्य पढ़िये

पत्र व्यवहार का पताः—
व्यवस्थापक,
शिक्षा प्रदीप,
हवेली निकट सिटी कोतवाली
भोपाल (म. प्र.)

# तकाजा दोस्ती का मनुहार पान की

लेखक
हरमन चौहान

—कहानी—

दोस्त की मजार पे, क्यों कर दोस्त जायेंगे ।
निभायेंगे दोस्ती, तो दुश्मन भी अश्रु बहायेंगे ।।

प्रायः इसी उसुल को अपना कर मैं दोस्ती निभाता हूं। लेकिन कुछ मेरे ऐसे भी दोस्त हैं (मेरे ही नहीं आपके भी) जो तकाजा करते हैं दोस्ती का और मनुहार करते हैं पान की। बुरा न मानें, इसी केटेगरी में एक हमारे दोस्त हैं रामसुख, शायद आपके भी हों, जनाब ! मुझे डर है कहीं आप यह लेख उन तक न पहुंचा दें। जानते हो इसका परिणाम क्या होगा ? मुझे झिड़कियां खानी पड़ेंगी। खैर अब ओखल में सिर देकर, मूसल से क्या डरना ? याने कलम तो उठा ही ली, उनकी झिड़कियों से क्या डरना ?

आधुनिक युगमें जो भी जीते हैं, किसी न किसी वि पर, जो भी आगे बढ़ते हैं किसी न किसी उद्देश्य पर, भला मेरा मित्र रामसुख ही क्यों पीछे रहे!—उस ज्ञान है, गुण है। वह सुन्दर है, सुशील है, शहर के में उसकी गिनती है, बदमाशों पर उसका पव्वा है। मुहले के बच्चों का ताऊ है। वह बच्चों में बच्चा, बू बूढ़ा और जवानों में जवान याने हर अदा उसके पा उसे उपाधियां तो इतनी मिल रखी हैं जो शायद ही श किसी आदमी के पास होंगी। जब से मेरा वह दोस्त है तब से न उसे चैन है, न मुझे। न वह रहता है मेरे और न मैं उसके बिना। पता नहीं कौन सी विशेषता पा है हम में। वह अच्छी २ सभाओं, पार्टियों, उत्सवों मे ड़ता रहता है।

लेकिन एक बात से बड़ा परेशान है बेचारा। देखता हूं तो रहम आ जाती है मुझे। बी. ए. किये हुये दो वर्ष बीत गये, अभी कहीं नौकरी नहीं मिली है। घर तो परेशान हैं ही उससे, स्वयं वह भी अपने आप से परे है। दोस्तों पर दारोमदार है, दोस्तों का उसे भरोसा नौकरी बेचारे को मिलती ही नहीं। सिफारिश चाहि और वक्त गुजारने मेरे पास चला आया करता है।

उसका कहना है—'यार! अपनी गाड़ी तो दोस्तों बूते पर चलती है, घरवालों के सहारे नहीं। घरवाले नौ चाहते हैं, और मुझ जैसे हतभागी को नौकरी लाख

करने पर भी नहीं मिलती। किसके आगे हाथ फैलाऊं ? मरूं कटूं तो भी नौकरी कहां ? सिफारिश चाहिये मिनिस्टरों-कलक्टरों-इन्सपेक्टरों जैसे बड़े २ टरों की ! कि मेढ़क टर्र टर्र करे और बरसात आरम्भ। या चाहिये फिर सौ-सौ के खजूरी छाप वाले कागजी नोट, ताकि रिश्वत से काम चल जाये। कुत्ते को हड्डी चाहिये। हाय मेरे भारत ! आर्य पुत्रों की यह अनीति ? तेरी गोद में रहने वालों की यह मनोदशा ? भाई...भाई भतीजावाद के अतिरिक्त कुछ नहीं ? ये नेता लोग आखिर कब लायेंगे, समाजवाद ? समाजवाद तो केवल सुहावने ढोल का ढिंढोरा है, एक धोखा है, जिसे भारतीय जनता अपनी आंखों के समक्ष मौन ही मौन समझ लेगी, समझ कर लाभ भी क्या उठायेगी ? और समाजवाद आयेगा तब शायद....मुझ जैसे तो मर ही जायेंगे। क्यों ठीक है न भाई ?'

मैंने उसे समझाते हुए कहा —'रामसुख ! तेरे पास तो धन्धे हजार हैं, बीसों धन्धों के माहिर हो, फिर नौकरी की क्या चिन्ता ?'

'हां ! ठीक है भाई लेकिन घरवाले भी तो नहीं मानते। उन्हें रुपये चाहियें। बताओ फिर रुपये क्या डाका डाल कर लाऊं ? क्या करूं ?....(सोच कर). . . . .केवल एक रस्ता है अब।' रामसुख ने कहा।

मुझे खुशी हुई, चलो कोई रस्ता तो मिला। मैंने पूछा 'बताओ रस्ता पूर्व को जाता है या. . . . .पश्चिम को ?'

'जाता तो पश्चिम को ही है परन्तु आता पूर्व से 'क्या मतलब?' मैं समझ न सका था। उसने 'वाह यार! निरे मूर्ख हो तुम तो? अरे लेखन कार्य रहा हूं। मूड़ में आया कि लेख, कविता-कहानी लिख प्लाट कहानी का मिला, उपन्यास लिख डाला। यही सस्ता धन्धा! बस घर बैठे धन का धन, इज्जत की सफलता की सफलता।'

मुझे दुःख हुआ, काश! इसने इस बारे में मुझसे होता। लेकिन लाखों में एक है रामसुख भी। हरी हिरन है, कल्पनाओं का इन्द्रधनुष है। नया शौक का होता है। याद है मुझको, जब मैंने कलम उठाई क्या कटुवचन सुने, भूल नहीं पाया हूं अभी तक। मु समाज के व्यक्तियों ने, मित्रों ने, और परिवार वालों व्यंग कसे, कि बात ही छोड़ दो। मैंने भी सोचा था- मैं भी बहुत बड़ा लेखक बनूंगा, सब मेरे नाम से होंगे, सब मेरी कृतियां पढ़ेंगे, बड़े २ इनाम प्राप्त होंगे, कई दर्शनार्थ आयेंगे, कई विचार-विमर्श करने। मैं नहीं समाऊंगा। हो सकता है एक दिन राष्ट्र-कवि मन्त्री बन जाऊं। फिर तो रुपयों की तिजोरियां बगल में होंगी। नौकर हुक्म की प्रतीक्षा करेंगे। और मोटर से, मकान से बाहर नीचे पांव न धरूंगा। फिर 'टर' की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। लेकिन पिताजी सनसनाती हुई गालियां, दनदनाती लातें-घूसे, हाय।

वो उलाहने मुझे आज भी याद हैं। पिताने सीढ़ियों से धक्का देते हुये सात पीढ़ियां गिनाई थीं और मां ने तो कोख ही लजा दी थी। क्रोध के मारे सारी रचनाएं अग्नि के हवाले ही करी थी मैंने। वे मित्र, समाज के वे लोग, धन्य हैं, जिन्होंने मुझ पर लाख-लाख रुपये के व्यंग कहे थे। मेरे पथ पर फूल बिछाये (सरकार ! शूल न समझियेगा ?) थे। सहन शक्ति थी मुझ में, अत: चुप हो गया लेकिन रामसुख कभी नहीं ऐसा कर सकता है।

'ओ मेरे हमजोली दोस्त ! अय रामसुख ! अपनी जिन्दगी, अपनी इज्जत चाहता है तो ऐसा मत करना। अपना-पराया भला चाहता है तो ऐसा कभी मत करना। सुनाऊं। मेरे संस्मरण ? मुझ पर क्या बीती थी जो ?'

रामसुख बोला—'तुम भीरू थे इसीलिये तुम्हारी लेखनी छूट गई। मैं तो ऐसा कभी नहीं करूंगा।'

मैं बोला—"मेरे दोस्त ! अय रामसुख, सुन जब मैंने लेखनी थामी थी तब मेरे पिता ने कहा था—

'बेटा ! आखिर कब तक बेकार बैठे रहोगे ? मैं जानता हूं तुम्हारी रुचि किस ओर है। साहित्य में कुछ नहीं धरा है। कविता-कविता, लेख--वेख काम नहीं आयेंगे, भूल जाओ सब। काम--धन्धा तो करना ही पड़ेगा।'

याद है रामसुख ! एक बार तुमने भी यही कहा था—'यार ! अब तो कुछ काम-धन्धा पकड़ ! कविता-कहानी सब को तूली दिखा। मां-बाप का कहना कर, आखिर हमारी भी

बात सुन, इन कागजी, कार्रवाई में कुछ नहीं धरा।' तब मुझे लगा, मेरा अन्त आ गया है। उलाहने दिन-ब बढ़ते गये। मेरी पत्नी भी तंग आ गई। उसने भी अ कह दिया था एक दिन—'प्राणनाथ ! जब से घर में तब से यही ढंग देख रही हूं। यह कविता कहानी चुड़ै मुझे घर में नहीं रहने देगी। या तो अब यही रहेंगी या सीधी बात कोई नहीं करता घर-बाहर। जहां जा कानों में रुई डालती हूं। तौबा ! तौबा !! अब तो छोड़ो ठचरा।' दोष मुझ में था, औरों को कैसे दोषी ठहराता !

........तो रामसुख ! तुम अब साहित्यकार बनने चले अब तुम्हारे ही शब्द तुम्हीं पर उपयोग लाऊं ? कहा था 'यार ! कवि-लेखक बनने चले हो, कौन सा तीर मार ले दो दिन का शौक है, खत्म हो जायगा। बड़े लेखक तो से रहे ? क्यों कि कोई पोथिये..ग्रंथ थोड़ी लिख दिये हैं कहता हूं मर-खप जाओगे परन्तु लेखक..कवि नहीं सकोगे ? मेरा दावा है, तुम जीवन में कुछ नहीं कर सको और सच बात है रामसुख ! मैं कुछ नहीं कर सका। लेकि याद रखो यही शब्द मैं तुम्हें कहूं तो ?. ...कितना बु लगेगा तुम्हें।

रामसुख, मैं इन्कार नहीं होता, नाराज नहीं हो चाहो जो करो। एक बात याद रखना—सहनशील बनो प क्यों कि यह समाज के लोग भले नहीं है, यहां जो विद्वा बुद्धिमान् बनना चाहता है उन्हें लोग उगते ही कुचल दे

हैं। पथ में शूल बो देते हैं। अंकुर जो उगकर बढ़ना, पनपना चाहता है—उसे वहीं दबा कर नष्ट कर दिया जाता है। अंकुर को जल से सींचना तो दूर उलटा उसे पावों तले रौंद देते हैं। नवोदितों को इस प्रकार कोई प्रोत्साहन नहीं देता। वह तो स्वयं अपनी शक्ति से, प्रयास -परिश्रम से आगे बढ़ता है, और बड़ा बनता है। बस चाहिए उसमें धैर्य। लोग किसी को बड़ा देखना नहीं चाहते। नवोदितों की उपेक्षा--पराजय ही समाज की उपेक्षा--पराजय है। नवोदित बड़ी आशा के साथ ऊपर उठना चाहता है। समाज के विरुद्ध कुछ करना चाहता है परन्तु उसे समाज मजबूर कर देता है, उसे प्रायः समाप्त ही कर देता है।

आज के हर व्यक्ति को पहले समझना चाहिये। लोग उससे क्या चाहते हैं? समाज क्या चाहता है? परिवार वाले क्या कराना चाहते हैं? यही कि समस्याओं का समाधान क्या है? बस, भाई यह सब समझ लो, बाद में जो चाहो करना।'

तब रामसुख ने उत्तर दिया—'दोस्त! जानता हूं, अब मेरा दिल मत तोड़ो, आज कितने महीने हो गये, तुम्हारे घर पर एक टाइम खाना खाते हुए। तुम्हारा अहसान रहेगा; नौकरी भी करूंगा और लेखन कार्य भी। तुम मेरे सच्चे दोस्त हो, सब कर्ज, सारा अहसान नौकरी लगते ही उतार दूंगा तुम्हारे।'

उस दिन के बाद वह घर नहीं लौटा। इस बात को
आज पूरे तीन वर्ष होने आये हैं। पता नहीं किसी 'टर'
सिफारिश थी या न जाने सौ-सौ के कागजी नोट, जो
से स्थानीय कालेज में हैड कलर्क बन गये। कभी यार ने
आने का नाम नहीं लिया और न कुछ बकाया रुपये भिज
हैं। वे दिन, वे बातें आज कहां गईं। हां बाजार में
मिलता है तब महज पान की मनुहार अवश्य कर लेता
हम तो जहां के तहां ही करवटें बदल रहें हैं और वह
नियों पर कहानियां, कविता पर कविताएं, उपन्यास पर
उपन्यास लिखे जा रहा है। कमाए जा रहा है धन का
इज्जत की इज्जत और सफलता की सफलता। मगर
उसकी मानता हूं, न मानता हूं तो मना लेता है जबरन
बातें तो चौराहे पर खड़ा २ करता घण्टों बिता देता
राजनैतिक से लेकर भिखारी को जासूस बताते हुए हि
स्तान का बखान करता है। वह समाजवाद को भाई-भती
वाद का युग मानता है। और क्या बताऊं आपको उसके
में। मेरा दोस्त है हमजोली, उसका जितना भी ध्यान
थोड़ा है मुंह पर बड़ाई करता है और पीछे से सब
गालियां। वह कहता है—'दोस्त का सबसे बड़ा दुश
दोस्त ही है।'

भगवान् बचाये ऐसी दोस्ती से आप को भी मुझ को
क्यों कि कमबख्त रामसुख जैसे दोस्त प्रायः दूसरों के सम
अपनी दोस्ती का तकाजा करते हैं और पीछे से कुछ
ही। मुंह दबाये रस्ता ही काट निकलते हैं। आज वह
गये हैं।

सच बतादू आज जब उसके पास सब है तब सरफरोश ! दोस्ती की पैथानी पर पान का दाग लगाना चाहता है, हां सिर्फ पान का दाग। तोबा ! मैं तो आपको यही कहूंगा आप भी ऐसे तकाजे करने वाले, पान की मनुहार करने वाले दोस्त से दूर रहिए, बड़े स्वार्थी होते हैं ये ! सच मेरे एक जिगरी दोस्त 'सतीय' ने एक बार मामूली सी बात पर रामसुख मंद सा ही उत्तर दे डाला था—'यार हरमन तुम दोस्त क्या हो, दोस्तों के नाम पर एक धब्बा हो जो लगा और धुल गया।'

--तो अन्त में 'रामसुख' याने मेरा और आपका दोस्त दो शब्दों के साथ क्षमा मांगते हुए कलम को थामना चाहता हूं--क्यों कि यह बात छुपी नहीं रहेगी, वह पढ़ ही लेगा--

अय दोस्त ! तुम दोस्ती का तकाजा करते हो।
शराफत यही, कोरी पान की मनुहार रखते ?

## सुखमार्ग

### मासिक–पत्र

सुख सम्पति पाने के लिये सामाजिक, धार्मिक, वैद्यक एवं स्वास्थ्य आदि सभी सामयिक समस्याओं से ओत-प्रोत ४० वर्षों से भारतीयों में जागरण का शंखनाद करने वाले सचित्र 'सुखमार्ग' को अवश्य पढ़ें। यह बड़े-बड़े विद्वानों के लेख लेकर हजारों की संख्या में छपता है। विशेषांक भी निकलते हैं। प्रश्न उत्तर और लेख समाचार मुफ्त छापता है।

वार्षिक मूल्य केवल १) नमूना मुफ्त।

पता—सुखमार्ग, केमीकल प्रेस, अलीगढ़

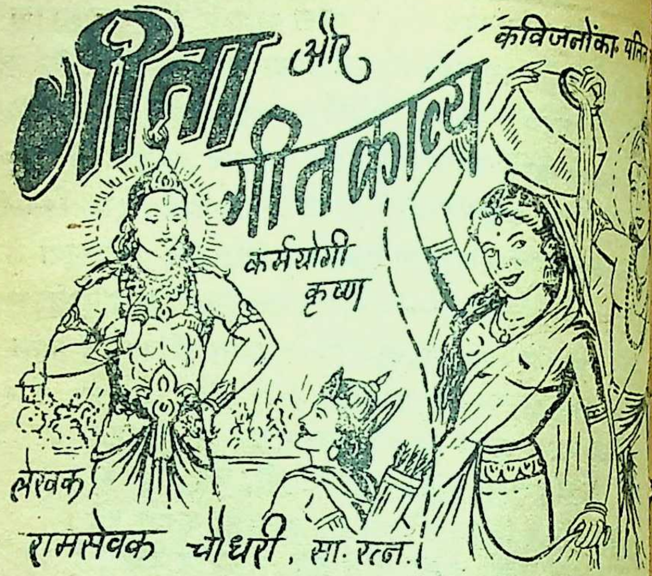

# गीता और गीत काव्य

लेखक
रामसेवक चौधरी, सा. रत्न.

> "यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
> अभ्युत्थानम् धर्मस्य तदात्मनं सृजाम्यहम्।"

का पाठ पढ़ानेवाले योगेश्वर कृष्ण, कुरुक्षेत्र के विमोहित होकर कर्तव्यच्युत होकर गाण्डीव को फें "न योत्स्य इति गोविन्द मुक्त्वा तूष्णीं बभूवह।" कहकर बैठ जानेवाले अर्जुन को "योगस्थः कुरु कर्म "योगः कर्मषु कौशलम्" कर्म-मार्ग का अकाट्य पाठ प वाले कृष्ण की अधोगति करके गीत काव्य के नि कलेवर में प्राण-का संचार मिला। गीता में कृष्ण साधारण पुरुष न होकर युग-पुरुष होकर लोक-का समु संचालन करते देखे जाते हैं। कूट नीतज्ञ, धीर और

योगी कृष्ण गीता में थे, अधर्म का नाश करके धर्म की विजय पताका फहराने का अद्भुत तथा महान् कार्य उस असाधारण पुरुष को ही शोभा देता है। कर्तव्य का पालन किया, अपनों तथा बिरानों का नाश, कराया शेष में अपना भी बलिदान किया। यादवों की अभिवृद्धि, उनको प्रोत्साहन और उनका नाश भी अपने हाथों ही कराया। यह है कर्तव्य-निष्ठा, लोक-मर्य्यादा तथा धर्म का प्रचलन। तिमिराच्छन्न, ज्ञानशून्य, माया और मोह से विमोहित हुये अपने कुशल धनुर्धर अर्जुन को ज्ञान का दीप दिखाया, अंधकार को दूर कर प्रकाशित मार्ग दिखाया। पाण्डवों की विजय और कौरवों को पराभव का मार्ग दिखाकर इनका नाश और उनकी विजय करानेवाले उस अलौकिक आत्मा या परमात्मा का ही काम है। दुष्टों का दलन और सन्तों तथा प्रतीड़ितों का अभिवर्धन करना भी तो उसी योगिराज का ही काम था। कृष्ण साधारण पुरुष नहीं लोक-नायक थे, सारथी नहीं संचालक थे और पुरुष नहीं परमेश्वर थे। पाण्डवों की विजय और कौरवों की पराजय कृष्ण की ही कूटनीति का फल था। कृष्ण ने मंत्र दिया, अर्जुन ने शंख फूँक दिया, अब क्या था महारथियों के रथ और धनुषबाण सम्हलने लगे? यह थी गीता और उसका महामंत्र।

अल्प संख्यक पाण्डवों में उत्साह और कर्तव्य निर्वाह की शक्ति का संचार हुआ। काया और माया के स्नेह-बंधनों

को त्याग वीर अपने प्राण हथेलियों पर रख रणभे भयंकर नाद की प्रतीक्षा करने लगे। ये थे कृष्ण गी जिन्होंने ज्ञान और कर्म का समन्वय किया, भोग में यो महिमा का दर्शन कराया। संसार में रहकर योगी कर्मयोग का पाठ पढ़ाया। यह भी महिमा उस धीर पुरु जिसकी वाणी में बल था भुजाओं में बल था और था ल पर अलौकिक तेज। लोक को एकत्र करके उसका नेता कुशल संचालन करना साधारण पुरुष का काम नहीं।

कृष्ण थे योगी। उनकी महिमा थी अपार। ज्ञान अलौकिक। आद्योपान्त गीता में एक सूत्र भी ऐसा नहीं निष्काम कर्म योग की ओर प्रेरित न करें। "करो और का पाठ पढ़ानेवाला वही योगी था उसकी बाँसुरी में वह था कि लोग उसकी अवहेलना नहीं कर पाते थे नाद सु और सब विमोहित हुये, छोड़ चले माया जाल। हो कर्मयोग का मंत्र प्रबल। ये थे महापुरुष और उनकी वा गीता जो आदि से अन्त तक कर्म का उपदेश देती है, जि योगी और भोगी दोनों ही पूजते हैं, दोनों ही मनन करते और दोनों ही अपना अपना मार्ग ढूंढ़ते हैं। वास्तव में है सम्बल प्रत्येक प्राणी का जो इसका मनन करता है।

वह था युग ज्ञान और कर्म का। धीरे धीरे परिव हुआ। समय ने गति बदली। ज्ञान की शून्यता और अ की शक्ति का अभिवर्धन हुआ। पुरुषों में काम का जाग

और साहित्य में सुमधुर गीतों का सृजन हुआ। यह है समाज के दर्पण साहित्य की झलक जिसने फिर मनमानी करना शुरू किया। रसराज शृंगार का राज्य हुआ। कर्म के स्थान पर कामिनी की विजय हुई। अंग प्रत्यंग का वर्णन होने लगा। कहने का तात्पर्य है कि अब ज्ञान-विराग और योग गुफा और कन्दराओं तक ही सीमित रह गया।

विलासी राजा-महाराजाओं की रोटियों पर पलने वाले कविगण अपने आश्रयदाता को प्रसन्नचित्त देखने में धर्म और मान-मर्यादा का पचड़ा भूल गये। हाय रे पापी पेट ! तेरी विचित्र कहानी है। क्या लिखें ? लिखना तो इतना ही यथेष्ट है कि "लगी है भूख तो ईमान डगमगाता है, भरा है पेट तो संसार जगमगाता है।" कवियों के समक्ष समस्या थी पेट पालन और कर्तव्य निर्वाह की। अन्त में पेट के सामने कर्तव्य को झुकना पड़ा। रसराज शृंगार के आधिपत्य में कोमलकान्त पदावली का सृजन होने लगा। कवित्त और सवैयों, गीत और पदों का आगमन हुआ। लहर बढ़ती गई और अन्त में बाढ़ बन गई। प्राय: सभी कवियों ने बहती गंगा में हाथ धोना उचित समझा। नायिका और नायक के अंग प्रत्यंगों का वर्णन बुद्धिमानी का द्योतक हो गया। नखशिख वर्णन की बहार आगई।

कवियों के प्रधान नायक हुये योगिराज कृष्ण और राधा बन गई इष्टा नायिका। अब क्या था ? होने लगी मनमानी,

लोग भूल गये मर्यादा और होने लगा नग्ननृत्य वृन्दाव
साहित्य वाटिका में। भूल गये आदर्श बिसर गया भवि
ध्यान। यह है पतन और उसकी पराकाष्ठा। लोगों ने
गंदी भावनाओं के अपवित्र छींटे उस पवित्र आत्मा प
डालने में संकोच न किया। जयदेव ने गीत-गोवि
अपनी विद्वता का प्रदर्शन किया और आदर्श पुरुष को
भावना का शिकार बना डाला। कविगण भूल गये थे
कर्तव्य को। उनमें यह सोचने की शक्ति अवशेष न थ
हमारी आगन्तुक सन्तति पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा!

बिहारी सतसै से अमर हो गये परन्तु इस अपवि
से वह भी दूर नहीं। कृष्ण और राधा की छीछालेद
इन्होंने भी कोर कसर नहीं छोड़ी। आपका कहना है

"राधाहरि, हरि राधे का, बनि आवे संकेत
"दम्पति रति विपरीत सुख, सहज सुरतिहूँ लेत"

यह है अधोगति उस परम पुरुष की।

तत्पश्चात् चिन्तामणि त्रिपाठी कहते हैं:—

"आखिन मूदिवे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज ल

कवि बेनी का कहना है—

'ऋतु पावस, योंही बिताइ दई, मारिहो फिर बावरी हूका

कवि मतिराम ही क्यों पीछे रह जाय। उन्होंने भी
अरमान प्रेषित कर डाले —

"केलि की राति अघाने नहीं दिन में *लला पुनिघात लगाई"

उधर निवाज कवि राधिका को सलाह देना ही अपना पुण्य कार्य समझते हैं "बावरी जो पै कलंक लगो तो निशंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावति" फिर कृष्ण महाराज कहीं रात्रि गुजार कर आये हैं तो राधिका का कहना है 'कौन घरबसी, घरबसी करि आये हो।"

तो फिर इश्क मजाजी में रंगे हुये कविवर रसखान ही क्यों पीछे रह जाय। उनसे भी न रहा गया वे भी अपनी नायिका से कहलाते हैं:—

"माखन के मिस जो रस चाहत, सो रस काहजू नेक न पैहो"
"बगिया को मजा सिजिया पे चखाऊँ"

कहने का सारांश यह है कि गीता के उपदेशक कृष्ण समय के फेरने कामुक कृष्ण और निर्लज्ज राधिका तक ही सीमित कर दिये। यह है अपने आदर्श पुरुष कृष्ण की अधोगति और उस प्रेममयी आत्मा राधिका की दुर्गति। कृष्ण तो दूर रहे यदि कहीं भक्तिभाव से विभोर अपने आराध्य की यह दशा कवि प्रवर महात्मा सूर तक पहुँच जाती तो वे एक बार सिर धुन डालते।

यह है हमारी मानसिक अधोगति का उज्वल उदाहरण। यदि हम अपने आदर्श पुरुषों को पतित और कामुक बनाकर

---

*लला कृष्ण ही का नाम है।

साधारण जन-समुदाय के समक्ष उपस्थित करेंगे तो अपने पतन का अनुमान लगाना ही कठिन है।

अतः पाठकगण भक्तिकाल से लेकर रीतिकाली को भूलकर यदि गीता के योगिराज का ध्यान धरेंगे उनके पवित्र पद-चिह्नों पर चलने का कष्ट करेंगे तभी का मार्ग आलोकित होगा और उसी में हमारी, उनकी सम्पूर्ण देश की भलाई है।

प्रेम, सेवा और जागृति का प्रमुख हिन्दी पाक्षि

समाज--हितैषी

जिसमें साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मि व आर्थिक लेख, कवितायें एवं कहानियों के अति निम्नलिखित स्तम्भ भी रहते हैं।

* सम्पादकीय
* महिला-जगत
* शिशु-जगत
* जनमत
* राजस्थान का रंगमं
* हास्य-व्यंग
* प्रश्नोत्तर
* भविष्य फल

साधारण एक प्रति २५ पै. विशेषांक के सहित वार्षिक आज ही नमूने की प्रति के लिए लिखें अथवा वा ग्राहक बनकर लाभ उठा

पता-समाज-हितैषी कार्यालय, बिसाऊ (राजस्थान)

# वैज्ञानिक जलचिकित्सा

नित्यं भागीरथी स्नानात्
भास्करस्यच दर्शनात्
नश्यन्ति सकला रोगाः
सत्यं सत्यं न संशयः

लेखक
डॉ. जे. पी. वर्मा,
डी. एन. एम. एम. डी. एम.

(गतांक से आगे)

वाष्पस्नान:-यह स्नान बक्स, जो चारों तरफ से बन्द हो ऊपर सिर-निकला हो, एक छेद द्वारा रबर की नली एक बन्दमुँह के बर्तन में लगाकर सिगड़ी या स्टोव्ह पर चढ़ा देना चाहिए। नंगे बदन, सिर पर भीगा 'तौलिया' रखकर १५-२० मिनट के लिए लेना चाहिए। इसके अतिरिक्त चार- पाई पर कम्बल बिछाकर एक खौलते पानी का बर्तन पैरों के नीचे स्थान पर एवं दूसरा पीठ के निकट रख देना चाहिए। चारपाई चारों तरफ से बन्द हो। कुर्सीपर बैठकर भी लिया जा सकता है।

वाष्प-स्नान वे पश्चात् कटिस्नान या फौव्वारा-स्नान लेना आवश्यक है। पश्चात् शरीर की मालिश, व्यायाम,

टहलना भी आवश्यक है । इससे रक्त दोष, चर्म रोग, दर्द, स्नायुरोग, साइटिका, वात, गठिया, लकवा, प्लीहा, उदर आँत, कंठमाला, क्षय, फोड़ा, कारबंकल, कुष्ठ, पील पाँव, दाद, एकजीमा, गला, स्वरयंत्र, श्वास फेफड़े आदि के रोग ठीक होते हैं। शरीर के वि निकालने का सुन्दर साधन है ।

बहुत कमजोर, गर्भवती, पुराने क्षय के लिए ठीक पड़ता । ऐसे लोगों को स्थानीय वाष्प स्नान लाभदाय डा. लुईकूने तो इन्हीं दो स्नानों से तमाम रोगों को किया जिसका ज्वलन्त प्रमाण 'न्यूसाइंस ऑफ हीलि मिलता है जो उनकी श्रेष्ठ कृति है ।

गर्मसेंक:-किसी दर्द या सूजे स्थान पर ४ या ८ पर्त की पट्टी गर्म पानी में भिगाकर निचोड़कर रखना, थोड़े समय के लिए ठण्डी पट्टी रखना, इस प्रकार तीन करना तथा दिन में कई बार करना । अन्त हमेशा ठण्डे से करना एवं मालिश करना आवश्यक है ।

## जलोपचार के कुछ विशेष प्रयोग

यद्यपि जलोपचार से सभी रोग सफलतापूर्वक दूर कि जा सकते हैं-फिर भी कुछ दवायें पानी में मिश्रित कर से जल की उपयोगिता बढ़ जाती है । तथा रोग शीघ्र होता है । जैसे चर्मरोगों में साबुन के चूरे को मिलाना, में आर्निका, कैलेण्डुला, रूटा, कल्केरिया सल्फ, ज्वर में

की पत्ती, खाँसीमें अम्ब्रोसिया, लिकरिस, जस्टीसिया, हेमामेलिश, फिक्कसरेलिजियोसा, मैटीज अंटीकैंसरेसो (इलेक्ट्रो-होम्योपैथी दवा) या हाइड्रेस्टिसटिंचर । उपदंश में कैसकरा अमार्गा, वरबेरिस एक्वी फोलियो या मैटीज एण्टीवेनरियो। कमजोर दिल तथा गर्भाशय की तकलीफोंमें अशोक की पत्ती। व्रण एवं सूजन में एलम, बोरिक एसिड, हाइड्रेस्टिस, तथा कैलेण्डुला-आदि होम्योपैथी दवायें, नेत्ररोग में यूफ्रेशिया या मैटीज 'मेरिना' खुजली में कार्बोनेट आफ पोटाश, सोड़ा कार्बोनेट, साधारण नमक-आर्टिका युरेन्स, आदि का प्रयोग ९० से ९५° के ताप के पानी में करना उत्तम

(१) कृत्रिम सागर स्नानः-तीस गैलन पानी में ८ पौंड नमक (समुद्री) मिलाना या निम्न मिश्रण का प्रयोग करना—सोडियम क्लोराइड, या साधारण नमक ७ पौण्ड मैग्नेशियम क्लोराइड एक पौंड, मैग्नेशियम सल्फेट आधा पौंड, पानी ३० गैलन। (डा. जे. एच. केलाग एम. डी.)

लवण स्नान एवं समुद्र स्नान मेदरोग एवं जीर्ण प्रतिश्याय में ठीक पड़ता है। सूजन, रक्तस्राव, गुर्दे की बीमारी में नहीं लेना चाहिए।

(२) एप्सम साल्ट बाथः-डा. लिंडलार का कथन है कि एप्सम साल्ट बाथ या पट्टी तीव्र रोगों, वात, गठिया, निमोनिया, ब्राइट्स डिज़ीज, आंत्र पृच्छ प्रदाह विषपान आदि में उत्तम है। परन्तु इसका प्रयोग दीर्घकाल तक करने से हानि पहुंचती है।

(३) एफरवेसण्ट आक्सीजन बाथः—डा. केला अनुसार 'परबोरेट आफ सोडा' लेकर मैगनीजमें दिया जा धीरे धीरे बुलबुले के रूप में आक्सीजन प्रकट हो जा यह स्नान नसों को उत्तेजित करता है। डा. विंटरनिट इसे रक्त का दबाव घटाने पर मान्य किया है। स्नायु अनियमितता, न्यूरेस्थेनिया, पागलपन, निम्नरक्तचाप में हितकारी हैं। (डा. केलाग)

(४) आक्सीजन बाथः--एक पौण्ड 'परोक्साइड' औन्स पोटेशियम परमैंगनेट मिलाने से औषधि तैयार जायगी। अधिक उत्तेजना की इच्छा में एक पौण्ड कै क्लोराइड तथा दो पौण्ड साधारण नमक मिला देना तथा तीस गैलन पानी भी मिलाना आवश्यक है। इस स्ना का अधिक दिनों तक प्रयोग हानिकर है। साधारण लो लिए कटिस्नान, वाष्प स्नान, मेहनस्नान एवं आंशिक ही पर्याप्त है।

(५) विद्युत स्नानः--इस स्नान का अर्थ है मनुष्य शरीर में पानीद्वारा बिजली का प्रवाह डालना। चाहे बिजली यंत्र, बैटरी या किसी प्रकार से दिया जाय। स्ना में ताम्बे का प्लेट तथा जस्ता-प्लेट डुबाकर ऊपर से बून्द नीबू के या सल्फ्यूरिक एसिड मिलाकर उसी में को स्नान कराया जाय। यह रक्त संचालनको ठीक करता शरीर का ताप घटने पर एवं स्नायविक अनियमितता में गुणकारी है।

# जलोपचार में भोजन

जलोपचार से लाभ पाने के लिए भोजन पर विशेष ध्यान चाहिए। मन्दाग्नि एवं स्नायु रोगों में चाय, काफी, कोको-चाकलेट, मदिरा, तम्बाकू तथा उत्तेजक पेय त्याज्य है। नमक, मसाले, शक्कर, तली वस्तुएँ भी अनुकूल नहीं पड़तीं, पके फल, ताजे फल जैसे, सेव, संतरा, अंगूर, चकोतरा, आम, मेवे, दूध, दही, गन्ना, चोकर समेत रोटी आदि सेवन करना चाहिये।

तीव्र रोगों में फलों का रस, उपवास, जलोपचार, हरी भाजियों का प्रयोग भी उबाल कर बिना घी, नमक और मसाले के प्रयोग करना चाहिए, शरीर में अम्ल २० प्रतिशत और क्षार ८० प्रतिशत है। अम्लता की वृद्धि होने पर ही रोग की उत्पत्ति होती है। अतएव अनाज, दालें, आदि भी त्याज्य हैं। अण्डे, मच्छली, मांस के प्रयोग से शरीर में एसिड संग्रह होता है। मनुष्य का प्रथम भोजन दूध है। पश्चात् फल एवं निम्न कोटि में अनाज। उसके अतिरिक्त किसी प्रकार का प्रयोग शरीर पर व्यर्थ का भार लादना है और उसे जल्दी थका देना है। शरीर की गठन के लिए प्रोटीन, शर्करा, चर्बी, खनिज लवण, जीवन सत्त्व की आवश्यकता होती है।

प्रोटीन का स्थान सर्व प्रथम है क्योंकि शरीर का अर्द्ध-भाग प्रोटीन से ही निर्मित है। दूध, छेना, पनीर, मछली,

मांस, सोयाबीन, दाल, मटर, मूंगफली, अण्डे का पीला आदि इसके प्राप्ति के साधन हैं। भोजन में उद्भिज प्रोटीन लेना हितकर है क्यों कि प्राणिज प्रोटीन आं जाकर सड़ने लगते हैं जिससे कब्जादि का जन्म होता अतएव दूध, छेना, दही, पनीर, सोयाबीन, दाल पर अधिक जोर देना चाहिये। एक छटांक की मात्रा में प्रोटीन लेना चाहिये। अधिक प्रोटीन लेना भी अहितकर प्रोटीन की आवश्यकता तीस वर्ष के बाद बहुत कम हो क्यों कि शरीर की बनावट स्थिर हो जाती है।

शर्करा जातीय चीनी, गुड़, मधु, श्वेतसारीय, चावल, चिवड़ा, बर्फी आदि खाद्य पदार्थ हैं। इनसे उत्पन्न होती है। इनके अधिक प्रयोग से अम्लरोग, म पाक स्थली में घाव हो जाते हैं। खजूर, शहद, कि आदि का व्यवहार ठीक है।

घी, मक्खन, तैल, नारियल, बादाम, पनीर, अण्डे का पीत अंश आदि में चर्बी पाई जाती है। उष्णता उत्पन्न होती हैं। इसमें मक्खन उत्तम है। साथ टमाटर, पालक, धनिया की पत्ती आदि का अति उत्तम है ( दी न्यु डायटेटिक्स ) इसकी पूर्ति में एवं मीठे फल का व्यवहार ही उत्तम होता है।

हमारे शरीर में कैल्शियम, फास्फारस, लौह एवं डीन आदि खनिज लवण हैं। नये रक्त का निर्माण, नये का गठन, हृदय एवं स्नायु के संचालन के लिए इनका

नितान्त आवश्यक है।

खनिज लवण रहित भोजन से आदमी केवल तीस दिन ही जीवित रह सकता है। अर्थात् उपवास करके मनुष्य जितने दिन में मर सकता है। उससे कहीं पूर्व ही। [ डायटोथेरपी डा. विलियम एडवर्ड फिच एम. डी. एवं 'ए हैण्ड बुक आफ ट्रापिकल थेराप्यूटिक्स' डा. आर. एम. चौपड़ा एम. डी. एम. आर. सी. पी. )

कुछ कुत्तों पर खनिज लवणरहित भोजन का प्रयोग किया गया, जिससे वे छब्बीस से छत्तीस दिन के भीतर ही मर गए ['डायट इनहेल्थ एण्ड डिजीज' डा. जूलियस फ्रेडनवाल्ड] साधारणतया दूध, दूधनिर्मित पदार्थ, बादाम, अंजीर अखरोट, किशमिश, पोई का शाक पालक, सेम जातीय बीज पपीता, फूल गोभी, भिंडी, करेला, बैगन, कुम्हड़ा-तरोई आलू, अण्डे का पीला भाग, बकरे तथा मच्छली के यकृत में खनिज लवण पाया जाता है। परन्तु इसके चुनाव में बुद्धि से काम लेना चाहिए। मांस, मछली अण्डे आदि पर जोर देना ठीक नहीं है।

प्रोटीन, शकरा, खनिज लवण के अतिरिक्त विटामिन भी आवश्यक हैं। विटामिन के अभाव में अनेकों बीमारियां उत्पन्न हो जाती हैं।

भोजन में छिलके वाले पदार्थों का होना भी आवश्यक है जिससे कोष्ट की सफाई सरलता से होती रहती है। इस-

लिए शाक-भाजी एवं फलों का पर्याप्त मात्रा में प्रयोग
ही चाहिए। कच्चे पदार्थों का लेना भी नितान्त आवश
जैसे टमाटर, मूली, चुकन्दर, गाजर, पालक, ककड़ी,
की पत्ती, पुदीना, प्याज आदि को काट कर उसमें
नीबू, जैतून का तेल मिला लेना चाहिये और कच्चे
चाहिये। धारोष्णदुग्ध पीना भी लाभप्रद है। ['फूड
फिजिकल फिटनेस, ई. एच. डब्ल्यू. कुकशंक एम. डी.,
एस. सी., एम. आर. सी. पी. ]

भोजन में ५२ प्रतिशत क्षारीय पदार्थ होने चा
शाक-भाजी, फल, दूध मेवे में क्षार पाया जाता है।
प्रयोग कम से कम करना चाहिए।

चिकित्साकाल में क्षारयुक्त पदार्थों को ही लेना चा
नीबू, नीबूजातीय फल जैसे, संतरा, मोसंबी आदि एवं
का रस, शाक-भाजी, सलाद ही हितकर होते हैं।
भोजन-सुधार के चिकित्सा में सफलता नहीं मिलती।
ही अच्छे विचार भी आवश्यक हैं। मनुष्य को आशा
होना चाहिए। उसे निरन्तर सोचते रहना चाहिये कि
जो कुछ भी उपाय स्वास्थ्य पाने के हेतु करता है
आशातीत लाभ मिल रहा है। वह पूर्ण आरोग्य हो रहा
शरीर के सभी अवयव शक्तिशाली हो रहे हैं। शरी
शक्ति का संचार हो रहा है। उसका शरीर बलिष्ठ,
हो चुका है। वह अपने सभी कार्य सफलता पूर्वक
सकता है। उसके शरीर में दैवी शक्ति प्रवेश कर रही
आदि आत्म संकेत करना आवश्यक हैं।

## रोगों की जल चिकित्सा

उदर की अनियमितता:—एनीमा, कटिस्नान, गीली पट्टी, व्यायाम, टहलना आदि।

उदरशूल:—एनीमा, उदर पर गिली पट्टी, वाष्पस्नान, कटिस्नान आदि।

स्वाभाविक गर्भपात:—कटिस्नान, उदर-पट्टी। काफी, तलीवस्तुयें, तम्बाकू, मदिरा-मसाला, उष्ण भोजन एवं शारीरिक परिश्रम का त्याग।

फोड़ा:—उष्ण जल द्वारा प्रक्षालन, बीस मिनट का स्थानीय वाष्पस्नान, गीली पट्टी, एनीमा द्वारा आंतों की सफाई, भोजन सुधार।

ग्रंथिप्रदाह:—स्थानीय वाष्प स्नान, ठण्डी पट्टी, भोजन सुधार।

प्रसव के बाद की पीड़ा:—पेट की गीली पट्टी, मालिश भोजन सुधार।

दूध की कमी:—कटिस्नान, भोजन सुधार।

डर जाना:—साप्ताहिक वाष्पस्नान, कटिस्नान प्रतिदिन, दूसरे दिन एनीमा, सिर की पट्टी मूत्र में एल्ब्युमिन जाना दिन में दो बार कटिस्नान, भोजन सुधार।

कनीनिका प्रदाह:—दिन में दो बार कटिस्नान, चेहरे की ठण्डी मालिश, सिर की ठण्डी पट्टी, भोजन सुधार।

रजोरोध:—सोते समय उष्ण-पदस्नान, रीढ़ स्नान, एनीमा, उदर मालिश, भोजन सुधार।

रक्ताल्पता:—प्रतिदिन कटिस्नान, सूर्य स्नान, वायुस् लाल रंग के फल का सेवन।

रक्त की गांठः—कटिस्नान, साधारण गर्म पट्टी, दूध फल खाना, सूर्यस्नान।

छाती का खिंचनाः—हृदय पर एक मिनट का गर्म १० मिनट की ठण्डी पटी हालत सुधरने तक प्रयोग क उष्णपद स्नान, रीढ़ पर बर्फ की थैली रखना।

सिर में रक्त संचय:—पूर्ण आराम, गर्दन एवं सिर स्नान एवं मालिश, ठण्डी पट्टी, पैर के निकट गर्म पानी बोतलें रखना, समस्त शरीर को गीले तौलिये से रगड़ सिर को ऊंचा रखकर लेटना, एनीमा, फलों का रस दूध का सेवन करना।

आंत्र-पृच्छ प्रदाहः—प्रति ६ घंटे पर एनीमा, प्र भाग को सेंकना, ठण्डी पट्टी रखना दूध एवं फलों का देना।

मंदाग्निः--कटिस्नान, मालिश, पेट की पट्टी, सूर्यस्नान।

वात-व्याधिः--सप्ताह में दो बार वाष्प-स्नान, कटिस्न ठण्डी पट्टी, मालिश, मांस, दाल, मसाले, काफी, चा तम्बाकू आदि का त्याग करना।

दमाः--अल्पकालिक पंखा डूश गर्दन पर तथा ऊर्ध्व भाग पर पैर का गर्म स्नान, छाती की सूखी मालि

मेहन स्नान, उपवास, फलों का रस, शहद, नींबू आदि देना दुग्ध कल्प कफाधिक्य हो तो मठा कल्प बहुत ही हितकारी है प्रयोग परीक्षीत है ।

शरीर का दुर्बल होना:—वाष्प स्नान, कटिस्नान, रात्रि में कमर की ठण्डी पट्टी, सूर्यस्नान, दूसरे दिन एनीमा, अनुत्तेजक भोजन, आदि ।

पीठ का दर्द--रोग ग्रसित पर १५ मिनट के लिए सेंक देना, प्रतिदिन ५ मिनट के लिये पतली धार में पानी गिराना दो घंटे के लिये ठंडी पट्टी देना । साधारण ताप के पानी द्वारा मालिश, प्रति दूसरे दिन एनीमा प्रयोग, फल, दूध एवं हरे शाक भाजी का प्रयोग ।

पलंग घाव:--गर्मसेंक, ग्रसित भाग को स्वच्छ करना; आंत की सफ़ाई, अनुत्तेजक भोजन एवं कैलेण्डुला की पट्टी देना ।

पित्त-ज्वर--एनीमा, गर्म पानी पीना, दूसरे दिन वाष्प स्नान लेने के बाद ताजे पानी से शरीर पोंछना, उपवास, पेट की पट्टी ।

जहरीले जीवों का विष:--वाष्पस्नान, कटिस्नान, मांस मसाले, तली वस्तुयें त्यागना ।

नाक से रक्त स्राव:--ठण्डा जल नाक से खींचना, सिर नाक, गर्दन, रीढ़ पर ठण्डा जल प्रयोग, पैर का गर्म स्नान ।

हड्डी का टूटना:—गर्म सेंक देने के बाद पट्टी बांधना, चोकर समेत रोटी का प्रयोग अस्थि-वृद्धि में बहुत ही लाभ

कारी है। ( ड. जे. एच. केलाग एम. डी. )

आंत की अनियमितता:—प्रातः एक गिलास ताजा
पीना, कमर की पट्टी, पेट की मालिश।

मस्तिष्कका खिचना:--ठण्डी पट्टी, मालीश, गर्म पद
गर्म एनीमा, आराम।

स्तन-प्रदाह:--ठण्डी पट्टी, का प्रयोग आधे घंटे के
कई बार करना।

सांस लेने में तकलीफ:--एनीमा एवं कटिस्नान
प्रयोग करना।

गुर्दा-प्रदाह--वाष्प स्नान, कटिस्नान, तौलिया स्
साधारण ताप के जल की पट्टी, एनीमा, सुरा, काफी, तं
चाय, मसाला, नमक, शक्कर, आदि त्यागना।

श्वांस नली-प्रदाह:--गर्म एनीमा, गर्म-पद स्नान, छा
की पट्टी, गले की पट्टी, मालिश।

कैंसर एवं गांठ (ट्यूमर):--एनीमा, वाष्प स्नान, घ
स्नान, नमक, शक्कर, चाय, काफी, तंबाकू, मांस, मुर्गी, म
मदिरा का पूर्ण त्याग, फलों का अधिक प्रयोग, हरे कांच द्
सूर्य का प्रकाश डालना। कोनियम हाइड्रेस्टिस, फाइटोल
आदि दवाएं, मैटीग पेण्टी कैंसरेसों औषधि चमत्कारी प्र
दिखाती है। विल्सन, क्नाइप, एवं डा. बी. एम. कुलकर्
कैंसर के बहुत से रोगियों, को सूर्यप्रकाश, जल चिकि
भोजन सुधार एवं होम्योपैथिक औषधियों द्वारा ठीक कि

कारबंकल (अदीठ):--यह अधिकतर मधुमेह के रोगि

को होता है जबतक मधुमेह ठीक नहीं होता तबतक इसका ठीक होना असम्भव है। इसलिये इसकी चिकित्सा फोड़े, एवं मधुमेह के रोगियों की तरह शीघ्रता पूर्वक करनी चाहिये।

मोतियाबिंद:—सप्ताह में दो बार वाष्पस्नान, रोज दो बार कटिस्नान, रोज दो बार आंखों को धोना, शाक-भाजी फल, अंकुरित अनाजों का अधिक प्रयोग, हरी घास पर नंगे पैर चलना, हरी वस्तुयें देखना।

क्लोरोसिस (शरीर का हरा पड़ जाना):—प्रतिदिन एनीमा, गर्मस्नान के बाद शरीर को ठण्डे पानी से पोंछना, शरीर पर सूर्य-प्रकाश लेना बहुत ही उत्तम है।

हैजा:—गर्म पानी का एनीमा, गर्म पानी पीना, बड़े टब में बैठना, पैर गर्म पानी में रहे। सहने योग्य गर्म पानी की पट्टी, छाती एवं पेट पर रख कर कम्बल से ढक देना, पैरों के निकट गर्म बोतलें रखना। शरीर ठण्डा पड़ने लगे तो मालिश भी देनी चाहिए।

धनुर्वात:—एनीमा, कटिस्नान, पतलीधार से पानी गिराना। टहलना, सूर्यस्नान, वायुसेवन एवं अनुत्तेजक भोजन।

उदरशूल:— गर्म पानी पीना, गर्म एनीमा, यकृत पर गर्म सेंक, भोजन सुधार।

खाँसी:— छाती की सेंक, गर्म पानी के भाप में सांस लेना, गर्म एनीमा।

**कुकुरखाँसी:—** सिर का ठण्डा स्नान, समस्त श गर्म स्नान, गर्म पानी पीना, साधारण ताप का एनीमा, घंटे के लिये कम्बल में लिटा रखना।

**बहरापन:—** सप्ताह में एक बार बाष्प स्नान, कटि प्रतिदिन, दूसरे दिन एनीमा, भोजनसुधार।

**हड्डी तोड़ ज्वरः—** साधारण स्नान, एनीमा दिन बार, कटिस्नान, चादरस्नान।

**बहुमूत्र रोगः—** रोज कटिस्नान, घर्षणस्नान, सूर्य कभी कमी बाष्पस्नान।

**मधुमेहः—** कटिस्नान, घर्षणस्नान, सूर्यस्नान, सांस लेना, पेट की मालिश, व्यायाम, कमरपट्टी, सिर, रीढ़, छाती, यकृत और गुर्देपर पतली धार से पानी गि साधारण स्नान, एनीमा, ठण्डा-पंखा स्नान, बाष्पस्ना खजूर, जामुन, मक्खन, दही, चोकर समेत रोटी, संतरा, आदि फलों का प्रयोग करना चाहिये।

**दस्त लगनाः—** हर दस्त के बाद एनीमा, पेट की पेट की पट्टी, मिट्टी की पट्टी बहुत लाभप्रद सिद्ध हुई कटिस्नान लेना भी हितकर है।

**कंठरोहिणीः—** १५ मिनट के लिये प्रति दूसरे घंटे सेंक, गले में ठण्डी पट्टी, नाक से भाप लेना, कटिस्न एनीमा।

**पेचिशः—** एक स्त्री पेचिश से पीड़ित हुई। उसने स्नान के बाद ठण्डे पानी का पेट पर डूशस्नान लि

पश्चात् चौपर्त-कपड़े की भीगी पट्टी कमर के चारों तरफ लपेट दी और एक घंटे पर बदलती गई। ठण्डा पानी प्रति घंटे पर एक औंस की मात्रा में पिया। इस प्रकार वह तीन दिन में ठीक हो गई। पुरानी पेचिश में, कमर की पट्टी, एनीमा, फल और दूध, कटिस्नान लाभकारी है।

कष्टार्तवः— ग्रसित भागपर गर्म सेंक, गर्म पैर स्नान एवं गर्म एनीमा।

डायसुरिया (मूत्र में कष्ट होना) गर्म एनीमा, गर्म जननेन्द्रियस्नान, कटिस्नान, गुर्दे और उदर पर पतली धार में पानी गिराकर स्नान लेना।

कर्ण-शूलः— गर्म सेंक, गर्दन की ठण्डी पट्टी, गर्म पानी से धोना।

मिर्गीः— आराम, कटिस्नान, मेहनस्नान, एनीमा, सिर पर पानी गिराना, भीगे तौलिये सारे शरीर को पोंछना, व्यायाम, सूर्यस्नान, साधारण स्नान।

नेत्र प्रदाहः— नेत्रों में पानी लेकर गर्म होने पर गिरा देना, कटिस्नान, मेहनस्नान, दाहिनी आंख में पीला जल तथा बायीं में नीला या हरा जल डालना चाहिये (सूर्य किरण चिकित्सा पर लेख जनवरी ६२, मार्च ६२, जुलाई ६२, अक्टूबर ६२, जनवरी ६३ में रामतीर्थ प्रकाशित हो चुका है।

मलेरिया ज्वरः— ठण्ड लगने पर अल्पकालिक बाष्प स्नान, शरीर गर्म रहने पर ठण्डी मालिश, यकृत तथा प्लीहा पर रोज तीन बार गर्म सेंक, साधारण ताप का एनीमा

प्रतिदिन, पुराने ज्वर में सप्ताह में दो बार वाष्
कटिस्नान दो बार, एनीमा रोज, सूर्यस्नान, फलों
उपवास आवश्यक है।

प्रसूति-ज्वर: — बाष्प स्नान, शीतल घर्षण, पीने
गर्म पानी, फल एवं दूध।

टाइफाइड ज्वर:— एनीमा, सारे शरीर को ठण्डे
से पोंछना, पेट की पट्टी, फल के रस में पानी मिलाकर
सिर पर ठण्डी पट्टी, कमर की पट्टी ज्वर को उतारने में
ही उपयोगी सिद्ध हुई है। यदि जबान पर भूरी या
परत दिखाई दे तो कालीमूर एवं पीली या पीली-हरी
पर काली सल्फ पानी में मिश्रित कर प्रयोग किया जा
है।

एक लड़की टाइफस ज्वर से पीड़ित थी। वह
निकट थी तब मुझे बुलाया गया मैंने उसे गीली चा
स्नान दिया। वह १५ मिनट में ही होश में आने लगी
जल्दी ही ठीक हो गई (मेरी निकोल्स)

भगंदर:— बाष्पस्नान, दिन में दो बार कटिस्नान,
जल में लक्षणानुसार हाइड्रेस्टिस, कैलेण्डुला, साइली
कल्केरियासल्फ, लैकेसिस का प्रयोग किया जाय तो उत्त

पित्त-पथरी:— यकृत एवं पेट की मालिश, रात्रि में
की पट्टी, दर्द पर बाष्प स्नान, गर्म कटिस्नान, एनीमा
दिन, सूर्यस्नान, टहलना, फल, दूध लेना।

**सुजाकः--** बाष्पस्नान, कटिस्नान, एनीमा रोज, फल, शाक-भाजी, दूध लेना ।

**गठिया:--** एनीमा, गर्म-पैर-स्नान, कमरपट्टी, दर्द पर सेंक, ठण्डी मालिश तथा धारास्नान, उत्तेजक पदार्थों का निषेध, फल-शाक भाजी, दूध का व्यवहार करना ।

**मूत्र-पथरीः--** एनीमा, गर्म सेंक, बाष्पस्नान, कटिस्नान, फल-भाजी-दूध का प्रयोग करना ।

पंजाब, यू. पी., मध्य प्रदेश, राजस्थान, जम्मू,
काश्मीर तथा दिल्ली की सबसे अधिक
प्रकाशित होने वाली पत्रिका

मासिक भारत ज्योति

जो कि हिन्दी और पंजाबी में अलग अलग प्रकाशित होती है। अति सुन्दर, दिलचस्प, रचनाओं से भरपूर पत्रिका पढ़े और विज्ञापन दाता अपने व्यापार बढ़ाने के लिए इस पत्रिका को न भूलें क्योंकि यह उनके व्यापार के लिए अति लाभदायक होगा । पूर्ण विवरण के लिए निम्न पते पर लिखें :—

भारत ज्योति "मासिक"
जालंधर नगर (पंजाब)

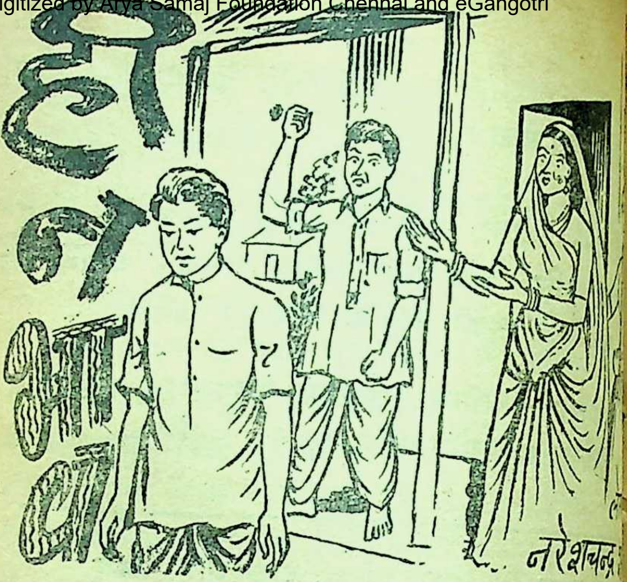

आज इस वैज्ञानिक संसार में, सभ्यता के इस वि
युग में मानव इस नये युग में नई नई बीमारि
शिकार बनता जा रहा है। अंग्रेजी में एक शब्द है
रिअरिटी कॉम्प्लेक्स' याने अपने आप को 'इनफेरी
हीन महसूस करना। वैसे तो यह कोई खास बीमारी
लेकिन वास्तव में किसी भी मनुष्य के विकास तथा
के मार्ग में बाधक यह जितनी है उतनी कोई अन्य
नहीं। यह कोई शारीरिक बिमारी नहीं बल्कि एक
या विचार मात्र है। हीनता का यह विचार कि हम दू
हीन हैं जिस मनुष्य में आ गया फिर उसकी उन्नति
विकास होना रुक जाता है। ऐसे व्यक्ति के लिये
कार्य असहनीय एवं भार लगने लगता है वह आलसी

सुस्त हो जाता है उसमें भय, शर्म तथा निरुत्साह भर जाता है। उसका अपना आत्मविश्वास समाप्त हो जाता है। वह अपने आपको समाज के अन्य व्यक्तियों के साथ समन्वय नहीं कर पाता है। अन्य लोगों से मिलने, बातचीत करने तथा समाज में सामान्यस्थिति में स्वयं को रखने में अपने को हीन तथा असफल समझता है।

आइये अब हम हीनता के बारे में कुछ और गहन अध्ययन करें। मनुष्य भावनाओं का पुतला है। कुछ भावना विनाशात्मक होती हैं और कुछ रचनात्मक। विनाशात्मक भावनाएं जिनमें (१) ईर्ष्या (२) बदले की भावना (३) बहुत ज्यादा सोचविचार करना (४) कोई निर्णय न कर पाना (५) जीवन को अस्वीकार करना ये कुछ विनाशकारी भावना ही मनुष्य में हीन भावना को जन्म देती हैं। और फिर मनुष्य अपने को दूसरों से हीन, कमजोर समझने लगता हैं। हम जो चीज हमारे पास है उससे आनन्द लेने के बजाय हम दूसरे लोगों के पास जो कुछ हैं उससे दुख अनुभव करते हैं।

उपरोक्त अध्ययन से यह तो आप समझ ही गये होंगे कि हीन भावना एक व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में कितनी बड़ी रुकावट है।

हीनता का भाव किसी भी व्यक्ति मे एकदम से नहीं आता। यह बहुत धीरे धीरे सामाजिक तथा पारिवारिक वातावरण के द्वारा धीरे धीरे आता है। पहले तो व्यक्ति

धीरे धीरे अपने को दबाता, अपनी भावना को अन्दर घुटाता, सहता जाता है परन्तु काफी समय के पश्चात्, वह अपने आपको हीन समझने लग उसका साहस, आत्मविश्वास समाप्त हो जाता है सोचने लगता है कि वह जो भी कार्य करेगा उसमें नहीं मिल पायेगी। इस डर से वह किसी भी कार्य को करने में हिचकिचाता है, डरता है, चिन्ता करता है, करता है। यही हीनता है।

अब हमें यह देखना है कि इस प्रकार की भाव छुटकारा कैसे प्राप्त हो। सबसे प्रमुख, और महत्वपू इस भावना कि यह है कि हम यह विचार अपने निकाल दें कि संसार हमारे बारे में क्या कहेगा? आलो के भय से हम आगे नहीं बढ़ पाते। जहाँतक लोगों के का सम्बध है उन्हें कहने दीजिये। लोगों को बोल अधिकार है। आप अपनी ओर से अच्छा से अच्छा कीजिये यदि लोग आपकी हंसी उड़ाते हैं आलोचना हैं तो करने दीजिये। जिस प्रकार के वातावरण की चाह करते हैं उसे बनाने कि भय को छोड़कर कि आ कार्य में असफल होंगे, आत्मविश्वास के साथ प्रयत्न आत्म विश्वास के साथ किया हुआ कार्य अवश्य सफल इसके लिये कुछ आत्मसंकेत के वाक्यों का प्रतिदिन करो:—

मित्र बनाने की कला दूसरी महत्वपूर्ण प्रयत्न है

भाव को निकालने का। अधिक से अधिक मित्र वह भी सच्चा मित्र बनाओ इसके लिये पहले खुद अच्छे बनो अर्थात् परोपकार, हँसमुख, ईमानदारी एवं गुणवान बनो। अधिक से अधिक मित्र बनाओ और उनमें व्यस्त रहो।

सामाजिक कार्यों में दिलचस्पी लो। समाज में प्रेम का वातावरण पैदा करो। अपने अन्दर इस प्रकार के गुण विकसित करो कि प्रत्येक व्यक्ति तुम्हें चाहे। मैं तो समझता हूँ जिस व्यक्ति में परोपकार, प्रेम, ईमानदारी, और किसी को भी हानि पहुँचाने की प्रवृति नहीं है। ऐसे व्यक्ति को प्रत्येक चाहेगा। ऐसे व्यक्ति में कभी यह हीन भाव नहीं आ सकता जिस व्यक्ति में दूसरों के प्रति ईर्ष्या नहीं है हीनता उससे कोसो दूर भागती है।

हीन भावना वाले व्यक्ति को अपने आपको आशावान बनाने की चेष्टा करनी चाहिये।

हमें अपने आपको समझना और अपनी भावनाओं के बिगड़े हुये सन्तुलन को ठीक करना है। दूसरों से अधिक आशा मत करो। अपने ऊपर निर्भर रहना सीखिये।

जिन्दगी न मरकर जीये जाने का नाम है जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है,

मुर्दा दिल खाक जिया करते हैं।

मुझे यह डर है दिल ए जिन्दा तू न मर जाये,
जिन्दगानी इबारत है तेरे जीने से ॥

होता यह है कि जो लोग हीन भाव से पीड़ित हों उन्हें परिवार से पर्याप्त स्नेह नहीं मिल पाता। इस धीरे धीरे उनमें हीनता की भावना आ जाती है वह परिवार वाले लोगों में अपने को हीन समझता है फि पारिवारिक लोगों से ईर्ष्या करने लगता है। इसके पारिवारिक लोगों को उसे अधिक स्नेह प्रदान करना चा और यह दिखाना चाहिये कि उसमें काफी आत्मविश्वा तथा वह किसी भी प्रकार से हीन नहीं है साथ ही हीन भावना से पीड़ित व्यक्ति को भी अपने अन्दर ऐसे जैसे त्याग, परोपकार, सेवा, ईमानदारी, श्रद्धा एवं भौतिक प्रेम आदि गुणों का विकास करना चाहिये त लोग उसकी ओर आकर्षित हों।

अन्त में मैं यही कहूँगा कि हिम्मत तो कभी हारनी चाहिये और प्रत्येक व्यक्ति को अपनी पूरी कोशिश क चाहिये। एक न एक दिन सफलता अवश्य मिलेगी।

जो तूफानों से टकरायेगा ।
उसकी किश्ती उसका साहिल॥
वहीं से दर हकीकत जिन्दगी की राह मिल
सफीना गर्क हो जाये जहाँ टकरा के तूफां से

# प्राकृतिक जीवन

ले. योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

(गतांक से आगे)

## गृह और संस्कार

गृह, मठ, मन्दिर, आश्रम, कुटी आदि में मानव निवास करता है। सामान्यत: मन्दिर, मठ, आश्रम को पवित्र मानते हुये वहाँ पर सत्पुरुष तथा परमेश्वर का निवास विशेष रूप से माना जाता है। धूप, दीप, नैवेद्य आदि सुगंधित द्रव्य, घंटा, भगवान् की मूर्ति, सच्छास्त्रों का श्रवण मनन, योगाभ्यास, भजन, पूजन, यज्ञ, जप-तप आदि के योग्य जगहों को मठ-मन्दिर तथा आश्रम कहा जाता है। घर की पवित्रता, शान्त वातावरण तथा आनन्द के उपकरण साधन-सामग्री के आधार से घर को मठ मन्दिर के समान पवित्र तथा शान्त बना सकते हैं। जीवन को उन्नत बनाने हेतु सदा प्रयत्नशील रहना पड़ता है। जगह, जलवायु, संगति, आर्थिक परिस्थिति, आहार-विहार, आचार-विचार, विद्या इन सबके साथ जीवन का आधार बनता है। सर्व प्रथम उच्च जीवन की प्रबल इच्छा होनी अनिवार्य है पश्चात् यथा शक्ति कर्तव्य में धैर्य के साथ प्रयत्नरत होना पड़ता है।

## प्राकृतिक जीवन के साथ मन्दिरों का सम्बन्ध

भगवान् शंकर के अधिकांश मन्दिर एकान्त तथा पर्वतीय प्रदेशों में है। वहां पर मनकी शान्ति, उच्च भावना, भगवान्

का दर्शन और इच्छापूर्ति के लिये श्रद्धा भाजन लोग
हैं। जीवन में परिश्रम का अनुभव बिना लिये सुख
प्राप्त होता है। भगवान् के दर्शनार्थ जाते समय अभीष्ट
प्राप्ति की भावना, शारीरिक परिश्रम, शुद्ध हवा, वन
अथवा उच्च प्रदेश के दृश्य से अनेक लाभ प्राप्त होते
रोगी का शरीर रोग मुक्त हो जाता है। मानसिक बीमारी
होती है। फल सिद्धि प्राप्त होती है। योग और वेद शा
का कहना है कि परमेश्वर सर्व व्यापक है इससे कई लो
का मानना है प्रभु दर्शन का लाभ घरमें रहते हुये ही उ
चाहिये। जंगल में, मन्दिर में क्यों कर जाना चाहि
इसका कारण बहुत ही कम लोग जानते हैं।

## जंगल में मंगल है।

समस्त संसार का व्यवहार चल रहा है श्रद्धा, प्रेम त
स्वार्थ वृत्ति से। दीर्घ जीवन, नीरोगी जीवन, पवित्र जी
निर्वाह के लिये भले क्यों न हो धन की आवश्यकता म
जीवन में स्वाभाविक रूप से बनी रहा करती है।
पूर्ति के लिये जब व्यक्ति अन्यान्य साधनों से पूर्ति नहीं हो
देखता तो भगवान् की शरण लेने की सोचता है। मो
बस अथवा अन्य वाहन मन्दिर के पास नहीं जाते हों
अच्छा है। कमसे कम ४-६ मील पैदल जाना पड़ता
उच्च प्रदेश हो, वृक्ष लतादिकों से पूर्ण वन्यप्रदेश हो।
जल वहाँ प्राप्त होता हो। वायु मंडल शुद्ध हो, जन-प्र
कम हो। किसी प्रकार के अनिष्टकारी दुर्व्यसनों से प्र

वहाँ के निवासी न हों। ऐसी जगह में बना मन्दिर पवित्र कहा जाता है। ऐसी जगह पहुँचने के लिये शरीर को व्यायाम मिलता है। सूर्य किरणों से जीवन तत्व मिलता है जिससे पाचन शक्ति बढ़ जाती है। पावों में थकावट होने से मन से कुविचार दूर होकरके भगवान् नाम स्मरण के विचार उत्पन्न होते हैं। प्राकृतिक दृश्यों को देखते हुये घर संसार की उपाधि तथा जीवन के अन्य कटु अनुभवों का विस्मरण होता है। पक्षीगण, हरे भरे लता वृक्षादिकों का दर्शन करते समय अन्तःकरण में परम पिता परमात्मा की अवर्णनीय सृष्टि की याद हो आती है। सारे भारत भरमें प्रत्येक राज्य में ऐसी अनेक जगह हैं। परन्तु उन जगहों में लोग बाग या तो शिवरात्रि जैसे पर्वों पर जाते हैं अथवा ग्रीष्म काल में जलवायु परिवर्तनार्थ ही जाते हैं। हमेशा जाने की प्रवृत्ति सामान्यतः नहीं दीखती।

## प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक स्थान

बम्बई से लगभग १० मील से २०० मील के अन्तर्गत माथेरान, महाबलेश्वर, पंचगनी, भीमाशंकर, त्र्यम्बकेश्वर, थाना से पनवेल तक के पहाड़ी भाग, थाना से नासिक के पर्वतीय प्रदेश, थाना से बोरीवली तक का पहाड़ी प्रदेश आदि प्राकृतिक सौन्दर्य के अनेक स्थान हैं।

## तुंगारेश्वर का श्रेष्ठ तथा रम्य स्थान

पाठकों की जानकारी के लिए अनेकानेक स्थानों में से एक स्थान तुंगारेश्वर का संक्षिप्त परिचय दे रहा हूँ। यह

स्थान बम्बई से लगभग ४३-४४ पर है। बम्बई नग लगभग ४५ लाख की जन संख्या होगी परन्तु इस स्था जानकारी बहुत कम लोगों को होगी ! जिन्हें जानका उनमें से प्रत्यक्ष रूपसे बहुत ही कम लोग गये होंगे क्यों शहरों में रहने वालों की आदत विशेषतः वाहन से उधर जाने की होती है, पैदल जाने में हिचकिचाते हैं। सहन करने को तैयार नहीं रहते हैं। कुछ लोग शर्म हैं। अधिकांश लोग रविवार अथवा दूसरी किसी छुट्टी अवसर पर सिनेमा-नाटक, तमाशे आदि मनोरंजन के स्थ में जाकर जीवन के अमूल्य सुख से वंचित रहकर हानि जीवन व्यतीत करने में लगे रहते हैं। यह हालत केवल ब की हो ऐसा नहीं अपितु समस्त भारत के शहरवासियों यही हालत है।

## तुंगारेश्वर पर्वत का रास्ता

बम्बई से पश्चिम रेल्वे से बसई (बेसीन रोड) स्टे तक जाना चाहिये। बसई बम्बई से ३६ मील पर है। वहाँ सुबह ८॥, ११।, और १ बजे कामण गांव जाने के लिए मिलती है। कभी २ बसके समयमें थोड़ासा फेर फार जाया करता है। बसई से ४ मील की दूरी पर बस से उ जाना चाहिए। वहांसे बांई बाजू के पैदल मार्ग से चढ़ पड़ता है। लगभग एक मील समतल मार्ग होगा उसके ३ मील पर्वत की चढ़ाई है। ग्रीष्म ऋतुमें मन्दिर के मोटर जाती है अन्यथा पैदल ही चलना पड़ता है। रास्ते

छोटे २ चार पांच नाले पार करने पड़ते हैं। मन्दिर के समीप जलकुण्ड तथा जल प्रपात देखने योग्य है। चारों ओर पर्वतीय प्रदेश को देखते हुए मनमें प्राकृतिक सौन्दर्य का आनन्द भर जाता है।

## कदली वन

तुंगारेश्वर पर्वत में कदली वृक्ष हजारों की संख्या में हैं। शास्त्रों में कदली (जंगली केले के वृक्ष) वन को पवित्र तथा योगी, ऋषि-मुनियों का स्थान कहा गया है। पुण्य भूमि कहा गया है। यहाँ पर शंकरजी का पुरातन मंदिर है। यहाँ के ट्रस्टी लोगों ने आज से १२ वर्ष पूर्व इस मन्दिर का जीर्णोद्धार किया था। मुख्य मंदिर के समीप ही देवी का मन्दिर है। तुंगारेश्वर मन्दिर से ६ मील के अंतर पर ऊपर की ओर जलाशय है। जलाशय का नाम परशुराम कुण्ड है। ऊपर जाने का मार्ग विकट होने से बहुत कम लोग ही ऊपर जाते हैं। उक्त जलाशय से वर्षभर देवी के मन्दिर के पास वाले जलाशय में जल आता रहता है। यह जल पवित्र माना जाता है। मन्दिर की ओर से एक छोटी धर्मशाला है जिसमें कोई भी व्यक्ति ३ दिन तक रह सकता है। मन्दिर में पुजारी रहता है।

बम्बई नगर के समीपवर्ती प्राकृतिक सौन्दर्य के स्थानों में से तुंगारेश्वर एक है। यहां पर न टेलीफोन है, न बिजली है, न नल का जल है। न दुकान है, न डाकघर। यहाँ पर दीपक के सहारे रहकर जलाशय के पानी के प्रयोग से रहा जाता है

## योगसे तन मनका विकास कीजिये

सदा सुख प्राप्त करने के लिये प्राकृतिक जीवन करना होगा। अप्राकृतिक जीवन से अशान्ति एवं दुःख है इसके विपरीत प्राकृतिक जीवन से सुख शान्ति की हुआ करती है। अतः सदा प्राकृतिक जीवन जीने कीजिये।

—क्रम

* * *

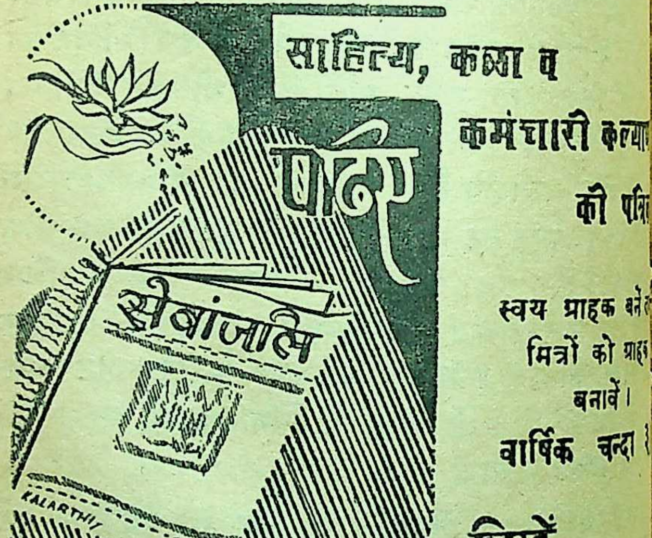

साहित्य, कला व

कर्मचारी कल्या

की पत्रि

पढ़िए

सेवांजलि

स्वय ग्राहक बनें

मित्रों को ग्राहक

बनावें।

वार्षिक चन्दा

लिखें

पो० बाक्स-१९

पटना-१

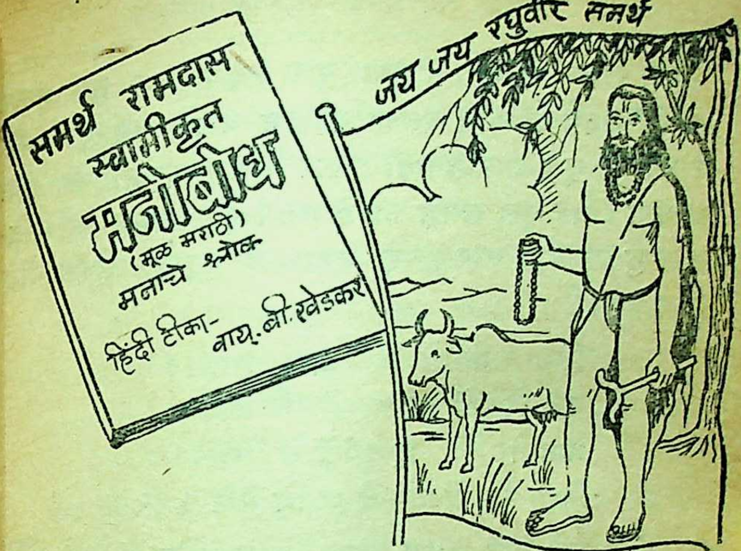
जय जय रघुवीर समर्थ
समर्थ रामदास स्वामीकृत
मनोबोध
(मूळ मराठी)
मनाचे श्लोक
हिंदी टीका-
वाय. बी. खेडकर

[ अगस्त १९६४ के अंक में समर्थ रामदास स्वामी कृत 'मनोबोध' के (मनाचे श्लोक) दस श्लोकों का भावार्थ आप पढ़ चुके हैं। सितम्बर के इस अंक में उसके आगे का थोड़ा हिस्सा प्रस्तुत करते हैं। उसे वाचकगण ध्यान पूर्वक पढ़ें और जीवन में उतारने का प्रयत्न करें। —सम्पादक]

मना ! सांग पां रावणा काय झालें।
अकस्मात तें राज्य सर्वं बुडालें॥
म्हणोनी कुडी वासना सांडि वेगीं।
बळें लागला काळ हा पाठि लागी॥ ११॥

यहां पर फिर रामदास स्वामी 'मनको' प्यार से समझाते हैं और पूछते हैं, हे मन ! सर्वसत्ताधीश दश मुख रावण जिसने सब देवताओं को बन्दी करके रखा था उस बल-

शाली रावण का अन्त में क्या हुआ ? क्या यह तुम
नहीं ? समय आते ही उसका बलाढय राज्य नष्ट हुआ
उसको भी धूल चाटनी पड़ी। फिर सामान्य जनों की
ही क्या ? यह पूरा समझ कर हे मन ! दुष्ट वासना को
लम्ब ठुकरा दो। कारण वह महाकाल (मृत्यु) सबके
लगा हुआ है।

जिवा कर्मयोगें जनीं जन्म झाला।
परी शेवटीं काळमूखीं निमाला॥
महाथोर ते मृत्युपंथेंचि गेले।
किती एक तें जन्मले आणि मेले॥ १२॥

और देखो 'मन राजा!' इस मृत्यु लोक में कर्म
वासना के कारण जीव जन्म लेता है। चन्द रोज मौज उ
है और अन्त में उसी महाकाल का ग्रास बन जाता है।
महाराजा, सुष्ट दुष्ट, चक्रवर्ती, हयपति, सेनापति, शा
स्त्री-पुरुष सारे के सारे इसी मृत्युपंथ से गये हैं। इस
डल में आज तक कई लोगों ने जन्म लिया है और मर
हैं। उनकी कोई गिनती नहीं है।

मना ! पाहतां सत्य हें मृत्यु भूमी।
जिता बोलती सर्वही जीव मी मी॥
चिरंजीव हे सर्वही मानिताती।
अकस्मात सांडूनियां सर्व जाती॥ १३॥

इस श्लोकमें समर्थजी संसार का कुछ और चित्र खीं
हैं। वे कहते हैं--अरे भोले मन! इस दृश्य संसार को

क्या समझ बैठा है ? यह तो वास्तव में मृत्युभूमि है। फिर भी सारे छोटे मोटे अपने को असमर्थ समझते हैं, उतना ही नहीं हर जीव अपने को चिरंजीव मानकर दौड़ धूप करता है परन्तु अकस्मात 'महाकाल' की कृपा होते ही विचारा सब धन दौलत, पुत्र कलत्र यहीं छोड़ कर चल बसता है।

मरे एक त्याचा दुजा शोक वाहे।
अकस्मात तोही पुढें जात आहे॥
पुरेना जनीं लोभ रे क्षोभ होतो।
म्हणोनीं जनीं मागुता जन्म घेतो॥ १४॥

इस संसार में हमें क्या नजर आता है ? यही न, कि हर रोज कोई न कोई मरता है और दूसरा उसके लिये हाय-हाय करके शोक मनाता हैं। पर यह क्या ? जो शोक करता है वह भी मृत्यु का शिकार बन प्रथम मृत व्यक्ति के पीछे उसी रास्ते से जाता है। इसलिये हे मन ! अति लोभ, अतिक्रोध हानि कारक हैं। उससे दुःख होते रहते हैं और यही कारण है की मनुष्य बारबार जन्म मृत्यु के चक्करों में पड़ता है। समझ में आया मनराजा !

मना सर्वथा सत्य सोडूं नको रे।
मना सर्वथा मिथ्य मांडूं नको रे॥
मना सत्य तें सत्य वाचें वदावे।
मना मिथ्य तें मिथ्य सोडूनि द्यावे॥ १५॥

हे मन ! किसी हालत में सत्य को न छोड़ना और मिथ्या या झूठ का प्रति पादन भूल से भी न करना। जो सत्य हो वही बोलना और झूठ को तुरंत ही त्याग देना।

बहू हिंपुटीं होइजे मायपोटीं।
नको रे मना यातना तेचि मोठी।
निरोधें पचे कोंडिलें गर्भवासीं।
अधोमूख रे दुःख त्या बाळकासीं॥ १६॥

अरे मनराजा ! जरा सोचो तो सही। माता के बन्दी बालक को कितना कष्ट होता है ! पेट में सं से बन्द होने से और अधोमुख याने शिर नीचे होने बहुत दुख होता।

न बोले मना राघवावीण कांहीं।
जनीं वाउगें बोलतां सौख्य नाहीं॥
घडीनें घडी काळ आयुष्य नेता।
देहांतीं तुला कोण सोडूं पहातो ? १७॥

यहां पर समर्थ महाराज मन को फिर इशारा दे हे प्यारे मन ! रामनाम के अतिरिक्त अपनी वाणी से कुछ भी न बोलना। कारण झूठ और अशिष्ट बातें ब वाणी अपवित्र होती है। अतएव न उसमें सुख है न है। और हे मन ! सावधान! सचेत हो जावो। वह काल तुम्हारी आयु घड़ी २ से, कण २ से कम कर रहा है। अन्तिम समय आते ही उस काल पाश से तुम्हें कौन येगा। किसमें शक्ति है तुम्हें छुड़ाने की ? इसलिये हे सावधान ! सावधान !!

देहे रक्षणा कारणें यत्न केला।
परी शेवटीं काळ घेवोनि गेला॥

करी रे मना भक्ति या राघवाची।
पुढें अंतरीं सोडि चिन्ता भवाची ॥ १८॥

इस नश्वर देह का रक्षण करने के लिये, हे मन! तुम कितने प्रयत्न शील रहे। क्या २ नहीं किया तुमने? परंतु फल क्या मिला। वह महाकाल आखिर उसे लेही गया। सच है न मनोदेव। इससे छुटकारा पाने के लिये उपाय क्या? यही कि मेरे प्रभु रामचन्द्रकी शरण लो और इस संसार की माया मोहकी व्यर्थ चिंता न कर उस प्रभु की उपासना कर। तेरा कल्याण होगा।

भवाच्या भये काय भीतोस लंडी।
धरी रे मना धीर धाकासि सांडी॥
रघूनायका सारिखा स्वामी शोरीं।
नुपेक्षी कदा कोपल्या दंडधारी॥ १९॥

संसार सागर में कभी २ तूफान आते हैं। दिशायें धूसर हो जाती हैं। मार्ग दिखता नहीं। मन अशान्त और हताश हो जाता है। भयानक आंधी को देखकर मन घबरा जाता है। स्वामी रामदास सन्मुख आते हैं और मनको धीरज बंधाते हैं। वाहरे मन भय्या! इतना तूं डरपोक है? भवसागर के क्षणिक तूफान से और मायावी आँधी से तूं इतना डरता है? धत् तेरी! अरे, तूफान जैसा आया वैसाही यथावकाश में चला भी जायेगा। इसलिये तूफान के भय को निकाल फेंक बाहर और दृढ़ संकल्प हो तूफान का डटके सामना कर। धनुर्धारी राम प्रभु जैसा स्वामी तेरा रक्षणकर्ता है यह विश्वास रख। यद्यपि प्रत्यक्ष यमराज भी तेरी ओर वक्र दृष्टि से देखने लगे तो भी प्रभु 'राम' तेरी उपेक्षा न करेंगे।

दिनानाथ हा राम कोदंडधारी।
पुढें देखतां काळ पोटीं थरारी ॥
मना वाक्य नेमस्त हें सत्यमानी।
नुपेक्षी कदा राम दासाभिमानी ॥२०॥

और समझे मनराजा! कोदंडधारी प्रभु राम को देखते ही 'महाकाल' भी भय खाता है, डरता है। अन्यों की क्या? यह जो तुझसे बार २ कहता हूं वह है, सरल है—बेकार है ऐसा भूल से भी न समझना। श्रद्धा रखकर प्रभुकी उपासना करो। अपने दास या का अभिमानी प्रभु 'राम' तुम्हारी कदापि उपेक्षा न क

—क्रमश

* * *

प्राकृतिक चिकित्सा-साहित्य का अग्रदूत

'प्राकृतिक जीवन'

प्रधान सम्पादक : डा० के० आर० दिलकश
संयुक्त सम्पादक : डा० गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर
एक प्रति—३७ नये पैसे : वार्षिक ४) रुपये मात्र

स्वास्थ्य सम्बन्धी सुन्दर और उपयोगी साहित्य के अपने प्रश्नों के उत्तर लें। शंकाओं का समाधान करावें अपने स्वास्थ्य को उन्नत करने, नीरोग रखने तथा दीर्घ बनने के उपाय जानें। आज ही ४) रुपया भेजकर ग्राहक जाइये और मौका न चूकिये। नमूने की प्रति मुफ्त मंगा

कार्यालय—
आरोग्य निकेतन, डाल
लखनऊ (उ. प्र.)

# मानसिक रोगों की आयुर्वेदिक चिकित्सा

लेखक देवेन्द्रनाथ शर्मा

शरीर और मनका आपस में समवाय सम्बन्ध रहता है, चाहे शरीर स्वस्थावस्था में हो अथवा रुग्णावस्था में। मानसिक रोगों के विविध कारणों का पता 'डाक्टर स्टाकिंरस' ( Stakinrus ) ने १२४७ ई के मार्च माह में, लगा कर कहा था कि मस्तिष्कगत समस्त विकारों में मस्तिष्कके तन्तुओं में एक प्रकार का मेटाबोलिक ( सांस्थानिक ) असन्तुलन आ जाता है। फलतः वे अस्वाभाविक रूप से कार्य करने लगते हैं।

'डाक्टर पिकवर्थ' ने भी सन् १९५१ में इसका समर्थन करते हुए कहा कि जब मस्तिष्क की मेटाबोलिक क्रिया में असन्तुलन होता है तब उनके कार्यों की ज्ञान और चेष्टावाही नाड़ी अपना कार्य सुचारू रूप से करने में असमर्थ हो जाती

है जिससे सम्पूर्ण मानसिक कार्य अव्यवस्थित हो जाता मानसिक रोगों को दो भागों में विभाजित किया जा है। (१) साइकोन्यूरोसिस (२) और साइकोसिस।

साइकोन्यूरोसिस—इस श्रेणी के रोगों में प्रायः मस्तिष्कगत विकार नहीं होता है। रोगी देखने में माल्म पड़ता है, परन्तु उसे अपने चारों तरफ की का स्पष्ट ज्ञान रहता है और यदि वह ज्ञान लुप्त होता तो कुछ ही क्षण के लिये। कुछ रोगों के नाम इस प्रकार हिस्टीरिया, मिर्गी, नाड़ी दौर्बल्य (न्यूरेस्थीनिया) विकृति तथा मानसिक चिन्तन की अवस्था। साइको इसमें रोगी के मस्तिष्क कोषों में कुछ ऐसे आर्गेनिक वर्तन आ जाते हैं जिससे मानसिक विकृति हो जाती तथा रोगी को अपने शरीर और अपने चारों तरफ का भी ज्ञान नहीं रहता। जैसे—उन्माद (साइजोफ्रेनिया) पा (पेरानोइया), प्रसूति उन्माद आदि।

चिकित्सा—मस्तिष्क विकार के रोगी के लिए विश्वास, निद्रा, पौष्टिक आहार विहार, स्वस्थ्य मनब के साधन इत्यादि की उचित व्यवस्था होनी चाहिये। प्रा काल से ही समस्त मानसिक रोगों में निम्नांकित औष के प्रयोग से लाभ होता रहा है।

ब्राह्मी, शंखपुष्पी, भृंगराज, उग्रगन्धा (कुलञ्जन) गन्धा (घवलवरुआ) जीवन्ती आदि।

ब्राह्मी—यह पानी के समीप आर्द्र स्थानों में सर्वत्र

जाती है। स्वाद कडुआ होने से तथा जल के समीप होने से इसे जलनीम भी कहते हैं। इसके प्रत्येक अंग औषधि के कार्य में लाये जाते हैं।

ब्राह्मी का प्रयोग हिस्टीरिया, उन्माद एवं स्वरभंग में विशेषकर किया जाता है। मानसिक दौर्बल्यावस्था में ४ से ८ रत्ती की मात्रा में इसके पतों का चूर्ण उपयोगी है। हिस्टीरिया इत्यादि रोगों में १॥ से १ तोला स्वरस या घृत उपयोगी होता है। उपर्युक्त रोगों को छोड़ कर ब्राह्मी पागलपन, मिर्गी तथा कोरिया इत्यादि रोगों में नाड़ीबल्य औषधि के रूप में अति लाभदायक सिद्ध होती है।

शंखपुष्पी—यह ४००० फुट की ऊंचाई वाले प्रायः सभी क्षेत्रों में पाई जाती है। इसके फूल सफेद रंग के छोटे छोटे शंखाकार के होते हैं इसलिये इसे शंखपुष्पी की संज्ञा दी गई है। बंगाल में इसे शंखहुली भी कहते हैं। इसके पांचों अंग चिकित्सा कार्य में लाये जाते हैं। उन्माद में इसका २-४ तोला स्वरस देने से शौच होता है। उन्माद का मद भी उतरने लगता है। आधुनिक समय में स्मरण शक्ति बढ़ाने के लिये मस्तिष्क-बल्य औषधि के रूपमें इसका अधिकतर प्रयोग हो रहा है। कुछ लोगों का कथन है कि इस औषधि के निरंतर सेवन से रोगी अपनी पिछली भूली बातों को शीघ्र याद कर लेता है। व्यवहार में इस औषधि का प्रयोग हिस्टीरिया अनिद्रा, बुद्धिभ्रम एवं विष में किया जाता है।

भृंगराज—साधारणतः इसको भंगरेया कह कर पुकारते

हैं। यह दो प्रकार का होता है। काला एवं सफेद भृं भारत के सभी प्रान्तों में विशेषकर जलाशयों के पाया जाता है। यह मस्तिष्क को ठंढा रखने वाली एक औषधि है। यही कारण है कि इसे तैल के रूप में सिर लगाया जाता है भृंगराज का रस का १॥ तोला से २ तक मुंह द्वारा सेवन करने से मृगी, हिस्टीरिया तथा नाड़ीजन्य आक्षेपावस्था शांत होती है। यह एक अवसादक औषधि है। जिसका प्रायः सभी मानसिक में उपयोग होता है।

उग्रगन्धा— इसको वच भी कहते हैं। यह नागापहाड़ी तथा उत्तर प्रदेश के कई स्थानों पर तथा सजल स्थानों पर उत्पन्न होती है। इसके विशेष प्रकार की गन्ध आती है जो जड़ में खाश रहती है। उसके मूल स्तम्भ को टुकड़े टुकड़े करके बेचा जाता है इसे 'कुलञ्जन' भी कहते हैं। उग्रगन्धा प्रयोग नाड़ीबल्य औषधि के रूप में पागलपन हिस्टी समस्त आक्षेपावस्था में पक्षाघात आदि रोगों में यह कार्य करता है। इसके सेवन से मेधा शक्ति बढ़ती है। प्रयोग मधु या दूध के साथ करना चाहिये। ब्राह्मी, शंख तथा वच को समान मात्रा में लेकर इसके चूर्ण को १ १ माशा मधु या घृत के साथ सेवन करने से उन्माद, शक्ति ह्रास, वाणी की जड़ता (तुतलापन) आदि दूर बुद्धि का विकास होता है। बेहोशी दूर करने के लिये

समकक्ष औषधियों के साथ इसका प्रयोग उत्तम है।

धवलबरूआ— इस औषधिने चिकित्सा जगत में अपना विचित्र चमत्कार दिखलाया है। जो कि आयुर्वेद की एक बहुत बड़ी देन है। इसका विदेशों में भी अत्यधिक मात्रा में निर्यात हो रहा है। उच्च रक्त चाप तथा मानसिक रोगों के लिये तो इसे अमोघ औषधि ही घोषित कर दिया गया है। धवलबरूआ हिमालय के निचले प्रदेशों से लेकर आसाम तक सभी स्थानों में पाया जाता है। इसकी लम्बाई १–२ फुट होती है। इसमें सफेद फूल लगता है। इसमें शामक, निद्राकर तथा रक्तचाप कम करने का एक उत्तम गुण होता है। इसके शामक गुणों के कारण पागलपन एवं अन्य मानसिक व्याधियों में इसके मूल का खासकर व्यवहार होता है। साथ ही उच्च रक्तचाप कम करने के लिये भी इसका प्रयोग होता है। उपर्युक्त गुणों के कारण कई स्थानों पर इसे 'पागलपन की दवा' के नाम से ही पुकारने लगे हैं। विदेशी वैज्ञानिकों ने भी इसके गुणों से आकृष्ट होकर इसका अत्यधिक प्रयाग करना आरम्भ कर दिया है। यह औषधि परीक्षणों द्वारा उच्च रक्तचाप, अनिद्रा, मानसिक उत्तेजना तथा अन्य मस्तिष्कगत विकारों की बहुत ही उत्कृष्ट औषधि सिद्ध हुई है।

जीवन्ती— एक प्रकार का शाक है। जो शक्कर के समान मीठे फूलोंवाली लता के रूप में पायी जाती है। यह सहारनपुर तथा देहरादून के समीप घास के मैदानों में हुआ

करती है। इसका प्रयोग औषधि के रूप में मस्तिष् उत्तेजना को कम करने के लिये किया जाता है। सा सहवास के कारण उत्पन्न स्नायु दौर्बल्य की अवस्था को करता है। अतः यह औषधि उत्तम वदस्थापक एवं र है। इसकी मात्रा ३–६ माशे है।

मानसिक रोगों में सर्वप्रथम डाक्टरगण इन्सुलिन के द्वारा मस्तिष्क कोषोंमें उत्तेजना पहुँचाकर उसमें क्रियाशी पैदा किया करते थे। किन्तु यह विधि अधिक मंहगी जरासी असावधानी के कारण अधिक घातक सिद्ध हुई से इसका प्रचलन कुछ कम हो गया। परन्तु हर्ष का वि है कि आजकल एक ऐसी विधि का आविष्कार हुआ सर्वसाधारण के लिये आसानी से उपलब्ध हो सकती है वह घातक भी कम है। इस विधि को 'इलेक्ट्रिक कन्व थिरपी' (ई० सी० टी०) कहते हैं। इस विधि के अंदर औषधि कनपटी के दोनों ओर लगाते हैं उसी स्थान पर हल्का सा बिजली का करेण्ट पास करते हैं। इस करे पास होते ही रोगी के समस्त शरीर में एक प्रकार का के समान आक्षेप आता है और वह कुछ क्षण में बेहो जाता है। बाद में होश आने पर वह अपने को स्वस्थ अनुभव करता है। इससे इसका प्रभाव मस्तिष्क बहुत ही अच्छा पड़ता है और इस प्रकार लगातार जारी रहने पर रोगी का मानसिक विकार धीरे धीरे होने लगता है।

नैतिक एवं सांस्कृतिक विचारों का श्रेष्ठ मासिक

✥ ज्ञान यज्ञ ✥

० आध्यात्मिकता का सही--सही स्वरूप देने वाला।
० जीवन-निर्माण में सहायक। ० वैयक्तिक दोष एवं सामाजिक कुरीतियों को उखाड़ फेंकने में तत्पर।
० आकर्षक कलेवर। ० शिक्षाप्रद लेख ० मर्म-स्पर्शी साहित्य से परिपूर्ण।

वार्षिक मूल्य आज ही ३)रु. भेजकर ग्राहक बनिए। नमूने के लिये ३१ पै. के टिकिट भेजें।

पता—'ज्ञान-यज्ञ' मासिक
युग निर्माण प्रेस, बिलासपुर (म. प्र.)

शीतल और सुगन्धित
हिमकान्ति तेल
रजिस्टर्ड
दिमागी ताकत व बालों को बढ़ाने वाला सर्वोत्तम केश तेल.
हिमकान्ति तेल
HIMKANTI OIL
उत्पादक राजा बालकृष्णलाल हीरालाल कं.
२८० मेनरोड, दादर (पो.बॉ ५५२०) बाम्बई १४

# अखिल भा॰ गोरक्षा सम्मेलन

[१ अगस्त १९६४]

(अध्यक्षपद से श्री गजाधरजी सोमाणी
सदस्य लोक सभा का भाषण)

[सेठ श्री गजाधरजी सोमाणी सदस्य लोकसभा धार्मिक भावनाओं की जितनी ही सराहना की जाय उत कम है। अखिल भारतीय गोरक्षा सम्मेलन ने आपको अ पद पर आसीन कर आपकी धार्मिकता की जो मान्यता है वह आप के अनुरूप ही है।

—सम्पा

नमो ब्रह्मण्यदेवाय गोब्राह्मण हिताय च
जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः

पूज्य गुरुजी श्री गोलवलकरजी महाराज!

परम् श्रद्धेय श्री ब्रह्मचारीजी महाराज, स्वागताध्यक्ष देवियो और सज्जनो!

अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आज अ. भा. गोर सम्मेलन श्री बृजनन्दन, गोपिकावल्लभ भगवान् श्रीकृष्ण पावन लीला भूमि श्री वृन्दावन में सम्पन्न हो रहा है। स्वागत समिति एवं गोसेवक समाज का अत्यन्त आभारी कि उन्होंने आज के इस महत्वपूर्ण सम्मेलन की अध्यक्ष करने का आदेश मुझे प्रदान किया है। अच्छा तो यह हो कि अन्य किसी सुयोग्य वयोवृद्ध विद्वान्, धर्माचार्य प्रभावशाली नेता को इस पद को सुशोभित करने के लिये निमंत्रित किया जाता। मैंने तो यह इच्छा प्रकट की थी कि सम्मेलन में मैं ऐसे ही बिना किसी पद के भाग लूं परन्तु

बड़ों की स्नेहपूर्ण आज्ञा को मैं टाल नहीं सकता था इसलिये आज मैं आपके सामने अध्यक्ष के रूप में उपस्थित हूँ। मैं इस पद के लिये अपने को सर्वथा अयोग्य समझता हूँ परन्तु आशा करता हूँ कि आप विशिष्ठ महानुभावों के मार्गदर्शन एवं सहयोग से इस सम्मेलन की कार्यवाही सुचारु रूप से सम्पन्न हो सकेगी। परम श्रद्धेय ब्रह्मचारी श्री प्रभुदत्तजी महाराज का अभी जो गोचारण व्रत चल रहा है उससे हमें अतीत काल की गोसेवा की उज्वल झांकी का दिव्य दर्शन होता है। जिस पुण्य भूमि श्री वृन्दावन में आज हम लोग एकत्रित हुये हैं वहीं भगवान्, श्री कृष्ण ने अपने बाल्यकाल में इसी प्रकार अपने सखाओं के साथ गोचारण की दिव्य लीला की थी। हमारी प्राचीन संस्कृति के महान प्रतीक पूज्य ब्रह्मचारीजी महाराज श्री उसी आदर्श परम्परा की ज्योति सारे देश में फैलाने के लिये इस कठोर व्रत का पालन कर रहे हैं। ऐसे तपस्वी संत के इस दिव्य अनुष्ठान से इस सम्मेलन को महान प्रेरणा मिलेगी। वास्तव में सम्मेलन का आयोजन इन्हीं की प्रेरणा से हुआ है एवं मुझे आशा है कि ऐसे त्यागी महापुरुष की सन्निधि में सम्पन्न होनेवाला यह सम्मेलन अपने लक्ष्य की प्राप्ति के लिये ठोस योजना बनाने में सफल हो सकेगा।

आगे कुछ कहने के पहले मैं दो शब्द हमारे राष्ट्रनायक दिवंगत महान नेता पंडित जवाहरलालजी नेहरु के निधन पर कहना चाहता हूँ। उन्होंने पहले स्वतन्त्रता संग्राम में

और स्वतन्त्रता की प्राप्ति के पश्चात् प्रधान मन्त्री के रू जिस प्रकार से देश भर का नेतृत्व किया है उसका उ इतिहास सदा स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा। पं. नेहरूजी निधन से जो देश की अपार क्षति हुई है उसे शब्दों व्यक्त नहीं किया जा सकता। आशा है हमारे नये प्र मन्त्री श्री लालबहादुरजी शास्त्री देश की वर्तमान समस्या को हल करने में एवं दिवंगत नेहरूजी के नवभारत निर्माण ऐतिहासिक कार्यक्रम को आगे बढ़ाने में उसी दृढ़ता के अग्रसर होंगे।

इसी प्रसंग में मैं हमारे गोरक्षा के क्षेत्र में मार्गदर्श करने वाले एवं सतत प्रयत्नशील दो अन्य महानुभवों निधन पर भी शोक संवेदना प्रकट करना अपना कर्त समझता हूँ। लाला हरदेवसहायजी जीवनभर गोहत्या निषेध एवं गोसंवर्धन के लिये अथक परिश्रम करते रहे उनकी गोरक्षा क्षेत्र में की गई सेवाएँ बहुत ही महत्वपूर्ण ए बहुमूल्य हैं तथा उन सबका यथोचित वर्णन इस छोटे भाषण में होना सम्भव नहीं है। इसी प्रकार पंडित ठाकुर दासजी भार्गव समय समय पर लोक सभा में एवं बाहर गोरक्षा के लिये प्रबल आवाज उठाते रहे। इन दोनों महापुरुषों के निधन से हमारे गोरक्षा आन्दोलन की ऐसी क्षति हुई है कि जिसकी पूर्ति बहुत ही कठिन है। मैं इ दोनों महान गो सेवकों के प्रति अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ।

गोसेवा और गोरक्षा की उन्नति भारतीय संस्कृति के अभिन्न अंग हैं। हिन्दू, जैन, सिक्ख सभी धर्मावलम्बियों के लिये गोरक्षा धार्मिक दृष्टि से मुख्य कर्तव्य है। गोरक्षा का आध्यात्मिक तथा धार्मिक दृष्टिकोण वास्तव में बड़े महत्व का है। इसका सांस्कृतिक महत्त्व भी सर्व विदित है। भारतवर्ष में अत्यन्त प्राचीन काल से भगवान् के अवतारों एवं अन्य बड़े बड़े महापुरुषों द्वारा गोसेवा और गोपालन होता चला आया है। रघुवंशी राजा दिलीप नन्दिनी गौ के लिये अपने प्राण देने को प्रस्तुत हो गये थे। भगवान् श्रीराम का अवतार ही गौ-ब्राह्मण हितार्थ हुआ था। भगवान् श्रीकृष्ण का समस्त बाल्यजीवन गोसेवा में बीता। उन्होंने स्वयं वनों में घूम घूमकर गोवत्सों को चराया। इसी से इनका नाम गोपाल पड़ा। कामधेनु ने अपने दूध से तथा देवराज इन्द्र ने ऐरावत की सूण्ड के द्वारा लाये हुये आकाश गंगा के जल से भगवान् श्रीकृष्ण का अभिषेक करके उनको गोविन्द नाम से संबोधित किया था। द्वारका में वे पहले पहल ब्यायी हुई दुधारु बछडों वाली सीधी शांत, वस्त्रालंकारों से समलंकृत तेरह हजार गायों का प्रतिदिन दान करते थे। गोपालन का इतिहास केवल कृष्ण अवतार से ही नहीं प्रारम्भ होता। उसकी प्राचीनता वैदिक है। जब अखिल विश्व सभ्यता के प्रसव काल के अंधकार में डूबा हुआ था, भारत ने सभ्यता के दिनमणि का प्रथम प्रकाश देखा और हमारे अपौरुषेय वेदों ने गोपालन का गान मुक्त कंठ से किया। अथर्व वेद में तो संपूण गोसुक्त की ही रचना है। गोगरिमा पर उपनिषद

भी मौन नहीं है। रामायण, महाभारत, पुराणों मे स्मृतियों में गोमहिमा का यशोगान अपार वांगमय में गया है। हमारे धर्म ग्रंथ तो यहां तक कह गये हैं कि के रोम २ में ३३ कोटि देवता वास करते हैं। इसलिये स्मृ कारों ने गोवन्दन और गोपूजन की व्यवस्था पा प्रायश्चित का पवित्रतम साधन माना है। राज्याभिषे पुत्रलाभ जैसे शुभ अवसरों पर ब्राह्मणों और ऋषियों राजा सहस्रों की संख्या में गायें दान करता था। उपनि काल से गौगरिमा मानव के परम गन्तव्य मोक्ष का मा माना जाने लगा है। जीवन के चार आदर्शों धर्म, अर्थ, का और मोक्ष का साधन गाय है। उसे सुरभि, कामधेनु, दे की माता, वसुओं की पुत्री आदि संज्ञाओं से समाद्रित कि है। हम कितने गरिमावान हैं जो गोमाता और गोपाल चरणों से पवित्र इस धराखण्ड पर एकत्रित होकर गोरक्षा जैसे महत्वपूर्ण विषय पर विचार करने बैठे हैं।

ज्ञात इतिहास में भी गोपालन और गौशालाओं का निर्माण एक राज्य व्यापार माना जाता था। गुप्त कालीन धर्मिष्ठ महाराजा हजारों की संख्या में गोदान किया करते थे। यह धार्मिक परम्परा न्यूनाधिक हर्षवर्धन के राज्यकाल तक चलती रही, इसके बाद मुसलमानों के आक्रमण से पदाक्रांत भारत अपनी आर्य परम्परा का पालन कर सकने में असमर्थ पाया गया परन्तु मुसलमानी शासन में भी गाय का कम महत्व नहीं समझा जाता था। बाबर हुमायूं और अकबर ने गोवध रोक दिया था और कई मुसलमान शासकों ने गायों

की नस्ल को उन्नत बनाया था। अकबर की नीति ने धर्म निरपेक्षता का स्वागत किया और सब धर्मों को अपने क्षेत्र में पूर्ण स्वतंत्रता प्रदान की। अंग्रेजों के आने के बाद ही उत्तरोत्तर गोहत्या बढ़ी है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। राष्ट्रीय पैदावार और कृषि में गाय और बैल का महत्त्वपूर्ण योगदान स्पष्ट है। करीब ७५ प्रतिशत् भारत की जनता कृषि में लगी हुई है और भारत की राष्ट्रीय आय में कृषि उत्पादन का ५० प्रतिशत हिस्सा है। आर्थिक दृष्टि से विशेषज्ञों द्वारा प्रमाणित है कि वास्तव में इस देश का आर्थिक विकास गोसंवर्धन से ही संभव है। यह तो कटु सत्य है कि इस समय गायों की दशा बड़ी सोचनीय है और यदि हमें कृषि उत्पादन की समस्या हल करनी है तो हमें गो-रक्षा एवं गोसंवर्धन के ऐसे विशाल एवं विस्तृत कार्यक्रम रखने पड़ेंगे कि जिनसे हमारी गायें वास्तव में कामधेनु का पद प्राप्त कर सकें एवं कृषि के लिये यथेष्ट संख्या में बलिष्ठ बैल उपलब्ध हो सकें। बलिष्ठ बैलों की कार्यक्षमता बढ़ाने से खेती में कितनी ही उन्नति हो सकती है किन्तु खेद की बात है कि इस ओर सरकार तथा अर्थ शास्त्रियों का उचित ध्यान नहीं गया है। पंचवर्षीय योजनाओं में बैलों के विकाश की कोई भी अलग योजना नहीं दिखाई देती है। चाहे आज ट्रैक्टर की कितनी ही अधिक प्रचार की योजना हो परन्तु हमारे लाखों गांवों में यदि खेती का कोई उपयुक्त साधन हो सकता है तो वह केवल बैल ही। इसके अतिरिक्त हमारे किसानों की पूंजी

सीमित है। आज की स्थिति में तो खेती की शक्ति का सहारा बैल ही होंगे और उनकी जननी गाय को उठाये बगैरे कृषि की उन्नति होनी कठिन है। गायों बैलों की दशा को समुन्नत करना ऐसा विषय है जि हमारे अर्थ शास्त्रियों एवं विशेषज्ञों का ध्यान आकृष्ट हो चाहिये। मेरा सुझाव है कि इस प्रश्न का वैज्ञानिक आर्थिक ढंग से अध्ययन करने के लिये गोसंवर्धन कौंसि को उचित कार्यवाही करनी चाहिये।

सरकार को यह बात स्पष्ट रूप से समझनी चाहिये कृषि उत्पादन को बढ़ाने के लिये गौसम्वर्धन का कार्य अनिवार्य है। विशुद्ध आर्थिक दृष्टिकोण से भी देखा जाय भारत का कल्याण गोसम्वर्धन एवं गोरक्षण के बिना कि भी तरह सम्भव नहीं है। खेद का विषय है कि गोसम्वर्ध से होने वाले अपरिमित आर्थिक लाभ के सम्बन्ध में सरका एवं योजना आयोग उतनी दिलचस्पी नहीं ले रहे हैं जित इस प्रश्न के महत्व को देखते हुये लेनी चाहिये।

गाय का हमारे देश में इस प्रकार धार्मिक और आर्थि दोनों ही दृष्टियों से बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। खेद का विष है कि इतना सब कुछ होते हुये भी आज भी देश में ह गोहत्या का कलंक दूर नहीं कर सके। हमारे संविधान की ४८ वीं धारा के अनुसार दुधारु पशुओं, गाय एवं बछड़ों बध, निषेध है। इस विषय को लेकर प्रसिद्ध गोभक्त सेठ गोविन्ददासजी ने लोक सभा में काफी प्रयत्न किया

किन्तु दुर्भाग्य से केन्द्रीय सरकार ने सेठ गोविन्ददासजी के सुझाव को स्वीकृत नहीं किया एवम् राज्य सरकारों पर इसकी जिम्मेदारी डाल दी। यह तो स्पष्ट है कि इस पुण्य भूमि भारत में जब तक गोहत्या बन्द नहीं हो सकती तब तक हमें चैन नहीं हो सकता। दुर्भाग्य का विषय है कि स्वतन्त्रता मिलने के बाद भी जिस गाय के प्रति देश के करोड़ों लोगों की जो पुनीत एवं दृढ़ भावना है उसकी ओर हमें बार बार सरकार का ध्यान आकृष्ट करना पड़ता है।

फिर भी हमारे गोसेवा क्षेत्र में काम करने वाले कुछ लोगों की प्रबल प्रेरणा से गोहत्या निषेध के लिये कुछ वर्षों में महत्वपूर्ण कार्य हुआ है उत्तर प्रदेश बिहार एवम् पंजाब जैसे प्रमुख राज्यों में कुछ वर्षों पहिले गोहत्या निषेध कानून स्वीकृत हुआ है। इस प्रकार इस समय निम्न राज्यों में गोबध बन्द है:

मैसूर, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, दिल्ली, महाराष्ट्र का भाग विदर्भ प्रदेश, गुजरात, काश्मीर, हिमाचल प्रदेश, केरल आदि।

अब प्रमुख सवाल महाराष्ट्र, बंगाल और मद्रास जैसे मुख्य राज्यों का है जहां पर हमें गोबध बन्द कराने के कानून स्वीकृत कराने का प्रयत्न करना पड़ेगा। खेद की बात है कि बंगाल और महाराष्ट्र दोनों ही राज्यों में आधुनिक ढंग के नये कत्ल कारखानों के निर्माण की योजनायें चल रही हैं। इन कत्ल कारखानों की स्थापना के विरुद्ध काफी आवाज उठाई गई

है एवम् हमें भी इन राज्यों के प्रस्तावित इन आधुनिक का कारखानों की स्थापना के विरुद्ध जनमत को और भी प्र करने में सहयोग देना है। इस प्रकार हमें गोहत्या विरु बन्द कराने के लिये अब शेष राज्यों से कानून के द्वारा इस कार्य को सम्पन्न कराना है। जिन राज्यों में अभी त गोवध चालू है वहां पर हमें गोवध निषेध के विरुद्ध का वाही करने के लिये एक संगठित योजना करनी होगी। ज तक कि उपयोगी एवं दुधारु गायों के वध का सवाल है, य कानून सभी राज्यों में प्रसारित है कि दूध देनेवाली अच् गायों का वध किसी भी हालत में नहीं होना चाहिये लेकिन अनुभव से यह बात सिद्ध हो चुकी है कि जब त कतई गोवध बन्द नहीं होता तब तक दूध देनेवाली एवम् अच्छी गायों का वध भी रुकना सम्भव नहीं है। इ लिये उपयोगी गायों के रक्षण की दृष्टि से भी गोवध तुरन्त बन्द होना नितांत आवश्यक है। फिर कुछ लोग यह दलील देते हैं कि बूढ़ी, अपंग या निरुपयोगी गायों की संख्या ब जाने से उनके पोषण का भार इतना अधिक बढ़ जाता है कि उससे उपयोगी गायों का संरक्षण भी कठिन बन जाता है लेकिन यह कल्पना भी निराधार प्रमाणित हो चुकी है। दूध नहीं देने वाली गायों के गोबर एवम् गोमूत्र से कृषि उत्पादन के लिये जो खाद मिल सकती है उसका मूल्य ऐसी अनुपयोगी गायों के संरक्षण पर खर्च होनेवाली रकम से काफी अधिक है। अनुपयोगी गायों के संरक्षण के लिये जो गोसदनों की योजना है उसमें जितनी प्रगति होनी चाहिये

वह नहीं हुई इस लिये आवश्यक है कि देश के विभिन्न स्थानों में जहां भी गोसदन चलाने के उपयुक्त जमीन मिलती है वहां गोसदनों को स्थापित करना चाहिये एवं अनुपयोगी गायों का पालन और संरक्षण वास्तव में गोसदनों के द्वारा होना चाहिये ।

गोवध बन्द के आन्दोलन के साथ साथ हमें गोसंवर्धन की समस्या की ओर भी पूर्ण ध्यान देना है । सरकार की ओर से इस संबन्ध में कुछ हो रहा है लेकिन यह कार्य इतना कठिन है कि इस में जन साधारण के क्रियात्मक सहयोग की आवश्यकता है । हमें यह अनुभव करना पड़ेगा कि गोमाता के प्रति धार्मिक भावना रखकर ही हम अपने कर्तव्य की इति समझ लें यह उचित नहीं होगा । गायों की नस्ल सुधारने एवं हर सम्भव तरीके गोवंश के विकास के लिये हमें देश व्यापी रचनात्मक कार्यक्रम बनाना होगा । इस सम्बन्ध में हमारे पिंजरापोल और गौशालाएँ काफी काम कर सकती हैं । अनुमान लगाया गया है कि हमारे देश में ३,९०० पिंजरापोल और गौशालायें हैं । जहां गायों की संख्या करीब ६ लाख है और उन पर प्रति वर्ष करीब ८ करोड़ रुपये खर्च होते हैं । पिंजरापोल और गौशालाओं में पंगु एवं लंगड़ी गायों की देखभाल का जो कार्य चल रहा है वह उचित ही है लेकिन जहां तक गौसम्वर्धन का सवाल है इसमें गौशालाओं द्वारा जितना कार्य हो रहा है उसे बहुत अधिक विस्तृत करने की आवश्यकता है । इसमें सरकार की ओर

से भी जो सहयोग गोवंश के विकास की योजनाओं के मिल रहा है उससे बहुत अधिक मिलना चाहिये। आर्थिक सहयोग गौशालाओं को ही मिल सकता है विशेष को नहीं, इसलिये हर एक गौशाला को गौस के रचनात्मक कार्यक्रम को अपने हाथ में लेना चाहिये सरकार तथा जनता के सहयोग से एक निश्चित अनुसार विशाल पैमाने पर गोसम्वर्धन का कार्य होना चाहिये। गौशालाओं के गौसम्वर्धन के कार्य को लरूप में अग्रसर करने के लिये हमें गौसम्वर्धन कौन्सिल एवम् अन्य साधनों के द्वारा कुछ ठोसकार्यवाही चाहिये। गौसम्वर्धन कौन्सिल के वर्तमान अध्यक्ष ढेबरभाई गौसेवा में काफी दिलचस्पी लेते हैं। अतएव कार्य को आगे बढ़ाने लिये हमें सब गौसेवकों के संगठि प्रयास से बड़े विशाल ढंग से आयोजन करना चाहिये आंकड़ों से पता चलता है कि गायों की नस्ल के में कुछ प्रगति होने के बदले हमारी गायों की दशा प्रतिदिन अवनत होती रही है। उदाहरण के लिये आंक से पता चलता है कि गाय का औसत दूध सन् १९५१ ४१३ पौंड था वह घटकर १९५६ में ३९१ पौंड हो गया था तथा अब भी हालत खराब हो गई होगी। इस लिये बात की अत्यन्त आवश्यकता है कि गायों की स्थिति सुधा एवं नस्लसुधारने पर सरकार और जनता को मिलकर राष्ट्र व्यापी विस्तृत योजना के अनुसार गोवंश के विका कार्यक्रम को सम्पन्न कराना चाहिये। अगर गोरक्षण एवं

सम्वर्धन का व्यवस्थित रूप से कार्यक्रम सम्पन्न किया जाय तो १५, २० वर्षों के सतत प्रयत्न से ही वर्तमान गोवंश की हीन दशा में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया जा सकता है। अनुमान लगाया गया है कि गायों के चारे और घास आदि की सुव्यवस्था होने से गायों के दूध में उत्तरोत्तर वृद्धि की जा सकती है। भारत में गाय जो इस समय औसतन करीब ४०० पौण्ड दूध देती है और भारतीयों को औसतन ४॥। औंस दूध मिलता है परन्तु अगर व्यवस्थित रूप से गोसम्वर्धन का कार्यक्रम किया जाय तो गायों का दूध प्रचुर मात्रा में बढ़ सकता है एवं प्रत्येक देशवासी को १० औंस की औसत के हिसाब से दूध मिल सकता है।

यह तो हुई गौशालाओं की बात लेकिन आखिर गौशालाओं का क्षेत्र भी तो सीमित ही है और गोसम्वर्धन का वास्तविक कार्य तो प्रत्येक शहर एवं गांव में व्यक्तिगत रूप में सम्पन्न होने से ही अपने लक्ष्य की पूर्ति होगी। जो लोग गायें रख सकें उनको यथा शक्ति अधिक से अधिक सुन्दर गायों के पोषण की जिम्मेदारी लेनी चाहिये। साथ ही जहां तक हो हर एक व्यक्ति को गोदुग्ध का व्यवहार करने का ही संकल्प करना चाहिये। जितनी अधिक गोदुग्ध की मांग बढ़ेगी उतना ही गोसम्वर्धन का कार्य विस्तृत होगा। अभी हाल ही में बम्बई की सुप्रसिद्ध आरे कोलोनी में श्री ढेबरभाई की प्रेरणा से कुछ गायों को भी वहां रखने की योजना बनी है जिसके थोड़े से समय के हिसाब से यह

पता चलता है कि यदि व्यवस्थित ढंग से गायों का पा
किया जाय तो भैंस की अपेक्षा गायें आर्थिक दृष्टि से क
लाभप्रद नहीं होंगीं। इससे यह स्पष्ट है कि अगर वास्तव
व्यवस्थित योजना के अनुसार प्रत्येक शहर एवं गांव
गायों की नस्ल सुधारने एवं गोदुध बढ़ाने का रचनात्म
कार्य किया जाय तो गोसेवा का महान कार्य हो सकता है

गौशालाओं के द्वारा गोसम्वर्धन के कार्य को विस्तृ करने के सम्बन्ध में मैंने ऊपर संकेत किया है, गौशालाओं के द्वारा गोसेवा के क्षेत्र में संगठित रूप से विशेष कार्यक्र सम्पन्न होना आवश्यक है, अभी जितनी गौशालायें हैं वे प्रायः सभी अपने सीमित कार्यक्षेत्र में ही लगी हुई हैं। गौशालाओं के संचालन में जो गोसेवक एवं कार्यकर्ता लगे हुये हैं वे उन संस्थाओं के द्वारा गोसेवा के कार्य को और भी अधिक विस्तृत कर सकते हैं। यह तो सम्भव नहीं कि प्रत्येक ग्राम में गौशाला स्थापित हो सके इस लिये आवश्यक यह है कि गौशालाओं के प्रबन्धक कार्यकर्त्ता अपने द्वारा संचालित गौशालाओं की व्यवस्था को चलावें एवम् साथ ही उसी शहर तथा उसके आसपास के क्षेत्र में गोरक्षण के कार्य को आगे बढ़ाने का सुव्यवस्थित प्रयत्न करें। प्रत्येक गांव में कम से कम १० प्रतिशत हिस्सा गोचर भूमि के लिये सुरक्षित रहना चाहिये। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जितनी भी गोचर भूमि खेती के काम में ले ली गई है वह वापिस गायों के लिये सुरक्षित रखने की व्यवस्था होनी चाहिये। इस कार्य की विस्तृत रूपरेखा की व्याख्या करना

यहां आवश्यक नहीं। मेरा तो इतना ही निवेदन है कि गोशालाओं के द्वारा अपने निकटवर्ती स्थानों में गोरक्षण के रचनात्मक कार्य को विस्तृत करने का ठोस प्रयत्न करना चाहिये।

हमें सदा इस बात का खयाल रखना है कि हमारी गायें जितनी कम दूध देनेवाली एवं जितनी ही दुर्बल होंगी, हमारा गोरक्षण का कार्य उतना ही कठिन बनता जायेगा। अक्सर लोग हमारी यह कटु आलोचना करते हैं जिस भारत भूमि में गोमाता के प्रति इतनी सुदृढ़ धार्मिक भावना है उसी देश में गायों की दशा बड़ी ही सोचनीय है। पाश्चात्य देशों में जहां गायों के प्रति धार्मिक भावना का कोई स्थान नहीं है वहां की गायें कितनी दुधारु एवं हृष्टपुष्ट होती हैं, यह बात छिपी नहीं है। इसलिये हमारा यह कर्तव्य है कि हमारे करोड़ों भारत वासियों के हृदय में गौमाता के प्रति जो भावना है उसका लाभ उठाकर हम गोरक्षण का रचनात्मक कार्यक्रम इतने व्यवस्थित एवं विशाल पैमाने पर सम्पन्न करें कि जिसके द्वारा वास्तव में हमारी गायों के विषय में क्रांतिकारी परिवर्तन हो सके। यह कार्य कठिन अवश्य है एवं इसमें समय, धैर्य एवं अध्यवसाय की आवश्यकता है। परन्तु यदि वास्तव में हमें गायों को अपनी भावना के अनुसार इस देश में स्थान देना है तो गोसम्वर्धन के इस उत्तरदायित्व से हम मुक्त नहीं हो सकते।

गोसम्वर्धन से सम्बन्ध रखने वाली मुख्य समस्या

हमारी असंख्य गायों के लिये गोचर भूमि उपलब्ध करने सवाल है। आज धीरे धीरे हम देख रहे हैं कि गोचर भू का अभाव होता चला जा रहा है। चारा एवं घास उत्पादन किस प्रकार से बढ़े इसके लिये व्यवस्थित यो के अनुसार कार्यवाही करनी पड़ेगी। जैसे जैसे अन्न समस्या कठिन होती जा रही है वैसे वैसे गोचर भूमि भी खेती के लिये व्यवहार में लिया जा रहा है। यह दु का विषय है कि प्राचीन काल में जब कि गोचर भूमि कभी भी खेती के काम लेने में बड़ा पाप समझा जाता और लोगों की धार्मिक भावना के कारण गोचर भू उत्तरोत्तर अधिक विस्तृत होती रहती थी। उसके विपरी आज गोचर भूमि का शनैः शनैः ह्रास हो रहा है एवं गा के लिये घास एवं चारे की समस्या दिन प्रति दिन अ बनती जा रही है। इसी तरह गायों की नस्ल सुधारने बड़ा विशाल कार्यक्रम हमारे सामने है। अच्छे सांडों व्यवस्था किये बिना इस समस्या का हल होना संभ नहीं है। इस प्रकार गोसम्वर्धन के क्षेत्र में हमारे सा बहुत सी समस्यायें है जिनको हल करने के लिये आ विशाल गोसेवक समाज की संगठित शक्ति का व्यवहा करना पड़ेगा। अगर यह मान लिया जाय कि अनुपयो गायों के वध से उपयोगी एवं दूध देने वाली गायों की अवस्था सुधर जायगी, तब तो आज जो ब्रिटिश शास काल से गोवध इस प्रकार से बढ़ता चला गया उसी अनुपात से उपयोगी गायों की अवस्था सुधरती जानी चाहिये थी लेकिन यह तो स्पष्ट है कि गोवध के उत्तरोत्त

होते हुये भी उपयोगी गायों का दिन प्रति दिन ह्रास होता चला जा रहा है।

गोरक्षा विषय ऐसा है कि इसके लिये लम्बे भाषणों की आवश्यकता नहीं है। अनेकों सम्मेलन समय समय पर हमारी विशाल भारतीयों की भावनाओं को व्यक्त करने के लिये होते रहे हैं। गोरक्षण संबंधी इतना अधिक साहित्य उपलब्ध है कि उसका अगर ठीक तरह से मनन किया जाय तो बहुत कुछ लाभ हो सकता है। मेरा निवेदन यह है कि हमें अब गोरक्षण के प्रश्न का केवल भावनात्मक दृष्टि से ही नहीं परन्तु व्यवहारिक दृष्टि से हल करने की ओर विशेष ध्यान देना है। इसके लिये कर्मठ गोसेवकों के संगठित प्रयास की आवश्यकता है। जन सहयोग के आधार पर प्रत्येक शहर एवं ग्राम में गोसेवकों का संगठन बनाने का एवं उसे क्रियात्मक रूप से सम्पन्न करने का प्रयत्न होना चाहिये। हम लोग प्रति वर्ष गोपाष्टमी का पवित्र त्यौहार मनाते हैं। गोपाष्टमी महोत्सव के ऊपर प्रत्येक शहर एवं गांव में विगत साल भर के गोसम्वर्धन के कार्य का सिंहावलोकन होना चाहिये एवं भविष्य में उस रचनात्मक क्षेत्र में किस प्रकार प्रगति हो, उसकी योजना बननी चाहिये। गोपाष्टमी के महोत्सव पर इस प्रकार केवल गायों की पूजा कर के ही हम अपने कर्तव्य का पालन नहीं समझ लें लेकिन उस दिन देश भर में गोसेवा के क्षेत्र में होने वाले कार्य के विश्लेषण के साथ भावी कार्यक्रम की रूप रेखा की चर्चा हर जगह होनी चाहिये।

अन्त में मुझे निवेदन यह करना है कि गोरक्षा के कार्य

को हमें दलगत भावनाओं से मुक्त रखना है। गोरक्षा कार्य में इस देश में रहने वाले सभी जाति, सम्प्रदाय, एवं संस्थाओं का उत्तरदायित्व होना चाहिये इसलिये ऐसे वातावरण का पोषण करना है कि जिस में गोरक्षा पुनीत कार्य में सभी वर्गों का सक्रिय सहयोग मिल सके इसमें हमारा भारत गोसेवक समाज काफी कार्य सकता भारत गोसेवक समाज के संगठन को सुदृढ़ बनाने की अत्य आवश्यकता है। हमारे कुछ मित्र इस संस्था चलाने अत्यन्त परिश्रम कर रहे हैं लेकिन कार्य की व्यापकता देखते हुये इस संस्था को हमें वास्तव में बहुत अधिक विस्त एवं सुदृढ़ बनाना पड़ेगा। मैं व्यापारी हूं और व्यापारी समा के आज देश के जनसेवा के अनेक कार्यों में करोड़ों रु सालाना व्यय होते हैं। 'कृषि गौरक्षण वाणिज्यम्,' भगवान श्रीकृष्ण की इस ऐतिहासिक उक्ति के आधार पर वैश समाज का गौरक्षा के लिये विशेष उत्तरदायित्व हो जाता है। आज जिस प्रकार व्यापारी समाज उद्योग धन्धों के विस्तार में लगा हुआ है उसी दृष्टि से गोसंवर्धन एवं गौरक्षण के कार्य को भी हमें एक व्यापारिक उद्योग धन्धे का रूप देना है। आर्थिक दृष्टि से व्यवस्थित रूप से चलने वाली गोपालन संस्था स्वावलम्बी बन सकती है इसलिये उद्योग धन्धों में लगी हुई व्यापारिक कम्पनियों को गोपालन के लिये वैज्ञानिक ढंग से संचालित दुग्धशालायें स्थापित करनी चाहियें। मेरा सुझाव है कि भारत गोसेवक समाज को देश भर के व्यापारी समाज के सामने गौपालन को व्यापारिक ढंग से चलाने वाली दुग्ध शालाओं के स्थापना का कार्यक्रम रखना

चाहिये। इस प्रकार गौरक्षा के विविध पहलुओं के अध्ययन करने एवं उनको रचनात्मक क्षेत्र में कार्यान्वित करने के लिये गोसेवक समाज का संगठन हमें सुदृढ़ बनाना चाहिये एवं उस संगठन के अन्तर्गत हमें प्रत्येक कार्यक्रम को संपन्न करने के लिये विविध समितियों का संगठन करना चाहिये ताकि गोरक्षण के विविध क्षेत्रों में रचनात्मक कार्य को एक साथ अग्रसर किया जा सके। गोवंश के उत्थान का प्रश्न इतना महत्वपूर्ण और इतना आवश्यक है कि हम उसके प्रति अब एक क्षण के लिए भी उदासीन नहीं रह सकते। हमारा धर्म है कि देश की समृद्धि के लिए और देश वासियों के सुख और शांति के लिए तुरन्त ही गोपालन के सही व उचित तरीकों की जानकारी प्राप्त करें तथा प्रत्येक गोपालक उसके अनुसार आचरण करे। सब से बड़ी आवश्यकता हमें उन कार्यकर्ताओं की है जो अपने समय का कुछ भाग व्यवस्थित रूप में गोसेवा के लिये दे सकें। भारत गोसेवक समाज को एक अपील निकालनी चाहिये जिसके आधार पर देश के प्रत्येक गांव और शहर में गोसेवकों का सुदृढ़ संगठन बन सके। आज जिन महापुरुषों, संतों एवं गोसेवकों के बीच अभी यह सम्मेलन हो रहा है उन सब के मार्गदर्शन से हमें एक ऐसे प्रभावशाली संगठन का निर्माण करना चाहिये कि जिससे गोरक्षा के कार्य को एक नवीन चेतना एवं स्फूर्ति प्राप्त हो। इस सम्मेलन द्वारा गोरक्षण एवं गोसम्वर्धन का जो भी कार्यक्रम निश्चित हो उसकी सफलता के लिए मैं उस जगन्नियन्ता परमेश्वर के चरणों में प्रार्थना करता हूँ व आप सभी लोगों से अपनी त्रुटियों के लिए क्षमा याचना करता हुआ अपने वक्तव्य को समाप्त करता हूँ।

( पृष्ठ १६ का शेष)

बने। उत्तम, मध्यम और अधम भावना के अनुसार ही व्यक्ति बन जाता है। प्रथमतः कल्पना उत्पन्न हुआ करती है फिर व्यक्ति उसी के आधार पर कर्म में प्रवृत्त होकर फल यानी भाग्य की प्राप्ति करता है। व्यक्ति को किसी भी क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करने हेतु विघ्नों का सामना करना पड़ता है। तब जा के फल प्राप्ति हुआ करती है। कलका किया गया कर्म आज का भाग्य बन जाता है। वस्तुतः व्यक्ति स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता है। प्रयत्न में असफलता मिलने की संभावना रहा करती है, परन्तु उसकी चिन्ता किये बिना ही सतर्क और सतेज बुद्धि के आधार से उत्तम कर्म करते रहने से उत्तम भाग्य बना करता है। माता-पिता के द्वारा धन (ऐश्वर्य) की प्राप्ति, अचानक सत्ताधारी बन जाना, गद्दी का स्वामी बनना और जमीन का मालिक बन जाने का अर्थ सर्व सामान्य लोग पूर्व जन्म का भाग्य समझा करते हैं वह सच्चा भाग्य नहीं है। क्षण भंगुर तथा उपाधि युक्त भाग्य है। ईर्ष्या, द्वेष, मद, मत्सर, रोग आदि अनेक आपत्तियां घेर लिया करती हैं। सच्चा भाग्य वह है जो परिश्रम, कष्ट सहन करके यथा योग्य धन संपत्ति प्राप्तकर परिवार, समाज की सेवा यथा योग्य रूप में किया करें और परम पुरुषार्थ के पंथ में प्रवेश कर आत्मसाक्षात्कार कर लें। इतिहास में ऐसे लोगों का नाम प्रतिदिन लिया जाता है जिन्होंने सत्य, अहिंसा, योग, वेदान्त के आधार से जनता जनार्दन की सेवा प्राण निकल जाने तक की। वह महा भाग्यवान् है। वर्तमान में भी वैसे लोग अस्तित्व में हैं जो परोपकारार्थ ही अपना

जीवन अर्पण कर डालते हैं। वे लोग ही सच्चे भाग्यवान् हैं।

श्री सिद्धप्पा करिअप्पा उलेकाटलि हुबली मैसूर राज्य पत्र संख्या २ प्रश्न १. मेरी आयु २५ वर्ष है। रोज सुबह कुछ आसन, पेट और आँख का व्यायाम करता हूँ। ७ बजे सुबह से ५ बजे सायं तक रेल्वे वर्कशाप में काम करता हूँ। शाम को थोड़ासा सूर्य नमस्कार, दंड, बैठक करने के बाद ठंडे पानी से नहाता हूँ। मैं मैट्रिक (जिसमें एक बार फेल हो चुका हूँ) परीक्षामें बैठना चाहता हूँ इसलिये रात को १२ बजे सोकर ५ बजे सुबह ही उठ जाता हूँ। पर जब मैं किताब लेकर पढ़ने बैठता हूँ तो केवल ५ मिनट में ही जोर की नींद आ जाती है, कितना ही कंट्रोल करने पर भी नहीं पढ़ सकता। इस नींद आने का कारण क्या है? इस नींद को रोककर (कम सोकर) कैसे अभ्यास करूँ? मैं चाय काफी न पीकर दूध ही पीता हूँ। बीड़ी सिगरेट भी नहीं पीता। शाकाहारी हूँ। कोई व्यसन नहीं। नींद आने के सिवाय कोई रोग नहीं कृपया उपचार बतायें।

उत्तर-१— प्रकृति के नियमानुसार दिन भर परिश्रम रात को विश्राम कर पुनः दिन को नवीन उत्साह के साथ कर्म करने में लग जाना चाहिये। यह नियम केवल मानव मात्र के लिये हो ऐसा नहीं अपितु जलचर, नभचर, थलचर सभी प्राणियों के लिये है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य सभी प्राणी बराबर प्रकृति के नियम का पालन करते हैं। केवल मनुष्य प्रकृति के नियम को भंग कर डालता है फलतः उसके विपरीत परिणाम का भागी बनता है। केवल मांसाहारी

प्राणियों के लिये प्रकृति ने रात्रि के समय शिकार हेतु और दिन के समय शयन करना निश्चित किया है। हारी प्राणियों का स्वभाव तमोगुणी होने से वे भयंकर निर्दयता पूर्वक राक्षसों के समान करते हैं। उनकी देखने में कम मालूम पड़ती है किन्तु बारंबार (दिन रात) नींद लेते रहते हैं। वे एक साथ नीद नहीं लेते। रातको १२ बजे सोकर ५ बजे तक नींद लेते हो, यह शारीरिक रचना तथा आपके कार्य के अनुरूप कम है। आप सोने के समय को बढ़ा लें यदि इसके विपरीत आ करेंगे तो बीमार पड़ने का अन्देसा हो सकता है। यदि कम से कम ८ घंटे नीद ले लें तो दिन में अथवा पढ़ने समय नीद नहीं आवेगी। मस्तिष्क के ज्ञानतन्तु तथा क्रि तन्तुओं में कार्य करते रहने से कमजोरी आ जाती है कमजोरी को दूर करने हेतु नींद लेना आवश्यक है। नीं से उनकी शक्ति बढ़ जाती है। रात के ९ बजे से प्रातः बजे तक नींद लें। प्रथम २ मास ८ से १० घंटे नींद फिर ८ घंटे लें। ऐसा करने से अनावश्यक समय में नीं नहीं आवेगी।

श्री खंडू भिकाजी प्रजापति लोनी (महाराष्ट्र)

पत्र संख्या ३

प्रश्न १ ला— क्या इस संसार में ईश्वर के सगुण रूप अस्तित्व है ? अगर है, तो इसके बारेमें विस्तारपूर्वक लिखें

प्रश्न २ रा— एक व्यक्ति ने मुझसे पूछा कि धर्मशास्त्रों में बताया है कि इस वसुंधरा को भगवान् शेष अपने मस्त

पर उठाये हैं। पर विज्ञान का कहना है कि पृथ्वी सूर्य के चारों ओर घूमती है। अगर विज्ञान सत्य कहता है तो अपने धर्मशास्त्र असत्य ठहरते हैं। बताइये उसे क्या जवाब दूँ?

प्रश्न ३ रा— संपादकजी क्या आपको मंत्रों के चमत्कार में विश्वास है? अगर है, तो किस आधार पर? कृपया विस्तारपूर्वक लिखिये।

उत्तर १— सूर्य, चंद्र, तारा मण्डल, पृथ्वी, महतत्व, आकाश, वायु, अग्नि, जल, ३३ कोटि देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर के साथ) ये सब निराकार भगवान् के सगुण (साकार) स्वरूप हैं। वायु के हाथ पांव आदि साधन दृष्टिगोचर नहीं होते हैं, किन्तु समुद्र से अगाध जल राशि को आकाश में ले जाकर सारी पृथ्वी को हरी भरी करने हेतु वर्षा के रूप में गिरा देना, आंधी द्वारा वृक्ष, पत्थर, माटी, रेती, घर आदि को विध्वंस कर अगणित रूप से नष्ट भ्रष्ट कर देना। प्राणीमात्र के श्वास द्वारा फेफड़ों में प्रवेश कर शरीर का हलन चलन में सहयोग देना आदि अवर्णनीय शक्ति का द्योतक वायु है। इसी प्रकार अग्नि का कार्य जीवनदाता, विध्वंसकारी, दीपक रूप से प्रकाश देना, आदि अनेक रूप से वर्णनातीत शक्ति का द्योतक है। ऐसे ही भिन्न २ स्वरूप तथा नाम गुण से पंचमहाभूत कार्य कर रहे हैं।

मानव भौतिक विज्ञान के क्षेत्र में नये २ अन्वेषण कर आगे बढ़ता जा रहा है किन्तु प्रकृति की आश्चर्य जनक शक्ति के सामने मानव निर्मित वैज्ञानिक साधन आगे नहीं बढ़ सके हैं। प्रकृति के विज्ञान में त्रुटियां नहीं दिखाई देती

हैं। मानव निर्मित वैज्ञानिक साधनों में त्रुटियां ही त्रुटि हैं। फिर भी ३३ कोटि देवताओं में मानव एक देव है। भी निरभिमानी, त्यागी, बैरागी, योग साधक, परोपकारी आत्मदर्शी मानव ही देव है और उसी में गुप्त रूप से अपार शक्ति का संचय रहता है। यही सगुण भगवान् का स्वरूप है। सार रूप से इतना ही पर्याप्त है।

उत्तर-२— भगवान् सर्वज्ञ व्यापक होने से शेष ना से पृथ्वी को उठाकर रखता हो यह तो भगवान् को सीमित करने की बात होगी। धर्मशास्त्रों का यह विषय नहीं पुराणों में ऐसी बातें मिलती हैं अतः धर्मशास्त्रों के असत्य होने का कोई भय नहीं है। पुराण तो बाद की रचनाएँ हैं उनमें सब अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन है। इस विश्व ब्रह्माण्ड में सारे ग्रह उपग्रह एक दूसरे ग्रह के आकर्षण से टिके हुये हैं। इन बातों में विज्ञान का सहारा लेना ही ठीक है। इससे अपने धर्मशास्त्रों पर कोई आंच आने की बात नहीं।

उत्तर-३— जैसे प्राणिमात्र के लिये आहार का आयोजन किया गया है किन्तु आहार के लिये प्राणी नहीं है। मन मर्कट के समान है। अस्थिर मन को सुस्थिर करने हेतु मंत्रों का आधार लिया गया है। मंत्रों के लिये मानव का जन्म नहीं है। कितना ही उत्कृष्ट मंत्र हो किन्तु श्रद्धा-विश्वास प्रेम न होने से मंत्र फलदायी नहीं होता है। इसका तात्पर्य यह है कि मंत्रों से अधिक शक्ति श्रद्धा-विश्वास, प्रेम में है।

हिंसावादी देवी उपासकों को गायत्री मंत्र के विषय में समझाते हुये विधि-विधान बताने पर भी जबतक हिंसा का स्वभाव, आहार-विहार हो, अश्रद्धा हो तब तक गायत्री मंत्र का जप निष्फल ही समझना चाहिये। अहिंसा वादियों को वेद मंत्र से अधिक लाभ होगा। अहिंसावादी होते हुये भी श्रद्धा विश्वास तथा पवित्र प्रेम होवे तो लाभ होगा अन्यथा नहीं। अर्थ के साथ मंत्रोच्चारण विशेष लाभदायी होता है। इसी कारण उपवीत देते समय गुरुजी मंत्रार्थ को समझाते हुये श्रद्धा प्रेम के आवेश को संपूर्ण रूप से बढ़ाते हुये मंत्र का जप करने को कहते हैं। मंत्र से भी अधिक शक्ति श्रद्धा विश्वास में है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं कि अनपढ़े लोग गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर अस्पष्ट उच्चारण करके भी अधिक लाभ उठाये हैं। श्रद्धाविहीन पढ़े-लिखे लोग मंत्रार्थ जानते हुये भी जैसे के तैसे ही रह गये।

श्री वी. बी. भट्ट चोटीला सुरेन्द्रनगर

पत्र संख्या ४

प्रश्न नं. १— ब्रह्मचर्य में स्थिर रहने का उपाय, जिससे की स्वप्नदोष भी न हों ?

प्रश्न नं. २— आसन करने से मेरे पैर में झुनझुनाहट होने के कारण एक आसन में अधिक देरतक नहीं बैठ सकता हूँ उसका उपाय ?

प्रश्न नं. ३— योग के लिये मैं दिन में ३ बार भस्त्रिका कुंभक प्राणायाम करता हूँ सो एक बार में मुझे कितने प्राणायम करने चाहियें और कैसे ?

प्रश्न ४— मैं दिन में तीन बार अभ्यास करता हूँ क्या तीनों बार क्या स्नान करके अभ्यास करना चाहिये ?

उत्तर-१— ब्रह्मचर्य को दृढ़ रखने के अनेक नियम हैं। उनमें से निम्न लिखित उपाय और नियम मुख्य हैं। कब्जियत न रहे, योगाभ्यास नित्यप्रति करें। शुद्ध सात्विक आहार का सेवन। माता-पिता तथा गुरु की तन, मन, धन से सेवा करें। दिन में सोना वर्जित रखें। रात को ८ घंटे नींद लेनी चाहिये। विषयों की मानसिक चिंतना से दूर रहें। ठंडे जल से स्नान करें। प्रभु स्मरण सदा मन से चलता रहे। शयन से पूर्व हाथ-पांव, मुख तथा नाभि के अधोभाग को ठंडे जल से धोना चाहिये। सिनेमा, नाटक, तमाशा आदि न देखें। हर एकादशी के दिन उपवास रखें। रातको ७॥ बजे तक भोजन कर लिया करें। रातको हल्का भोजन करें। स्वप्नदोष दूर करने के लिये रसायण चूर्ण २ मासतक शहद अथवा मक्खन के साथ हररोज प्रातःकाल आधा तोला लें। दिनमें ४ से ६ गिलास जल का सेवन करें। मन मोहक कपड़े न पहनें। स्वप्न दोष दूर करने के लिए विशेष रूप से लाभ दायक नौलीकर्म, पूर्ण पद्मासन, भुजंगासन, पूर्ण मत्स्येन्द्रासन, गोरक्षासन, सुप्त वज्रासन और वीर्य स्तंभनासन ये आसन

प्रत्येक २ से ३ मिनट करें।

उ. २—किसी भी आसन के करने के समय में वृद्धि प्रति दिन यदि एक मिनट के हिसाब से निरंतर की जाय तो पांव में झुनझुनाहट नहीं होगी। अभी जिस आसन में बैठकर आप अभ्यास करते हैं उसमें बैठने पर जब झुनझुनाहट का अभास मिले तो उस आसन को छोड़ दें, फिर समय देखकर दूसरे दिन से एक एक मिनट समय बढ़ायें, इस प्रकार निरंतर अभ्यास से आपकी शिकायत दूर हो जायगी

उ. ३—भस्त्रिका प्राणायाम प्रातः और सायं दो समय पेट जब खाली हो तब करें। एक बार में ३ से ६ भस्त्रिका प्राणायाम करें। चन्द्रनाड़ी से घर्षन करते हुए १० बार सांस छोड़ें पश्चात् बाई नाड़ी से पूरक कर यथा शक्ति कुंभक करें पश्चात् दाहिनी नासिका से पूरक के दूने समय तक रेचक करें। तुरन्त १० बार सूर्य नाड़ीसे १० बार घर्षण के साथ सांस छोड़े फिर सूर्य नाड़ी से पूरक कर यथा शक्ति कुंभक करें फिर चन्द्र नाड़ी से रेचक करें। इस प्रकार यह एक प्राणायाम होगा। ४ मात्रा पूरक १६ मात्रा कुंभक और ८ मात्रा रेचक करें। यह समय प्राणायाम के प्रारंभिक साधकों के लिये है। धीरे २ समय बढ़ाते हुये १६ मात्रा पूरक, ६४ मात्रा कुंभक तथा ३२ मात्रा रेचक करें। मूलबन्ध चालू रखें। कुंभक के समय जालंधर बन्ध तथा रेचक के समय उड्डीयानबन्ध करें।

उत्तर-४— स्नान केवल प्रातःकाल सुचारु रूप से कर लें। तीन बार न करें।

## श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम

१–इस योगाश्रम में प्रविष्ट ने के बाद साधक को बी सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना से हटा दिया जायेगा।

२–ली ई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी

३–ट्वाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आसन साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर स्थान में रखनी होंगी।

४–सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण होना आवश्यक होगा।

५–योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६–कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७–आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के २७रु. है

८–नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है बीच प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी हो समय प्रातःकाल ७।। से ९।। और सायंकाल ६ से ७।। है। दो में से किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

# श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

## (महत्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचार आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

**पुरुषों के लिये समय:**—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

**महिलाओंके लिये समयः**—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सबेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आनेवाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता है।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन, कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

**विशेष सूचना:**— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबंध नहीं है।

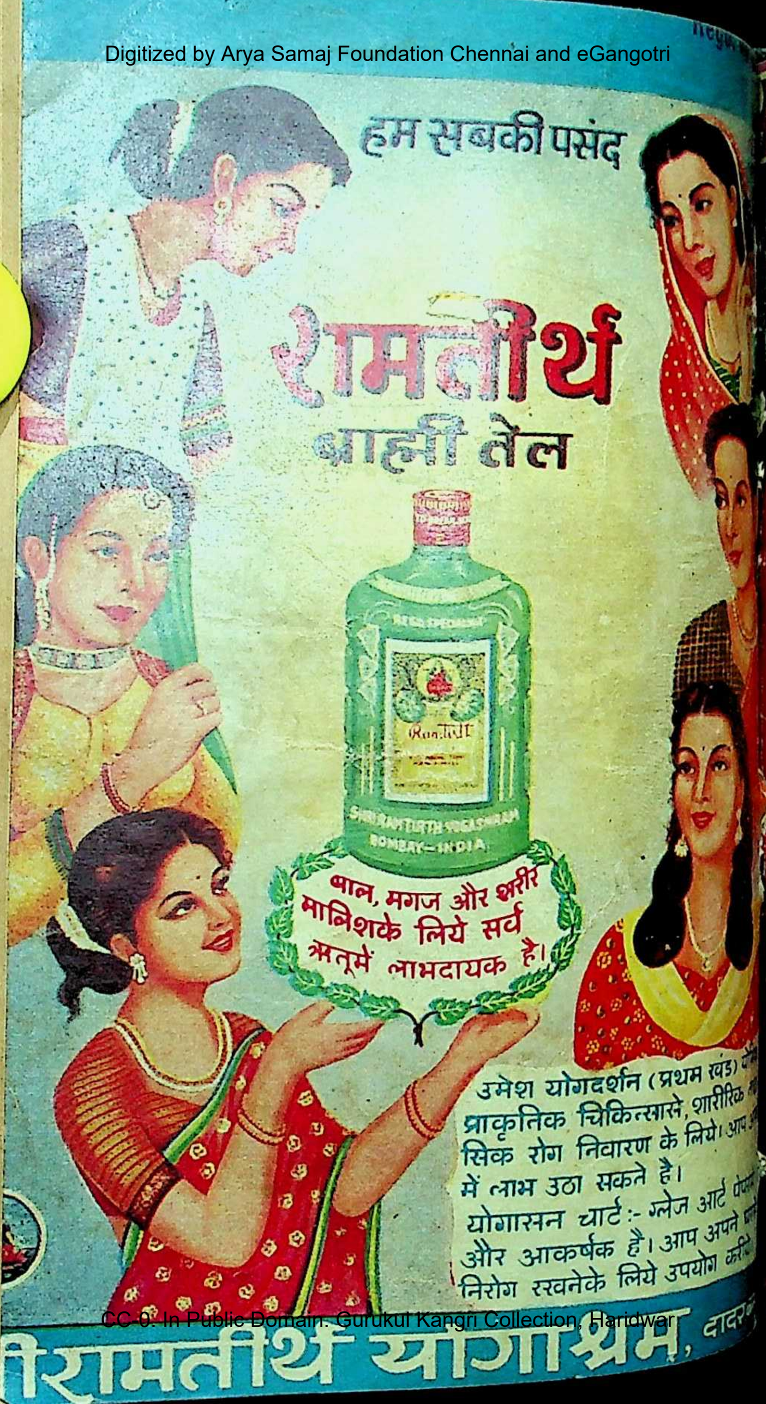
हम सबकी पसंद
रामतीर्थ
ब्राह्मी तेल
SHRI RAMTIRTH YOGASHRAM
BOMBAY—INDIA
बाल, मगज और शरीर
मानिशके लिये सर्व
ऋतूमें लाभदायक है।

उमेश योगदर्शन (प्रथम खंड)
प्राकृतिक चिकित्सासे, शारीरिक
सिक रोग निवारण के लिये। आप
में लाभ उठा सकते है।
योगासन चार्ट :- ग्लेज आर्ट
और आकर्षक है। आप अपने
निरोग रखनेके लिये उपयोग

रामतीर्थ योगाश्रम, दादर

ॐ

# मतीर्थ

न विकासक
त्तम
िक

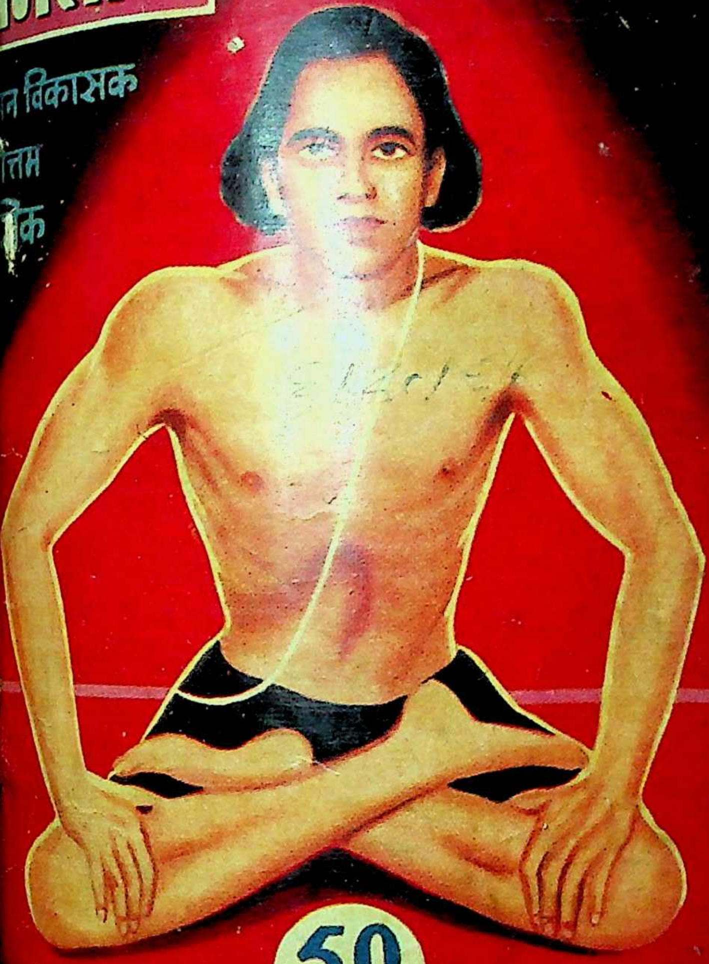

(वाम नवलि)

50
पैसे

अक्तोबर १९६४

श्री
मतीर्थ योगाश्रम

दादर
बम्बई १४ (भारत)

# श्री रामतीर्थ योगाश्रम

(बम्बई १४) के

## महत्वपूर्ण निर्माण तथा प्रकाशन

(घर-घर में उपयोगी)

## रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

(स्पेशल नं, १)

बाल, मस्तिक तथा शरीर की मालिश के लिये सभी प्रकृतिके के लिये सभी ऋतुओंमें अनुकूल है। सर्वत्र प्राप्य है।

## उमेश योगदर्शन

(प्रथम खण्ड)

( लेखकः—योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी )

अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, मराठी भाषाओंमें मिलता है। यह के मलशोधन कर्म, आसन, प्राकृतिक चिकित्सासे रोगनिवारण मानसोपचारका ज्ञान करानेवाला परमोत्तम ग्रन्थ है। ग्लेज पर विभिन्न आसनों तथा षट्कर्मों के १०८ चित्र हैं। पृष्ठ-संख्या के अन्तर्गत योगाभ्यासका विस्तृत बोध कराया गया है। मूल्य डाकव्यय २ रु.

**योगासन चित्रपटः**—योगासन चित्रपट अनेक रंगोंसे किया गया है। यह चित्रपट अनेकों आसनों से परिचित कराता है। आधारपर अपने घरपर ही आसनों का अभ्यास करके सदैव नीरोग सशक्त रह सकते हैं।

मूल्यः—डाकव्यय सहित ३ रु.

रुपया भेजनेका पताः—श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, पो. दादर,(बम्बई

# रामतीर्थ मासिक का

## दीपावली १९६४ का विशेषांक

पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि अपने चिर परिचित मासिक रामतीर्थ का दीपावली विशेषांक नवम्बर १९६४ का अंक होगा। उसमें हर मास की विशिष्ठ सामग्री जैसे योग, वेदान्त, गीता, रामायण, प्राकृतिक चिकित्सा, सदुपदेशपूर्ण कहानियाँ, प्रश्नोत्तर, उमेशवाणी के साथ २ दीपावली विषयक विशेष लेख रहेगे। इस प्रकार यह अंक सब प्रकार से संग्रहणीय होगा।

**लेखकों से:—** जो महानुभाव लेखक दीपावली विषयक लेख भेजना चाहे वे अक्टूबर १९६४ की दस तारीख तक भेजने की महती कृपा करें।

**विज्ञापनदाताओं से:—** निवेदन है कि वे अपने व्यापारिक प्रतिष्ठानों के विशिष्ठ उत्पादनों का विज्ञापन रामतीर्थ में देकर लाभ उठावें। रामतीर्थ भारत के सभी प्रान्तों में तो जाता ही है इसके साथ २ विश्व के हर कोने में जहाँ भारतीय रहते हैं जाता है।

विशेष विवरण के लिये लिखें अथवा मिलें

व्यवस्थापक विज्ञापन रामतीर्थ
श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.

मध्यप्रदेश की शिक्षण संस्थाओं और पुस्तकालयों
के लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

# रामतीर्थ

सम्पादक–
योगीराज
उमेशचन्द्रजी

वर्ष–५–अंक ७
अक्टूबर १९६४

इस अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफान
सम्पादक
व्यवस्थापक } 62899
विज्ञापन
तार–प्राणायाम दादर

| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| वैदिक प्रार्थना | संकलित | १० |
| उमेशवाणी | | ११ |
| नौली कर्म | उमेशयोगदर्शन ग्रंथसे | १२ |
| विजयादशमी | विश्वम्भरदत्त नौटियाल | १५ |
| पुस्तकालय | शिवनारायण सक्सेना | १७ |
| क्या गौतम बुद्ध की मृत्यु.... | वैदेहीशरण शर्मा | ३३ |
| अभिनय का पुरस्कार (कहानी) | नरेशचन्द्र मिश्र | ४० |
| ✓प्राणायाम की विधि तथा महत्व | नरेशचन्द्र भार्गव | ५५ |
| विश्वमैत्रीका संदेशवाहक रवीन्द्र | हरिमोहनलाल श्रीवास्तव | ६० |
| राष्ट्रनिर्माणमें विद्यार्थियों का दायित्व | राधेश्याम | ६८ |
| शिष्यभाव | रमेशचन्द्र दा. शिपी | ८१ |
| बच्चोंको बीमारी से कैसे बचायें | श्रीमती कांतादेवी चंदेल | ८८ |
| योग– अर्थ और मूल स्वरूप | शं. खानवेलकर | ९३ |

| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| आज और कल (कविता) | यतीन्द्रकुमार गर्ग | १०७ |
| मक्खियों से कैसे बचें ? | एस. एस. कनोई | १०९ |
| गीत (कविता) | रमाकान्त दीक्षित | ११५ |
| उषःपान | शिवेन्द्रप्रसाद गर्ग | ११७ |
| मानसमें शकुन विचार | कृष्णकुमार सौरभ | १२५ |
| जीवन और चिंतन | आर. एस. शास्त्री | १३४ |
| माया का दर्शन | श्याम मनोहर व्यास | १३९ |
| दो शहीद (कहानी) | सुधीरप्रकाश अग्रवाल | १४५ |
| रामचरित मानस | टीका योगीराज श्रीउमेशचन्द्रजी | १५२ |
| महात्मा गांधी | श्री प्रतिभा जैन | १७० |
| भारतेन्दु हरिश्चन्द्र | डा. गोपालप्रसाद 'वंशी' | १८१ |
| स्वानुभव | सुहास वि. पंडित | १९० |
| पाठकों के अभिमत | | १९२ |
| प्राकृतिक जीवन | योगीराज उमेशचन्द्रजी | १९४ |
| प्रश्नोत्तर | सम्पादकीय कलम से | १९९ |
| आश्रम समाचार | संवाददाता द्वारा | २०४ |

मुखपृष्ठ का परिचय—श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक संस्थापक को नौली कर्म करते हुए अवलोकन कीजिये। विशेष विवरण के लिए इसी अंक के पृष्ठ १२ पर देखें।

## विशेष सूचना

लेखकों से आग्रह है कि वे लेख भेजने से पूर्व 'लेखकों से' वाले पृष्ठ को पढ़ लें। फिर केवल अपनी रचना को निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११ के पते पर भेजें। लेख भेजने के बाद यदि किसी प्रकार का पत्र व्यवहार करना आवश्यक समझें तो उत्तर के लिये जबाबी कार्ड भेजना आवश्यक है। अन्यथा कोई उत्तर न भेजा जायेगा।

---

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० आर्थर रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्सेन्ट स्क्वेर स्ट्रीट नं. २ बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

# चातुर्मासके निमित्त ज्ञान य

## १५ नवम्बर १९६४ तक

# उमेश योगदर्शन [प्रथम खंड]

लेखक—योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

(अंग्रेजी, हिन्दी, मराठी और गुजराती भाषाओंमें)

योग ही जीवन और जीवन ही योग है। जैसे त्रिवेणी संगम (गंगा, यमुना, सरस्वती) में स्नान करने से अनेक जन्म जन्मान्तर के पाप ताप निर्मूल होकर पुण्य का उदय होता है। वैसे ही उमेश योगदर्शन प्रथम खंड का महत्व है। शरीर नीरोग, मनकी शांति तथा आत्म कल्याण के लिये उपयुक्त ग्रंथ रत्न है। शारीरिक रोग दूर करने के लिये सरल उपाय, मानसिक चिन्ता दूर करने के लिये महत्वपूर्ण मनोचिकित्सा तथा अन्य अनेक प्रकार के श्लाघनीय विषयों से परिपूर्ण यह ग्रंथ है। इसमें जगत्प्रसिद्ध श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संचालकजी के बहुरंगी अलंकृत चित्र के साथ २ मल-शोधन कर्म तथा आसनों के एक सौ से अधिक आर्ट फोटो हैं। भारत भर के ग्रंथों में ४०८ पृष्ठों का यह अनोखा ही ग्रंथ है। अनेक दुःखों से पीड़ित मानव समुदाय के लिये उमेश योग दर्शन आशीर्वाद के समान फल देने वाला है। ऐसे ग्रंथ का आपके घर में उपस्थित रहना आवश्यक है। मूल्य १५) रु. डाकव्यय रु. २-५० पैसे, किन्तु चातुर्मास पूर्ण होने तक रामतीर्थ मासिक के ग्राहकों को डाक व्यय सहित १४) रु. में तथा अन्य सज्जनों को डाक व्यय सहित १५) रु. में दिया जायगा। धनराशि भेजते समय रामतीर्थ मासिक के विज्ञापन का उल्लेख करना अनिवार्य होगा।

## चातुर्मास निमित्त आधे मूल्य में

# धर्मोपदेश

भारत भूमि वैदिक धर्म का मुख्य स्थान गिना जाता है। स्वामी रामतीर्थजी ने भारतीय संस्कृति के मौलिक सिद्धांतों का प्रचार-प्रसार विश्व के अमेरिका, जापान, मिश्र, इंग्लैण्ड आदि देशों में इस प्रकार किया कि जहाँ वे गये वहीं के लोग उनके सिद्धान्तों को मानने के लिये मचल पड़े। फलतः उन्हें जीवन का परमानन्द प्राप्त हुआ।

धर्मोपदेश में स्वामी राम की जीवनी तथा उपदेश हैं। आप पढ़ते ही प्रसन्नता का अनुभव करेंगे। जहाँ धर्मोपदेश वहाँ आनन्द का स्रोत, जहाँ धर्मोपदेश वहाँ दैवी सम्पत्ति। मुखपृष्ठ स्वामी राम के बहुरंगी चित्र से सुशोभित है। पृष्ठ संख्या ४०० के लगभग है फिर भी मूल्य ४) रु. ही है। किन्तु चातुर्मास के निमित्त चातुर्मास समाप्त होने तक डाक व्यय के साथ २) रु. मात्र में उपलब्ध होगा।

इस सुअवसर का लाभ लेने के लिये शीघ्रातिशीघ्र मनिआर्डर अथवा पोस्टल आर्डर से २) रु. भेजने की व्यवस्था करें।

# मनोविज्ञान विशेषाक

## आधी कीमत में

रामतीर्थ मासिक के अप्रैल १९६२ के सचित्र मनोविज्ञान विशेषांक में जन्म से मरणतक विभिन्न स्थितियों का दर्शक मुखपृष्ठ, मनोविज्ञान का स्वरूप, आहार, शारीरिक रसायन-

कार, व्यक्तित्व, मूल प्रवृत्तियाँ आदि विशिष्ट लेख, किस्म का खेल (कहानी). सचित्र कटिस्नान व तैलमालिश। सुखमय जीवन यापन हेतु यह ५६० पृष्ठों का अंक संग्रहणीय है। इस सचित्र अंक का मूल्य वैसे ५) रु. है। किन्तु चातुर्मास निमित्त चातुर्मास पर्यन्त डाकव्यय सहित केवल रु. २-५० में मिलेगा। अंक थोड़े ही बचे हैं अतः निराशा से बचने के लिये यथाशीघ्र मनिआर्डर अथवा पोस्टल आर्डर से रु. २-५० भेजें।

## योगासन चित्रपट

### दो तिहाई कीमत में लेकर लाभ उठाइये

बहुरंगी आकर्षक योगासन चित्रपट का लाभ उठाइये। प्रत्येक स्त्री पुरुष की यह हार्दिक इच्छा हुआ करती है कि उनकी सुन्दर काया, विकसित अवयव, सुडौल शरीर, मनोहारी मुखमुद्रा, निरोगी शरीर, विशुद्ध सप्त धातु हों। आप अपने घर में बैठकर योगासन चित्रपट में बताये अनुसार योगासन करके उपरोक्त लाभ की प्राप्ति कीजिये। २० इंच × ३० इंच आकार के इस बहुरंगी चित्रपट का मूल्य ३) रु. किन्तु चातुर्मास पर्यन्त डाक व्यय सहित दो ही रुपये में मिलेगा। धनराशि भेजते समय रामतीर्थ मासिक के इस विज्ञापन का उल्लेख करना अनिवार्य है अन्यथा कम कीमत में नहीं मिलेगा।

उपरोक्त सभी पुस्तकें तथा चित्रपट के लिये धनराशि भेजने का पता—

**श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.**

# जनता जनार्दन का सद्भावनाहस्त

श्री रामतीर्थ योगाश्रम विगत ३० वर्षों से जनता जनार्दनके तन-मन विकासार्थ जिस जी तोड़ प्रयत्न में लगा है, उसी सेवा से प्रभावित होकर उसके सेवा पूर्ण हाथों को अधिक शक्तिशाली बनने हेतु

## सितम्बर मास में प्राप्त सद्भावना राशि

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | श्री नरेन्द्रमूलजी और दुर्लेराय मूलजी | बम्बई | १५ रु. |
| २ | ,, कमलाकर ज. विभूति | जम्मू काश्मीर | २५),, |
| ३ | ,, वंगेरा टी. वासुदेव मजेश्वर | मैसूर राज्य | ११ ,, |
| ४ | ,, वैकुण्ठलाल जी मेहता | वांकानेर सौराष्ट्र | ११),, |
| ५ | ,, आर. वी. दलाल गोधरा | गुजरात | ११),, |
| ६ | ,, जगदम्बा श्री निवास हेगडे | तीरुपति आंध्रप्रदेश | १ ),, |
| ७ | ,, वीरमति वा. आयंगार | मद्रास | ११),, |
| ८ | ,, मायावती निर्वाण अय्यर | त्रिवेन्द्रम केरल | ११), |
| ९ | ,, कुमार अयोध्या प्रसाद विश्वेश्वर चौबे | वाराणसी | २५),, |
| १० | ,, स्वामी गंगानन्द सरस्वती | जयपुर | १८),, |
| ११ | ,, ब्रह्मचारी अभय चक्रवर्ती | २४ परगना | ११),, |
| १२ | ,, स्वामी निर्भयानन्द तीर्थ | जबलपुर | ११),, |
| १३ | ,, संतोष विहारी पाण्डेय | गया | ११),, |
| १४ | ,, प्रो० ज्ञानीदास रोचलदास | गांधीधाम | ११),, |
| १५ | ,, कुमारी यशोधरा बालगोपाल खत्री | बड़ोदा | ११) ,, |
| १६ | ,, ,, शीलादेवी वरदराज | गोहाटी | ७),, |
| १७ | ,, ,, ब्रह्म भामिनी जनार्दन आचार्य | नागपुर | ८),, |

सद्भावनाराशि निम्न पते पर भेजें:—

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर, बम्बई १४.

# लेखकों से

## 'रामतीर्थ' मासिक में स्वीकार करने योग्य मुख्य विषय-

शारीरिक रोग निवारण, सशक्त एवम् सदानिरोगी मानसिक रोग करके मन की शांति, एवम् आत्म साक्षात्कार करने योग्य, उपरोक्त प्राप्त करा देने योग्यअष्टांग योग, (यम, नियम आसन, प्रणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधी, राजयोग, भक्ति योग, लय योग, मंत्रयोग, शिवस्वरोदय, वेद उपनिषद, गीता ,रामायण, महाभारत, महात्माओं जीवन चरित्र एवम् उपदेश, प्राकृतिक चिकित्सा, (आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी द्वारा इलाज) महिलाओं के जीवन सुधार के लिये बालकों के संस्कार सुधारने के लिये, अनुरूप लेख, कहानी, धारावाहिक उपन्यास, गीत, कविता, निबंध, प्रवास वर्णन, नाटक, धर्मकथादि रचनायें स्वीकारकी जाती हैं कागजकी एक ओर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी हुई रचनायें भेजनी चाहिये, अश्लील विषयोंकी रचनायें स्वीकार नहीं की जायेंगी।

**विशेष:**—अन्यत्र प्रकाशित रचनायें रामतीर्थ मासिक के लिये न भेजे केवल स्वीकृत रचनाओं की सूचना एक मास बाद दी जाती है, अस्वीकृत रचना को वापस मंगाने वाले लेखकों को पोस्टल टिकिट साथ अवश्य भेजना चाहिए, स्वीकृत रचनायें समयानुकूल छपेंगी, लेखकों को चाहिये कि वे इस विषय में वारंवार पत्र लिखने का कष्ट न लें, रचना प्रकाशित होने के बाद, रचना जिसमें छपी होगी वह मासिक अंक, और आश्रम की ओर से निर्धारित किया गया पुरष्कार भेजा जायेगा, रचना में लिया गया कोई द्रष्टांत हो तो वह किस ग्रन्थ के आधार से लिया गया है य अवश्य लिखें। अन्य पत्र पत्रिकाओंमें रामतीर्थ मासिककी रचना अन्य भाषाओं में अनुवादित की इच्छावालोंको रामतीर्थ मासिकके संपादकसे लिखित अनुमति लेना आवश्यक है रचना भेजनेका पता: निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११.

भद्रंकर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

सम्पादक – **रामतीर्थ** योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ५ ] अक्टूबर १९६४ [ संख्या ७

# वैदिक-प्रार्थना

सुयवसाद् भगवती हि भूया अथो वयं भगवन्तः स्याम।
अद्धि तृणमघ्न्ये विश्वदानीं पिब शुद्ध मुदकमाचरन्ती ॥
ऋ. वे. आ. सू. १-१६४-४०

भावार्थ—हे अघ्न्या गोमाता ! तुम जौ जैसे सुधान्य को खाकर भाग्यशाली बनती हो और तुम्हारे भाग्य के साथ हम सब भी भाग्यशाली बनते रहें। तुम घास का भक्षण करो और शुद्ध जल का पान करो। इसी तरह तुम सर्व काल में घूमती रहो।

नैतिक एवं सांस्कृतिक विचारों का श्रेष्ठ मासिक

**ज्ञान यज्ञ**

○ आध्यात्मिकता का सही--सही स्वरूप देने वाला। ○ जीवन–निर्माण में सहायक। ○ वैयक्तिक दोष एवं सामाजिक कुरीतियों को उखाड़ फेंकने में तत्पर। ○ आकर्षक कलेवर। ○ शिक्षाप्रद लेख ○ मर्म–स्पर्शी साहित्य से परिपूर्ण।

वार्षिक मूल्य आज ही ३)रु. भेजकर ग्राहक बनिए। नमूने के लिये ३१ पै. के टिकिट भेजें।

पता—'ज्ञान–यज्ञ' मासिक
युग निर्माण प्रेस, बिलासपुर (म.प्र.)

प्राकृतिक चिकित्सा-साहित्य का अग्रदूत

**'प्राकृतिक जीवन'**

प्रधान सम्पादक : डा० के० आर० दिलकश
संयुक्त सम्पादक : डा० गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'
एक प्रति—३७ नये पैसे : वार्षिक ४) रुपये मात्र

स्वास्थ्य सम्बन्धी सुन्दर और उपयोगी साहित्य के साथ अपने प्रश्नों के उत्तर लें। शंकाओं का समाधान करावें तथा अपने स्वास्थ्य को उन्नत करने, नीरोग रखने तथा दीर्घजीवी बनने के उपाय जानें। आज ही ४) रुपया भेजकर ग्राहक बन जाइये और मौका न चूकिये। नमूने की प्रति मुफ्त मंगावें।

कार्यालय—
आरोग्य निकेतन, डालीगंज
लखनऊ (उ. प्र.)

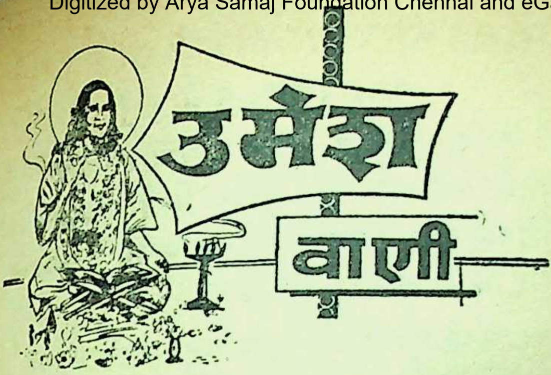

# उमेश वाणी

(२७१) लौकिक विद्याध्ययन, से मान, प्रतिष्ठा, प्रचार, बुद्धि की स्मरण शक्ति एवं परोपकार वृत्ति बढ़ती है। अन्न तथा वस्त्र दान से शरीर को पुण्य, अंतःकरण की पवित्रता, शुभ संस्कार दीन-दुखियों पर दया भाव एवं ईश्वर की कृपा बढ़ती है। दान रूप में धन, पृथ्वी और अन्य ऐश्वर्य सुपात्र, योगाश्रम, धार्मिक संस्था, एवं जनता-जनार्दन की सेवा करने वाली संस्थाओं को देने से पुण्य ऐश्वर्य कि वृद्धि, धन्धे की उन्नति, कीर्ति, संतोष, दैवी गुणों की वृद्धि, जन्म सार्थक की भावना, विनय, विशुद्ध प्रेम, मन की पवित्रता, मनुष्य जीवन की वास्तविकता, स्वर्ग सुख का अनुभव, मन की स्थिरता इत्यादि अनेक महत्वपूर्ण लाभ प्राप्त होगा। वर्तमान काल में सबसे अधिक योगाश्रमों की आवश्यकता है। शारीरिक, मानसिक एवं आत्म दर्शन के लिये अष्टांग योग श्रेष्ठ है। जिस योगाश्रम में अष्टांगयोग का अभ्यास नित्य निरन्तर रूप में चलता होगा उस योगाश्रम की अभिवृद्धि के लिये दान करना चाहिये।

# नौली कर्म

उमेशयोगदर्शन ग्रंथसे]

अमंदावर्तवेगेन तुदं सव्यापसव्यत:।
नतांसो भ्रमयेदेषा नौलि: सिद्धै: प्रचक्ष्यते ॥ या. सं.

नवलिकर्म तीन प्रकार से किया जाता है--बैठकर, खड़े होकर और किसी आधार को लेकर।

बैठकर करने की विधि—पद्मासन, स्वस्तिकासन अथवा सिद्धासन लगाकर बैठे। दोनों घुटनों पर दोनों हाथ रखे। हथेलियों से घुटनों को दबायें। श्वास को नासिका के छिद्र द्वारा बाहर निकालें। शरीर को आगे की ओर उतना झुकायें कि अपने पेट को देख सकें। पेट को पीठ की ओर दबायें और ढीला छोड़ दें। यह क्रिया पांच बार करें। श्वाश तब तक न लें, जब तक इतनी क्रिया हो न जाये। एक बार में ५ उड्डीयान करें। श्वास को बाहर निकाल कर पेट को दबायें तो एक उड्डीयान होता है। एक बार श्वास के बाहर निकलने पर ५ उड्डीयान करें। ५ उड्डीयान तक श्वास न लें। पहले दिन से ४ दिन तक २० उड्डीयान करें। ५से१२ दिन तक २५ और १३ से २० दिन तक ३० उड्डीयान करें। प्रति पांच उड्डीयान के बाद पेट को कुछ देर तक दबाकर रखे। श्वास न लें। इस तरह कम से कम १५ दिन से एक मास तक अभ्यास चालू रखने से नवलि कर्म में प्रारंभिक तैयारी हो जाती है। जिनके शरीर में चरबी का भाग अधिक है, जिनका पेट बड़ा और शरीर स्थूल है, उनके लिये उड्डीयान का अभ्यास २ मास तक करना आवश्यक होगा। इसके बाद ही वे नवलि कर्म कर सकते हैं। अपवाद रूप में कभी तीन मास से अधिक

समय भी लग सकता है। ऐसा नहीं मान लेना चाहिये कि इससे नवलि कर्म नहीं होगा।

खड़े होकर करने की विधि—खड़े होकर दोनों पैरों को एक फुट के अन्तर पर रखे। कुहनियों को चौड़ा रखें, सीधा नहीं। श्वास को पहले की तरह ही बाहर निकालना चाहिये और पेट को पीठ की ओर दबाना चाहिये। शेष विधि बैठ कर नवलि कर्म करने के समान ही है।

आधार लेकर करने की विधि—किसी मेज, कुर्सी या अन्य वस्तु का आधार लेकर उसपर दोनों हाथ रखे। कुहनियों को फैला कर रखे। पैरों को एक फुट के अंतर पर रखे। शेष विधि बैठ कर नवलि कर्म करने के समान करना चाहिये।

नवलिकर्म का ऋतु और अवस्था से सम्बन्ध—नवलिकर्म सभी ऋतुओं में प्रातःकाल अथवा सायंकाल प्रतिदिन एक बार कर सकते हैं। भोजन के ४ घण्टे बाद नवलिकर्म किया जा सकता है। ८ से १०० वर्ष तक की आयु तक के स्त्री-पुरुष इसे कर सकते हैं। गर्भवती और मासिक धर्मवाली स्त्रियों को इसे करना न चाहिये। प्रसूति के तीन मास के पश्चात् इसे किया जा सकता है। हैजा और अतिसार के रोगी भी इसे न करें।

मध्य-नवलि—उड्डीयान की अवस्था में उदर के मध्य-भाग को उठाकर ऊपर लाने का प्रयास करना चाहिये। इससे नाभि की दाहिनी और बाईं ओर गढ्ढे पड़े दिखाई देंगे। इसे मध्य नवलि कहते हैं।

वाम नवलि—बायें घुटने पर हाथ को दबा कर रखें।

दाहिने घुटने पर हाथ को ढीला रखे। पेट को बाईं ओ ऊपर लायें दाहिनी ओर इससे गड्ढा पड़ा दिखाई देगा इसे वामनवलि कहते हैं।

दक्षिण नवलि—इसी प्रकार दाहिने घुटने पर हाथ को दबाकर रखे और बायें घुटने पर हाथ को ढीला रखे। पे को दाहिनी ओर उठाकर रखे बांई तरफ गड्ढा दिखाई देगा। इसे दक्षिण-नवलि कहते है।

सम्पूर्ण नवलि—बांईं से दाहिनी और दाहिनी से बां ओर पेट की नसों को घुमाये। चार दिन तक क्रम से दाहि ओर, बाई ओर दो-दो बार घुमाये। ५ से ८ दिन तक ३-३ बार, ९ से ६ दिन तक ४-४ बार और १६ दिन के पश्चात् यथाशक्ति और अनुकूल दिखाई देने पर ४ से १० बारतक घुमाये।

नवलि कर्म के लाभ—रोग की जड़ पेट से प्रारम्भ होती है। नवलि कर्म करने से पेट के अवयव सशक्त बनते हैं। पाचन शक्ति अच्छी रहती है। मल विसर्जन उचित रूप से होता है छोटी आंत, बड़ी आंत, मूत्र-सम्बन्धी अवयव, नाभि चक्र आदि नीरोग होते हैं। भूख खुल कर लगती है। शरीर में यदि आवश्यकता से अधिक चरबी है तो कम हो जाती है। यदि कम है तो बढ़ती है, अर्थात् शरीर में चरबी का सुयोग्य संतुलन रहता है पेट के वायु विकार, कफविकार और पित्त विकार प्रशमित होते हैं। मन्दाग्नि नष्ट होती है और वैश्वानर अग्नि उद्दीप्त होता है। आन्त्रपुच्छ रोग अच्छा होता है। किडनी और मूत्राशय के रोग दूर होते हैं पेट के अनेक रोग नवलिकर्म से निर्मूल हो जाते हैं।

# विजयादशमी

ले० विश्वम्भरदत्त नौटियाल
एम. ए., साहित्यरत्न

भारतीय जन-मानस में सदियों से दीपावली और विजयदशमी का अक्षुण्ण महत्व रहा है। विजयादशमी विजय के पर्व के प्रतीक के रूप में एवं दीपावली विजय के प्रतीक स्वरूप मनाये जाने वाले आनन्द की अभिव्यक्ति का प्रतीक स्वरूप रही है। कालान्तर में विजयादशमी का महत्व तो जन-मानस से क्षीणता को प्राप्त होने लगा किन्तु दीपावली का प्रकाश अजस्र रूप से भारतीय-मानस को आलोकित करता रहा। यद्यपि सांस्कृतिक दृष्टि से विजयादशमी का महत्व किसी भी अंश में कम नहीं है भले ही उसका स्वर कालांतर में कारणवश धीमा हो गया हो।

विजयादशमी विजय का प्रतीक है। प्रसन्नता एवं उत्साह का पर्व तो यह है ही किन्तु इससे भी अधिक यह मानव-जीवन की सफलता और सौन्दर्य का प्रतीक है। ज्ञान के नये आलोक के प्रस्फुटन की शुभ घड़ी है यह, अज्ञान पर ज्ञान, पाप पर पुण्य, अंधकार पर प्रकाश, अमानवीयता पर मानवीयता एवं दानवत्व पर देवत्व की विजय का पर्व है। यह एक महान् कार्य की सिद्धि का स्मरण दिलाता है। यह दिन हमें भारतीय मानस में विजय के पर्व का सम्बंध मर्यादा-पुरुषोत्तम

रामचन्द्र की लंकापति रावण पर विजय-प्राप्ति से जुड़ा हु है। और संभवतः यही इसकी प्रसिद्धि का कारण भी है राम मात्र अयोध्यापति-दशरथ के पुत्र-ही नहीं थे। आर्याव के प्रसिद्ध राजा ही नहीं थे जिसकी वजह राम की अप्र पौरुष एवं कौशल का सिक्का भारतीय जन-मानस प सहस्रों वर्षों तक अक्षुण्ण बना रहता। बल्कि मानव होते प भी वे अतिमानवीय गुणों से सम्पन्न थे। मर्यादा की मूर्ति थे आदर्श एवं महनीयता के रूप थे, और थे सत्यं, शिवं ए सुन्दरम् के प्रतीक। सम्भवतः मानव मन में सभ्यता, महनी यता, उच्चादर्श शक्ति एवं शिव की जो कुछ भी उच्चतर कल्पना हो सकती है राम उसके ही अवतारी स्वरूप थे। इसलिए राम की विजय मात्र अयोध्यापति की विजय की अपेक्षा समग्र भारतीय संस्कृति की विजय मानी जाती रही। यदि उस परिस्थिति में रावण विजयी हो जाता तो आर्य संस्कृति का भविष्य क्या होता सहज ही कल्पना की जा सकती है। फिर जनक नन्दनी सीता के उद्धार का तो प्रश्न ही नहीं उठता ?

समय के प्रवाह में हम मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र के लोकनायक, पुरुषत्व एवं आर्य संस्कृति के लिए उनके योग-दान को तो भूल गये और स्मरण रखने लगे मात्र उनकी विजय के प्रतीक स्वरूप मनाई जाने वाली दीपावली का त्यौहार। अजस्र शक्ति के केन्द्र, दस सिर, बीस भुजाधारी रावण की अपरिमित शक्ति एवं दानवी सेना को पराजित

(शेष पृष्ठ १७७ पर)

# जीवन निर्माण के केन्द्र पुस्तकालय

लेखक
शिवनारायण सक्सेना, एम. ए. विद्यावाचस्पति

सभी धर्मग्रन्थों ने स्वाध्याय का विशेष रूप से वर्णन किया है, साधना का एक अंग ही स्वाध्याय को मानकर महापुरुष आगे बढ़े हैं। अच्छे साहित्य का इतना ही महत्व है जितना शरीर के लिये भोजन का। भोजन से शरीर का निर्माण होता है तो स्वाध्याय से मानसिक विकास होता है। स्वच्छ मन बनता है और स्वच्छ मन से ही स्वच्छ शरीर की रचना होती है। भगवान् कृष्ण ने गीता में वाणी का तप बताते हुये स्पष्ट कहा है

'स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते।'
अर्थात्—स्वाध्याय करना वाणी का तप है।

धर्म का पालन करने, जीवन में विकास करने तथा मानव शरीर को सार्थक बनाने के लिये स्वाध्याय की

रामतीर्थ

सहायता लेनी पड़ती है। छान्दोग्य उपनिषद् में धर्म के जो तीन स्कन्ध बताये हैं उसमें प्रथम स्कन्ध की जो शाखायें की हैं उसमें स्वाध्याय को प्रमुख स्थान दिया है:—

त्रयो धर्मस्कन्धा यज्ञोऽध्ययनं दानमिति।
छान्दोग्य० २।२३।१

(धर्म के तीन स्कन्ध हैं-यज्ञ, स्वाध्याय और दान)

योगदर्शन के रचयिता महर्षि पतंजलि ने भी इष्ट देवता से साक्षात्कार के लिये स्वाध्याय करने की ही सलाह दी है। शतपथ ब्राह्मण में भी मन की एकाग्रता, प्रकृति के बन्धनों से मुक्ति, चिन्ता से छुटकारा, चित्त को शान्ति और निर्मल बुद्धि की प्राप्ति जैसे अनेक लाभ बताये हैं। शास्त्रकार का भी यही कहना है:—

यथायथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति।
तथा तथा विजानाति विज्ञानं चास्य रोचते॥

अर्थात्— मनुष्य जैसे जैसे शास्त्र का विशेष अध्ययन करता है वैसे वैसे उसका ज्ञान बढ़ता है और विज्ञान उज्ज्वल होता है।

इस प्रकार हमें यह मालूम होता है कि स्वाध्याय की महत्ता को देशी, विदेशी सभी मनीषियों ने बताया है, बात भी ठीक है कि बिना स्वाध्याय के हमारा विकास नहीं हो पाता, कभी कभी ऐसे सन्त महात्मा, और तत्वदर्शी देखने को मिल जाते हैं जो स्वाध्याय के अभाव में भी विश्व में अच्छी ख्याति प्राप्त कर लेते हैं। कबीरदास ऐसे ही सन्तों में गिने जाते हैं, पर यदि कबीर ने स्वाध्याय किया होता तो

समाज सुधार का जो कार्य उन्होंने उठाया था उसमें और भी अधिक सफलता प्राप्त कर सकते थे। ऐसे व्यक्ति तो अपवाद स्वरूप होते हैं, सभी निर्धन, धनी, राजनैतिक और सामाजिक चिंतकों ने समय निकालकर अनिवार्य रूप से अध्ययन किया है। जब किसी सद्साहित्य का अध्ययन, मनन, चिन्तन किया जाता है तो हमारी मानसिक प्रगति होती है। महात्मा गान्धी स्वयं बुद्धिकी वृद्धि के लिये कोई न कोई पुस्तक पढ़ते रहते थे वह अन्य लोगों को भी यही सलाह देते थे "नित्य स्वाध्याय करना महानता की पहली सीढ़ी पर पैर रखना है, इसमें प्रमाद करना अपने ही पैरों पर कुल्हाड़ी मारना है।"

स्वाध्याय के जो प्रमुख लाभ हैं वह अच्छी पुस्तकों के पढ़ते और अनुकरण करने से प्राप्त होते हैं। पुरातन भारतीय परम्परा तो गुरु-शिष्य के सम्बन्ध को ज्ञान के आदान-प्रदान के रूप में ही दिखाई पड़ती है, कागज, प्रकाशन आदि की सुविधाएँ न होने के कारण गुरु का ज्ञान शिष्यों को मौखिक रूप से दिया जाता था, यही ज्ञान एक दूसरे को सुनाकर सहस्रों वर्ष जीवित रखा गया। इसी को एक प्रकार से चलते फिरते पुस्तकालय भी कह सकते हैं, क्योंकि वानप्रस्थ के बाद लोगों का जीवन धर्म प्रचार और जन सुधार में ही व्यतीत होता था। गांव-गांव, घर-घर, अलख जगाकर, लोगों की शंकाओं का समाधान करके धर्म कर्म का महत्व बताने की पुनीत परम्परा थी। समय बदला, स्मरणशक्ति

का ह्रास हुआ, प्रकाशन सुविधाएँ बढ़ीं और वह ज्ञान हस्तलिखित तथा मुद्रणशाला में मुद्रित पुस्तकों के रूप में हमारे सामने आया। यह ज्ञान अनुभवी व्यक्तियों के जीवन की कमाई है जिसे धरोहर के रूप में प्राप्त कर हम अपना बहुत बड़ा व्यापार चला सकते हैं, जिसके पास अच्छे विद्वानों की पुस्तकें हैं फिर उसे और पाने के लिये कुछ भी शेष नहीं रहता। भले ही महापुरुषों के दर्शन हमें न हो सकें पर पुस्तकों के माध्यम से उनके विचारों तक पहुँचना तो हमारे लिये बिल्कुल भी कठिन नहीं है। ज्ञान का प्रकाश जिस घर में या जिस व्यक्ति में पहुँच जाता है उसका अज्ञानरूपी अन्धकार सदैव के लिये लुप्त हो जाता है। जीवन नौका में बैठकर पार उतरने के लिये अच्छी पुस्तक पतवार से किसी भी प्रकार कम नहीं है। पुस्तकों में अपनी रुचि लगाने वाले व्यक्ति कभी भी दुखी नहीं देखे जाते क्योंकि बड़े से बड़े संकट में दुख और चिन्ता में पुस्तकें बहुत बड़ा सहारा देती हैं, यह ऐसा मित्र है जो घर में, कार्यालय में, यात्रा में, और बाजार में सभी जगह हमारी सहायता करता है। आस्टिन फिलिप्स का यही कहना था "कपड़े चाहे पुराने पहनो, किताबें नई खरीदो।"

राबर्ट लुई स्टीवेनसन सदा दो पुस्तकें रखते थे, एक पढ़ने के लिये और दूसरी पर आये हुये आवश्यक विचार साथ ही साथ लिख लिया करते थे क्योंकि जो विचार लिख लिये जाते हैं वह स्मृति पटल में अधिक समयतक बने रह

सकते हैं। लार्ड मैकाले ने एक बार यह कहा था "यदि मुझे कोई बहुत बड़ा राजा बनाना चाहे और यह शर्त लगावे कि स्वाध्याय छोड़ना होगा तो मैं ऐसे राज पाट को ठोकर मारकर ऐसा निर्धन बनना पसन्द करूँगा जिसके पास किताबें भरी पड़ी हों।"

## पुस्तकालयों का महत्व

शिक्षा का पूर्णतः विकास न होने के कारण पुस्तकालयों की देश में कमी है, जो पुस्तकालय हैं भी उनमें बड़ी ही घटिया किस्म की पुस्तकें हैं जिनसे चरित्र निर्माण के स्थान पर पतन की शिक्षा मिलती है। हर व्यक्ति नीरस, और सुधारात्मक साहित्य से जान बचाना चाहता है, गन्दे उपन्यास, जासूसी कहानियाँ और उत्तेजना प्रधान गन्दा साहित्य पढ़ने की रुचि अधिक दिखाई पड़ रही है। ऐसी पुस्तक एक बार नहीं अनेक बार मजा लेने के लिये पढ़ी जाती हैं। जबतक पूरी पढ़ न लें तबतक अन्य आवश्यक कार्य, खाना, निद्रा और विश्राम तक को तिलांजलि दे देते हैं। किसी व्यक्ति के चरित्र की परख यदि उसके संगी साथियों से होती है, तो उसके विचारों की परख उसकी अलमारियों में रखी पुस्तकों तथा मेजपर पड़ी पत्रिकाओं से की जा सकती है, जिसकी जैसी रुचि होती है वह वैसा ही साहित्य खरीदता है, पढ़ता है और मांग कर लाकर अपना शौक पूरा करता है, विवेक शील व्यक्ति अश्लील

साहित्य को पढ़ते ही नहीं वरन् देखने तक बुरा समझ हैं। पुस्तकालय के प्रारम्भ करने की योजना शिक्षा से पू तरह सम्बन्धित है, जिस देश में पढ़े लिखे व्यक्ति अधि होंगे, पुस्तकालयों की संख्या भी अधिक होगी। पंचायतों, सामुदायिक विकास खण्डों, विद्यालयों तथा सार्वजनिक संस्थाओं में पुस्तकालय तथा वाचनालय खोले जा रहे हैं पर उनमें नियमित रूप से दो तीन व्यक्ति भी पढ़ने के लिये नहीं आते। मैंने ऐसे अनेक पुस्तकालय देखे हैं जहाँ एक दो लड़के ही पुस्तकें भले ही ले जावें और लोगों को दर्श ही नहीं होते। कहीं २ तो पुस्तकालयों की जानकारी तो स्थानीय लोगों को नहीं होती है। फिर पंचायतों, विकास खण्डों में पुस्तकों का चयन भी ऐसे ढंग से किया जाता है जो साधारण लोग उन्हें नहीं पसन्द करते। खेती, बाग बानी, कुटीर उद्योग, फल, फूल, पंचायतें, सहकारिता जैसे विषयों की पुस्तकें तो पढ़ा लिखा छूना भी नहीं चाहता, ये पुस्तकालय उच्च साहित्यकारों के उपन्यास, काव्य, कहानी तथा अन्य शिक्षाप्रद पुस्तकें मँगवावें तब शायद इनमें पढ़ने के प्रति रुचि उत्पन्न हो जाती है। विद्यालयों में जो पुस्तकें होती हैं उसमें छात्र, छात्राएँ दो प्रकार की पुस्तकें अधिक पसन्द करते हैं, एक तो विषय से सम्बन्धित सामग्री और दूसरी कहानी तथा मनोविनोद की पुस्तकें। शिक्षाप्रद पुस्तकें तो ये भी पसन्द नहीं करते। अनेक प्रौढ़ वाचनालयों में जो दैनिक उपस्थिति के लिये दस पाँच आदमियों के झूठे नाम लिखकर खाना पूरी की जाती है।

आवश्यकता इस बात की है, कि नये नये पुस्तकालय खोले जावें, उनमें पुस्तकों की संख्या बढ़ाई जावे, सरकार भी सहायता दे, जैन, बौद्ध, तथा वैष्णव मन्दिरों में, आर्य समाज में, गिरजा घर तथा मस्जिदों में जहाँ लोग नित्य धर्म उपासना कार्य के लिये आते हैं अथवा सप्ताह में एक बार सैर करते हैं, वहाँपर स्थानीय कोष से एक पुस्तकालय चलाया जा सकता है और वह पुजारी या मन्दिर का कार्यकर्ता ही पुस्तकों को वितरित करने का कार्य अपने हाथ में ले सकता है। इसमें आध या पौन घन्टेका समय ही लगेगा। एक पुस्तकालय से दूसरे पुस्तकालय में पुस्तक विनिमय का कार्य भी लाभकारी हो सकता है, क्योंकि हर पुस्तकालय में एक सी तो पुस्तकें होती नहीं है। एक विकास खण्ड में मान लो दो पुस्तकालय हैं, अथवा एक परगने में दो पंचायतें पुस्तकालय चला रहे हैं तो एक या दो वर्ष बाद एक पुस्तकालय से दूसरे पुस्तकालय में और दूसरे से पहले में पुस्तकों का आदान प्रदान होता रहे तो जनता के लिये पठन पाठन हेतु अधिक सामग्री उपलब्ध हो सकेगी। पुस्तकालयों का कार्य भी समाज सेवा का ही एक कार्य है।

बेनेट कोलमेन एण्ड कम्पनी के जनरल मैनेजर श्री प्रताप कुमार रायने बम्बई पुस्तकालय समिति के समारोह में कहा था "आज पुस्तकालयों की स्थापना अति आवश्यक है क्योंकि आबादी के साथ साथ साक्षरता भी बढ़ रही है और जनता तक जानकारी पहुँचाने के लिये १४ भाषाओं में

पुस्तकों की जरूरत है आपने कहा कि पुस्तकालयों को उच्च कोटि की अच्छी अच्छी पुस्तकों का संग्रह तो करना ही चाहिये इसके साथ ही जनता में पुस्तक पढ़ने की आदत भी डालनी चाहिये। पुस्तकालयों का मुख्य उद्देश्य जनता के लिये स्वयं शिक्षा का साधन जुटाना है ताकि जनता पुस्तकों द्वारा नवीनतम सूचना एवं ज्ञान प्राप्तकर खुद की और देश की प्रगति में योगदान कर सके।" जनता की उपेक्षणीय प्रवृत्तिपर खेद प्रकट करते हुये श्री टी० डी० वाकनिसने कहा है "यह बड़े दुःख की बात है कि जनता पुस्तकालय सेवा को कम महत्व देती है। भारी संख्या में ऐसे पुस्तकालय खुल रहे हैं जहां जनता से पैसा लेकर मनोरंजन की पुस्तकें दी जाती हैं। ऐसी स्थिति में पुस्तकालयों के सूचनात्मक एवं शैक्षणिक पहलुओं की उपेक्षा की जा रही है।"

गुजरात में श्री सयाजीराव गायकवाड़ का शासन प्रबन्ध जबतक रहा तबतक उन्होंने इस ओर पर्याप्त ध्यान दिया, उन्हें पुस्तकों के अध्ययन में अधिक रुचि थी इसलिये सन् १९१० में शासन में एक प्रथक विभाग ही खोल दिया और इससे सम्बन्धित कानून भी बनाया। डा. एस. आर. रंगनाथन के प्रयत्न स्वरूप मद्रास राज्य में भी पुस्तकालय कानून पास किया गया। महाराष्ट्र राज्य महिला परिषद चलते फिरते पुस्तकालय की स्थापना करके इस ओर आदर्श उपस्थित कर पाई है। नई दिल्ली में महाराष्ट्र सूचना केन्द्र

द्वारा चलता फिरता पुस्तक केन्द्र जनवरी ६४ से मराठी बच्चों को अपनी संस्कृति तथा साहित्य की शिक्षा के लिये प्रारम्भ किया गया है। इसने दिल्ली के ४ विभिन्न स्थानों में अपना कार्य प्रारम्भ किया है तथा इसमें लगभग १००० पुस्तकें हैं और इसका नाम हैं "जीजा माता पुस्तक केन्द्र।"

ब्रिटेन का साहित्य-प्रेम तो प्रसिद्ध है वहाँपर कानून द्वारा अश्लील, हिंसक, अपराध तथा अन्य घृणित विषयों की चर्चा को वर्जित कर दिया है। जिन पुस्तकों से बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है उनपर भी रोक लगा दी गई है पब्लिक लाईब्रेरी का उपयोग हर चार व्यक्तियों के पीछे एक व्यक्ति करता है इनमें पुस्तक ले जाने वालों पर व्यय का प्रत्यक्ष रूप से कोई भार नहीं आता। सन् १९६१ में ब्रिटेन में ३९४९६ पुस्तकालय थे जिसमें ४४ करोड़ पुस्तकें लोगोंने पढ़ने के लिये लीं थीं। जनता पुस्तकालयों में ८ करोड़ पुस्तकें थीं। इंग्लैण्ड के प्रत्येक नगर में मुख्य इमारतों में पुस्तकालय की भी गणना की जाती है और सब से अधिक चहल पहल भी इन्हीं पुस्तकालयों में देखने को मिलती हैं। बच्चों के लिये भी इन्हीं पुस्तकालयों में व्यवस्था होती है ये आलमारियां नीची होती हैं जिनमें पुस्तकें भी बड़े आकर्षक ढंग से रखी जाती हैं। ग्राम में रहनेवाले व्यक्तियों के लिये पुस्तकों की व्यवस्था राज्यद्वारा की जाती है। ग्रामकेन्द्र तथा विद्यालयों में पुस्तकालय होते हैं इनमें समय समय पर पुस्तकें आती रहती हैं और जनता आकर पुस्तकें

ले जाती हैं। चलती फिरती मोटरों ने 'कुँआ प्यासे के जाने' की कहावत चरितार्थ की है, गाँव में यह चलता फि पुस्तकालय जाता है जिसमें २००० पुस्तकें होती हैं प दो पुस्तकें लोग पढ़ने के लिये ले लेते हैं और ये पुस्तकालय पुरानी पुस्तकें लेकर आगे बढ़ते हैं। इतना ही न यदि कोई पुस्तक मोटर में अथवा ग्रामीण पुस्तकालय प्राप्त न हो तो पाठक के मांग करने पर दूसरी बार जब गा आती है तो अपने साथ लाती है। इस प्रकार पुस्तकालय-सेवा ब्रिटेन की एक आदर्श सेवा है।

समाज सुधारक और ग्राम सेवक व ग्रामसेविकाएँ इ कार्य को भली भाँति कर सकते हैं, एक ग्राम सेवक अपने दौरे के लिये सुबह जब किसी गाँव में निकले तो १०-२ किताबें झोले में डालकर सायकिल पर लटका ले और इच्छुक व्यक्तियों के दे आवे, इसके बाद फिर जब उस गाँव में जाना हो तो नयी पुस्तकें देकर पुरानी वापिस ले आवे। अनेक कर्मचारी हैं जिनकी सेवा जनसम्पर्क और गाँव-गाँव घर-घर घूमने की है ऐसे लोग चलते फिरते पुस्तकालय का आदर्श उपस्थित कर सकते हैं। फिर भावना जैसी होती है काम भी वैसा ही होता है। जहाँ चाह वहाँ राह की बात बिल्कुल सत्य है। एकाकी प्रयत्न का आशातीत परिणाम भी होता ही है, इसमें किसी प्रकार की शंका नहीं की जा सकती। सकतिनपर के निवासी श्री गंगादीन प्रमोद गतवर्ष रेलवे की नौकरी से रिटायर्ड होकर जब अपने घर लौटे तो अपना जीवन समाज सेवा में लगाने का निश्चय किया, पेन्शन से तो गुजारा हो ही जाता। क्योंकि १०७) पेन्शन वे पाते हैं,

उन्होंने बीस रुपये मासिक सद्साहित्य क्रय करने के लिये निश्चित किये और धीरे धीरे छोटा पुस्तकालय बनने लगा, ये सज्जन नित्य केवल दो घण्टे का समय देते और शाम को १०-२० किताबें अपने थैले में डाल लेते और लोगों के घर दे आते पुरानी किताबें नये व्यक्तियों को देते इस प्रकार ४०-५० परिवारों में नित्य पुस्तकें लेने देने का कार्य प्रारम्भ किया, इस प्रकार सप्ताह में एक बार एक परिवार में जाना और पुस्तक का लेन देन करना आसान बन गया इससे २००-२५० परिवारों तक एक सप्ताह में वे मिलने जुलने लगे उन्होंने अपनी इच्छा इस प्रकार प्रकट की "मैं यह चाहता हूँ कि घर घर अच्छा पुस्तकों को पढ़ाने का क्रम चलाकर चलता फिरता पुस्तकालय बनकर, लोक जीवन में ज्ञान विस्तार की पवीत्र परम्परा में लगा हूँ।"

अतः हमें चाहिये कि आलस्य को त्यागकर वर्तमान पुस्तकालयों से अपना सम्पर्क स्थापित करें, इससे हमारे ज्ञान में वृद्धि होगी और कर्मों तथा आचरणों में सुधार होगा। यदि पढ़ने की ओर अपनी रुचि लगावें तो जो भी पुस्तकालय हैं उनकी सेवा भी किसी प्रकार कम नहीं है, अपनी आवश्यकता तथा रुचि की पुस्तक किसी न किसी प्रकार प्राप्त कर ही सकते हैं। जो लोग परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिये ही केवल स्वाध्याय या पठन-पाठन का महत्व समझते हैं, ऐसे लोगों का विचार संकुचित है। शिक्षा पूर्ण करने के बाद भी सांसारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये किताबों का अध्ययन जारी रखना चाहिये। क्योंकि गान्धीजी के अनुसार "स्वाध्याय अच्छे विचारों का जन्मदाता है।"

रामतीर्थ

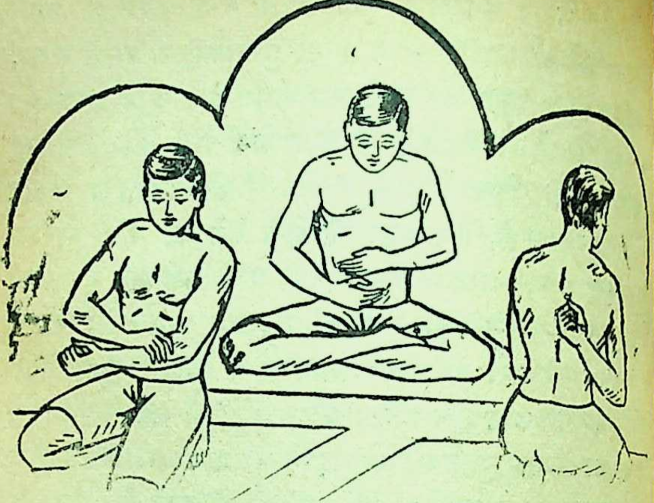

यदि हर रोज मालिश न हो सके तो सप्ताह में १ से ३ बार रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य मालिश करें या करावें।

## विशेष सूचना और लाभ

आपने ऊपर छपे सर्व रेखा चित्रों को देखकर यह समझ लिया ही होगा कि रामतीर्थ ब्राह्मी तैल की मालिश से आबाल वृद्ध–बालक, माता, (महिला) तथा पुरुष वर्ग कितने आरोग्यमय सुडौल शरीर वाले तथा आकर्षक मुख मुद्रा वाले और कितनी सुन्दर केशभूषा वाले हैं। इतना ही नहीं हरेक अवयवों को हृष्ट--पुष्ट बनाने में सामर्थ्यवान बन गये हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के प्रयोग से गहरी नींद, स्मरण शक्ति की वृद्धि, बाल काले, घने तथा लम्बे बनाने में अनुकूल है तथा इससे बालों का झड़ना बन्द कर गंजा पन दूर करने में लाभ

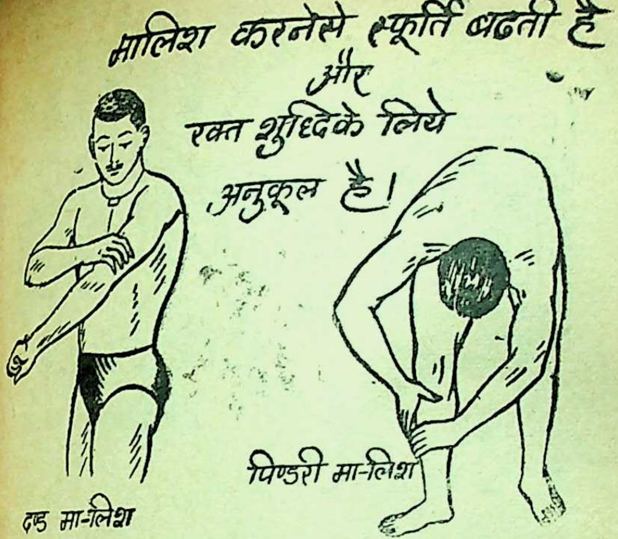
मालिश करनेसे स्फूर्ति बढ़ती है
और
रक्त शुद्धिके लिये
अनुकूल है!
पिण्डरी मा-लिश
दण्ड मा-लिश

से शरीर का वजन कम होने से वजन बढ़ जायगा। अधिक वजन होने की हालत में आहार परिवर्तन के साथ २ रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का प्रयोग करने से आवश्यक परिमाण में रहेगा।

आप आगे के रेखाचित्र को सूक्ष्म दृष्टि से देखिये। हाथों को, पेट को तथा पीठ के ऊपर मालिश करने के सुलभ तरीके बताए गये हैं। अनेक महिलाओं तथा पुरुषों का विचार है कि अपने हाथों से तैल मालिश अच्छी प्रकार से नहीं कर सकते हैं। दूसरों से करानी पड़ेगी। यदि दूसरों से मालिश कराने की सुविधा होवे तो अवश्य करा सकते हैं। सुविधा न होने पर आलस्य, शंका, और शर्म को छोड़कर अपने हाथों से हर दिन मालिश करने की आदत डालें, किसी कारण से

रामतीर्थ
ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
(रजिस्टर्ड)
REGD. SPECIAL
Ramtirth
SHRI RAMTIRTH YOGASHRAM
BOMBAY - INDIA

## रामतीर्थ ब्राह्मी तेल [स्पेशल नं. १] का महत्व और लाभ

विगत २० वर्षों से यह तेल अनेक महत्व पूर्ण वनस्पतियों (जड़ी बूटियों) से निर्मित किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु (गर्मी के दिन) वर्षा ऋतु (बरसात के दिन) हेमन्त ऋतु (ठंडी के दिन) में स्वास्थ्य के लिये सर्वथा उपयोगी रहे, ऐसी शास्त्रीय विधि से तैयार किया जाता है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में वनौषधीय मधुर सुगंध होने से उपयोग करने वाली महिलायें तथा पुरुष वर्ग हमेशा के लिये इसे अपना लेते हैं, और अन्य लोगों को महत्व बताकर व्यवहार में लाने के लिए सलाह देते हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल युवक तथा वृद्धों के लिए ही उपयोगी नहीं अपितु छोटे से छोटे बच्चे तक के लिए लाभ-

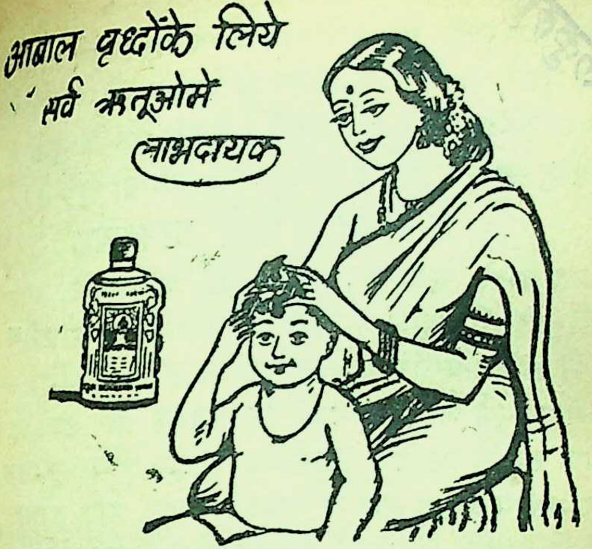

ाती है ऊपरोक्त रेखाचित्र में माता अपने बच्चो के सिर में रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की मालिश करके सौन्दर्य, स्मरण शक्ति वृद्धि तथा आंखों की दृष्टि अच्छी बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल सिर के बालों के लिये ही नहीं है, किन्तु शरीर मालिश के लिये भी लाभ दायक है। आगे के रेखा चित्र में आप देख सकते हैं कि लोग अपने हाथों से तेल मालिश कर सारे शारीरिक अवयवों को नीरोग एवं सशक्त बना रहे हैं प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के १० मिनट पहले सारे शरीर तथा सिर की तैल मालिश १० से २५ मिनिट तक अवश्य करें। ऊंचाई और आयु के हिसाब

# रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

दायी है । कान में डालने से कान के सूक्ष्म
नीरोग बने रहते हैं। ऐसे अनेकानेक महत्त्वपूर्ण लाभों की
से ही वैद्यराज, डाक्टर, प्रख्यात विद्वान् वर्ग, राजनीतिज्ञ
अन्य प्रतिष्ठित वर्गों से रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के गुणों के
में स्वानुभव पूर्ण अनेक प्रमाण पत्र प्राप्त हो चुके हैं।

## छात्र वर्ग के लिये लाभदायक

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी ऋषि--मुनि, साधु-
त्यागी--वैरागी उदासीन वृत्ति के लोगों को रामतीर्थ ब्राह्मी
तैल से अनेक प्रकार के लाभ अवश्य ही प्राप्त होंगे।

महत्वपूर्ण जड़ी बूटियों के कारण से छात्र-छात्राओं
( सिक स्कूल, मिडिल स्कूल, हायस्कूल तथा कालेज के)
को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य लाभ प्राप्त होगा। जैसे,
। मस्तिष्क शान्त रहेगा। स्मरण
शक्ति बढ़ जायेगी। शरीर मालिश से शरीर में स्फूर्ति बढ़ेगी,
स्नायु संस्थान तथा रस ग्रन्थियों में शक्ति का संचार होगा।

वैसे तो त्वचा की कान्ति, रक्त परिभ्रमण के साथ
स्वस्थ रहना, चर्मरोग निवारण, शारीरिक जोड़ों में
समस्त शरीर में समशीतोष्णता आदि अनेक लाभ सबको
प्राप्त होता है । यदि आपने अभी तक रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का
उपयोग कर लाभ नहीं लिया हो तो आज ही अपने शहर
अथवा गांव के दवा बेचने वाले अथवा जनरल मर्चेन्ट से
खरीद करें। दो साइजों में प्राप्त है ।

न मिलने पर निम्न पते पर लिखें।

**श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.**

# क्या गौतमबुद्धकी मृत्यु मांस खानेसे हुई थी?

लेखक
श्री वैदेहीशरण शर्मा, शास्त्री

बहुत से ऐतिहासिक लेखक जिन्होंने गौतम बुद्ध की जीवनी पर प्रकाश डाला है, वे बुद्ध की मृत्यु के विषय में स्पष्ट लिखते हैं कि गौतम बुद्ध की मृत्यु मांस भक्षण से हुई थी, जिसे प्रतिद्वंद्वियोंने धोखे से खिलाया था। इस विषय पर बहुत से ऐतिहासिकों में मतभेद भी पाया जाता है। कुछ तो इस बात को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार कर लेते हैं कि उन्हें प्रतिद्वंद्वियों ने द्वेषवश खिला दिया होगा एवं तत्पश्चात् जब गौतम को इस बात का पता चला होगा तो वे आत्म त्याग कर लिये होंगे। इसके विपरीत कुछ मांस भक्षण न कर किसी दूसरी वस्तु के खाने से मानते हैं।

वस्तुतः यह बात बड़ी आश्चर्यजनक प्रतीत होती है कि जिसने आजीवन अहिंसा, सत्य के प्रचार में अपना सर्वस्व

अर्पण किया उसी को मांस खाकर मरना पड़े। अश्वघोष रचित, 'बुद्ध चरित्र' तथा बुद्ध जीवन पर आधारित अन्य ऐतिहासिक प्राचीन ग्रन्थों में 'शूकर माधवम्' खाने के बाद गौतमबुद्ध की मृत्यु बताई गई है। यह 'शूकर माधवम्, शब्द ही आधुनिक इतिहासकारों के लिये 'शूकर मांस' का अर्थ द्योतक बना है, जिसे आधुनिक जगत के मांसों में भी हेय मांस माना जाता है। इस विषय में बहुत से संस्कृत के विद्वानों ने खोज की है, इसके विचारानुसार 'शूकर माधवं' शब्द पाली में तथा प्राकृत भाषा में सकर कन्द के लिये व्यवहार होता था। सकरकन्द के गुणागुण पर वैद्यक ग्रन्थों में कई स्थलों पर विवेचना मिलती है। बुद्ध सकरकन्द खाने के पहले भी अस्वस्थ अवस्था में थे। उन्होंने मरने से पहले ही अपने शिष्यों को बताया था कि अब वे संसार में नहीं रहेंगे।

आधुनिक जगत् में मांस भक्षण का भीषण प्रचार हो रहा है। इस अन्धाधुन्ध प्रवृति में आज बुद्ध के अनुयायियों में भी तरह तरह के प्रलोभन वश मांसाहार के प्रचार बढ़ते जा रहे हैं जो उन्हें धर्म पथ भ्रष्ट करते हुये संसार के लिये विनाशकारी प्रवृत्ति को प्रोत्साहन देते हैं।

गौतम बुद्ध तो भारतीय धर्मों में भगवान् के अवतार माने गये हैं। भागवत में स्पष्ट ही लिखा है कि 'बुद्धो नाम्ना..... कीकटेषु भविष्यति।' (भागवत १-१२) अर्थात् कलियुग में बुद्ध का अवतार कीकट देश में होगा जो संसारभर के मनुष्यों को शान्ति का उपदेश देकर आवागमन के चक्र से

मुक्त करेंगे। फिर उन्हें भावी बातें भी भली भाँति ज्ञात थीं। वे किसी प्रकार भी मांस भक्षण नहीं कर सकते थे। सूकर कन्द से ही पेट में कब्ज उत्पन्न होता है जो प्राणघातक होता है।

## मांस भक्षण एक अध्ययन

महाभारत के अनुशासन पर्व में बताया गया है कि अहिंसा से बढ़कर कोई धर्म है ही नहीं और जीव हिंसा से बढ़कर कोई दूसरा पाप नहीं। अतः कल्याण चाहनेवाले को कभी भूलकर भी प्राणि हिंसा नहीं करना चाहिये—'अहिंसा परमो धर्मः, अहिंसा परमं तपः, अहिंसा परमं सत्यं, यतो धर्मः प्रवर्तते............सर्वे यज्ञेषु वा दानं सर्वे तीर्थेषु वाप्लुतं। सर्व दान फलं वाऽपि नैतत तुल्य महिंसया।' इसी प्रकार के हिंसा विरोधी धम्मपद (बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध ग्रंथ) जैन दर्शन त्रिपिटक, पुराणादि भारतीय धर्मग्रन्थों में सर्वत्र देखने में आते हैं। इसके अतिरिक्त ईसाइयों के प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ बाबिल में भी मांस खाने वाले, मांस बेचने वाले तथा मारने वाले की निन्दा की गई है—महात्मा ईसा का कहना है कि:—दाउ शेल नौट किल, ऐण्ड ई शेल बी होलीमैन अनटू मी नाइदर शेल ई ईट ऐनी फ्लेश दैट इज टौर्न आफ बीस्टस इन द फील्ड।

इसीसे मिलता जुलता वाक्य महर्षि व्यास का है—'न हि मांसं तृणात् काष्ठात् उपलाद्वापि जायते हत्वा जन्तुं ततो मांसं तस्माद् दोषस्तु भक्षणे।' मांस किसी लकड़ी पत्थर या

जमीन से पैदा नहीं किया जाता उसके लिये तो किसी किसी जीव का प्राणान्त करना पड़ता है, अतः मांस भक्षण से बढ़कर कोई पाप नहीं है।

बहुत से अंग्रेज वैज्ञानिकों ने शाकाहारी एवं मांसाहारी व्यक्तियों का परीक्षण कर यह सिद्ध कर दिया है कि मांसाहार में जितनी ताकत एवं स्फूर्ति मिलती है उससे कहीं अधिक शाकाहारी शुद्ध भोजन करनेवालों में पायी जाती है। डाक्टर हेग की एक बड़ी सुन्दर पुस्तक है 'खाद्य पदार्थ और भोजन' इस पुस्तक के १२९ वें पृष्ठ पर मांस खाने वालों के दुर्गुणों तथा इससे होनेवाली बुराइयों का सजीव चित्रण मिलता है। इसी प्रकार 'भारत में पशुओं की समस्या' नामक प्रसिद्ध अंग्रेजी पुस्तक में मांसाहार से होनेवाले भयंकर परिणामों का कई पृष्ठों में उल्लेख किया गया है। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध प्राचीन वैज्ञानिकों ने इस बात पर जोर दिया है कि मांसाहार अत्यन्त हानिकर वस्तु है। प्रसिद्ध कवि शेली ने मांस भक्षण करनेवाले की सूरत पर कल्पनात्मक मेमने का चित्र खींचा है तथा उसकी कविताओं से पता चलता है कि वह मांसाहार का कितना विरोधी था।

शेक्सपीयर ने भी एक बड़ी सुन्दरकल्पना की उड़ान लगाई है और प्राणि हिंसा का कड़ा विरोध किया है। उसकी कल्पना है कि यदि मैं बादशाह होता या ऐसा कोई उच्च सर्व सर्वा न्यायाधीश होता तो सबसे पहले यही आज्ञा निकालता कि कोई किसीकी हिंसा न करें।

बाम्बे गजेटियर के अनुसार आज से दो ढाई सौ वर्ष पहले का इतिहास डा. जे. टी ह्वीलर ने मुगलकालीन भारत वर्ष का इतिहास नामक एक पुस्तक लिखा है। उसनें उन्होंने बताया है कि 'उन दिनों बम्बई में अक्सर मौसम सर्द रहता था समुद्री हवा तथा वर्षा के कारण इसका प्रभाव और भी ठंडा प्रतीत होता था। कभी-कभी हवा दुषित भी हो जाती थी, जिससे लोगों में तरह तरह की बीमारी का भय बन जाता था। अंग्रेजों ने वहां काफी सुधार किया था सफाई तथा स्वच्छ जल हवा की व्यवस्था से लोगों के स्वास्थ्य में काफी सन्तोष था। रहन सहन का स्तर में भी इन लोगोंने अच्छा सुधार किया था। चारों ओर से जब अंग्रेजों ने हवा, पानी, सफाई आदि की व्यवस्था कर ली तो अचानक उन्हीं अंग्रेजों में से बहुत से एकाएक मर गये। कुछ लोगों ने इनके अनुकूल वातावरण न होने का कारण बताया तो कुछ ने शुष्क तथा समुद्री जल वर्षादि का कारण बताया। जब डाक्टरों ने इनके भीतर पोस्टमार्डम आदि से जँाच की तो पता चला कि इन लोगों ने गाय तथा अन्य भैंसों आदि के मांस खाये थे।'

कहा जाता है टोकियो के प्रसिद्ध प्रोफेसर बेल्ज को निरामिष खाद्य पदार्थों तथा मांस खाने वालों के जँाच की धुन सवार हुई। उन्होंने जापान के कुछ व्यक्तियों को चुना जो निरामिष भोजी थे और जो मांस खाने वाले थे। सबसे पहले उन्होंने निरामिष व्यक्तियों के श्रम, स्फूर्ति तथा कार्य

क्षमता को लिख लिया, और उसी दिन से उन लोगों मांस थोड़ा २ खिलाना आरम्भ किया। उन लोगों को विश्वास देकर खिलाया गया था कि मांस बहुत ही अच्छी चीज है। इसे बहुत बड़े-बड़े लोग खाते हैं। उन लोगों ने भी इसे बड़े लोगों का आहार समझकर बड़े चाव से खाया। थोड़े ही दिनों के बाद वे डा. वेल्ज के पास आये और उनसे प्रार्थना की कि, उन्हें शीघ्र मांस देना बन्दकर दिया जाय। डा. वेल्ज ने देखा उनकी सारी स्फूर्ति, कार्यक्षमता तथा शरीर का तेज जाता रहा।

कहा जाता है गान्धीजीने इसीलिये गाय का दूध पीना छोड़ दिया था कि उसमें मांस का कुछ अंश आता है। और आजीवन दूसरों को सादगी तथा अहिंसादि का उपदेश देते रहे, पर खेद इसी बात का है कि आज उन्हीं के अनुयायी मांसाहार के प्रचार को दिन प्रतिदिन बढ़ाते आ रहे हैं। प्रसिद्ध होमियो डाक्टर नैश का कहना है कि मांस न केवल सुस्ती तथा मानसिक स्वास्थ्य नष्ट करता है बल्कि शरीर में कई ऐसे रोगों का प्रादुर्भाव करता है जिससे मनुष्य आयु बलादि का स्वल्पावस्था में ही नाश हो जाता है। मनुष्य यदि भूल से किसी रुग्ण या अपाहिज पशु का मांस खा लेता है तो उस पशु का रोग मनुष्य को ग्रस लेता है। आज कल मांस खाने के अतिरिक्त अण्डे खाने का भी सर्वव्यापी प्रचार है। कहते हैं मांस मनुष्य के शरीर में मांस बढ़ाता है और अण्डा उसके अन्दर की तात्विक पदार्थों का सृजन करता है।

इससे अपरिपक्व छात्र अन्धाधुन्ध अण्डे का उपयोग करते हैं। परन्तु डा. आरनल्ड हर्ड ने बताया है कि अण्डा मांस से भी अधिक हानिकर पदार्थ है उसमें केवल अधिक मात्रा में प्रोटीन ही नहीं किन्तु उससे एक प्रकार का विशेष पदार्थ पाया जाता है जो चिपचिपा सा रहता है, जिससे भयंकर कब्जियत का रूप धारण कर रोग पैदा हो जाता है। उस पदार्थ से कभी-कभी मनुष्य का प्राणान्त भी हो सकता है।

इस तरह तामसी पदार्थ मनुष्य के लिये अत्यन्त अनुपयोगी वस्तुएँ हैं। लोगों को जहाँ तक अधिक से अधिक हो सके इन वस्तुओं से बचना चाहिये। जिन्हें आदत के रूप में परिणत हो गई है उन्हें भी धीरे-धीरे इनका परित्याग करना चाहिये। यह एक भ्रम उत्पादक विचार है कि महात्मा बुद्ध ने मांस भक्षण किया था। वे तो आत्म ज्ञानी महापुरुष थे। उनके मन में कभी ऐसी बातें नहीं आ सकतीं। जिसने अपना व्रत ही अहिंसा, दया तथा लोककल्याण का ले लिया हो उसके लिये फिर ऐसी बात करना उचित जान नहीं पड़ता।

आज के सर्व भक्षी बौद्ध देशों में और भगवान् बुद्ध के अनुयायियों में जो हिंसा का प्रचार बढ़ा हुआ है, वह बड़ा ही दुःखद एवं विनाशकारी मार्ग पर ले जानेवाला है और बुद्ध की शिक्षा के विरुद्ध है। भगवान् तथागत के भक्तों को बुद्ध जयन्ती के परम पवित्र अवसर पर जीवन भर मांसाहार तथा प्राणि हिंसा से सर्वथा विरत होने की प्रतिज्ञा करनी चाहिये।

# अभिनय का पुरस्कार

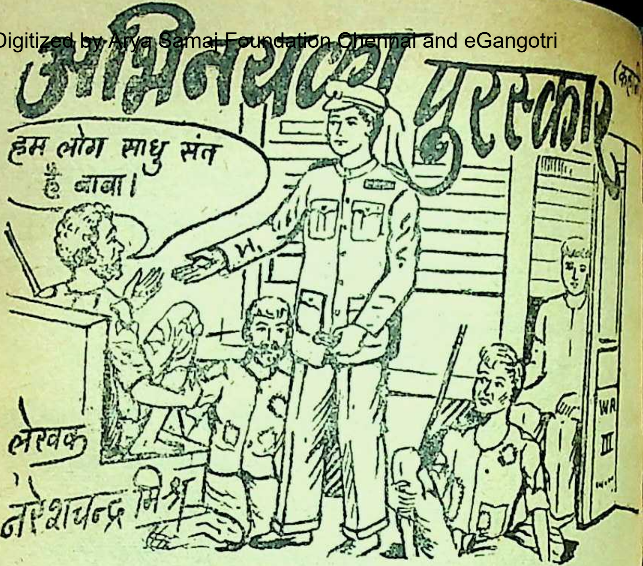
हम लोग साधु संत हैं बाबा।
W.
WA
III

लेखक
नरेशचन्द्र मिश्र

खिड़की से बाहर भागते हुए पथरीले टीले की ओर निहारते अकन्ना का ध्यान बच्चे की अस्वाभाविक आवाज से एकदम उचट गया।

'माई बाबू, धेला-पैसा, मुट्ठी दाना, फटा-पुराना वस्त्र माई बाबू...' उपेक्षा से जल्दी-जल्दी पाठ खतम कर जान छुड़ाते हुए बच्चा मैली हथेलियों से मां का आंचल पकड़ने लगा।

'चटाक।'

डिब्बे में बैठे दूसरे मुसाफिरों समेत सारे भिखारी चौंक पड़े। वजनी तमाचे से बिलबिला कर माँ की गोद में छटपटाते बच्चे की ओर देखे बिना अकन्ना हाथ झटकाते उसके बाप पर बरस पड़ा।

'ऐसे ही सिखाएगा रे ! क्या सिकन्दर लेकर चला था भगवान् के यहां से ? सारा पुजापा ही खंजर निकल गया। जैसी मां वैसा बेटा।'

'क्या हुआ उस्ताद,' तेल चिकटी मैली जटाओं को दोनों हाथों से खुजलाता भिखारी पूछ बैठा।

'अरे करम फूटे हैं इस लौण्डे के, 'पांडुर की ओर संकेत करता अकड़ा पछताव भरे स्वर में सुनाने लगा, 'बीबी मिली तो ऐसी जो महारानी अहल्याबाई के ठाट को ठोकर मारे और बेटा तो पेशवाओं के कान काटता है।'

'मैंने क्या किया है जो खामखा बरस पड़े,' पांडुर की घर वाली बायजा बच्चे को धकेलती दबे स्वर में फुफकार उठी।

'चौपट किया है तू ने। हजार बार समझाया ऐसे नथुने फुला कर तकाजा मत किया कर, दाता से सवाल करते वक्त त्योरियां कुछ ढीली रखनी चाहिएं, पर नहीं मानी तो नहीं ही मानी। नतीजा सामने है। वहीं दूसरी औरतें दोनों हाथ बटोरती हैं पर इसके पल्ले पर दिन भर न एक दाना दीखता है न धेला। देखा-देखी लौण्डे की भी आदत बिगड़ गई। देखो न, कैसे गुर्राता है, जैसे चौथ वसूल कर रहा हो।'

'मुझ से नहीं होता, तुम्हीं बताया करो,' पांडुर ने कुछ विरक्ति और नाराजी भरे स्वर में कहा।

'मैं हमेशा बैठा रहूंगा ? तुझे सब घर-घार समझा लि मेरे सामने तो कुनबे का कोई कभी भूखों न सोया, लगता है यही हाल रहा तो तू दूसरे को कौन कहे, अपना पेट न पाल सकेगा ?'

चेहरे पर गम्भीर शिकन लाकर अकन्ना फिर सा भागते टोलों में खो गया। उसकी बात की कद्र हर भिखा को करनी पड़ती थी। टोली का सरदार होने के लिए जिन गुणों की जरूरत होती है, वह सब उस्ताद अकन्ना में कूट कर भरे थे। पचहत्तर वर्ष की उम्र में भी वह अपने पे और पद के प्रति जरा भी हलकापन नहीं बरतता था। कन्या कुमारी से लेकर कश्मीर और जगन्नाथ से द्वारका तक सारे देश को वह जाने कितनी बार अपनी टोली के साथ मह चुका है। हर प्रान्त की भाषा-बोली और हर समाज के रीति-रिवाजों का उसे पूरा-पूरा ज्ञान है। देश के सारे तीर्थों, मेलों और उत्सवों की डाइरेक्टरी ही समझिए उसे।

दाताओं की गांठ ढीली करने के लिए चलाए गए उसके रामबाण हथकंडों से कोई बच कर नहीं निकल सकता। कहीं पंढरपुर-काशी की यात्रा का खर्चा, तो कहीं विधवा की बेटी और अनाथ बच्चे को पालने का व्यय। कहीं गौ मारे की हत्या का प्रायश्चित तो कहीं भोग-भण्डारा, हवन-यज्ञ या गोशाले का चन्दा। बरहाल अपने विशाल कुनबे का भरण-पोषण करने के लिए वह समय और स्थान के मुताबिक हजारों रूपक बदलने में माहिर है। उसका कुनबा भी राष्ट्रीय

एकता और भाई-चारे का जीवन्त नमूना है। हर जाति और धर्म के स्त्री-पुरुषों का वह खुले दिल से स्वागत करता है। और एक बार मूण्ड लेने के बाद वह चेले को ऐसी तत्परता से ट्रेनिंग देता है कि कोई भुखमारी का शिकार नहीं हो सकता।

युवक पांडुर को उसने उत्तराधिकारी की तरह पाला-पोषा है। इसीलिए उसके बीवी-बच्चों की ओर विशेष ध्यान रखता है।

'सुना है इस बार बड़ी सख्ती है दादा, मेले के अन्दर पटरी पर बैठनेको न मिलेगा? मैली चादरसे ढके कुलबुलाते बच्चे को थपकी देती पूरना पूछ बैठी।

'तुझे क्या फिकर है री, मैं कोई-न-कोई जतन करूंगा ही।'

'जतन क्या करोगे उस्ताद? पिछले कुम्भ में हजारों मर गये थे। इस बार पुलिस बैठने न देगी।' रुद्राक्षधारी मदन्ना बीड़ी का कश खींचता बोल उठा।

'चल-चल, मुझे बताने आया है,।' अकन्ना आत्मविश्वास के लहजे में गर्व से नथुने फुला कर बोल उठा, 'अरे पुलिस वालों के लिये पहले अधकुंभी का इन्तजाम होगा, यहां तिरपन कुम्भ कुम्भी देख डाले। इलाहाबाद ही नहीं, उज्जैन, नासिक, हरिद्वार—सब कहीं।'

'मौके से बैठने को मिला तो इतनी दूर से आने की

मेहनत वसूल कर ही लेंगे, दूसरा दाढ़ीवाला भिखारी तेलचट कमीज से चीलर ढूंढ़ता बड़बड़ा उठा।

'अरे मैं तीन-सौ-तेरह हिकमत जानता हूं। पुलिस खाली सूबे भर की है पर हम लोग तो सारे हिन्दुस्तान आये हैं।' अकन्ना मुस्करा पड़ा।

इटारसी पैसेंजर शंकरगढ़ स्टेशन पर खड़े होते ही लिवास वाले भूतों ने अकन्ना की टोली पर छापा मार दिया।

'टिकट।'

'हम लोग साधु-सन्त हैं बाबा,' अकन्ना छूटते गिड़गिड़ाया।

'ये सब नहीं चलेगा, टिकट निकाले बिना चार्ज देना पड़ेगा।'

'गरीब हैं, मक नहाने जाते हैं, पैसा-वैसा नहीं है, मांगते खाते....।'

'ऐ, मैं सब जानता हूं। सीधे पैसे निकाले बिना मजिस्ट्रेट के सामने पहुंचे छः महीने तक नौ लाख की कोठी में मक नहाओगे।'

'ले चलो बाबा, अकन्ना बढ़े उत्साह से टिकट-चेकर के पास पहुंच गया, 'हमारे पास जो कुछ है, सब लेलो पर छः महिना नहीं, कम से कम एक साल के लिए भिजवाना। वहां रोटी कपड़ों का . . . . .'

'हटाओ यार, मरभुखे हैं।' दूसरा टिकट चेकर अकन्ना की ओर घूम पड़ा, 'ऐ, उठाओ चुपचाप, उतर पड़ो, चलो भागो।'

'रात के अंधेरे में बाल-बच्चों को लेकर कहां मारे-मारे फिरेंगे ?' अकन्ना ने हाथ जोड़ कर मिन्नत की, 'आपके बाल सुखी रहें, प्रयाग तक चले जाने दीजिए।'

'उतरता है या बुलाऊं पुलिस ?' और झटके से टिकट चेकर ने अकन्ना की झोली उठा कर प्लेटफार्म की ओर उछाल दी। बात-की-बात में सारी टोली नीचे उतर गयी।

'सालों की आंखों में सुअर का बाल है, अकन्ना प्लेटफार्म पर बिसूरती झोली को सावधानी से उठाते हुए बड़बड़ाया, 'कुत्ते हैं, अभी दो टुकड़े फेंक देता तो पर जानते नहीं, कहीं भी ले जाते, फूटी कौड़ी भी नहीं मिलती, चाहे सब कहीं तलाशी ले डालते। हां, इसी खातिर तो बायजा की सारी गलती माफ हैं। ऐसा रखती है कि……'और अकन्ना एकाएक हंस पड़ा।

× × +

मेला की ओर जाने वाली बड़ी सड़क पर अकन्ना अपना पड़ाव डाल चुका था। कुछ लोग फटे कपड़ों के छोटे तम्बू गाड़ने में व्यस्त थे और दूसरे चावल बीनने में, आग सुलगाने और अलमिनियम के पिचके गंदे बर्तनों की सफाई में व्यस्त थे। बाकी भिखारियों को सड़क की दोनों पटरियों पर बैठा कर अकन्ना निरीक्षण के लिये निकला। लेकिन बायजा पर निगाह पड़ते ही उसका दिमाग फरंट हो गया, 'ओ महारानी ! कभी तो बूढ़े की बात रख लिया कर,' वह दांत पीस कर चिल्लाया।

'क्या हो गया ?' अरी तुझे कित्ती बार कहा।' अकन्ना नजदीक आ गया और भरसक धीमे शब्दों में बोला, 'जरा आंचल सरका कर पिला तो क्या बिगड़ जाय, बाबुओं की निगाह पड़ेगी तो वे कुछ सोचेंगे, दया करेंगे।'

'पर मुझे शरम'......

'देख लिया न, अच्छा २ तू हट जा, ये धुली कच्छेदार धोती और, और... अकन्ना नजदीक आकर, जैसे मानुष-गंध पाये भूत की तरह हवा में नाक ऊंची करके सूंघने लगा, ओ क्या खुशबू भी लगा ली है। बहुत अच्छा, जा-जा डेरे में लेट अभी पाण्डुर को भिजवा देता हूं। यहाँ बेकार......'

'तुम तो खामखा.........'

'अरे खामखा नहीं, सौगंध है। हट जा, वर्ना तेरी गंध पर शहर के शौकीन मंडराने लगे तो कुनबे की बहू-बेटियों की इज्जत.........।'

इसी वक्त सामने घुड़सवार पुलिस की टुकड़ी आते देख कर वह जल्दी से उनकी ओर बढ़ गया।

'ऐ, हटाओ ये सब डेरा-डंडा' घुड़सवार दरोगा त्योरी चढ़ा कर तेजी से गुर्राया, 'पूछा न जांचा, टिड्डी की तरह बैठ गये।'

'शाम के वक्त सरदी में कहाँ जांय सरकार,' अकन्ना गिड़गिड़या, पड़ा रहने दीजिये मांगते खाते, हुजूर का जयजयकार।'

'दे' दरोगा ने तैश से पीछे के सवारों को हुक्म दिया 'ऐसे नहीं मानेंगे ये मरभुखे। डेरा-डंडा उखाड़ कर फेंक दो। ट्राफिक जाम करते हैं। कुचल कर मरेंगे और बदनामी हमारे सिर..........।'

हुक्म पाते ही पगड़ीधारी सवारों ने तेजी से घोड़े सामने की ओर दौड़ाये तो अकन्ना की टोली के भिखमंगे पल्ले उठा कर भगे। जल्दी में एक-दो फिसल कर गिरे। दाताओं के अनुग्रह से पल्ले में पड़ी खिचड़ी, तिल के लड्डु, नये पैसे, अमरूद और सड़े केले बिखर गये।

अप्रत्याशित आक्रमण से स्तब्ध अकन्ना देखता ही रह गया और बात-की-बात में सिपाहियों ने वीरभद्र के सैनिकों की तरह छोटे-छोटे बांसों पर पड़े फटे कपड़ों के आवरण हटाना शुरू कर दिया। चूल्हों पर पड़ी पतीलियों ने लुढ़क कर आग बुझाने के साथ ही अगले चौबीस घण्टों के लिये उपवास की घोषणा कर दी। मल के पक्के रंग में रंगी झोपड़ियों पर पड़े गंदे कपड़े, अनाज और टूटे-फूटे बर्तन इधर-उधर बिखर गये।

कुनबे को इस तरह ध्वस्त होता देख अकन्ना के अंदर का ममत्वपूर्ण संरक्षण तिलमिला उठा। तेजी से घुड़सवारों के सामने खड़ा होकर वह सामने जाते हुए यात्रियों के प्रवाह को पुकार उठा, 'ये देखिये जुल्म की हद है। गरीब दुखियों को सताते हैं। रक्षक हैं कि भक्षक, राम-राम, पैसा कहाँ मिले जो देकर इनसे जान छुड़ायें। हम तो खुद दर-दर के

सामर्थ्य

भिखारी हैं, दाने-दाने के मुहताज हैं।'

अतिनाद से भीड़ का ठठ्ठ जमा हो गया।

'क्या है भाई ? क्यों गरीब को परेशान करते हो, दो माँगने-खाने दो।'

'भिखमंगों से हिस्सा बटाती हैं ये पुलिस की जात। कैसी हराम-दाढ़ पड़ गयी है इन लोगों की ?'

'आप लोग अपना रास्ता लीजिये। ये सड़क पर एक्सीडेंट..........।'

'बड़े आये एक्सीडेंट बचाने वाले, जब हुआ था तब कहाँ थे ? मर तो गये लाखों, अब इन गरीबोंको सताते हो।'

'अरे ऐसे नहीं मानेंगे ये लोग। कोतवाली में शिकायत करो तुम लोग,' एक नेता खद्दरधारी महाशय टोपी ठीक करते बोल उठे, जिस तरह लूट हुई है उसकी गवाही हम लोग भी देंगे।'

मामले को तूल पकड़ता देख घुड़सवारों के साथ आगे बढ़ते हुए दरोगा ने अकबा को चेतावनी दी, 'जल्दी से खिसक जाओ, यहां डेरा-तम्बू न लगाना, वर्ना..........।'

'दादा!'

'ऊं'

'यहां कब तक लेटे रहोगे ? हड्डी काँपी जा रही है। वहीं चलो न पाकड़ के नीचे, सब परख रहे हैं। बायजा सत्तू साने बैठी है।'

'तू खाले, बेलौस लुढ़के ढेरे पर करवट लेता अकन्ना गहरी सांस के साथ अपने उजड़े आशियाने को निहारने लगा।

'उठो उस्ताद, दिल छोटा करने से काम नहीं चलेगा।' फटी तहमत लगाये त्रिपुण्डधारी मदन्ना आकर समझाने लगा, 'मैंने पहले ही कहा था, पुलिस सख्ती करेगी।'

'तुम सब गीदड़ हो', अकन्ना ने तिरस्कार पूर्वक शब्द थूके 'तमीज नहीं, अरे दाता लोगों से बताओ अपनी दुर्गति इस बूढ़े की दुर्गति' और गंभीर अकन्ना आँखों में किसी मतलब भरे संकेत की बिजली चमका कर चुप हो गया।

'लेकिन तुम खाली कुर्ता पहने हो। देर तक लोटोगे तो सर्दी लग जायेगी। पांडुर ने फिर आग्रह किया।

'बला से, कुनबे का भला तो होगा, इत्ती दूर से आये हैं। अमावस भी खाली गयी तो ...।'

और बात-की-बात में पकड़ के कुछ भिखमंगों ने आकर अकन्ना को घेर लिया।

'बाबू देखो, गरीब साधू पर अत्याचार। सब कुछ लूट लिया। डेरा गिरा दिया। जाड़े-पाले में अन्न-जल के बिना दुखी साधू पड़ा है। दया करो, कुछ।'

जन-समूह की सरस्वती पूरे वेग से गंगा-यमुना के संगम की ओर बह कर त्रिवेणी नाम सार्थक कर रही थी। अमावस के अन्धेरे में आसमान ठण्डी सांसें छोड़ रहा था।

चारों ओर ऊनी बरान कोटों, मफलरों, मोजों, लोइयों औ कम्बलों की किलेबंदी से लैस जनता के बीच फटे चीथड़ों। लिपटा विरक्त आंखों से आसमान की ओर घूरता अकन्ना आकर्षण का केन्द्र बना जा रहा था।

'क्यों भाई क्या हो गया इसको ?'

'अरे पुलिस की जात चांडालों से भी गई बीती है। कफन-खसोट, दुखियों को लूटते हैं कमीने, राम-राम।'

'हां-हां देखो बाबू, भूखे साधू पर अत्याचार, दया करो बाबा। सताये गरीब की मदद,' अकन्ना के मूक अभिनय की व्याख्या करने में पांडुर अब बड़े २ कवियों को मात दे रहा था।

'राम-राम गरीब की हाय बुरी होती है।' और दो मुट्ठी खिचड़ी तथा एक तिल का लड्डु अकन्ना के पल्ले बरस पड़े। 'छिः छिः, मरे को मारते हैं, भगवान् बदला लेंगे।'

'माई-बाबू मदद कीजिए,' पांडुर और उसके साथी रह-रह कर गरम लोहे पर चोट दे रहे थे।

नये पैसे, अधन्ने, अमरूद और खिचड़ी की बारिश होने लगी। किंतु आसमान से शिकवा में लीन अकन्ना की अपनी विरल-मुद्रा उदयशंकर को भी मात दे रही थी। पांडुर उत्साह से चीखता जा रहा था। बीच बीच में अनाज का ढेर अकन्ना के बदन के बराबर ऊंचा हो जाता था मितो मंगे जल्दी २ उसकी सतह बलुई धरती से मिला देते थे। बारी-बारी से सभी जाकर लड्डू और फलों को निगलते और

अकन्ना के पास लौट कर पूरी ताकत से चीखते, 'बाबूजी, गरीब साधू पर जुल्म, बाबू कुछ मदद...।'

भोर की ओर बढ़ती रात के साथ ठंड और भीड़ बढ़ती जा रही थी। सबेरे के धुन्धलके में कुहरे के गुब्बार से सारे मेले पर अन्धेरा छा गया। कड़ाके की शीत-लहरी से कांप कर अकन्ना ने करवट बदली तो उसका सारा बदन पाले की ठण्डी फुहार से तर हो रहा था।

'सर्दी है क्यों पांडुर!' उसने चेले को बुला कर अर्थपूर्ण स्वर में कहा।

'हां दादा पर घाटे में नहीं रहे, बायजा तो ढेर में से पैसे नहीं बीन पा रही है। कमाल कर दिया, कुछ देर में ही बेड़ा......।'

और चेले की दिलासा से अकन्ना की गरम होने की ललक कुहरे में विलीन हो गई। रीती आंखों से आसमान को निहारता वह उसी तरह पड़ा रहा। भिखमंगों का विज्ञापन जोरों पर था।

एकाएक अकन्ना को लगा उसके सर से पैर तक ठण्डी करेंट की लहर दौड़ रही हो और सांस अन्दर लेने में परेशानी हो रही हो। उसने घबड़ा कर करवट बदली, 'पांडुर!'

'ठीक चल रहा है दादा! इसी तरह।'

'सुन तो, मेरा जी घबड़ाता है। छाती में दर्द और घुटन।'

'सब ठीक हो जायगा, कुछ देर की बात है, पड़े रहो।' और परेशान अकन्ना ने करवट बदल ली।

लेकिन कुछ देर बाद उसे लगा की एकाएक सांस अन्दर लेने में उसे बहुत ताकत लगानी पड़ रही है।

'मेरा कंबल लादे पांडुर।'

'क्या करोगे दादा, सूरज निकलने ही वाला है। दो पहर तक ऐसे जमे रहो।'

'मौनी अमावास बार-बार......'

और पांडुर जल्दी से चीखने लगा, 'बाबू, दाता, देखो रात से भूखा-नंगा साधू तड़प रहा है। सर्दी लग गई बाबू, मदद करो दानी दाता!'

अकन्ना को लगा छाती से उठ कर कोई चीज उसके गले में अटक गई, अब हवा अन्दर न जायगी। घबड़ा कर वह अस्पष्ट स्वर में कुछ बड़बड़ाने के साथ डेरे से बाहर छटपटाने लगा। उसके कानों में पांडुर का स्वर काफी दूर से आता मालूम होता था।

'बाबू भूख से तड़प रहा है, भूखा नंगा साधू। दया करो फटे पुराने बस्तर का दान। हाय-हाय, धर्मी बाबू पुन्न ले लो, धरम की बात है।'

अकन्ना पूरी ताकत से पुकारने के लिये चीख पड़ा। उसे लगा सारे शरीर को लकवा मार गया और वह कोशिश करने पर भी एक शब्द नहीं बोल सकता।

भिखारियों के नकारखाने में उसकी आवाज तूती की तरह बेगाना होती जा रही थी। घुटन के साथ छटपटाहट बढ़ती ही जा रही थी। गले से घड़–घड़ की आवाज निकालता वह पूरी ताकत लगा कर जमीन पर काफी दूर तक लोटने लगा।

'बाबू गरीब साधू ठंडे में अकड़ गया।'

अकन्ना सुस्त पड़ता जा रहा था। पीड़ा से छटपटाती आंखों में बेबसी भर कर वह कुछ कदम पर खड़े चेलों की आवाज सुन रहा था।

मृत्यु-यंत्रणा के झटके में दम तोड़ते उसकी आंखों के पंखेरू आखिरी क्षण छटपटा कर स्थिर हो गए। मरते समय चेहरे पर अचरज की रेखायें थीं, अपने सफल अभिनय पर था योग्य उत्तराधिकारी पांडुर के विज्ञापन पर, कौन जाने?

* * *

'अरे मैं तो अभी नहीं जान पाता,' पांडुर ने पछताव भरे स्वर में साथियों को सुनाया, 'दो--एक भाइयों ने नजदीक से लड्डू फेंके तो मुंह पर लगे पर दादा ने हरकत नहीं की।'

'खिचड़ी से निकाल कर भिखारियों ने सारी खिचड़ी समेट ली।

'अब', मदन्ना ने प्रश्नाकुल दृष्टि पांडुर पर डाली।

'अब क्या, मौत पर भी वश है किसी का?' पांडुर ने निर्विकार भाव से सर हिलाते हुए कहा, 'किया क्या जाय?'

'करेंगे क्या, रोजी का वक्त है, दादा ने हमेशा समझाया

है पहले पेट का धन्धा फिर और कुछ......।'

'लेकिन ये मिट्टी पैसे ही........।'

'यही तो नहीं समझते तुम लोग, दादा चलते-चलते हम लोगों की भलाई के लिए सीख दे गए हैं, अब उनकी मिट्टी के नाम पर मांगो, जितना इकट्ठा होगा, सब ठाठ से भोज में लगा देंगे।'

पल भर में भिखारी फिर चारों ओर फैल गए, बाबा, एक भिखारी मर गया बाबा! उसका क्रिया कर्म के लिए दान करो बाबा!'

'दाता-धरमी! कफन के लिए पैसा-दो पैसा दे दो। बाबा, साधू मर गया।'

और पैर अकड़ाये अकम्मा के मरे चेहरे को निहार कर दुखित स्नानार्थी करुणा का ढेर बरसाने लगे।

ज्यादा देर यहां रखना ठीक नहीं। निश्चिन्त भाव से बीड़ी का कश खींचते पांडुर ने बायजा से सलाह चाही। 'जगह बदल देंगे तो और मिलेगा, यही तो मौका है।'

'छिः छिः, तुम लोग नरक जाओगे, बायजा दांत पीस रही थी। 'भगवान् का भी डर नहीं, दादा की लाशसे कमाई करते हो?'

* * *

मद्रास, केरल, मैसूर, तथा आंध्र प्रदेश में हिगिन बूथमस के रेल्वे बुक स्टालों पर रामतीर्थ मासिक मिलता है। तथा उत्तर भारत में ए. एच. ह्वीलर के रेल्वे बुक स्टालों पर रामतीर्थ मासिक मिलता है।

* * *

# "प्राणायाम की विधि तथा महत्व"

लेखक—नरेशचन्द्र भार्गव

प्राणायाम का महत्व जानने से पूर्व यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि प्राणायाम होता क्या है। प्राणायाम = प्राण + आयाम। आत्मा की वह शक्ति जिसके द्वारा मन और अन्य इन्द्रियाँ अपना कार्य अन्तर्जगत तथा बाह्यजगत में करती है 'प्राण' कहलाती है और आयाम का मतलब है 'वश में करना'। इस प्रकार प्राणायाम का अर्थ हुआ वह विधि जिसके द्वारा मन और इन्द्रियों को वश में करके यथायोग्य उपयोग करना।

दुनिया में सबसे अद्भुत वस्तु मानव शरीर ही है। मानव शरीर में यद्यपि अनेक नाड़ियाँ हैं और उनमें से मुख्य इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्ना तीन मुख्य हैं। प्राण शक्ति हमेशा इड़ा और पिङ्गला नाड़ी से प्रवाहित होती है लेकिन प्राणा-

बाहर निकाल दो परन्तु साँस बाहर निकालने में साँस खींचने से दुगना समय लगना चाहिये।

अनुलोम विलोम प्राणायाम विधि में बायें नथुने से पूरक, कुंभक करके दाहिनी नाड़ी से रेचक करें। दाहिनी से पूरक कुंभक करके बांई नाड़ी से रेचक करें तब एक प्राणायाम होता है।

प्राणायाम विषय को समझने के लिये इस विषय का कुछ और गहन अध्ययन करना पड़ेगा। सम्पूर्ण प्राणायाम की क्रिया को हम तीन भाग में बाँट सकते हैं।

(१ पूरक (२) कुम्भक और रेचक।

(१) पूरक:— श्वास को भीतर खींचने को कहते हैं।

(२) कुम्भक:— खींचे हुये श्वास को भीतर ही रोक रखने को कहते हैं।

रेचक:— रोके हुये श्वास को नाक द्वारा बाहर निकालने को रेचक कहते हैं।

एक प्राणायाम में जितना समय पूरक में लगाया जाय उससे चौगुना कुम्भक तथा दुगना रेचक में लगाना चाहिये।

मूलबन्ध, जालन्धर बन्ध तथा उड्डीयान बन्ध ये तीन क्रियाएँ हैं जिनका संबंध पूरक, कुम्भक और रेचक से है।

मूलबन्धः— गुदा को ऊपर की ओर खींचने को कहते हैं।

जालन्धर बन्ध:—ठोड़ी कण्ठ कूप में लगाने को कहते हैं।

उड्डियानबन्धः-- पेट को रीढ़ की ओर ले उ———— गाली
कहते हैं।

पूरक क्रिया के समय--मूलबन्ध और उड्डियानबन्ध। की
कुम्भक के समय--मूलबन्ध और जालन्धरबंध। को
रेचक के समयः--मूलबन्ध और उड्डियानबन्ध लगाइये गा
चाहिये।

विना बन्ध लगाये प्राणायाम से पूर्ण लाभ नहीं होता। हमारे शरीर में वात, कफ और पित्त तीन धातुयें समान रूप से पैदा होती हैं। ऋतु परिवर्तन, खाने पीने और रहन सहन की त्रुटि के कारण जब इन तीनों धातुओं में असमानता पैदा हो जाती है तभी मानव शरीर में रोग हो जाते हैं। लगभग सभी शारीरिक रोगों का यही कारण है। अनुपात के अनुसार रोगों की किस्म में अन्तर हो जाता है।

प्राणायाम के द्वारा किसी भी रोग, किसी भी कारण से हो शरीर के स्वस्थ होने में सहायता मिलती है। और प्रत्येक रोग को अलग अलग व्याख्या करना व्यर्थ है इसके अतिरिक्त क्योंकि प्राणायाम द्वारा प्राणवायु सुषुम्ना नाड़ी में पहुँचता है और निरोगी को भी इसके अभ्यास से और अधिक, ज्ञानवान, तेजस्वी, बलवान एवं मेधायुक्त बनने में सहायता मिलती है। इसलिये प्राणायाम का अभ्यास सभी व्यक्तियों को लाभप्रद है।

—:०:—

# विश्वमैत्री का संदेशवाहक रवीन्द्र

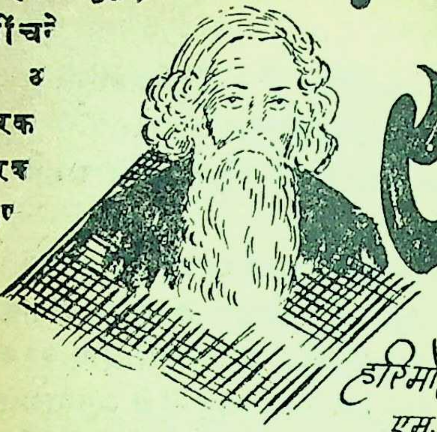

लेखक
हरिमोहनलाल श्रीवास्तव
एम. ए. एलएल. बी. एल. टी.

रवि बाबू ने अपने नाम को सार्थक करके दिखाया है। वे बंगाल के सूर्य थे। सूर्य का एक नाम 'मित्र' है। रवीन्द्र की प्रतिभा देश और काल में सीमित न रह कर मानवता को विश्व-मैत्री का सन्देश देने के लिये प्रस्फुटित हुई। कवीन्द्र रवीन्द्र को हम 'विश्व-बन्धुत्व का सन्देश-वाहक' कहते हुए उगते हुए भारतीय राष्ट्र की ओर से विदेशियों के हृदय में घर बनाने के लिये भेजे जाने वाला राजदूत-किंवा जन-नायक कहें, तो अत्युक्ति न होगी।

भारतीय संस्कृति की युग मूर्ति के रूप में रससिद्ध कवीश्वर रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने युद्ध-विभीषिका से सन्तप्त एवं भौतिकवाद के ज्वर से पीड़ित पश्चिमी राष्ट्रों को आध्यात्मिक शान्ति का अभिनव सन्देश दिया, और चिरकाल के लिये

वहाँ के जन-जन के हृदय पर पराधीन भारत के शक्तिशाली प्रतिनिधि के रूप में विलक्षण छाप छोड़ी। यह रवीन्द्र की ही प्रतिभा थी, जिसने उन गये-बीते दिनों में भी भारत को विदेशों में विशिष्ट सम्मान दिलाया। पराई प्रशंसा के लिये स्वभावतः कृपण अंग्रेज जाति से भी उन्होंने भरपूर सराहना पाई। आज के हमारे राजदूतों से कहीं अधिक सफल सरस्वती के इस वरद सुपुत्र के विषय में सत्यनारायण 'कविरत्न' ने ठीक ही लिखा है—"जिहि लखि-लखि प्रचुर विदेश जन होत नेह नत चकित चित।

विराट् और बहुमुखी प्रतिभा के धनी साहित्य-सम्राट रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'कवीन्द्र' का प्यार-भरा नाम पाया, क्योंकि वे सब कुछ होकर भी कवि पहले थे। उन्हें 'गुरुदेव' का गौरव भी मिला, क्यों के वे काव्य, कला और संस्कृति के समर्थ उन्नायक थे। वैदिक काल के ऋषियों जैसी अत्यन्त सौम्य एवं प्रशान्त मुखाकृति पाकर तथा उपनिषदों के गूढ़ ज्ञान को सर्वप्रिय एवं सर्वग्राह्य रूप में लेकर उन्होंने भौतिकवाद की ज्वाला को प्रशमित करने के लिये भारतीय आध्यात्मिकता का व्यजन डुलाया, संसार के व्यथित मानवों ने शीतल सुशांति का अनुभव किया, और मैत्रीपूर्ण प्रेम-भाव से जीने की सीख ग्रहण की। इस स्वप्न-द्रष्टा कवि ने जगती को जो जीवन-सन्देश दिया, वह सात्विक क्रियाशीलता का सन्देश था—भारतीय संस्कृति का चिर-सन्देश। यह सन्देश पलायन वाद का न था। कला का बहुजन-हिताय रूप

अपना कर विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ने युग–युग के लिये वि
के समक्ष विश्व–बन्धुत्व की भावनाओं का लेखा-जो
प्रस्तुत कर दिया।

प्रकृति के इस पुजारी ने प्राचीन संकीर्णताओं का नि रण करते हुए आधुनिक उदारता को अपनाया, और साहि को एक नई दिशा दी। कवीन्द्र का दृढ़ विश्वास था कि मानव-मन में जो स्वतंत्र है, उस पर किसी अत्याचारी का शासन नहीं चलता। मन की स्वतंत्रता के लिये सतत प्रयत्नशील इस महामानव की राष्ट्रीय एवं अन्तरराष्ट्रीय भावनाओं का प्रकाशन विश्व–भारती में हुआ। कवि केवल स्वप्न-द्र नहीं था, वह महान् विचारक अपने विचारों को मूर्त रू देने, उन्हें कार्यान्वित करने की बात भी जानता था। विश्व-भारती के द्वारा अखिल विश्व के मानवों का एक नीड़ बनाने की उनने सफल कामना की।

विश्व–कवि ने कविता और कहानी, नाटक और उपन्यास, प्रबन्ध और व्यंग्य, पत्र और संस्मरण, उपदेश और व्याख्यान–सभी अंगों को सँवार कर भारती के भांडार को समृद्ध किया। गीतिकाव्य और नृत्य–नाटक को रूपाकार देना भी साहित्यिक, संगीतज्ञ और चित्रकार के इस सम्पूर्ण व्यक्तित्व के लिये ही सम्भव हुआ। महान् रहस्यवादी कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के विशाल कृतित्व की अनुपम सफलता का रहस्य उनके अपने व्यक्तित्व में भली प्रकार समाया हुआ है–उसकी ओर इंगित–मात्र करना ही हमारा लक्ष्य है।

७ मई, १८६१ को कलकत्ता के प्रख्यात 'जोड़ा सांको' भवन में एक साधन-सम्पन्न, ख्याति-प्राप्त परिवार में जन्म पाने वाले रवीन्द्रनाथ ने अपने बाल्यकाल में कुछ तीखे अभाव का अनुभव किया। रवीन्द्र की माता शारदादेवी उन्हें असमय में ही छोड़ गईं। उनके पिता महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर बंगाल में ब्रह्म समाज के प्रतिष्ठाता थे, जो अपनी आध्यात्मिक रुचि में व्यस्त रहते थे। परिवार के नौकरों के स्वार्थपूर्ण कठोर अनुशासन में बाह्य संसार के लिये लालायित यह बालक प्रारंभ से ही कल्पना और मनन में मग्न रहने लगा। बन्धनों के होते हुए भी उसका मन आनन्द के मुक्त गगन में स्वच्छन्द विहार करता था। झरोखों की साँसों से बाह्य प्रकृति को निर्निमेष देख कर असीम आनन्द की अनुभूति प्राप्त करने वाला बालक साधारण वस्तुओं के अन्तराल को स्पर्श करने वाली दिव्य दृष्टि से संपन्न हुआ।

गणित और पदार्थ विज्ञान, इतिहास और भूगोल, ड्राइंग और जिमनास्टिक, अंग्रेजी और संगीत, अस्थिविद्या एवं प्राकृतिक विज्ञान की व्यापक शिक्षा के लिये समुचित सुविधाएं होते हुए भी बालक रवीन्द्र अध्ययन में अधिक मन न लगा सका। प्रकृति की पाठशाला से प्रत्यक्ष प्रेरणा पाने वाला बालक, जिसकी प्रवृत्ति शैशव से ही अन्तर्मुखी थी, अध्ययन पर ध्यान न देकर भी परीक्षा में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर सकता था। वह जन्म-जात प्रतिभा-सम्पन्न कवि था, जिसमें पिता के संसर्ग से आध्या-

त्मिक शक्ति का विकास हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति पाने वाले पितामह प्रिन्स द्वारकानाथ ठाकुर के प्रताप से परिवार। साहित्य एवं ललित कलाओं की चर्चा के वातावरण से बालक रवीन्द्र में कला एवं संस्कृति के प्रति चाव जागृत हुआ। हिमालय, बचलपुर, अमृतसर, डलहौजी आदि की यात्राओं ने उनमें सृजन की स्फूर्ति का संचार किया।

सात वर्ष की अवस्था में ही 'पयार' छन्द में कविता की रचना करने वाले इस बाल-कवि ने बारह वर्ष की आयु में 'पृथ्वी-पराजय' नामक प्रथम नाटक लिखा। तेरह वर्ष की आयु में रवीन्द्र ने शेक्सपियर के 'मैकबेथ' का बंगला अनुवाद किया। 'भानुसिंह' (रवि + इन्द्र) के छद्म नाम से 'भारती' की सेवा करने वाले बाल-कवि को गुरुजनों के प्रोत्साहन ने बहुत आगे बढ़ा दिया। सत्रह वर्ष की अवस्था में रवि बाबू ने प्रथम बार योरुप की यात्रा की। पहले ब्राइटन और फिर लन्दन में वे अंग्रेज कवियों और संगीतज्ञों के सम्पर्क में आये। प्रायः डेढ़ वर्ष विलायत में बिता कर वे कुछ समय चन्दन नगर में गंगा किनारे रहे, जहां उन्होंने 'संध्या संगीत' के गीतों की रचना की। ९ दिसम्बर, १८८३ को रवीन्द्रनाथ का विवाह मृणालिनी देवी से सम्पन्न हुआ।

स्यालदा के एकान्त शांत वातावरण में जमीदारी का काम देखते हुए उन्होंने ग्रामीण जीवन की सरलता को निकट से देखा, और मानसी, बलिदान, सोनारतरी, चित्रांगदा, चित्रा और उर्वशी-जैसी कतिपय श्रेष्ठ रचनाओं का निर्माण

किया। बोलपुर के पास जहां मनोरम दृश्यों के बीच महर्षि का साधन-भवन था, और जहां रवीन्द्र ने वृक्षों के नीचे बैठ कर अगणित कविताओं की रचना की थी, शांति-निकेतन की स्थापना उनके जीवन की विशाल महत्वाकांक्षा थी, और थी भारत-भूमि के लिए एक बड़ी देन। पश्चिमी शिक्षा से पूर्णतः सन्तुष्ट न होकर इस मौलिक विचारक ने प्राचीन भारतीय आदर्शों के साथ पश्चिमी शिक्षा के गुणों का समन्वय प्राप्त करने की कामना की। गुरु देव अपने छात्रों के मन और आत्मा की ऐसी उन्नति चाहते थे, जो इन्हें सौन्दर्योपासक बनाते हुए ईश्वरीय प्रेम और विश्व-बन्धुत्व में बांध रखे।

सन् १९१२ में कवीन्द्र ने तीसरी बार योरुप की यात्रा की। और अगले वर्ष उन्हें 'गीतांजलि' के अंग्रेजी अनुवाद पर विश्व का महान् आदर 'नोबेल पुरस्कार' प्राप्त हुआ। विषाद की जो गहरी छाप कवीन्द्र के मानस पर कई वर्षों से निकट स्वजनों के देहान्त के कारण पड़ती आई थी, और जिसने उन्हें स्मरण, नौका डूबी एवं खेवैया शीर्षक रचनाओं के लिये प्रेरित किया, उसी ने उन्हें विश्वविख्यात कवियों में अन्यतम स्थान दिलाया। कलकत्ता विश्व-विद्यालय ने डी. लिट की उपाधि से और ब्रिटिश सरकार ने 'नाइट-हुड' के सम्मान से उन्हें विभूषित किया। बाद में जलियानवाला बाग की नृशंसता से क्षुब्ध होकर विश्व-कवि का स्वातन्त्र्य 'सर' की उपाधि लौटाने के लिये बाध्य हुआ।

अंग्रेजी पर मातृ भाषा जैसा अधिकार रखने वाले इस

रहस्यवादी कवि ने दो हजार से अधिक गीतों की रचन की, जिनका बंग-भूमि में घर-घर प्रचार है। उन्होंने उच्च कोटि के उपन्यास लिखे, कितनी ही कहानियां, अगणि नाटक एवं प्रहसन। उन्होंने प्रायः ७० वर्ष तक लेखनी संभा रखी। इतने विभिन्न विषयों पर इतना अधिक और इतन उत्तम किसी दूसरे प्रतिभा-पुंज ने नहीं लिखा। उन्होंने किसी ऐसे विषय पर लेखनी नहीं उठाई, जिसे उन्होंने सजा कर, संवार कर न रखा हो। संसार की कोई ऐसी सभ्य भाषा नहीं, जिसमें उनके ग्रंथों का अनुवाद न हुआ हो। फ्रेंच, जर्मन और अंग्रेजी में अनूदित उनके एक-एक ग्रंथ की लाखों प्रतियां बिकीं। संसार-भ्रमण का सुन्दर सुयोग लेकर अवतीर्ण होने वाली इस विमल विभूति ने योरुप, अमेरिका और एशिया का कोई प्रमुख देश न छोड़ा। वे जहां गये, वहीं राजा-प्रजा ने उनके स्वागत के लिये आंखें बिछा दीं। ऐसा अनुपम प्रभाव था भारतीय जनता के इस प्रभावशाली प्रतिनिधि का।

कवीन्द्र रवीन्द्र ने जीवन और कला में रहस्य की सार्थकता किसी भी अन्य व्यक्ति से अधिक समझी। वे जानते थे कि कितना अनन्त वह अन्धकार है, जिसमें से हम हाल में ही निकले हैं, और कितना घनीभूत अन्धकार है वह जिसमें से हमें गुजरना है। उनमें एमर्सन और मैटरलिंक से बहुत-कुछ समानता है, परन्तु वे कोट्स, रसल और सिन्ज से बहुत दूर हैं। वे जो कुछ कहते थे, उसे हम जानते हैं। परन्तु भूले हुए होते हैं, और वे जब कुछ कहते हैं, तो हमारा वेराग्य उस पर जम जाता है। दिव्य भावनाओं से

भरे हुए उनके अनगिनत गीतों में आत्मा और परमात्मा सीमित और असीम के मिलन और बिछोह का गान है— उनमें हमारे हृदयों की अपनी झंकार है। रवीन्द्र के गीतों में अलौकिक आशा, अपूर्व आल्हाद और अमर आलोक की अमित आभा है। उनमें जीवन का शाश्वत सन्देश है, जीवन की अनन्त प्रेरणा है, और हृदय के समस्त अभावों को भर देने वाली रस-सिक्त परिपूर्णता भी है। इसीलिये उनका प्रभाव जन-जन पर युग-युग के लिये है।

७ अगस्त, १९४१ को चिर-निद्रा में विश्राम पाने वाले बंगला के साहित्य-महारथी ने अनेक अमर कला-कृतियों- पुस्तकों और चित्रों के साथ विश्वभारती और श्री निकेतन जैसी सजीव संस्थाएं अपने स्मारक के रूप में छोड़ी हैं। उस विश्ववंद्य विश्वमित्र को हमारी श्रद्धांजलि !

---

पृथ्वी के स्वर्ग काश्मीर की रमणीय धरती से प्रकाशित हो रहे
उत्तर भारत के एक मात्र सांस्कृतिक व साहित्यिक पत्र
"हिम-हास" मासिक में पढ़िए :—
* आकर्षक कहानियाँ, ज्ञानवर्धक तथा मनोवैज्ञानिक लेख, धारावाहिक उपन्यास
* महिलाओं, बालकों और सामयिक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से संबन्धित स्थायी स्तंभ।
* तीन निःशुल्क प्रतियोगितायें।
एक प्रति ३५ पैसे वार्षिक ४ रुपये मात्र।
एजेन्सी के लिए आज ही लिखें :—
व्यवस्थापक "हिम हास" मासिक,
पुष्प निवास, बारामूला, काश्मीर

# राष्ट्र निर्माण में विद्यार्थियों का दायित्व

लेखक-
श्री राधेश्याम, एम्. कॉम.

"जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी"

माता और मातृभूमि स्वर्ग से भी बढ़ कर होती है। माता तो मनुष्य को केवल जन्म ही देती है परन्तु मातृभूमि हमें अपने प्यार भरे अंक में लेकर हमारा पालन-पोषण करती है, उसकी पवित्र रज में लेट कर हम बड़े हुये, हमारे जीवन के लिये उसने अन्न दिया, पहनने के लिये वस्त्र दिये, एक से एक श्रेष्ठ द्रव्यों से हमारा पोषण किया। मातृभूमि की अनन्त कृपा से हमने संसार के समस्त सुखों का उपभोग किया। इसी मातृभूमि के लिये 'सर वाल्टर स्काट' को तो विश्वास ही नहीं होता था कि संसार में कोई ऐसा भी व्यक्ति हो सकता है जो निर्लज्ज स्वरों में कह सकता है—'यह मेरा अपना देश नहीं है, यह मेरी अपनी जन्मभूमि नहीं है।' इस

अनन्त कृपामयी जन्मभूमि के प्रति हमारे अनन्त कर्तव्य हैं—चाहे हम विद्यार्थी हों, गृहस्थ हों अथवा सन्यासी। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने लिखा है:—

मृतक समान अशक्त अवश आंखों को मीचे,
गिरता हुआ विलोक, गर्भ से हमको नीचे।
करके जिसने कृपा हमें अवलम्ब दिया था,
लेकर अपने अतुल्य अंक में भरण किया था।
जो जननी का भी सर्वदा थी पालन करती रही,
तू क्यों न हमारी पूज्य हो, मातृभूमि मातामही।

स्वदेश प्रेम स्वप्रेम का विकसित रूप है। यह वह प्रकृति है जो स्व के रूप में जन्म लेती है, कुटुम्ब प्रेम के रूप में पलती है और स्वदेश प्रेम के रूप में विकसित होती है। इस प्रकार राष्ट्र और विद्यार्थी का वही सम्बन्ध है जो माता और पुत्र का होता है। अतः विद्यार्थी में राष्ट्र के प्रति देशभक्ति की भावना होनी चाहिये। देशभक्ति पवित्र भागीरथी के समान है जिसमें स्नान करने से शरीर ही नहीं मनुष्य का तन तथा अन्तरात्मा भी पवित्र हो जाता है। मानव के अतिरिक्त पशु-पक्षी तथा पौधे तक वे सभी अन्य अपनी जन्मभूमि से प्रेम करते हैं। अफ्रीका का कोई भी वृक्ष अमेरिका के किसी प्रदेश में जीवित नहीं रह सकता। इसी प्रकार शीत प्रधान देश के पशु पक्षी भी जब उष्ण प्रधान देशों में लाये जाते हैं तो वे अपने प्राण त्याग देते हैं, क्योंकि अपने देश के साथ उनका कुछ इस प्रकार का रागात्मक

सम्बन्ध स्थापित हो जाता है कि वे अपने देश को जलवायु से भी प्रेम करने लगते हैं और उनके अभाव में अपने प्राण त्याग देते हैं। इस प्रकार स्वदेश प्रेम की रक्षा और उसकी उन्नति के लिये विद्यार्थी को अपना तन, मन, धन तीनों देश के चरणों में समर्पित कर देना ही देशभक्ति है। जन्मभूमि के प्रति निष्ठा रखना मनुष्य का नैसर्गिक गुण है। जिस भूमि में हम पल कर बड़े हुये हैं, जिसने हमें रहने के लिये अपने अतुल अंक में आवास दिया, उसकी सेवा से विमुख होना कृतघ्नता है। वास्तव में माता और मातृभूमि के मोह से मनुष्य मृत्यु-पर्यन्त तक मुक्त नहीं होता। इन दोनों के इतने उपकार होते हैं कि छात्र उनसे आजीवन उऋण नहीं हो सकते। मातृभूमि की मान-रक्षा के लिये अपने में बलिदान करने में जो आनन्द आता है, देशहित की रक्षा में अपना स्वार्थ बलिदान करने में जो सुख तथा शान्ति प्राप्त होती है, वह कोई सच्चा देशभक्त ही जान सकता है।

एक बार जापानियों की एक छोटी-सी टुकड़ी घूमती फिरती रूसी-सीमा में प्रवेश कर गई। युद्ध का समय था अतएव उन्हें पकड़ कर सेना के एक कमान्डर के सामने लाया गया। कमान्डर ने उनकी भूल जान कर इस शर्त पर उन्हें छोड़ने का वचन दिया कि वे अपना राष्ट्रीय ध्वज उसके चरणों तक झुका देंगे। जापानी स्वाभिमानी होते ही हैं। उन सभी ने ऐसा करना अस्वीकार कर दिया। कमान्डर ने तलवार खींच ली। टुकड़ी का प्रत्येक व्यक्ति कट कर पृथ्वी

पर गिर पड़ा फिर भी झन्डा नीचे नहीं झुका। स्वदेश प्रेम का इससे बढ़ कर दूसरा उदाहरण और क्या मिल सकता है?

क्रीमिया का युद्ध चल रहा था। एक ओर रूसी तथा दूसरी ओर केवल छः सौ अंग्रेजी सैनिक। तोपें गरज रहीं थीं। उस घाटी की ओर एक कदम भी बढ़ाना मृत्यु को आमंत्रित करना था। पर क्या कोई व्यक्ति पीछे हटा? नहीं। सेनापति की एक आज्ञा पर वे चील की तरह अपने शिकार पर टूट पड़े। एक के बाद एक मृत्यु की गोद में सोते गये पर उनके उत्साह में कोई कमी न आई। वे बढ़ते गये, बढ़ते गये और रूसी तोपों के मुंह को फेरने में सफलीभूत हुये। शत्रु की सेना भाग खड़ी हुइ और गौरवमयी एक अमर गाथा अंग्रेज कवि टेनिसन के मुख से निकल पड़ी—

वीरों के मान की,
रणधीरों के गुमान की,
उस छोटी-सी टुकड़ी की,
उठती हुई शान की,
जो अमर गाथा है,
वह क्या कभी-
-जब तक संसार है-
समय के प्रहारों से
अतीत के गर्त में विलीन हो सकती है?

जापान का एक बालक एक बार अत्यन्त गोपनीय पत्र लेकर कहीं जा रहा था। रास्ते में शत्रुओं के एक वायुयान ने

उसे देख लिया और उसे पकड़ कर अपने कमान्डर के पास ले जाने लगा। मार्ग में समुद्र पड़ा। बालक यदि चाहता तो पत्र को वायुयान के सैनिकों के हवाले कर अपने प्राण बचा सकता था पर उसे अपने प्राणों की कब चिन्ता थी! वह तो देश के प्रति कर्तव्यपालन करना जानता था। उसके देशवासी सैनिक कमान्डर का यह आदेश था कि वह पत्र शत्रुओं के हाथ में किसी प्रकार भी न पड़ने पाये। अतएव वह समुद्र को देखकर नाच उठा उसने एक छलांग लगाई और अनन्त सागरमें गहरी समाधि ले ली। इससे बढ़कर देश के प्रति कर्तव्यपरायणता का दूसरा उदाहरण और क्या मिल सकता है?

अत: छात्र को देश की उन्नति में अपनी उन्नति समझनी है। सेवा और परोपकार ही उसका धर्म है। देशवासियों के सुख में ही उसका सुख तथा दुख में दुख होता है। उसकी अन्तरात्मा स्वार्थ रहित होनी चाहिये। उसे यह सदैव ध्यान रखना चाहिये:—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणी पश्यन्तु माकश्चिद् दुःख भाग्भवेत॥

अर्थात् सब सुखी हों, सब निरोग हों, सबका कल्याण हो, किसी को भी दुख न प्राप्त हो। वास्तव में परोपकार के समान न कोई दूसरा धर्म है न कर्तव्य। छात्रों का राष्ट्र के प्रति यह महान कर्तव्य है, उसको त्याग की उस भूमि पर जाना चाहिये जहां वह कह उठे—

जग भूले, पर मुझे एक बस, सेवा धर्म निभाना है।
जिसकी है यह देह उसी में, इसे मिला मिट जाना है॥

अतः स्पष्ट है कि विद्यार्थी तथा राष्ट्र का सम्बन्ध गंगाजल के समान निर्मल सम्बन्ध है। देश की मान-मर्यादा की रक्षा करने का सभी पर समान उत्तरदायित्व है। विद्यार्थी यह कह कर कि, हम तो विद्यार्थी हैं इससे नहीं बच सकते। आज के विद्यार्थी कल के नागरिक हैं। उन्हें प्रारम्भ से ही अपने राष्ट्र तथा देश के प्रति कर्तव्यों को जानना चाहिये। प्रारम्भ से ही उन्हें अपना दृष्टिकोण विस्तृत तथा कार्यक्षेत्र विशाल रखना चाहिये। विद्यार्थी का समस्त जीवन अपने ही स्वार्थों की पूर्ति के लिये नहीं बल्कि समाज और राष्ट्र की सेवा के लिये भी होता है। विद्यार्थी से राष्ट्र को बहुत कुछ आशा भी रहती है। और वह विद्यार्थी विद्यार्थी नहीं है, वह मनुष्य मनुष्य नहीं है—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है।
वह नर नहीं नर पशु निरा है, और मृतक समान है॥

राष्ट्र का आवश्यक अंग जनता तथा विद्यार्थी हैं। विद्यार्थियों के सहयोग से ही राष्ट्र का निर्माण और उसकी प्रगति होती है। किसी भी राष्ट्र का वास्तविक अर्थ देश की भूमि तथा क्षेत्रफल के विकास आदि से नहीं होता बल्कि राष्ट्र की सम्पन्नता ही राष्ट्र का यथार्थ रूप है।

देश के सभी व्यक्ति अपने-अपने कार्य व्यापारों से अपने व्यक्तिगत जीवन को उन्नत एवं समृद्धशाली बनाने का प्रयास

करते हैं। इस संसार में धन ही सब कुछ नहीं है। धन पूजा तो बहुत कम जगहों में होती देखी गई है। संसार इतिहास उठा कर देखने पर और उदाहरणों को ढूंढ-ढूं कर सामने रखने पर यह विदित होता है कि जिन उपासना करते हैं, जिनके लिये हम अपनी आंख बिछा तक को तैयार रहते हैं, जिनकी स्मृति तरोताजा रखने लिये हम अनेक तरह के स्मारक चिह्न बना कर खड़ा कर हैं, उन्होंने अर्थोपार्जन में अपना समय नहीं बिताया था बल्कि उन्होंने कुछ ऐसे काम किये थे जिनकी महत्ता को हम धन से मूल्यवान समझते हैं। जिन लोगों के जीवन का उद्देश्य केवल धन बटोरना है उनकी प्रतिष्ठा कम हुई है। अधिकांश अवस्थाओं में तो उन्हें किसी ने पूछा तक नहीं है। उन्होंने जन्म लिया, खूब धन कमाया, फिर परधाम सिधार गये। किसी ने जाना तक नहीं कि वे कौन थे और कहां गये? मानव समाज स्वार्थी अवश्य है परन्तु वह स्वार्थ की उपासना करना नहीं जानता। अन्त में वे पूजे जाते हैं, जिन्होंने अपने जीवन को अर्पण करते समय सच्चे मनुष्यत्व का परिचय दिया। अतः सभी प्रयत्न प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से देशहित के लिये ही होते हैं। विद्यार्थियों का मुख्य ध्येय विद्योपार्जन करना है। जहां एक ओर यह विद्या उनके जीवन को समुन्नत और शान्त बनाती है वहीं दूसरी ओर देश को भी प्रगति के पथ पर अग्रसर करती है। देश का कल्याण देशवासियों पर निर्भर होता है चाहे वह किसी श्रेणी का हो या योग्यता का हो। इसके लिये कोई

सीमा नहीं है। हम सभी देश के अंग हैं। जिस प्रकार कि कोई धनोपार्जन करके देश की सेवा करता है, कोई समाज सुधार द्वारा, कोई कला द्वारा, उसी प्रकार विद्यार्थी भी शिक्षा के द्वारा ज्ञानार्जन करके देश सेवा का पुनीत कार्य करते हैं।

निकट भविष्य में देश का भार इन्हीं विद्यार्थियों के बलिष्ठ कन्धों पर आवेगा। ये देश के भावी कर्णधार हैं। आज के युग में इनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। वह युग समाप्त हुआ जब छात्र २५ वर्षों तक गुरुकुल में ही रहते थे, तब न उसे देश की राजनीति से सम्बन्ध था और न देश पर मंडराने वाले काले बादलों से। आज के युग में राष्ट्र को निःस्वार्थ देश सेवकों तथा देश भक्तों की आवश्यकता है। इस कार्य को विद्यार्थी ही पूरा कर सकते हैं। विद्यार्थी के सामने न तो ऊंच-नीच का प्रश्न होता है न छोटे-बड़े का और न अमीर-गरीब का। विद्यार्थियों की सामूहिक, संगठित शक्ति समय पड़ने पर किसी भी भयानक से भयानक विपत्ति का सामना कर सकती है। विद्यार्थियों में विशुद्ध राष्ट्रीयता की भावना उत्पन्न करके देश सेवा के पवित्र कार्य में लगाया जा सकता है। भारतवर्ष को अपने विद्यार्थी समुदाय पर गर्व है।

इस विषय पर विद्वानों में अनेक मत हैं। एक कहते हैं कि विद्यार्थी जीवन भावी जीवन का निर्माण काल है। जिस प्रकार नींव निर्बल हो जाने पर भवन के गिर जाने का भय

रहता है उसी प्रकार विद्यार्थी जीवन में एकाग्रचित्त पूर्ण मनोयोग से विद्याभ्यास ही करना चाहिये। रा आन्दोलनों में भाग लेने, सभा-सोसाइटियों में आने- से चित्त की स्थिरता नष्ट हो जाती है। दूसरों का कि भावी जीवन के विशाल कर्तव्य क्षेत्र के लिये विद्यार्थी जीवन में ही आवश्यक साधन एकत्र करता उसकी बुद्धि तथा विद्या की परीक्षा इसीमें है कि वह की सेवा, सहायता तथा उन्नति के लिये अपने को सीमा तक तैयार कर पाया है। इन दोनों ही विवादों इतना अवश्य है कि विद्यार्थी का राष्ट्र से उतना ही है जितना देश के अन्य वर्गों का।

विश्व के सभी देशों में समय-समय पर स्वतन्त्रता के लिये विद्रोह हुए, क्रान्तियां हुयीं। उन देशों के इतिहा पर सिंहावलोकन करने से विदित होता है कि नागरिकों के साथ-साथ विद्यार्थियों ने भी बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया तथा इन्होंने अपने उत्तरदायित्व को पूर्ण करने के लिये भारतवर्ष के स्वतन्त्रता-यज्ञ में हंसते-हंसते जाने कितने विद्यार्थियों ने अपने प्राणों की आहुति चढ़ा दी। सन् ४२ में जब देश के समस्त नेता जेल में बन्द कर दिये गये थे, विद्यार्थियों ने ही देश के स्वतन्त्रता-संग्राम का नेतृत्व किया था तथा भारत के समस्त अंचलों में क्रान्ति की ज्वाला जलाने वाले विद्यार्थी ही थे जिन्होंने अपने त्याग से विदेशी शासन की नींव तक हिला दी थी। सुभाष, नेहरू,

भगत सिंह, महात्मा गांधी, चन्द्रशेखर आजाद आदि महापुरुष विद्यार्थी जीवन में ही नेतृत्व शक्ति प्राप्त कर चुके थे। न जाने कितनी माताओं के प्यारे पुत्रों ने अपने अध्ययन से विरत होकर स्वतन्त्रता-संग्राम में अपने प्राणों की बलि दी थी। राष्ट्र कवि कहते हैं:—

जीवन-रण में वीर पधारो, मार्ग तुम्हारा मंगलमय हो,
गिरिपर चढ़ना, गिरकर बढ़ना, तुमसे सब विघ्नों को भय हो
भारत के सौभाग्य विधाता, भारत मां के आज्ञाकारी,
भारत विजय क्षेत्र में आओ, प्यारे भारतीय विद्यार्थी।

आज भारतवर्ष स्वतन्त्र है। विद्यार्थियों के लिये बहुत कार्यक्षेत्र पड़ा हुआ है। विद्यार्थियों को किसान मजदूरों की आर्थिक स्थिति सुधारनी चाहिये। अंगहीन-असहायों को भोजन तथा वस्त्र की व्यवस्था करनी चाहिये। पंचवर्षीय योजनाओं में विद्यार्थियों को पूर्ण सहयोग देना चाहिये। जिससे देश सभी प्रकार की भौतिक उन्नति कर सके। स्वदेश रक्षा के लिये विद्यार्थियों को पूर्ण रूप से कटिबद्ध होना चाहिये जिससे कोई भी शत्रु देश पर कुदृष्टि न डाल सके। देश के उत्थान के लिये विद्यार्थियों की आवश्यकता है जो अपना तन, मन, धन देकर सब कुछ देश के चरणों पर चढ़ाने को उद्यत हों। अतः हम सभी विद्यार्थियों को राष्ट्र के उत्थान के लिये पूर्ण प्रयत्नशील होना चाहिये।

एक समय था जबकि देश की प्रत्येक प्रगति चाहे वह धार्मिक हो या आर्थिक चाहे वह सामाजिक हो अथवा

वैदेशिक सभी राजनीति के अन्तर्गत आती थी। परन्तु के युग में राजनीति शब्द का अर्थ इतना संकुचित है अब इसका अर्थ केवल वर्तमान सरकार का विरोध ही समझा जाता है। भारतवर्ष गणतन्त्रात्मक देश है। के प्रतिनिधि देश की नीति का संचालन करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति शासन में अपना प्रतिनिधित्व चाहता अपने स्वार्थ में दूसरों को बहकाने का प्रयत्न करता है। तुच्छ दलबन्दी ही आज की राजनीति है। इससे के लिये विद्यार्थियों से कहा जाता है। विद्यार्थियों के उत्साह है, उमंग है परन्तु साथ ही साथ अनुभवहीनता है। स्वार्थी लोग इस अमूल्य निधि को बहका कर अस्त्र बना लेते हैं। फलस्वरूप वे कभी हड़ताल तथा कभी जुलूस निकालते हैं। अनुशासनहीनता के शासन उनके विरुद्ध कार्यवाही करता है। उस समय पथभ्रष्ट करनेवालों का दर्शन तक नहीं होता। जनता है कि स्वतन्त्रा-संग्राम तथा राजनीति के अन्य कार्यों में लेने के लिये कहा जाता था लेकिन वे ही व्यक्ति, प्रेरणा देनेवाले, उन्हें राजनीति से दूर रहने के लिये कहते हैं? निःसन्देह विद्यार्थियों को देश की रक्षा के तथा उसको सुदृढ़ बनाने के लिये राजनीति में भाग का अधिकार है न कि शासन के कार्यों में विघ्न डालने और देश में अशान्ति फैलाने के लिये।

विद्यार्थियों का परम कर्तव्य विद्याध्ययन ही है, इसमें मत नहीं हो सकते। उन्हें अपनी पूरी शक्ति ज्ञानार्जन लगानी चाहिये। आज भारतवर्ष पूर्ण स्वतन्त्र है। अपने

में सर्वांगीण उन्नति के लिये, पूर्ण समृद्धि के लिये हमें, अभी बहुत प्रयत्न करने हैं। देश को योग्य इन्जिनियरों, योग्य चिकित्सकों, साहित्य मर्मज्ञों, विद्वानों, वैज्ञानिकों, योग्य-अनुभवी तथा कुशल व्यापारियों की महान् आवश्यकता है। इसकी पूर्ति विद्यार्थी ही करेंगे। विद्यार्थियोंकी देशभक्ति, राजनीति, देश की रचनात्मक सेवा करने में है न कि विरोधी प्रदर्शनों में। हमारा देश शताब्दियों से अज्ञानान्धकार के गहन गर्त में विलीन है। विद्यार्थी देश में ज्ञान रश्मियों के प्रसार में पूर्ण सहयोग दे सकते हैं। अपने अमूल्य अवकाश के क्षणों में सामुदायिक योजनाओं का निर्माण करके देश का कल्याण कर सकते हैं। हमारे विद्यार्थी ही देश की न्यूनताओं को कम कर सकते हैं और वे ही करेंगे भी।

सुखमार्ग
मासिक–पत्र

सुख सम्पति पाने के लिये सामाजिक, धार्मिक, वैद्यक एवं स्वास्थ्य आदि सभी सामयिक समस्याओं से ओत-प्रोत ४० वर्षों से भारतीयों में जागरण का शंखनाद करने वाले सचित्र 'सुखमार्ग' को अवश्य पढ़ें। यह बड़े-बड़े विद्वानों के लेख लेकर हजारों की संख्या में छपता है। विशेषांक भी निकलते हैं। प्रश्न उत्तर और लेख समाचार मुफ्त छापता है।

वार्षिक मूल्य केवल १) नमूना मुफ्त।

पता—सुखमार्ग, केमीकल प्रेस, अलीगढ़

धर्म, संस्कृति, उपासना और ज्ञान का

प्रचारक मराठी मासिक

श्रीधर संदेश

वार्षिक चंदा रु. ४) ( वी. पी. की पद्धत बंद है।)

श्रीधर सन्देश कार्यालय

७२२, सुन्दर नारायण, नासिक शहर

उन्नति के पथ पर निरंतर अग्रसर
आयुर्वेद और स्वस्थ-साहित्यकी प्रतिनिधि-पत्रिका

स्वास्थ्य सरिता

श्रीज्ञानप्रकाश जैन-द्वारा सम्पादित]

प्रतिमास पढ़ें :

* स्वास्थ्य-सम्बन्धी बौद्धिक-लेख
* सामाजिक-पृष्ठभूमि पर लिखी मनोरंजक-कहानियां
* नवोदित-रचयिताओं की कवितायें
* पारिवारिक-गुत्थियों को सुलझानेवाले स्थायी-स्तम्भ
और * नये साहित्य पर कृष्णमुनि प्रभाकर का निर्भीक-विवेचन

एक प्रति पचास नये पैसे * वार्षिक-शुल्क केवल पाँच रुपये
नमूनांक मुफ्त नहीं भेजा जाता। अपना चन्दा आज ही भेजें
स्वास्थ्य-सरिता प्रकाशन, कोटगेट, बीकानेर (राजस्थान)

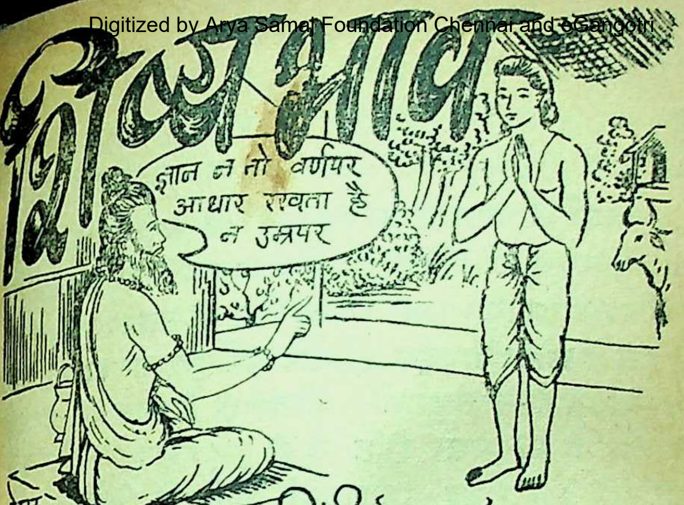
शिष्यभाव
ज्ञान न तो वर्णपर आधार रखता है न उम्रपर

लेखक
श्री. रमेशचन्द्र दा. शिंपी 'मधुकर'

'नहीं गुरु बिन सत्‌ज्ञान' प्रस्तुत उक्ति गुरुमाहात्म्य को उतने ही श्रेष्ठ प्रकार से समझाती है जिस प्रकार 'गुरु ही ब्रह्मा है, वही विष्णु है, वही सर्वश्रेष्ठ देव है' में उसके श्रेष्ठत्व का प्रतिपादन है, प्रायः मनुष्य अपने जीवन में सदैव कोई न कोई वस्तु में परावलंबी अवश्य होता ही है। जीवन के प्रथम ही सोपानपर परम कल्याणमयी वात्सल्यमूर्ति माँ उस कच्चे घड़े को योग्य आकार देकर उसे संस्कारी बनाती है, बादमें पिता और फिर गुरु उसे 'सुन्दर' बनाने के प्रयत्न में अपना हाथ यथोचित प्रमाण में बंटाते हैं।

वैसे तो जीवन में अनेक व्यक्तियों से अनेक ग्राह्य-गुण हम ग्रहण करते हैं, वास्तव में जीवन में हम जिससे जो वस्तु पाते हैं वह हमारे लिये गुरु-स्वरूप ही है। कुछ भी सुयोग्य

देनेवाले की कक्षा गुरु के समान ही है। अतएव जीवन की इमारत बुलंद एवं सर्वगुणसंपन्न बनाने के लिये आवश्यक है कि हम सदैव अपने में शिष्यभाव जाग्रतावस्था में रखें।

विद्या या ज्ञानकी संपत्ति किसीकी बपौती नहीं है, वह तो ईश्वरदत्त एक दिव्य देन है अतएव न तो बुद्धिमत्ता का आधिक्य वर्णपर आधार रखता है न तो उम्रपर। हो सकता है उम्र में छोटा ज्ञानवृद्ध हो और वयोवृद्ध बालज्ञानी। ज्ञान अपरिमित है—उसका कोई अन्त नहीं है। वह एक तेजपूर्ण आलोक है जो प्रखर दीप्ति से ही पूर्ण रहता है—स्नेह खत्म हो जाने के बाद मंद-प्रकाश होते जानेवाले दीपक की भाँति वह कभी भी मलिन नहीं होता। इसी उन्नत ज्ञानकी महत्ता का जवाब किसी बड़े व्यक्तिने दिया था—जो स्वयं अपने जमाने के एक महाविद्वान एवं पण्डित थे उन्होंने कहा-"अभी तो मैं ज्ञानसिंधु के किनारे बैठा बैठा सीकता में कौड़ियाँ-शंख व शीप ढूंढ रहा हूँ। गहन सागर के दिव्य मौक्तिक अभी नहीं पा सका हूँ। उनको पानेका ज्ञान तो मुझे वे श्रेष्ठज्ञ ही देंगे जो इस सागर को पार कर चुके हैं।" कालिदास सदृश्य महान साहित्यकार इसी नम्रता से शोभते हैं। यह ज्ञानकी एवं उसको पानेके लिये की विनम्रता का लक्षण है। विद्या विनयेन शोभते। जिसमें नम्रता का पदार्थ पाठ नहीं है वह विद्या अविद्या है। सुमधुर फलों से पूर्ण वृक्ष सदैव झुके हुये ही दिखाई देंगे। वह नम्रता सद्गुण है। ज्ञान से आप्लावित सज्जन भी साधु प्रकृति का विनम्र होता है।

परम ज्ञानस्वरूप एवं आध्यात्मिकता के गहन स्रोत से परिपूर्ण साक्षात् देववाणी स्वरूप श्रीमद्भगवद्गीता में भी जब वीर अर्जुन विमूढ़ बन जाता है, जब अपने कर्तव्य श्रेष्ठ एवं ध्येयबिन्दु से अज्ञान के कारण च्युत होता है, और माया के मोहपाश में आबद्ध होकर वह मूढ़ बन जाता है। तब सत्यासत्यविवेक के लिये उसके हृदय में परम शरणागति की भावना निर्माण होती है, एवं मूढ़ बना हुआ वह सत्य मार्ग का संकेत करने को भगवान् से कहता है—

> "कार्पण्यदोषोपहत स्वभावः
> पृच्छामि त्वां धर्म संमूढचेताः।
> यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे
> शिष्यस्तेऽहं शाधिमां त्वां प्रपन्नम्॥ गी. (२।७)

इस प्रकार योग्य मार्गदर्शन के लिये इसमें प्रपत्ति की भावना है। हृदय की सारी नम्रता के साथ की प्रपत्ति ही शरणागति है। पुराण प्रसिद्ध तपस्वी आरणि मुनि का श्वेतकेतु नाम का बड़ा ही उद्दंड पुत्र था—जिसे शास्त्रों के परिपूर्ण ज्ञान से दुष्टबुद्धि के प्रभाव से अत्यधिक मद हो गया था। ज्ञानगर्व के कारण उस परम विधायक ज्ञान का उपयोग वह 'मूढ़' विध्वंसक दृष्टि से करने लगा था। अपने ज्ञान प्रभाव से सभी ज्ञानी-मुनियों को वह शास्त्रार्थ में हराने लगा। एवं उनकी अवहेलना कर उन्हें तिरस्कार प्रदान करने लगा इस प्रकार अनेकों बुद्धिमानों को परास्त करने से उसका गर्व और भी बढ़ गया। तब एक दिन उसने पांचाल (पंजाब)

के तत्कालिन विद्वान राजा के गुणगान सुने, उनके पांडि का झंकार गर्विष्ठ मुनि सहन न कर सका, अतएव उन्हें शा हराने के लिये उसने पांचाल के लिये प्रस्थान किया। पांचाल नरेश के यहाँ पहुँचते ही राजाने मुनिका यथोचित सत्कार किया और फिर उस नयज्ञने बड़ी विनम्रता के साथ मुनिसे पाँच सवाल पूछे—मृत्युके पश्चात् जीव ऊँचे कैसे जाता है, वह जीव नीचे क्यों और किस प्रकार आता है, एवं देव तथा पितृमार्ग का विच्छेद कहां हुआ है? इ०। इन गहन गूढ़ार्थपूर्ण प्रश्नों को सुन मुनि स्तब्ध हो गया और एक भी प्रश्न का उत्तर दे न सका। वह खूब शर्मिन्दा हुआ, तब राजाने कहा—"हे मुनि जब तुम इन मूलभूत प्रश्नों का उत्तर भी नहीं जानते तब स्वयं को ज्ञानी कैसे कहलाते हो, क्या तुम्हारे पिताने तुम्हें ये विद्या नहीं दी?"

इस प्रकार के प्रश्नों से अपमानित एवं दंभ के कारण जिनका तेज्ञोभंग हुआ है वैसे मुनि शीघ्र ही अपने पिता के पास क्रोधित अवस्था में गये और कहने लगे—"आखिर आपने मुझे इन प्रश्नों का ज्ञान क्यों नहीं दिया, क्या आप मुझे पाठ सिखाना चाहते थे?" तब आरुणिमुनिने शान्तभाव से प्रत्युत्तर दिया—"वत्स! इन प्रश्नों का तो मुझे भी ज्ञान नहीं है, अतएव हम दोनों को आवश्यक है कि विनम्रभाव से हम यह ज्ञान उसी राजा से प्राप्त कर लें।"

पिताके इस प्रकार के दीनवचन सुनकर पुत्राने तिलमि-लाकर कहा—"क्या यह संभव है कि अत्यन्त ऊँचे गोत्र का

ब्राह्मण उससे निम्न पंक्ति के क्षत्रिय से ज्ञान ग्रहण करे ?" तब मुनिने कहा—"ज्ञान न तो वर्ण पर आधार रखता है न तो उम्र पर। एक शूद्र के पास भी यदि श्रेष्ठ गुण है तो उसे हमें ग्रहण करना चाहिये।" इस प्रकार उन दोनों विद्यार्थियों ने एक क्षत्रियसे जो कि उनसे ज्ञान में बढ़कर था उसके सामने विनम्र होकर तथा शिष्यभाव से विद्या ग्रहण की।

रावण-बध के समय हम जानते हैं कि परमज्ञान स्वरूप श्रीरामचन्द्र मरते हुए रावण के पास से लक्ष्मण को ज्ञान ग्रहण करने के लिए कहते हैं, क्यों कि यद्यपि वह उनका शत्रु था तदापि महाविद्वान् एवं श्रेष्ठ ज्ञानी ब्राह्मण था। इस प्रकार शत्रु से भी शिष्यभाव रख कर उसके पास से ज्ञान ग्रहण करने का यह ज्वलंत उदाहरण है।

'गुरु विन कौन बतावे बाट' यह कथनी अनेक अंशों में सार्थक है। तदपि अपने परम श्रेयोमंगल का आधार अपने गुरु के ज्ञान एवं उसकी नीतिमत्तापर निर्भर है, नहीं तो कबीर के कथनानुसार—

"जाका गुरु भी आंधरा, चेला खरा निरंध।
अन्धे अन्धा ठेलिया, दोनों कूप परंत॥

अतएव योग्य गुरु का चुनाव भी महत्व का है। एक कथन है कि—"जो स्वयं को 'गुरु' (बड़ा) नहीं समझता वास्तव में वही गुरु है।" जो कुएं में होगा वही बरतन में आयेगा। आम का फल मृदुस्वादु रस देगा और करेला कड़ा, इस प्रकार परम ज्ञानसिंधु के विशाल अमृत को पान करने के

लिए स्वयं के दो हाथ कभी भी कामयाब नहीं हो सकते हैं उसके योग्य उपयोग के लिए तो मार्गदर्शक की आवश्यक तो रहती ही है। जीवन के धुन्धले प्रकाशयुक्त एवं अन्धका पूर्ण मार्ग पर योग्य स्थान वही ध्रुवतारा रूप देते हैं। आवश्यकता केवल नम्रता, नीरक्षीर विवेक बुद्धि की है। भगवान श्रीकृष्ण भी स्वयं अत्यंत नम्रभाव से अपने बड़प्पन को भूकर सांदिपन से विद्या ग्रहण करते हैं। प्रख्यात महाकवि कालिदास की अपने से बड़ों के प्रति की विनम्रता उनकी श्रेष्ठता का द्योतक बन रहती है। शिष्य का परम कर्तव्य स्वयं विनम्र रहते हुए गुरु आज्ञा गरियसी मानना है।

**उपसंहारः—**

हमारे आज के वर्तमान युग में इसी शिष्यभाव की उपेक्षा हो रही है। आज झुकने को कोई तैयार नहीं, सभी 'गुरु' बनना चाहते हैं, शिष्यत्व किसे भी स्वीकार्य नहीं है। इसी उल्टी–गंगा के प्रवाह का भयंकर कारणस्वरूप निर्माण हुआ है कि आज सच्चे ज्ञान का अस्त हो गया है। क्यों कि यहां गुरु--शिष्य परम्परा एवं वह आदर्श मलिनभूत होते जा रहे है। अपूर्ण ज्ञान खतरे से खाली नहीं होता। अभिमन्यु को यद्यपि चक्रव्यूह प्रवेश का ज्ञान था किन्तु बाहर निकलने की विद्या से अज्ञात होने के कारण उसका वही अधूरा ज्ञान उसकी मौत का कारण बना।

आजके शिष्यों में विनम्रता की उद्दंडता, ज्ञान पिपासा की जगह ज्ञानप्राप्तिहेतु आलस्य, नवनवोन्मेष शालिनी प्रतिभा

के आलोक से मुह मोड़ना ही अधिक हो गया है। अपरिमित ज्ञान सिंधु हमारे इर्दगिर्द विशाल रूपसे पड़ा है किन्तु उसे कोई जिज्ञासा पूर्वक शिष्य भाव से ग्रहण करे तब न ? आजीवन विद्यार्थी रहने का प्रण सचमुच जीवन को अतिशय तेजपूर्ण ज्ञान से आप्लावित एवं दिव्य प्रतिभा से पूर्ण बना देने वाला है।

यही शिष्य भाव की महता है संसार के सभी उत्कृष्ट गुण एवं दिव्य विद्या का समावेश इसी में समाया है अन्य में नहीं, अस्तु।

प्रेम, सेवा और जागृति का प्रमुख हिन्दी पाक्षिक

समाज--हितैषी

जिसमें साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, व आर्थिक लेख, कवितायें एवं कहानियों के अतिरिक्त निम्नलिखित स्तम्भ भी रहते हैं।

* सम्पादकीय
* महिला-जगत
* शिशु-जगत
* जनमत
* राजस्थान का रंगमंच
* हास्य-व्यंग
* प्रश्नोत्तर
* भविष्य फल

साधारण एक प्रति २५ पै. विशेषांक के सहित वार्षिक ६)
आज ही नमूने की प्रति के लिए लिखें अथवा वार्षिक ग्राहक बनकर लाभ उठावें।

पता-समाज-हितैषी कार्यालय, बिसाऊ (राजस्थान)

Gurukul

# बच्चों को बीमारियों से कैसे बचाया जाय?

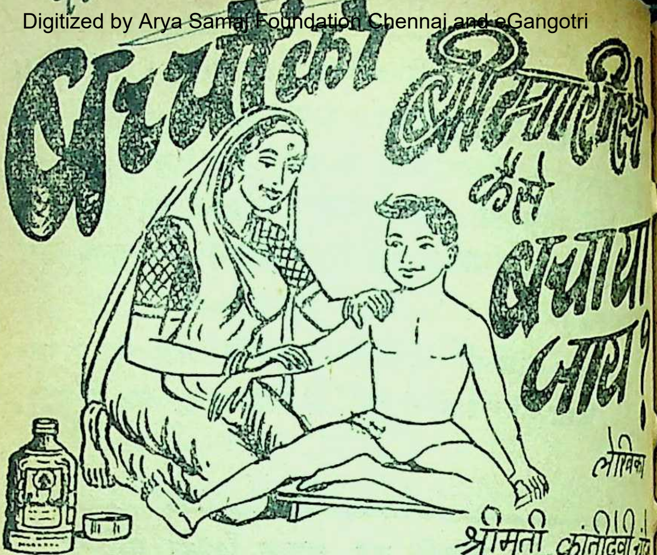

लेखिका

श्रीमती कांतिदेवी

प्रत्येक माता-पिता की हार्दिक इच्छा एक ऐसी सुन्द सन्तान रत्न पाने की होती है, जो उनकी प्रसन्नता, घर की शोभा और समाज में परिवार के यश सौरभ को फैलाने वाला हो किन्तु जिसकी प्राप्ति के लिये लोग इतने लालायित रहते हैं, जिसकी प्रसन्नता के लिये संसार के सभी धन वैभव को न्यौछावर करने के लिये तैयार रहते हैं, क्या उसके प्राप्त होने पर वे उसकी रक्षा करना भी जानते हैं? यह बड़े दुःख की बात है कि सभ्यता के इस जमाने में बहुत थोड़े ही व्यक्ति हैं जिनके सम्बन्ध में यह कहा जा सके कि इस विषय की जरूरी जानकारी रखते हैं।

आमतौर पर लोगों का यह ख्याल है कि पैदाइश के समय लड़का जितना ही मोटा और वजनदार होगा, उतना

ही अधिक वह स्वस्थ भी होगा। इसके विपरीत स्वास्थ्य-विज्ञान के अनुसार जन्म के समय बच्चे की हड्डियों को ढँकने के लिये शरीर में थोड़ा सा ही मांस होना चाहिये और वजन साधारणतः ७-८ पौण्ड से अधिक न होना चाहिये। पौधों कोपलों या पशुओं के बच्चों को देखकर भी इस बात की असलियतका पता चलाया जा सकता है।

गर्भ से आने के बाद ही बच्चे की देख भाल शुरू हो जानी चाहिये। उसकी सबसे पहली जरूरत खुराक की है। मां का दूध बच्चे के लिये स्वाभाविक और सर्वोत्तम आहार है। आजकल कितनी ही फैशनपरस्त महिलायें बच्चों को अपना दूध पिलाना पसन्द नहीं करतीं और उसे गाय के दूध के सहारे रखना चाहती हैं। किन्तु गाय का दूध बच्चे को मजबूरी की ही हालत में देना चाहिये। जो मां अपने बच्चे को अपना दूध पिलाने से हिचकती है उसे बच्चे पैदा करने का अधिकार नहीं है। भोजन में फल और तरकारी का काफी सेवन करने से दूध की कमी की शिकायत नहीं होगी। बच्चे को दूध पिलाने से आधा घण्टा पहले एक ग्लास पानी पी लेना भी दूध लाने में सहायक होता है।

जब बच्चा रोने लगे तब २ उसे दूध पिलाना उचित नहीं, बच्चे को ४-४ घंटे के अन्तर से दूध पिलाना चाहिये। १० बजे रात से लेकर ४ बजे सुबह तक बच्चे के पेट को आराम देना चाहिये। बेहतर तो यह होगा कि ९ बजे से ५ बजे तक उसको दूध बिल्कुल न दिया जाय। ऐसा करने में पहले

बच्चा रोना शुरू कर सकता है, किन्तु धीरे २ उसकी आ बंध जायगी । जिन बच्चों को इस प्रकार नियमित औ उचित रूप से दूध पिलाया जाता है, वे कभी बीमार न पड़ते, बिना रोक-टोक के बढ़ते जाते हैं और हृष्ट-पुष्ट औ सबल शरीर वाले बनते हैं ।

बच्चों को जब दांत निकलना शुरू हों तो उन्हें केवल प्राकृतिक भोजन ही देना चाहिए । इस भोजन में पूरी, पराठे, समोसा, रेवड़ी, लाइम चूस, मांस या मिल की चीनी का स्थान नहीं है । आरम्भ में फल और तरकारी, फिर सूखे मेवे और बाद में अन्न ( जो लगभग १२ घण्टे तक पानी में रख कर फुला लिये गये हों और जिन्हें आसानी से चबाया जा सकता हो ) देना चाहिये । अंकुरित अन्न देना भी लाभकर हैं ।

बच्चों को कपड़े हलके पहनाना चाहिये जिससे उनकी त्वचा तक वायु का सरलता से प्रवेश हो सके । होते समय उनके शरीर को गर्म रखने की जरूरत है । बच्चों को हवा में खुलकर खेलने देना और अच्छी तरह खेलने देना चाहिये, खुली हवा में खेलने से उन्हें बीमारियां नहीं सतातीं और जानवरों के बच्चों की तरह वे हृष्ट-पुष्ट होकर बढ़ते हैं ।

बच्चों के सारे शरीर में रोज तेल की मालिश करनी चाहिये, अच्छा होगा यह मालिश धूप में की जाय । मालिश के बाद सूखे तौलिये से देह को रगड़ कर स्नान कर देना

चाहिये। नहाने के पानी का ताप क्रम मौसम के मुताबिक ही होना चाहिये। ज्यादा गर्म या ज्यादा ठण्डे पानी से बचना ही अच्छा है।

यदि ऊपर कही गई बातों का ध्यान रखते हुए आरम्भ के पांच वर्षों तक बच्चों का पालन पोषण किया जाय तो बच्चा खतरे की लकीर को आसानी से पार कर जाता है। उसमें संयम और सुरुचि आदि के ऐसे उत्तम संस्कार पड़ जाते हैं, जो उसे जीवन भर स्वस्थ और सक्रिय बनाये रखते हैं और स्वस्थ शरीर तथा स्वस्थ मन की सुदृढ़ नींव पड़ जाती है।

पांच वर्ष का हो जाने पर बालक स्वावलम्बी बनने लगता है, दूसरों के साथ मिलकर काम करने, आवश्यकता पड़ने पर आपस में एक दूसरे की सहायता करने और मित्रता की भावना के आवश्यक सामाजिक गुणों को सीखने लगता है। वह अपने आसपास की चीजों में दिलचस्पी लेना और उसके बारे में सोचना शुरू कर देता है। बच्चे की जिन्दगी की इस मंजिल में पहुंचने पर अर्थात् ५ से लेकर १६ साल तक की उम्र में माता-पिता को फिर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है यदि बच्चे को उचित आहार नहीं मिलता तो शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से उसका उचित विकास नहीं हो पाता। अतः उसके भोजन पर ध्यान देना आवश्यक है। नीचे भोजन सम्बन्धी एक तालिका दी जारही

है जिसके अनुसार चलकर बच्चे को हृष्ट-पुष्ट रखा ज
सकता है और हर तरह की बीमारियों से बचाया ज
सकता है—

सुबह के नाश्ते में नीचे लिखी हुई चीजों में से को
एक:—(१) मौसमी-फल (आम, सेब, केला आदि) दूध य
मट्ठा के साथ। (२) गाजर और अमरूद। (३) अंकुरित अन्न,
(४) नं. २ या ३ के साथ या अलग मुनक्का ५ दाना (बीज
निकाल कर) किशमिश और अंजीर १-१ तोला। इन्हें खाने
से पहले १२ घन्टे तक पानी में भिगोकर फुला लिया जाय।
(५) मूंग या चने की दाल को रात में भिगो देवें, सुब
पानी में पीस डालें और घी में भून कर थोड़ी लाल शक्क
मिला कर खिलावें, साथ में दूध या मट्ठा दें। (६) टमाटर
का रस या गाजर का रज (६) फलों और सब्जियों का सलाद

दोपहर के खाने में मोटे आटे की रोटी और कोई एक
या दो सब्जियां आग पर पकी हुई, साथ में लौकी, खीरा,
आलू या बथुआ, पालक का रायता और सलाद, जिसमें
खीरा, गाजर करम कल्ला की पत्ती, सलाद की पत्ती, टमाटर,
अमरूद, केला आदि शामिल हों। घी या मक्खन पाव छटांक
से आधी छटांक तक। इसी प्रकार का भोजन शाम को भी
यदि सुबह दूध न लिया गया हो तो दोपहर के बाद लिया
जाय, नहीं तो कोई मौसमी फल अवश्य दें।

इस प्रकार के आहार का सेवन करने पर बालक निश्चित रूप से स्वस्थ और बलवान युवक एवं स्वस्थ नागरिक बनेगा।

# योग

## (अर्थ और मूल स्वरूप)

मूल लेखक
श्री. श. खानवेलकर

अनुवादक
मकरंद शुक्ल. बी. जे.

चित्तवृत्तियों का निरोध करके, चित्त को आत्मस्वरूप पर स्थिर करने के पश्चात् परमात्मस्वरूप में विलीन करना, ऐसी योग की परिभाषा हमने की है। साथ ही योग शब्द का धात्वर्थ जोड़ने की क्रिया है, ऐसा हमने स्पष्टीकरण भी किया है।

किन्तु योग शब्द युज्–जोड़ना इस धातु से उत्पन्न होते हुये भी 'युज्' का सिर्फ जोड़ना यही एक अर्थ नहीं है। उसके और दूसरे भी तो अर्थ हो सकते हैं। किसी एक विचार में पूर्ण रूपसे निमग्न होना, चित्तका निमज्जन करना, डूबना, एकाग्र होना, आदि अर्थ योग शब्द के हैं। (युज्–समाधौ–पाणिनि) इन दोनों अर्थों को समझकर, उनपर पूर्ण रूप से

विचार करने के पश्चात् ही हम योग शब्द का सही अं समझ सकते हैं। अपने चित्त को किसी भी चीजमें निग्र करके उसे किसीके भी साथ जोड़ना है। इतना तो भी इस इस शब्द के धात्वर्थ से आसानी से समझ सकते हैं। क्या जोड़ना और कैसा जोड़ना? इन दोनों सवालों के शाब्दिक उत्तर आपने ऊपर देख ही लिये हैं।

सबसे पहले चित्तवृत्तियों का निरोध करना। वृत्तियों को निरोध करने के पश्चात् अकेला 'चित्त' बाकी रहता है क्या! या वृत्ति ही चित्त है? यदि वैसा बाकी रहनेवाले चित्त का अस्तित्व है तो उसे जोड़ने के लिये कर्म की और उस कर्म के लिये वृत्ति की आवश्यकता है या नहीं? फिर उस चित्त को आत्म स्वरूप में किस तरह मग्न करना? उस प्रकार यदि वह आत्मस्वरूप में मग्न हुआ, विलीन हुआ, तो परमात्म स्वरूप में किस तरह उसे विलीन करना चाहिये! ऐसे कई प्रश्न हमारे सामने उपस्थित होते हैं। इन प्रश्नों का उचित उत्तर ढूँढ़ने के लिये हमें अथक् परिश्रम करना होगा, वर्षों तक कठिन साधना करते रहना होगा। इतना होने पर भी हमें उन प्रश्नों का निश्चित उत्तर मिल ही सकेगा या नहीं इसकी भी शाश्वती नहीं। यह समस्या फिर किस प्रकार सुलझायी जाय?

चित्तवृत्ति या उस चित्तवृत्ति का निरोध करके, उसका आत्मस्वरूप में विलीन होना, ये सारी क्रियायें किस प्रकार

की जाती हैं, उनका "ध्यान" एवं "समाधि" का विवेचन करते समय हम पूर्ण विवरण देंगे ही। यहाँपर इतना ही कहना हम उचित समझते हैं कि जब वृत्तियों का फुरना समाप्त हो जाता है तब चित्त का स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं रह सकता और आत्मस्वरूप में स्वयं विलीन हो जाता है। अंधेरे कमरे में दिया जलाने पर जिस तरह तमका नाश हो जाता है, अँधेरा गायब हो जाता है। आकाश में नियमित रूप से बादल आकर समय समय पर यदि वर्षा होती रही तो जिस तरह "अवर्षणका" नामोनिशान मिट जाता है उसके उत्पन्न होने की सभावना ही नहीं रहती, या डरावने सपने देखने वाला, चिल्लानेवाला, रोनेवाला व्यक्ति जागने पर सपनों के उन डरावने दृश्यों से फिजूल क्यों डर गया ऐसा महसूस करता है और फिर अपने दिल में अपने आप पर हंसने लगता है, उसी प्रकार वृत्तियों का फुरना होता है और वही प्रकट चित्त का अस्तित्व है। वृत्तियों का फुरना बन्द हो जाने पर, उनका निरोध होने पर, चित्त आपही आप आत्मस्वरूप में स्थिर हो जाता है और आत्मस्वरूप में चित्तका नित्य स्थिर करने का अभ्यास साधक को यदि हस्तगत हो जाता है, सध जाता है, तो वह आपही आप परमात्म स्वरूप में लीन हो जाता है। फिर उसे अन्य तरह की क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रहती।

इस लिये हमें सबसे पहले आत्मस्वरूप के संबंध में जानकारी हासिल करनी चाहिये, भले ही वह स्थूल रूप से

हों, ताकि आगे चलकर हमें किसी भी तरह की दिक्कतों का सामना न करना पड़े।

"आत्मस्वरूप" क्या है, इसका विचार हर व्यक्ति कर सकता है। यदि उसमें थोड़ी भी विचार करने की क्षमता है, विवेक है, साहस है, यदि वह चौकन्ना रहकर सदा रहकर, कोशिश करे तो उसके लिये कोई भी बात असंभव नहीं रह जाती।

अपने ही घरमें एक अलग कमरा लीजिये। यदि यह संभव न हो तो शहर से दूर जाकर किसी सुनसान मैदान में, किसी भी टीले पर, किसी वृक्ष के नीचे घनी छाया में या फिर किसी नदी किनारे बैठ जाइये। अपना चित्त बेचैन नहीं होगा ऐसी ही जगह चुनना चाहिये और फिर सोचिये, 'हम कौन हैं?' यदि इस कार्य के लिये आप अपने घर का सुनसान कमरा चुनते हैं तो दर्पण सामने रखकर अपने आपको देखते हुये भी इसपर विचार किया जा सकता है। लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि यह दर्पण का मामला अत्यावश्यक है ही ऐसा नहीं।

'हम कौन हैं?' इस पर जब हम विचार करते हैं तो हमारे सामने इस सवाल के कई जवाब उपस्थित होते हैं। सीना तानकर हम कहेंगे, 'मैं अविनाश हूँ' लेकिन यह अविनाश है कौन? अविनाश का हाथ, पैर, सिर, पेट, आँख, माथा यही है या और भी कुछ? नहीं। बाहर दिखाई देने

वाले उसी प्रकार अंदर रहनेवाले कई अंग प्रत्यंगों के मिलाप से ही अविनाश का शरीर बना हुआ है। सिर, आँख, कान, नाक, हाथ, पैर, पेट, हड्डियां, आँतें, खून, माँस, स्नायु आदि चीजों से अविनाश का शरीर बना है। वह शरीर रोज अन्न खाता है, पानी पीता है, कई तरह के पक्वान्न खाता है, ठंड से बचने के लिये गरम कपड़े धारण करता है, व्याधियों के कारण औषधि लेता है, अनाज को हजम करके उस शरीर का पोषण करता है, अनावश्यक अन्न भाग तथा जलाँश विसर्जित करता है, चौबीस घंटे श्वासोच्छ्वास करके फेफड़ों में जीवन के लिये आवश्यक प्राण वायु भरता है, और रुधिराभिसरण संस्थान, श्वसन संस्थान, पाचन संस्थान, स्नायु संस्थान आदि संस्थानोंके द्वारा वह बढ़ाते रहता है। 'अविनाश' यह उस शरीर का नाम है फिर भी किसी दूसरे शरीरधारीने ही तो वह नाम उसे दिया है। वह नाम रखनेवालों के शरीर उस नाम से अविनाश को पुकारनेवालों के शरीर तद्वत् उसे पहचाननेवालों के शरीर और खुद अविनाश का शरीर, यह सारे विनाशी हैं, मर्त्य हैं।

फिर शरीर, शरीरके अन्य विभाग, शरीरान्तर्गत अवयव या फिर शरीरके अन्य घटक, ये सब अविनाश नहीं ?

तब इनमें का "अविनाश" कहाँ है ? वह घूमता है, फिरता है, नौकरी करता है, पैसा कमाता है उसके दोस्त हैं, रिस्तेदार हैं, दो चार बालबच्चे हैं, वह चैन से है, मजेमें है। एक प्रतिष्ठित नागरिक की हैसियत से वह घूमता है, फिरता है, उसे चार पांच भाषाओं का ज्ञान है, वह एम्. ए. है।

वह लिख सकता है, खेल सकता है, कूदता, बोलता, सुनता, खाना खाता, सोता ऐसी हजारों बातें वह करता और यह "मैं" 'मुझको' 'मेरेसे' 'मेरे लिये' 'मुझमें' ऐसा कई बार बोलता है, लिखता है। यह 'मैं' आखिर है कौन ! जिस बुद्धिसे और मन से वह व्यवहार करता है वह मन ही अविनाश है क्या ? शायद वह बात नहीं। क्योंकि जब वह किसी गहन विचार में डूबा रहता है और उस समय यदि उसकी आँखों के सामने से एक जुलूस निकल जाये तो भी उसे उसका ज्ञान नहीं होता, भान नहीं रहता। उसकी आँखों के सामने जो चहल पहल होती रहती है उसका उसके मनःपिंड पर कुछ भी संस्कार नहीं होते, उनका उसके चित्तपर कोई भी असर नहीं होता। उसकी आँखें इस समय जैसी निकम्मी रहती हैं। उसे क्लोरोफॉर्म देकर उसका कोई अंग काटने पर जैसा क्लोरोफॉर्म का असर कम होनेपर उसको पीड़ा का अनुभव होता है और फिर उस समय वह कहता है कि उसका पैर या हाथ काटा गया है। उसके चित्त में अनंत वृत्तियां उठती हैं और उनका बाह्य जगत से संबंध आने के कारण ही वह सापेक्षता से 'मैं' 'मेरा' 'मुझको' आदि शब्दों का उपयोग करता है। किन्तु जब वह निद्रा के आधीन रहता है तब उसे 'मैं' का ख्याल नहीं आता, भान नहीं रहता। कई वक्त वह कहता है "मेरा मन दुखी हुआ है", "मेरे मनको खुशी हुई है" यानी इस शरीर, मन या चित्त, इनसे भी निराला वह अविनाश का 'मैं' है क्या ? शरीर, चित्त, मन, अंतःकरण, गहरी निद्रा, बेसुधी आदि कई शब्द

हम जानते हैं। उनका अनुभव भी हमें प्राप्त होता है किन्तु इन शब्दों के परे और कोई निराली चीज रहती है ऐसा अस्पष्ट शक हमें होता है, हमें उसका कुछ कुछ आभास होता है, किन्तु उसे हम समझ नहीं सकते। हमें उसका ज्ञान नहीं होता।

शरीर सुखी होने पर तृप्ति और खुशी के बोल बोलनेवाला 'मैं' शरीर को तकलीफ होने पर, पीड़ा से जर्जर होने पर और छटपटानेवाला 'मैं' फायदा होनेपर हँसनेवाला और घाटे के समय रोनेवाला 'मैं' गहरी नींद के तथा आराम के कारण तृप्त होनेवाला 'मैं' बेसुध हालत में भी मौजूद रहनेवाला (साक्षी रहनेवाला) 'मैं' और विचारों के प्रच्छन्न-स्वच्छंदी विहार में अपने सीनेपर हाथ रखकर "यह शरीर और मैं अलग हैं" घोषित करनेवाला 'मैं' इन सब बातों से स्पष्ट होनेवाली कल्पना भी हम यदि लेते हैं तो वह आत्म स्वरूप नहीं हो सकता।

हमारे मनमें हर क्षण अनन्त वृत्ति तरंगें उठा करती हैं। खुद को जगत का केंद्रबिंदु मानकर मानव अपना कार्य करता रहता है। दुनियाको देखते समय, जगत् में संचार करते समय उसकी इच्छा, आकांक्षा, वासना, आशा, निराशा, विकार, विचार, जिन–जिन जगहों पर रममाण हो जाते हैं, इंद्रियां जिस २ स्थान पर उसे खींच कर ले जाती हैं, उन २ चीजों का मानो एक रसायन तैयार होकर, उससे उसका मन

लथपथ कर दिया जाता है। मानसशास्त्रज्ञोंने अबतक करीब पांच सौ से भी अधिक छोटी बड़ी वृत्तियों का, चित्तस्पंदनों का उल्लेख किया है। उनमें से कुछ वृत्तियां ऐसी हैं कि वे आजतक शास्त्रज्ञों के लिये पहेलियां ही बनी पड़ी हैं। उनके सम्बन्ध में वे अबतक अज्ञान के अन्धःकार में ही भटक रहे हैं। इन विविध चित्तस्पंदनों से व्याप्त मानव इस दुनिया में अपना कार्य करते रहता है और जब उसके शरीर से प्राण-पंखेरू उड़ जाता है तब इस शरीर को जो नाम दिया है उसका संबोधन करके, 'फलां फलां आदमी आज नहीं रहा' ऐसा दुनिया वाले कहा करते हैं। मतलब यही कि वह चेतन नष्ट शरीर उसके अन्दर का मन या चित्त यह वह नहीं। सिर्फ इतना ही दुनिया वाले अनजाने ही बोल जाते हैं।

शरीर, मन, चित्त, चित्तके विविध स्पंद इन सबके परे शरीरका खोल बनाकर उसमें रहने वाला 'मैं' बड़ी खामोशी से जगत् का अवलोकन करते रहता है। शरीर उत्पन्न हुआ, बढ़ा, नष्ट हुआ, फिर भी उसे किस की पर्वाह नहीं, कोई दरकार नहीं। चित्त स्पंद जहां से उठते हैं। उसके पीछे कहीं तो भी खोल, दूरीपर वह मौजूद है। किसी एक कांच की अलमारी में श्री गजानन की नयन मनोहर सुन्दर मूर्ति रखी हो, उसपर कई दिनों की धूल जमी हो, वहां कागज, किताबें, कापियां पड़ी हों, उस कांचपर धूल और मकड़ी के जाले हों और इससे भी जादा यदि उसपर काला पर्दा पड़ा हो, इससे वह श्री गजानन की मूर्ति हमेशा के लिये अदृश्य

होनेका हमें आभास होता है। उसी प्रकार चित्तवृत्तियों के अनन्त स्पंद, वासना देहभावना, जगत सम्बन्धी स्थूल विचार करने की प्रवृत्ति आदि कारणोंसे कहीं दूर छिपा हुआ शांत, मधुर, तेजस्वी, और निश्चल आत्मतत्व हमें दिखाई नहीं देता, उसके संबंध में हम अज्ञानी ही रहते हैं।

यह आत्मस्वरूप स्थूल पचेंद्रियों को प्रतीत होता है या वह अन्तः चक्षुको दिखाई देता है, या उसका सिर्फ हमें अनुभव प्राप्त होता है, हम महसूस करते हैं, या और कोई प्रक्रिया होती है, यह सब स्वयं अनुभव किये बगैर नहीं जाना जा सकता। 'जो पिंड में वही ब्रह्माण्ड में' इस न्याय से इस जगत् की जो रचना है उसी प्रकार की रचना इस शरीर की भी है। स्थूल रूपसे जिसे हम स्वर्ग, मृत्यु और पाताल ऐसे तीन लोक मानते हैं, उसी प्रकार यह शरीर रूपी ब्रह्मांड तीन भागों में विभक्त है, बंटा हुआ है। शरीर के ऊपरी भागको परब्रह्मांड, मंझले को स्वब्रह्मांड और नीचे के भाग को अपरा--ब्रह्मांड मानते हैं। कई तत्व और शक्तियों से इन तीनों ब्रह्मांडों का सम्बन्ध है। शरीरांतर्गत सूक्ष्म शक्तियां किस तरह जागृत होती हैं इनके सम्बन्ध में हम मंत्रयोग का विवेचन करते समय आपको जानकारी देंगे ही। उस समय ब्रह्मांडांतर्गत इन सूक्ष्म शक्तियों का विवरण किया ही जायेगा, फिलहाल हमें इतना ही समझकर आगे बढ़ना चाहिये। शरीरांतर्गत स्वब्रह्मांड में हृदय से जुड़ी हुई जो नलिका हैं, उसमें जो मुख्य नाड़ी है, वही इस सारे शरीर विश्वका

लथपथ कर दिया जाता है। मानसशास्त्रज्ञोंने अबतक करीब पांच सौ से भी अधिक छोटी बड़ी वृत्तियों का, चित्तस्पंदों का उल्लेख किया है। उनमें से कुछ वृत्तियां ऐसी हैं कि आजतक शास्त्रज्ञों के लिये पहेलियां ही बनी पड़ी हैं। उनके सम्बन्ध में वे अबतक अज्ञान के अन्धःकार में ही भटक रहे हैं। इन विविध चित्तस्पंदनों से व्याप्त मानव इस दुनिया में अपना कार्य करते रहता है और जब उसके शरीर से प्राण-पंखेरू उड़ जाता है तब इस शरीर को जो नाम दिया है उसका संबोधन करके, 'फलां फलां आदमी आज नहीं रहा' ऐसा दुनिया वाले कहा करते हैं। मतलब यही कि वह चेतन नष्ट शरीर उसके अन्दर का मन या चित्त यह वह नहीं। सिर्फ इतना ही दुनिया वाले अनजाने ही बोल जाते हैं।

शरीर, मन, चित्त, चित्तके विविध स्पंद इन सबके परे शरीरका खोल बनाकर उसमें रहने वाला 'मैं' बड़ी खामोशी से जगत् का अवलोकन करते रहता है। शरीर उत्पन्न हुआ, बढ़ा, नष्ट हुआ, फिर भी उसे किस की पर्वाह नहीं, कोई दरकार नहीं। चित्त स्पंद जहां से उठते हैं। उसके पीछे कहीं तो भी खोल, दूरीपर वह मौजूद है। किसी एक कांच की अलमारी में श्री गजानन की नयन मनोहर सुन्दर मूर्ति रखी हो, उसपर कई दिनों की धूल जमी हो, वहां कागज, किताबें, कापियां पड़ी हों, उस कांचपर धूल और मकड़ी के जाले हों और इससे भी जादा यदि उसपर काला पर्दा पड़ा हो, इससे वह श्री गजानन की मूर्ति हमेशा के लिये अदृश्य

होनेका हमें आभास होता है। उसी प्रकार चित्तवृत्तियों के अनन्त स्पंद, वासना देहभावना, जगत सम्बन्धी स्थूल विचार करने की प्रवृत्ति आदि कारणोंसे कहीं दूर छिपा हुआ शांत, मधुर, तेजस्वी, और निश्चल आत्मतत्व हमें दिखाई नहीं देता, उसके संबंध में हम अज्ञानी ही रहते हैं।

यह आत्मस्वरूप स्थूल पचेंद्रियों को प्रतीत होता है या वह अन्तः चक्षुको दिखाई देता है, या उसका सिर्फ हमें अनुभव प्राप्त होता है, हम महसूस करते हैं, या और कोई प्रक्रिया होती है, यह सब स्वयं अनुभव किये बगैर नहीं जाना जा सकता। 'जो पिंड में वही ब्रह्माण्ड में' इस न्याय से इस जगत् की जो रचना है उसी प्रकार की रचना इस शरीर की भी है। स्थूल रूपसे जिसे हम स्वर्ग, मृत्यु और पाताल ऐसे तीन लोक मानते हैं, उसी प्रकार यह शरीर रूपी ब्रह्मांड तीन भागों में विभक्त है, बंटा हुआ है। शरीर के ऊपरी भागको परब्रह्मांड, मंझले को स्वब्रह्मांड और नीचे के भाग को अपरा--ब्रह्मांड मानते हैं। कई तत्व और शक्तियों से इन तीनों ब्रह्मांडों का सम्बन्ध है। शरीरांतर्गत सूक्ष्म शक्तियां किस तरह जागृत होती हैं इनके सम्बन्ध में हम मंत्रयोग का विवेचन करते समय आपको जानकारी देंगे ही। उस समय ब्रह्मांडांतर्गत इन सूक्ष्म शक्तियों का विवरण किया ही जायेगा, फिलहाल हमें इतना ही समझकर आगे बढ़ना चाहिये। शरीरांतर्गत स्वब्रह्मांड में हृदय से जुड़ी हुई जो नलिका हैं, उसमें जो मुख्य नाड़ी है, वही इस सारे शरीर विश्वका

आधार है, उसीपर यह शरीररूपी विश्व निर्भर है। राई भी सूक्ष्म और पोल रहने वाले बरगद के बीज में अदृश्य रूप जिस तरह उस महाकाय पेड़ का आकार समाया रहता है उसी प्रकार हृदयस्थित इस नलिका में रहने वाले इस सूक्ष्म बीजमें सारा विश्व समाया रहता है। भरा रहता है। 'यथा न्यग्रोध बीजस्थाः शक्तिरूपो महाद्रुमः। तथा हृदय बीजस्थं जगदेतच्चराचरं॥' इस प्रकार यह हृदय बीज के सम्बन्ध में लिखा गया है। इस हृदय बीज में आत्मतत्व ज्योति के रूप में वास करता है ऐसा अनुभविक लोग, खास तौर से उठा कर कहते हैं। अपने चित्त का प्रवेश जब हृदय की कोठरी में होता है उस समय कई विलोभनीय दृश्यों की चमक-दमक हमें दृष्टिगोचर होती है विस्तृत हरियाली, उसपर चरने वाली हृष्ट-पुष्ट गायें, विविध प्रकार के डौलदार वृक्ष, नाना प्रकार के पंछी, रंग बिरंगी विविध स्वरूपों के सुन्दर नक्काशी से भरे और हरे शाद्व से नटी हुई पर्वत राशियां उन पर बड़ी शान से चमकने वाला नीला आकाश, दूरसे ही दिखाई देनेवाले नगर द्वार, राज मंदिर, उन राज मंदिरों के घण्टाओं का कर्ण मधुर नाद, पशुओं के झुण्ड के साथ-साथ घूमने वाले ग्वालों की बंसियों की सुरीली तानें इन सारी बातों से हृदयाकाश भरा रहता है। उसी में से एक सुन्दर पगडण्डी दिखाई देती है। उस पर से बड़ी सावधानी से गुजरने को जी लालायित हो उठता है। क्यों कि उस पग-डण्डी के ऊपर जो रत्नमय धूलिकण रहते हैं उन्हें कितने महात्माओं ने पावन किया है, पुनीत किया है, कौन जाने?

वसिष्ठ-विश्वमित्र से लेकर तो तुकाराम-रामदास तक सभी लोगों के पवित्र पदस्पर्शसे वे सारे रत्नकण पवित्र हुए हैं। उन रत्नकणों के ऊपर से बिलकुल संभलकर, सांस रोक कर, एकाग्र होकर, उपास्य देवता का स्मरण, मनन और निदिध्यासन करते हुए अपने से दूर दिखाई देनेवाले मंदिरों की ओर बढ़ते हैं तो उस देवमूर्ति के सामने जलने वाले धूप की सुगंध हमें आती है, यदि हम उसके और नजदीक जाते हैं तो सुगंध अगरबत्ती तथा फूलों का गन्ध अपने अन्तरंग को महका देता है और उस मंदिर के दरवाजों में ही हम खड़े हो जाते हैं। हम वहां रुक जाते हैं। इतनी लंबे सफर करने पर थक जाते हैं। खूब परिश्रम किया ऐसा हमें महसूस होता है। हमारी सांस फूलने लगती है, दम घूटने लगता है, हम घबड़ा जाते हैं और हमें डर भी लगने लगता है। उस मंदिर में जाकर हम वापस आ सकेंगे, क्या? या "यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धांपरमं मम।" यही हमारी स्थिति होगी क्या? जिस जगह सिर्फ इस दुनिया के महान साधुओं को ही प्रविष्ठ होने का अवसर प्राप्त हुआ है। उस जगह जाने से पहले हमें हमारी आशा, आकांक्षा, वासना आदि दुर्गुणों का होम करना होगा, हमारे अन्दर बसने वाले षड्रिपुओं को तिलांजलि देकर, देह भाव सम्बन्धी उदासीन होकर ही वहां जाना होगा। प्रेमवत् होने पर ही जहां प्रविष्ठ होने का अवसर प्राप्त होता है। बाह्य विश्वसे अलिवदा होकर जाना पड़ता है उसी जगह, हम जा रहे हैं। संत तुकाराम महाराज लिखते हैं—'झाला प्रेतरूप शरीराचा

भाव—लक्षियेला ठाव स्मशानीचा, रडती रात्रं दिवस का-
क्रोध-माया म्हणती हायहाया यम धर्म ।।

वैराग्याच्या शेणी लागल्या शरीरा—ज्ञानाग्नी भरला
जीवित्वोसी ।

फिरविला घट फोडिला चरणीं—महावाक्य-जनीं बोंब झाली।

दिली तिलांजुळी कुलनाम-रूपासी—शरीर ज्याचें त्याचें
समर्पिलें ।'

तुका म्हणे रक्षाजालो अपोआप-उजळला दीप गुरुकृपा।

यदि संत तुकाराम जैसे महानुभाओं को ऐसा कष्ट पड़ा है तो फिर अपने जैसे की क्या गिनती हो सकती है। इस प्रकार नाना प्रकार के विचार हमारे दिमाग में आते हैं और हम स्तंभित हो जाते हैं, आश्चर्य चकित हो जाते हैं, फिर से मन का ढाढस बढ़ता है, गुरुकृपा * ( आखिरी में दी गई टिप्पणी पढ़िये ) की मदद रहती है, सहारा रहता है और हम आगे की ओर देखते हैं। हम क्या देखते हैं? दरवाजा बन्द है। उस पर काला परदा है। किसी महान तपस्वी ने उस परदे को पहले ही थोड़ासा हटाया है। जो छोटी सी दरार हमें दिखाई देती है उसी में से अन्दर देखने को हमारा जी ललचा उठता है। लालायित हो उठता है। और उसमें हजारों सूर्यों को चकाचौंध करने वाला दिव्यमान प्रकाश दिखाई देता है। आंखें आप ही आप बन्द हो जाती हैं। संकुचित हो जाती हैं फिर से अपना ढाढ़स बढ़ता है, हम हिम्मत करते हैं, आंखोंको उसकी आदत हो जाती है और अन्दर तक रत्नजटित आसन पर इष्ट देवता की पूर्णाकार मूर्ति विराजमान हुई दिखाई देती है। वह भी धीरे धीरे

अदृश्य हो जाती है और अन्त में एक सौम्य, शांत निश्चल ऐसी अंगुष्ठप्रमाण ज्योति दिखाई देती है।

उपनिषदों में इस ज्योति का बहुत सुंदर वर्णन किया है।

'अंगुष्ठमात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा।
सदा जनानां हृदये सन्निविष्टः॥
अन्तः शरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो।
यंपश्यंति यतयः क्षीण दोषाः॥'

इसी प्रकार इस अंतरात्मा सम्बन्धी श्रुतियों ने भी कहा है। किंतु यह सब किस तरह प्राप्त किया जायेगा? यह योग किस तरह सधेगा?

ईश्वर उपासना, नामस्मरण, ध्यान और चिंतन ये तीन तरीके हैं उसे प्राप्त करने के, शरीर शुद्ध करना, चित्त की चंचलता दूर करना, और अनुष्ठान, व्रत, नियम आदि क्रियाओंसे जीवन शुद्ध करना, और वह उपासना करते करते जिस समय चित्तकी समधातता आयेगी, उसी समय जीवन का सार्थक 'याच देही याच डोला' प्राप्त होता है।

हटयोग, राजयोग, लययोग, मत्रयोग, शक्तियोग, ज्ञान-योग, कर्मयोग यह सारे रास्ते इस महान् साधना को जा मिलते हैं और कैवल्य का द्वार खुल जाता है।

किन्तु उपासना, नामस्मरण, ध्यान और चिन्तन करना आदि बातें जितनी सरल दिखाई देती हैं उतनी वे सरल नहीं हैं। यह कार्य कोई आसान कार्य नहीं, इसके लिये हमें सबसे पहले अपने शरीर की शुद्धी की ओर ध्यान देना होगा, यह आवश्यक है।

पहले बाह्य शुद्धि, फिर अंतःशुद्धि तदुपरांत अंतरंगशुद्धि

ये तीनों परतें शुद्ध हो जाने पर आत्मतत्व की ओर ले
वाला रास्ता खुल जाता है। साफ हो जाता है। शरीर
शुद्धि करके उसे धर्म साधन के लिये योग्य बनाना हर साध
की सबसे बड़ी और महत्वपूर्ण जिम्मेदारी है। 'शरीरमा
खलु धर्म साधनम्' यह कवि कालिदास ने फिजूल में
नहीं कहा था। फिर यह शरीर धर्मसाधन के लिये कि
प्रकार तैयार करना ?

* टिप्पणीः—गुरुकृपा इस शब्द से आज तक कं
धपले हुए हैं और शायद होते ही रहेंगे। 'आपणासारिखे
करिती तात्काल' (अपने मुताबिक फोरन बनाने वाले) ऐसी
शक्ति जिनके पास मौजूद है ऐसे गुरु आज बिलकुल विर
हैं। इस ग्रंथ के अन्त में 'साधकों के सहवास में' नाम
प्रकरण दिया गया है। इसमें गुरु सम्बन्धी जो विस्तृ
विवेचन दिया गया है उसे पाठक गण अवश्य ही पढ़ें, परि
स्थिति ऐसी है कि प्रत्येक साधक ने अपने मनको ही गुरु
मानना चाहिये। 'बुद्धि' यह साधक 'मन' गुरु और 'आत्मा'
को देवता मानकर साधक ने साधना करनी चाहिये। उसी
से उसका कल्याण होगा। साधकों के भोले भावों का, आतं
ताका और परिस्थिति से लाभ उठा कर उन्हें गलत राह
दिखा कर, अपना मतलब साधने वाले—अपना उल्लू सीधा
करने वाले-पाखण्डी गुरु और उनका ढोंगी शिष्यसम्प्रदाय
कई लोगों को बरबाद कर देते हैं, और कर रहे हैं। श्रीतुका-
राम, समर्थ रामदास आदि सन्तों ने ऐसे स्वार्थी, दम्भी,
और पाखण्डी गुरुओं को कटु शब्दों में धिक्कारा है, 'बाबा-
बाजी' और 'गुरुबाजी के' धोखे में न आकर, उनकी वालके
भंवर में न फंस कर अपना विवेक जागृत रखकर, साधक ने
अपना मार्ग अपनाना चाहिये।

(कविता)

# आज और कल

लेखक श्री. यतीन्द्र कुमार गर्ग, एम.ए.

आज टिका हूँ द्वार तुम्हारे,
मत समझो तुम प्यार कर रहा।
मेरा क्या मैं राही हूँ,
आज रुका हूँ कल चल दूँगा॥
चंचल गति चंचल मति सबकी,
रह न सके यति भी तो थिर हैं।
सकल जगत गतिमान न कोई,
यहाँ अजर हैं यहाँ अमर हैं।
मैं क्या तू कैंया'--प्रश्न नहीं ये,
शाश्वत पागलपन के द्योतक,
आया यहाँ न किन्तु रुक सका,
अस्थिर जग है, तन नश्वर है।
कैसे फिर अभिसार करूँ,
मैं पथिक दिवाना-मस्ताना हूँ।

रुक भी जाऊँ तो संशय है,
कौन कहे कल जीवित हूँगा॥
हरी दूब पर नई सुबह की,
शबनम हँसी कि मोती चमके।
भोर चिरैय्यो की चूँ बोली,
कोयल गायी चुपके चुपके॥
बालारुण सँग खेल उषा का
देख सुहाना, मन ललचाया।
पहुँचा हरी दूब पर, यह क्या?
देखे आँसू बिखरे गम के॥
अधरों पर मुस्कान, न इसका अर्थ कि
दिल भी निश्चय खुश है।
आज हँस रहा हूँ योंही,
तो सम्भव है कल रो भी दूँगा॥
आगे पीछे लिखते लिखते,
बीत रही यूँ सकल उमरिया।
रीती की रीती है फिर भी.
झाँक तनिक तो देख गगरिया॥
यह तो जग है, जग होली है,
बचना यहाँ बहुत ही मुश्किल।
तू ही देख कि कल ही पहनी,
मैली आज कि सुघर चुनरिया॥
आये तो उसका गम था,
अब चले यहाँ वालों का गम है।
जग के इसी झमेले से मैं,
अब तक बचा तो फिर बच लूँगा॥

# मक्खियों से कैसे बचे!!

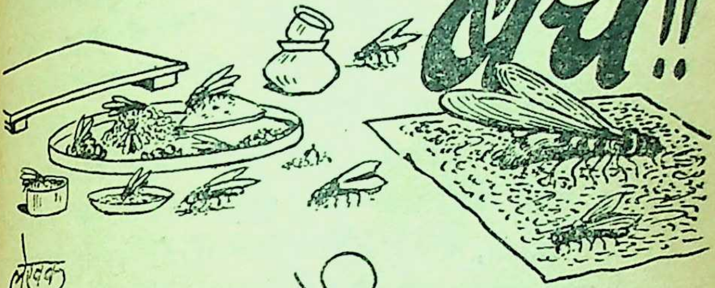

लेखक
श्री. एस. एस. कनोई

दुनिया में सभी किसी-न-किसी बात से परेशान हैं मैं जिस चीज से परेशान हूं—वह है मक्खी। देखने में इतनी छोटी है कि मिनटों में पकड़ कर मसली जा सकती है। किन्तु जो भी हो, मैं इस छोटी सी जान से बहुत ही परेशान हूं, दुनिया के विभिन्न भागों में रहने वाले छोटे से लेकर बड़े तक सभी प्राणी इससे अवश्य ही परेशान होंगे। ये बिना बुलाए मेहमान की तरह वक्त-बेवक्त हमें परेशान करती ही रहती हैं। कभी हमारे भोजन पर बैठ जाती है तो कभी हमारे शरीर के किसी भाग पर बैठ कर काटने लगती है इसे जितना दूर भगाने की सोचिये और हाथ-पांव और गरदन हिलाये उतना ही और पास आ-आ कर कान में न जाने

क्या भनभना कर पल भर के लिए चली जाती है और फि वही परेशान करने वाली पुरानी हरकतें।

मक्खी से हमें यही शिकायत नहीं कि यह हमें परेशान ही करती है बल्कि यह अनेक संक्रामक रोगों की जननी भी है। जैसे टायफाइड, क्षय, हैजा, प्लेग, चेचक, दस्त, रोहे फोड़े-फुन्सी, बच्चों का पक्षाघात और संग्रहणी आदि। इस प्रकार ये हमारी सबसे बड़ी घातक शत्रु भी हैं। संक्रामक रोगों का विष ये मक्खियां अपने साथ लिये फिरती है। मक्खियां जहां कहीं मल-मूत्र, कूड़ा-करकट, उल्टी, थूक, सड़ी-गली चीजों, कीचड़ और दूषित फोड़ों आदि पर बैठ जाती है और उन पर उड़ रहे भयानक रोगों के कीटाणुओं को अपने रोएंदार शरीर और चिपचिपे पैरों में लगा कर स्वस्थ व्यक्ति के खाद्य पदार्थों पर बैठ कर उन्हें दूषित और विषाक्त बना देती है जिसके परिणाम-स्वरूप उस स्वस्थ व्यक्ति का शरीर अनेक घातक रोगों का घर बन जाता है। यदि इनके द्वारा लाई गई गन्दगी को आप प्रत्यक्ष देखना चाहते हों तो जरा ध्यान से अपने यहां लटक रहे बिजली के तार को देखिये। आप पायेंगे कि उस पर गन्दगी की एक मोटी परत जमी हुई है। यह इन्हीं मक्खियों की करामात है।

जाड़ों में ये इनी गिनी ही दिखलाई पड़ती है परन्तु बरसात और गरमियों में इनका आतंक बढ़ जाता है। यहां तक कि व्यक्ति का खाना-पीना और सोना-उठना तक इनकी

वजह से दूभर-सा हो जाता है। यदि यह कहा जाय कि इन ऋतुओं में होने वाले रोग इन विषैली मक्खियों के कारण ही फैलते हैं तो ऐसा कहना अतिशयोक्ति न होगी।

अब इस विलक्षण-विषैली मक्खी की शारीरिक बनावट की ओर भी थोड़ा ध्यान देना आवश्यक है जो इतनी छोटी होते हुए भी कितनी खोटी है ? मक्खी के शरीर को तीन भागों में बांटा जा सकता है—सिर, कक्ष और उदर। इन तीनों भागों में हवा की थैलियां होती है जिनके सहारे ये उड़ती हैं। इसके सिर पर दो बड़ी-बड़ी लाल रंग की आंखें होती हैं जिनके द्वारा यह बिना सिर घुमाये ही अपने चारों ओर देख सकती हैं। इसके चार पंख और छः जोड़दार पैर होते हैं जिन पर अगणित छोटे २ रोएं होते हैं इन्हीं रोओंमें मक्खी जिस रोगों के जीवाणुओं को चिपका कर ले आती है और स्वस्थ व्यक्ति के भोजन पर बैठ जाती है उस पर उन किटाणुओं को छोड़ देती है, फिर तो उसका भगवान् ही मालिक है। मक्खी के मुंह के पास एक सूंड भी होती है, जिसके पास ही एक छोटी सी नली भी होती है। जब मक्खी किसी खाद्य पदार्थ पर बैठती है तो अपने सिर के निचले भाग से यही नली निकालती है जिससे थूक निकलता रहता है और इसी थूक की वजह से खाद्य पदार्थ कुछ लसदार हो जाता है। मक्खी उसी लसदार पदार्थ को चूसती है, ठोस भोजन नहीं खा सकती। मक्खी तरल पदार्थ ही चूसती है। जैसे जैसे अपनी नली निकाल कर भोजन चूसती है, वैसे-वैसे उसका थूक उस भोजन में मिलता जाता है और परिणाम स्वरूप

घातक कीटाणु भी उसमें मिलते जाते हैं। इसीलिये बा की खुली हुई मिठाइयां आदि को कभी भी नहीं खा चाहिए। जिन पर मक्खियां भिन्नभिनाती रहती हैं। मक्खियों के विषैली होने का प्रमाण इसी बात से मिल जाता है कि यदि भोजन या किसी तरल पेय पदार्थ के साथ यह भूल से हमारे पेट में चली जाय तो हम इसे पचा नहीं सकते और उसी समय उल्टी होकर सब खाया-पिया बाहर निक आयेगा।

गरमी और बरसात के दिनों में इनकी वृद्धि बहु शीघ्रता से होती है। मादा मक्खियां मनुष्य के मल, ट और नम खाद, पेड़-पौधों की दरारों, गोबर और सड़ते हुए पशुओं पर एक बार में १०० से १५० तक अण्डे देती है। छः-सात घन्टों में ये सफेद और चमकदार अण्डे तिनके, सफेद और पंगु बच्चे जिन्हें लारवा या डिम्भ कहते हैं बन जाते हैं। चार-पांच दिन तक ये अपने शरीर को एक खोल से ढके हुए रहते हैं। इन्हें 'थूपा' कहते हैं। यह ढोलक के रूप के और चाकलेटी रंग के होते हैं। ये 'लारवा' जमीन के नीचे ४-५ फुट नीचे ढके पड़े रहते हैं और इन दिनों कुछ खाते-पीते भी नहीं हैं। चार-पांच दिन के बाद ये फूट कर पृथ्वी की सतह पर आजाते हैं और पूर्ण वयस्क मक्खी का रूप धारण कर लेते हैं। मादा मक्खी के रूप में आने के बाद ये भी अण्डे देने योग्य हो जाती हैं। मक्खी का पूर्ण जीवन-काल गरमी के दिनों में लगभग एक मास का

होता है ।

अब प्रश्न उठता है कि इन जानलेवा मक्खियों से अपने उत्तम स्वास्थ्य की रक्षा कैसे की जाय ? मेरे विचार से इनकी बाढ़ को रोकने के लिए दो ही बातें काम में लाई जा सकती हैं। पहला-इनको अण्डे देने से रोकना और दूसरा-स्वच्छता पर ध्यान रखना । मक्खियों को निर्मूल नष्ट तो नहीं किया जा सकता बल्कि इनसे फैलने वाले संक्रामक रोगों से बचा अवश्य जा सकता है । इनसे बचाव के लिए नीचे कुछ उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किए जा रहे हैं:—

१:—घर में जो कूड़ा-करकट आदि निकले उसे किसी निश्चित बन्द स्थान या ढकनदार कनस्टर आदि में इकट्ठा करते रहना चाहिए । दूसरे दिन सुबह इसको नगरपालिका की कूड़ा गाड़ी में फिंकवा देना चाहिये । खिड़कियों में से गली-सड़क में कूड़ा कभी भी न फेंकना चाहिये ।

२:—शौचगृह तथा नालियों को हमेशा पानी से धो कर स्वच्छ रखना चाहिए । दिन में एक बार यदि फिनायल से धुलाई कर दी जाय तो अच्छा है । बच्चों को जगह-जगह शौचादि नहीं कराना चाहिये । यदि बच्चे शौच कर भी दें तो तुरन्त उसको मिट्टी या राख से ढक देना चाहिए ।

गोबर को बांस के बने टट्टर पर फैला देना चाहिए। टट्टर के नीचे पानी से भरा एक छिछला हौज होना चाहिए

जिसकी लम्बाई-चौड़ाई टट्टर से बड़ी हो। मक्खियों अण्डे जब गरमी के कारण बाहर निकलेंगे तो इसी हौज पानी में गिर कर मर जायेंगे।

३:—घर के अन्दर या बाहर 'पिंजरे' में गुड़ की भे रख कर लगा देना चाहिए। जो मक्खियां गुड़ चूसने लालच में इसमें जाती है वह बाहर नहीं निकल सकती और इस प्रकार काफी हद तक मक्खियां कम हो जाती हैं।

४:—खाने-पीने की वस्तुओं को जालीदार आलमारि में या ढक कर रखना चाहिए। रसोई घर के दरवाजे महीन जाली के बने हों तो और भी अच्छा है। घर के द वाजों और खिड़कियों पर बांस की बनी चिक लटका दें पर मक्खियों का आवागमन कुछ हद तक कम हो जाता है।

५:—फोड़े-फुन्सियों, पके हुए घाव आदि पर मक्खियों को न बैठने देना चाहिए। इन पर बैठने से भी अनेक संक्रामक रोगों के हो जाने का भय रहता है।

८:—रहने के स्थान को कपूर, तुलसी की पत्ती का रस, डी. डी. टी. या फिलट आदि से छिड़कने पर मक्खियां म जाती हैं और इनकी गन्ध से ये दूर भागती हैं। तुलसी की पत्ती का रस शरीर पर लगा लेने से भी मक्खियां दू रहती हैं।

इस प्रकार जब हमारे घरों आदि में इनको आश्रय न मिलेगा तब वे स्वयं अन्यत्र चली जायेंगी और तब हम उनके द्वारा फैलने वाले संक्रामक रोगों से सदैव मुक्त रहेंगे।

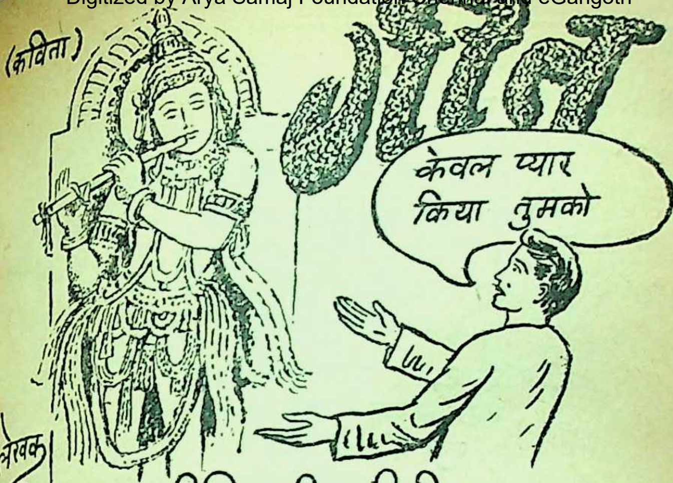

लेखक श्री रमाकान्त दीक्षित, बी. ए. बी. टी. सा. रत्न

केवल प्यार किया तुमको !

निराकार-साकार न समझा,
सृष्टि या संहार न समझा।
जर्जर जीवन की नगरी में,
केवल प्यार किया तुमको॥

जीत न समझा, हार न समझा,
हास-रुदन-व्यापार न समझा।
प्रिय, मैंने तन-मन-प्राणों से,
केवल प्यार किया तुमको॥

मन-वीणा के तार न समझा,
पतझर और बहार न समझा।
आंख फिराकर सारे जग से,
केवल प्यार किया तुमको॥

नाव न समझा, धार न समझा,
भव-सागर का पार न समझा।
अब तक इतना जान सका हूं,
केवल प्यार किया तुमको॥
शुचिता और विकार न समझा,
कुछ विस्तृत या सार न समझा।
मेरा रोम-रोम कहता है,
केवल प्यार किया तुमको॥
छीन-झपट, उपहार न समझा,
स्वर्ग-नरक संसार न समझा।
खुद को भी खुद बना पहेली,
केवल प्यार किया तुमको॥

---

पंजाब, यू. पी., मध्य प्रदेश, राजस्थान, जम्मू,
काश्मीर तथा दिल्ली की सबसे अधिक
प्रकाशित होने वाली पत्रिका

## मासिक भारत ज्योति

जो कि हिन्दी और पंजाबी में अलग अलग प्रकाशि
होती है। अति सुन्दर, दिलचस्प, रचनाओं से भरपूर पत्रि
पढ़े और विज्ञापन दाता अपने व्यापार बढ़ाने के लिए इ
पत्रिका को न भूलें क्योंकि यह उनके व्यापार के लि
अति लाभदायक होगा। पूर्ण विवरण के लिए निम्न पते
लिखें :—

भारत ज्योति "मासिक"
जालंधर नगर (पंजा

# उषः पान

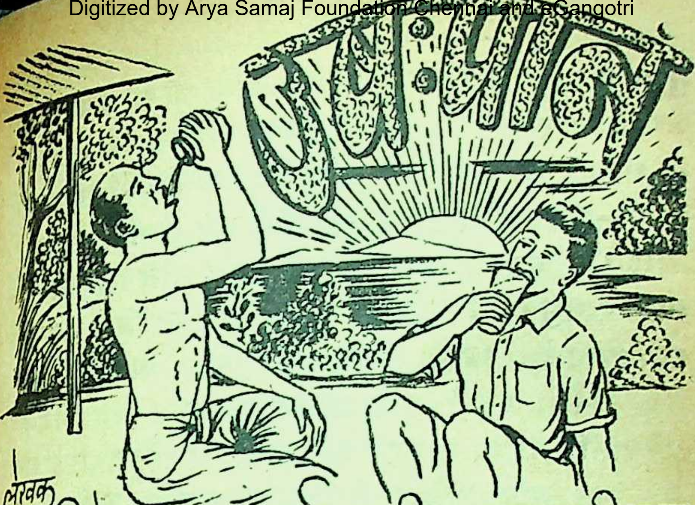

लेखक
श्री शिवेन्द्र प्रसाद गर्ग, साहित्य सुधाकर, विशारद

प्राकृतिक चिकित्सकों का कहना है कि 'रोग की हालत में ही नहीं, अपितु आरोग्य अवस्था में भी यदि प्राकृतिक ढंग से जीवन यापन किया जाय, तो रोग की उत्पत्ति का प्रश्न ही नहीं उठता।' अतएव नीरोग रहकर दीर्घजीवी बनने का संसार में अचूक नुस्खा है—व्यायाम, नपा-तुला भोजन, पर्याप्त शयन एवं दृढ़ता से नियमों का पालन। यदि मानव अपनी समस्त इन्द्रियों का संयम सीख ले तो डाक्टर, हकीम एवं वैद्यों की दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ती हुई जनसंख्या हासोन्मुख हो जावेगी। स्वास्थ्यरूपी पूँजी के हाथ से निकल जाने पर आहार-विहार का असंयम विशेष दुःखदायी होता है। अतएव उपर्युक्त अभ्यासों का सतत अनुगमन करना ही श्रेयस्कर है। नियम रहित जीवन मृत्यु

तुल्य है। सुस्ती केवल वास्तविक सुख का ही अपहरण नहीं करती, बल्कि शरीर की निरोगता को भी मार भगाती है। मनुष्य जब शय्या पर पड़ जाता है, तब हकीमों एवं डाक्टरों की पौ-बारह होती है, पांचों घी में एवं दोनों हाथों लड्डू। आरम्भ में आप केवल अनुभव करते होंगे कि दवाओं से आप रोगमुक्त हो रहे हैं, परन्तु वस्तुत: जिन कारणों से रोग होता है, उनको हटाये बिना रोग पीछा नहीं छोड़े। एवं विषैली दवाएँ हानि के अलावा अन्य कोई लाभ नहीं पहुंचातीं। अतएव आइए! मां प्रकृति की शीतल वरद शरण में—जहां आप "छिति-जल-पावक-गगन समीरा" इन पंचभूतों से निर्मित शरीर को इन्हीं पांच तत्वों की सहायता से रोग मुक्त कर सकेंगे। 'हींग लगे न फिटकरी, रंग चोखा हो जाय।' प्रत्येक सत्व चिकित्सक का यही मत है कि जब इन तत्वों में किसी प्रकार से विकार उत्पत्ति हो जाती है तब अनायास ही शरीर रुग्ण हो जाता है एवं इन मूल तत्वों के विकारों का निरूपण हेतु इन तत्वों के ही शुद्ध स्वरूप की आवश्यकता होती है। कलियुग में एक मात्र आधार प्राकृतिक चिकित्सा का रीढ़ स्तम्भ भी ये पांचों तत्व ही हैं। इन तत्वों के सेवन द्वारा आपको सदैव हेतु रोग मुक्त किया जाता। बस, केवल श्रद्धा होनी चाहिये। 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानं'—जल चिकित्सा को ही लीजिये,—उषःपान भी एक प्रकार की वह जल चिकित्सा है जो कि अत्यन्त सुलभ है एवं शरीर हेतु परम कल्याणकारी प्रमाणित हुई है। वायु के उपरांत सर्वाधिक महत्वपूर्ण वस्तु जल ही

है। भोजन के पाचन, रक्त के प्रवाहित होते रहने आदि हेतु स्वच्छ जल की महती आवश्यकता है। जल ही जीवन है, जल ही अमृत है, जल ही सर्वश्रेष्ठ पेय है।

यों तो प्यास लगने पर सम्पूर्ण चराचर जलपान (जल का पान) करता है किन्तु उषःपान अर्थात् ऊषाकाल में (रात्रि का चतुर्थ पहर सूर्योदय से पूर्व) जल का पान करना अपनी सानी नहीं रखता। यह परम कल्याणकारी एवं स्वास्थ्य-दायक विलक्षण साधन है। बिस्तरे से उठते समय तथा शौचादि क्रियाओं से निवृत्त होने के पूर्व नासिका के नथुनों, दन्तावली एवं रसना को भली भाँति जल से स्वच्छ कर नासिका (अथवा मुख) द्वारा किया गया जल का पान 'उषःपान' कहलाता है। जब भी आप इस क्रिया को प्रारम्भ करें, आरम्भ में आप मुँह द्वारा पानी पी सकते हैं। बाद में अभ्यास होने पर पतले किनारों वाला गिलास लेकर अपनी सुविधानुसार बैठकर मुँह को जरा ऊंचा कर गिलास के किनारों को क्रमशः बांये व दांयें नथुने से लगावें एवं पानी को शनैः शनैः नाक की राह से भीतर जाने दें एवं फिर इसे मुंह द्वारा थूंक दें। इससे नासिका एवं मुंह की सफाई हो जावेगी, अतएव अब सिर को कुछ पीछे की ओर झुका कर गिलास का किनारा बांयें नथुने से लगावें एवं पानी को स्वेच्छा से धीरे धीरे अन्दर जानें दें और गले से घूंट खींचते जावें। पानी स्वतः ही अन्दर जाने लगेगा। विशेष ध्यान इस ओर देना है कि नाक से पानी को श्वास की सहायता से कदापि न खींचें, इसे स्वेच्छा से ही जाने दें।

सम्भवतः आरम्भ में आप कुछ बैचेनी, हरारत, डकारें, झनझनाहट एवं नेत्रों में आंसू अनुभव करेंगे, परन्तु आप कतई आकुल न हों। इसकी मात्रा को एक तोले से बढ़ाकर (अन्दाजे से) उस सीमा तक ले जा सकते हैं जो आपकी प्रकृति के अनुकूल हो। पानी की अधिकतम मात्रा का कोई ठोस मापदंड नहीं है। 'उषःपान' के उपरान्त आप शीघ्र ही शौचादि क्रियाओं से निवृत्त हों।

'उषःपान' के अपरिमित महत्त्व को संक्षिप्त कलेवर में बता पाना दुष्कर है। 'योगरत्नाकर' में कहा गया है—"रात्रि के चतुर्थ पहर में, सूर्योदय के पूर्व, प्रातः उठकर जो मनुष्य प्रतिदिन नासिका के छिद्र द्वारा जलपान करता है, उसका मस्तिष्क स्वच्छ, बुद्धि एवं दृष्टि तीव्र होती है। वह समस्त रोगों से बचा रहता है एवं उसके केश श्वेत नहीं होते।" ...."भावप्रकाश" में लिखा है—"बवासीर, सूजन, संग्रहणी, ज्वर, उदर रोग, बुढ़ापा, कुष्ट, मोटापा, पेशाब का रुकना, रक्तपित्त, आंख, नाक, कान, गले, सिर, कमर आदि के दर्द, वात, पित्त, कफ आदि समस्त रोग उषःपान से समूल नष्ट होते हैं।

'विगत घन निशीथे प्रातरुत्थाय नित्यं।
पिबति खलु नरो यो घ्राणरन्ध्रेण वारि।
सभवति मति पूर्णश्चक्षुषाताक्ष्र्य तुल्यो।
वलि पलित विहीनः सव रोगै र्विमुक्तः॥"

'योगरत्नाकर'

'धन्वन्तरि संहिता' में कहा गया है--

'सवितुः समुदय काले प्रसृती सलिलस्य पिबदस्तौ।
रोग जरा परिमुक्तो जीवेद्वत्सर शतं साग्रम ॥' अर्थात्
सूर्योदय के पूर्व जो मनुष्य आठ अंजुली पानी पीता है, वह रोगों एवं बुढ़ापे से बचकर अर्थात् आरोग्य एवं युवा रहकर सौ वर्ष से भी अधिक आयुका भोग करता है। –'भोजसंहिता' में अंकित है--'पिबति पर्युषितं जलमन्वहं–तिमिरिणी चरमे प्रहरे यदि।' अर्थात् रात्रि के चतुर्थ पहर में प्रतिदिन बासी जल का पीना आरोग्य एवं दीर्घायु का कारण है। यदि ताम्रपात्र हो तो क्या कहना, सोने में सुगन्ध है। –इसी प्रकार --'रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टि सज्जनम्।' अर्थात् रात्रि के बीत जाने पर नासिका द्वारा चढ़ाया गया पानी रसायन की भांति गुणकारक, दृष्टि का रक्षक एवं नेत्र रोगों का निवारक है।

उषःपान हेतु रात्रि को ही सोते समय स्वच्छ एवं ढके हुये लोटे में (यथाशक्य ताम्र पात्र में) छना हुआ जल लेकर शय्या के निकट रख लेना चाहिये। ताम्र पात्र में रखा जल अत्यधिक लाभदायक एवं पवित्र होता है। यह पानी सभी प्रकार से शुद्ध, स्वच्छ, शीतल एवं मीठा होना चाहिये। उषःपान के पश्चात् टहलना भी लाभदायक ही है। यह उषःपान प्रकृति के विरुद्ध कदापि नहीं है। पानी के गुणों से अनभिज्ञ व्यक्तियों के सम्पर्क में न आकर इस क्रिया को सतत जारी रखना ही श्रेयस्कर है। उषःपान करने वाले

व्यक्ति (स्त्री-पुरुष दोनों) पावेंगे कि इससे दस्त साफ हो है, भूख खूब लगती है, निद्रा अच्छी आती है, पेट में वायु की कमी होती है, पेशाब साफ होता है। इस आदत को एकाएक छोड़ना हानिप्रद हो जाता है केवल कुछ ही रोगों में यह फलीभूत नहीं होता। कहा गया है—

> 'स्नेहे पीसे क्षतेऽशुद्धा वाध्माने स्तिमितोदरे।
> हिक्कायां कफ वातोत्थे व्याधौ तदूपरिवारयेत्।
> (योगरत्नाकर)

अर्थात् अंडी का तेल इत्यादि पीकर जुलाब लिया गया हो, अथवा किसी घाव की पीड़ा हो, या पेट में दर्द हो अथवा पेट फूल गया हो या हिचकी आती हो अथवा कफ-वात के रोग हों तो उषःपान कदापि न करना चाहिये। निमोनिया, क्षय, आंत्र की बीमारियों से पीड़ित एवं कमजोर फेफड़े वालों को भी इससे परहेज ही करना चाहिये।

प्रातःकाल किया गया यह जलपान अंतड़ियों को धोकर शरीर के निम्नतम हिस्सों में उत्तेजना उत्पन्न कर रक्त के संचारण में मदद देता है। मल के निष्कासन में भाग लेने वाले अवयव शीघ्र गति से कार्य करते हैं, रोग उत्पन्न करने वाले जन्तु किंवा विष नष्ट होते हैं फलतः बुद्धि प्रखर होती है। उषःपान कब्ज का निवारक है, यूरिया, फास्फेट्स एवं क्षार आदि हानिप्रद पदार्थों को शरीर से बाहर निकालने वाला है। पाचक रस की उत्पत्ति में वृद्धि करानेवाला है। यह उषःपान दाहिने नथुने अथवा मुख से भी किया जा सकता है।

उषःपान का सर्वाधिक लाभ मलाशय और मूत्राशय को मिलता है। पेट के समस्त विकार उषःपान से भस्मीभूत हो जाते हैं। स्मरण रखिये--

निन्ने पानी जो पिये, हर्र भूँजि जो खाय।
दूध बियारी जो करे, तिहि घर वैद न जाय!!

सभी रोगों की उत्पत्ति मल के कारण होती है, और यह उषःपान इन समस्त रोगों में तत्काल लाभ पहुंचाता है। मंदाग्नि एवं मलावरोध को मार भगाता है, सिरदर्द जुकाम, खांसी, आलस्य, भारीपन एवं मुंह के खराब जायके को दूर करता है। अजीर्ण होने पर यह जल दवा है एवं न होने पर बल प्रदायक। 'अजीर्णे भेषजंवारि जीर्णे वारि बल प्रदम।' (चाणक्य नीति) --पथरी, बवासीर, संग्रहणी, मोटापा, गुर्दे का दर्द, उदरशूल, स्वप्नदोष, दाद, कुष्ट, खाज, फोड़े फुन्सी, मूत्रविकारों आदि समस्त व्याधियों में यह सर्व सुलभ रामबाण दवा है। नेत्रों की ज्योति को यह बढ़ाता है, मस्तिष्क को तरोताजा रखता है। यदि इसके साथ आहार-विहार में संयम रखा जावे एवं नियमित रूप से व्यायाम या भ्रमण आदि किया जावे तो आप बीमार कभी नहीं पड़ सकते। ऐसा मेरा मत है। सफेद केश इससे कृष्णवर्ण होते हैं, सभी इन्द्रियों की शक्ति में वृद्धि होती है, रक्त साफ होता है--और मैं कहां तक बखान करूं, 'गिरा अनयन नयन बिनु वाणी।'

लेख की समाप्ति से पूर्व यह स्पष्ट करना भी युक्तियु एवं औचित्यपूर्ण होगा कि उषःपान यदि मुंह से भी कि जावे तो कोई हानि नहीं। परन्तु हां, लाभ शत प्रति न होगा। नासिका द्वारा पिया गया जल नासिका को साफ कर देता है एवं नासिका के केशों-रन्ध्रों आदि की सफाई हो जाती है। साथ ही यह दिमाग के लिये भी विशे लाभप्रद रहता है। और वैसे कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ता। यही बात दाहिने नथुने के बारे में समझनी चाहिये। जो सज्जन काफी समय से 'उषःपान' कर रहे हैं, वे ज के स्थान पर गो (गाय) के धारोष्ण दुग्ध का भी निस्संको प्रयोग कर सकते हैं। यदि रोगों से दूर रहना है, स्फूर्तिवान् बनना है तथा चित्त को प्रफुल्लित रखना है तो कीजिये ब्राह्म मुहूर्त में नासिका द्वारा जलपान।

अंत में मैं केवल यही कहूँगा कि लेख में तो केवल कुछ ही बातों का दिग्दर्शन हो सकता है, यथार्थ में अनुभवी जन तो इसके अनेकानेक लाभों का अनुभव करते हैं। अतएव इस आदत को जितना जल्द प्रारम्भ किया जावे, उतना ही श्रेष्ठ है।—आइये! आप भी कल ही से उषःपान करने की सुन्दर बान डाल लीजिये! शुभस्य शीघ्रम्!!

# मानस में शकुन विचार

लेखक
कृष्णकुमार सौरभ

दशहरा के दिन नीलकंठ पक्षी का दर्शन शुभ माना गया है। यह एक शकुन है। शकुन शब्द पक्षी शब्द का पर्यायवाची है। शकुन शास्त्र के अध्ययन से पता चलता है कि हमारे भारतीय शकुन शास्त्र के आचार्यों ने प्रारम्भ में मनुष्यों के शुभ और अशुभ फल विचार के लिए पक्षियों के उठने, बैठने तथा खाने-पीने इत्यादि की क्रियाओं का सहारा लिया। इन पक्षियों में कौवा, खंजन, नीलकंठ तथा चील के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। धीरे धीरे पशुओं के व्यवहारों से तथा बाद में मानव के अंगों के फड़कने से शुभ और अशुभ का विचार किया जाने लगा। इस प्रकार आज के युग में हम शकुन विचार की विकसित प्रणाली का दर्शन करते है। साधारणतया शकुन दो प्रकार के कहे जाते हैं—शुभ

और अशुभ। हमारे भारतीय शकुन शास्त्र के आचार्यों इनको तीन प्रकार का बतलाया है।

(१) क्षेत्रिकः—यह वह शकुन है जो पूर्व योजनानुसा देखा जाता है।

(२) आगन्तुकः—इस प्रकार के शकुन स्वयं उपस्थि हो जाते हैं।

(३) जांघिक:—यह वह शकुन है जो यात्रा के सम अपने आप बाम भाग में या दक्षिण भाग में उपस्थित हो जाते हैं।

इस प्रकार शकुन-विचार का अल्प ज्ञान कर लेने पश्चात् आइये हम देखें कि भारतीय संस्कृति तथा परम्प के अमर कवि, भक्त-शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास जी अपने महान् ग्रंथ-श्री रामचरित मानस में कहां कहां प शकुन-विचार का वर्णन किया है।

सर्व प्रथम जब भगवान् राम, जनक जी की पुष्प वाटिका में, गुरु की पूजा के लिये पुष्प चयन करते हुए, भगवती सीता का प्रथम बार दर्शन करते हैं उस समय अपने प्रिय बन्धु श्री लक्ष्मण जी से मंगल सूचक शकुनों का वर्णन करते हैं:—

सो सब कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभद अंग सुनु भ्राता॥

(बाल काण्ड दो. २३०-४)

[ इस स्थल पर इस बात उल्लेख कर देना अनुचित न होगा कि 'जांघिक शकुन' में पुरुषों का दक्षिण अंग तथा स्त्रियों का बांम अंग शुभ माना गया है यानी इन अंगों के

फड़कने से शुभ होता है । ]

इधर मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी को तो मंगल की सूचना मिली परन्तु उधर भगवती सीता को इसकी सूचना नहीं मिली । अतः जब वे माता गौरी की उपासना कर चुकीं तो उन्हें भी मंगल शकुन सूचित करते हैं । ग्रन्थकार ने आगे लिखा है:—

जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरष न जात कहि ।
मंजुल मंगल मूल बाम अंग फरकन लगे ॥
(बाल० सोरठा २३६)

शकुन सत्य हुए । मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने शंकर जी के कठिन चाप का खंडन किया । इतने में दशरथ जी को यह शुभ संवाद सुनाया और मिथला नरेश जनक जी का निमंत्रण दिया । बारात के प्रस्थान का समय हो गया । यह विवाह अपूर्व था । स्वयं ब्रह्म भी कह उठे:—

सकल भांति सम साज समाजू । सम समधी देखे हम आजू ॥
(बाल० दोहा ३१९-६)

ऐसे शुभ अवसर पर मानसकार गोस्वामी तुलसीदास जी का शकुन-वर्णन अति उत्तम है । संपूर्ण 'मानस' में यही एक स्थल है जहां पर तीनों प्रकार के शकुन उपस्थित हैं:—

बनइ न बरनत बनी बराता । होहिं सगुन सुन्दर सुभ दाता ।
चारा चाषु बाम दिसि लेई । मनहुं सकल मंगल कहि देई ॥
दाहिन काग सुखेत सुहावा । नकुल दरस सब काहूं पावा ॥
सानुकूल बह त्रिविध बयारी । सघट सबाल आव नर नारी ॥

लोवा फिरिफिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख ससिहि पिआव
छेम करी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी
सनमुख आयउ दधि अरुमीना। कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना।

मंगलमय कल्यानमय अभिमत फलदातार।
जनु सब साचे होन हित भए सगुन एक बार॥

(बाल० दोहा० ३०२ से ३०३ तक)

(नील कंठ पक्षी बायीं ओर चारा ले रहा है। मा
संपूर्ण मंगलों की सूचना दे रहा हो। दाहिनी ओर कौ
खेत में शोभा पा रहा है। नेवले का दर्शन सभी को हुआ
तीनों प्रकार की (शीतल मंद सुगन्धित) वायु अनुकूल दि
में बह रही है। श्रेष्ठ (सुहागिन) स्त्रियां भरे हुए घड़े त
गोद में बालक लिए हुए आ रही हैं। सफेद सिर वाली ची
विशेष रूप से कल्याण कह रही है। श्यामा बायीं ओर सुन्द
पेड़ पर दिखाई पड़ी। दही मछली और दो विप्र विद्वान् हाथों
पुस्तक लिए हुए सामने आये। इस प्रकार सभी मंगलम
कल्याणमय तथा मन के अनुरूप फल देने वाले सगुन स
होने के लिए एक ही बार प्रगट हो गये।)

इस प्रकार 'मानस' रचियता ने अपने भारतीय संस्कृ
के उत्कृष्ट ज्ञान का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत किया है। श्री
रामचन्द्र जी के विवाहोपरांत अयोध्या-नरेश महाराज द
रथ राज्याभिषेक की तैयारी करते हैं परन्तु अभी भक्तों को
कष्ट देने वाले राक्षसों का वध हुआ ही नहीं था इसलिए
महारानी कैकेयी की मति को भ्रष्ठ करने के लिए सरस्वती

76347

ने उसकी दासी मंथरा की मति उलट दी। मंथरा के उलटा सीधा समझाने पर कैकेयी अशुभ फल देने वाले शकुनों का वर्णन करती हैं:--

सुनु मंथरा बात फुर तोरी। दाहिनी आंख नित फरकइ मोरी॥
(अयोध्या० दो० १९-५)

यहां पर कैकेयी को विधवा होने का संकेत था परन्तु भावी बश उसने कुछ और ही समझा। परिणामस्वरूप भगवान् राम ने माता जानकी को लेकर अनुज लक्ष्मण के साथ वन के लिये प्रस्थान कर दिया। इस अवसर पर शकुनों द्वारा लंका में रावण को तथा ननिहाल में भरत जी को अशुभ की सूचना मिली:--

कुसगुन लंक अवध अति सोकू, हरष विषाद विवस सुर लोकू।
(अयोध्या० दोहा ८०-४)

अनरथु अवध अरंभेउ जब ते। कुसगुन होहिं भरत कहुं तबते॥
(अयोध्या० दोहा १५६-५)

दूत के साथ जब भरतजी नगर के समीप पहुंचते हैं तो:-

असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभांति कुखेत करारा॥
खर सिआर बोलहिं प्रतिकूला, सुनि २ होहिं भरत मनसूला।
(अयोध्या० दोहा० १५७--२,३)

अशकुन का प्रभाव प्रत्यक्ष दीख पड़ा। महाराज दशरथ परलोक सिधार गये थे। भक्तराज भरत जी ने राज्य स्वीकार नहीं किया, अपने प्रभु को मनाने के लिये चित्रकूट चल पड़े।

साथ में शाही सेना, माताएं, मुनि तथा अयोध्यावासी भी थे। निषाद-राज को जब इसकी सूचना मिली तो वह ति मिला उठा। यह कैसे हो सकता था कि राम से युद्ध करे के पहले भरत निषाद राज से युद्ध न करे? भगवान् की लीला! भगवान् के ही भक्तों में युद्ध होने वाला था। इ अवसरपर शकुनों ने शांति का ही संकेत किया--

दीख निषाद-नाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाउ ढोलू।
एतना कहत छींक भइ बाएं। कहत सगुनिहन्ह खेत सुहाएं।
बूढ़ एकु कह सगुन बिचारी। भरतहिं मिलिय न होंहि रारी।
(अयोध्या० दो० १९१-३,४,५)

और युद्ध टल गया। केवट को भरत की राम भक्ति देख कर ग्लानि हुई। वह भी उनके साथ राम-भक्ति की सरिता में गोता लगाता हुआ चल पड़ा। राह में शुभ शकुन मंगल की सूचना देते हैं:--

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद अंग सब काहू॥
(अयोध्या० दो० २२४-१)

लगे होन मंगल सगुन सुनि गुनि कहत निषाद।
(अयोध्या० दो० २२४)

भरत और राम का मिलन होता है। सत्य के पालक रामचन्द्र जी पिता के वचनों पर दृढ़ रहे और भरत जी उन की चरण-पादुका लेकर अयोध्या लौट आये। वन में लीला-मय भगवान् राम सुर्पणखा का नाक, कान काटने का आदेश लक्ष्मण को दे देते हैं और खरदूषण यह देख कर

भगवान् से युद्ध के लिये चल पड़े। उनका शकुन सावधान करते हैं परन्तु वे तो काल के वश में हो गये थे:—

असगुन होहिं अमित भयकारी, गनहिं न मृत्यु विवस सबझारी
(आरण्य० दो० १७-७)

दशकंधर ने बहन के अपमान को सुन कर सीता जी का हरण कर लिया। भगवान् संसारियों की भांति नारी के विरह में दुःखी हुए। घूमते २ शबरी को सनाथ करके सुग्रीव से मित्रता की। पवनसुत हनुमान माता जानकी का पता ले आये। भगवान राम रावण का नाश करने के लिये चल पड़े। उस समय शकुनों द्वारा विभिन्न लोगों को भिन्न सूचना मिल रही है:--

हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुंदर सुभ नाना॥
जासु सकल मंगल यह कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना वैदेही। फरकि बाम अंग जनु कहि देही॥
जोई जोइ सगुन जानकिहि होई, असगुन भयऊ रावनहिं सोई
(सुन्दर० दोहा० ३४-४.५.६.७)

इसी प्रकार रावण के विनाश की सूचना निम्न चौपाइयों में वर्णित शकुनों द्वारा मिलती है:—

सोचहिं सब निज हृदय बिचारी। अपसगुन भयऊ भयंकर भारी

*            *            *

मंदोदरी सोच उर बसेउ। जब ते स्वप्नपुर महि बसेउ॥
(लंका० दो० १३-२,६)

मेघनाद का वध सुन कर रावण परम क्रुद्ध हो कर चला। उस समय भी अशकुन रावण को सूचित करते हैं:--

अति गर्व न गनइ न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हात ते।

भट गिरत रथते बाजि गज चिक्करत भाजहिं साथ
गोमाउगीध कराट षट रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥
(लंका० दो० ७७ छंद)

चलत होहिं अति असुभ भयंकर, बैठहिं गीध उड़ाहिं सिर
(लंका० दो० ८५-१)

रण-भूमि में राघवेन्द्र राम बारंबार दशाशन का सि काट रहे हैं परन्तु वे फिर नये हुए जा रहे हैं। यह दे कर सर्वत्र चिन्ता व्याप गई। त्रिजटा ने यह समाचार म जानकी को दिया। वैदेही को अतीव दुख हुआ परन्तु मं करने वाले शकुनों ने धीरज बन्धाया:—

जब अति भयउ बिरह उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु
सगुन बिचारि धरी मनधीरा। अब मिलिहहिं कृपालु रघु
(लंका० दो० ९९-२,३)

और जब रावण की मृत्यु निकट आई तो:—

असुभ होन लगे विधि नाना। रोवहि षर सृकालु बहु ना
बोलहि षग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहं तहं के
दस दिसि दाह होन अति लागा, भएउ परव विन रवि उप
मंदोदरि उर कंपित भारी। प्रतिमा रचहिं नयन मग वारी
(लंका० दो० १०१-७ से १

लंका का राज्य विभीषण को सौंप कर भगवान अयोध्या लौट पड़े। अवधि का अन्तिम दिन जान कर भ जी को बड़ा सोच है परन्तु शकुन कुछ और ही कह रहे हैं:

सगुन होहि सुन्दर सकल मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगमन जनाव जनु नगर रम्य चहुं फेर।

* * *

भरत नयन भुज दक्षिन फरकहिं बारहिंबार।
जानि सगुन मन हरष अति लागे करन बिचार॥
(उत्तर काण्ड का पूर्वार्द्ध)

भगवान् राम आये। चारों तरफ प्रसन्नता का राज्य हो गया। तीनों भुवन के स्वामी सिंहासन पर बैठने जा रहे थे उस समय भी शकुन पीछे नहीं रहे:—

होहिं सगुन शुभ बिबिध बिधि बाजहिं गगन निसान।
पुर नर नारि सनाथ करि भवन चले भगवान्॥
(उत्तर० दो० (ख))

इस प्रकार 'मानस' में शकुन-विचार को देख कर हम कह सकते हैं कि तुलसीदासजी को शकुन शास्त्र का भी अच्छा ज्ञान था।

शिक्षक, शिक्षार्थी और पालकों के लिए
समान रूप से उपयोगी
विचार पूर्ण
शैक्षणिक मासिक
शिक्षा प्रदीप
अवश्य पढ़िये
पत्र व्यवहार का पता:—
व्यवस्थापक,
शिक्षा प्रदीप,
हवेली निकट सिटी कोतवाली
भोपाल (म. प्र.)

# जीवन और चिंतन

लेखक- आर-एस- शास्त्री

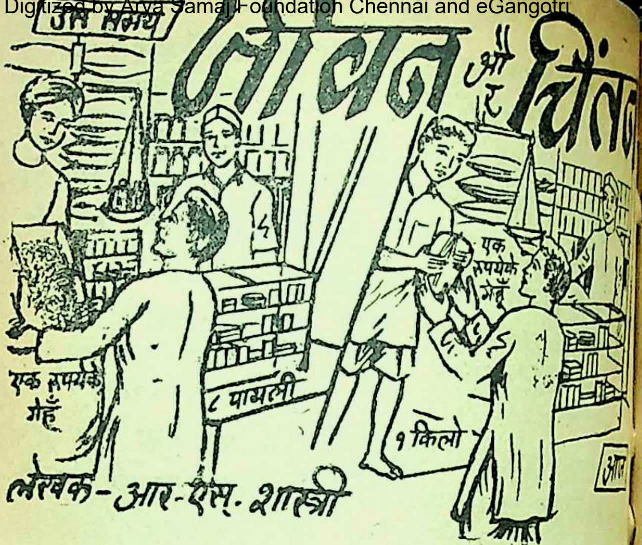

"वाह री दुनियां, वाह रे जमाने"

यह पंक्ति किसी फिल्म की है, पर इस का अर्थ, यह नहीं कि मैं कोई 'फिल्मरिव्यू' लिख रहा हूं, परन्तु मैं जब तरक्की की बात सुनता हूं, तो मुझे यह लायन बड़ी सहायक सिद्ध होती है।

कहते हैं कि 'सादा-जीवन हो और चिन्तन ऊंचा हो तो वह ऊंचाई जीवन को ऊंचा ले ही जाती है।' पर यदि चिन्तन तो हो सादा अर्थात् निम्न स्तर का तथा जीवन हो ऊंचा तो वह जो चिन्तन है वह इस जीवन को भी ले डूबेगा। पर यह बात जिस कलाकार ने लिखी है, वह ; उसके जीवन भर का अनुभव था। संभव है उसे आज के मनुष्यों के संबंध में कोई संकेत न रहा हो?

आज की तरक्की का जवाब नहीं। जो लोग हरिद्वार के लिए भी घर वालों से ऐसे मिल कर जाते थे, मानो कुरुक्षेत्र में जा रहे हों, तथा वापसी की कोई उम्मीद न हो।

पर आज नहाते बम्बई में हैं, भोजन दिल्ली में करते हैं और शाम की सैर श्रीनगर के गार्डन में। ठीक हम वही हैं, जिनके लिए कभी यात्रा एक विकट समस्या थी, पर अब? इस का हल बहुत सुन्दर हो गया।

शिक्षा के बारे में क्या कहना? ऐसे भी इसी भारत में प्रदेश है। जहां एक टेलीग्राम एटम की तरह इस धरती को हिला देता था, लोग रो रोकर जब अधमुए हो जाते थे, तब तब कहीं पढ़ने वाला मिलता था, वही रोने वाले किसी शुभ समाचार से नाच उठते थे सौ में यदि कोई एकाध-चार श्रेणी पढ़ लेता था, तो गांव में उसकी गिनती आज के पी. एचडी. से कम नहीं होती थी। पर आज आदमी तो आदमी यहां के पशु भी साहित्यिक भाषाओं के विद्वान हैं। यह समस्या भी खूब हल हुई।'

अब आता है प्रश्न धन का? इसके लिये ईश्वर झूठ न बुलवाए, तो मुझे याद है कि एक जागीरदार जब बरसात में अपनी पैन्शन लेने जाते थे। तो उस समय उस देश में मोटर न होने के कारण उनके साथ कई घोड़े जाते। पर वह घोड़े रुपयों के लिए होते थे। यह बात कितनी हंसी की है कि कुछ हजार रुपये घोड़ों पर लाद कर लाये जांय, पर उस समय अस्सी रुपये का वजन एक सेर में होता था और

आज एक सेर भर नोटों से यदि वह हजार हजार वाले हों तो पता नहीं कितने वैसे गांव खरीद लिये जांय ?

उस समय आठ रुपए था स्कूल मास्टरों का वेतन जो कि उस समय एक रुपये का अनाज बोरे में आता था। पर आज रूमाल भी खाली रह जाता है।

सौ रुपये का नोट भारत में अभी भी विशाल सम्पत्ति मानी जाती है। ऐसे भी लोग हैं जिन्होंने कुल मिला कर भले ही हजारों रुपये खर्च किए हों, पर सौ का नोट एक बार उनके हाथ आया हो। ऐसे लोग न केवल भारत में ही नहीं बल्कि विदेशों में भी भारी संख्या में हैं।

पर कई सौ के नोटों को लेने और देने वाले भी भूखे सोते देखे गए हैं, पर वे निरीह लोग, दो पैसे का तम्बाकू खरीदने वाले कभी भूखे नहीं सोते थे, भले ही साग-सब्जी उबाल कर खांय। पर पता नहीं आज जमाने को क्या हो गया ?

यात्रा-शिक्षा और घर की समस्याएँ ही जीवन की मानों पूर्ती हैं। इन सब के बाद आता है, ज्ञान का प्रश्न ? क्यों कि 'अथातो ब्रह्म जिज्ञासा' केवल सन्यासियों का ही प्रश्न नहीं बल्कि यह प्रश्न मानव मात्र का है, चाहे वह किसी भी देश-वेश या काल का हो।

तो उसका हल भी कम नहीं हुआ। पहले जब लोगों को वैराग्य होता था। तो वे घोर जंगलों में, आश्रमों में जा कर

किसी त्याग मय विभूति के दर्शनार्थ, अपने सभी प्रियजनों से नाता तोड़ जाते थे और ज्ञानी बनकर मोक्ष प्राप्त करते थे। पर आज ? ज्ञान की घोरवर्षा हो रही है। कोई गली ऐसी नहीं जहां मन्दिर, गुरुद्वारा, मस्जिद, गिर्जाघर और सत्संग हॉल न हों, इस पर भी रोज एक न एक सुधारक कोई न कोई चण्डाल को लिए नजर आयगा। अब जिज्ञासु को पत्नी-बाल-बच्चों से भी सम्बन्ध विच्छेद करने की आवश्यकता नहीं, बल्कि स्वयं हिमालय के शिखर और रोम की पहाड़ियों से सुधारक चल कर घर में ही ज्ञान दान कर सकते हैं।

मैं सोचता हूं तरक्की का प्रश्न सब हल हो चुका है। फिर भी हमारी वह झोपड़ों वाली शांति इन महलों में क्यों काफूर हो गई ? मैं जिस बड़े आदमी को देखता हूं, वही रोग पीड़ित है। पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि यह समस्या बाकी रह गई हो ? इसका विस्तार तो इतना फैला है कि हर एक मील में कम से कम सौ डाक्टर जरूर फैले होंगे। फिर भी लोगों को नींद इन्जेक्शन से ही आती है।

मैंने इस हायतोबा की खोज के लिये बहुत सिर खपाया है, इसके लिये मैंने हर देश के, हर जाति के, हर वर्ग के और हर दिमाग के आदमियों से बात कर के देखी फिर मेरी समझ में यह आया कि आज सभी समस्याएं तो हल हो गई, पर हमारा जीवन क्यों आनन्द से शून्य हो गया ?

इसका यही समाधान है, कि जीवन को उन्नत बनाने वाले सभी साधन अपनाए, पर उसमें चिन्तन का रुख पलट गया।

इसी प्रसंग में एक विद्वान् की उक्ति स्मरण आती। उसने दूसरे विषय पर लिखा है कि:—यदि कोई मनु सारी दुनिया को मारना चाहे तो दुनिया के सब शस्त्रास्त्र भी कम पड़ेंगे, पर यदि उसे आत्महत्या करनी हो, तो ए ब्लेड ही पर्याप्त है, इसी प्रकार यदि मनुष्य दुनि पर अपने ज्ञान की छाप लगाना चाहे, तो उसके लिये सारे धर्म-प्रथा कम ही पड़ेंगे। पर यदि उसे स्वयं ज्ञान से साक्षा-त्कार करना हो तो एक लायन किसी भी एक धर्मग्रंथ पर्याप्त है।

इसी उक्ति से मिलती जुलती एक बात आज के ज में भी लागू होती है कि यदि हम दुनियां का मन र जायेंगे तो धरती के सब साधन भी कम होंगे, पर अपने म को रखना केवल दलील भर पर भी निर्भर है।

बस यही एक बात आज का मनुष्य भूल कर बै चिन्तन में अपने जीवन की शान्ति तथा स्वस्थता को खो बैठा। आज हम यह नहीं सोचते हैं कि हमारा जीवन लाखों से अच्छा है। पर यह जरूर सोचते हैं कि अभी भी हम हजारों लोगों की दृष्टि से छोटे ही हैं। यही छोटाई प्राप्त सुख से लाभ नहीं लेने देती है। तभी तो एक सौ रुपए वाला भी वही स्वप्न देखता है जो कि अब तक कोटिपति का भी अधूरा ही है। यही चिन्तन मनुष्य के मन में घृणा और ईर्ष्या को जन्म देता है जिस से मनुष्य के मन में छोटों के लिये नफरत और ऊपर वालों से ईर्ष्या बन कर इतने ब तरक्की के जमाने में भी शांति को खतरा किये बैठी है।

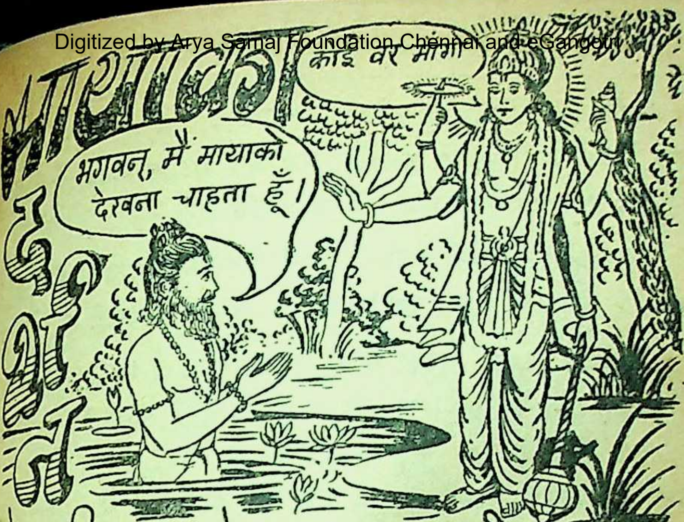
मायाका दर्शन
कोई वर माँगो
भगवन्, मैं मायाको देखना चाहता हूँ।

लेखक-श्री. श्याम मनोहर व्यास, एम्. एससी.

प्राचीन काल की घटना है।

कौसल देश में एक बुद्धिमान् और धर्मात्मा ब्राह्मण रहते थे। इनका नाम गाधि था। वैराग्य होने से ये बन्धुबान्धवों से पृथक होकर वन में तप करने लगे। वनके बीच में एक सरोवर था। गाधि उसके जल में खड़े रहकर तप करने लगे। कठोर तपस्या से भगवान् विष्णु प्रसन्न हुये और उन्हें प्रत्यक्ष दर्शन दिये। गाधि ने उन्हें प्रणाम किया। आशीर्वाद देकर भगवान् ने कहा:--"वत्स! कोई वर माँगो।"

गाधि बोले:--"भगवन्! मैं जीवों को मोहित करनेवाली माया के दर्शन करना चाहता हूँ।"

भगवान् ने कहा:--"अच्छा! अब तुम माया को देखोगे और बाद में उसका त्याग करोगे।"

वरदान देकर भगवान् चक्रपाणि अन्तर्धान हो गये। एक दिन सरोवर में डुबकी लगाकर गाधि बाहर निकले तो सहसा वे अघमर्षण मन्त्र को भूल गये।

तत्पश्चात् उन्हें लगा कि उनका स्थूल शरीर छूट गया है और वे सूक्ष्म शरीर में हैं। उनके सम्बन्धी रो रहे हैं।

उनका स्थूल शरीर जला दिया गया है। सूक्ष्म शरीर में स्थित गाधि ने अनुभव किया कि उन्होंने भूत मण्डल प्रदेश के एक गांव में एक चाण्डाल स्त्री के यहां जन्म लिया है। गाधि माया के सम्मोहन से यह सब देख रहे थे। चाण्डाल माता-पिता ने उनका नाम कटंज रखा। युवा होने पर कटंज ने एक चाण्डाल कन्या से विवाह किया। कटंज शिकार में निपुण था। कटंज के चाण्डाल कन्या से कई पुत्र हुये।

एकबार भूतमण्डल में भयंकर महामारी फैली। कटंज का सारा परिवार उस महामारी के प्रकोप में समाप्त होगया। अब निःसहाय भूखा प्यासा कटंज घूमता हुआ कीर देश की राजधानी श्रीमतीपुरी में पहुँचा। उस समय कीर देश का राजा मर चुका था। वहां के नियम के अनुसार राजा के मरने पर एक हाथी छोड़ दिया जाता था। हाथी जिस किसी को अपनी पीठ पर बैठा लेता वही उस देश का राजा होता।

जब कटंज वहां पहुँचा तो हाथी सजे हुये नगर में घूम रहा था। नगर के निवासी राजमार्ग पर खड़े थे। सब यह देखने के लिये उत्सुक थे कि हाथी किसे अपनी पीठ पर बैठायगा।

अकस्मात् हाथी कटंज के पास आया और उसे सूँड से उठाकर अपने मस्तिष्क पर बैठा लिया। नगर में कटंज की जयजयकार होने लगी। नगारे व बाजे बजने लगे। नवीन नरेश का शहर में धूमधाम से स्वागत हुआ।

कटंज ने अपना नाम व जाति छिपाली। उसने अपना नया नाम गवल बताया और जाति क्षत्रिय बताई। राज भवन में वह सुख से रहने लगा। अनेक रानियों का उसे सुख मिला। आनन्दपूर्वक उसने आठ वर्ष तक कीर देश पर राज्य किया।

एक दिन नगर में चाण्डालों का कोई उत्सव था। बाहर गांवों से भी चाण्डाल आये थे। राजा भी राजमार्ग पर खड़ा यह उत्सव देख रहा था।

उस भीड़ में कटंज के ग्राम का एक चाण्डाल भी था। उसने कटंज को पहचान लिया।

उसने कहा:—"कटंज तुम यहां कहां ?"

कटंज ने उसे रोकने का काफी प्रयास किया पर आखिर में भेद खुल ही गया।

मंत्री, सामन्त व रानियों सबको विश्वास होगया कि उनका नरेश चाण्डाल है और उसका असली नाम कटंज है। सारे राजभवन व नगर में हाहाकार मच गया। ब्राह्मणों की

एक बड़ी सभा हुई। सब विचार करने लगे कि चा द्वारा अपवित्र हुये उनकी शुद्धि कैसी हो?

अन्त में एक बड़ी चिता बनाई गई। प्रायश्चित स्व नगर के ब्राह्मण, मंत्री, रानियां व राजसेवक सब उस चिता में कूद पड़े।

कटंज ने सोचा कि सब मेरे ही कारण हुआ है अतः भी उनके साथ चिता में कूद पड़ा।

उधर कटंज का शरीर समाप्त हुआ और इधर सरो में डुबकी लगाये गाधि ब्राह्मण की चेतना लौटी। अब अपना मन्त्र स्मृत हो आया।

उन्हें कौतुहल हो रहा था कि उन्होंने यह सब देखा?

गाधि ब्राह्मण को वन में कुछ दिन और बीत गये। एक दिन उनके पास एक परिचित ब्राह्मण आये। वे शरीर से कृश थे।

गाधि ने उनसे पूछा:—"ब्राह्मणदेव! आप शरीर से इतने निर्बल कैसे होगये?"

ब्राह्मण ने कहा:—"कुछ दिनों पूर्व मैं कीर देश में गया। वहां के राजा का अतिथि भी रहा। पर बाद में पता चला कि राजा तो चाण्डाल है। प्रायश्चित स्वरूप हजारों ब्राह्मण चिता में प्रवेश कर गये। अपने को दोषी मानकर

राजा ने स्वयं भी चिता में प्रवेश किया। शुद्धि के लिये तब मैं तीर्थराज प्रयाग को गया और कई चान्द्रायण व्रत किये। अनेक व्रत रखने से मेरा शरीर निर्बल होगया है।"

अब गाधि को बड़ी आत्मग्लानि हुई। वे घूमते घूमते भूतमण्डल प्रदेश में पहुँचे। जिस घर में उन्होंने जन्म लिया था उसको उन्होंने पहचान लिया।

लोगों से कटंज का वही चरित्र सुनने को मिला जो उन्होंने अनुभव किया था। वे कीर देश में भी पहुँचे। वहां भी राजा गवल व उसके कार्यों का वही वर्णन सुनने को मिला जो उन्होंने अनुभव किया था।

गाधि ने विचार किया कि इधर तो मैंने दो डुबकी लगाई और उधर कीर देश के चाण्डाल ने आठ वर्ष तक राज्य किया। यह बात सत्य कैसे है? यह सब क्या था?

यह जानने के लिये गाधि का चित्त व्याकुल होगया और वे अमरकण्टक तीर्थ में पहुँचे। वहां एक गुफा में तप करने लगे। बारह वर्ष तक कठोर तप किया। केवल पानी व वायु भक्षण पर निर्भर रहे। तब भगवान् नारायण ने प्रसन्न होकर उन्हें दर्शन दिया।

गाधि ने अपनी शंका के निवारण के लिये उनसे कहा। विष्णु बोले:—"ब्राह्मण! यह सब माया थी। तुमने माया का दर्शन करना चाहा मैंने करा दिया। माया असत्य है। ब्रह्म ही सत्य है। जो आज है कल नहीं है वह माया है। जो आज

भी है और कल भी है वह सत्य है। ईश्वर व आत्मा है। जगत् कल्पना है। संकल्पमात्र है। अब उठो अपने का निवारण करो और नित्य नैमित्तिक कर्म करो।"

यह कहकर भगवान् विष्णु अन्तर्धान होगये। संशय मिट गया। अब पुनः वे भगवान् की आराधना लगे।

बोलो भगवान व उनके भक्त की जय।

'सम्पदा'

हिन्दीमें अर्थ शास्त्रीय साहित्य का पर्याय बन गई है।
सम्पदा हिन्दी की सबसे पुरानी आर्थिक पत्रिका है।
सम्पदा मेंसार्वजनिक और निजी उद्योग विषयक संतुलित
और युक्ति संगत दृष्टिकोण
सम्पदा के विशेषांक अनुपम होते हैं।
सम्पदा के स्थायी स्तंभ-योजना, कृषि, उद्योग,
परिवहन, कोयला, बिजली, बैंक, बीमा, सर्वोदय आदि
सम्पदा विविध राज्योंद्वारा शिक्षालयों के लिए स्वीकृत है
सम्पदा छात्रों, कालेज के प्राध्यापकों के लिए आर्थिक
विश्व कोष है।
ज्ञान वर्द्धक, नवीनतम आर्थिक जानकारी से युक्त
के आज ही ग्राहक बनिये। वार्षिक मूल्य ८ रु. ५० न.
नमूनांक के लिए ६० न. पै. भेजें।
व्यवस्थापक—सम्पदा २८/११ शक्ति नगर दिल्ली।

# दो शहीद

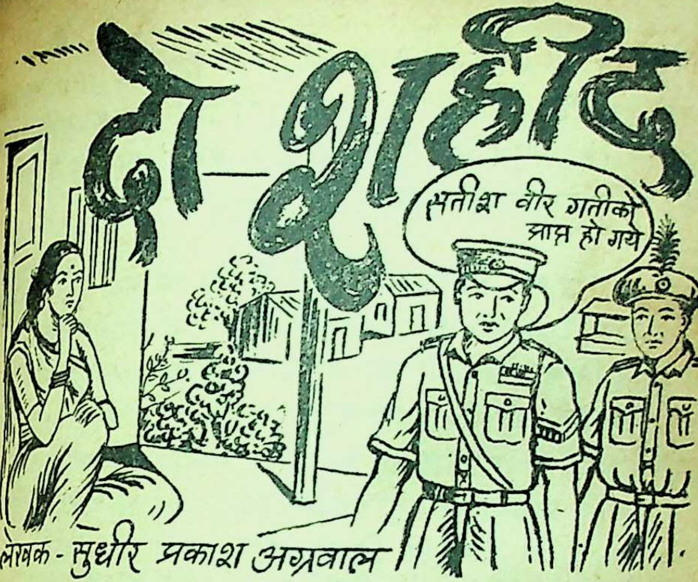
सतीश वीर गतीको प्राप्त हो गये

लेखक - सुधीर प्रकाश अग्रवाल

"भाभी ! भाभी ! !" सतीश दौड़ता हुआ आंगन में आकर पुकारने लगा। घर की स्त्रीयां समझ गई, कि वह क्यों चिल्ला रहा है ? भाभी भी समझ गई । तभी तो चौके से ही मीठे स्वर में वह बोल उठी—"हां, हां ! भीतर चले आओ न।"

सतीश आतुरता से चौके में प्रवेश करता हुआ बोला—"भाभी बड़े जोर की भूख लगी है। कुछ खिलाओगी।" माधुरीने देखा रमेश चप्पल पहने ही चौके में आ गया है। वह बोल उठी, "जाओ सतीश बाबू ! आपने तो अंग्रेजी पढ़ अपना धर्म ही खो दिया है। मां देखेगी तो क्या कहेगी ?"

"ओह ! आई एम वेरी सॉरी ! नहीं, नहीं भाभी तुम नहीं समझी होगी कि मैंने क्या कहा है ? इसका अभिप्राय है कि मुझे बहुत खेद है। समझी भाभी !" सतीश ने पैरों की तरफ देखते हुये कहा।

माधुरी तो देहात के प्रांगण में पल कर बड़ी हुई। यही पूर्ण रूप से शहरी-जीवन के रंगों से रंगी न थी। मुश्किल से पत्रादि लिख लेती थी वह भी हिन्दी में ही। सतीश के मुंह से निकला अंग्रेजी-वाक्य क्या वह खाक समझती ? उसके लिये यह तो उपहास ही था। वह कभी इस उपहास का बुरा नहीं मानती थी। बुरा मानती भी तो कैसे, एकही देव था, वह भी हँसमुख मिलनसार। यह तो प्रकृति का नियम ही है कि हँसमुख व्यक्ति चंचलता के सागर में हमेशा गोते लगाता रहता है। तभी तो उसके मित्र उसके बिना रह नहीं सकते थे। हमेशा स्वयं हँसता एवं दूसरों को हँसाता रहता। शान्त रहना तो उसे भाता ही नहीं था।

अब धीरे-धीरे भाभी शहरी रंग में बदलती जा रही थी। सतीश से माधुरी इंग्लीश भी पढ़ने लगी। सतीश से छेड़-छाड़ करना तो अब कुछ उसके लिये रह ही न गया था।

सतीश के बोलते ही वह उसका उत्तर इस प्रकार से देती कि सतीश सकपका जाता। एक दिन इंग्लीश पढ़ाते समय सतीश ने माधुरी से पूछा, "भाभी ! अब तो तुम इंग्लीश खूब अच्छी तरह पढ़ने लगी हो ?"

"हां!" माधुरी ने स्लेट पर लिखते हुये कहा।

"तो देखना, तुम्हारा धर्म भी न नष्ट हो जाये।" सतीश ने बदला लेते हुये कहा। "क्या हर्ज है? फल को फल देखकर रंग पकड़ता है।" माधुरी ने सतीश की आंखों में आंखें डालते हुये कहा और मुस्करा दी।

किन्तु सतीश को उन, माधुरी के नेत्रों में कुछ और ही दिखाई पड़ा एव वह चुप हो गया। उस दिन की पढ़ाई वहीं समाप्त हो गई। आगे पढ़ाई उसी प्रकार से होती रही जिस प्रकार से पहले होती थी। परन्तु तबसे वह एक विलक्षण उलझन में एवं किसी चिन्ता में लीन रहने लगा।

माधुरी के इस एक साधारण से अभिनय ने सतीश को बिल्कुल बदल दिया, एक अजीब सी समस्या उसके मस्तिष्क पटल पर हलचल मचाने लगी। माधुरी पर नजर पड़ते ही वह मन से पूछ बैठता—"क्या भाभी, मुझसे प्यार करने लगी है?"

कुछ दिन व्यतीत हो गये। एक दिन मां एवं परिवार के सभी सदस्य किसी कार्य से बाहर गये हुये थे, केवल माधुरी ही घर पर थी। सतीश किसी कार्य से अन्दर गया, उसने देखा माधुरी किसी पत्रिका के पढ़ने में तल्लीन थी। उसके रूप को देखकर सतीश एकाएक रुक गया एवं माधुरी का पान उसकी आंखें बड़ी तल्लीनता से करने लगीं। इसी बीच सतीश के मुँह से एक शेर निकल पड़ा—"किसी ने ठीक ही कहा है—

देखा किथे तो चस्त निगाहों से बार-बार,
जब तक शराब आये, कई दौर हो गये।......

इसको सुनकर माधुरी क्रोध से मचककर उठ खड़ी और उसी जोशमें कह बैठी—"छीः ! इस दुष्कर्म को देखने तुम्हारे जैसे का मुँह देखना भी अपराध है।" और वह रो पड़ी

दूसरे दिन माधुरी के कमरे में एक पत्र पड़ा था—

'देवी भाभी !'

तुम ठीक कहती हो। मेरा मुंह देखना एक बड़ा भा अपराध है, मैं अपराधी हूं। सुना है हर पाप का प्रायश्चि हो सकता है। आज मैं वही करने जा रहा हूं। क्या तु अपने सतीश को क्षमा कर दोगी ?

—पापी सतीश

माधुरी सोच रही थी सतीश क्या प्रायश्चित करेगा ! उसकी आंखों से लुढ़क २ कर कपोलों को गीला कर रहे

सतीश के चले जाने पर प्रलय मच गई। नगर का को कोना छान डाला गया। परन्तु सतीश न मिला। समाचार पत्रों में भी उसका चित्र छपवाया गया एवं उसके अकस्मात् खो जाने की खबर भी प्रकाशित की गई।

माधुरी ने भय के कारण कुछ बताने का साहस न कि सब प्रयत्न करने के पश्चात् भी सतीश न मिला एवं प्रकार दो वर्ष की लम्बी अवधि समाप्त हो गई।

एक दिन माधुरी अपने कमरे में थी या नीचे रसों में कार्य कर रही थी। एकाएक किसी ने द्वार खटखटा माधुरी ने दौड़ कर द्वार खोला और मेजर रमेश एवं ले

नेन्ट अशोक को अपने सामने खड़ा पाया। माधुरी उस समय सकपकाई किन्तु बाद में सचेत हो बोली, 'आइये! अन्दर आ जाइये!'

बाद में सैनिक अफसर बोले—'हमें यह कहते हुए अत्यंत खेद हो रहा है कि मि. सतीश अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध करते हुए वीर गति को प्राप्त हुये!'

इतना सुनते ही माधुरी धम से वहीं कालीन पर गिर पड़ी। जिसकी आवाज से मां दौड़ी हुई आई। जब समाचार विदित हुआ तो सिर थाम कर बैठ गई। रोना सुन कर पड़ोसी भी आ गये। मेजर रमेश बोले—'बहन! मुझे खेद है कि इस समाचार को लाने के लिये मैं ही चुना गया। मैं आपको रोने से मना नहीं कर सकता एवं आपको यह शुभ अवसर देखने को मिला जब कि आपके परिवार का एक सदस्य मातृ-भूमि की रक्षा हेतु अपने को न्यौछावर कर हम लोगों का पथ-प्रदर्शक बन इस संसार से कूच कर गया। इसी की याद में हम एक वीर चक्र आप लोगों की सेवा में भेंट करेंगे।' इतना कह कर वे दोनों सैनिक चले गये।

पड़ोसियों ने बड़ी कठिनता से मां को धीरज दिलाकर शांत किया। माधुरी बेहोश कालीन पर पड़ी हुई अनर्गल-प्रलाप कर रही थी। बड़ी कठिनता से उसे होश में लाया गया। महेश को आफिस से बुलाया गया। सतीश के भाई को जब यह दुखद समाचार विदित हुआ तो विस्मय से अवाक रह गया। उसकी आंखों में हर्ष और विषाद के मिले-जुले आंसू उमड़ आये तथा वह यही सोचता रहा कि सतीश

वीर था या उसके भाग्य में यही लिखा था। माधुरी की द
दिन प्रति दिन बिगड़ती जा रही थी।

महेश ने चिकित्सा में कोई त्रुटि न रहने दी। कि माधुरी भीतरी शोक से घुली जा रही थी। आखिर महेश ने उससे पूछा—'मैं ने रात को कई बार तुम्हें उल्टी-सीधी बातें करते सुना है, कि सतीश भैया मुझे क्षमा कर दो। मैंने तुम्हारा बहुत अहित किया है। क्या अपनी भाभी को क्ष नहीं करोगे ?'

'मुझे भी बताओ उसके घर छोड़ने का रहस्य क्या है?'

'कुछ दिन और धीरज रखिए, मैं सब कुछ बता दूंगी।'

इस प्रकार एक मास बीत गया। माधुरी की दशा पहले से भी अधिक विगड़ गई और अन्ततः वह दिन आ पहुं जिसकी शंका थी। माधुरी एक दिन प्रात:काल सदा के लि मीठी निद्रा में सो गई।

उस दिन देहली में सेना की परेड होने वाली थी। महेश सबसे बड़ा उपहार—'परम वीर चक्र' प्राप्त करने के लिये प्रधान सेना पति का आदेश पाकर दिल्ली गया हुआ था और घर पर सतीश की भाभी का शव मरघट को ले जाने के लिये तैयार रखा था।

सैनिकों को श्रद्धांजलि भेंट करने के लिये एक सैनिक गीत आलइण्डिया रेडियो से प्रसारित किया गया था—

'वतन की राह में वतन के नौजवां शहीद हो.......'

माधुरी की लाश कन्धों पर उठा कर लोग मरघट को

ओर लेजा रहे थे और जिस गली-मुहल्ले से वह गुजरते थे, वहां किसी न किसी घर से रेडियो द्वारा वही गीत सुनाई दे जाता-मानो भाभी के शव को श्रद्धांजलि अर्पित कर रहा हो जिससे ऐसा प्रतीत होता था माधुरी भी शहीदों में एक है।

महेश दूसरे दिन घर आया, तो उसकी सारी खुशियां समाप्त हो गई। वह सोच रहा था क्या का क्या हो गया......

मां ने उसके हाथों में एक कागज देते हुए कहा—'यह कागज बहू के तकिये के नीचे से निकला था।' उसने पढ़ा—"देवी भाभी! तुम ठीक कहती हो, मेरा मुंह देखना बड़ा भारी अपराध है, मैं अपराधी हूं। सुना है, हर पाप का प्रायश्चित हो सकता है। मैं वही करने जा रहा हूं। क्या तुम अपने सतीश को क्षमा कर दोगी।"—पापी सतीश

महेश के मुंह से अकस्मात् यह शब्द निकले—"ओह! यह बात थी।" परन्तु इसके आगे वह कुछ न समझ सका।

कागज की दूसरी ओर उसने देखा, तो लिखा था—

"मैंने उसे घर से निकाल दिया, क्यों कि वह मुझ से प्रेम करने लगा था। जिसे मैं कदापि सहन नहीं कर सकती थी।"

महेश ने अपने दोनों हाथों से सिर थाम लिया और हड़बड़ाया।

'वह भी शहीदों में अपना नाम अमर कर गई। उधर देवर को वहां भेज कर शहीद बनाया, इधर स्वयं उसके पीछे चल दी।'

और "परम-वीर-चक्र" उसकी आखों के सामने तेजी से घूमने लगा।

(गुरुदयालसिंह की कहानी के आधार से)

रामतीर्थ

(रामायण)
रामचरित मानस
टीकाकार:
योगीराज
श्री. उमेशचन्द्रजी

(गतांक से आगे)

एक लालसा बड़ि मनमाहीं,
सुगम अगम कहिजात सो नाहीं,
तुमहि देत अति सुगम गुसाई,
अगम लागि मोहि निज कदराई।

मेरे मन में एक बहुत बड़ी लालसा विद्यमान है। सुगम भी और अगम्य भी। इसीलिये वह बताते नहीं

रही है। हे भगवान् ! आप के लिये वह अत्यन्त सुगम (सरल) है—क्योंकि आप सर्वशक्तिमान् हैं। किन्तु अपनी असमर्थता को देखकर मुझे वह अगम (असंभव) प्रतीत हो रही है।

यथा दरिद्र विबुध तरु पाई,
बहु संपति मांगत सकुचाई,
तासु प्रभाव न जानै सोई,
तथा हृदय मम संशय होई।

जैसे कोई जन्मजात दरिद्र मानव विबुध तरु (कल्पवृक्ष) के नीचे पहुँच कर अधिक संपत्ति मांगते हुये संकोच का अनुभव करता है; क्योंकि वह उसके प्रभाव से भलीभांति परिचित नहीं होता; उसी तरह मेरा हृदय भी संशयग्रस्त बन रहा है।

सो तुम जानहु अन्तर्यामी,
पुरवौ मोर मनोरथ स्वामी,
सकुच बिहाय मांगु नृप मोहीं,
मोरे नहिं अदेय कछु तोहीं।

हे अन्तर्यामिन् ! वह सब आपको भलीभांति विदित है, अतः आप मेरी मनोकामना पूर्ण करें। (भगवान् बोले—)—संकोच त्याग करके जो कुछ तुम चाहते हो, मांग लो। मुझे तुम्हारे लिये कोई वस्तु अदेय नहीं है—अर्थात् जगत् में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं, जो मैं तुम्हें दे न सकूं।

दानि शिरोमणि कृपानिधि ! नाथ कहौं सत भाव,
चाहौं तुमहिं समान सुत, प्रभुसन कौन दुराव।

हे दानियों के शिरोमणि, कृपासिन्धु भगवान्! आ समक्ष अपना सच्चा मनोभाव प्रकट करता हूँ। मैं समान ही पुत्र की आकांक्षा रखता हूँ। भगवान् से बात के दुराव करने की आवश्यकता ही क्या है?

देखि प्रीति, सुनि बचन अमोले,
एवमस्तु करुणानिधि बोले,
आप सरिस खोजौं कहँ जाई,
नृप तव तनय होब मैं आई।

राजदम्पती का यह प्रेमभाव देखकर और उनके बहुमू बचन सुनकर करुणानिधि भगवान् ने कहा-'एवमस्तु'- ऐसा ही हो। आपके समान मैं कहां खोजता फिरूँगा। नृपवर मैं ही आपका पुत्र बनूँगा।

शतरूपहिं विलोकि कर जोरे,
देवि मांगु वर जो रुचि तोरे,
जो वर नाथ चतुर नृप मांगा,
सो कृपालु माहिं अतिप्रिय लागा।

इसके बाद शतरूपा को करबद्ध देखकर भगवान् उनकी ओर अभिमुख हुये और बोले— हे देवि! तुम भी अपनी रुचि के अनुसार वर मांग लो। शतरूपा कहने लगी—हे नाथ! परम बुद्धिमान् राजाने जो वर मांगा है, हे कृपालो! वह मुझे अत्यन्त प्रिय--रुचिकर प्रतीत हुआ है।

प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई,
यदपि भक्तिहित तुमहिं सुहाई,

तुम ब्रह्मादि सकल जगस्वामी
ब्रह्म सकल उर अन्तर्यामी ।

परन्तु हे प्रभो ! यहां मेरी बहुत बड़ी धृष्टता प्रकट हो रही है, यद्यपि भक्तहितकारी होने के नाते यह आपको रुचिकर होगी। आप ब्रह्मा आदि समग्र जगत् के स्वामी तथा प्रत्यक्ष ब्रह्म, सबके हृदय-सदन में निवास करनेवाले अन्तर्यामी हैं।

अस समुझत मन संशय होई,
कहा जो प्रभु प्रमाण पुनि सोई,
जे निज भक्त नाथ तव अहहीं,
जो सुख पावहिं, जो गति लहहीं।

ऐसा समझते हुये मनमें संशय का भाव उत्पन्न होता है। हे प्रभो ! आपने जो कुछ कहा है, वह सब प्रमाणभूत है-- सत्य है। हे नाथ ! आपके निजी भक्त हैं, वे जो सुखानुभूति करते हैं, जो गति प्राप्त करते हैं।

सोइ सुख सोइगति सोइ भगति, सोइ निज चरण-सनेहु,
सोइ विवेक, सोइ रहनि प्रभु, हमहिं कृपाकरि देहु ।

वही सुख, वही गति, वही भक्ति, वही स्वकीय चरणों में अनुराग-भाव, वही विवेकबुद्धि, वही रहन-सहन-जीवन-विधान हे प्रभो ! आप मुझे कृपा करके प्रदान करें।

सुनि मृदुगूढ़ रुचिर वर रचना,
कृपासिन्धु बोले मृदु वचना,

जो कुछ रुचि तुम्हरे मनमाहीं,
मैं सो दीन सब, संशय नाहीं।

शतरूपा की यह विनम्र, गूढ़ और सुन्दर सौष्ठव वाणी सुनकर कृपासिन्धु प्रभु कोमल बचन बोले--जो कु भी तुम्हारा मन चाहता है--तुम्हारे प्रियकर है, मैं वह स तुम्हें निस्सन्देह भाव से दे चुका हूँ।

मातु विवेक अलौकिक तोरे,
कबहुँ न मिटिहिं अनुग्रह मोरे,
वंदि चरण मनु कहेउ बहोरी,
अपर एक विनती प्रभु मोरी।

हे माता! तुम्हारा यह अलौकिक विवेक मेरे अनुग्र का बल पाकर कभी नहीं मिट सकेगा। पुनः मनुने चरण-वन्दना करके कहा--हे प्रभो! मेरी एक और निनय है। व यह कि--

सुतविषयक तव पद रति होऊ,
मोहिं बरु मूढ़ कहै किन कोऊ,
मणि बिनु फणि जिमि जल बिनु मीना,
मम जीवन तिमि तुमहिं अधीना।

लोकव्यवहार में पुत्ररूप मानकर भी आपके चरणों में मेरी भक्ति-प्रेम स्थिर रहे, भले ही मुझे कोई मूढ़ ही क्यों न कहे। जैसे मणि के विना सर्प और जल के बिना मछली का जीवन स्थिर नहीं रह सकता, उसी तरह मेरा जीवन भी आपके अधीन रहे।

अस वर मांगि चरण गहि रहेऊ,
एवमस्तु करुणानिधि कहेऊ,
अब तुम मम अनुशासन मानी,
बसहु जाइ सुरपति रजधानी।

यह वर मांगकर मनुने प्रभुके चरण पकड़ लिये, अतः करुणावरुणालय प्रभुने कहा--एवमस्तु--ऐसा ही हो। तुम्हारी यह सब आकांक्षाएँ सफल होंगी। अब तुम मेरे आदेश को मानकर सुरपति-राजधानी में--इन्द्रलोक में जाकर निवास करो।

तहँ करि भोग विशाल, तात गये कछु काल पुनि;
होइहौ अवध भुआल, तब मैं होब तुम्हार सुत।

वहां इन्द्रलोक में नाना प्रकार के विपुल भोगों को भोगकर कुछ ही समय के उपरान्त तुम अयोध्या--नरेश--अवधराज बनोगे, तब मैं तुम्हारे पुत्र रूप में जन्म ग्रहण करूँगा।

इच्छामय नर-वेश सँवारे,
होइहौं प्रकट निकेत तुम्हारे,
अंशन सहित देह धरि ताता,
करिहौं चरित भक्त सुखदाता।

इच्छामय मानव-वेशभूषा में मैं आपके घरमें अवतार धारण करूँगा। अंशों के रूप में विभक्त देह धारण करके मैं अपनी जीवन-लीला का विस्तार करूँगा, जो भक्तों को सुखदायक होगा।

जेहि सुनि सादर नर बड़भागी,
भव तरि हैं ममता मद त्यागी,
आदिशक्ति जेहि जग उपजाया,
सो अवतरिहि मोरि यह माया।

इस चरित को सुनकर परम भाग्यशाली जन ममता-मद आदि को त्यागकर अनायास जागतिक जीवन-लीला संवरण करेंगे। जो आदिशक्ति है और जिसने इस जगत् को उत्पन्न किया है, वह मेरी माया भी पृथ्वीतलपर अवतरित होगी।

पुरउब मैं अभिलाष तुम्हारा,
सत्य सत्य प्रण सत्य हमारा,
पुनि-पुनि अस कहि कृपानिधाना,
अन्तर्धान भये भगवाना।

मैं अपने संकल्प को वारंवार सत्य रूपमें घोषित करता हूँ कि मैं तुम्हारी अभिलाषाओं को पूर्णतः कृतार्थ करूँगा। वारंवार इस प्रकार का आश्वासन देकर कृपानिधि भगवान् अन्तर्धान हो गये।

दंपति उर धरि भक्ति कृपाला,
तेहि आश्रमहिं रहे कछु काला,
समय पाय तनु तजि अनयासा,
जाय कीन अमरावति वासा।

वे राजदंपतीने कृपालु भगवान् की भक्ति हृदय में धरकर उस आश्रम में कुछ समय व्यतीत किया और यथासमय अनायास शरीर त्यागकर अमर लोक-देवलोक में जाकर निवास किया।

यह इतिहास पुनीत अति, उमहिं कहेउ वृषकेतु,
भरद्वाज सुनु अपर अब, राम-जन्म कर हेतु।

यह अत्यन्त पावन इतिहास वृषकेतु—शंकरजी ने उमा को सुनाया। हे भरद्वाज! अब राम-जन्म का एक और कारण सुनो।

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी,
जो गिरिजा प्रति शंभु बखानी,
विश्वविदित इक केकय देशू,
सत्यकेतु तहँ बसै नरेशू।

हे मुनिवर! यह पुनीत पुरानी-पौराणिक बात सुनो, जिसे शिवजी ने गिरिजा को सुनाया था। एक केकय (आज का काश्मीर) नामक विश्वविख्यात देश है, जहां सत्यकेतु नामक राजा निवास करता था।

धर्मधुरन्धर नीतिनिधाना,
तेज प्रताप शील बलवाना,
तेहिके भये युगल सुत वीरा,
सब गुणधाम महारणधीरा।

वह सत्यकेतु राजा धर्मधुरन्धर था नीतिमान् था, तेजस्वी था, प्रतापी था, शीलवान् तथा बलवान् था। उसके दो वीर पुत्र उत्पन्न हुये, जो सब गुणों के राशि और महारणधीर थे।

राजधनी जो जेठ सुत आही,
नाम प्रतापभानु अस ताही,

अपर सुतहिं अरिमर्दन नामा,
भुजबल अतुल, अचल संग्रामा।

सत्यकेतु का जो राजधनी—राज्याधिकारी—उत्त
कारी ज्येष्ठ पुत्र था, उसका नाम प्रतापभानु था। द्वितीय
का नाम अरिमर्दन था, जिसकी भुजाओं में अपरिमित
था और जो संग्राम-भूमि में अविचल रूप से जूझता

भाइहिं-भाइहि परम समीती,
सकल दोष-छल वर्जित प्रीती,
जेठे सुतहिं राज्य नृप दीना,
हरि-हित आप गमन वन कीना।

दोनों भाई बड़ी सद्भावना और सुमेल के साथ रहते
और दोनों में छल-कपट के दोषों से रहित प्रेमभाव
राजा सत्यकेतु ने अपने ज्येष्ठ पुत्र प्रतापभानु को राज्याधि
कार सौंप दिया और स्वयं हृदय को भगवद्भक्ति से पाल
करने के लिये वनको प्रस्थान किया।

जब प्रतापरवि भयौ नृप, फिरी दुहाई देश,
प्रजापाल अति वेदबिधि, कतहुं नहीं अघलेश।

जब प्रतापरवि—प्रतापभानु राजा राजगद्दी पर बैठा, त
समग्र देश में दुहाई फिरी—सभी लोग उसकी दुहाई दे
लगे। वेदाज्ञा के अनुसार वह विधिवत प्रजा का पाल
करता था, पाप कहीं लेश मात्र को नहीं था।

नृपहितकारक सचिव सुजाना,
नाम धर्मरुचि शुक्र समाना,

सचिव सयान, बन्धु बलवीरा,
आप प्रतापपुंज रणधीरा ।

उसका मन्त्री परम राजहितैषी और मतिमान् था। उसका नाम धर्मरुचि था और शुक्र के समान नीतिमान् था। मन्त्री बुद्धिमान् और बल-वीर्यवान् भाई था और और आप स्वयं भी परम प्रतापी और रणधीर था।

सेन संग चतुरंग अपारा,
अमित सुभट सब समर जुझारा,
सेन विलोकि राउ हरषाना,
अरु बाजे गहगहे निशाना ।

उसके अधीनस्थ विशाल चतुरंगिणी सेना थी, जिसके अन्तर्गत अगणित रणकुशल योद्धा थे। इस विशाल सेना को देखकर राजा प्रसन्न हो उठा और रणभेरी बजने लगी।

विजय हेतु कटकाइ बनाई,
सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई,
जहँ-तहँ परी अनेक लड़ाई,
जीते सकल भूप बरियाई ।

विजय की महत्वाकांक्षा को लेकर राजाने विशाल सेना खड़ी की और एक शुभ मुहूर्त साधकर सैनिक वाद्य बजाते हुई अपनी विजय-यात्रापर चल पड़ा। मार्ग में यत्र-तत्र अनेकशः लड़ाइयां लड़नी पड़ी और उसने सभी राजाओं को बलवत् जीत लिया।

सप्तद्वीप भुजबल वश कीना,
लै-लै दण्ड छोडि नृप दीना,
सकल अवनि-मंडल तेहि काला,
एक प्रतापभानु महिपाला ।

अपने बाहुबल से उसने भूमण्डल के सातों द्वीपों प प्रभुत्व स्थापित कर लिया । उस समय अखिल पृथ्वी-मण्डल का एक ही शासक था--प्रतापभानु ।

स्ववश विश्व करि बाहुबल, निज पुर कीन प्रवेश,
धर्म, अर्थ, कामादि सब, सेवहि समय नरेश ।

समग्र विश्व को बाहुबल से अपने अधीन कर प्रतापभानु राजाने अपने राजनगर में प्रवेश किया । वह धर्म अर्थ कामादि--सबका समय-समय में सेवन करने लगा ।

भूप प्रतापभानु बल पाई,
कामधेनु भई भूमि सुहाई,
सब दुखवर्जित प्रजा सुखारी,
धर्मशील सुन्दर नर-नारी ।

राजा प्रतापभानु के पुरुषार्थी बल का सहयोग पाकर धरती कामधेनु बनकर मुँहमांगी इच्छाएँ पूरी करने लगी । प्रजा सभी प्रकार के दुःखों से रहित सुखी थी और सभी स्त्री-पुरुष सौन्दर्य-दीप्त और धर्मपरायण थे ।

सचिव धर्मरुचि हरिपद-प्रीती,
नृपहित हेतु सिखावत नीती,

गुरु सुर, सन्त पितर महिदेवा,
करै सदा नृप सबकी सेवा।

उसके सचिव-मन्त्री का नाम धर्मरुचि था और भगवान् के चरणों में उसका अनुराग था। वह राजा को सदैव हितावह नीतिकी बातें सिखाता रहता था। वह राजा, गुरु, देवता, सन्त-महात्मा, पितर, ब्राह्मण आदि सबकी सदैव सेवा करता था।

भूपधर्म जे वेद बखाने,
सकल करै सादर सुख माने,
दिन प्रति देइ विविध विधिदाना,
सुनै शास्त्र वर वेद पुराना।

वेदों में जैसे राजधर्म का निरूपण किया है, तदनुसार वह राजा प्रसन्नतापूर्वक अपना राजकार्य सम्पादित करता। वह प्रतिदिन अनेक प्रकार से दान-पुण्य करता रहता था और शास्त्रीय ग्रन्थों तथा वेद-पुराण का श्रवण करता था।

नाना वापी कूप तड़ागा,
सुमन-वाटिका सुन्दर बागा,
विप्रभवन सुर-भवन सुहाये,
सब तीरथनि विचित्र बनाये।

अनेकशः वापी (बावड़ी), कुएँ, तड़ाग, मनोहर पुष्पवाटिकाएं और बगीचे, ब्राह्मणों के निवास-गृह तथा सुन्दर देवालय सभी तीर्थ स्थानों में राजाने बनवाये, जिन्हें देखकर आश्चर्यचकित होना पड़ता था।।

जहँ लगि कहे पुराण श्रुति, एक-एक सब याग,
बार सहस्र-सहस्र नृप, किये सहित अनुराग।

वेद और पुराण ग्रन्थों में जिन-जिन यागों का अनु
आवश्यक कर्तव्य कहा गया है, वे सब राजाने सहस्रों
प्रेमपूर्वक संपन्न किये।

हृदय न कछु फल अनुसन्धाना,
भूप विवेकी परम सुजाना,
करै जो धर्म कर्म-मन वाणी,
वासुदेव अर्पित नृप ज्ञानी।

इन सब सदनुष्ठानों के उपलक्ष्य में राजाने कि
प्रकारके फलका अनुसन्धान नहीं किया। वह परम विवेक
और ज्ञानवान् था। कर्म,-मन--वाणी से वह ज्ञानी राजा
भी धर्मकार्य करता था, वह सब भगवान वासुदेव को समर्पि
कर देता था—कृष्णार्पण कर देता था।

चढ़ि वर वाजि वार एक राजा,
मृगया कर सब साजि समाजा,
विन्ध्याचल गंभीर वन गयऊ,
मृग पुनीत बहु मारत भयऊ।

एक बार वह प्रतापभानु राजा सुन्दर घोड़ेपर सवा
होकर और मृगया--शिकार का सरंजाम सजाकर विन्ध्याच
के गंभीर—सघन वन में गया और वहां बहुतेरे पवित्र मृ
मारे।

फिरत विपिन नृप दीख वराहू,
जनु वन दुरेउ शशिहिं ग्रसि राहू,
बड़ विधु नहिं समात उर माहीं,
मनहुं क्रोधवश उगिलत नाहीं।

उस वनमें घूमते हुये राजाने एक वराह--शूकर को देखा। उसके दांतों को देखकर ऐसा जान पड़ता था, मानो राहु चन्द्रमा को मुँह में दबाकर वनमें आ छिपा है। चन्द्रमा बड़ा होने से उसके हृदय में समा नहीं रहा है। फिर भी, वह क्रोधवश उसे उगलता नहीं।

कोल कराल दसन छबि गाई,
तन विशाल पीवर अधिकाई,
घुरघुरात यह आहट पाये,
चकित विलोकत कान उठाये।

उस कोल (शूकर) के दांत अत्यन्त कराल (तीक्ष्ण) छबि प्रकट कर रहे थे। उसका शरीर विशाल और मोटा था। वह आहट पाकर घुरघुराने लगा और कान उठाकर चकित भावसे देखने लगा।

नील महीधर शिखर सम, देखि विशाल बराह,
चपरि चले हय सुटकि नृप, हांक न होय निबाह।

नील महीधर (काले पर्वत) के शिखर के समान उस विशाल शूकर को देखकर राजाने अपने घोड़े को ऐड़ लगाकर कोड़ा मारा और बराह को ललकार दी कि अब तू बच नहीं सकता।

आवत देखि अधिक रव बाजी,
चला वराह मरुत गति भाजी,
तुरत कीन नृप शर--संधाना,
महि मिलि गयौ विलोकत बाना।

बाजि (अश्व) को भारी आवाज के साथ आते देखकर वह वराह वायु की गति से भाग खड़ा हुआ। यह देखकर राजाने तुरन्त शर--सन्धान किया—धनुषपर बाण चढ़ाया वह बाण देखकर वराह पृथ्वी में विलीन हो गया।

तकि ·तकि तीर महीश चलावा,
करि छल सुअर शरीर बचावा,
प्रकटत -दुरत जात मृग भागा,
रिसवश भूप चलेउ संग लागा।

राजाने ताक--ताक कर उस वराहपर बाणों की बौछार की, और शूकर भी वारंवार छलपूर्वक—चालबाजी से अपने शरीर की रक्षा करता रहा। वह मृग (पशु) कभी प्रकट होकर और कभी अप्रकट रूपमें भागता रहा और राजा भी क्रोधावेश में उसका पीछा करने लगा।

गयौ दुरि वन गहन वराहू,
जहां नाहिं गज--बाजि निवाहू,
अति अकेल वन बहुत कलेशू,
तदपि न मृग--मग तजे नरेशू।

इस प्रकार वह वराह भागते हुये बहुत दूर गहन वन में जा पहुँचा, जहां हाथी, अश्व आदि हेतु गम्य नहीं था। राजा

वहां अकेला हो गया और वनके भयंकर कलेश उसके सामने खड़े हो गये। फिर भी, राजाने उस वराह का पीछा नहीं छोड़ा।

कोल विलोकि भूप बड़ धीरा,
भागि पैठ गिरि-गुहा गँभीरा,
अगम देखि नृप अति पछताई,
फिरे महावन परेउ भुलाई।

जब वराह ने देखा कि राजा अत्यन्त धीरवीर और साहसी है, तब वह भागकर पर्वत की गंभीर---गहरी गुहा में घुस गया। इधर राजा भी इस अगम्य वन को देखकर पश्चात्ताप करते हुये निराश भाव से लौट पड़ा; किन्तु उस बीहड़ बन में वास्तविक मार्ग भूलकर भटकने लगा।

खेद-खिन्न तर्षित क्षुधित, राजा बाजि समेत,
खोजत व्याकुल सरित सर, जल बिनु भयौ अचेत।

अपने अश्व सहित राजा खेदित दुर्बल और क्षुधा-पिपासा से व्याकुल होकर नदी, सरोवर आदि की खोज करने लगा। जलके बिना वह अचेत (निर्जीव) सा हो गया था।

फिरत विपिन आश्रम इक देखा,
तहं बस नृपति कपट मुनिवेषा,
जासु देश नृप लीन छुड़ाई,
समर सेन तजि गयौ पराई।

उस घोर वनमें भटकते हुए राजाने एक आश्रम देखा। वहां एक अन्य राजा कपट मुनिका वेश बनाकर—ढोंग रच

कर रहता था। जिसका देश (राज्य) प्रतापभानु राजाने छी लिया था, वह युद्ध और सेना को छोड़कर भाग गया था।

समय प्रताप भानु कर जानी,
आपन अति असमय अनुमानी,
गयौ न यह मन बहुत गलानी,
मिला न राजहिं नृप अभिमानी।

वह पराजित राजा प्रतापभानु का समय बलवान जानकर और अपना कुसमय मानकर उसके मनमें बहुत ग्लानि और लज्जा हुई। फिर भी वह इतना अहंकारी था कि वह प्रतापभानु राजा को जाकर मिला नहीं।

रिस उर मारि रंक जिमि राजा,
विपिन बसै तापसके साजा,
तासु समीप गमन नृप कीना,
यह प्रतापरवि तब तेहि चीना।

अन्तर के रोष भावको मन-ही-मन पीकर वह राजा तपस्वीके वेशमें वनमें रहने लगा। प्रतापभानु राजा उसी कपटी मुनि वेशधारी राजा के पास पहुंचा, तब उस तपस्वीने पहचान लिया कि यही भानुप्रताप है।

राउ तृषित नहिं सो पहिचाना,
देखि सुवेश महामुनि जाना,
उतरि तुरंग ते कीन प्रणामा,
परम चतुर न कहेउ निजनामा।

राजा प्रतापभानु प्यास से व्याकुल होने के कारण उसे पहचान नहीं सका, उसका दिव्य वेश देखकर उसे महात्मा

समझा। घोड़े से उतर कर उसने मुनिको प्रणाम किया, किन्तु वह परम बुद्धिमान् था, अतः उसने अपना नाम नहीं बताया कि मैं कौन हूं।

भूपति तृषित विलोकि तेहि, सरवर दीन दिखाय,
मज्जन पान समेत हय, कीन नृपति हरषाय।

उस छद्मवेशी मुनिने राजाको अत्यन्त पिपासाकुल देखकर सरोवर–तालाब बता दिया। वहां जाकर प्रतापभानुने अपने अश्वसहित स्नान किया और जल पिया, जिससे उसका मन प्रफुल्ल और स्वस्थ हुआ। —क्रमशः

पढ़िए
सेवांजलि
SAMARTHI
सेवांजलि

साहित्य, कला व
कर्मचारी कल्याण
की पत्रिका

स्वय ग्राहक बनें तथा
मित्रों को ग्राहक
बनावें।
वार्षिक चन्दा ३)

लिखें
पो० बाक्स-१५२
पटना-१

# महात्मा गांधी

ले० प्रतिभा जैन

भारत की पुण्य भूमि में कितने ही महापुरुषों ने ज लिया। राम, कृष्ण, गोविन्द और शिवा, महावीर, बुद्ध व चैतन्य जैसी-महान विभूतियों ने इस वसुन्धरा पर ज लेकर हमारे जीवन में मानवता एवं देवत्व के ऊंचे आद को ओतप्रोत किया। इन सभी महापुरुषों ने भारत के गौ को बढ़ाया। जिस युग में हमारा जन्म हुआ है। उस युग महानतम व्यक्ति ने भी भारत में जन्म लिया और केव भारत को ही नहीं अपितु संसार की पीड़ित मानवता क सत्य व अहिंसा का अमोघ शस्त्र देकर विश्व को शांति क पाठ पढ़ाया। वह विश्व वन्द्य हमारे राष्ट्रपिता महात्म गांधी थे। ऐसा सौभाग्य हमारे देश को ही प्राप्त है कि उस एक ऐसी दिव्यात्मा को जन्म दिया, जिसकी गणना सदि तक संसार के श्रेष्ठतम पुरुषों में की जायगी।

महात्मा गांधी का जन्म २ अक्टूबर १८६९ को काठिय बाड़ के अन्तर्गत पोरबन्दर नामक स्थान में एक सम्भ्रान्त और कुलीन परिवार में हुआ था। उनके पिता का स्व

गांधी राजकोट रियासत के दीवान थे। उनकी माता पुतली बाई बड़ी साधु और धर्म निष्ठ स्वभाव की महिला थी, गांधी जी पर माता की धार्मिकता का बड़ा प्रभाव पड़ा। उनकी मां गीता का पाठ प्रतिदिन करती थी। और यही कारण है कि गांधीजी अन्त तक गीता के भक्त रहे। व्यवहारिक कुशलता गान्धी जी को अपने पिता से विरासत के रूप में मिली थी।

भारत में स्कूली पढ़ाई समाप्त करके वे बैरिस्टरी पढ़ने विलायत गये। वहां पर आपको शाकाहारी होने के कारण बहुत कठिनाई उठानी पड़ी क्यों कि मांस और शराब का वहां बोलबाला था। भारत लौट कर आपने अपनी वकालात आरम्भ की। एक मुकदमे की पैरवी के लिये उन्हें दक्षिणी अफ्रिका जाना पड़ा। वहां पर भारतीयों की दुर्दशा देखकर गांधी जी को बड़ा दुःख हुआ। भारत गुलाम देश था इसलिये गोरे लोग भारतीयों के साथ पशुओं जैसा व्यवहार करते थे। गोरों और कालों के भेद ने गांधी जी के हृदय में यह ज्वाला उत्पन्न की जिसने समय आने पर गोरे लोगों का भारत से सदा के लिये विस्तर गोल करने को विवश कर दिया।

एक बार गांधी जी प्रथम श्रेणी के डिब्बे में रेल में सफर कर रहे थे। उनके पास फर्स्ट क्लास का टिकट भी था। कुछ देर बाद उस डिब्बे में कुछ गोरे आ गये। गोरे एक हिन्दुस्तानी को उसमें बैठा हुआ देख कर बड़े नाराज हुये। उन्होंने गांधी जी से उतर जाने को कहा, मगर गांधी जी ने

कहा—'मेरे पास टिकट है।' इस पर गोरे और भी क्रुद्ध हु और उन्होंने गांधी जी का सामान प्लेटफार्म पर फेंक दि और उन्हें धक्का देकर डिब्बे से बाहर निकाल दिया। ऐ था अंग्रेजों का भारतीयों के साथ दुर्व्यवहार। इस घटना से गांधी जी दबे नहीं। उन्होंने गम्भीरता पूर्वक इस अन्याय का सामना करने का उपाय सोचा। मगर उनके पास शस्त्र तो थे नहीं तब किस प्रकार अन्याय से लड़ते? बड़े सोच-विचार के बाद गांधी जी को एक उपाय सूझा, हिंसा को अहिंसा से जीतो। उन्होंने अमोघ सत्याग्रह का शस्त्र अपनाया। अफ्रीका में जब अंग्रेजों ने सुना कि एक भारतीय अहिंसा से हिंसा को जीतना चाहता है तो उन्हें इस बा पर हंसी आई।

दक्षिण अफ्रीका में गान्धी जी जनप्रिय हो ही चुके थे फिर भारतीय राजनीति मानों उनका स्वागत करने को तैयार खड़ी थी। शीघ्र ही गांधी जी भारतीय स्वतंत्रता के वीर सैनानी बन गये और शनैः २ भारतीय राजनीति के अग्रदूत बन गये। १९१४ के महायुद्ध में भारत को स्वतंत्रता देने की शर्त पर गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार को सहयोग दिया किन्तु इस सहयोग के फल स्वरूप अंग्रेजों ने भारत को रौलेटएक्ट और जलियांवाला कांड आदि ही पुरस्कार दिया।

सन् १९२० ई. में गांधी जी ने असहयोग और खादी आन्दोलन का सूत्रपात किया। १९२२ में गान्धी जी जेल में बन्दी कर लिये गये। १९२४ में दिल्ली में भयंकर हिन्दू-मुसलिम

दंगा हो गया। इसके प्रायश्चित में गांधी जी ने २१ दिन का उपवास किया। १९२६ में सुधार योजना के लिये साइमन कमीशन की नियुक्ति हुई, इससे देश में बड़ा असन्तोष फैला गांधी जी ने अपनी अनोखी सूझ-बूझ से इस असन्तोष को दूर किया। १९३० में आपने नमक कानून के विरुद्ध सत्याग्रह आरंभ किया कि नमक जैसी दैनिक प्रयोग में आनेवाली वस्तु पर हम कर नहीं देंगे। हमें अधिकार है कि हम स्वयं नमक बनायेंगे। ६ अप्रैल को गांधी ने स्वयं पैदल चलकर दंडी यात्रा की। फलस्वरूप सारे देश की जनता नमक बनाने निकल पड़ी। अंग्रेजों की समझ में ही न आता था कि यह क्या हो रहा है? जब अंग्रेज सरकार एक मसला हल करती थी तब तक गांधी जी एक नये ढंग का आन्दोलन शुरू कर डालते। उन्होंने सारे देश का दौरा किया। हर प्रान्त में उन्होंने नेतृत्व पैदा किया। उनका नारा था—बहिष्कार करो विदेशी वस्तुओं का–विदेशी वस्त्रों का। उनका कथन था हरेक अपना कपड़ा आप धोये, अपने वर्तन स्वयं साफ करें, अपने कमरे में आप झाड़ु बुहारी करे। गरीब किसान, नेता वकील, व धनी में कोई फर्क नहीं।

द्वितीय महायुद्ध १९३९ में प्रारम्भ हुआ। इसमें एक ओर धुरी राष्ट्र थे और दूसरी ओर ब्रिटिश-अमरीका। तत्कालीन कांग्रेस के अन्दर इस बात को लेकर काफी मत भेद शुरू हो गया कि युद्ध काल में कांग्रेस को क्या करना चाहिये? गांधी जी ने इसी समय जनता को एक नया नारा दिया—"करो या मरो" इस नारे के कारण सारे देश में क्रांती फैल

गई । गान्धी जी तथा उनके सहयोगी नेता गिरफ्तार क लिये गये । परन्तु जनता में अतुल उत्साह था । अपने दे को स्वतंत्र करने के लिये । धीरे धीरे ब्रिटिश सरकार के पांव उखड़ने लगे । १९४५-४६ में युद्ध समाप्त होने पर दे में चेतना की एक नई लहर दौड़ने लगी । लाल किले आजाद हिन्द फौज के सैनिकों पर अंग्रेजी सरकार मुकदमा चला रही थी । गान्धी जी ने आजाद हिन्द फौज के सैनिकों को राष्ट्रीय सेनानी घोषित करके जनता को स्वाधीनता के लिये कटिबद्ध किया । विवश होकर अंग्रेज सरकार को उन सैनिकों को छोड़ना पड़ा । गांधीजी अपने प्रण पर अड़े थे । 'अंग्रेजों को भारत छोड़ना होगा ।' अन्त में अन्तःराष्ट्रीय परिस्थितियों और अपनी दुर्बलताओं के कारण अंग्रेजों को देश छोड़ना पड़ा । भारत के इस महानतम सपूत के गम्भीर प्रयत्नों के बाद १५ अगस्त १९४७ को भारत अंग्रेजों की दासता के बन्धन से मुक्त हो गया ।

भारत के स्वाधीनता-संग्राम में गांधी जी का भोग महान था । देश की स्वाधीनता के साथ ही अंग्रेजों की कुचाल से विभाजन भी हुआ जिसमें साम्प्रदायिकता की आग भड़क जाने से बड़ा भयानक नर संहार हुआ । परन्तु गांधी जी अपनी पूरी शक्ति से इस घरेलू आग को बुझाने में जुट गये । उन्होंने नोआखली की पैदल यात्रा की । हिन्दू-मुसलमानों के घर-घर जाकर प्रेम का मन्त्र फूंका, ढाई पसली का दुर्बल शरीर लेकर निहत्थे, निःसंकोच इस महानायक ने मनुष्य के भीतर के शैतान को चुनौती दी और उसी में अपने प्राणों की आहुति भी दे दी । मुसलमानों पर गांधी जी की

प्रेरणावाणी का जादू चलगया था, परन्तु तभी हिन्दुओं के भीतर का शैतान जागा। उन्होंने राम-रहीम की एकता को घोषित करने वाले इस राष्ट्र नायक की हत्या कर डाली। ३० जनवरी सन् १९४८ को सांझ के पांच बजकर ५ मिनट पर उस महामानव के प्राण पखेरू नाथुराम गोडसे नामक हिन्दू की पिस्तौल की गोली से हमेशा २ के लिए उड़ गये। इतने बड़े महापुरुष को मारना पशुता के अतिरिक्त और कुछ नहीं कहा जा सकता मगर इससे क्या? गांधी जी मरकर भी अमर है। युग पुरुष नेहरू के शब्दों में 'प्रकाश-बुझा नहीं, क्यों कि वह तो करोड़ों व्यक्तियों के हृदय को प्रकाशित कर चुका था।' ईसा के लिए जूडाज हमेशा तैयार रहते हैं।

गांधी जी इस युग की महान विभूति थे। वह हमें स्वतंत्र कर गये, समस्त विश्व को शांति और सत्य का मार्ग बता गये तथा भारत की कीर्ति को विश्व में फैला गये। वे अमर हो गये और भारत की कीर्ति को अमर कर गये। वे इस युग के सबसे महान् पुरुष थे। शारीरिक गठन के नाते वह जरूर दुर्बल थे, परन्तु वे अपने लक्ष्य से अच्छी तरह परिचित थे तथा उन्हें अपने आत्म बल पर अगाध विश्वास था। उन्होंने शताब्दियों से सोये हुए भारत को जागृत किया था। देश में आत्म सम्मान एवं स्वतंत्रता की लहर दौड़ाई थी। भारत को गुलामी की जंजीरों से मुक्त कराने का पुरा श्रेय आपको ही है। भारत की सूखी नसों में नवीन रक्त का संचार करने वाले आप ही थे। आप भारत के हृदय सम्राट थे

और चिरकाल तक रहेंगे। आपकी अन्तर आत्मा
दलित कण-कण में व्याप्त है। उस महामानव को
वर्ष बीत गये। अभी हम उसकी महत्ता की केवल एक
पासके हैं। वह तो युग युग की विभूति थी। उसके
बनाये गये मार्ग पर चल कर ही देश बड़ा बन सकेगा।
जी के नेतृत्व की सबसे अधिक प्रशंसनीय चीज तो यह है
अंग्रजों तक ने उनके नेतृत्व की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा
और आज तो सारे विश्व में गांधीजी के बाद
नेतृत्व को मान्यता मिलनी शुरू हो गई।

हां,
सुरुचिपूर्ण
स्थायी
सत्साहित्य
के
श्रेष्ठ
प्रकाशन
'तुलसीदल'
को
स्मरण
रखिये।

# तुलसीदल

* अमृतबिन्दु
* आध्यात्मिक
* संजीवनी बूटी

* 'तुलसीदल' अमृत बिन्दु है। जीवनसे
जगतसे क्षुब्ध तथा जन जन के प्रति
मानवको इस अमृत बिन्दु की अपेक्षा है।

* 'तुलसीदल' आध्यात्मिक दीप है। भौतिक
और स्वार्थ परता के इस अधकार पूर्ण
दिग्भ्रान्त जनजीवन के लिए इस आध्यात्मिक
दीपकी आवश्यकता है।

* 'तुलसीदल' संजीवनी बूटी है युगके
एवं घोर अनाचारसे अस्त म्रियमाण मानवता
लिए यह संजीवनी बूटी चनिवार्य है।

व्यवस्थापक-तुलसीदल मासिक
मानसप्रेस इब्राहिमपुरा भोपाल म. प्र.

(पृष्ठ १६ का शेष)

करने में तपस्वी राम को कितना त्याग, सहनशीलता, सहिष्णुता एवं त्यागमय जीवन का परिचय देना पड़ा इस ओर तो हमने ध्यान देने की कोशिश ही नहीं की। एक तपस्वी की जीवन साधना का विहंगावलोकन करने की अपेक्षा हमने मात्र उसकी सिद्धि की उपलब्धियां ही देखीं। शक्ति की सिद्धि हम भूल गये और इसका परिणाम हमें सदियों तक दासता के कारावास में रहकर चुकाना पड़ा। हम दास हो गये। हमारी विचारणा और मनोवृत्ति दासत्व से ग्रसित हो दीपावली की आतीशबाजी में हम विजय के गौरव को विस्मरण कर बैठे, और जो जाति विजय के गर्व में विजय की पूर्वपीठिका को भुला देती है वह अपनी स्वतंत्रता खोने में देर नहीं लगाती।

सदियों की दासता के पश्चात् हम पुनः विजयी हुए। किन्तु यह विजय पहली विजय के समान निरामय न थी। हम विजयी हुए दानव रावण को मार कर नहीं बल्कि उसे जीवित रख कर ही। खैर विजय तो मिली, चाहे कैसे ही क्यों न मिली हो? पराजित जाति के लिए, दासता के कारावास की काल-कोठरी में रहने वाली जाति को दूसरा चारा ही क्या था? अखण्डित देश खण्डित हुआ, अविकसित एवं पिछड़े हुए राष्ट्र को अपने जाल में फसाने के लिए विदेशी शक्तियां एक ओर अपना जाल फैलाने लगीं। दूसरी ओर मायावी रावण (चीन) का खूनी पंजा धीरे-धीरे हमारी सरहद पर बढ़ने लगा। शिवालय की शांति भंग हुई,

गिरिराज हिमालय की चोटियां लांघकर मानवता एवं का शत्रु अन्धेरे में निरन्तर आगे बढ़ते ही गया। और बढ़ा कि 'भाई-भाई' के नारे बाजी में हमारी पूरी सीमा ही कब्जा कर बैठा। उधर रावण का भाई खरदूषण (पा स्तान) भी अपने नापाक हाथों को आगे बढ़ाने लगा। स्वतंत्रता के नवजात शिशु का गला दबोचने के लिए। नन्दनी सीता (भारत माता) पुनः मायावी रावण के कारा में सहज ही बन्दनी हो बैठी। स्थिति यहीं तक सीमित र तो सम्भव था हम एक बार पुनः अपनी शक्ति-संगठन बात सोचते। किन्तु नव-अर्जित स्वतंत्रता की सफेद की साया में भ्रष्टाचार, नौकरशाही, कुनबापरस्ती और भतीजा बाद की घुन धीरे २ राष्ट्रीय शक्ति को क्षीण लगी। और आज स्थिति यहां तक पहुंच गई है कि एक हम अपने ही घर में अपने ही कुटुंबियों द्वारा शोषित रहे हैं। दूसरी ओर साम्राज्यवादी खूनी पंजे एवं ना इरादे हमारी ओर बढ़ रहे हैं। राष्ट्रीय संकट की विकट परिस्थिति में नीतिका एक श्लोक बरबस ध्यान अपनी ओर खींच रहा है:—

शस्त्र विद्या स्वभावेन, सर्वाभ्यो अस्ति महीयसी।
शस्त्रेण रक्षित राष्ट्रे, शास्त्रचिन्ता प्रवर्तते॥

अर्थात् शस्त्र विद्या स्वभाव से ही सब विद्याओं में हैं, क्यों कि जब शस्त्र से देश सुरक्षित होता है तभी शास्त्र लोचना होती है।

कलिंग विजय से होने वाले रक्तपात से सम्राट अशोक का हृदय इतना द्रवित हो उठा कि उन्होंने भविष्य में राज्य-विस्तार के लोभ से लड़ाई करना हमेशा के लिए बन्द कर दिया। और जीवन-पर्यन्त लड़ाई नहीं की, किन्तु अहिंसा धर्म को स्वीकारने के पश्चात् भी अशोक ने अपनी शक्ति छिन्न-भिन्न नहीं होने दी। वास्तविकता तो यह है कि उन्होंने शक्ति को भी सर्वोपरि महत्व दिया। गुप्त काल के स्वर्णयुग होने का श्रेय उनकी शक्ति हीनता में नहीं है बल्कि शक्ति के संचय में है। यदि उनमें शक्ति न होती तो शक-हूण असमय ही इस राष्ट्र को पराभूत कर बैठते और भारत का इतिहास ही कुछ और होता। विश्व-इतिहास साक्षी है कि किसी भी राष्ट्र की उन्नति उसके शक्ति-संचय के युग में ही हुई है। निर्बल राष्ट्र अहिंसा का पालन नहीं कर सकता। यदि वैसा करता है तो संभवतः यह उसकी आत्म प्रवंचना ही समझी जायगी। आज के परिवेश में अमेरिका एवं रूस अहिंसा का सिद्धान्त विश्व के सामने रख सकते हैं क्योंकि अवसर आने पर वे शक्ति प्रयोग द्वारा राष्ट्रीय स्वतंत्रता एवं अखण्डता बनाये रख सकते हैं। निर्बल अहिंसा का मूल्य उत्तर-अशोक कालीन सम्राटों को भारी कीमत पर चुकाना पड़ा, इतिहास इसके लिए साक्षी है।

राष्ट्रपिता गांधी ने भी अहिंसा के सिद्धांत में शक्ति संचय को महत्वपूर्ण स्थान दिया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि यदि बिल्ली जो कि चूहे से शक्तिशाली है, चूहे को क्षमा करती है तो वह महत्वपूर्ण बात हो सकती है। किन्तु शक्ति-

हीन चूहा यदि यह ढिंढोरा पीटता फिरे कि मैंने बिल्ली क्षमा कर दी है तो यह हास्यास्पद एवं अविश्वसनीय हो सकती है। यह ठीक है कि हम शक्ति का प्रयोग हिंसा कार्यों के लिए न करें किन्तु शक्ति संचय तो अवश्य चाहि देश उन्नति के लिए शक्ति संचय परम आवश्यक है।

विजयादशमी का सन्देश यही है कि हम सबल शक्ति संचय करें। न किसी को दबायें। और न किसी दबें। मर्यादा पुरुषोत्तम राम की भांति हमें भी शक्ति पूजा करनी होगी, तभी हमारी देशीय प्रगति एवं राष्ट्रीय जीवन का उत्थान संभव है।

---

# वातायन

(अभिनव विचारों का साहित्यिक मासिक)

* वातायन में प्रकाशित कहानियाँ मानवीय संश्लेषण है

** वातायन में प्रकाशित कवितायें जन-मानस की भाषा है

*** वातायन में प्रकाशित निबन्ध चिंतन और अध्ययन के नवीन आधार हैं।

**** वातायन में प्रकाशित अन्य साहित्यिक विधाओं के स्थायी-स्तंभ नवीन आयामों के प्रतीक हैं।

वार्षिक ८)

प्रधान कार्यालय
५, डागा बिल्डिंग, बीकानेर

एक प्रति ७०

शाखा : २२, शिव ठाकुर लेन, कलकत्ता ७.

जिनका जन्मोत्सव सितम्बर में मनाया जाता है

# भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

ले० डा. गोपालप्रसाद 'वंशी'

बंगाल के विख्यात जगत-सेठ अमीचन्द के वंश में, उनकी पांच पीढ़ी के बाद, जिस बालक का जन्म हुआ, उसने उनकी वंश मर्यादा को भौतिक ऐश्वर्य से तो नहीं, अपनी साहित्यिक प्रतिभा से सदैव के लिये यशोज्ज्वल कर दिया। केवल ऐश्वर्य एवं वैभव से तो प्रायः सभी अपनी कृति की प्रभुता कुछ काल के लिए विश्व के हृदय में स्थापित कर जाते हैं, किन्तु जो ऐश्वर्य की दृष्टि से तबाह होकर साहित्यके वैभव से सम्मान्य होजाय, ऐसों की संख्या संसारमें कदाचित् बहुत कम होगी। श्री भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ऐसों ही में से एक थे। उनका जन्म काशी में भाद्रशुक्ल सप्तमी सं. १९०७ में, ९ सितम्बर, १८५० ई० को सोमवार के दिन प्रातःकाल हुआ था। इनकी माता का नाम पार्वती देवी था। इनके पिता बाबू गोपालचन्द्र हिन्दी के एक प्रसिद्ध कवि थे। पांच वर्ष की अवस्था में इनकी माता जाती रहीं और जब ये दस वर्ष के हुए तब इनके पिता परलोक सिधारे। ये जाति के अग्रवाल थे। पिता के मरने पर इनकी शिक्षा में अनेक बाधाएं आयीं। अतः इनकी शिक्षा-दीक्षा अधिक न हो सकी, पर स्वाध्याय एवं अपनी प्रतिभा के बल पर इन्होंने हिन्दी के सर्वतोमुखी विकास में अभूत पूर्व योग दान दिया। कविता, उपन्यास,

प्रहसन, गल्प, नाटक, पत्रकारिता इत्यादि के द्वारा ए भाव एवं भाषा, दोनों ही क्षेत्रों में महान् क्रांति की। वि श्रृंगार की गंदी एवं संकीर्ण नाली से हिन्दी कविता निकाल कर भारतेन्दु ने उसमें देशभक्ति और राष्ट्रीयता उदात्त स्वर फूंका। भारतेन्दु के पूर्व जो भाषा जन-जी से कोसों दूर हो गई थी, उसे उन्होंने जनता की ग्रीवा हार बनाया।

भारतेन्दु ने कविता की धारा को नये क्षेत्रों की ओ मोड़ा। नवीन धारा के बीच उनकी वाणी का सर्वोच्च स्व देश भक्ति का था। वे देश का कल्याण चाहते थे। स प्रथम उन्होंने भारत की दुर्दशा का चित्र खींच कर लोगों ध्यान आकृष्ट किया—

'रोवहु सब मिलि के आवहु भारत भाई।
हा! हा! भारत दुर्दशा न देखी जाई॥'

वस्तुत: भारतेन्दु ने अपनी स्वतंत्र कविताओं द्वारा दे की अतीत गौरव-गाथा, देश की वर्तमान अधोगति की क्षो मयी वेदना, भविष्य की भावना से जाग्रत चिन्ता आदि पुनीत भावों की अभिव्यक्ति की।

अपने सम्पूर्ण जीवन में वे अपनी जिस उत्कट प्रति तथा स्वतंत्र विचार-शीलता का परिचय दे गये, उस आभास उनके बचपन में ही मिल गया था। इसके द उदाहरण सामने हैं:—

जब इन के पिता 'बलराम-कथामृत' नामक ग्रंथ की रच

कर रहे थे, तब बालक हरिश्चन्द्र ने भी उनकी आज्ञा पाकर निम्न लिखित दोहे की रचना की थी:—

लै ब्योंड़ा ठाढ़े भये श्री अनिरुद्ध सुजान।
बाणासुर की सेन को हनन लगे भगवान्॥

पिता ने इस दोहे को सुन कर प्रमुदित हृदय से कहा था—'तू मेरा नाम बढ़ायेगा।' क्या आज यह कथन सत्य सिद्ध नहीं हो गया?

परन्तु इसके साथ ही एक और भी बाल्य-घटना हुई। एक बार जब इनके पिता तर्पण कर रहे थे, तब हरिश्चन्द्र प्रश्न कर बैठे "बाबूजी! पानी डालने से क्या लाभ?" धार्मिक पिता बा. गोपाल चन्द्र ने अपना सिर ठोंका और कहा—'जान पड़ता है, तू कुल बोरेगा।' क्या सचमुच उनका कुल डूब गया? यदि आज वे देख सकते कि उनका वही बालक उनके कुल की कीर्ति-कुमुदनी को विकसित करने वाला 'भारतेन्दु' है, तो वे फूले न समाते।

पहली घटना से उस समय जहां भारतेन्दु की शिशु-साहित्यिक प्रतिभा की विकासोन्मुख कली का परिचय मिला था, वहां दूसरी घटना से लौकिक परम्पराओं के प्रति उनकी सतर्क बुद्धि का।

भारतेन्दु जी को स्कूली शिक्षा विशेष नहीं प्राप्त हुई थी। उन्होंने जो कुछ भी सीखा, स्वाध्याय और देशाटन से सीखा। कहा जाता है कि वे प्रायः बीस-पच्चीस भाषाएं जानते थे। जिनमें बंगला, संस्कृत, अंग्रेजी और गुजराती भी हैं।

दस वर्ष की अवस्था में ही माता-पिता से वंचित जाने के कारण, अपने बड़े-बूढ़ों के स्नेह-संरक्षण में भावी जीवन का यथोचित पालन-पोषण, लालन-पालन हो सका। घर की मालकिन इनकी विमाता थीं। कहा है, इन पर इनकी विमाता का विशेष प्रेम नहीं था। वे साधारण आवश्यकताओं के प्रति भी उदासीन थीं। हालत में बाहर वालों को इनसे अनुचित लाभ उठाने सूझी।

बाल्यावस्था में माता-पिता का देहान्त हो जाने के ये स्वच्छन्द हो गये थे। इनका मन सदा चंचल रहता बचपन से ही ये विनोदी प्रकृति के थे। इन्हें देशाटन का खूब शौक था। पटना, प्रयाग, हरिद्वार क्षेत्र स्थानों को वे प्रायः जाया करते थे। छोटी उम्र में पिता मृत्यु हो जाने के कारण बालक हरिश्चन्द्र के कोमल पर असमय ही संसार की जिम्मेदारियों का पहाड़ आ पड़ा। इनके पिता अपने पीछे काफी धन-सम्पत्ति छोड़ गये थे। फलतः ये अपनी सम्पत्ति को अच्छी तरह संभाल न सके।

भारतेन्दुजी का व्यक्तित्व असाधारण था। इन की आकृति, स्वास्थ्य और सुन्दरता देखने लायक थी। इन की तरह विलक्षण पुरुष कम ही होते हैं। कद के कुछ और शरीर एकहरा था। ये न अधिक दुबले और न मोटे ही थे। आंखें छोटी पर सुन्दर और सुडौल थीं। कान बड़े थे। जिन पर घुंघराले बालों की लटें लटकती रहती थीं।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था में ये एक बार जगदीश--यात्रा को परिवार समेत गये हुए थे। जब इन लोगों का डेरा नगर के बाहर पड़ा, तब सभी लोग मिलने को आने लगे। उनमें एक महानुभाव ऐसे भी आये, जिन्होंने हरिश्चन्द्र जी को बिदा होते समय दो अशर्फियां दीं। कारण पूछने पर आपने यह फर्माया कि 'आप लड़के हैं, इन भेदों को नहीं जानते। मेरा कहना मानिये और इसे अपने पास रखिये, काम लगे तो खर्च कीजियेगा, नहीं तो फेर दीजियेगा।' मैं क्या आप से कुछ मांगता हूं ? आप जानते ही हैं कि आपके यहां बहूजी (विमाता) का हुक्म चलता है। यदि आपका जी किसी चीज को चाहा और उन्होंने न दिया, तो उस समय क्या कीजियेगा ?'

हरिश्चंद्र उनकी बातों में आ गये और दोनों अशर्फियां अपने पास रख लीं। ऋण लेने और उसे शाही तरीके से खर्च करने की आदत इनमें इसी समय पैदा हुई। आगे चलकर इसी कारण इनका जीवन आर्थिक कष्ट से परिपूर्ण हो गया, परंतु मन की बादशाहत और उदारता नहीं गई। इनके कुछ ऋणदाताओं ने इनकी सरलता से इतना नाजायज लाभ उठाया कि उन्होंने इनकी जायदाद में से एक का चार बनाया। इस पंद्रह वर्ष के किशोर बालक को ऋण की पहली आदत डालने वाले महाशय ने भी, उन दो अशर्फियों के बदले, आगे चलकर हैन्डनोट लिखवाया। फिर सूद दर सूद लगाते लगाते इनकी दस-पंद्रह हजार की एक हवेली ही ले ली।

परंतु लोगों के इस अनुचित लाभ उठाने में इनके इस की सरलता ही नहीं, बल्कि इनकी उदार निस्पृहता भी प कारण थी। इस सम्बन्ध में इनके वयस्क जीवन की ए घटना इस प्रकार है—

इन्होंने एक बार एक महाजन से एक कटर नाव और कुछ नकद रुपये लेकर तीन हजार की हुण्डी लिख दी थी। इनके बिगड़े दिनों में उसी ने सबसे पहले दावा कर दिया। यह मुकदमा अलीगढ़ विश्वविद्यालय के संस्थापक सर सैयद अहमद साहब सदरआला (जो उन दिनों काशी में न्यायाधीश थे) की कचहरी में था। उन्होंने प्रसिद्ध देश-हितैषी भारतेन्दु जी को इस कष्ट में देख कर इन्हें अपने पास बुलाकर बैठाया और पुछा कि 'आपने असल में इनसे कितने रुपये पाये?' भारतेंदु जी ने उत्तर दिया कि 'जितने रुपये मैंने लिखे, उतने पाये।'

इस उत्तर पर सदर आला साहब ने टेबुल पर हाथ पटक कर कहा कि 'बाबू साहब, आप भूलते हैं, जरा बाहर घूम आइये और समझ-बूझ कर जवाब दीजिए!' बाहर आने पर सभी लोगों ने समझाया, परंतु पुनः इजलास पर जाने पर आपने पहले ही जैसा उत्तर दिया।

भारतेंदु जी की बुद्धि जितनी कुशाग्र थी, हृदय उतना ही उदार और कोमल था। ये स्वभाव से ही अत्यन्त कोमल थे। किसी के कष्ट की कथा सुन कर ही उस पर इनकी सहज सहानुभूति जाग पड़ती थी, चाहे वह झूठी मक्कारी ही क्यों न हो। एक बार जाड़े की रात में कहीं ये बाहर

घूमने जा रहे थे। मार्ग में इन्हें एक दरिद्र सोता हुआ मिला जो जाड़े में ठिठुरा जा रहा था। इन्होंने उसी समय अपना दुशाला उतार कर उसे ओढ़ा दिया। इनके पास धन की कमी नहीं थी, किंतु उससे भी बड़ी चीज थी इनकी दानशीलता। जिसने अन्त में इन्हें दरिद्र बना कर छोड़ा। धन रहते कोई भी याचक इनके पास से खाली हाथ नहीं लौटा। अपनी कीमती से कीमती चीजें ये बिना किसी हिचक के दान कर देते थे। वास्तव में सत्यवादी राजा हरिश्चंद्र और भारतेंदु हरिश्चंद्र की दानशीलता में किसी प्रकार का अन्तर नहीं है। यदि दोनों में अंतर है तो इतना ही कि दोनों दो युगों में पैदा हुए थे। भारतेंदु जी को एक नाव बहुत प्यारी थी, उसे भी इन्होंने एक सज्जन को दे डाला था।

सम्वत १९२७ में भारतेन्दुजी आनरेरी मजिस्ट्रेट चुने गये। उन दिनों ब्रिटिश सरकार की इनपर विशेष कृपा रहती थी। परन्तु पीछे इनके राष्ट्रीय विचारों से सरकार चिढ़ गई और इन्हें संवत् १९३१ में इस पद को छोड़ देना पड़ा।

२७ सितम्बर १८८० ई. में 'सार-सुधानिधि' पत्र में भारतेन्दुजी के प्रिय मित्र रामशंकर व्यास ने यह प्रस्ताव किया कि बाबू हरिश्चन्द्रजी की सेवाओं के उपलक्ष में उन्हें 'भारतेन्दु' की उपाधि दी जाय। हिन्दी के तत्कालीन तीन विद्वान् लेखकों ने इस प्रस्ताव का हृदय से समर्थन किया। तभी से इनके नाम के साथ 'भारतेन्दु' शब्द का प्रयोग होने लगा। पीछे चलकर सरकार ने भी इसे स्वीकार कर लिया।

भारतेन्दु वैष्णव थे। वे पुष्टि सम्प्रदाय के कृष्ण-भक्त थे। उनकी कृष्ण संबंधी कविताएँ सूर के काव्यपर अवलंबित हैं। जिस दृष्टि से भी उसकी परख करने की चेष्टा करें उसमें वही विषय, वही भाषा, वही शब्द-योजना, वही भाव-भंगिमा है। पुनः भारतेन्दु समाज के दोषों से परिचित थे। उन्होंने समाज की समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न किया। भारतेन्दु ने प्रकृति का भी चित्र उतारा है, पर इसमें शुद्ध प्राकृतिक वर्णन का अभाव है। उनके प्राकृतिक चित्रण का कोई अवलम्ब नहीं। भारतेन्दु की कविता में खड़ी बोली और व्रजभाषा का सुन्दर संतुलन है। पर उनके काव्यों में प्रधानता व्रजभाषा की ही है। उन्होंने भावानुकूल शैली का आश्रय ग्रहण किया है। उनकी रचनाओं में अलंकार कहीं स्वाभाविक रूप में उतर पड़े हैं, कहीं कृत्रिम रूप में। सभी दृष्टियों से भारतेन्दु एक सफल कवि हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के महान् व्यक्तित्व की प्रधान विशेषता राष्ट्रीयता थी। इनके हृदय में देश-सेवा की लगन और धुन कम न थी। चाहे जैसा अवसर हो, भारतेन्दु अपने प्यारे देश को कभी नहीं भूलते थे। घूम-फिर कर इन्हें उसके पूर्व गौरव, वर्त्तमान हीन अवस्था और भविष्य का सपना आ ही जाता था और ये अपने गम्भीर विचारों को रोक नहीं पाते थे। जिन दिनों महात्मा गांधी की कांग्रेस-महासभा का जन्म भी न हुआ था, उन दिनों ही भारतेन्दु के जीवन का उद्देश्य देश को आजाद करना और देशसेवा करना हो चुका था। सच तो यह है कि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

एक साथ सब कुछ थे—कवि, नाटककार, उपदेशक, नेता इत्यादि।

हिन्दी के दुर्भाग्य से केवल ३५ वर्ष की अवस्था में ६ जनवरी, १८८५ ई. को उनका देहांत हो गया, पर इस अल्पकाल में ही उन्होंने हिन्दी की जो सेवाएँ कीं, वह कोई सैकड़ों वर्ष तक जीवित रहकर भी नहीं कर सकता।

आज भारतेन्दु इस विश्व में नहीं, किन्तु उनकी साहित्यिक प्रतिभा तथा सहृदयतापूर्ण उदारता आज भी अतीत के अन्तरिक्ष से उठ-उठकर उनकी कोई न कोई कहानी कह जाती है। वे स्वयं अपने लिये कह भी गये हैं—

'कहैंगे सबै ही नैन नीद भरि-भरि,
प्यारे हरिचन्द की कहानी रहि जायगी!'

अध्यात्म-पथ के साधकों को प्रेरणा देने तथा
सन्मार्ग पर ले जाने वाली वेदान्त-ज्ञान की
अनुपम मासिक-पत्रिका

**अखण्डप्रभा**

सितम्बर में प्रकाशित विशेषाङ्क अपनी
अमूल्य सामग्री के कारण सभी के लिए संग्रहणीय है।

चन्दा—
आजीवन १००)
वार्षिक ४)

—: कार्यालय :—
११२/२३४, स्वरूपनगर,
कानपुर—२

## यौगिक और प्राकृतिक चिकित्सा

# स्वानुभव

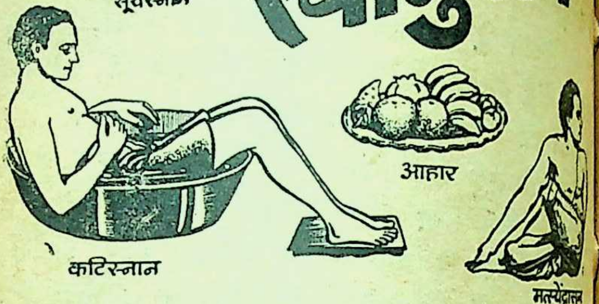

(१) मानव जीवनका स्वानुभव अन्य प्राणियोंसे निराल होता है। मेरा स्वानुभव नीचे लिखे हुये रूपमें मैं कहता हूं।

मैं एक १८ वर्षका विद्यार्थी अवस्थाका युवक हूँ। जांवश देखा जाये तो वर्तमान समयमें विद्यार्थी जीवनमें आरोग जीवी अल्प संख्यामें मिलेंगे। मुझे वीर्य दोषका बहुत शा था। देशी विदेशी उपाय योजना करके थक गया। आशा-निराशामय स्थितिमें तीन वर्षतक जीवन नौका एक शरीर चलानेका कठोर प्रसंग मुझे सहन करना पड़ा। समाज डरसे, किसी समय, किसी परिस्थितिमें स्वानुभवी दुःख परिणाम दबाके रखने पडते हैं। फिरभी मेरी प्रकृति, इन्द्रि शिथिलता, और दुर्बलता इतनी बढ़ी कि, देखनेवालोंके दि में और दृष्टिमें उसका पूरा प्रभाव दीखने लगा। सुदैव नवजीवनका सुप्रसंग कहो, कि बम्बई के समाचार पत्रों रामतीर्थ योगाश्रमकी जाहिरात पढ़कर, वहांपर इतवार

सबेरे १० बजे होनेवाले व्याख्यान को सुनने गया। आश्रमकी शांति, और आश्रमके संचालकजीका प्रवचन सुनकर प्रभावित हुआ, और श्रद्धा बैठी।

इलाज-और लाभ-दूसरेही दिनसे संचालकजीकी आज्ञानुसार आसन, आहार परिवर्तन, और आयुर्वेदिक औषधि उपचार पूर्ण श्रद्धा से शुरू किये। बराबर तीन महिनेतक इसीप्रकार योगिक उपचार और निसर्गोपचार चालू रखनेसे संपूर्णतः मेरा दर्द ठीक होगया। वजन बढ़ा, शक्ति बढ़ी, शंका, संकोच, नैराश्य विचार, अपचन, वीर्यदोष, हाथपैरका कंपन, मंद दृष्टि इत्यादि जो शिकायतें थीं दूर होगई। अब मैंने बराबर नवजीवनमें पदार्पण किया है। ऐसा आत्मविश्वास मुझे प्राप्त हुआ है। अब मैं मात्र आसन, प्राणायाम, और मानसिक इलाज वगैरे करता हूँ।

आपका

**सुहास वि. पंडित.**

कृष्ण कुंज तेजपाल स्कीम रोड, नं. ५.
विलेपार्ले पूर्व मुंबई–५७.

(२) योगका उपयोग मात्र शरीरके लिये ही नहीं है, किन्तु पारमार्थिक शांति और ज्ञान प्रकाश योगसे ही प्राप्त हो सकता है। जैसे कि श्री अरविन्द ने योगाभ्याससे पारमार्थिक शांति और ज्ञानका प्रकाश प्राप्त किया था। जगतमें श्री अरविन्दके माफक योग शिक्षाका प्रचार होता रहे यही शुभेच्छा।

भवदीय—

**श्री अडवानी के. वी.**

शिक्षक सिंधी हाईस्कूल मुलुंड बम्बई ८२.

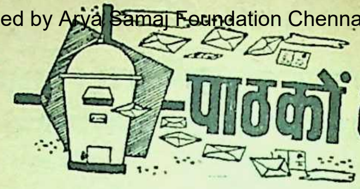

# पाठकों के अभिमत

(१) मेरीसमझ में नहीं आता है कि रामतीर्थ मासिक साहित्य का दृष्टिकोण रखकर अन्य प्रकाशन (मासिक) वाले क्यों नहीं प्रकट करते हैं। ऐसे साहित्य के आधार से मन के दुष्ट विचारों को पलटकर, नरकमय संसार को स्वर्गमय परिवर्तन कर सकते हैं।

सबका श्रेयाभिलाषी
**पं. द्विजेन्द्र भारती**
काठमांडु (नेपाल)

(२) रूप-लावण्यमय शरीर, परम-पवित्रमय मन और आत्मदर्शन के दर्पण रूप साहित्य का स्रोत बहाने वाली 'रामतीर्थ' मासिक पत्रिका मुझे बहुत पसंद आई।

शुभमंगलकांक्षिणी
**कुमारी विजया बळवंत जोशी**
पूना (महाराष्ट्र राज्य)

(३) उच्च कोटि के लेखकों के करकमलों से लिखी विभिन्न अभिरुचि को संतृप्ति करने वाले लेखों, गीतों से विभूषित 'रामतीर्थ' मासिक की उन्नति हम आत्मीय भावना से चाहते हैं।

अभिवृद्धि अभिलाषिनी,
**श्रीमती तिलोत्तमा, मा. महेता**
राजकोट (गुजरात स्टेट)

(४) जैसे पवित्र नीर से भरे हुए तालाब में मनमोहक एवं आंखों को प्रिय कमलों से अंतःकरण में आनंद बढ़ता है और स्थिर मालूम पड़ता है। यही हाल 'रामतीर्थ' मासिक

का है। एक बार अवलोचन से कुछ न कुछ उन्नति का मार्ग प्राप्त करेगा और अन्य जीवों का (पाठक) उद्धार के लिये मार्गदर्शक बनेगा।

शक्ति वर्धनाभिलाषी,
प्रोफेसर वामदेव सिद्धान्तालंकार विद्यावाचस्पति
कलकत्ता (पश्चिम बंगाल)

(५) मैं 'रामतीर्थ' का ग्राहक हूं अतः अपने विचार से मैं कहता हूं कि 'रामतीर्थ' जीता-जागता, चलता-फिरता एक नहीं कई डाक्टरों का गुण रखने के कारण यह एक अच्छा डाक्टर है। यह प्रत्येक रोगों का प्राकृतिक और उचित इलाज करता है।

भगवान् करे कि 'रामतीर्थ' का नाम संसार में दिन दूना रात चौगुना होवे।

वृद्धि अभिलाषी 'अरुण मोहन'
बक्सर शाहाबाद (विहार)

(६) मैं गरीब आदमी हूं। बहुत पुस्तकें मंगाकर पढ़ने की स्थिति नहीं है। रामतीर्थ मासिक से मुझे बहुत से ही लाभ हुए हैं। और हो रहे हैं। 'रामतीर्थ' आध्यात्मिक तथा बौद्धिक लोगों का पथ प्रदर्शक है। इसकी जितनी भी तारीफ की जाय उतनी कम है। इसके द्वारा कम पैसों में अधिक ज्ञान प्राप्त होता है। इन अंकों से मेरा जीवन बहुत ही सुधर गया। और सुधर रहा है। यह आध्यात्मिक और वैद्यक (जलचिकित्सक) की खान है। एक से एक वेदोक्त बातों पर इसमें लेख आते हैं। और मनुष्य के लिए यह अंक अज्ञान रूपी अंधकार को हरकर मोक्ष का उपाय बतलाता है।

आपका कृपाभिलाषी
बी. बी. भट्ट, पशु दवाखाना
चोटीला सुरेन्द्र नगर

# प्राकृतिक जीवन

ले. योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

[गतांक से आगे]

## आधुनिक युग और ग्राम्य जीवन

ग्राम्य जीवन का व्यापक अर्थ लेने से समुद्र तट वर्ती, सरोवर तटवर्ती, नदी के किनारे, पहाड़ों में बसनेवाले, कंदराओं में बसनेवाले, तीर्थक्षेत्रों के वासी, झील प्रदेश में रहनेवाले, घनघोर जंगल में निवास करनेवाले एवं प्रकृति के विशुद्ध वातावरण में सानन्द निजानन्द का अनुभव लेनेवाले ग्रामवासी ही कहे जावेंगे। जिस जल में सुर्यकिरणें पड़ती हों, जलाशय के समीपवर्ती प्रदेश गंदगीरहित हो, प्रवाहयुक्त जल हो, पवित्र मिट्टी, पत्थर आदि के साथ जल का संसर्ग हो, ऐसा जल पवित्र कहा जाता है।

## जल के लाभ

प्राकृतिक जीवन के साथ जल का घनिष्ठ संबंध है। जल से अन्न पाचन क्रिया अच्छी होती है, भूख बढ़ती है। अपानवायु छूटती है, डकार आते हैं। मल विसर्जन अच्छा होता है। मूत्र स्वच्छ रहता हो। भोजन करने के बाद पेट हल्का मालूम पड़ता हो तथा अन्य आरोग्यवर्धक गुण जिस जल में हों उस जल का सेवन उत्तम गिना जाता है।

## बम्बई में हाईकोर्ट तथा पारसी कुए का जल

बम्बई शहर में ऐसे अनेक भवन हैं जहाँ केवल कार्यालय और कोर्ट कचहरियां हैं। उन भवनों में पारिवारिक निवास

की व्यवस्था नहीं है। ऐसी अनेक जगहोंमें से उपरोक्त दो स्थान उदाहरणार्थ लिये जा सकते हैं। हाईकोर्ट तथा पारसी कुए के जल का उपयोग पीने के लिये किया जाता है। ऐसे कुए बम्बई नगर और उपनगर में कई स्थानों पर हैं। यहाँ पर पाठकों के लिये उपरोक्त दो ही कुओं का जिक्र किया है। हर दिन उपरोक्त कुओं से विशेष मात्रा में जल सैकड़ों घरों में पीने के लिये मंगाते हैं क्योंकि इनका जल पवित्र व शुद्ध माना जाता है।

## दृश्य और मानसिक वेग

चमकीले, भड़कीले रंग जो आखों की दृष्टि को बरवश आकर्षित करते हैं। इनमें से पीला, लाल ये दो रंग अधिक चमकीले तथा भड़कीले होते हैं। पत्ते, पुष्प, मृगों की चमड़ी तथा अन्य प्राकृतिक रूपसे सजे हुये रंग तेज होते हुये भी सात्विक गुण, सौम्य भावना, तथा प्राकृतिक आनन्द का स्रोत रहता है। किन्तु मानव निर्मित अनेक प्रकार की साड़ियां, पुरुषों के वस्त्र और अन्य साधनों के तेजीले रंग से मनमें रजस–तमस की उत्पत्ति होती है।

## इसका कारण क्या ?

मनोवैज्ञानिक आधार से यदि विचार किया जाय तो जीवन पर रंग का बड़ा प्रभाव पड़ता है। हरे और नीले रंग से सात्विक गुण, पीले और सुनहरे रंग से रजोगुण, लाल रंग से तमोगुण प्रधान माना जाता है। विचारों को पवित्र, सप्त धातुओं को समशीतोष्ण, मनकी गति को वश में रखने

योग्य रंग हरे और नीले रंग हैं। मनमें आवेशपूर्ण वि प्रवृत्ति में गतिमानता, तथा इन्द्रियों में सतेजता लाने लिये रजोगुण प्रधान रंग पीले व सुनहरे की आवश्य पड़ती है। आलस्य, प्रमाद, तीव्र आवेशपूर्ण वृत्तियों जागरण, इन्द्रियों में तीव्रता आदि तमोगुण प्रधान रंग है। प्रकृतिजन्य वृक्ष, लता, घास-पात का स्वाभा रंग हरा होता है। बसन्त ऋतु अथवा वृक्ष लतादि फूल के समय उनके फूलों का रंग सफेद, नीला, पीला, सुनह लाल आदि प्रकार का होता है। थोड़े समय के बाद फू का स्वरूप बदल कर फल के रूप में बदल जाता है आ में अधिकतर फलों का रंग हरा होता है बादमें पकने से व पकने पर उनका रंग लाल, पीला, नीला आदि प्रकार हो जाता है। हरे रंग के अलावा अन्य रंग अल्पकालि होते हैं।

## आनन्द का स्रोत प्राकृतिक सौन्दर्य में क्यों?

घास-पात, लता-वृक्षादि में हरे रंगकी विद्यमा होने से उसका प्रभाव मानव जीवन पर विशेष हुआ कर है। तभी तो ऐसे वातावरण में शांत चित्त से अधिक दे तक बैठने की इच्छा हुआ करती है। अपवित्र जीवन पवि बनता है। पवित्र जीवन में प्राकृतिक आनन्द का स्रो बहने लगता है। मानव निर्मित दृश्य पदार्थों में उस नि आनन्द का अनुभव नहीं होगा, क्योंकि मानव निर्मित दृ में कमियां रह सकती हैं।

योगी, ऋषि, मुनि, त्यागी, वैरागी, सन्त साधक का स्था

हमारे धर्म ग्रंथों में लिखा गया है कि पर्वतीय प्रदेशों में, गिरि-कन्दराओं में, गहन वनों में, शुद्ध वातावरण वाले स्थानों में, नदी तट के पास, और प्राकृतिक सौन्दर्य से पूर्ण रम्य प्रदेशों में योगी, संत, साधु, ध्यानी-ज्ञानी, ऋषि-मुनि, त्यागी-वैरागियों के निवास स्थान हुआ करते हैं। ये लोग प्रकृति की गोद में रहकर जन्म मृत्यु से मुक्त हुआ करते हैं। विदेह मुक्त रहते हैं। आत्मज्ञानी होते हैं। त्रिकालदर्शी होते हैं। परम पवित्र जीवन यापन करनेवाले होते हैं। दीर्घजीवी होते हैं। अज्ञानी लोगों के सद्‌गुरु बनते हैं उनको दुःख निवृत्ति का मार्ग बताते हैं। दैवीगुण संपन्न रहते हैं। ऐसे लोग आधुनिक युग में शहरों में भी निवास करते हैं। शहरों में रहने पर भी ये लोग प्राकृतिक सौन्दर्ययुक्त वन प्रदेशों में जाने आने का संबंध रखते हैं।

## सामान्य जनता और प्राकृतिक सौन्दर्य

अपने २ कामधन्धों से निवृत्त होकर सामान्य जनता गिरि कन्दराओं में निवास नहीं कर सकती है। यदि वे चाहें तो पर्वतीय प्रदेशों में समयानुसार जाने आने की प्रवृत्ति चालू रख सकते हैं। शरीर, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये सबको वशमें रखने पड़ते हैं। इनसे पवित्रता के साथ परिवार व समाज के उद्धार हेतु काम लेना होगा। प्राकृतिक जीवन का अल्पकालिक अनुभव प्राप्त होगा और उसमें अन्य सुख से अधिक सुख की इच्छा न रहेगी क्योंकि जड़ शरीर पंच महाभूतों के समूह से बना है। प्राण निकलने के समय के पश्चात् शरीर पंचमहाभूतों में सूक्ष्म रूप धारणकर प्रवेश

करेगा। जीवन के मध्य कालीन समय में प्रकृति का न लेने से शरीर में अनेक प्रकार के रोग, मानसिक तथा जीवन निस्तेज बनने का संभव होगा। पाठक वृन्द स्वयं ही अपने सुख के मूल हो एवं दुःख के। अन्य लोग दर्शक अवश्य होंगे, किन्तु सुखदुःख के अधिकारी तो स्वयं ही होंगे। सत्य मानें तो प्राकृतिक जीवन को अपना जीवन सुधार का सुगम तथा निर्भय मार्ग यही है। अपने परिवार इष्ट-मित्र सहित प्राकृतिक जीवन के लिये प्रयत्नशील बनें।

–

भारतीय युवक--युवतियों का प्रिय मासिक पत्र

युवक

सम्पूर्ण भारत के घरों, विद्यालयों एवं पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाता है। इसमें ज्ञानवर्द्धक लेख, सुरुचिपूर्ण कहानियाँ, भावपूर्ण कविताएँ, स्त्रियों, बालकों, सिनेमा तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक स्तम्भ उपयोगी एवं पढ़ने योग्य हैं। आप भी ग्राहक बन 'युवक' की सेवाओं से लाभ उठाइये। वर्ष भर में चार उत्तम विशेषांक पढ़िये।

वार्षिक मूल्य ४ रु० ५० पै. एक प्रति का ४० पै.
नमूनाँक के लिए ४० पै. का डाक टिकट भेजिये।

पता :—
'युवक' मासिक पत्र
जीवनी मंडी, आगरा

# प्रश्नोत्तर

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों के समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या का समाधान चाहते हों तो लिख कर भेजें—सम्पादक]

**सरस्वती देवी 'शायरा' लखनऊ**

**पत्र संख्या-१ प्रश्न:—१**

शुक्रवार के दिन केवल विष्णु भगवान् का ही व्रत होता है या अन्य किसी देवता का भी ? और व्रत-उपवास के दिन अनाज और नमक खाना मना है किन्तु क्या सेंधा अर्थात् लाहौरी नमक खाया जा सकता है ?

प्रश्न-२:—रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की लगभग दो शीशी प्रयोग कर चुकी हूं और उससे मस्तिष्क की शक्ति व आंखों की रोशनी बढ़ना आदि कई प्रकार के शारीरिक लाभ भी

प्राप्त हुए हैं किन्तु बालों का झड़ना अभी तक नहीं रुका। क्या करूं ?

उत्तर १:—श्रद्धा से जिस किसी भी दिन अपने उपास्य देव का व्रत करना हो, कर सकते हैं। इसके लिये कोई दिन निश्चित किया जा सकता है। सामान्यतः सोमवार दिन शंकर भगवान् का दिन, मंगलवार को देहली की तरफ हनुमान जी का दिन मानते हैं तो महाराष्ट्र में हनुमान जी का दिन शनिवार माना जाता है। वैसे ही कहीं शुक्रवार को देवी का दिन मानते हैं तो कहीं विष्णु भगवान् का।

इस प्रकार उपास्यदेव का व्रत किसी भी दिन जब अनुकूल हो कर सकते हैं। वैसे अपने इष्टदेव का पुजन, अ स्तुति प्रति दिन ही करते रहना चाहिए। व्रत के दिन विशेष रूप से अराधना में समय लगाना चाहिए।

उपवास के दिन मन शांति के लिये अन्न जलादि का त्याग जितना सम्भव हो करना ही चाहिए। जब अन्न ग्रहण करना हो तो सेंधा नमक साथ में ले सकते हैं क्यों कि यह धरती से निकला हुआ खनिज पदार्थ है।

उत्तर-२:—रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अन्यान्य लाभ के साथ बालों का झड़ना अवश्य बन्द होना चाहिये था। किसी विशेष कारण से ही यह लाभ नहीं पहुंचा दीखता है। इन कारणों में से निम्न लिखित की सम्भावना हो सकती है। खाद्य पदार्थों में विटामिन सी वाले पदार्थों का न होना, मस्तिष्क में अधिक उष्णता का होना, सिर से अधिक पसीना

आना, पसीने सूख जाने के थोड़े समय बाद उसका ऐसिड का गुण धारण कर बालों की जड़ों का ढीला कर देना, क्रोध करना, अति आवेश, निद्रा का अभाव, गहरी निद्रा न आना अथवा ८ घंटेसे कम नीन्द लेना, तली हुई वस्तुओं का उपयोग विशेष करना, आचार और मिर्च (लाल) का अधिक मात्रा में उपयोग, इमली, चीनी व नमक का अधिक उपयोग, आठ दिन में एक बार स्नान करना, कब्जियत, चिन्ता तथा मन में ग्लानि की भावना रखना, अधिक गर्म जलसे स्नान करना आदि अनेक कारण हैं।

उपचार:—उपरोक्त कारणोंमें से जो कारण विशेष हो उसे प्रथम दूर करने का प्रयास करें। सप्ताह में कमसे कम दो बार ठण्डे जल से अथवा शारीरिक उष्णता के तापमान वाले गरम जल से स्नान करें। सिर में अधिक पसीना आता हो तो सप्ताह में ३–४ बार स्नान करें। रात को १२ बजे से पहले नींद स्वास्थ्य के लिये हितकर है। भोजन के साथ सलाद (गाजर, नीबू का रस, मूली, ककड़ी, पत्ता गोभी, को साथ में मिलाकर) लें। कब्जीयत दूर करने के लिए आहार में हरी पत्तियों वाले शाकों का अधिक उपयोग करें। सिर के स्नायुओं में रक्त संचार व्यवस्थित रखने तथा मस्तिष्क के विभिन्न अवयवों को सशक्त बनाने हेतु प्रातःकाल स्नान के बाद १० से बीस मिनट शीर्षासन, पश्चिमोतानासन १ मिनट, भुजंगासन २ मिनट, शवासन ५ मिनट प्रति दिन करें। सप्ताह में तीन दिन

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से सारे शरीर में तथा सिर में हाथों से अथवा किसी से मालिश करवा लें। स्नान के देर बाद अपने सिर पर रामतीर्थ ब्राह्मी तेल डालें। प्रयोग करने से अवश्य ही २ मास के अन्दर ही बालों झड़ना बन्द हो जायगा। अवश्य लाभ प्राप्त होगा।

**श्री एम. दामोदर भंडारी, कलमुण्डकूर (दक्षिण कर्नाटक**

पत्र संख्या २ प्रश्न–१

मैंने आपकी रामतीर्थ मासिक में 'भस्त्रि प्राणायम नं. १ व २:—और चंद्र भेदन प्राणायाम विधि भी पढ़ी हैं। इस प्राणायाम को गुरु से विधि सीखकर करने से हानि पहुंचेगी या नहीं?

प्रश्न नं. २:—कुछ लोग कहते हैं कि अपने दुश्मन नाश करने के लिए शल्य तन्त्र के आधार से कृत्रिम (दे देवता छोड़ना) पड़ता है, इसी से उसके दुश्मन का वंश नाश होता है। क्या यह ठीक है? हो तो इस से बचना हो कैसे?

प्रश्न नं. ३:—मेरे पिता जी ४८ वर्ष की आयु वाले हैं। वे 'श्वास' रोग से (१४ वर्ष से) कष्ट उठाते हैं। उनको रोग से कैसे बचा सकते हैं?

उ. १–आसन, प्राणायाम, प्राकृतिक चिकित्सा अथवा अन्य

आध्यात्मिक लेख विस्तार एवं अर्थ के साथ विधि, महत्व एवं लाभ के साथ लिखा जाता है। अतएव केवल अवलोकन कर छोड़ देने योग्य लेख नहीं अपितु कार्य में रखकर उससे लाभ जीवनमें उतारने योग्य होते हैं। प्राणायामों के मेरे लेखों को ५ वार शांत एवं एकाग्र मन से पढ़िये। अवश्य अपने घर में आप प्रणायाम कर सकोगे ऐसा दृढ़ निश्चय हो जायगा। अभ्यास में गलती नहीं होगी। यदा-कदा आपको किसी कारणवश सन्देह रहने पर पत्र से जबाब मंगा सकते हो। अथवा यहां आकर श्री रामतीर्थ योगाश्रम में प्रतिदिन चलते हुए यौगिक वर्ग में प्रवेश होने की सुविधा होवे तो यहां पर आकर प्रत्यक्ष सीख सकते हो।

उ० नं. २:—शल्य तन्त्र का अनुभव हमें नहीं है। मैंने शल्य तन्त्र का अभ्यास नहीं किया और नहीं प्रयोग किया।

उ० नं. ३:—आप पिताजी के रोग के बारे में नहीं समझाये हो। केवल रोग लिखने से उपचार नहीं बताया जाता है। लक्षण, वजन, प्रधान प्रकृति, शरीर की शक्ति का माप दण्ड, रोग के लक्षण, अवधि, स्वरूप और रोग होने की अन्य समस्याओं के वर्णन लिख भेजना पड़ता है। अभी तक कौन से इलाज करा चुके हो वह लिख भेजनें चाहिये। यह अनेक कारणों से आपके पिता जी की बीमारी का इलाज नहीं बता सका हूं।

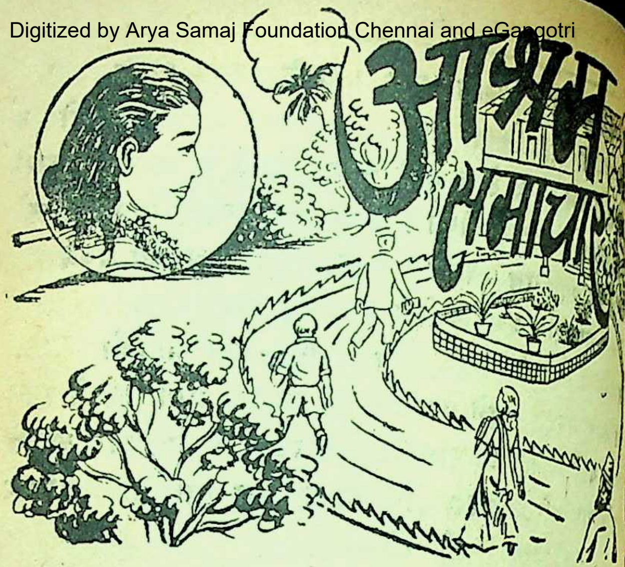

[श्री रामतीर्थ योगाश्रम के व्याख्यान खंड में हर शनिवार सायंकाल ७ बजे और हर रविवार प्रातःकाल १० बजे व्याख्यान होता है। उसके सारांश रूप में 'आश्रम' समाचार स्तंभ से प्रकट किया जाता है। सप्ताह में एकबार आश्रम के संचालक योगीराज श्री० उमेशचन्द्रजी का व्याख्यान होता है और एक बार अन्य आगन्तुक उच्चकोटि के यागी, ऋषि, महात्मा, साधु संत एवं प्रखर विद्वानों का व्याख्यान होता है। बहुधा सप्ताह में एक बार शारीरिक आरोग्य और एक बार आत्मदर्शन के बारे में योग, वेदान्त, भक्ति आदि के बारे में सार्वजनिक सत्संग होने से सर्व धर्म के अनुयायी वर्ग इस सत्संग का लाभ उठा सकते हैं।

—व्यवस्थापक]

**वक्ता—** पं. पद्मनाभ शास्त्री पालये जे. पी.

**विषय—** प्रचलित समस्याएँ

सज्जनो ! तत्वज्ञान की परम्पराएँ ऐसी हैं कि विवेक बुद्धि पूर्वक कर्म, उपासना तथा ज्ञान संपादन कर जीवन सफल बनाना है। जो व्यक्ति विवेक बुद्धि से प्रवृत्ति नहीं करता है उसका जीवन पतन की ओर चला जाता है। विवेक बुद्धि द्योतक, मार्गदर्शक तत्वज्ञान है। परम ज्ञान संपादन जबतक न हो तबतक संसार भर की उलझनें अपने माथेपर रखकर घूमना पड़ता है। जनताको उन्नति का मार्ग दिखाने का प्रयास करने का प्रयत्न विफल हो जाता है।

## वर्तमान काल की गति विधियाँ।

मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो वर्तमान काल विज्ञान का है। विज्ञानवेत्ताओं ने अनेक प्रकार की नई खोज का परिशोधन कर जनता के सामने आश्चर्यजनक प्रत्यक्ष प्रमाण में क्रियान्वित किया, यंत्र करके दिखाये हैं। नवीन शोध अनवरत रूप में चालू है। वस्तुतः विज्ञान जगत कहने में अतिशयोक्ति नहीं है। विज्ञान का आविष्कार करते हुये हमें हर्षनाद में गूंज उठना पड़ेगा कि मानव निर्मित प्रवृत्ति की पराकाष्ठा ही विज्ञान है। हजारों मील के अंतर में रहने वाले व्यक्ति का फोटो (चित्र) टेलिविजन द्वारा देखना और अनेक प्रकार की नई शोध से जगत विज्ञान के बारे में प्रभावित हुआ है।

## जगत में शान्ति और अशान्ति।

घर, मोहल्ला, शहर, तहसील, जिला, प्रान्त तथा सारे

देश में, एवं विदेशों की ओर दृष्टि पात करने से पता लगता है कि अशान्ति बढ़ रही है और शान्ति घट रही है। लिखे पढ़े लोग बढ़ रहे हैं। बुद्धिमान लोग बढ़ रहे हैं। एक दूसरे की परीक्षा करनेवालों की संख्या बढ़ रही है। अस्पृश्यता, असमानता, जातिभेद, प्रांतभेद, भाषा भेद, वर्ण भेदके मिटाने के लिये प्रयत्नशील लोगों की संख्या अधिक बढ़ गई है। इतना होते हुये अशान्ति क्यों बढ़ गई है? सारे विश्व में अभी तक देखने में नहीं आई थी उतनी अशान्ति वर्तमान काल में दिखाई दे रही है।

## कारण और कर्म की प्रणाली।

जगत आन्दोलन से पता लगता है की सभ्य समाज के लोग सुरक्षापूर्ण मार्ग में प्रवास करने का कारण बता रहे हैं, और जा रहे हैं कंटकमय, दुर्गममय, असाध्यमय, विघ्नमय मार्ग में। कारण एक बता रहे हैं और कर्म दूसरे कर रहे हैं। घर्षण, द्वेष, तिरस्कार, असंतोष, विरोध, असहकार रूपी कर्म के लक्षण बता रहे हैं। फल-स्वरूप अशान्ति का सागर सारे संसार में प्रत्यक्ष देखने में आता है। यह अशान्तिरूपी अग्नि-ज्वाला किसी समय किसी देश में प्रज्वलित रूपमें देखने में आती है। शांति केवल कहना मात्र है। उसे स्मशानशान्ति कह सकते हैं।

## शान्ति के लिये कोई सच्चा और निर्भय उपाय है?

अवश्य है। किन्तु उसके लिये अनेक प्रकार के सरल

उपाय है। वह उपाय अपनाने के लिये प्रथम अशान्त चित्त से समझकर मनके विचारों का परिवर्तन करना होगा। दुराचार के जितने आचार, विचार हैं उन को तिलांजलि देनी होगी। सदाचार का आविष्कार करना होगा। अर्वाचीनकाल के भोग-विलास में फँसे हुये सभ्य समाज की दृष्टि पुरातन काल के नियमों की ओर मुख मोड़ना होगा। पुरातनी लोग क्यों सुख शान्ति से जीवन व्यतीत करते थे उस ओर चित्त से चिंतन करना होगा। जहाँ धार्मिक भावना नहीं, सत्संग नहीं, योगाभ्यास नहीं, उपनिषद् का श्रवण-मनन नहीं, गीता का संदेश नहीं, योगवाशिष्ठ का आदेश नहीं, शाकाहार का स्वीकार नहीं, व्यसनों का त्याग नहीं, माता-पिता गुरुजनों की सेवा नहीं, वेद का अध्ययन नहीं, सदाचार का आदर नहीं, त्याग-वैराग्य का सत्कार नहीं, परोपकार का विचार नहीं, अभेद दृष्टि की भावना नहीं, यज्ञ-यागादि का सत्कर्म नहीं, वहाँ शान्ति कैसे ठहर सकती है? ईश्वरीय नियम ऐसा है कि दोनों वस्तु एक स्थान में नहीं रह सकती हैं। जहाँ अशान्ति का स्थान हो वहाँ शान्ति नहीं ठहर सकती और जहाँ शान्ति का स्थान है वहाँ अशान्ति नहीं ठहर सकती। उपरोक्त कथनानुसार शान्ति प्राप्त होगी। अशान्ति दूर हट जायगी। प्रचलित समस्याओं के बारे में और भी अधिक विस्तार से समझाने की इच्छा थी किन्तु समय के अभाव से तथा अध्यक्ष स्थान में विराजमान हुये योगीराज श्री० उमेशचन्द्र के अन्य कार्यक्रमों के कारण से आज का महत्वपूर्ण विषय यहीं समाप्त करता हूँ।

# ※ श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम ※

१–इस योगाश्रम में प्रविष्ट ने के बाद साधक को सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना से हटा दिया जायेगा।

२–ली ई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी

३–टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर स्थान में रखनी होंगी।

४–सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण होना आवश्यक होगा।

५–योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६–कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७–आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के लिये १ महीनेकी फीस १० रुपये और ३ मास के २७रु. है

८–नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी होगी। समय प्रातःकाल ७॥ से ९॥ और सायंकाल ६ से ७॥ है। दो में से किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

# श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

## (महत्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचर आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

**पुरुषों के लिये समय:**—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

**महिलाओंके लिये समयः**—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सबेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमके संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आनेवाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता हे।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन, कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

**विशेष सूचना:**— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबंन्ध नहीं है।

आपकी
चिन्ता
दूर — जब आप अपना माल
शीघ्र परिवहन से
से भेजते
आपका माल
निश्चित समय
सुरक्षित
पहुंचता है।

O.T.S
G.T.S
जबलपुर

मध्य रेल्वे

RAMTIRTH
Regd. No.

# रामतीर्थ

तन मन विक
सर्वोत्तम मा

0
ैसे

नवम्ब
६

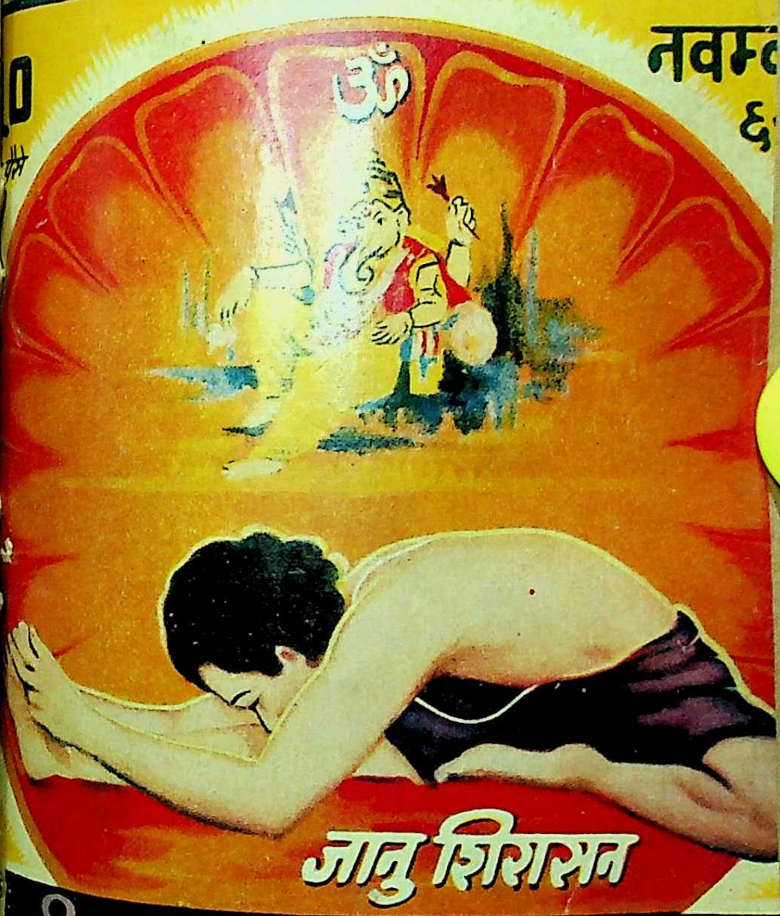

## श्री रामतीर्थ योगाश्रम

# श्री रामतीर्थ योगाश्रम

(बम्बई १४) के

महत्वपूर्ण निर्माण तथा प्रकाशन

(घर-घर में उपयोगी)

## रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

(स्पेशल नं. १)

बाल, मस्तिष्क तथा शरीर की मालिश के लिये सभी प्रकृति के लिये सभी ऋतुओंमें अनुकूल है। सर्वत्र प्राप्य है।

## उमेश योगदर्शन

(प्रथम खण्ड)

( लेखक:—योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी )

अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, मराठी भाषाओंमें मिलता है। यह के मलशोधन कर्म, आसन, प्राकृतिक चिकित्सासे रोगनिवारण मानसोपचारका ज्ञान करानेवाला परमोत्तम ग्रन्थ है। ग्लेज आर्ट पर विभिन्न आसनों तथा षट्कर्मों के १०८ चित्र हैं। पृष्ठ-संख्या के अन्तर्गत योगाभ्यासका विस्तृत बोध कराया गया है। मूल्य डाकव्यय २ रु.

**योगासन चित्रपटः**—योगासन चित्रपट अनेक रंगोसे किया गया है। यह चित्रपट अनेकों आसनों से परिचित कराता है। आधारपर अपने घरपर ही आसनों का अभ्यास करके सदैव नीरोग सशक्त रह सकते हैं।

मूल्यः—डाकव्यय सहित ३ रु.

रुपया भेजनेका पता:—श्री रामतीर्थ योगाश्रम, पो. दादर, (बम्बई १

## विना प्रवेश शुल्क के रामतीर्थ मासिक पढकर

## घर बैठे हर महिने

5 NOV 196

## १००), ५०), और २५) रु. के

# पुरस्कार जीतिये

............के लिये यहां से काट कर भेजें..............

### प्रवेश–पत्र

## रामतीर्थ

### तनमन विकासक–सर्वोत्तम मासिक

श्रीयुत व्यवस्थापक जी !

मैंने पुरस्कार प्रतियोगिता विषयक पृष्ठ भागमें छपे नियम पढ़ लिये हैं और मैं उनके बन्धनमें अपने को बंधा हुआ मानकर अपने निर्णयानुसार निम्न तीन रचनाओं को प्राथमिकता की दृष्टिसे लिख कर भेज रहा हूं:— (नवम्बर १९६२)

सर्वोत्तम प्रथम रचना ..............................................

" द्वितीय " ..............................................

" तृतीय " ..............................................

प्रतियोगीका पुरा नाम और पता ..............................................

..............................................

..............................................

## रामतीर्थ मासिककी प्रतियोगिता में प्रवेश पाने के नियम

(१) यह प्रतियोगिता सभी वर्ग के लिये खुली है इसका प्रवेश शुल्क कुछ नहीं है।

(२) इसमें भाग लेने वालोंको केवल रामतीर्थ मासिकमें छ हुए प्रवेशपत्र उपयोग करते हुए अपने निर्णयको भेजना होगा।

(३) प्रतियोगी अपना नाम और पता स्याही से सुवाच्य-अक्षरो में लिख भेजें।

(४) रामतीर्थ मासिकके प्रतियोगिता निर्णायकोंका मत सर्वमान्य होगा, उसमें किसी भी प्रकारकी सुनवाई नहीं होगी।

(५) श्रीरामतीर्थ योगाश्रम और निराला मुद्रकके कर्मचारीगण इस प्रतियोगितामें भाग नहीं ले सकेंगे।

(६) हर मासमें छपी पाठ्य सामग्री लेख, कविता, कहानी, उपन्यास आदिके पढ़नेके बाद प्रतियोगीको समष्टि भावसे किसी भी लेख, कविता, कहानी, उपन्यास आदिको अपने मतानुसार प्रथम, द्वितीय और तृतीय श्रेणी देनी होगी।

(७) रचना नाम अनुक्रमणिकानुसार ही लिखना चाहिये।

(८) प्रतियोगिताका प्रवेशपत्र रामतीर्थ मासिकमें छपे हुये मास के अगले मासकी १० तारीख तक रामतीर्थ कार्यालयमें आजाना चाहिये, उसके बाद आनेवाले प्रवेश पत्रोंपर विचार नहीं किया जायेगा।

(९) प्रतियोगिताका निर्णय हर तीसरे मासमें रामतीर्थ मासिक में प्रकाशित होगा।

(१०) प्रतियोगितामें यदि एकसे अधिक एक पुरस्कारके विजेता होंगे तो वह पुरस्कार विजेताओंकी संख्यामें विभाजित हो जायेगा।

(११) प्रथम अथवा द्वितीय पुरस्कारके विजेताओंके अभावमें सारे पुरस्कार तृतीय श्रेणीके विजेताओं में बंट जावेंगे।

# इसको पढ़िये

| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| वैदिक प्रार्थना | (संकलित) | १९४५ |
| उमेशवाणी | | १९४६ |
| सम्पादकीय | | १९४८ |
| जीवनोपयोगी सूर्य प्रकाश | श्री. गीतादेवी ह. गांधी | १९५३ |
| जीवन साधना | रामस्वरूप खरे 'दीपक' | १९५८ |
| खण्ड काव्य | कृष्णलाल बजाज 'प्रदीप' | १९६५ |
| दहेज नहीं लूंगा (व्यंग) | दुर्गाशंकर त्रिवेदी | १९६९ |
| श्रीरामतीर्थ योगाश्रम समाचार | संवाददाता द्वारा | १९७७ |
| पाठकों के अभिमत | | २००४ |
| अपूर्व पुरस्कार (कहानी) | के. एन. भट्ट शिराडिपाल | २००६ |
| सृष्टि तथा प्रलय की काल गणना | बुद्धिप्रकाश वाजपेयी | २०२५ |
| रंगभेद रहस्य | रूपा सव्यसाची | २०३६ |
| क्लोरोफिल | शिवनारायण शर्मा | २०४१ |
| मनकी प्यास (कहानी) | नामवर | २०४७ |
| उपनैषदिक सर्वश्रेष्ठता | ज. ल. श्रीवास्तव | २०५२ |

| लेख | लेखक |
|---|---|
| रामचरित मानस | टी. योगिराज उमेशचन्द्रजी |
| बंगाल की महिलायें | पं. राजयोगी |
| उपेक्षिता यशोधरा | ,, |
| अनमेल विवाह के कुपरिणाम.... | ,, |
| बालों का सौंदर्य | सुमित्रादेवी अग्रवाल |
| मल्लयुद्ध | सत्यपालजी |
| धर्मोपदेश | स्वामी रामतीर्थ |
| विश्वदर्शन का तत्त्वनिरसन | काल्लूभाई बसिया |
| मनसादेवी की पूजा व कथा | पं. पीताम्बर तैलंग 'देव' |
| भगवन्नाम रहस्य | एम. जी. जोशी |
| साधना (धा. उपन्यास) | आचार्य देवेश्वर शर्मा |
| प्रश्नोत्तर | सम्पादकीय कलम से |
| जानुशिरासन | उमेश योगदर्शन ग्रंथ से |

## मुखपृष्ठ का परिचय

**श्री रामतीर्थ योगाश्रम के संस्थापक संचालक महोदय को जानुशिरासन की स्थिति में अवलोकन कीजिये।**

---

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्सेंट स्ट्रीट २ बम्बईनं.१४ से प्रकाशित किया।

# जनता जनार्दन का

## सद्भावनाहस्त

श्री रामतीर्थ योगाश्रम विगत २८ वर्षों से जनता जनार्दनके तन-मन विकासार्थ योगाभ्यास, वेदांत, योगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा, प्रत्यक्ष साप्ताहिक व्याख्यान, तथा सत्साहित्य से युक्त मासिक पत्र आदि द्वारा जिस जी तोड़ प्रयत्न में लगा है, उसी सेवा से प्रभावित होकर उसके सेवा पूर्ण हाथों को अधिक शक्तिशाली बनाने हेतु जिन विशाल और पवित्र भावनाशील परोपकारी दानवीर सज्जनों की ओर से यथा शक्ति धनराशि आने लगी है उनके नाम रामतीर्थ मासिक में प्रकाशित किये जायेंगे तथा उन्हें तत्संबंधी मासिक की प्रति भेजी जावेगी।

सबसे महत्त्वपूर्ण दान 'ज्ञानदान' है उसका पुण्य भी अल्पावधि में अवश्य प्राप्त होता है। अतः आप भी ज्ञानदान के भागी बनकर अपने भविष्य को उज्वल बनाइये।

### अक्टूबर मास में प्राप्त सद्भावना राशि

| | |
|---|---|
| १-श्री नरेन्द्रमूलजी व दुलेराय मूलजी, बम्बई | १५) रु. |
| २-श्री० पद्मनाभ अनन्त भट्ट टिपटूर (मैसूर) | ११)रु. |
| ३-श्री० कन्हैयालाल ज. जैन कलकत्ता | १५)रु. |
| ४-श्री० जनार्दन वि. कुलकर्णी नाशिक | ११)रु. |
| ५-श्री सारंगधर विश्वेश्वर ऐयर मद्रास | १३)रु. |

सद्भावना राशि निम्न पते पर भेजें:—

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर, बम्बई १४.

# लेखकों से

## 'रामतीर्थ' मासिक में स्वीकार करने योग्य मुख्य

शारीरिक रोग निवारण, सशक्त एवम् सदानिरोगी मानसिक करके मन की शांति, एवम् आत्म साक्षात्कार करने योग्य, प्राप्त करा देने योग्य अष्टांग योग, (यम, नियम आसन, प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधी, राजयोग, भक्ति योग, लय योग, शिवस्वरोदय, वेद, उपनिषद. गीता, रामायण, महाभारत, जीवन चरित्र एवम् उपदेश, प्राकृतिक चिकित्सा, (आकाश, वायु जल तथा पृथ्वी द्वारा इलाज) महिलाओं के जीवन सुधार बालकों के संस्कार सुधारने के लिये, अनुरूप लेख, कहानी, उपन्यास, गीत, कविता, निबंध, प्रवास वर्णन, नाटक, धर्मकथादि स्वीकारकी जाती हैं कागजकी एक ओर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी हुई भेजनी चाहिये, अश्लील विषयोंकी रचनायें स्वीकार नहीं जायेंगी।

**विशेषः**—अन्यत्र प्रकाशित रचनायें रामतीर्थ मासिक के लिये स्वीकृत एवम् अस्वीकृत रचनाओं की सूचना पन्द्रह दिन के बाद दी है, रचना को वापस मंगाने वाले लेखकों को पोस्टल टिकिट अवश्य भेजना चाहिए, स्वीकृत रचनायें समयानुकूल छपेंगी, चाहिये कि वे इस विषय में वारंवार पत्र लिखने का कष्ट न दें, प्रकाशित होने के बाद, रचना जिसमें छपी होगी वह मासिक और आश्रम की ओर से निर्धारित किया गया पुरष्कार भेजा रचना में लिया गया कोई द्रष्टांत हो तो वह किस ग्रन्थ के लिया गया है यह अवश्य लिखें। अन्य पत्र पत्रिकाओंमें मासिककी रचना अन्य भाषाओं में अनुवादित की इच्छा रामतीर्थ मासिकके संपादकसे लिखित अनुमति लेना आवश्यक

रचना भेजनेका पताः संपादक 'रामतीर्थ' रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई

# ग्राहकोंसे

१. 'रामतीर्थ' अंग्रेजी मासकी पहली तारीख को प्रकाशित होकर ग्राहकों को डाक से भेजा जाता है ।

२. वार्षिक शुल्क रु. ५ विदेशों के लिए १५ शिलिंग अथवा रु. ७॥ है।

३. रामतीर्थ का नया वर्ष अप्रैल से शुरू होकर मार्च में पूरा होता है।

४. ग्राहकों को अंक विशेष देखभाल से भेजा जाता है तिस पर भी यदि किसी को १५ तारीख तक अंक न मिले तो अपने डाक घर से पूछिए वहाँ से जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेज दीजिए ताकि उस पर गौर किया जावे ।

५. पताबदलने के लिए कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचना साफ साफ अक्षरों में लिखे पतेके साथ मिलनी चाहिए । वह भी अधिक समय के लिए पता बदलना हो तभी हमें लिखें ।

६. ६५ न० पैं० मिलने पर ही नमूना अंक भेजा जाता है परदेशवालों को एक शिलिंग भेजना चाहिए ।

७. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपना पता तथा ग्राहक संख्या अवश्य लिखें ।

८. वार्षिक शुल्क मनीआर्डर से भेजना लाभदायक है क्योंकि वी० पी० से एक तो रजिस्ट्री खर्च लगकर ६ रु० पड़ेगा दूसरे देरी से अंक मिलेगा तथा विदेश में वी० पी० तो होती ही नहीं ।

९. रामतीर्थ के साथ पुस्तकें आदि नहीं भेजी जातीं ।

१०. व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पतेपर करें ।

व्यवस्थापक
रामतीर्थ मासिक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई, १४

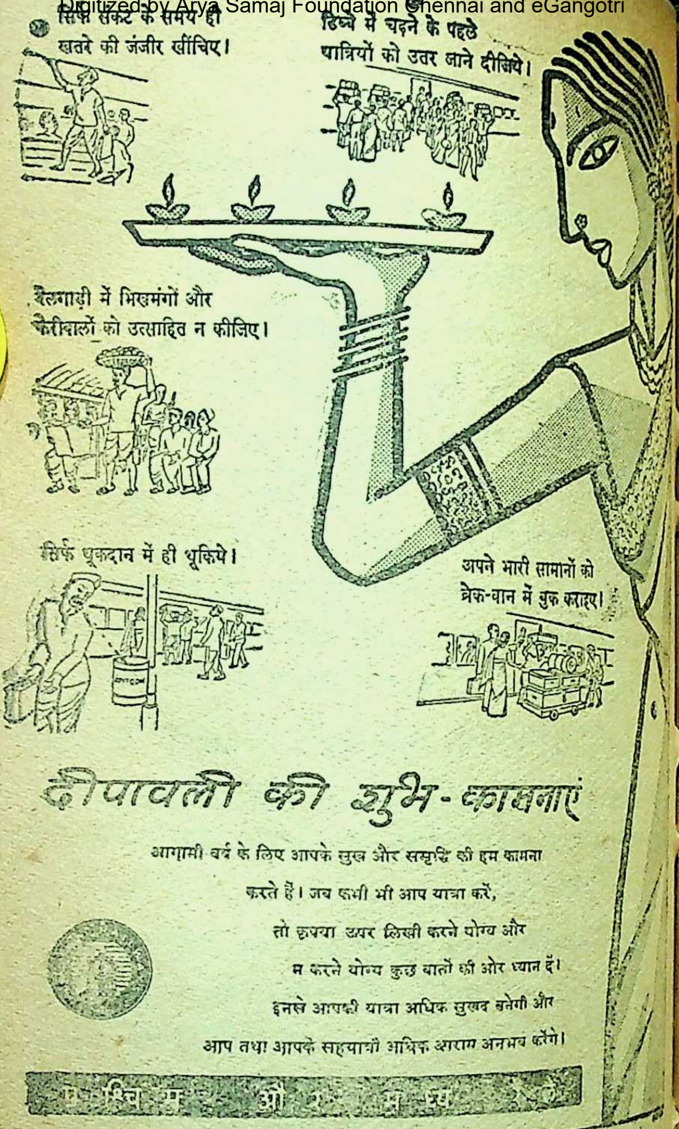

सिर्फ संकट के समय ही
खतरे की जंजीर खींचिए।

डिब्बे में चढ़ने के पहले
यात्रियों को उतर जाने दीजिये।

रेलगाड़ी में भिखमंगों और
फेरीवालों को उत्साहित न कीजिए।

सिर्फ थूकदान में ही थूकिये।

अपने भारी सामानों को
ब्रेक-वान में बुक कराइए।

## दीपावली की शुभ-कामनाएं

आगामी वर्ष के लिए आपके सुख और समृद्धि की हम कामना
करते हैं। जब कभी भी आप यात्रा करें,
तो कृपया ऊपर लिखी करने योग्य और
न करने योग्य कुछ बातों की ओर ध्यान दें।
इनसे आपकी यात्रा अधिक सुखद बनेगी और
आप तथा आपके सहयात्री अधिक आराम अनुभव करेंगे।

[illegible]

भद्रंकर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभियजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

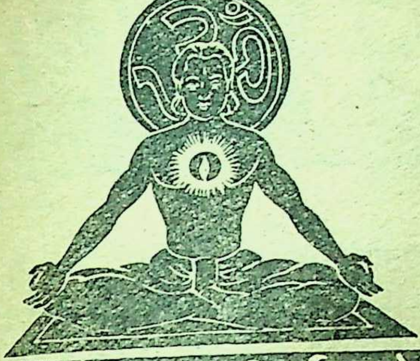

# सम्पादक – रामतीर्थ योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ३ ] नवम्बर १९६२ [ संख्या ८

## वैदिक-प्रार्थना

अवः परेण पर एनावरेण पदा वत्सं बिभ्रती गौरुदस्थात ।
सा कद्रीची कं स्विदर्धं परागात् कस्वित् सूते नहि यूथे अन्तः
ऋ. वे. आ. सू. १-१६४-१७

भावार्थ—प्रकृति यह वही है जो ऊपरके परार्ध में रहती हुई नीचे के प्रदेश में सूर्य आदि लोकों को प्रकट करती है। इतना ही नहीं अपितु वही प्रकृति नीचे के अपरार्ध में रहकर ऊपरके प्रदेश में भी सूर्य आदि लोकों को प्रकट करती है। यही वह प्रकृति है जो कि सर्वथा स्वतंत्र अपने स्वभाव में रहकर सारे विश्व को उत्पन्न करती है और सर्जनके बाद स्वयं अदृश्य भी बन जाती है।

# अेशवाणी

(१५७) देववाणी (संस्कृत) का ज्ञान होना भी अत्यावश्य है। देवनागरी लिपि, और संस्कृत मिश्रित विशुद्ध हिंदी भा में शब्दों के आकर्षण, कर्ण प्रिय शब्द रचना, भावपूर्ण उच्चारण, हृदयंगम भाव, व्यंजना, सत्प्रेममयी दिव्य का उद्गार, चैतन्यमय शब्दों का आन्दोलन, प्रेमाधिक्य परिपूर्ण, सुनने योग्य, सुमधुर शब्द सौष्ठव, वारंवार सुन की तीव्र इच्छा आदि अनेक महत्वपूर्ण गुण हिन्दी औ संस्कृत भाषा में विद्यमान हिन्दी प्रसाद गुण-सम्पन्न भाषा है, फलतः मानव स्वभावतः इसकी ओर आकर्षित होता है।

(१५८) जो लोग हिन्दी भाषा को अनादर की दृष्टि देखते हैं, वे भारत राष्ट्र की सर्वांगीण उन्नति, उसकी एक और संगठन के साधन, पारस्परिक आत्मीयता और बन्धुभाव का प्रसार बढ़ाने व्यावहारिक तथा सामाजिक समृद्धि और समुन्नति आदि के महान् आयोजनों में बाधक सिद्ध होंगे। अतएव हे परम बुद्धिमान् भारत वासियो! भारत माता के सुपुत्रो! हिन्दी भाषा के सम्बन्ध में अपने संशयात्मक मनो- भावों को मिटा दो और ऐसी भावना भर दो कि समग्र भारत

के घर-घर के लोग हिन्दी-भाषा का प्रेमपूर्वक अध्ययन-अध्यापन करें और ऐसी स्थिति उत्पन्न करें, जिससे हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा तो बन ही जाये, अखिल विश्व--स्तर पर अंगरेजी की प्रतिद्वन्द्विता करने के लिये कमर कसकर रण--क्षेत्र में अग्रसर हो।

(१५९) स्वयं से भिन्न व्यक्ति को सदा दोषपूर्ण दृष्टि से देखते रहने, उसके प्रत्येक आचरण में दोष खोजते रहने और निन्दामूलक वाणी का उच्चारण करने में जो व्यक्ति तत्पर है, उसका जीवन पवित्र नहीं रह सकता। समाज से; व्यक्ति से हम जैसे भी संस्कार, विचार, वाणी और आचरण ग्रहण करते रहेंगे, तदनुसार हमारा जीवन गठन होता जायेगा। समत्व-भावना–आत्मभावना सर्वोपरि है। जहां समत्व और आत्मीयता का बोध है, वहां दोष–दर्शन का प्रश्न ही नहीं और है भी तो मानो वह अपनी ही दोषपूर्ण आलोचना कर रहा है। जहां प्रत्येक मानव को दोषों से दूर रहने का आदेश है और प्रत्येक व्यक्ति सतत प्रयास कर रहा है, उसका सम्बन्ध समाज जीवन के साथ सदैव सुसंगत रहेगा और उसके सम्बन्ध सर्वत्र सुलभ रहेंगे। पवित्र जीवनसे ही यह सम्भवहै।

(१६०) जब तक वृत्तियां अन्तःकरण में नहीं उठतीं, तबतक भय-चिन्ता, सुख–दुःख का अनुभव नहीं हो सकता। इसीलिये समझना चाहिये कि जब वृत्ति उठती है, तब प्रवृत्ति चलने लगती है और प्रवृत्ति चालू हो गई तब समझना चाहिये कि, सुख–दुःख, लाभालाभ–जो त्रिगुणाश्रित हैं—का प्रारम्भ हो जाता है, यही सांसारिक जीवन का स्वरूप है।

# संपादकीय

प्रतिवर्ष प्रत्येक धर्म-सम्प्रदाय के अनुयायी अपने जातीय पर्व-त्यौहार नानाविध और नाना रूपों में मनाते रहते हैं। हिन्दूधर्म में भी पर्वोंकी एक महान् परम्परा है। वैसे तो हिन्दुओं का प्रत्येक दिन किसी न किसी पर्व को लेकर उदित होता है और जनता अतीव आनन्द और उल्लास के साथ उनका स्वागत करती है। फिर भी, श्रावणी, विजयादशमी, दीवाली, होली, रामनवमी, कृष्णजन्माष्टमी आदि पर्व अपना व्यापक महत्त्व रखते हैं। इन पर्वों के अवसरपर तदनुसार विधि-विधानोंके अनुसार कार्य-सम्पादित किये जाते हैं। कुछ पर्व ऋतुओंके सन्धि-कालमें आते हैं। जैसे वर्षा ऋतुकी समाप्ति और शरद् ऋतु के प्रारम्भ-काल में दीवाली, शीत-ऋतुके अन्त और ग्रीष्म-वसन्त के आरम्भ-काल में होली का त्यौहार मनाया जाता है। इसी प्रकार अन्य त्यौहार भी हैं। कभी-कभी कोई ऋतु भयंकर उग्र रूप धारण कर अपनी विभीषिका और रुद्रशक्ति का परिचय कराती है, फलतः असंख्य पशु-पक्षी,

मछलियां वृक्ष आदि मृत्यु–मुख में चले जाते है। प्रकृति यह विकट प्रहार चराचर जगत् को हानि पहुंचाता है। असह्य शीत, असह्य गरमी और असह्य वर्षा--अतिवृष्टि---अनावृष्टि आदि के रूप में यह दैवी प्रकोप प्रकट होता है, जिसे आधिदैविक ताप-क्लेश कहा जाता है। सनातन काल से दैवी दुःख-कष्टों की यह परंपरा चली आ रही है। जब ये ऋतुएँ समान संतुलित रूपमें रहती है, तब भूचर, जलचर, खेचर आदि चराचर प्राणियों का जीवन धारण उचित रूपमें होता है। परन्तु इनका व्यतिरेक प्रकृतिमें भयंकर विकार पैदाकर विध्वंस की स्थिति उत्पन्न कर देता है।

## ईश्वरीय शक्ति का प्रत्यक्ष दर्शन

ईश्वरीय शक्तिका दर्शन सर्वत्र हो रहा है। उसी की शक्ति से सूर्य, चन्द्र और आकाशस्थ अन्य ग्रह अपने नियत ग्रहपथ पर निरन्तर भ्रमण करते रहते हैं, उसी की कृपा से ऋतुओं का संतुलित विधान समग्र जनजीवन की सुख--शान्ति का कारण बनता। जीवन की प्रत्येक प्रवृत्ति में उसी मंगलमय का अटल नियम काम काम रहा है। जड़--चेतन और पंचभूतात्मक जगत् ईश्वरीय प्रेरणा से निर्विकार रहकर सर्वत्र आनन्द और मंगल की वर्षा करता है। जो लोग ईश्वर को नहीं मानते, उन्हें भी ईश्वरीय प्रकोप का सामना करना पड़ता है। मानवीय प्रयास जहां निष्फल सिद्ध होते हैं, वहां यह मानना पड़ता है कि किसी अदृश्य शक्ति का उसमें अवश्य हाथ है। भूकम्प, ज्वालामुखी, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अतिशीत, अतिशय गरमी आदि से मानव तथा जीव--जगत् को जो हानि क्लेश उठाने

पड़ते हैं, उनसे बचाव पाने—उन्हें प्रशमित करने के लिये अभी मानव को कोई उपाय नहीं सूझा। अन्तमें निर्विवाद रूप से यह स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जो बुद्धि से परे हैं, जो समझ में नहीं आती, ऐसी कोई अदृश्य महाशक्ति कालगति और अपने अविरुद्ध नियमानुसार काम करती रहती है। उसकी खोज का कार्य सामान्य मानव की बुद्धि से परे हैं। जब कोई भी महान् सत्ताधारी, धनवान् और नाना प्रकार के साधनों से सम्पन्न मानव भी ईश्वरीय प्रकोप से असहाय बन जाता है, तब वह भी उन्हीं परम प्रभु को पुकारता है कि ओ माता, ओ पिता, ओ ईश्वर ! मुझे बचाइये—मेरी रक्षा करिये। ऐसे निरीश्वरवादी मदान्ध लोगों के मन में भी कमसे कम उक्त भावना तो आ ही जाती है। ओ का अर्थ ॐ है और माता का अर्थ है प्रकृति। पिता पुरुष निराकार परब्रह्म परमात्मा है। इस प्रकृति और परमात्मा का स्मरण अनायास हो जाता है। रज-वीर्य से जन्म देनेवाले माता-पिता का स्थान यहां गौण है और भगवान का स्थान प्रमुख—सब से ऊपर है। इस नियम का पालन अधार्मिक और अनीश्वरवादी भी करते हैं। इतना ही नहीं, प्राणिमात्र प्राण कंठगत होनेपर कण्ठ से सूक्ष्म शब्द 'ओं' निकलने लगता है। तत्पश्चात् प्राण निकल जाते हैं। यही 'ॐ' शब्द की व्यापक स्थिति है। इतना ही नहीं, वृक्ष, लता, शिला, जल आदि प्राकृतिक तत्त्व भी ॐ शब्द का उच्चारण करते रहते हैं। इससे जीवन के अन्त काल में कोई भी निरीश्वरवादी नहीं रहता।

## जन्म--मृत्यु और पर्व

नित्य प्रलय के रूप में हम रात में सोते हैं। सम्पूर्ण तथा

गहरी निद्रा में प्रवेश करने के बाद धन, पति--पत्नी, पुत्र-पुत्री नौकरी, धन्धा, घर, परिवार, शत्रु--मित्र, कोर्ट--कचहरी, जमीन जायदाद आदि सब विस्मृतिमें विलीन हो जाते हैं। अन्त में सब से निकट और प्रिय वस्तु प्राण है, उसे भी हम प्रगाढ़ निद्रामें भुला देते हैं। तभी तो गहरी निद्रा आती है वह भी २-४-१० मिनट की नहीं, कई घण्टोंतक हम निद्रादेवी की गोद में जीवन की नाना चिन्ताओं और उलझनों से मुक्त होकर आनन्द विलास करने लगते हैं। यह कोई साधारण बात है? नहीं, यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और विचारणीय बात है। हमारे शास्त्रकार इसी को नित्य प्रलय कहते हैं, क्योंकि गहरी निद्रा के समय जब हम प्राणों की भी रक्षा और देखरेख नहीं कर सकते, तब प्रातःकाल यह प्राण इसी प्रकार सुरक्षित रहेंगे, इसका क्या भरोसा? संक्षेप में हम इसे प्रकृति या प्रभु की पराधीनता कह सकते हैं। उस अवस्था में शरीर, मन तथा प्राण सभी पराधीन निद्राधीन रहते हैं। इसी को नित्य प्रलय कहा जाता है। उत्पत्ति, स्थिति और लयकी यह परम्परा रात में ही नहीं चलती, हर समय चलती रहती है। इस की कोई गिनती नहीं कर सकता। यह प्रकृति का निजी कार्य है और प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूपसे यह परिवर्तनशील विधान सतत क्रम चलता रहता है।

## नैमित्तिक प्रलय

जैसे नित्य प्रलय की गति से मुक्त होकर प्रातःकाल नवीन का अनुभव होता रहता है, उसी तरह नैमित्तिक प्रलय की भी

स्थिति समझनी चाहिये। ऋतुओं के तांडव-नृत्य से ज वन को जो असीम हानि उठानी पड़ती है, वह नैमित्तिक का ही प्रचण्ड रूप है। जल-प्रलय, भूकम्प, असह्य गर्मी विभिषिका, लू लगना, अति ठण्डी से मृत्यु आदि नैमि प्रलय की ही अभिव्यक्ति करते हैं।

इन सब नित्य-नैमित्तिक क्लेशों से सुरक्षित रहकर में आनन्द की सृष्टि करने के लिये पर्व-त्यौहारों का वि किया। हमारे पर्व उमंग-उत्साह के पर्व हैं इस अवसर आमोद-प्रमोद, नाच-गान, खेल-तमाशे और अन्य प्रकार के आयोजनों द्वारा जनसाधारण अपने आनन्द की व्यक्ति करते हैं। दीपावली-पर्व भी ऐसा ही आनन्ददायी है। नगरों और गांवों का वातावरण इस अवसर पर उ और उल्लास से मुखरित हो उठता है। सर्वत्र स्वच्छता सजीवता दृष्टिगोचर होती है। सभी घर लीप-पोतकर शक्ति के अनुसार सजावट की जाती है। खील-खिलौ मिष्टान्न, पक्वान्न बालक ही नहीं, जन-जन के मनोरंजन आनन्दाभिव्यक्ति के साधन हैं। आमोद-प्रमोद के साथ-सा देवदर्शन, देवपूजन, यज्ञ-याग, हवन, एक-दूसरे से मिल जुलना, दुखों को भूलकर सुखों का ही स्मरण करना सदैव सुखमय बने रहने के लिये प्रयत्नशील रहना, ध रोजगार की उन्नति करना, पुराने लेन-देन का हिसाब लेना आदि अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य दीपावली आदि पर्वों अवसर पर सम्पन्न कर लिये जाते हैं।

—:o:—

# जीवनोपयोगी सूर्यप्रकाश

ले. श्री जीतादेवी ह. गांधी, बी. ए. डी. पी. एड.

'धूप खाओ'—इस शब्द प्रयोग से स्पष्ट होता है कि धूप की भी गणना आहार में की जाती है। स्वयं भी स्थावर जंगम का आकर है, चेतन सृष्टिका प्राण है। अखिल सृष्टि से रुठकर यदि वह कुछ ही समय के लिये लुप्त हो जाये तो सभी चेतन पदार्थ रोगग्रस्त होकर नष्ट हो जायेंगे। इस दृष्टि से सोचें तो सूर्य मानव सहित समस्त चराचर जीवधारियों के लिये जीवन शक्ति प्रदान करने वाला चैतन्य--पंडित है।

डा. विलियम एम. लिण्डलहार एम. डी. का कथन है कि सूर्य स्नान से मात्र कुछ ही मिनटों में रक्त में हेमोग्लोबिन के तत्व बढ़ जाते हैं। दवा का कौन सा घूंट यह कार्य कर सकता है? सूर्य स्नान शरीर यन्त्र में ऐसे कीटाणु नाशक तत्व उत्पन्न करता है, जिनका दवा वादने आज तक अनुभव नहीं किया। जब कि आप की त्वचा के नीचे विटामिन 'डी' उत्पन्न करने की शक्ति सूर्य में है, तब औषधि विक्रेताओं के पास जाकर जेब खाली करने की क्या आवश्यकता है? शरीर में

कैलशियम, लोह आदि तत्वों की पूर्ति के लिये डॉक्टर क्षारों की गोलियां खिलाते है। यह प्रयास वस्तुतः लोह की पूर्ति के लिये लोहे के कीले खिलाने जैसा है। लोग या तो अज्ञानी हैं अथवा सूर्य प्रकाश के महत्व से बिलकुल अपरिचित हैं।

डाक्टर मेकफेडन का कहना है कि 'डा. वायुदेव, सूर्य प्रकाश तथा डा. व्यायाम यह तीन सब से बड़े डाक्टर हैं। ज्ञानतन्तुओं के रोग, क्षय--रोग तथा अनेक त्वचारोगों एक मात्र औषधि सूर्य स्नान है।'

डा. हंस का अभिमत है—'सूर्य प्रकाश जैसा उत्तम पौष्टिक तथा रोग नाशक द्रव्य अन्य कोई नहीं। यदि लोग के महत्व को भली भांति समझ लें तो मानव प्राणी शक्तिशाली, बुद्धिमान एवं नीरोग बन सकता है।

डा० जे० स्टेन्स हुकर एम. डी. कहते हैं—"सूर्यकी किरणों से चर्मरोग, ज्ञानतन्तुओं के विकार, कीटाणुजन्य अजीर्ण, कब्ज, बवासीर, क्षय, रक्त-विकार, हृदय-रोग, ड़ों की कमजोरी, आंखों में धुंधलापन, कुष्ठ, प्रदर, स्वप्न हिस्टीरिया, रक्तप्रदर इत्यादि असाध्य से असाध्य रोग जाते हैं।

## सूर्य-किरणों और स्वास्थ्य

सूर्यकी प्रातःकालीन या सायंकालीन कोमल किरणों टहलने से एक प्रकार की ताजगी और उत्साह का संचय हो

है। रक्त-संचालन-क्रिया को वेग की प्राप्ति होती है और साथ ही शुद्ध वायु-स्नान का भी लाभ मिलता है।

शरीर से विषैले द्रव्यों का निर्गमन करने के लिये सूर्य-प्रकाश आवश्यक है। सूर्य-किरणों का स्पर्श पाकर त्वचा के छिद्र खुल जाते हैं और पसीने के द्वारा शरीरगत विष का बहिर्गमन होता है। मलविसर्जन के समस्त अवयव शीघ्रतापूर्वक कार्य में संलग्न होकर शरीर की सफाई प्रारम्भ कर देते हैं।

सूर्य-स्नान चर्मरोगोंकी अचूक औषधि है। भयंकर से भयंकर चर्मरोग को उचित ढंग से सूर्य-स्नान करानेसे मिटाया जा चुका है।

सूर्य जिस प्रकार प्राणदायक है, उसी प्रकार रोगविनाशक भी है। सूर्य की किरणें हमारी त्वचाके नीचे विद्यमान ज्ञानतन्तुओं की जड़ को उत्तेजना प्रदान करती हैं सूर्यकिरणों का स्पर्श पाकर तुरन्त ही ज्ञानतन्तुओं में प्रवाह प्रारम्भ हो जाता है और वह मस्तिष्क में होकर सम्पूर्ण शरीर में फैल जाता है। इसी प्रकार सूर्य की किरणें त्वचा के निचले भाग में रक्तवाहिनियों को वेगवान् बनाती हैं, फलतः मज्जातन्त्र और रक्ताभिसरण तन्त्र के आरोग्य पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

सूर्य-स्नान से त्वचा के नीचे विटामिन 'डी' की उत्पत्ति होने से हड्डियोंका विकास शीघ्रतापूर्वक होता है। अस्थिमार्दव शरीर का अपूर्ण विकास तथा अन्य शारीरिक व्याधियों से पीड़ित बालकों को तेल की मालिश करने के पश्चात् सूर्य-किरणों में बैठाने से आश्चर्यजनक लाभ होता है।

सूर्य स्नान से मूत्रपिण्ड, फेफड़ों और आंतों शीघ्रता के साथ होने लगता है। रक्त में हेमोग्लोबिन बढ़ जाता है, फलतः श्वास में अधिक मात्रा में प्राणवायु है। यह प्राणवायु शरीर के अणु-परमाणु में व्याप्त होकर और विकास के कार्य को वेग प्रदान करती है।

छूतके रोग से पीड़ित, निस्तेज, जीवनी शक्ति के वाला, और हड्डियों के अपूर्ण विकासवाला कोई व्यक्ति कहीं दिखाई दे तो समझना चाहिये कि वह व्यक्ति मात्रा में सूर्यकी धूप नहीं खाता।

### "धूप खाने की कला"

सूर्य की प्रातःकालीन अथवा सायंकालीन कोमल कि बैठने से मज्जातन्त्र के रोग दूर होते हैं और त्वचा काली न पड़ती। यदि सूर्यस्नान की व्यवस्था न हो तो प्रातः-सा सूर्य की कोमल किरणों में टहलना चाहिये।

सूर्य-स्नान के समय शरीर में कम से कम वस्त्र धूप में इस प्रकार बैठें कि शिर और आंखोंपर धूप न प तौलिया अथवा छतरी की सहायता से शिरपर पड़नेवा धूप को रोकें।

प्रथम तो शरीर के अग्रभागस्थ पेट, छाती, घुटने इत्या को पांच मिनट तक धूप-स्नान करायें। तदुपरान्त मिनटतक पीठ, कमर आदि पर सूर्य की किरणें पड़ने दें। प्रति सप्ताह थोड़ा-थोड़ा समय बढ़ाते रहें और इस प्रकार अधि से अधिक एक घण्टेतक सूर्य स्नान करें। यदि अधिक धू लेना हो तो प्रातः -- सायं--दोनों समय लेना चाहिये।

सूर्य—स्नान के समय पसीना आता है, इसलिये बारंबार तौलिये से पसीना पोंछते रहें। शरीर के जिन-जिन भागों पर सूर्य की किरणें पड़ रही हों, उन्हें हाथ से रगड़ते-घिसते रहना चाहिये। ऐसा करने से रक्त—भ्रमण की क्रिया सुव्यवस्थित रूप से होती रहती है और मल—विसर्जन शीघ्रता से सम्पन्न होता है।

सूर्य—स्नान के बाद तुरन्त स्नान न करके १०—१५ मिनट के बाद करना चाहिये। स्नान के बाद सूर्य—स्नान करना अधिक लाभदायक होता है। परन्तु सूर्य—स्नान के बाद पुनः स्नान करना आवश्यक है।

सूर्य-स्नान से पहले थोड़ा पानी पी लेने से देह-शुद्धि बहुत अच्छी तरह होती है।

निर्बल और अशक्त रोगी को कोमल सूर्य-स्नान कराया जा सकता है। एक मोटी चादर को शीतल जल में भिगोकर रोगी को गले से घुटनोंतक लपेट दें और इस प्रकार लिटायें, ताकि मुँहपर धूप न पड़े। चादर ज्यों ज्यों सूखती जाये, त्यों,-त्यों उस पर पानी छिड़कते रहें। घुटने के निचले भाग को मोजे या चादर लपेट कर गरम रखें। यह स्नान शक्ति के अनुसार ५ से लेकर २५ मिनट तक किया जा सकता है।

# जीवन साधना

ले०—रामस्वरूप खरे 'दीपक'

जीवन की ज्योति साधना में ही निहित है। बिना के मानव जीवन को यदि पशु तुल्य कहा जाय तो यथा है। साधना के द्वारा मानव हिमालय से ऊँचा उठ सक और साधना विहीन व्यक्ति गर्त में पड़कर जन्म जन्मान दुःख भोगता रहता है। वैसे आत्मा स्वयं तो परमानन्द है पर उसके स्थूल-सूक्ष्म शरीर के संपर्क में आने से दुख का अनुभव होता है। यदि दर्शन पर दृष्टि डाली तो संसार असत्य है। जाग्रदवस्था व स्वप्नावस्था सभी हैं, पर लोकैषणा का जहां प्रश्न है वहां साधना का स्वीकार करना पड़ता है। सच्चे साधक इस लोक में एवं मान पूर्वक जीवनयापन करने के पश्चात् या तो संस्कार से युक्त हो पुनर्जन्म प्राप्त करते हैं अथवा मोक्ष परमपद के अधिकारी होते हैं।

महात्मा गांधी को इतना ऊंचा किसने उठाया? वीर जवाहर की ओर आज क्यों विश्व आंखें लगा रहा है? भगवान् बुद्ध, शंकराचार्य आदि अनेकों महापुरुषों को आत्म साक्षात्कार होने का क्या कारण है? भगवान् राम ने लोक परलोक विजयी महाभट रावण को क्यों कर परास्त किया? ईसा तथा मोहम्मद साहब आज भी यश के शरीर में जीवित क्यों हैं? वेद उपनिषद् आदि का सृजन कैसे हुआ? इन सबके मूल में साधना का ही अस्तित्व था। वास्तव में साधना से असम्भव कार्य भी सम्भव हो जाते हैं, इतिहास इसका साक्षी है।

वस्तुतः निरन्तर संयम का नाम ही साधना है। मन में कुत्सित विचारों के प्रविष्ट होते ही पाप के बीजों का वपन हो जाता है। फिर निश्चित ही उससे पौधा उगता है और जैसे फल उस पौदे से मिलेंगे यह एक साधारण कल्पना की बात है। वास्तव में मन, बचन एवं कर्म में एकता या समानता रखने को ही सत्य या साधना कहते हैं। जब व्यक्ति कुछ विचार करता है तब उसका मन कर्म रत होता है। इसी प्रकार जब वह कुछ कहता है तो उसकी जिह्वा कर्म करती है और जब वह हाथ पैर आदि स्थूल अंगों से कुछ करता है तब भी वह कर्म ही है। इसका तात्पर्य यह हुआ कि कर्म विचार से ही प्रारम्भ हो जाता है। कुछ इच्छा उत्पन्न होते ही उसकी पूर्ति का साधन खोजा जाता है। यहां विचार रूपी कर्म होता है। तत्पश्चात् स्थूल कर्म होता है। मन में कुविचार आने

न देना ही बुद्धिमानी है। यह कोई कठिन कार्य नहीं। सतत अभ्यास से अत्यन्त सुगम हो जाता है, और अल्प में ही मानव कुछ का कुछ हो जाता है।

अधिकांश लोगों की यह धारणा है कि साधना में कष्ट होता है। मैं तो कहूँगा यह मात्र भ्रम है। भले ही कुछ हो, पर उस कष्ट को ही क्यों ध्यान में रक्खा जाय! भविष्य में होनेवाले सुख पर विचार क्यों न किया जाय। साधना के समय के स्वल्प कष्ट की यदि भावी भव्य महत्व से तुलना की जाय तो उसे कष्ट कहा ही न जायगा। सच तो यह है कि उस सुख का कोई महत्व नहीं जो किसी वेदना के मूल्य पर प्राप्त न किया गया हो। अभ्यास से जीवन ही साधनामय बन जाता है और सफलता चारों ओर से घेर लेती है। साधक जहां जाता है, जिस ओर पग रखता है, जिस शुभकार्य में हाथ डालता है, सफलता उसका जन्मसिद्ध अधिकार बनकर उसके समक्ष करबद्ध खड़ी हो जाती है। महाबुद्धिमान् चाणक्य का कथन है कि जो एक सम्वत्सर तक भोजन करने में मौन धारण करता है उसे एक करोड़ वर्ष पर्यन्त स्वर्ग में सुख प्राप्त होता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से भी यह अत्यन्त लाभदायक है। जो भोजन के समय मौन रहने का अभ्यास करते हैं, उन्हें कुछ ही दिनों में सफलता मिल जाती है और उनका स्वभाव भी तदनुसार बन जाता है। आप ही विचार करें, उनको इस साधना में क्या कष्ट हुआ। आप भी साधारण सी साधना करके बड़ा लाभ उठा सकते हैं।

शांत चित्त से किया गया भोजन शुभ फलदायी होता है। मौन से चित्त स्वतः शांत रहता है। उद्विग्नावस्था में भोजन करने से स्थूल-सूक्ष्म शरीर में एक प्रकार का विष उत्पन्न हो जाता है जो किसी न किसी रूप में कष्ट कारक होता है।

जीवन को दुखमय एवं भारस्वरूप बनाने में दुर्व्यसन ही मूलकारण हैं। सर्वप्रथम मैं मादक द्रव्यों को ही लेता हूँ। जो जो लोग धूम्रपान या मद्यपान आदि के आदी होते हैं उनका विवेक नष्ट-भ्रष्ट हो जाता है। उनका जीवन स्वयं को तो भारस्वरूप हो ही जाता है साथ ही उनके कुटम्बियों को भी महान् कष्ट उठाना पड़ता है। समाज में उनका सम्मान नहीं के बराबर रह जाता है। जो किसी दुर्व्यसन के रंग में नहीं रंगे हैं वे सौभाग्यशाली हैं। हां, उनसे एक बात कह दूं। वे कभी ऐसी स्थिति न आने दें कि एक बार भी कोई कुकृत्य कर लें। जैसे यह सभी जानते हैं कि बिच्छू के डंक मारने से अत्यधिक पीड़ा होती है, तो कोई यह अनुभव करने के लिये कि कैसी पीड़ा होती है, बिच्छू से आपको दंशित नहीं करवाता, इसी प्रकार दुर्व्यसन का दुष्परिणाम जानते हुये भी एक बार ऐसी भूल कभी न करना चाहिये। जो दुर्व्यसन में पड़े हैं वे भी उसे बुरा ही बतलाते हैं। जैसे धूम्रपान करने वाला कहता है कि इससे बहुत हानि होती है, पर क्या किया जाय लत जो पड़ी है। कोई यह भी समझते हैं कि दुर्व्यसन में क्षणिक ही सही, पर आनन्द मिलता है। यह नितान्त भ्रमपूर्ण धारणा है। विचार करें कि जो कोई कभी धूम्रपान नहीं करता उसे यदि ऐसा करने दिया जाय तो उसकी क्या

दशा होगी ? क्या उसे आनन्द मिलेगा ? नहीं ! सिर उठेगा तथा महान् कष्ट होगा। यह कहा जा सकता है अभ्यस्त हो जाने पर कोई दुष्कर्म करने में कष्ट नहीं फिर भी आत्मा मसोसती है, पर इस ओर ध्यान नहीं जाता है।

कुछ लोगों का कथन है कि बहुत समय अभ्यस्त पर कोई व्यसन छूटना असंभव है या अत्यन्त कठिन है। कहते हैं पुरानी आदत छोड़ने से कष्ट होगा। यह मैं के साथ कह सकता हूं कि कोई भी लत कितनी भी हो अत्यन्त सुगमता से छोड़ी जा सकती है। इसमें भय भी कोई कारण नहीं। मैंने कतिपय व्यक्तियों से त्यागने का अनुरोध किया; उनमें से अधिकांश ने छोड़ दिया। वे अब सुख और शांति का अनुभव कर रहे कुछ दीर्घसूत्री छोड़ने के कुछ समय पश्चात् पुनः प्रयोग लगे, फलतः दुःखी भी रहते हैं और भविष्य में क्या होगा इसका वे विचार नहीं करते। कुछ लोग अस्थिर अशक्त मन के कारण सफल न हो सके। ऐसों का व्यर्थ ही नष्ट होता जाता है। समाज को उनसे कोई आशा है। अभी कुछ ही महिनों की एक घटना है। मेरे जिनकी आयु लगभग ६५ वर्ष है, श्वास-कास से पीड़ित थे। औषधि मात्र से उनको घृणा है। मैंने उनको छोड़ने की सम्मति दी। आश्चर्य का कोई कारण साधारण सी बात है और सत्य घटना है। लगभग

साल से जो धूम्रपान का व्यसन उनके साथ था एकदम छोड़ दिया। कुछ ही दिनों में खांसी और दमा का दम टूट गया। स्वास्थ्य उन्नत होने लगा! छोड़ने में या छोड़ने के पश्चात् किसी प्रकार का कष्ट नाम मात्र भी नहीं हुआ। एक ६० वर्ष के सज्जन, जो विलकुल जर्जरकाय होकर जीवन के आनन्द से हाथ धो बैठे थे, केवल धूम्रपान छोड़ने के कारण ही आज पूर्ण स्वस्थ हैं और बालकों की भांति दौड़ने में समर्थ होगये।

व्यसन रस्सी की भांति होता है। उसमें बार बार एक २ बट लगती रहती है और वह उत्तरोत्तर सुदृढ़ होती जाती है। एक एक बट खोलने से काम नहीं चलेगा यथाशीघ्र उस रस्सी को तोड़कर फेंकने में ही बुद्धिमानी है। कोई व्यसन छोड़ना है तो एकदम ही छोड़ा जा सकता है। धीरे २ कम करने से वह कभी नहीं छूटेगा। एक बार प्रतिज्ञा कर ली कि अब ऐसा कभी नहीं करना है तो फिर कोई शक्ति ऐसी न होनी चाहिए जो एक बार भी आपको उस ओर धकेल दे। 'एक बार और' एक ऐसा कुल्हाड़ा है जो इच्छा शक्ति की जड़ों को ही काट डालता है। 'करो या मरो' वाले सिद्धांत को सामने रखकर मानव ने विश्व में कैसे कैसे महान कार्य कर डाले हैं।

मद्यसेवियों के जीवन की घटनायें हम सुनते रहते हैं। वे एक व्यसन में पड़कर कितने कुकृत्य करते हैं, यह सर्व विदित है। जुआरी अपना घर उजाड़ कर कुटुम्बियों के सुख चैन से होली खेलकर टुकड़े-टुकड़े के लिये दर-दर ठोकरें

खाते हैं, ऐसे भी अनेक उदाहरण हैं। इसी प्रकार विषय के प्रेमी वीर्यहीन, बलहीन, कान्तिहीन, हतोत्साह, सं और समाज में अपमानित होकर श्रेष्ठ मानव जीवन आहुति पर अर्पित कर देते हैं। धर्म और नीति के अनु अपनी विवाहिता स्त्री से केवल सन्तानोत्पत्ति हेतु ही सह करना चाहिये, तब परनारी गमन तो कितना घृणित निन्दनीय है। इस विषय पर ब्रह्मचर्य शीर्षक से सविस्तर लिखूंगा। वास्तव में कोई भी व्यसन हो पड़ने का एक ही कारण होता है, मानव जीवन के महत्व न समझना तथा उससे त्राण पाने का एक ही उपाय है, इच्छा शक्ति और साधना।

साधना में अपार आनन्द है। जब कोई किसी दुर्व को छोड़ने के लिये कटिबद्ध हो जाता है तो उसे अवश्य सफलता प्राप्त होती है। प्रलोभनों से बचने का एक एक भी जीवन की महान् सफलता है। इसीमें मानव आनन्द अनुभव करता है। उसका साहस बढ़ता है तथा इच्छा श उत्तरोत्तर दृढ़ होती जाती है। साधना बीज है, सच्चरित्र उसका पौधा है और सफलता उसका मधुर फल है। स्वर्गीय विभूति है।

सात्विक आहार, आसन एवं प्राणायाम निश्चित रूप साधना में सहायक और इच्छा शक्ति को दृढ़ करने में अमो अस्त्र है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में सच्ची लगन से साध की जाय तो सफलता अवश्यम्भावी है।

(सर्व हिन्दी परीक्षोपयोगी साहित्यिक लेख)

# खण्ड-काव्य

ले० कृष्णलाल बजाज 'प्रदीप'

काव्य के मुख्य दो भेद होते हैं—दृश्य तथा श्रव्य। जिस काव्य का पूर्ण आनन्द रंगमंच पर देखने से मिलता है उसे दृश्य तथा जिसका पूर्ण आनन्द सुनने से मिलता है उसे श्रव्य-काव्य कहते हैं। दृश्यकाव्य पुनः दो प्रकार का होता है-रूपक तथा उपरूपक। रूपक तथा उपरूपक क्रमशः दस तथा अठारह प्रकार के माने गये हैं। श्रव्य काव्य भी शैली भेद से तीन प्रकार का होता है—गद्य, पद्य एवं चम्पू। छन्द के बन्धन से रहित रचना गद्य, छन्दोबद्ध रचना पद्य तथा गद्य पद्यमयी रचना चम्पू कहलाती है। काव्यशास्त्रियों में पद्य को दो भागों में विभक्त किया है प्रबन्ध तथा मुक्तक। जिस रचना में अर्थ-ज्ञान के समय पूर्वापर सम्बन्ध की आवश्यकता होती है उसे प्रबन्ध तथा जो रचना पूर्वापर सम्बन्धकी अपेक्षा नहीं रखती उसे मुक्तक कहते हैं। प्रबन्ध भी दो प्रकार का होता है—'महाकाव्य' तथा 'खण्डकाव्य'!

खण्डकाव्य की परिभाषा करते हुए साहित्य दर्पणकारने लिखा है कि—

"खण्डकाव्यम् भवेत् काव्यस्यैकदेशानुसारी च"

खण्डकाव्य, महाकाव्य के किसी एक देश का अनुसरण है।' वह गल्प तथा एकांकी की तरह संक्षिप्त शैलीको कर चलता है। अतैव उसका क्षेत्र भी महाकाव्य की सीमित होता है।

जहां महाकाव्य मानव-जीवन के चारों ओर फैली अनेक समस्याओं तथा गुत्थियों को सुलझाते हुए सहृदयों आनन्दविभोर करता है, वहां खण्डकाव्य मानव-जीवन किसी एक ही मार्मिक प्रसंग को चित्रित करके पाठकों चमत्कृत करता है। यदि महाकाव्य विशाल पुष्पवाटिका तो खण्डकाव्य गुलाब की उस छोटी-सी क्यारी के समान जो अपनी भीनी सुगंध से रसिक मन-मधुपों को उसके का स्वच्छन्द प्रवाह, शरत्काल की उस गहरी तथा नदी की तरह प्रवाहित होता है जो वर्षाऋतु की अगाध की नाई-सदृश इधर--उधर मोड़ तो नहीं खाती, परन्तु गति से पाठकों के मन को अपने साथ बहा ले जाने की अद्भुत् क्षमता रखती है। इस प्रकार एक देशीय होते हुए खण्डकाव्य स्वतः पूर्ण होता है और यह उसका एक गुण माना जाता है। यही कारण है कि महाकाव्य के एकाधिक सर्ग को खण्डकाव्य नहीं कहते क्योंकि उस पूर्णता नहीं होती और उसे समझने तथा समझाने के पूर्वापर सम्बन्ध की अपेक्षा होती है। छन्द-सौष्ठव प्रकृति--चित्रण भी खण्डकाव्य की एक विशेषता है, जो सहृदयों

के मन को द्रवीभूत करके उसे आनन्द-सागर में डुबा देती है। उक्ति वैचित्र्य तथा भाव-निरूपण का ढंग भी सुन्दर तथा सजीव होना चाहिये और उसके साथ ही उत्कट-संवेदन तथा गहरे-गंभीर मंथन का होना भी आवश्यक ही नहीं अपितु परमावश्यक-अत्यावश्यक है। कुछ विद्वानोंके मतमें छन्द-वैविध्य भी जरूरी है, परन्तु सर्वत्र इस नियम के दर्शन नहीं होते।

इस प्रकार नाटकीय प्रसंग तथा प्रभावशाली चरित्र-चित्रण तो खण्ड-काव्य की जान है, जिन के अभावसे वह कागज के उस निर्गंध फूल के सदृश हो जाता है, जिस की चमक को देखकर मधुप्रेमी भ्रमर उसकी ओर आता है तो अवश्य है, परन्तु शीघ्र ही अपने दुर्भाग्य को कोसते हुए वहां से निराश होकर उड़ जाता है।

हिन्दी साहित्य में कतिपय सुन्दर खण्ड-काव्यों की रचना हुई हैं। आधुनिक खण्डकाव्यों में श्रद्धेय राष्ट्रीयकवि मैथिली शरण गुप्त के "जयद्रथ वध" तथा 'पंचवटी' कला तथा सौंदर्य की दृष्टि से सर्वसुन्दर प्रतीत होते हैं। उनमें चरित्र-चित्रण, नाटकीय प्रसंग, कथा-प्रवाह, उत्कट संवेदना तथा प्रकृति चित्रण का अपूर्व सौंदर्य मिलता है। उनके 'अनघ' तथा 'नहुष' का भी कम महत्व नहीं है। इसी प्रकार श्री रामनरेश त्रिपाठी के 'मिलन' तथा 'पथिक' में खण्डकाव्य के प्रायः

उन समस्त गुणों का समावेश दृष्टिगत होता है, जि
में उसका अस्तित्व ही नहीं रह जाता । श्री नन्द
'भ्रमर-गीत' एवं श्री रत्नाकर के 'गंगावतरण' तथा
शतक भी अपना निजी महत्त्व रखते हैं । श्री नरोत्त
का 'सुदामा-गीत' भी मनोहर खण्डकाव्य है । प्रातः
पूज्य गोस्वामी तुलसीदासजी के 'जानकी-मंगल,' तथा
का 'नहुष' खण्डकाव्य के गुणों से युक्त होते हुए गेय

* * *

अपने घर पर ही सबसे नये मौडल की कार पर,
एक सप्ताह में मोटर चलाना सीखें, ४२ वर्ष में
२३००० से भी अधिक प्रशिक्षित हुए,
सदा याद रखें
जंजीरा मोटर स्कूल
(भेंडी बझार बम्बई ३ शाखायें फोन :
७, क्वीनस रोड चर्नी रोड क्राफर्ड मार्केट, ब्रोडवे सिनेमा
रेल्वेस्टेशन के सामने बम्बई ३. दादर
फोन : २७४१५ बम्बई १
महिलायें निपुण महिलाओं द्वारा
शिक्षित की जाती हैं

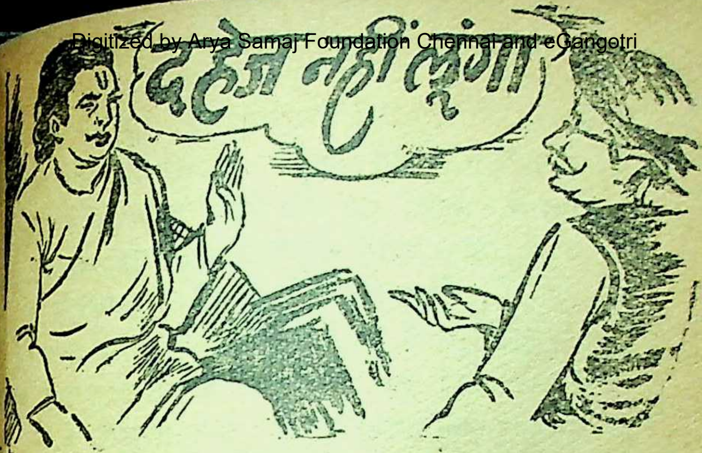

ले० दुर्गाशंकर त्रिवेदी वेदालंकार

—"देखिये सेठजी ! अब फिर आपके मुंह से 'दहेज' शब्द भी सुना तो यह रिश्ता सदा के लिये समाप्त हो जावेगा। साहब ! जरा खानदान देखकर तो बात करते, फिर हम समाज सुधारक जो ठहरे। दहेज दहेज चिल्ला चिल्लाकर क्यों हमारे मुंह कालिख पुतवाने का विचार कर रहे हो।"

—"नहीं साहब, सेठ साहब आप भी क्या बात करते हो जी, आप तो मेरे सर के ताज हो। मैं गुस्ताखी कर ही कैसे सकता हूँ आपके साथ। रही खानदान की बात, वह तो हंस की तरह है, तभी तो यह सेवक आपके यहां संबंध जोड़ने को उत्सुक है।"

—"लालाजी, वखत वखत की बात है। पर हमें लड़कों

का बेचना नहीं सुहाता है। अरे राम, राम ये समाज के दार भी क्या धरे हैं सब के सब "दूध और पूत भी कहीं जाते होंगे।" राम राम घोरकलजुग आग्यो है सेठजी रही नाना की बात, वह भी दहेज का पक्का विरोधी फिर अपनी नाक थोड़े ही कटानी है उसे, फिर लि पढ़ाई की है, फिर आलादर्जे की नौकरी, अणी वास्ते दहेज की बात भूल ही जावो तो यो सौदो जम्यो
—"अरे साब हम तो आपके चरणों के दास हैं, आप बिलकुल वजा फरमा रहे हैं। कान पकड़ता हूँ, जो दहेज का नाम भी लूँ।"

—हाँ, अब आये सेठ तुम पटरी पर। बस हमें कुछ चाहिये, बस लड़की पढ़ी लिखी हो, सुन्दरतामें अद्वितीय खर्च करने में कंजूस हो, फरमाइश में शर्माती हो। तो मेरा आप समझ ही गये होंगे कि एक औसत दर्जे अच्छी कही जा सके ऐसी बहू मैं चाहता हूँ। लेकिन वह मैं नहीं चाहता, अरे राम बेचने को तो सतरा सौ चीजें धरी हैं पर लोग फिर भी लड़कों का सौदा करते शरमाते, हाय राम! पर सेठ साहब क्या करूँ मैं तो लड़के के नाम पर दहेज नहीं ले सकता हूँ। आखिर लता' का बलिदान व्यर्थ थोड़े ही जाने दूंगा मैं, मैं तो ग्रहण कर चुका हूँ उससे।"

—"अरे सेठसाब, भूल हुई दास से। आजकल ही जरा नाजुक है, अणी वास्ते बात निकाली थी जरा

फिर भी शादी के वास्ते थोड़ा बातें तो करना ही पड़ेगा। पर सब काम आपकी मर्जी से ही होगा। मैं तो बस आपके इशारे पर नाचने को तैयार हूँ, फिर आपको जो पसन्द आवे।"

—"लालाजी, सुन लो बेटा ठहरा, करोड़पति बाप का अकेला, फिर फारन में पढ़ा हुआ। गांवड़े में कैसे जावेगा? अब, मेरा विचार है कि विवाह आप इंदौर में ही करें तो अच्छा रहेगा।"

—"पर सेठजी, मेरे घर पहली शादी है, यदि घर पर ही होती तो जरा ठीक था।"

—"बात तो आपने पते की कही, पर जरा मेरी मजबूरी और छोकरे के 'एडीकेट' का भी जरा ध्यान रखो। फिर बारात में बड़े बड़े सेठ, अधिकारी; रिश्तेदारों की फौज आदि का मन तो वहां लगेगा भी नहीं। इसलिये आपको यदि संबंध करना ही हो तो बस, ब्याह आपको इन्दौर ही करना पड़ेगा।"

—"अरे सेठसाब, जरा हमारी परिस्थिति पर भी गौर फरमाइये। यहाँ हम सब लोग एकदम लफड़े में पड़ जावेंगे। नया नया घर बसाना भी जरा मुश्किल ही रहेगा। फिर जरा गरीबी की समस्या तो आपसे छिपी नहीं है।"

—"अरे सेठ! तुम भी क्या रोनी सूरत ऐसे शुभ मुहुर्त में बना रहे हो। यहां 'लक्ष्मीबाई नगर' में एक कोठी किराये पर करवा दूंगा। पांच दस आदमी मेरे विश्वासी आपके लिये ढूंढ़ दूंगा। सामान जुटा देंगे वे, सब काम कर देंगे।"

"—-किराये आदि का खर्चा वर्चा क्या आवेगा

—"बस सेठ, यही कोई चार, छ हजार एक लेगा, बस एक महीने को रख लेना।"

—-"अच्छा तो सेठजी, आपकी यह शर्त भी हमें मैं इन्दौर में ही अपनी लाड़ली के हाथ पीले करूँगा, आपकी मर्जी के खिलाफ...।

—-"और देखो बारातियों की खातिर तवज्जो बढ़िया होनी चाहिये कि मेरी शान पर धब्बा नहीं आवे।

—"अरे राम राम, सेठसाब कई बात करो तुम्हारी इज्जत नहीं रखेंगे तो फिर किस की रखें जरा इसमें खरचा वरचा क्या होगा, जरा आंकड़े तो

—"सेठ, बस यही ५, १० हजार काफी है। हम ज्यादा खरच नहीं करवावेंगे।".... पर लालाजी लिये आप जो सुट सिलवायें वह बेशकीमती हो, एक और एक सूती सुट जिसपर जरी का सुन्दर काम हो। हां बनारस की बुनाई और 'कार्नर टेलर्स' की सिलाई पर हो।"

—"पर इस पर खर्च क्या आयेगा।"

—...."कमसे कम पांच सात सौ तो समझो।"

"यह तो मंजूर ही समझो, सेठ। और कुछ बात हो जरा बता दो ताकि पेन मौके पर कोई तकलीफ न मुझे पूछना पड़े और न आपको।"

"सेठजी, नगदी लेन देन के तो हम पक्ष में है ही नहीं। फिर हम दहेज के बारे में कह ही चुके हैं। अतएव इस बात का ध्यान रखना। कहीं देने मत लग जाना नहीं तो मेरी नाक कट जावेगी।"

—"अरे साहब, यह कृपा तो भुलाये नहीं भूलूंगा, और कोई इन्तजाम संबंधी बात।"

"अरे राम, हां एक बात है आप गोदान में गाय वाय मत देना, नहीं तो इस इंदौर में 'सोने से घड़ाई मंहगी' ही समझो। फिर पाप और साला सिर पड़ेगा।"

"लेकिन उसके बिना तो सब मामला बिगड़ जावेगा कि 'रोती के साथ रांभती देनी ही पड़ेगी।"

"अरे साब आप भी पूरे रात के राजा दिखते हो, बात क्या है, नगद दे देना। हम बहू के नाम किसी बैंक में जमा कर देंगे।"

"तो फिर क्या देना चाहिये ताकि प्रतिष्ठा बनी रहे"

'अधिक तो नहीं, १-२ हजार काफी है।'

'ऐसा ही करूंगा, साहब और कोई आदेश'

'.......हीं हीं, हीं... मैं भूल रहा था हां अंगूठी,...जो वर को दो उसमें असली हीरे हों। कार, रेडियो, टी सेट, बर्तनों के सेट, सोफा सेट आदि सबके सब स्टेण्डर्ड क्वालिटी के होने चाहियें।'

.......(सिर झुकाते हुये) "अच्छा साहब"

'अच्छा तो साब चलूँ; फिर रिस्ता तय रहा।'

'हां, हां जाओ लालाजी, पर देखना तुम्हारा दकियानूसी विचारों का है। फिर तुम गोबड़े के गस्सड़ अब हमारी केटेगिरी में आना है तो जरा ध्यान खर्च खूब जी खोलकर करना, नहीं तो......।'

"हां सेठ साहब अच्छा अब इजाजत दीजिये। जय श्री कृष्ण !

"जय श्री कृष्ण !"

अरे जरा सुनो हमने दहेज इसीलिये तय नहीं किया पर ध्यान रखना शादी खूब जमकर होनी चाहिये। एक लाख तो खर्च कर ही देना।

"जब आपके साथ रिस्ता जुड़ा है, तो आपसे वादियों से यही आशा है।"

UMESH YOGA DARSHAN

# उमेश योग दर्शन

(प्रथम खंड)

ले० योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

गुजराती, हिंदी, मराठी व अंग्रेजी इन चार भाषामें प्रसिद्ध है

'उमेश'योग-दर्शन' ग्रन्थ में अष्टांग योग के तीन अंगों यम, नियम, आसनका समावेश किया गया है, शेष पांच अंग द्वितीय खण्ड के अन्तर्गत लिये जायेंगे। द्वितीय खण्ड छः मास के पश्चात् प्रकाशित होगा। 'उमेश-योगदर्शन' में १०८ से अधिक आसनोंके छायाचित्र (फोटो) हैं। छायाचित्र ग्लेज आर्ट पेपरपर छापे गये हैं नेति, धौति, नौलि, त्राटक, कपाल भाति बस्ति (एनिमा की यौगिक रीति) है। इनको मलशोधन कर्म अथवा षट् कर्म भी कहा जाता है। मानव शरीरमें आहार, जल वायु आदिसे जो स्थूल तथा सूक्ष्म और रोगोत्पादक विजातीय द्रव्य बनता है, उसे शरीर से बाहर निकालने के लिये जो सुलभ तथा महत्वपूर्ण प्रयोग (क्रियाएं) हैं, उनको मलशोधन कर्म के नाम से पुकारा जाता है। इस बात सेइनकार नहीं किया जा सकता कि धन से, सम्पत्ति से सम्पन्न बनकर

शारीरिक पीडा,मानसिक चिन्ता,अस्थिर जीवनयापन, जीवन एव गृहक्लेश से मुक्त रह कर अपना सुखमय बनाना चाहते हो तो इस ग्रन्थ को अवश्यमेव पढ़िये। योगदर्शन' ग्रन्थमें मात्र शारीरिक पीडाओंको दूर वान् बनने का ही मार्गदर्शन नहीं है,अपितु सूक्ष्म शरीर मनकी बीमारी-अस्थिरता चंचलता आदि को दूर बल, इच्छा बल बढ़ाने और मनको विशुद्ध बनाये लिए अतीव सुन्दर ( मनोवैज्ञानिक ) उपाय बताये निस्सन्देह इस ग्रन्थसे आप स्वयं लाभ उठा सकते हैं, अपने परिवार तथा इष्ट मित्रोंको भी लाभ उठानेका दे सकते हैं। पुस्तककी पृष्ठ संख्या ४०० से भी अधिक

उमेश योगदर्शन की विशेषता इससे स्पष्ट लक्षित है कि अभी इसे प्रकाशित हुए एक वर्ष भी नहीं हुआ भी उसके नाम से भारत ही नहीं अपितु समस्त बिचारवान मानव परिचित हो चुके हैं, और आये उमेश योगदशन की प्रशंसा बिषयक पत्र रामतीर्थ योगाश्रम प्राप्त होते हैं। अतः जिन भाइयों को इसका अभी परिचय मिला होवे यथा शीघ्र इससे लाभान्वितहों।

मूल्य—१५. ०० रु०, डाकव्यय २.०० रु

प्राप्तिस्थान:-श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर, बम्बई १४

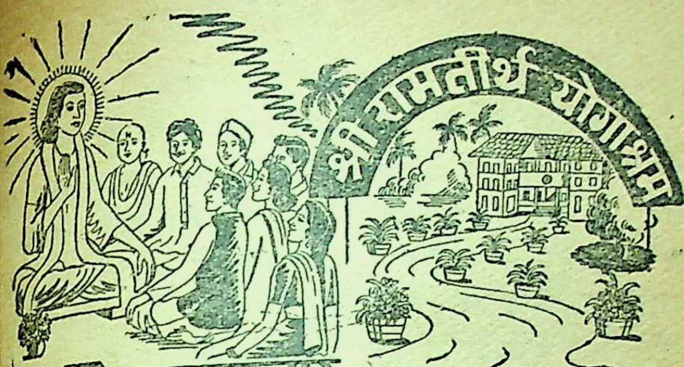

# मासिक समाचार

## सितम्बर मास में आश्रमांतर्गत दिये गये सार्वजनिक भाषणों का सारांश

~~~~~~

**वक्ता**—योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी
**विषय**—बवासीर निवारणार्थ यौगिक व प्राकृतिक चिकित्सा।
**समय**—रविवार २६ । ८ । ६२ प्रातः १० बजे

सज्जनो, आज हम आपको यौगिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा की दुनियामें ले चलेंगे । रामतीर्थ योगाश्रममें सप्ताह में एक दिन वेदान्त, योग, भक्ति आदि आध्यात्मिक विषयों और आत्मदर्शन के विषय में व्याख्यान होता है और एक दिन तन-मन के रोगों के निवारणार्थ प्रयोग पूर्ण व्याख्यान होता है, जिसे सुनने के लिये प्रायः विदेशी लोग भी आते रहते हैं।
~~~~~~

## बवासीर

इसे हरस मसा या मूलव्याधि भी कहते हैं। श्रो समझ गये होंगे कि मूल व्याधि का संक्षिप्त अर्थ मलद्वार ऊपर के भाग में होने वाला रोग। इस रोग का सम्बन्ध द्वार के साथ है। यह रोग अनेक प्रकार का होता है। वातजन्य, पित्त जन्य, कफजन्य, सन्निपातजन्य, शोणित ऐसे मुख्य ६ प्रकार के माने गये हैं। आयुर्वेद में भी उल्लेख है। इनमें भी मुख्य दो हैं—खूनी (रक्त मय और सूखी। मलत्याग के समय इससे सामान्य असह्य वेदना होती है। मलद्वार में सूजन होती और रण अथवा असह्य दाह होता है। चलने में भी वेदना है। रोगी परेशान रहता है।

## रोग के कारण

मलावरोध इसका बहुत बड़ा कारण है। कुरसी-टेब बैठकर काम करने वाले इस रोग से अधिक पीड़ित रहते उदरगत अवयवों को किसी प्रकार का व्यायाम न मिलने पाचन-शक्ति मन्द हो जाती है। कब्ज बढ़ जाता है। आंत में मल संचय अधिक समय (कभी-कभी २-३ दि तक हो जाता है। यह मल बड़ी आंत के निचले भाग में लगता है, दुर्गन्धि युक्त मल में अधिक गरमी (उ उत्पन्न होती है, जिससे सूजन पैदा होती है। मलाशय गरमी बढ़ जाने से रक्त-संचार बढ़ जाता है और वहीं मलद्वार से निकल जाता है। यदि मल-विसर्जन प्रति

ठीक रूप से हो जाये तो बवासीर रोग न हो और हो तो मिट जाये। जुलाब लेने की आदत से कब्जियत बढ़ती जाती है और अन्तमें जुलाब की मात्रा बढ़ानी पड़ती है और जल्दी-जल्दी लेनी पड़ती है। इतना होने पर भी कभी जुलाब की दवा से भी सन्तोषजनक रूपसे मल-विसर्जन नहीं होता। इसलिये जुलाब की दवा नहीं लेनी चाहिए। सब्जी, भाजी सलाद, फल, दूध आदि के सेवन से मलविसर्जन खुलकर होता है।

( सज्जनो, अब आप के समक्ष श्री रामतीर्थ योगाश्रम के एक साधक सज्जन यौगिक आसनों का प्रयोग--प्रदर्शन करेंगे और तत्पश्चात् मैं प्राणायाम का अभ्यास दिखाऊँगा। )

बवासीर रोग से मुक्ति पाने के लिये नौलिकर्म १ मिनट, लोलासन १ मिनट, तोलांगुलासन १ मिनट, हंसासन १ मिनट मयूराआसन १ मिनट; मूलबंध १ मिनट, उड्डीयानबन्ध २ मिनट, अश्विनी मुद्रा १ से २ मिनट, वस्ति कर्म करें। प्रातः काल स्नान- सन्ध्या- पाठ से निवृत्त होकर योगाभ्यास करें।

## आहार-प्रयोग

प्रातःकाल उठते ही मुख, मार्जन करने के बाद १४ औंस ठण्डे जल में सत इसबगोल की भूसी घोल कर पाव से आधा तोला पीलें। आसनाभ्यास के बाद गाय का दूध आठ औंस, सूखे अंजीर ४, शुद्ध घी में तैयार की गई जलेबी ५ तोला इन सबका नाश्ता करें।

## मध्याह्न का भोजन

छिलके सहित मूंग की दाल की खिचड़ी ( खि अदरक का चूर्ण, थोड़ा-सा सैंधव नमक, जीरे का चूर्ण गुलाब के फूल ) पत्तो वाली सब्जी ( पालक, बथुआ, चौ मेथी, पुनर्नवा ) प्रतिदिन नई-नई सब्जी, शाक आदि उपयोग करें। सब्जी को उबालते समय धनिया, जीरा, सैंधव नमक, नीबू का रस, नारियल थोड़ा सा छोड़ें। के रोगी के लिए तेल अनुकूल नहीं है, घी हितकर खिचड़ी में घी छोड़ सकते हैं। गाय का घी श्रेष्ठ है।

वर्ज्य वस्तुएँ—हींग, लहसुन, मिर्च, इमली, तली हुई वस्तुएँ, गरम वस्तुएं हानिप्रद हैं।

अपरान्ह ४॥ बजे ६ औन्स गाय के दुध के साथ ४ सूखे लें। सायंकालीन भोजनमें सूरन ( एक प्रकार का जल में उबालने के बाद पेट भर करें। स्वाद के धनिया, जीरा आदि मिला लेना चाहिये। मूलव्याधि के रण के लिये सूरन, जलेबी, खिचड़ी, रागी ( नगली ) का इलाज रामबाण है। यह सब प्राकृतिक शुद्ध आहार-पदार्थ हैं यदि केवल सूरन खाने में स्वाद न मिले उसके साथ तुवर की दाल की खिचड़ी ले सकते हैं। भोजन के साथ सूरन लिया जा सकता है। रागी मार्के से दूकानों में प्राप्त होता है। दूध के साथ पाव २ तोला में दो बार ले सकते हैं। मूली और लौकी का साग निस्सन्देह लिया जा सकता है।

वक्ता- वीतराग श्री. १०८
नारायण स्वामीजी

# भक्ति योग

समय—रविवार २९-७-६२ प्रातः काल १० बजे

आदरणीय सज्जनो !

भक्ति का वास्तविक उद्देश्य है मानव-बुद्धि को पवित्रता की ओर ले जाना। भक्ति के साधन से भगवान् के प्रत्यक्ष दर्शन की उपलब्धि होती है। वर्तमान काल में समाज में जो अविवेकपूर्ण वातावरण फैलता जा रहा है, जीवन में अंकुश और अनुशासन नहीं, लोग मनमाने आचरण की ओर प्रवृत्त हैं, स्वच्छन्दता बढ़ती जा रही है, उसका एक-मात्र भगवत्-निष्ठ जीवन के प्रति अश्रद्धा, भक्ति-भाव का अभाव। यदि भारत में भक्तियोग की साधना राष्ट्र के व्यापक जीवन का अंग बन जाये तो मानव बुद्धि और तज्जन्य भावनाएं स्वभावतः पवित्रता की ओर प्रधावित होती हैं और राष्ट्र में सुख-शांति-मय आनन्द का साम्राज्य स्थापित हो जाये।। राष्ट्र जीवन के व्यापक कल्याण के लिये भक्ति योग का आश्रय लेना ही पड़ेगा, दुख-दैन्य के रोग से सुरक्षित रहने की यह परमौषधि है।

## प्रेम और अमृत

प्रेममयी भक्ति दो प्रकार की होती है। प्रारंभ में भगवान के विषय में उत्कण्ठित जिज्ञासा उत्पन्न होती है। यह भक्ति तत्व की ओर अग्रसर होने वाली प्रथम मंजिल है, प्रथम अभियान है। दूसरी मंजिल है भगवान् के साथ ओतप्रोत हो जाना, भगवतमय बन जाना। इस अवस्था में पहुंच जाने पर अखिल विश्व ही भगवान्‌मय दिखाई देता है। भक्त सब प्राणियों में भगवान् के दर्शन करने लगता है। भक्त आत्म-विस्मृत=आत्मसमाहित हो जाता है अपने आपको भूल जाता है, उसका ज्ञान, उसकी जीवन कला भक्तिभाव में लीन हो जाती है। उसकी वाणी भगवत् स्तुति बन जाती है, उसके कर्म भगवत् पूजन के रूप में प्रस्तुत होते हैं। यही भक्तियोग की पराकाष्ठा है, अमृत क्या है ? मृत्युसे सुरक्षित रहनेके लिये जो सरल मार्ग अपनाया जाता है, उसी को अमृत कहा जाता है। भक्तिभाव की दिव्य धारा ही अमृत धारा है। जो लोग भक्ति की इस अमृतधारा अवगाहन करते हैं, वे जन्म-मृत्यु के बन्धन से छुटकारा पाकर मुक्ति जीवन के आनन्द में समाधिस्थ होते हैं। मृत्यु का भय बड़ा दुःखदायक है। जन्म-मृत्यु की यह अविच्छिन्न परम्परा ही जीव को चौरासी लक्ष योनियों में भटकती रहती है। अतः मानव का कर्तव्य है कि वह भक्ति की अमृत गंगा में स्नान कर उसके पावन जलपान कर नित्यानन्द की अनुभूति में मस्त रहे।

## भक्ति-रसामृत

भक्तियोग का एक प्रमुख अंग कीर्तन है। कीर्तनमय जीवन के आनन्दका महत्व कम नहीं है। यदि विशुद्ध प्रेम के

पूर्ण स्वरूप की अनुभूति करनी है। और शांति के अमृत-सागर में गोते लगाना है तो कीर्तनमय जीवन व्यतीत करनेके प्रयास करना पड़ेगा। देवर्षि नारद का कहना है कि कीर्तन द्वारा जब भगवदाराधना को सर्वोपरि स्थितिपर ले जाकर अन्तःकरण में प्रतिष्ठित किया जाता है, तब सांसारिक जीवन के भेदभाव से मुक्त होकर साधक भगवान् के दिव्य कल्याण-राज्य में प्रवेश करता है और भगवान् की विराट् प्रेम-महिमा में समाधिस्थ हो जाता है और भक्ति रसामृत का पान कर असीम आनन्द की प्राप्ति करता है।

## नवधा भक्ति

सज्जनो, यह भक्ति योग नवधा अर्थात् नव रूपों में विभक्त है। अर्चन, वन्दन, स्मरण, कीर्तन, दास्य, पादसेवन, आदर, आत्मनिवेदन आदि भक्ति के रूप हैं। जीवन में किस समय षडरिपुओं का प्रभाव बढ़कर संतत करेगा, यह जानना संभव नहीं। इनके उदय के संयोग प्रायः उदित होते रहते हैं न से सुरक्षित रहने का उपाय नवधा भक्ति का श्रद्धापूर्वक साधन है। करुणा-वरुणालय भगवान् की स्तुति, प्रार्थना, आराधना, भजन-कीर्तन और ध्यान पूजन करते रहें और अहर्निश भगवान् के सान्निध्यका अनुभव करते रहें।

## शत्रु-मित्र

नवधा भक्तिका विशेष फल यह है कि इन मनोवैकल्पिक दिव्य भावनाओं का उदय होने पर शत्रु मित्र बन जाते हैं। आपके प्रति शत्रुता या घृणाभाव रखे तो भी आप उसके प्रति सदाचरण का परिचय न दें अर्थात् उसे अमांगलिक दृष्टि से न देखें, उसके प्रति प्रेमभाव प्रकट करें, तभी आप भगवत

कृपाके दिव्य सौंदर्य से समाहित हो सकेंगे। मित्र के मैत्रीभाव और शत्रु को विनयशीलता, बुद्धि कुशलता, ष्णुता, दुःख से उसकी रक्षा के लिये प्रयत्न शीलता, सद्भावना और अन्य गूढ़ शक्तियों का परिचय कराते वश में करने के प्रयास करने चाहिये।

इस प्रकार अपने उदार और पवित्र व्यवहार द्वारा सांसारिक जीवन का सुचारु संचालन करते रहें। इस में भांति--भांति के लोग निवास करते हैं। सबके साथ काल में सम्पूर्ण समाधान पूर्वक रहना अत्यन्त कठिन काम है, फिर भी भक्ति योगके अभ्यास से साधक भगवान् की कृपा से इस योग्यता को प्राप्त कर लेता है और उसके जीवन में सुख, शांति और आनन्द का दिव्य स्रोत उमड़ता रहता है।

सफेद मलम

बी-टेक्स

गजकर्ण, खाज, खरुज, नायटा, इसब,
तोंडावरील मुरुम, हातापायांवर पडणारे
चीरे आणि जनावरांच्या जखमेवर जालीम
बी-टेक्स मुंबई नं. ३.

# * आश्रम समाचार *

प्रवचनकार—श्री खेड़कर गुरुजी
विषय—उपनिषद् कथा ( वेदांत )
दिनांक—१८-८-६२ शनिवार

मूकं करोति वाचालं पंगुम् लंघयते गिरिम् ।
यत्कृपा तमहं वन्दे परमानन्द माधवम् ॥

बंधुओ ! आज का विषय 'उपनिषद्कथा' (वेदान्त) है। सर्व वेदोंका सार उपनिषदोंमें ग्रथित है और सर्व उपनिषदोंका दोहन कर भारतीय तत्त्वज्ञान साररूप में भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें जगत् कल्याण के लिये रखा है। भारतीय तत्त्वज्ञानका अधिष्ठान उपनिषद् ही है। इसमें क्या है? शिक्षणशास्त्र के मूलभूत तत्त्व ही मानो इसमें ग्रथित किये हैं। ब्रह्मज्ञान का आकलन जिज्ञासु को सहज और सरल रूपसे हो, इस हेतु से उपनिषदोंमें छोटी २ कथाओंका उपयोग किया गया है। उपनिषद् वेदोंके ही अंग होनेसे भाष्यकारों ने वेदपुरुष का 'मस्तक' कहकर उनका गौरव किया है। ऐसे सुमंगल एवं तत्त्वज्ञान से परिपूर्ण उपनिषदोंमें सुन्दर २ कथाएं आई हैं। उनमें से एक-दो कथाएँ आपके सन्मुख आज रखनी हैं।

प्रजापति का सुमंगल आश्रम। रम्य उषाकाल का समय मंद २ सुशीतल पवन चराचर सृष्टिको प्रसन्न व प्रफुल्लित करते हुए पारिजात, चमेली, जाई, जुई, रातराणी आदि पुष्पों का सौरभ चारों ओर विखर रहा था। चित्र-विचित्र वृक्ष, रंगविरंगे पुष्पोंकी अगणित मालाएं धरणीमाताको अर्पण कर रहे थे।

पक्षीगण मानो अपने मधुरालापों से ईश स्तवन कर रहे थे इसी स्तवन में मानो धेनु-वत्स अपने गलेमें लटकी हुई घं काओंके कोमल निनाद से साथ दे रहे थे। आरक्त सूर्यबिं पूर्वाचलपर विराजमान था। धीरे २ आश्रमकी चराचर सृ जागृत हो रही थी।

इस पवित्र समयपर आरक्त सूर्यबिंव पर लक्ष्य केंद्रित क भगवान् प्रजापति दर्भासनपर अधिष्ठित हुये थे और सूर्यना यण अपनी सुकोमल किरणों से इस तपस्वी के चरणकमलों मृदुतर स्पर्श कर रहे थे। प्रजापति नित्यक्रमके अनुसर ध्या मग्न हो गये थे।

ध्यान समाप्त होते ही प्रजापतिनें आँखें खोलीं तो देख कि दो युवक शुभ्र वस्त्र परिधान किये हुए, भस्मचर्चि समिधा हाथ में लिये, नतमस्तक हो सन्मुख खड़े हैं। दो आगे बढ़े और प्रजापतिको बंदन किया। प्रजापतिने दोनोंको पहिचाना। उनमें से एक था देव और दूसरा दानव। स प्रकारके सुखोपभोग और स्वर्गन्धपरीके लिये देव-दानव नि ही अच्छे बुरे कर्म करते रहते थे। पापरहित, जरारहि मृत्युरहित, शोकरहित, क्षुधारहित आत्माका जिसको ज्ञान हो उसको सब कुछ प्राप्त होगा, ऐसा देव दानवोंने सुना-सु था। कौन देगा यह ज्ञान ? केवल प्रजापति ही यह ज्ञान दे योग्य हैं, यह बात दोनोंको ज्ञात थी। दोनोंने अपने अपने प्र निधि चुने। देवों का था इंद्र। दानवों का प्रतिनिधि विरोचन। इंद्र और विरोचन यह आत्मज्ञान लेनेके हेतु प्रजा-

पतिके आश्रम में दाखिल हो गये ।

प्रजापतिने दोनों को आश्रम में रहने की अनुज्ञा दी। इंद्र और विरोचन आश्रमका नित्य का कार्यक्रम करते रहे । प्रजापति मूक भावसे दोनोंका का कार्यक्रम देख रहे थे । दिन बीतते रहे, वर्ष–दो वर्ष करते कराते ३२ वर्ष निकल गये । दोनों की निग्रही तपस्या देख प्रजापति पुलकित हो उठे और एक दिन उनको अपने पास बुलाकर मधुरवाणी से पूछने लगे ।

बच्चो ! कहो ! किस हेतु तुम ये कष्ट उठा रहे हो ? क्या चाहते हो ?

दोनों नम्रता और पूज्य भावसे बोले ।

"गुरुदेव ! जरारहित, मृत्युरहित, क्षुधारहित, आत्माको हम जानना चाहते हैं, जिससे हमें पृथ्वीपर और स्वर्ग में सुखोपभोग मिले ।

यह सुन प्रजापति हर्षित होते हुए बोले,—

इंद्र, विरोचन ! मेरी आंखोंमें देखो । क्या दीखता है ?

हमारा ही प्रतिबिंब ! दोनोंने उत्तर दिया ।

प्रजापति—इसीको आत्मा कहते हैं । इसीका नाम है ब्रह्म ।

कुछ समझमें नहीं आया, भगवन् ! इन्द्र और विरोचन बोले । प्रजापति ने एक बड़े थाल में निर्मल जल मंगवाया । इंद्र को जलमें देखने को कहा गया ।

क्या दीखता है ? प्रजापतिने पूछा ।

'मेरा ही प्रतिबिंब, गुरुदेव ! छायापुरुष' ! इन्द्र बोला

विरोचन से भी यही प्रश्न पूछा गया और उसने भी वही उत्तर दिया। बादमें दोनोंको सुंदर वस्त्र, आभूषण पहनाकर फिर उसी जल में देखने को कहा।

अब क्या दीखता है ?

इन्द्र बोला, 'आभूषणों से सजा हुआ मेरा ही प्रतिबिंब।'

विरोचन बोला, 'हां गुरुदेव ! यह मेरी छाया है।'

प्रजापति—इसी को आत्म-ब्रह्म कहते हैं। यह अजर है, अमर है। यह कहकर प्रजापति ने दोनों को छुट्टी दी और कहा, 'जाओ। इस ज्ञानको अपनाकर जीवन सफल करो।'

दोनोंने अपने २ गांवका रास्ता लिया। विरोचन तो आश्रम के कष्टमय जीवन से उक्ता गया था। छुट्टीका तो उसे आनन्द हुआ ही साथ ही साथ आत्माका ज्ञानपूर्ण रूपसे प्राप्त हुआ, ऐसा समझकर हर्षभरित हो भविष्यत् के सुखोपभोगोंका चिंतन करने लगा।

क्या था उसका आत्म ज्ञान ?

देहको वस्त्रालंकार से विभूषित कर आनंद करना, सुखोपभोगोंमें मस्त होना इसीका नाम आत्मज्ञान। इस आत्मनिष्ठ, सुखलोलुप बुद्धिको ही वह ब्रह्मज्ञान समझ बैठा और हँसते-कूदते विरोचन अपने देश में आ पहुंचा। दानवोंने उसका पुष्पमालाएँ पहना कर खूब धूम-धामसे स्वागत किया। और पूछा—"विरोचन ! हुआ तुम्हें आत्मज्ञान ? वह कैसा है ! क्या

है? सब हमें समझाओ। सारा दानव समाज उससे लाभ उठायेगा।'

विरोचन बोला 'सजधजकर विलासमय जीवन व्यतीत करना, यह जीवन अजर है, अमर है। बस यही प्रजापति का आत्मज्ञान है।'

दानवों के आनन्दकी अब सीमा न रही। वे अब ऐहिक सुखोपभोग में ही मग्न हो गये और उनकी संस्कृति भोगमय बन गयी।

इधर इन्द्र प्रजापतिने जो सूत्ररूपसे कहा था, उसपर विचार करते हुए जंगल और पहाड़ियोंमें से जा रहा था। मार्ग में उसे एक जलाशय मिला। थकावट और प्यास से वह त्रस्त था। अंदर जाकर इन्द्र जल पीने लगा। क्या देखा उसने जलमें? वही छायापुरुष अपना ही स्वच्छ प्रतिबिंब। मस्तक पर अस्त व्यस्त आये हुये बाल पीछे करने के लिये उसने सरपर से हाथ घुमाया। तुरन्त ही उस छाया पुरुष ने भी वैसे ही हाथ घुमाया।

इन्द्र चौंक पड़ा। अरे यह कैसे? यदि हाथ टूट गया तो? यदि यह देह नष्ट हुआ तो? यह छाया पुरुष भी नष्ट हो जायेगा। फिर यह आत्मा अजर, अमर, पापरहित कैसा?

यह शंका आते ही उसे अपना वह ज्ञान अपूर्ण प्रतीत हुआ। घर जानेके बदले वह वापस लौट आश्रम आया और गुरुको प्रणाम कर सब किस्सा सुनाया। प्रजापति मुस्कराये और

बोले 'बेटा ! और ३२ वर्ष यहांपर रहो। फिर मैं तुझे आत्मज्ञान दूंगा। करते २ बत्तीस वर्ष समाप्त हुये। एक दिन प्रजापतिने इन्द्र से पूछा:—

'बेटा ! कभी तुमने स्वप्न देखा है ? क्या देखा है स्वप्न में ?'

इन्द्र—'हां गुरुदेव ! स्वप्नमें मैंने मिष्टान्न खाया है, भिन्न भिन्न सुखोपभोग भी किये हैं।'

प्र०—'यही स्वप्नपुरुष आत्मा है–ब्रह्म है।'

इन्द्र फिर जानेको निकला। मार्ग में उसका विचारचक्र शुरू ही था। फिर शंका निर्माण हुई। स्वप्नपुरुष जैसा आनंद लूटता है वैसा ही वह भयानक दृश्य से डरता भी है। फिर जो भयरहित नहीं, वह आत्मा कैसा ? इन्द्र आश्रममें वापस आया और ३२ साल तपस्या करता रहा। फिर कुछ ज्ञान देते हैं। इस प्रकार १०१ वर्ष इन्द्रको आश्रम में रहना पड़ा। फिर प्रजापतिने उसको आत्माका–ब्रह्मका पूर्ण ज्ञान दिया।

चक्षुगत आकाश में वह अशरीर आत्मा स्थित है। उसको देखने के लिये चक्षु हैं। 'मैं देखता हूं' यह जाननेवाला जो है वही आत्मा। 'मैं सुगंध लेता हूं' यह जो जानता है, वही आत्मा है। यह आत्मा सर्वत्र एक ही है। यही ब्रह्म। इसको जानना चाहिये। इक्कुञा करण से नहीं, आडंबर से नहीं। अपितु —आत्मसाक्षात्कारसे।

प्रजापतिने इन्द्रको आशीर्वाद दिया और घर लौटने की अनुज्ञा दी। प्रेम और रुद्ध कंठसे बोले—'बेटा ! जाओ। जीवन में आत्मज्ञानका आविष्कार कर विजय संपादन करो।'

इन्द्रने देवगणों को आत्मा का ज्ञान दिया। जीवमात्र में भरा हुआ चैतन्य—आत्मा—ब्रह्म का देव विचार करने लगे। अपने जैसे दूसरों को समझ दूसरों के सुखदुःखों का विचार करने लगे। उनके जीवन में भोग के बदले त्याग का महत्व आया। देवोंकी संस्कृति त्यागमय हुई।

[श्री० पंडित महेशचन्द्रजी शास्त्री आयुर्वेद विशारद तथा आयुर्वेद शास्त्र के निष्णात पंडित हैं। आपके पिता जी भी वैद्यराज हैं। पंडित जी का यह ज्ञान वंशपरंपरागत है। आपने वनस्पतियों का शास्त्रीय पद्धति से अध्ययन किया है और नाना प्रकार की वीमारियों पर उनका प्रयोग करके उनका व्यावहारिक अनुभव भी प्राप्त किया है। आप का स्वभाव सात्विकता से परिपूर्ण है, जो आपके वैद्यकीय पांडित्य के साथ सोने में सुगन्ध की तरह सर्वत्र विस्तार पाता रहता है। यह कहावत के अनुसार ही आप अत्यन्त सुयोग्य व्यक्ति हैं। आप अनेक भाषाओं में पारंगत हैं तथा संस्कृत, हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी आदि की उच्च कोटि की परीक्षाओं में उत्तीर्ण हुए हैं। वर्तमान काल में आप भारतीय विद्या-भवन के संस्कृत-विभाग के परीक्षा-विभागका संचालन कर रहे हैं। —सम्पादक]

वक्ता—पं. महेशचन्द्र जी शास्त्री, आयुर्वेद विशारद
विषय—आयुर्वेद और कायाकल्प
समयः—शनिवार २५।८।१९६२ सायं ५॥ बजे

सज्जनो, आयुर्वेदशास्त्र बहुत पुराना है। इस विषय में

हमारे प्राचीन ऋषियों ने महान् ग्रन्थों की रचना परोपकार की भावना से प्रेरित होकर की है। इन ग्रन्थों में सुश्रुत, वाग्भट्ट, चरक उच्च कोटि के प्रमुख ग्रन्थ हैं। आजके मेरे व्याख्यान का विषय है—'आयुर्वेद और कायाकल्प।' मानव-शरीर की रचना प्रकृतिने अत्यन्त सुसंगत रूप से की है। शरीर को नवीन बनाने के लिये पूर्व-तैयारी आवश्यक है। अश्विनीकुमारों ने च्यवन ऋषि को कायाकल्प कराया था। च्यवन ऋषि की शारीरिक स्थिति नवीन हो गई थी, इसी लिये आज उनके नाम का स्मरण किया जाता है। च्यवन प्राशावलेह च्यवन ऋषि का ही स्मृति-चिन्ह है।

शरीर में झुर्रियां पड़ गई हों, वृद्धावस्थाकी निर्बलता ने दबा लिया हो, इन्द्रियों में शैथिल्य आगया हो तो इन सबमें नवीन परिवर्तन करने के लिये यदि आयुर्वेद-पद्धति का अनुसरण किया जाये तो युवावस्था के समान सुगठित तथा परिष्कृत शरीर तथा मन का आनन्द पुनः उपलब्ध कर सकता है। इस के लिये सर्व-प्रथम मनोबल बढ़ाना आवश्यक है और सम्पूर्ण विश्वास पूर्वक कायाकल्प के नियमों का भी पालन करना पड़ेगा। माता-पिता के माध्यम से आनुवंशिक रूप में संक्रान्त हुआ किसी प्रकार का रोग जन्मतः होता है। जैसे चर्म रोग, दमा, मलावरोध आधि-आधि।

## ( १ ) भल्लातक कल्प

किसी भी आयु में कल्प का प्रयोग किया जा सकता है। भल्लातक ( भिलावां ) को गाय के घी में गरम करके सेवन

करने का एक कल्प–योग है। इस प्रयोग में प्रति दिन एक २ भिलावा बढ़ाते रहना चाहिये और इस प्रकार २१ वें दिन २१ भिलावा का सेवन करना पड़ता है। इसी प्रकार एक २ घटाते हुए २१वें दिन पुनः १ भिलावां लेना पड़ता है। इस कालांतर में प्रयोग काल में गाय का दूध जितनी मात्रा में पचाया जा सके, उतना ग्रहण करना चाहिए।

## ( २ ) दुग्ध कल्प

दुग्ध कल्प में गाय का दूध प्रमुख आवश्यक खाद्य वस्तु है। धारोष्ण ( तत्काल दुहा हुआ ) दूध अधिक लाभदायक होगा। स्वर्ण पर्पटी, प्रवाल भस्म, शंख भस्म आदि औषधियों का सेवन भी इस कल्प के साथ किया जाता है। इस प्रयोग को करते समय किसी अनुभवी कल्प योजक का सहयोग लेने से अधिक लाभ पहुंचेगा।

जिन लोगों की प्रकृति कफप्रधान हो, उन्हें प्रातःकाल एक लहसुन की कली और काली द्राक्ष के १० दाने शहद के साथ लेने चाहियें। प्रतिदिन लहसुन की एक २ कली बढ़ाते रहें, फिर ७वें दिन से १-१ कली घटाते जायें। एक कली का प्रयोग आजाने पर बंद कर देना चाहिये। इन दिनों गाय के दूध का सेवन उचित मात्रा में करना चाहिये। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक प्रकार के कल्प हैं आमला कल्प, भृंगराज कल्प आदि। आयुर्वेद में अनेक प्रकार के कल्प बताये गये हैं।

कायाकल्प करने वाले व्यक्तिके लिये सभी प्रकारके व्यस (चाय, तम्बाकू और उसकी अन्य बनावटें, मांस, मदि भांग आदि ) वर्ज्य हैं।

आयुर्वेद में अनेक प्रकार के कल्पों की विधियां बताई ग हैं। कायाकल्प करने वाले के लिये शांतस्थान आवश्यक है जिससे मानसिक शान्ति बनी रहे । किसी निष्णात वैद्यरा के आदेशानुसार कार्य करना आवश्यक होगा।

### कायाकल्प से लाभ

सारी दुनिया के समग्र स्त्री पुरुषों की यह स्वाभावि भावना बनी रहती है कि हमारी युवास्था सदैव इसी रूप स्थिर बनी रहे। सभी इंद्रियां तेजस्विता और कुशलता के साथ अपना २ कार्य सम्पन्न करती रहें। शरीर के अवयवों पर वृद्धत्व के लक्षण परिलक्षित न हों। मस्तिष्क; हृदय, फेफड़े, पेट के सारे पुर्जे, कमर; घुटने, भुजाएं; हाथ, पै आदि सभी अवयवों में अच्छी स्फूर्ति के साथ कार्य क्षमता बनी रहे। वृद्धावस्था में जो झुर्रियां पड़ जाती है वे बिलकु न रहें।

कायाकल्प का शास्त्रीय ढंग से किये गये विधिवत प्रयोग के सफल होने पर उपर्युक्त सभी इच्छाएं पूरी होंगी और अत्यंत लाभ होगा। इसके अतिरिक्त पाचन शक्ति का प्राबल्य, स्मरण शक्ति की वृद्धि होकर यदि बाल श्वेत हो रहे होंगे। तो वे रुक जायेंगे और उनमें पुनः कालापन आजायेगा।

कायाकल्प का प्रयोग मानव को नवीन शक्ति और नवीन चेतना प्रदान करता है।

वक्ता— श्री० स्वामी मूर्खानन्दजी (हंडेबाबा)
विषय— वैराग्य का अर्थ, महत्त्व तथा लाभ
समय— शनिवार १२।८।६२ सायं ५॥ बजे
स्थान— रामतीर्थ योगाश्रम--व्याख्यान खंड

ॐ असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।

आत्मस्वरूप विद्वज्जन, सज्जनो तथा सन्नारियो!

सत्संग का फल अति महत्वपूर्ण होता है। आज इस आश्रम में काश्मीर निवासी विद्वद्वर्य त्यागमूर्ति श्री० स्वामी मूर्खानन्द (हंडेबाबाजी) का शुभागमन हुआ है। स्वामीजी का शरीर हृष्ट-पुष्ट है, उनके मानसिक विचार अत्यन्त उच्च कोटिके हैं तथा वे आत्मानन्दमें सदैव मस्त रहते हैं। सज्जनो शीत काल में काश्मीर में अत्यधिक शीत पड़ती है, परन्तु ऐसे विकट शीत काल में भी स्वामीजी कमर में एक छोटासा वस्त्र लपेटे रहते हैं, अन्य कोई वस्त्र धारण नहीं करते हाथ में केवल एक हण्डा (मिट्टीका बर्तन लिये रहते हैं) त्याग, सहिष्णुता, मानसिक शान्ति और ब्रह्मज्ञान से परिपूर्ण आपका आदरणीय है। श्री० स्वामीजी की आयु लगभग ४५ वर्ष की है। कभी कभी आप समग्र भारत का भ्रमण करते हैं और संक्षिप्त रूप में उपदेश और व्याख्यान देते हैं। समाज को

उन्नति पथपर अग्रसर करने के लिये स्वामीजी के उपदे उपादेय है।–योगिराज श्री० उमेशचन्द्रजी।

## स्वामीजी का व्याख्यान

भगवत्स्वरूप सज्जनो, माताओ तथा बहनो!

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक महोदयने जो प्रगति की है, वह उनके कर्तव्य की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण ही है। यथार्थ योग और प्राकृतिक चिकित्सा द्वारा शारीरिक आरोग्य, मानसिक शांति और आत्मदर्शन के प्रयोग बताकर परोपकारमय पुण्य कार्य तो कर ही रहे हैं, साथ ही सत्संग के आयोजन उत्तम मानसिक आहार भी देते रहते हैं। ऋषि–मुनि योगियों के महान् कार्य को श्री० योगिराजजी मूर्तरूप प्रदान कर रहे हैं। यह कम महत्त्वपूर्ण वैराग्य नहीं है। केवल भगवा वस्त्र का परिधान करने और दण्ड कमण्डलु के लेने से ही त्यागी वैरागी नहीं बना जा सकता। इसके लिये नियमित कर्तव्य पालन करना है।

आजका विषय है वैराग्य का अर्थ और महत्त्व। विराग अर्थात् विशिष्ट प्रकार का प्रेम। शास्त्रों में प्रेम के दो रूप बताये गये हैं—एक मिथ्या कहा जाता है और सत् प्रेम भगवान् की ओर प्रवृत्त करता है। वैराग्य का अर्थ है सांसारिक राग प्रेम से पराङ्मुख होकर परमात्माके प्रति विशेष प्रेम बढ़ाना। मैं पहले आप सब को भगवत स्वरूप कहकर सम्बोधित कर चुका हूं। मैं अपने ज्ञान–चक्षुओं से स्पष्ट देख रहा हूँ कि आप सब परमात्मा के रूप में यहां विराज-

मान हैं। आप अपने जीवन से निर्लिप्त रहकर और आधि-व्याधि उपाधि को दूरकर देखिये आप कौन हैं ?

### अब सुनिये वैराग्य का महत्त्व

वैराग्य को सुनकर सांसारिक जन भयभीत हो उठते हैं और विचार करने लगते हैं कि संसारमें रहकर वैराग्य का साधन कैसे सम्भव है? यदि गृहस्थाश्रम नहीं होता, तो अन्य तीन (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ, संन्यास) आश्रमों का महत्व कहां रहता ? गृहस्थीजन दान, परोपकार, पारस्पदिक सहयोग करते हैं, तभी तो अन्य तीन आश्रम चल रहे हैं। क्या यह कोई कम त्याग या वैराग्य है ? ज्ञानी लोग उपदेश, योगीजन समाधि और भक्तजन नवधा भक्ति से भगवत्--दर्शनतक पहुंचने का मार्ग बताते हैं। यह त्याग--वैराग्य ही है। परन्तु संसार में रहकर, अनेक प्रकार की आपत्तियों को सहन करते हुए तथा अपने परिवार, जाति, सम्प्रदाय एवं समाजके प्रति कर्तव्य का पालन करते हुए उपर्युक्त तीन आश्रमोंसे सम्बन्ध रखनेवाले लोगों को भी महान् त्यागी और विरागी कहा जायेगा। 'नायमात्मा बलहीनेन लभ्य' अर्थात् बलहीन आत्म--दर्शन नहीं कर सकता। त्याग-वैराग्य से आत्मबल बढ़ता है। शम, दम, तितिक्षा, उपरति, सन्तोष, समाधान--यह सब आत्मबल बढ़ाने के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। हमें त्याग-वैराग्य के साथ यह सब साधन करने चाहियें।

[श्री० कालूभाई बसिया की आयु वर्तमान कालमें ७२ वर्ष की है। आपका स्वभाव मिलनसार; सहिष्णु, साहसी और

निन्दा स्तुति से परे है। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि श्री कालूभाई बसिया को अंगरेजी या अन्य किसी विदेशी भाषा का ज्ञान नहीं है। केवल मातृभाषा गुजराती जानते हैं। सौराष्ट्र के निवासी हैं। शारीरिक स्वास्थ्य और मनोबल अत्यन्त उच्च कोटि के हैं। आप शाकाहारी हैं। विदेश-पर्यटन के समय भी शाकाहार पर ही आधार रखते हैं। आपका जनरल नॉलेज विश्व-ज्ञान अत्यन्त व्यापक है। वे ज्ञान-सम्पादन की तीव्र इच्छा से भरपूर रहते हैं। 'रामतीर्थ' मासिक पत्र में आपके लेख हर महिने प्रकाशित होते हैं, जिनसे आपके व्यापक विश्व ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है। विश्वयात्रा ने आपकी प्रतिभा को सर्वतोमुखी बना दिया है। परिवार में कोई नहीं हैं। प्राणिमात्र को भगवान् का स्वरूप समझते हैं। हिंसा के विरोधी हैं। अन्तिम विदेश-पर्यटन (जुलाई, १९६२) में पृथ्वी के अंतिम भाग उत्तर ध्रुव-क्षेत्रीय प्राकृतिक शोभा का आनन्द हृदय में धारण कर लौटे हैं। —सम्पादक

वक्ता—श्री० कालूभाई बसिया 'जगत-प्रवासी'

विषय—उत्तरीय ध्रुव, पृथ्वी का अन्तिम-छोर, जहां छः मास तक सूर्यास्त नहीं होता।

समय—१।८।६२ रविवार प्रात: १० बजे

सज्जनो, मैंने ४ बार विश्व-यात्रा की है। इस सिलसिले में ४ प्रकारके नियमों का पालन विशेष रूपसे करना पड़ता है। वे नियम हैं--सहन शीलता, विनम्रता, साहस और परिस्थिति

के अनुकूल बन जाना। इस यात्रा के सिलसिले में विभिन्न देशों की जो विभिन्न विशेषताएँ मुझे जान पड़ी, वे इस प्रकार हैं–(१) कला (आर्ट) और रसोई में इटली (२) धन में अमेरिका, (३) शाम–दाम–दण्ड–भेद पूर्वक अपनी राजसत्ता स्थिर बनाने में इंगलैण्ड, (४) मौज–शौक और भोग–विलास में फ्रान्स, (५) विज्ञान में जर्मनी, (६) नैसर्गिक सौन्दर्य और रामराज्य के समान राजकाज चलाने और प्रजा–परिपालन में स्विटजरलेण्ड, (७) नम्रता, त्याग और कष्टसहिष्णुता की शक्ति वेदान्त के आधार पर पवित्र जीवन चलाने में भारत और (८) तुर्किस्तान में बुद्धि–चातुर्य की प्रधानता पाई जाती है। किसी भी दूकानपर जाइये, दूकानदार इतनी सन्तोषप्रद बातें करेगा कि वारंवार उसी दूकानपर जाने की इच्छा होगी। (९) रूसमें समानता के आधार पर राज्य का कारबार चलाया जाता है। (१०) चीन का मुख्य आहार चावल और सब्जी है। मेंढ़क, कछुए, सर्प आदिका उपयोग भी भोजन में किया जाता है। चीनियों के कठोर स्वभाव का परिचय वे मुख से नहीं कराते, बल्कि कर्तव्यपरायणता से कराते हैं।

इस विभिन्न देशों का पर्यटन करने से मुझे अनेक प्रकार के नये-नये अनुभव प्राप्त हुए हैं। जिस देश का परिभ्रमण करता हूँ, उसके रीति–रिवाज, रहन–सहन, खान–पान, राजनीतिक रंग-ढंग, कायदा–कानूनका आधार, शान्ति-अशान्तिमय वातावरण आदिपर सूक्ष्म रीतिसे दृष्टिपात करता हूँ। मुझे गुजराती भाषा आती है। वह मेरी मातृभाषा है। साधारणतया हिन्दी भी जानता हूँ। अन्य किसी भाषा का ज्ञान नहीं है। अधिकांश देशों में द्विभाषी मिल जाते हैं। जिस देश में नहीं मिलते,

वहां भारत के हाई कमिस्नर अथवा राजदूत के आफिस में पहुंच जाता हूं। उनकी ओर से उस देश के प्रमुख नगरों के पर्यटन और खान-पान की व्यवस्था हो जाती है।

## भाषा ज्ञान से परे की बात

जिस देश में भाषा बोली से बिलकुल काम नहीं चलता, वहां अंगुलि निर्देश, शिर के नीचे हाथ रखकर शयन की व्यवस्था का संकेत-इस प्रकार आवश्यकतानुसार विविध सांकेतिक प्रयोगों से काम चला लेता हूँ। वर्तमानकाल में मेरी आयु ६२ वर्ष की है।

मेरी आयु पर्यटन में बाधक नहीं है। गत ३ जुलाई को मैं उत्तरीय ध्रुव (पृथ्वी के अंतिम छोर) पर था। उत्तरीय ध्रुव में लगातार तीन महीनेतक सूर्यास्त नहीं होता है। रात और दिन (२४ घण्टे) सूर्य-दर्शन होता रहता है। इस नवीन नैसर्गिक दृश्य का दर्शन करने और जीवन में नया अनुभव प्राप्त करने के लिये समग्र जगत् के यात्रा-प्रेमी महानुभाव इन तीन महीनों के अन्तर्गत लगातार आते रहते हैं। वहां का नैसर्गिक सौन्दर्य, शुद्ध वायु, स्वादिष्ट एवं सस्ते फल, यथेच्छ रूप में सस्ता शुद्ध गाय का दूध, मक्खन आदि का अनुभव आजीवन विस्मरण नहीं किया जा सकता। मैं धनवान् नहीं हूँ। एक साधारण मानव हूँ। फिर भी जब तीव्र इच्छा शक्ति का अवलम्ब लेकर किसी फल-सिद्धि के लिये जीवन को गतिवान् करता हूँ, तब कुछ ऐसा संयोग उपस्थित हो जाता है। कि अभीष्ट कार्य सफल हो जाता है। ईश्वर-कृपा और पुरुष प्रयत्न से मानव अपनी सभी इच्छाएँ निस्सन्देह परिपूर्ण बना सकता है, यह मेरा निजी अनुभव है।

# रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

(रजिस्टर्ड स्पेशल नं. १)

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का निर्माण शुद्ध नारियल के तेल से किया जाता है। आयुर्वेदिक दृष्टि से समझा जाय तो नारियल का तेल मुख्यतः गुरु, स्निग्ध, शीतल और बलकर है और वात, पित्त, रक्तदोष, दाह इत्यादि अनेक विकारों को दूर करने के गुणों को धारण करता है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के निर्माण के लिये जो नारियल का तेल उपयोग में लाया जाता है, वह शुद्ध होने के साथ-साथ जीवन-तत्वों से भरपूर रहता है इतना ही नहीं, यह उत्कृष्ट औषधिक तेल रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक की देखरेख में तैयार किया जाता है।

अन्य सुगन्धित तेलों में अधिकांश रिफाइन तेल होता है, जिससे त्वचा, बाल इत्यादि को जो लाभ होना चाहिये, वह नहीं होता। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में किसी गंध (एसेन्स) का मिश्रण नहीं किया जाता। इसमें जो मधुर सुगन्ध है, वह वनौषधियों की है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में अनेक लाभदायक वनौषधियां डाली

जाती हैं, जिन के गुण-प्रभाव से आंखों को ठण्डक, मस्ति को शक्ति मिलती है । यह सुखद निद्रा लाने, झड़ते हु बालों को रोकने, बालों को बढ़ाने, घने, चमकीले बनाने के लिये विशेष अनुकूल और लाभदायक हो सकता है।

स्वास्थ्य-रक्षा के अनेक साधनों में एक साधन रामती ब्राह्मी तेल भी है ।

ग्राम्य-जीवन के विपरीत बड़े तथा छोटे शहरों के निवा आबाल-वृद्धों के जीवन का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता । जै अनियमित भोजन, रात को विलम्ब से सोना दुर्व्यसनमूल वस्तुओं का सेवन, मानसिक चिन्ता, व्यायाम--विमुखता औ विशेष बौद्धिक परिश्रम इत्यादि । रात में देरसे सोनेसे पि प्रकोप, मस्तिष्कमें उष्णता अधिकबढ़ जाना, शिरोवेदना, आंखों में जलन, शरीर में रक्त-संचार की अनियमितता, आलस्य, प्रमाद, जड़ता; मेदवृद्धि तथा क्षीणता आ जाने की सम्भावना है । अनेक वनौषधियों का मिश्रण कर शास्त्रीय पद्धति से निर्माण किये गये रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से प्रतिदिन प्रातः का सारे शरीर एवं सिरमें १० से २० मिनट तक तैलाभ्यं ( मालिश ) करें और कुछ देर बाद ऋतु, आयु और शरीर अनुसार शीतल अथवा साधारण गरम जल से स्नान क प्रतिदिन मालिश करने से अधिक लाभ है, परन्तु कि कारण वशात् प्रति दिन सम्भव न हो तो सप्ताह में चार बा तीन बार, दो बार अथवा कम से कम एक बार भी मालि करने से उपर्युक्त सभी कठिनाइयां आसानी से घरेलू उपायों दूर होसकती हैं। रामतीर्थ ब्राह्मीतेल केवल पुरुषवर्ग, स्त्रीव बालक-वृद्ध अथवा रोगियों के लिए ही नहीं है, अपितु रो

नीरोगी सबके लिये सब और ऋतुओं में देश-विदेशवासियों को अनुकूल हो, ऐसे ढंग से तैयार किया जाता है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल सम-शीतोष्ण है। रात को शयन के समय और प्रातःकाल स्नान के बाद शिर को अवश्य दो मिनट तक मालिश करें। ज्ञानतन्तुओं तथा क्रियातन्तुओं के लिये भी यह तेल अनुकूल है। यदि आपने अभी तक रामतीर्थ ब्राह्मी तेलका उपयोग न किया हो तो अवश्य व्यवहार करके देखिये अवश्य आपको अनुकूल होगा। सर्वत्र प्राप्य है। आप जिस शहरमें रहते हों, उसी शहरकी दूकानों (केमिस्ट, ड्रगिस्ट, जनरल मर्चेन्टस) में पूछिये वहां मिलेगा। किसी कारणवशात् न मिले तो लिखिये:- श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दादर बम्बई १४

कीमत:- बड़ी बोतल ४.५० रु०, छोटी बोतल २.२५ रु० डाक से पैकिंग व पोस्टेज सहित बड़ी बोतल ७.०० छोटीबोतल के पैकिंग व पोस्टेज सहित ४.५० है। कृपया पोस्ट से मंगवाते समय उपरोक्त पते पर अग्रीम रुपये मनि-आर्डर से भेजें।

# पाठकों के अभिमत

(१) दीर्घकाल से मानव दीर्घजीवन, सुख की वृद्धि और मानसिक शांति की आकांक्षा करता आ रहा है। भूत कालीन इतिहास इसका साक्षी है। वर्तमान काल में तदनुसार जीवन को अभिहित करने की दृष्टि से जैसे साहित्य की आवश्यकता है, उसकी पूर्ति 'रामतीर्थ' मासिक से होगी, ऐसा मेरा दृ विश्वास है।

आनन्दसेन कार्तिकसेन
२४ परगना ( पश्चिम बंगाल )

(२) अनेक सम्प्रदाय, मत-मतान्तरवादी तथा भिन्न-भिन्न विचार-सरणी रखने वाले लोग इस धरातल पर विद्यमान हैं। इनमें से अनेकश: लोग अपने उच्च कोटि का और अन्यको निम्नस्तरका मानते हैं। इससे मानसिक भ्रम बढ़ने की सम्भावना रहती है। इस भ्रम को दूर करने का सरल मार्ग 'रामतीर्थ' मासिक से निस्सन्देह प्राप्त होगा।

श्रीमती सरयूमाताजी ब्रह्मानन्दगिरी
जबलपुर ( मध्यप्रदेश )

(३) 'रामतीर्थ' मासिक पढ़कर मेरा अन्तःकरण प्रसन्न हुआ है। इसका कारण यह है कि इस एक ही मासिक में उच्च कोटिके अनेक विषय रहते हैं। जैसे योग, वेदान्त, गीता,

भक्ति, सदुपदेश, शरीरारोग्य, मानसिक चैतन्य आदि की उपलब्धि का इस में सरल मार्ग दर्शन तथा मनोबल की वृद्धि के सरल उपाय और आत्मोन्नतिका महत्वपूर्ण पथ-निर्देश रहता है।

शंकर वल्लभाचार्य मूर्ति,
त्रिवेन्द्रम ( केरल राज्य )

(४) मुझे बचपन से ही अनेक प्रकार के साहित्य पढ़ने की विशेष अभिरुचि रही है। भारत भर से विविध विषयों के सहस्रों रुपये के ग्रन्थ मँगा चुका हूं। मेरा व्यापार-धन्धा ही ऐसा है कि आराम अधिक रहता है। समय बिताने के लिये साहित्य पढ़ता हूं। मेरी इस साहित्यिक अभिरुचि को देखकर 'रामतीर्थ' मासिकका एक अंक नमूनेके रूपमें भेजा है। इसे पढ़कर मैं अत्यधिक प्रभावित हुआ हृदय हठपूर्वक जीवन-परिवर्तन की ओर चल पड़ा है। 'रामतीर्थ' मासिक में एक नहीं, अनेक विषयों का संकलन रहता है। यह प्रशंसनीय प्रयास है।

अहमदभाई सुलेमानभाई,
कुवैट ( अरेबिया )

(५) 'रामतीर्थ' मासिक में मैं प्रतिमास नियमित रूप से धारावाहिक उपन्यास और प्रश्नोत्तर पढ़ती हूं। 'रामतीर्थ' के धारावाहिक उपन्यास पढ़कर मेरे जीवन में उच्च संस्कारों का आविर्भाव हुआ है और प्रश्नोत्तरों को पढ़कर शारीरिक बल, मानसिक शांति और आत्मिक विकास के सरल पथका अनुसरण कर रही हूं। 'रामतीर्थ' के अनेक विषयों की शैली हृदयंगम है।

**कुमारी शीलवती भद्रशंकर जानी,**
**राजकोट ( सौराष्ट्र )**

(कन्नड़ कहानी)

# अपूर्व पुरस्कार

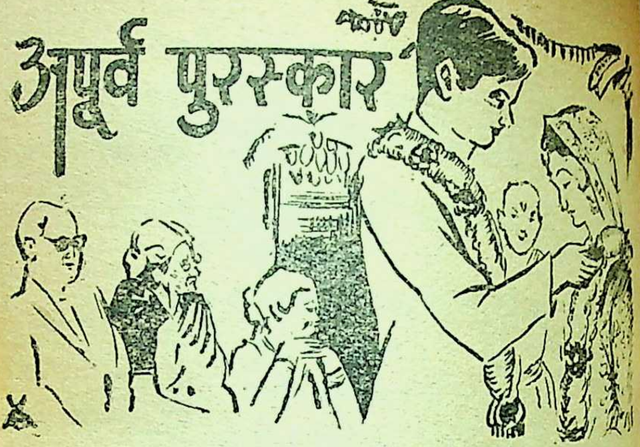

लेo—अनुवादक–के. एन. भट, शिराडिपाल

सनातन धर्मावलबी महिलाओं के लिए, उस दिन संभ्रम का दिन था। उस दिन मंगल गौरी का त्यौहार का पुण्य दिन था।

सुन्दर राय जी अपने कमरे में बैठे साहित्य रचना में तल्लीन हो गये थे। दोपहर की रसोई को देर होती हुई देख कर कावेरम्मा जल्दी २ नहा कर आयी। और गेरुआ की साड़ी पहन कर रसोई बनाने के लिए तैयार हो गई। तभी दस बजे का समय हो चुका था।

'देव पूजा की तैयारी करनी है, गौरी पूजा के लिये पत्र पुष्प, इत्यादि सब का सब सिद्ध कर लेना चाहिये। रसोई के साथ कोई एक दो प्रकार के भक्ष्य भी तैयार होना चाहिये।

आज भक्ष्यों के बिना काम ही नहीं चल सकता। इतना भी नहीं, आज, हमारी मंगल गौरी की सोलहवीं वर्ष गांठ भी आयी है ! काम तो खूब पड़ा है। सब काम अभी कर लेना पड़ता है।' इस तरह सोचती हुई कावेरम्मा को तनिक भी फुरसत नहीं थी।

कावेरम्मा की इकलौती प्यारी बेटी मंगला गौरी को भी फुरसत नहीं थी। वह भी झट पट नहा कर आयी, और शुद्ध गेरुआ की साड़ी पहने, अपनी मां के साथ सब्जी काटने के काम में लग गयी। पर कावेरमा की गड़बड़ी का ठिकाना नहीं था। बेटी को ऐसे काम करने को कहती थी कि, उन्हें एक साथ कर लेने की बात दूर रही, सोच लेना भी मुश्किल होता था।

ऐसी गड़बड़ी में भी, सुन्दर राय जी हिमालय के समान स्थिर होकर कहानी लिखने बैठे हुए थे। राय जी की ऐसी तन्मयता को भंग करने के लिए कावेरम्मा पति के पास आयी, और कहने लगी—'आप अभी कहानी लिखने बैठे हैं न ? अब दस बज गये। आज त्यौहार के साथ, गौरी की वर्धनी भी मनाना है। कुछ जल्दी उठेंगे क्या ?'

लिखने में तल्लीन हुए राय जी ने उसी हालत में, सिर हिलाया। लेकिन वे न हिले न डुले। यह देख कर कावेरम्मा फिर बोली—'उठिये न ? कहानी जो अब लिख रहे हैं भोजन के बाद लिखी जा सकती है। पड़ोसिन महिलायें प्रेमलता,

मीना, इनका यहां आने का समय हो गया है। इनके आने से पहिले आप देवपूजा करेंगे तो, बाद हम सब औरतें गौरीपूजा कर सकतीं हैं। कुछ जल्दी उठिये न?' कावेरम्मा का मधुर भाषण सुनकर रायजी ने अपनी किताब एक तरफ रख दी और वे नहाने के लिए चल पड़े।

सुन्दर राय जी अमीर आदमी नहीं थे। बचपन में वे कष्टों में पले हुए थे। और उनकी पढ़ाई भी हाईस्कूल तक ही हो सकी थी। उसके बाद राय जी ने जीवनोपयोगी-विद्याभ्यास आरंभ किया था। राय जी कभी-कभी कहते थे कि जीवन विश्वविद्यालय के पग-पग पर आने वाले समस्यात्मक प्रश्नों का, उत्तर देते सही रास्ते पर आगे बढ़ने में जितना कष्ट होता है, परीक्षा भवन में देने वाले प्रश्न पत्रों का उत्तर देने में उतना कष्ट नहीं हो सकता। जीवन की समस्याओं को हल करते सिर ऊपर उठाकर आगे बढ़ते रहना यह बड़ी परीक्षा है। और इसे संघर्षमय जीवन कहते हैं। यह संघर्षमय जीवन में जो सिर ऊपर उठाकर सत्कर्मनिरत होगा, वही जीवन विश्वविद्यालय का सच्चा विद्यार्थी कहलायेगा। यह रायजी का स्वानुभव का विषय था।

सुन्दर राय जी प्रतिभावान् व्यक्ति थे। उन्होंने अपने स्वयं प्रयत्न से, कन्नड़, और हिन्दी में विद्वत् परीक्षा देकर अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन किया था। वे अच्छे कवि और लेखक भी थे। उनकी कविताएं रसिक लोगों के दिल लुभाने वाली होकर

लोगों ने उनके 'रस ऋषि' की उपाधि दी थी। राय जी का नाम, काव्य-साहित्य क्षेत्र में सुप्रसिद्ध हो गया था। पर उनका प्रधान व्यवसाय, कृषि का था। वे परस्पर विरोधी क्षेत्र, कृषि और साहित्य इन दोनों में भी खूब परिश्रम करने से आदर्श हो गये थे।

o o o o

स्नान संध्या पूजादि कार्यों से निवृत्त होकर सुन्दर राय जी बाहर आ गये। तब कावेरम्मा ने, आयी हुई सुवासिनियों के साथ मंगल गौरी की पूजा की। इसके बाद मिष्ठान्न, भोजन का कार्य भी समाप्त हुआ।

मंगल गौरी की वर्ष गांठ के निमित्त उस दिन, गौरी को; अत्यंत सुन्दर ढंग से श्रृंगार किया गया था। नवयुवती मंगल गौरी, सहज ही सुन्दरी थी। ऐसी सुन्दरी गौरी, उस दिन के श्रृंगार के कारण, अनुपम सुन्दरी सी हो गई थी। नयविनय के साथ, सुशील संपन्नता से भरी हुई उस युवती का स्वर माधुर्य भी वीणा के पंचम स्वर के समान होकर उसका भाषण सुनने वाले आनन्द विभोर हो जाते थे। इस तरह गौरी साक्षात् मंगल गौरी सी लगती थी।

मंगल गौरी चतुर और पढ़ने में भी होशियार थी। वह अब हाई स्कूल की पढ़ाई पूर्ण करने वाली थी। गौरी की मां को बेटी की शादी की चिन्ता लग गई थी। पर वराभाव के इस काल में गौरी के योग्य वर की तलाश करना कोई आसान काम नहीं था।

हर दिन कावेरम्मा बेटी की शादी के बारे में ही सोचती 'काल चक्र चलता ही रहता है। समय जो है वह किसी की इन्तजार भी नहीं कर सकता। और यह अमूल्य समय आयुष्य में एक एक क्षण के हिसाब से घटता ही जाता है। यही कारण मनुष्य को जीवन में अपने समय का सदुपयोग करना चाहिये। दिन रात के हिसाब से मास, वर्ष बीता जा रहा है। पर यहां उनको इसकी कोई चिंता नहीं होती। सवेरे से मध्यान्ह तक कृषि का काम हो तो उसके बाद साहित्य रचना, वे लगातार इसी तरह दिन बिताते हैं। वे साहित्य रचना करते बैठ गये तो, बाद आधी रात गुजर गई तो भी, वे विचित्र साहित्य ब्रह्मा को उसकी परवाह नहीं रहती। मैं बार बार उनसे कह रही हूं कि, गौरी सयानी हो गई है दो वर्ष के पहले ही उसको विवाह होना चाहिये था पर अब भी, बिना प्रयत्न के इसी तरह दिन बितायेंगे तो क्या होगा? इस तरह दिन ब दिन उनको कह रही हूँ। पर वे गौरी की शादी के विषय में कोई प्रयत्न नहीं करते तो मैं क्या करूँ?' इस तरह मन ही मन सोचती हुई कावेरम्मा अपने नित्य कार्यों में लग जाती थी।

कवि सुन्दररायजी को ऐसी कोई चिंता नहीं थी। और वे इन बातों के लिये सोचना व्यर्थ ही समझते थे। और उनको सोचते रहने के लिए फुरसत भी कहां मिलती? उनको शादी के बारे में विश्वास था कि, 'गौरी की शादी' योग आते ही होनी ही है। कार्य, कोई भी हो, योग आए बिना कोई वृक्ष नहीं फूलता, न फल देता। तब सोचते रहने से क्या कोई

लाभ हो सकता है ? हमको हमारा कर्तव्य जो है करते ही रहना चाहिए। जब सभी कार्य ठीक समय पर होते ही हैं।' इसलिए निर्धार करके रायजी अपने कामों में तल्लीन हो जाते थे।

सुन्दररायजी, कहानी प्रतियोगिता के लिए नारी हृदय का चित्रण करना चाहते थे, पर उन्होंने उस प्रतियोगिता के नियमों को अच्छी तरह से नहीं देखा था इसलिये उन्होंने 'विचार वाहिनी' पत्रिका हाथ में ले ली, और वे नियम क्या थे ? देखने लगे। 'विचार वाहिनी' में कहानी प्रतियोगिता के बारे में यों उल्लेख था।

'आदर्श महिला समाज की ओर से एक कहानी प्रतियोगिता का इन्तजाम किया गया है। इस प्रतियोगिता के लिये नारी हृदय या चित्रण नैजता के साथ चित्रित करनेवाली कहानियाँ स्वीकृत होंगी और कहानी के साथ लेखक का भावचित्र, और जीवन परिचय भी भेज देना अनिवार्य है। इस प्रतियोगिता में केवल अविवाहित युवक ही प्रवेश पा सकेंगे। महिलाओं को प्रवेश नहीं है। योग्य कहानी को केवल एक अमूल्य पुरस्कार दिया जायगा।'

इन नियमों को पढ़कर, सुन्दररायजी ने दांतों तले अँगुली दबाली। और अपने को उसमें भाग लेने का मौका न पाकर उन्होंने कहानी लिखने का काम बंद कर दिया।

उस दिन रात का वक्त। कवि सुन्दररायजी काव्य रचना में मग्न होकर बैठे हुये थे। रात को बारह बजे का समय हो

जाने पर भी, एकाग्रता से बैठे हुये रस ऋषि को देख कावेरम्मा को अच्छा न लगा। तब वह किसी एक गुनगुनाती रायजी के पास आगयी। तब भी रायजी का भंग न हुआ। कावेरम्मा ने तब अपने कँकणास्त्र का प्र किया। रायजी के कानों में मधुर निनाद गूँज उठा। तब रायजी ने अपना ध्यान उस तरफ नहीं दिया। अब सचमु ही कावेरम्मा आग बबूला हो उठी, और गौरी को संबोध करती हुई बोली कि, गौरी! तू अभी क्यों पढ़ रही हो! आ रात गुजर गयी है, पर यहां इनकी ब्रह्म सृष्टि नहीं समाप्त हु है। गौरी तो गहरी नींद में डूब गई थी। पर कावेरम्मा यह जानकर भी बहाना करके गौरी को संबोधित किया था।

अब सुन्दररायजी को मालूम हो गया कि मामला क्या है? तब उन्होंने अपनी पत्नी की ओर मुड़कर हँसते हु कहा–'वाह! तुम अभी तक क्यों जाग रही हो? मैंने सम लिया था कि, तुम सो गयी हो।' यह कहते रायजी ने पत्नी के मुख की ओर देखा तो, पत्नी ने भी अपनी दृष्टि मिलाई और पति को दृष्टि के संकेत से ही उत्तर दिया। तब सुंद रायजी ने अपनी पत्नी को समझाते हुये कहा-'देखो यह ए महिला समाज की कहानी प्रतियोगिता का कमाल है। इसमें अवश्य कुछ रहस्य छिपा हुआ है। यही मैं अभी तक सोच रहा था कि, उसका रहस्य क्या है? बहुत सोच विचार के बाद, अब इसका रहस्य मेरे सामने खुल गया है। देखो! तुम मुझे जिस बात पर लगातार तंग करती थी, उसका परिहार

अब बहुत सुलभ हो गया है।' यह कहते रायजी ने पत्नी से उत्तर चाहा था। पर कावेरम्मा ने मौन ग्रहण किया था। बाद कावेरम्मा वहां से झटपट भीतर चल गई तो सुन्दरराय ने अपनी कलम नीचे रख दी। और वे भी कावेरम्मा के पीछे भीतर चले गये।

बिस्तर पर से ही रायजी ने अपनी पत्नी से कहा कि, तुम क्यों इस तरह गरम हुई हो? और मुँह छिपाकर सोई हो! कुछ बोलो न? अब मैंने एक सुलभोपाय खोज निकाला है। इससे तेरी इच्छा पूर्ण होगी।

अब कावेरम्मा ने, अपने पतिकी ओर देखते--लघुमुस्कान का मोहनास्त्र छोड़ दिया, और कहा आपकी खोज के उपाय तो बहुत होते हैं, पर वे सब कार्य रूप में नहीं, कविता में या कहानियों में होंगे यह मेरे लिये कोई नई बात तो नहीं है न?

रायजी ने, हँसते हुये पत्नी को एक मीठी थपकी दे दी।

o o o o o

मुर्गी ने बांग दी। काली (घर की गाय) ने अंबे किया तब कावेरम्मा बिस्तर से उठी और मुख मार्जनादि से स्वच्छ होकर 'दधिमथन' करने लग गयी। 'दधिमथन' का काम पूर्ण होते २ सुबेरा हो गया। तब रायजी भी बिस्तर से उठे और खेती की ओर, तथा सुपारी के बाग की ओर चल पड़े।

वर्षा काल के आरम्भ के दिन थे। हरी-भरी वसुंधरा वर्षा के मोतियों जैसे बिंदुओं से शोभा दे रही थी, मानो

लावण्यमयी वसुन्धरा का अंग-अंग मुस्करा रहा हो। खे में चावल के छोटे पौधे देखने वालों का दिल लुभाते प्र नृत्य में तल्लीन थे। शीतल वायु अपने तान तरंगों द्वारा ज के जीव जन्तुओं को नई शक्ति और नई प्रेरणा दे रहा था देहात की इस तरह की नित्य नूतन सस्य वैभव के सर्व नृत्य से सुन्दराय जी का मन फूल उठा। प्रकृति लीला के सान्निध्य में रहने वाले राय जी को यह आनंद कोई नया नहीं था। यह उनके लिये नित्यानंद बिहार सा हो गया था। मं सुगंधित वायु से हिलते डुलते हुए सस्य, राय जी का स्वागत कर रहे हैं। सुन्दर राय जी को ऐसा भास होने लगा। और वे हर्ष विभोर होकर खेतों में इधर-उधर टहलते उस ताज़ी हवा में अत्यंत उत्साहित होकर सुपारी के बाग की ओर चल पड़े।

वहां भी, आनंद का साम्राज्य वैभव पूर्ण होकर शोभा दे रहा था। सुपारी के हृष्ट-पुष्ट और हरे भरे पेड़ जो दीख पड़ते थे, देखने वालों पर मोह का जादू का ही प्रयोग कर देते थे। सुपारी के पेड़ों की डालियों का 'झिर' शब्द जो ग रहा था, वहां के संगीत गायक भौरों के संगीत को श्रुति के समान सुनाई पड़ता था। मंद मारुत जो चल रहा था, वहां के संगीत को 'तान' के समान मालूम पड़ता था प्रकृति का इस सहज सुन्दर संगीत भारद्वाज पक्षी दूर की डाली पर बैठ कर 'कुक-कुक' कहते ताल का काम पूर्ण कर देता था। ऐसी आनंद मयी प्रकृति नटी के सहवास में सुन्दरराय जी

आनंदोन्मत्त होकर अपना अस्तित्व ही भूल गये। प्रकृति का यह अमर संगीत भला यहां किसे नहीं भुला सकता? इतने में अचानक ही वर्षा काल के महत्व की सूचना देने वाले असंख्यात कूप मंडुकों के विविध प्रकार के स्वर चारों तरफ से गूंज उठे तो ये मंडुकों की कर्कश ध्वनि से डरी हुई कोकिलायें (चिड़ियां) इस तरह पेड़ की डालियों पर बैठी हुई थीं, मानों भगवान् से इस तरह प्रार्थना कर रही हों कि, हे भगवान् ये वर्षाकाल के दिन शीघ्र ही गुजर जावें।' ऐसे भास होता रहा तो सुन्दर राय जी के मन में अनेक विचार तरंग उमड़ पड़े कि वाह! यह देहाती प्रांत्यों की प्रकृति कैसे सहज सुन्दर है। यहां कृत्रिमता का नाम तक नहीं है। यहां प्रकृति देवी ने अपना सौन्दर्य-सौगंध के भांडार की जनता के लिए पूर्ण रूप से खोल दिया है। लेकिन नगर वासी लोग इस प्राकृतिक आनंद से वंचित होकर अशांति से तड़फते रहते हैं।' इस तरह सोचते, कृषि के कामों की जांच करते उस दिन के काम के बारे में, सोच विचार करते जब राय जी घर पहुंचे तब सुबह के आठ बजे का समय हो गया।

o o o o o

नव युवक शशिधर मंगलूर के एक होटल में नौकर था। उसका दिन का काम होते ही वह हर दिन अपने अलग कमरे में बैठ कर आराम लेता था। उस दिन जब वह खोली के भीतर आया, तभी उस दिन के वर्तमान पत्र में छपी हुई एक नयी खबर की ओर उसकी नजर पड़ी। वर्तमान पत्र में जो उल्लेख था, उसे देख कर शशिधर विस्मित हो उठा। क्यों

कि वार्ता पत्र में यों प्रकट हुआ था—'साहित्य क्षेत्र में नये उपन्यास की प्रतियोगिता।' यह बड़े अक्षरों में छपा हुआ था। और अन्य विवरण यों था। 'सामाजिक समस्याओं पर प्रकाश डालने वाले उपन्यास प्रतियोगिता के लिए अपेक्षित है। सामाजिक समस्याओं के परिहार की ओर भी उसमें मार्गदर्शन देना अत्यावश्यक है। उपन्यास में अगर स्त्री पात्रों का चित्रण हो तो भी शृंगार और हास्य रस रहित होना चाहिये। इस प्रतियोगिता में केवल अविवाहित युवक ही भाग ले सकेंगे। महिलाओं को प्रवेश नहीं है। उपन्यास के साथ लेखक का जीवन परिचय और लेखक का नया भावचित्र भी भेज देना चाहिये। इस प्रतियोगिता में विजयी होने वाले प्रतिभावान् लेखक को एक अपूर्व पुरस्कार गौरवके साथ दिया जायगा।'

इस नयी प्रतियोगिता की वार्ता से शशिधर अत्यंत उत्साहित हुआ। उपन्यास भेज देने की अन्तिम तारीख को अब कुछ ही दिन रह गये थे।

शशिधर प्रगतिशील लेखकों में से एक था उसके मां बाप बचपन में ही चल बसे थे। अनाथ शशिधर को उसके रिश्तेदारों से भी तिरस्कृत होना पड़ा तो वह देशभ्रमण करने लगा। उसने जितने देश संचार किये और जो जो कष्ट और दुःख का अनुभव पाया। उसका कोई अंत नहीं था। उसके जीवन के कष्ट और दुःख के ये अनुभव ही उसको एक समर्थ लेखक बनाने में सहायक हुए थे। शशिधर का जो अनुभव था, परिपक्व था। उसके साहित्य कृतियों में भी जीवन के बहुमुखी

कष्ट और अनुभवों का दर्शन ज्यों का त्यों मिलता था। जीवन की कष्टमय समस्याओं को हल करते परिहारोपाय की सूचनाओं के साथ उसके साहित्य ग्रन्थ भरे पड़े थे। शशिधर का इस प्रकार के जीवन स्पर्शी साहित्य को पाठकों की प्रशंसा प्राप्त होती थी।

साहित्य में बहुत श्रद्धा रखनेवाले शशिधर की दृष्टि में--"साहित्य लोक कल्याणकारी होकर अमर रूप से सतत कल्याणकारी था। और इसी दृष्टि से शशिधर की साहित्य रचना होती थी। इस ध्येय के बिना जो साहित्य रचना होगी, शशिधर की दृष्टि में वह साहित्य कहलाने योग्य नहीं थी। शशिधर की यह पवित्र भावना जो थी, उसकी प्रगति के लिये सहायक थी।

साहसी शशिधर ने कई ग्रन्थ लिखे थे। उसके एक दो ग्रन्थ हाईस्कूल में उप पाठ्य पुस्तक के रूप में भी स्वीकृत हुए थे। कहानी प्रतियोगिताओं में शशिधर को पुरस्कार भी मिल चुके थे।

उपन्यास की प्रतियोगिता के बारे में सोचते हुए शशिधर को जोश आ गया। उसने सोचा कि, कुछ भी हो, उपन्यास लिखकर भेज दूँगा। सफलता या असफलता की चिंता क्यों करूँ! सब भगवान् की इच्छा है। इस निश्चय से शशिधर एक उपन्यास लिखने लगा तो प्रतिभा ने उसका साथ दिया। इसके फल स्वरूप चार ही दिनों में उपन्यास सिद्ध हो गया। अब शशिधर उपन्यास का नामकरण करने की सोच में पड़

गया। सोच विचार करके आखिर उसने उपन्यास को "क का कष्ट" यह नाम रख दिया। तब उसकी खुशी का ठि न रहा। शशिधर ने स्फूर्ति के साथ, एक बार उपन्यास पढ़कर देखा तो उपन्यास की श्रेष्टता और चमत्कृति पर आनंद हो गया। तब शीघ्र ही शशिधर ने अपना जीवन चय और भाव चित्र के साथ उपन्यास को डाक से भेज दि अब उसका हृदय कुछ हल्का सा हो गया।

० ० ० ०

दो चार दिन बीत गये तो शशिधर फिर सोच में प गया कि, प्रतियोगिता में विजय पानेवाले को एक योग्य पु स्कार देने की जो घोषणा की गई है, वह योग्य पुरस्कार क होगा? एक ही पुरस्कार! वह भी किसी एक भाग्यशाली क मिलेगा! अगर वह भाग्य मेरे साथ है तो जरुर पुरस्क मिलेगा ही। इस तरह सोचते हुये शशिधर को प्रतियोगि का फलितांश प्रकाशित होने के वे आठ दिन आठ महिनों के समान भासित होने लगे।

जब यह उपन्यास प्रतियोगिता का विचार प्रकट हुआ ज छोटे बड़े सभी लेखक यही सोच में पड़ गये कि--'क्या करें! केवल आठ ही दिनों में सब कुछ करना है तो यह नये ढंग क उपन्यास किस तरह सिद्ध किया जा सकता है? इतना ह नहीं, वह उपन्यास हास्य या शृंगार रस रहित होना चाहिये तो यह बड़ी अजीब प्रतियोगिता है! और भी एक दो हफ्ते क फुरसत मिलती तो कोशिश की जा सकती थीं' इस तरह

सोचते ही वहुतेक लेखकोंने दिन बिताये। लेकिन उत्साही शशिधर को शृंगार या हास्य रस रहित रचना करने में कोई कष्ट नहीं होता था। शशिधरका साहित्य विचार प्रधान होता था। इस से शशिधर के साहित्य की विमर्शा करते कुछ रसिक युवक यह भी कहते थे कि; हास्य या शृंगार रस का एक बूंद भी अगर साहित्य में न हो तो वह साहित्य नमक के बिना किये हुए भोजन के समान स्वाद हीन हो जायगा।'

शशिधर इस तरह की विमर्शाओं को कान देनेवाला थोड़े ही था।

o o o o

सुन्दररायजी अपने लेखनकक्ष में चिंतित होकर बैठे हुए थे। क्योंकि उस दिन उपन्यास की प्रतियोगिता का अंतिम दिन था। प्रतियोगिता के लिए अनेक उपन्यास आये हुये थे। पर उनमें पुरस्कार के योग्य एक भी नहीं था। अब उस दिन की डाक की निरीक्षा ही, आशा की ज्योति सी थी। इस कारण से रायजी चिंता में पड़ गये थे कि; कवि तंत्र युक्त, इस प्रतियोगिता का जो सदुद्देश्य था, अगर वह पूर्ण न हो सका तो क्या करें? लेकिन उसी वक्त पोस्ट मैंन आया, और उसने एक वड़ा भारी लिफाफा दे दिया। वही था, प्रति योगिता का आखिरी उपन्यास! सुन्दररायजी उपन्यास को देखते फूले न समाये।

o o o o

अगले दिन सवेरे सुन्दररायजी खुशी से इधर उधर घूम रहे थे। सयानी मंगल गौरी लजाती हुई अपने कमरे में घुसी तो कावेरम्मा विस्मित होकर सुन्दररायजी से पूछने लगीं कि आपने यह क्या कर डाला? क्या आपको कविता लिखते लिखते कहीं पागलपन तो नहीं लग गया है न?

राय जी ने हंसते हुए पत्नी को समझाया कि, ऐसी कोई बात नहीं। क्यों तुम घबरा रही हो! आज का जमाना बदल गया है। कुछ वर्षों के पहले विवाह के योग्य लड़कों के लिए कन्यार्थी होकर गांवों में, देहातों में जाकर अपने लड़कों के लिये कन्या निश्चित करते थे। पर अब देखो, यह सब उलटा हो गया है। आज कन्या के पिता को वर की खोज में शर्मिंदा होकर देश संचार करना पड़ता है। ऐसे बदलते हुए इस काल के साथ, हम भी न बदलें तो हमारी प्रगति स्थगित हो जायगी। 'कवि का कष्ट' उपन्यास बहुत ही रोचक है, और इस उपन्यास ने उसके लेखक शशिधर जी के भाग्य का द्वार खोल दिया है। यह तो हमारी मंगल गौरी का सौभाग्य ही कहना चाहिये।

राय जी का छोटा सा यह भाषण सुन कर कावेरम्मा दंग रह गई।

उपन्यास की प्रतियोगिता के फलितांश की प्रतीक्षा में शशिधर जी आशा-निराशा के पालने पर अपनी मानसिक स्थिति में डोल रहा था। एक दिन शशिधर को सुन्दराय जी से एक पत्र आया तो शशिधर का खून सर्द हो गया। क्योंकि

# * अपूर्व पुरस्कार *

एक प्रसिद्ध कवि जी का पत्र शशिधर जैसे एक सामान्य लेखक को आना यह कोई मामूली बात नहीं थी। शशिधर ने वह पत्र खोल कर जब पढ़लिया तब उसका अंग-अंग मुस्करा रहा था। उस पत्र में यों लिखा हुआ था—'प्रिय शशिधर जी! आपको यह सूचित करते हर्ष होता है कि, उपन्यास की प्रतियोगिता में आपके 'कविका कष्ट' नाम के उपन्यास को पुरस्कार मिलने वाला है पुरस्कार के विषय में कुछ विचार करने के लिये आप मेरे घर पधारेंगे तो उपकार होगा।'

यह पत्र पढ़ते ही शशिधरका मन कुल-बुलाया कि, पुरस्कार देने के लिए विचार विमर्श करने की बात क्या होगी? और वह पुरस्कार ऐसा कौन सा अपूर्व पुरस्कार होगा? उसी वक्त शशिधर ने अच्छी तरह से ड्रेस कर लिया, और सुन्दरराय जी के घर जो पांच मील दूरी पर था जा पहुंचा। शशिधर को वहां गौरव के साथ सुस्वागत मिला।

o o o o

मधु मास की मधु पंचमी के एक शुभ अवसर पर सुन्दर रायजी का सुन्दर गृह सजधज से शोभायमान था। और राय जी के इष्ट मित्र बन्धु वांधवों से घर भर गया था। सुन्दर लता मंडप में नव वधू मंगल गौरी और नव वर शशिधर प्रेम पुष्प हार पहने शुशोभित थे। वेद मंत्र घोष और मंगल वाद्यों की प्रति ध्वनि, मंगल मय विवाह समारंभ का मंगल गीत सुनाई पड़ता था। इस अपूर्व विवाह समारंभ में आये हुए, अनेक कवि लेखक विद्वान् और बड़े २ अफसर लोग भी नव

वधू वरके दर्शनसे आनंदित होकर अपने हार्दिक शुभाशी के साथ यथोचित, पुरस्कार रूपी भेंट करते हस्त देते अत्यानंदित होते रहे। तो कावेरम्मा और सुन्दरा का उस समय का आनंद अवर्णनीय था।

इस संतोष के शुभ अवसर पर अपने पास ही बैठी अपनी भाग्य लक्ष्मी की ओर शशिधर ने एक बारिकी से एक बार देखा तो अनुपम सुंदरी मंगल गौरी, अपने नयनों से अपने सुंदर पति की ओर देखती लज्जासे झुक तो उसका मुख कमल खिल उठा !

अगले दिन "सामाचार वाहिनी" दैनिक पत्रिका में अक्षरों में यों प्रगट हुआ था-'उपन्यास की प्रतियोगिता विजयी लेखक शशिधर जी को कन्या रत्न पुरस्कार' विशेष वार्ता के साथ पुरस्कृत उपन्यास "कवि का पर एक परिचयात्मक लेख और मंगलगौरी शशिधर इन दंपतियों के भावचित्र भी, प्रगट हुए थे।

इस अपूर्व पुरस्कार की विशेष वार्ता के साथ ये दंपतियों के दर्शन लाभ से सैंकडों वाचकों ने दातोंतले दबाली।

यह अपूर्व पुरस्कार की वार्ता से लोग यों कहते थे 'वराभाव के अभाव में न मिलते वर दक्षिणा के जाल में फंसते उपन्यास प्रतियोगिता के तंत्र के जरीये सुंदर कन्यादान करके, जो बुद्धि बल का साहस प्रदर्शित किया यह प्रशंनीय है ।'

# योग शिक्षा कक्षायें

श्रीरामतीर्थ योगाश्रममें योगाभ्यास की व्यवस्थित तथा विधिवत् शिक्षा दी जाती है। शरीर की आन्तरिक और बाह्य शुद्धि तथा स्वच्छता के लिये मलशोधन कर्म नेति, धौति, नौलि, वस्ति (आज की एनिमा), कपालभाति, त्राटक तथा शीर्षासन स्वस्तिकासन, पद्मासन, पूर्ण पद्मासन, ऊर्ध्व सर्वांगासन, हलासन, भुजंगासन, मयूरासन, वज्रासन, कुक्कुटासन, मत्स्येन्द्रासन, गोमुखासन आदि ८४ आसनों की शिक्षा दी जाती है। इन आसनोंमें से कुछ प्रमुख आसनों का सतत अभ्यास करते रहने से साधक शारीरिक शक्ति तथा मनोबलसे भरपूर होता है तथा रोगमुक्त दीर्घायु प्राप्त करता है अनुलोम, विलोम, सूर्यभेदन, चन्द्रभेदन, भस्त्रिका आदि प्राणायामोंकी भी सुयोजित शिक्षा दी जाती है। प्राणायाम के अभ्याससे साधक अपनी श्वास–क्रियापर पूर्ण प्रभुत्व प्राप्त कर लेता है और परिस्थिति के अनुसार उसका संचालन करता है। यौगिक क्रियाओंके साथ सूर्य--नमस्कार, स्नायु–बल–संवर्धन, उदर बल संवर्धन आदि उत्कृष्ट व्यायाम भी सिखाया जाता है। कुण्डलिनी शक्ति जगाने और संयम आदिका अभ्यास कराकर साधकको शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक उन्नति की ओर प्रवृत करता है। शनिवार को सायंकाल ५ बजे और रविवारको प्रातः १० बजे आश्रममें योगाभ्यास, प्राकृतिक चिकित्सा, शारीरिक और मानसिक उन्नतिकी ओर प्रवृत्त होने की प्रेरणा देनेकी दृष्टिसे संचालक था। अन्य विद्वानोंके अनुभव और ज्ञानपूर्ण व्याख्यान भी होते हैं।

छोटे बच्चोंकी ताकद और तंन्दुरस्ती के लिये अत्युत्तम

BYTCO-GRIPE
बिटको-ग्राईप
BYTCO CHEMICAL

बिटको ग्राईप

भरपुर कॅल्शियम युक्त

बिटको केमिकल इन्डस्ट्रीज, नासिक रोड

# सृष्टि तथा प्रलय की काल गणना

( ले० बुद्धि प्रकाश वाजपेयी )

इतिहास इस बात को बतलाता है कि वर्तमान धरातल पर अनेकों राष्ट्रोंका उदय अस्त हुआ है। अनेकों साम्राज्य इस पर स्थापित और विलीन हुए हैं, पृथ्वी और जल के विभागों में अनेक प्रकार के परिवर्तन होते रहे हैं। इन सबके विषय में शृंखलाबद्ध ज्ञान किसी इतिहास की पुस्तक को देखने से पता चल सकता है। परन्तु बड़े आश्चर्य की बात है कि कई वैज्ञानिकों को इस समूचे धरातल और इतना ही नहीं बल्कि समूची सृष्टि से हमेशा उसी तरह कायम रहने के संबंध में संदेह हो गया है। बहुत से लोगों का विचार है कि कभी भी ऐसा एक समय आ सकता है जबकि सृष्टि जो कि इतने विस्तार से फैली हुई है, सिमिट कर बिलकुल अव्यक्त दशा में पहुंच सकती है। प्रोफेसर एडिंगटन योरप के प्रसिद्ध एस्ट्रो-

नामर और भौतिकशास्त्री है। उनका कहना है कि यह समस्त दिखाई देनेवाला विश्व पानी के बुलबुले की तरह बड़ी जोरों से बढ़ रहा है। लगभग डेढ़ अरब वर्षों में यह पहले से दूना होता चला जा रहा है और उनका अनुमान है कि हो सकता है कोई ऐसा समय आ जावे कि जब यह पानी के बुलबुले के समान फट जावे। दूसरे एस्ट्रोनामरों का विचार है कि विश्व के फटने का तो कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि बुलबुला तो पानी का बना होता है और फटकर पानी में मिल जाता है परन्तु यह विश्व तो तमाम तत्वों का बना है और यदि यह फूटेगा तो इसका तात्पर्य यह हुआ कि इसके सब तत्व इधर उधर बिखर जायेंगे। अतः डीसिटर नामक एक दूसरे एस्ट्रोनामर का कहना है कि यह विश्व ब्रह्माण्ड पहले एक बहुत छोटी और सूक्ष्म आकृति का रहता है फिर जब वह बढ़ने लगता है तो कई अरब वर्षों तक फैलता चला जाता है और बहुत विशाल बन जाता है, तत्पश्चात् सिकुड़कर फिर उतनी ही छोटी और सूक्ष्म आकृति में पहुंच जाता है। इस प्रकार ब्रह्माण्ड के सिकुड़ने और फैलने की क्रिया अनन्त काल से चली आ रही है और अनन्तकाल तक ऐसा ही होता रहेगा। आजकल के लगभग सभी वैज्ञानिक ब्रह्माण्ड के सिकुड़ने और फैलने वाले इसी सिद्धान्त को मानते हैं। मौरिस मेटरलिंक नामक एक पाश्चात्य विद्वान् ने भारतवर्ष के सृष्टि और प्रलय सिद्धान्त को जब पढ़ा तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। वह सोचने लगे कि विज्ञान आज जिस बात का पता लगा पाया है कि यह सृष्टि फैलने और सिकुड़ने वाली है, यह बात तो

## * सृष्टि एवं प्रलय की काल गणना *

सैकड़ों वर्षों पहले भारत के पूर्वजों ने अपने ग्रन्थों में लिख दी है कि पहले सृष्टि का विस्तार होता है बाद में समस्त सृष्टि का प्रलय हो जाता है। उसने अपने इसी आश्चर्य को अपनी पुस्तक "सुप्रीम लॉ" में प्रकट किया है:—"क्या विज्ञान का यह ब्रह्माण्ड का फैलने और सिकुड़ने वाला सिद्धान्त वेदों के उस सिद्धान्त की ओर लौटने का प्रयास नहीं है जहां यह बतलाया गया है कि यह ब्रह्माण्ड भगवान् का निस्वास है जो कि अरबों-खरबों वर्ष तक बाहर रहता हैं और बाद में यह ब्रह्मांडरूपी बुदबुदा फूटता है और एक बार फिर भगवान् के ब्रह्मांडरूपी स्वास को अन्दर खींच लेते हैं जो कि फिर अरबों खरबों वर्ष तक अदृश्य होकर भगवान् के अन्दर निवास करता है।"

सचमुच मैटरलिंक का कथन बहुत ही उपयुक्त है। हमारे प्राचीन ऋषियों ने सृष्टि के संबंध में बहुत कुछ बातें खोज निकाली हैं और धीरे धीरे आधुनिक विज्ञान भी उन्हीं बातों को अपने दूसरे तरीकों से अनुसंधान कर रहा है सृष्टि की स्थिति कितने समय तक रहती है और इसका प्रलय कब होता है, प्रलय में सृष्टि अव्यक्त दशा में कितने दीर्घ-काल तक रहती है, ये विषय इतने गूढ़ और गम्भीर हैं कि बिना दिव्य दृष्टि-ज्ञान के इनका पता लगाना अति दुष्कर है। भारत के ऋषियों ने योग-साधना के द्वारा दिव्य दृष्टि ज्ञान प्राप्त किया था और उस दिव्य दृष्टि-ज्ञान के आधार पर ही उन्होंने सृष्टि के काल के सम्बन्ध में बड़ी चोखी खोजें की हैं, जिन्हें बहुत संक्षेप में ही यहां प्रस्तुत किया जा सकता है:—

पंद्रह बार पलक मारने में जो समय लगता है उसे काष्ठा कहते हैं। बत्तीस काष्ठाओं की एक कला होती है। तीस कलाओं का एक मुहूर्त होता है तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र (दिन-रात) होता है ३६० दिन रातों (अहोरात्रों) का मनुष्य का एक वर्ष होता है। ४,३२,००० वर्ष का कलियुग होता है। कलियुग से दूना द्वापर का समय होता है, तिगुना त्रेता और चौगुना सत्युग का समय होता है अतः इस प्रकार एक पूरे चतुर्युग के चार करोड़ बत्तीस लाख वर्ष कहते हैं। इस प्रकार के ७१ चतुर्युगों का एक मन्वन्तर (मनुकाल) होता है। एक मनु से दूसरे मनु के बीच में इतने समय का अन्तर रहता है इसलिये इसे मन्वन्तर करते हैं। कुल १४ मनु होते हैं। १४ मन्वन्तरों का एक कल्प कहा जाता है। एक कल्प में सूर्य सिद्धांत के अनुसार १५ संधियां होती हैं और एक संधि का समय सत्ययुग के समय बराबर होता है। इस प्रकार सब संधियों के समय (२,५९,२०,००० वर्ष) को जब एक कल्प में मिला दिया जाता है, तब वह कल्प एक पूरा कल्प कहलाता है जो कि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्षों के बराबर होता है। यह एक पूरा कल्प का समय ही ब्रह्मा का एक दिन कहलाता है। इतनी ही बड़ी ब्रह्मा की एक रात्रि होती है। ब्रह्मा के दिन का जब उदय होता है तभी इस त्रैलौक्य की सृष्टि होती है जो कि चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष तक रहती है, इसके बाद ब्रह्मा की रात्रि प्रारंभ होती है और तब इस त्रैलोक्य सृष्टि का प्रलय हो जाता है। इस प्रलय का 'नैमित्तिक प्रलय' नाम से शास्त्रों में वर्णन आया है। इस प्रकार ब्रह्मा के ३६०

दिन-रात्रि समाप्त होने पर ब्रह्मा का एक वर्ष होता है और ब्रह्मा के जब सौ वर्ष समाप्त हो जाते हैं, पुनः ब्रह्मा की आयु भी पूरी हो जाती है और तब महाप्रलय होती है। इस महाप्रलय में त्रैलोक्य ही नहीं वरन् प्रकृति से उत्पन्न प्रत्येक साकार पदार्थ प्रकृति में निराकार होकर समा जाता है और इसको ही 'प्राकृतिक प्रलय' नाम से सम्बोधित किया जाता है। शास्त्रों ने एक अन्य 'प्रलय' का भी उल्लेख किया है जिसे 'आत्यन्तिक प्रलय' नाम से लोग जानते हैं किंतु 'आत्यन्तिक प्रलय' से शास्त्रों का तात्पर्य है आत्मा की संसार-चक्र से मुक्ति। जब आत्मा के समस्त कर्म चक्र समाप्त हो जाते हैं, पुनः वह प्रकृति विलग होकर मोक्ष प्राप्त करती है और उसके लिए प्रकृत बन्धनों की आत्यन्तिक प्रलय हो जाती है।

यह जो ऊपर युगों, कल्पों और मन्वन्तरों आदि की गणना दी गई है, इस गणना को मैडम ब्लेवेटस्की ने भी अपनी पुस्तक 'सीक्रेट डाक्ट्रीन' (द्वितीय भाग, पृष्ठ ६८-७०) में दिया है और बतलाया है कि—

'ये पवित्र खगोल शास्त्रीय कल्प अत्यन्त ही प्राचीन हैं और उनमें से अधिकांश 'नारद' और 'असुरमाया' की गणना से संबंधित हैं।'

(द्वितीय भाग, पृष्ठ ७०)

पुनः वे लिखती हैं—

'ब्राह्मण शिष्यों की कालनिर्णय विद्या व उनकी काल गणनाएं भारतवर्ष की राशिमाला के लेख प्रमाणों पर आधा-

रित हैं एवं उक्त कथित खगोल शास्त्री व एन्द्रजालिक-'असुरमाया' के ग्रन्थों पर आधारित हैं। अटलांटियन राशिमाला के लेख प्रमाण गलत नहीं हो सकते क्योंकि वे उन लोगों के आदेश में संकलित किए गए हैं जिन्होंने अन्यान्य अनेक विद्यायों के अतिरिक्त 'खगोलशास्त्र' को सर्व प्रथम मानव जाति को सिखलाया था।'

( द्वितीय भाग, पृष्ठ ४९)

हिन्दू शास्त्रों में एक विशेष उल्लेख यह भी पाया जाता है कि प्रति सृष्टि के आरम्भ में सातों ग्रह युति में होते हैं। इस तथ्य का पुष्टीकरण एक अंग्रेज खगोल शास्त्री भी निम्न शब्दों में करता है।

'हिन्दुओं की खगोलशास्त्रीय गणना के अनुसार विश्व का आधुनिक काल। 'कलियुग' ईशा के जन्म दिन के ३,१०२ वर्ष पूर्व २८ फरवरी को २ बजकर २७ मिनट तथा ३० सेकेण्ड पर प्रारम्भ हुआ था, इस प्रकार समय मिनटों और सेकेण्डों तक जोड़ लिया गया है। उनका कहना है कि ग्रहों का योग उस समय हुआ था और उनकी तालिका भी इस योग को दिखलाती है। यह कहना स्वाभाविक है कि ग्रहों का योग उस समय हुआ होगा, क्योंकि ब्राह्मणों की गणना हमारी खगोलशास्त्रीय तालिकाओं से इतनी ठीक-ठीक प्रमाणित होती है कि विना यथार्थ निरीक्षण के इतना अनुरूप परिणाम नहीं दिया जा सकता।'

(काउण्ड जान्स्र्टजर्नः 'थियोगोनी आफ दी हिंदूज पृष्ठ ३२)

अभी हमें ऊपर सृष्टि की काल गणना के संबंध में विचार करते हुए विदित हुआ था कि जब ब्रह्मा का एक दिन पूरा हो जाता है और उनकी रात्रि प्रारम्भ होती है, तो पूरे त्रैलोक्य (सोलर सिस्टम) की प्रलय हो जाती है और जब ब्रह्मा के १०० वर्ष अर्थात् उनकी पूर्ण आयु समाप्त हो जाती है तब समस्त व्यक्त प्रकृति की प्रलय हो जाती है अर्थात् तब समस्त ब्रह्माण्ड अपनी मूल अव्यक्त प्रकृति में निराकार होकर समाहित हो जाता है। यहां एक जिज्ञासा उत्पन्न होती है यह जानने की कि जब से सृष्टि प्रारम्भ हुई है तब से अबतक कितना समय व्यतीत हो चुका है और कितना समय अभी महाप्रलय या प्राकृतिक प्रलय में शेष है। इस सम्बन्ध में भी हिंदू शास्त्रों ने उल्लेख किया है कि अब तक ब्रह्मा के ५० वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस समय ब्रह्मा के ५१ वें वर्ष का प्रथम कल्प (अर्थात् प्रथम दिन) चल रहा है और प्रथम कल्प के छः मन्वन्तर बीत चुके हैं अभी जो त्रैलोक्य की पिछली प्रलय हुई है उस प्रलय के अनन्तर यह हमारी त्रैलोक्य (सोलर सिस्टम) अर्थात् हमारी पृथ्वी, भुवर्लोक और स्वर्ग लोक नए रूप से बने हैं और इनको बने हुए आर्य भट्ट की गणनानुसार, लगभग कुछ कम दो अरब वर्ष हुए हैं। यह जान कर तो पाठकों को और भी आश्चर्य होगा कि कतिपय आधुनिक वैज्ञानिक भी इस पृथ्वी की आयु लगभग २ अरब वर्ष के निकट बतलाते हैं। देखिये, सर जेम्स जीन्स जो आजकल के चोटी पर के भौतिकशास्त्री एवं खगोलशास्त्री

समझे जाते हैं, लिखते हैं—:

'पृथ्वी की प्राचीनतम चट्टानों में 'रेडियो-ऐक्टिव' पदार्थों की छान बीन की गई और उनसे विदित होता है कि इन चट्टानों की उम्र २ अरब वर्ष के लगभग है।'

( 'दी ग्रोथ आफ फिजिकल साइन्स' पृष्ठ ३१४)

हिंदू ग्रन्थों के इतने लम्बे २ आंकड़ों को पढ़कर श्री हाल वेघ साहब कहते हैं कि 'इतनी प्राचीनता के समक्ष बाइबिल की सृष्टि अभी कल ही रची गयी है, ऐसा लगता है ('टू सच ऐण्टी कुटी दी मोजेइक क्रियेशान इज बट ऐज एस्टरडे')।

प्राचीनकाल में भारत का सम्बन्ध अन्यान्य देशों के साथ भी था, अत एव उनकी सभ्यता पर कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य ही पड़ा होगा। यही कारण है कि ऐसे तमाम देश जो कि किसी समय विज्ञान व औद्योगिक विकास में पर्याप्त विकसित थे, अपने संवत् का समय अथवा सृष्टि-रचना का समय बाइबिल से बहुत अधिक लम्बा मानते हैं। चीनियों का संवत् और हिंदुओं का संवत् काल बहुत कुछ समता रखता है।

राबर्ट ब्राउन कहते हैं कि बैबिलोनियावालों की धारणा है कि उनके दस राजाओं ने १२० 'सर' तक राज्य किया, जब कि ३६०० वर्ष का एक 'सर' होता है। अतएव इस हिसाब से दस राजाओं का राज्यकाल १२० सर अर्थात् ४३२,००० वर्ष हुआ जो कि हिन्दुओंके कलियुग वर्षों की संख्या है। पारसियों

के धर्म ग्रन्थों में भी उल्लेख आता है कि सृष्टि की स्थिति का समस्त काल १२००० वर्षों तक रहता है ("दी परसियन सेजेज हेड बाइ जोरोस्टर विलीव्ह दैट दी टोटल डूयरेशन आफ दी वर्ल्ड्स इक्जिस्टेंस वाज लिमिटेड टू १२,००० ईयर्स"—आर्थर होलमस रचित 'दी एज आफ अर्थ" पृष्ठ ३)। परन्तु पारसियों द्वारा उल्लिखित ये वर्ष मानवीय वर्ष नहीं हैं बल्कि दिव्य-वर्ष हैं और उनके यहां यह भी लिखा है कि "तएच अयर मइन्यन्ते यतयरे" अर्थात् जो देवताओं का दिन है वह हमारा एक वर्ष है। अतएव पारसियों के सृष्टिकाल के १२००० दिव्यवर्षों का अर्थ हुआ मनुष्यों के ४,३२०,००० वर्ष जो कि हिन्दुओं के एक महायुग अर्थात् एक चतुर्युगी के वर्षों की संख्या है। चाल्डियावालों का विश्वास है कि पृथ्वी की उत्पत्ति २१४ मिरियड वर्ष है (एक मिरियड वर्ष दश हजार वर्षों के बराबर होता है)। इसलिए उनका संवत् २ करोड़ १५ लाख वर्ष तक जाता है। परन्तु वस्तुतः यह समय पृथ्वी की उत्पत्ति का न होकर उनके किसी संवत् अथवा किसी राज्यवंश परम्परा के प्रारम्भ का है। इस प्रकार इतने तमाम लम्बे लम्बे वर्षों के आंकड़े देखने से यह विदित होता है कि मनुष्य अपना सिलसिला करोड़ों वर्षों तक ले जाता है। इस संबंध में "ओरिजिन आफ दी वीक" शीर्षक नाम के लेख में श्री शामशास्त्री द्वारा निम्न विवरण ध्यान देने योग्य है, वे लिखते हैं—

"सूर्य सिद्धांत (१-११-१२) के अनुसार,

१० लम्बे स्वर = १ श्वास
६ श्वास = १ विनाड़ी

६० विनाड़ी = १ नाड़ी
६० नाड़ी = १ दिन

अर्थात् १० × ६ × ६० × ६० = २,१६,००० स्वरों उच्चारण करने में व्यतीत हुआ समय २४ घंटे एक दिन के बराबर है। हिन्दुओं की तरह बैबिलोनियावालों के आंकड़े भी ६ तथा १०, और ६ तथा १० के गुणनफल एवं उनके वर्गफल हैं। बैबिलोनियावालों ने जो नाम उनके रखे हैं वे हैं—सर (३६००), सास (६०), और नेर (६००), जो कि हिन्दुओं के स्वर, श्वास और नाड़ी नामों के बिल्कुल अनुरूप लगते हैं। राबर्ट ब्राउन कहते हैं कि यह नक्षत्रों का मेषराशि का चिह्न उन विश्व प्रलय के पहले के १० राजाओं के शिरपर लगा हुआ है जिन्होंने १२० सर (४३२,००० वर्ष) राज्य किया था। बेरोसस के अनुसार एक सास ६० वर्ष का, एक नेर ६०० वर्ष का और एक सर ३६०० वर्ष का होता है, ३६०० का १२० से गुणा करने पर ४३२००० होते हैं। यह अक्कद में समय की गणना है (जो कि हिन्दुओं के कलियुग की संख्या है)। (देखिए, "एनाल्स आफ दी भंडारकर इन्स्टीट्यूट," भाग पार्ट १, जुलाई १९२२)

प्रारम्भ में हमने इस बात की चर्चा की थी कि आजकल विज्ञान में विशेषतः खगोलशास्त्र में इस विषय में बहुत संदेह हो चला है कि यह सृष्टि इस प्रकार हमेशा बनी रहेगी। कुछ वैज्ञानिकों ने सूर्य की गर्मी को प्रतिदिन घटते देखकर यह अनुमान लगाया है कि एक समय ऐसा आनेवाला है

जब कि सूर्य की समस्त गर्मी क्षीण हो जायेगी और इस पृथ्वी पर किसी भी प्राणी का जीवन असम्भव हो जायेगा। अतः प्रश्न उठता है कि वह समय अभी कितना दूर है। हिंदू काल-गणना के अनुसार इस त्रैलोक्य की स्थिति ४ अरब ३२ लाख वर्ष है जिसमें लगभग २ करोड़ कम २ अरब वर्ष व्यतीत होने को आए हैं। अतः इस हिसाब से २ अरब ३४-करोड़ वर्ष के लगभग समय हमारे त्रैलोक्य की प्रलय के लिये शेष है। भौतिकशास्त्रियों के अनुसार सूर्य की गर्मी पूर्णतया क्षीण हो जाने में भी लगभग इतना ही समय लगेगा। परन्तु इससे केवल सूर्य मण्डल ( सोलर सिस्टम ) ही समाप्त होगा न कि अन्य समस्त नक्षत्रमण्डल व संपूर्ण ब्रह्माण्ड अर्थात् कहने का तात्पर्य है कि २ अरब और ३४ करोड़ वर्षों बाद केवल "नैमित्तिक प्रलय" ही होगी न कि "प्राकृतिक प्रलय" नैमित्तिक प्रलय में केवल त्रैलोक्य ( पृथ्वी, भुवर्लोक व स्वर्गलोक ) का नाश होता है जब कि प्राकृतिक प्रलय में तो समस्त ब्रह्माण्ड का अन्त हो जाता है जिसके लिये तो अभी ब्रह्मा के ५० वर्ष समाप्त होने को बाकी हैं।

# रंगभेद रहस्य

लेo— रूपां सव्यसाची

[ रंगभेद, की घृणित विचार धारा, जिसने विश्व के मानचित्र को स्पष्ट ही काले-गोरे भागों में बांट रखा है जिसके लिये बापू ने दक्षिणी अफरीका में तीव्र आंदोलन किया और जिसके नाम पर डैनियल मलान-जैसे राजनीतिज्ञों ने संकीर्ण राजनीति को प्रश्रय दिया, वास्तव में शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से कोई बड़ी अहमियत नहीं रखता।

आइए हम इस विशुद्ध राजनीतिक, सामाजिक समस्या के वैज्ञानिक पहलू पर भी विचार करें। —सम्पादक]

प्राचीन भारतीय वाङ्मय में एक मर्मस्पर्शी बोध कथा है—विदेहराज जनक की राजसभा में जब परमज्ञानी ऋषि अष्टावक्र पधारे तो उनके शरीर के विचित्र आकार और निरूप रंग को देखकर अनेक सभासद मुसकरा पड़े। ऋषि ने

यह देखकर महाराज जनक से कहा, "राजन्, मैंने तो सुना था आपकी सभा अनेक तत्वचिंतकों और दार्शनिकों से भरी है इसलिये मैं सत्संग की लालसावश यहां तक चला आया। किंतु यहां केवल चर्मकारों को उपस्थित देख मुझे बड़ी निराशा हुई।"

महाराज सहित सभी सभ्य-सामंत अभी प्रश्नाकुल चेहरे से ऋषि को निहार ही रहे थे कि वे गंभीर स्वर में कहने लगे, "ज्ञानी जन तो हर व्यक्ति को आस्था के नेत्रों से देखता है। वह हर व्यक्ति को उसकी भावनाओं और कृत्यों की तराजू पर तोलता है। किंतु चर्मकार हर व्यक्ति को उसके चमड़े से पहचानने का प्रयत्न करता है क्योंकि उसकी दृष्टि में भावनाओं और कृत्यों का नहीं अपितु चमड़े का ही मूल्य होता है।"

हजारों वर्ष पहले इस सनातन सत्यका उद्घोष करनेवाले ऋषि अष्टावक्र के सामने, इसका कोई वैज्ञानिक तथ्य नहीं था। किंतु आधुनिक वैज्ञानिकों ने भी अब अपनी खोजों के आधार पर प्राचीन ऋषि के इस कथन को सत्य पाया है।

आधुनिक शरीर रचना विज्ञान और शरीर क्रिया विज्ञान हमें बतलाता है कि मनुष्य की त्वचा, आँख और बालों का रंग चमड़ी के अंदर पायी जाने वाली मेलानोसाइट पेशी पर निर्भर करता है। इस पेशी में मेलनीन नामक रंगीन द्रव रहता है। मेलनीन का रंग बादामी से लेकर काला तक

अनेक तरह का देखा गया है। मानव-जाति के विभिन्न वर्गों में इसकी मात्रा अलग-अलग पायी जाती है किंतु एक ही वर्ग के दो व्यक्तियों में इसकी मात्रा समान होती है।

मेलानोसाइट पेशियां त्वचा की अन्दर वाली पर्त में फैली रहती है। शरीर के सारे अंगों में इनका फैलाव समान परिमाण में नहीं होता, इसलिये एक ही मनुष्य के विभिन्न अंगों का वर्ण भी एक सा नहीं होता। आपने कभी गौर किया होगा वर्ना आपको अपने मुंह और हथेली के रंग में काफी अन्तर दिखाई पड़ता।

मस्तिष्क में स्थित पिटीच्युअरी और पीनियल नाम की नलिका विहीन ग्रंथियां हारमोन द्रव तैयार करती हैं। हारमोन का मुख्य कार्य इन्द्रियों को ओजस्वी बनाना है। यही हारमोन युवावस्था आने पर मेलानोसाइट पर प्रभाव डाल कर त्वचा का रंग बदल देता है।

मां के गर्भ में स्थित बच्चा जब तीन महीने का हो जाता है तब मेलानोसाइट की एक पतली पर्त उसके अवयवों पर जमने लगती हैं। मुंह, गर्दन और जोड़ों की त्वचा में मेलानोसाइट की मात्रा अधिक होती है, इसी कारण इन अंगों का रंग दूसरे अंगों की अपेक्षा अधिक सांवला दीखता है। और हाथ-पैर के तलवों में इसकी मात्रा कम होने के कारण ये अंग करीब २ रंगहीन ( सफेद ) दिखलाई पड़ते हैं। आंखों

के रंग में विभिन्नता भी इसी मेलानोसाइट की करतूत है। अधिक मात्रा में जमा मेलानीन आंखों को डरावने रूप में लाल बना देता है जब कि काले रंग का थोड़ी मात्रा में एकत्रित यही द्रव उन नीली-नीली आंखों का निर्माण करता है, जिसकी निष्कलुष गहराइयों में कवि की भावना डूब जाना चाहती है।

त्वचा के नीचे जमा मेलानोसाइट जहां कहीं अधिक मात्रा में एकत्रित हो जाता है वहां का रंग काला हो जाता है। इस कालिमा को हम लोग तिल के नाम से पहचानते हैं और गोरे-गोरे गालों पर शोभित इसकी छोटी सी बूंद को देख कर हमारा मन लोक गीतों की कोई हल्की फुल्की कड़ी दोहराने लगता है। तिल हमारी आयु के साथ-साथ बढ़ते हैं और बुढ़ापे में धीरे-धीरे छोटे हो जाते हैं कुछ तिल जन्म से ही होते हैं। इन पर मेलानोसाइट-जमाव की प्रक्रिया बड़ी तीव्रगतिसे होती है। और हारमोनका भी इन पर सशक्त नियंत्रण रहता है।

मेलानीन की उत्पत्ति शरीर में पाये जाने वाले टायरोसीन और अमीनोअम्ल की प्रतिक्रिया से होती है। जिस शरीर में टायरोसीन क्रिया-शून्य होती है, उसकी मेलानोसाइट पेशियों में मेलानीन का निर्माण बन्द हो जाता है। ऐसे शरीर में असमय ही बालों और त्वचा की सफेदी दीखने लगती है। टायरोसीन की निष्क्रियता वाले मरीज ही शान से अपने सन जैसे बालों पर हाथ फेर कर कहते हैं, 'जाओ, जाओ मैंने धूप में बाल सफेद नहीं किये हैं।'

गोरे-रंग के व्यक्तियों में मेलानीन मेलानोसाइट पेशी के केन्द्र में जमा रहता है इसी कारण पेशी की शेष जगह करीब करीब पारदर्शक हो उठती है। गोरे रंग का रहस्य पेशियों में मेलानीन का अधिक से अधिक केन्द्रित होना है। पेशियों में पूरी तरह फैला मेलानीन त्वचा का रंग काला कर देता है। मेलानीन जितना ही अधिक फैला रहेगा त्वचा का रंग उतना ही आबनूसी होगा। इस प्रभावशाली द्रवके केन्द्रीकरण अथवा विकेन्द्रीकरण की जिम्मेदार हैं, पीनियल और पिटीच्युअरी ग्रंथियां। पीनियल ग्रन्थ हारमोन से त्वचा सफेद और पिटीच्युअरी से काली होतं है। गर्भावस्था में स्त्रियों का रंग भी पिटीच्युअरी की सक्रियता के कारण सांवला पड़ जाता है। इसी तरह टाइफाइड, काला बुखार आदि रोगों में भी त्वचा का रंग काला पड़ जाता है। यह रंगांतर भी ग्रन्थियों की प्रतिक्रिया के कारण होता है।

शीशे के नल
शीशे की चद्दरे
शीशे की पट्टियां तार आदि
१" से १२" गोलाई के मुंहके सब तरह व साइज के सख्त
शीशेके नल तथा चद्दरें बनाने वाले।
—: भारतमें सर्वप्रथम निर्माता :—
अशोक मेटल इंडस्ट्रीज
६ शिवडी क्रोस रोड, बम्बई-१५
फोन : ६३९६४

# क्लोरोफिल

### ले०— शिवनारायण शर्मा

प्रकृति के इस अद्‌भुत चमत्कार का नाम अंग्रेजी भाषा में "किलोरोफिल" है । इस अद्वितीय वस्तु के मूल्य का ज्ञान पश्चिमी देशों को अभी हुआ है । पहले पहल इसके सम्बन्ध में बड़ा भारी शोर टूथपेष्ट बनानेवाली कम्पनियों ने आरम्भ किया और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया, कि किलोरोफिल न केवल दांतोंको मोती की भांति चमकाता है, बल्कि उनकी क्षीतना और कीड़ा न लगने की भी अचूक औषधी है ।

कुछ वर्ष पहले अमरीका ने किलोरोफिल की विशेषता से लोगों को परिचित किया । फिर योरप में इसकी शोहरत का डंका बजा । हमारे देश में तो नीम और जंगली हरी गोभी के हरे पत्तों का प्रयोग जख्मों पर लोग हजारों वर्षों से करते चले आए हैं । परन्तु पश्चिमी डाक्टरों को इस के सम्बन्ध में

ज्ञान अभी कुछ वर्षों से हुआ है। उनका कहना है कि, यदि पत्तों की हरयाली का, खाने की औषधी की भांति प्रयोग किया जाये तो यह शरीर की दुर्गंध दूर करने में अधिक अच्छी सिद्ध होगी।

किलोरोफिलका आविष्कार होते ही पश्चिमी डाक्टरों पर एक पागलपन सा सवार हो गया। जहां सुनो वहां किलोरोफिल का जिक्र। उन्होंने हरे पत्तों की हरयाली को इस प्रकार तैयार किया कि; उस में प्राकृतिक हरयाली के सब गुण जैसे थे वैसे ही रहे। फिर इस को पावडर और गोलियों की शक्ल में प्रस्तुत किया। इन के बेचने के लिये करोड़ो पौंड विज्ञापनों पर व्यय किये। इसका प्रयोग टूथपेष्ट और दूसरी दरजनों औषधियों में होने लगा। सब से पहले घातक किटाणुओं के मारने के लिये, गोलियों का उत्पादन हुआ। सारी दुनिया के मासिक साप्ताहिक और दैनिक पत्र, इसके रंगविरंगे विज्ञापनों से सुशोभित हो गये। इस की प्रशंसा में जमीन आसमान एक कर दिये गये। इसके लाभ उतनी ही तीव्रता से विख्यात किये गये, जितने कुछ वर्षों पहेल विटामिनों के किये गये थे।

हमारे पूर्वजों को इस हरयाली के गुणों का ज्ञान पहले से ही था। इस कारण वह वबूल, नीम और हरी टहनियों की ताजा दांतन, सुबह उठकर करते थे। इन वृक्षों की टहनियां, प्राकृतिक किलोरोफिल से मालामाल होती हैं यह टूथपेष्ट और ब्रुश दोनों का काम देती हैं।

हरेपत्तों की हरयाली का सौल्यूशन किटाणुओंकी उत्पत्ति को रोक देता है शरीर के खलियों (सेलस) में इतनी शक्ति उत्पन्न हो जाती है, कि छूतछात के रोग आक्रमण नहीं कर पाते। किलोरोफिल दांतों की बीमारियों की भी अकसर दवा है।

प्रकृति आश्चर्य जनक रीति से ऐसी २ वस्तुएं उत्पन्न करती है, कि जब मनुष्य को इनकी बनावटों का ज्ञान होता है, तो वह दांतों तले ऊंगलियां दबाने लगता है। कहने को तो किलोरोफिल हरे पत्तों की हरियाली है परन्तु जब आप इस की उत्पत्ति, बनावट का हाल पढ़ेंगे तो आश्चर्य करने लगेंगे।

सूर्य की गरम रोशनी की प्रत्येक किरण पत्ते के अणुओं पर पड़ती है तो इस से एक धमका सा पैदा होता है। प्रतिक्रिया यह होती है कि पानी और कार्बनडाइओक्साइड के मोलीक्यूल्स फटकर खुल जाते हैं। पत्ता, औक्सीजन कारबन और हाईड्रोजन को हवा में से प्राप्त करता है और इस के अणुओं को नई शकल में बदल देता है।

किलोरोफिल की बनावट में सब से अधिक दिलचस्प बात यह है कि इसकी शकल और सूरत मनुष्य के रक्त के सुर्ख होमोग्लोबीन से अधिक मिलती जुलती है जो हमारे शरीर बनाने में बड़ी उपयोगी है किलोरोफिल की बनावटमें, केन्द्रिय एटम मगनेशियम का होता है, जिसका सिलसिला, कार्बन,

हाईड्रोजन, औक्सिजन और नाइट्रोजन से जा मिलता है। मनुष्य के रक्त के लाल होमोग्लोवीन की भी एक मात्र यह ही केन्द्र बनावट होती है। अतर केवल इतना ही है कि क्लोरोफिल का केन्द्रिय एटम मगनेशियम होता है और मनुष्य के होमोग्लावीन का फौलाद।

जिन पुरुषों को एनेमिया (खून की कमी) का रोग होता है, उनके लिये हरे पत्तोंवाली सब्जी का रस एक अच्छी औषधी है और गुणकारी खूराक। यह रस ज्यों ही शरीर में पहुंचता है, शीघ्रता से रक्त बन जता है। हमें एक रोगी का हाल मालूम है कि जिस को डाक्टरों ने अंडमास, लिवर के इंजेक्शन बताये थे जब उस ने इस रस का प्रयोग किया तो उस का वजन दिन में एक-एक पौंड के हिसाब से बढ़ गया।

यह रस उस सूरत में ही ज्यादा लाभकारी होता है जब कि वह कच्ची सब्जियों के पत्तों से प्राप्त किया जाये। यदि पकाकर यह रस निकाला गया, तो गरम करने में इसके मूल्यवान् विटामीन नष्ट हो जाते हैं। यह रस थोड़ी मात्रा में आरम्भ करके अधिक मात्रा में बढ़ाना चाहिये। यदि मारमाईट को इस के साथ और मिला लिया जाये तो विटामीन 'बी' की इसमें और अधिकता हो जाती है, जो दिल और दिमाग की शक्ति और रक्त पैदा करने में बड़ी सहायता करती है। इस अमृत-तुल्य रस को दिन के समय में उपयोग करना चाहिये।

किलोरोफिल के रस में, जो पालक आदि कच्ची पत्तेदार सब्जियों से प्राप्त किया जाता है, विटामीन 'ए' 'बी' 'सी' और दूसरे मूल्यवान् नमक पाये जाते हैं। लोहे और मगनेशियम के अतिरिक्त, इस में कैलशियम, पोटाशियम, सोडियम, फास्फोरस, सिलीकीन और किलोरीन भी पाई जाती है।

आज कल के अनुसन्धानों से यह पता चला है, कि हमारे शरीर में रोगों की नीव, विटामीन और नमकों की कमी के कारण पड़ती है। इस लिये यह अति आवश्यक है कि बच्चों को बचपन से ही हरी पत्तियों वाली सब्जियों के रस की आदत डाली जाये।

यदि क्लोरोफिल के रस को ताजा फलों के रस में मिला लिया जाये तो यह पेय अति स्वादिष्ट बन जाता है, और यदि गरम मौसम में इस रस को ठण्डा करके पिया जाये तो रक्त और शक्ति में वृद्धि करने वाला; यह एक उच्चकोटि के सरवत का काम देता है।

क्लोरोफिल का रस तैयार करना कुछ कठिन कार्य नहीं है। पालक, गाजर, सलगम के पत्ते, धनिया, पोदिना, मूली के पत्ते अर्थात् कोई पतेदार सब्जी हो, उसको पहले खूब पानी से साफ करलो, फिर पीस कर रस निकालो। रस निकालने वाली मशीन से भी इसका रस निकाला जा सकता है। फिर इसको बारीक कपड़े में छान लो। इस को स्वादिष्ट बनाने के लिये इस में नीबू, मोसमी, नारंगी का रस मिला

लो। अंत में स्वादानुसार नमक और काली मिर्च भी मिलाया जा सकता है।

यदि प्रतिदिन इस का सेवन किया जाये तो क्लोरोफिल का यह अमृत बच्चों और जवानों की बीमारियों को दूर क देती है। वृद्धों की काया कल्प हो जाती है यह अमृ ३५ वर्ष के पश्चात् की बीमारियों को रोक देता है। आयु बढ़ जाती है। रंग सुर्ख हो जाता है।

बागों में, बक्सों में, गमलों में, धरतीके चप्पे २ पर सब्जी बोने का यत्न करो। बजाय शराब और सिग्रेट पीने के क्लोरोफिल के रस के पीने की आदत डालो। इससे दिल और दिमाग को शक्ति पहुंचेगी। चेहरा लाल सुर्ख हो जायेगा और दुनिया चमकीली और जवान दिखाई देने लगेगी।

रामतीर्थ में
विज्ञापन
देकर
लाभ
उठाइये

( कहानी )

# मनकी प्यास

लेखक—नामवर

आधुनिक महँगे जीवन की आपाधापी, भाग-दौड़ और इसी तरह के नाना प्रकार के धक्कों से बचने के लिये पीड़ित अमरनाथ ने यौवन के द्वार पर पहुँचते ही यह निश्चय कर लिया कि वह आजीवन अविवाहित जीवन व्यतीत करेगा। दफ्तर की बेजान फाइलोंके बीच उसकी सारी महत्वाकांक्षाएं दब सी गईं। जीवन में जैसे कुछ रस ही नहीं रहा। घर से दफ्तर, और दफ्तर से घर तक उसकी जिन्दगी सिमट कर

रह गई। सारे हौसले पस्त हो गये। उसके इस छोटे जीवन में जितनी भी उलझनें आई, वे सब सुलझने के वावजू और भी अपने आप ही में उलझती गई। जिसकी गाँठें उसके दिल और दिमाग पर पड़ती गई। उसके इस अकेले व्यथ और मायूस जीवन में कोई ऐसा था भी नहीं जो उसे खोलता और खुलकर जीने के लिये हिम्मत देता।

पर अकेले जिया भी तो नहीं जाता। तनहाई रह रहकर काटने दौड़ती है। अमरनाथ ने भी धीरे धीरे यह महसूस किया कि उसका दबा मन किसी साथी को दबे स्वरों से न जाने कब से बुला रहा है। मन के इस आकस्मिक किन्तु प्राकृतिक परिवर्तन पर अमरनाथ को आश्चर्य भी हुआ। मुँह लगे दोस्तों के हठों ने भी उकसाया कि अब वह एक न होकर अपनी इस तीस वर्ष की अवस्था में शीघ्र ही दो बन जाय। क्योंकि यह जीवन सिर्फ अपने ही लिये नहीं है। इस पर किसी और का भी तो अधिकार है। अमरनाथ ने भी सोचा कि आखिर कबतक वह कुँठाओं का बोझ अपने सिरपर ढोता फिरेगा। फलस्वरूप कुछ ही दिनों के वाद शहनाई के मंगल एवं मधुर स्वरों से उसके मन की सोई खोई उदासी गूंज उठी।

अमरनाथ की पत्नी नयना सुन्दरता में जैसे बे-जोड़ थी। उसके एक एक अंग से खून जैसे टपका पड़ता था। पाक-शास्त्र से लेकर अन्य घरेलू कामों में भी वह बहुत निपुण थी। नयना के पैर घर में पड़ते ही घर का खोया खाया सूनापन

जैसे लुप्त हो गया। घर की जो दीवारें काटने दौड़ती थीं, वही अब मुस्कराती नजर आने लगीं। अमरनाथ ने भी मन ही मन यह महसूस किया कि पहले का बुझा-बुझा सा अकेला जीवन कितना दमघुट था! पहले वह तहजीब के नाते कभी कभी मुस्करा देता था, किन्तु अब वही बन्दी मुस्कान जैसे मुक्त हो गई। पत्नी की एक मुस्कान उसके सारे दिन की थकान को पलभर में मिटा देने के लिये काफी थी।

तीन वर्ष इतनी तेज रफ्तार से आकर गुजर गये कि कुछ पता भी न चला। इन तीन वर्षों में दुःख के नाम पर केवल एक ही चीज सामने आई, वह थी पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम का प्रतीक किसी संतान का अभाव! उसी अभाव के कारण धीरे-धीरे दाम्पत्य प्रेम के बीच एक खाई बनने लगी। जिसके फलस्वरूप अमरनाथ अपनी पत्नी नयना से न चाहते हुये भी कुछ कटा-कटा रहने लगा। आए दिन नयना अपनी गीली-आंखों से मुरली मनोहर की मूर्ति के सामने अपना आँचल फैलाकर तरह तरह की मनौतियां मानती।

इस तरह से विवाह के पांच वर्ष बीत गए। संतान की बलवती इच्छा तथा मुह लगे दोस्तों के हठों ने आखिर युवक अमरनाथ को भी इस फैसले पर आने के लिये विवश किया कि वह दूसरी शादी कर ले। किन्तु फिर भी मन का घिनौना निश्चय न जाने क्यों अमरनाथ के मन को रह-रहकर कँपा सा देता था। नयना के सामने जब उसने अपने दोस्तों

की यह बात रक्खी तो उसने भी कलेजे पर पत्थर रखकर छलछलाती हुई आँखों से अपनी लड़खड़ाती स्वीकृति दे दी। किंतु मन की असह्य पीड़ा से हिलती हुई नयना को देखकर अमरनाथ मन-ही-मन जैसे हिल सा गया।

इधर नयना दिनों दिन सूखती जा रही थी। बेवसी का यह बलिदान आगे चलकर कितना जहरीला होगा, उस संभावना से रह रहकर नयना कांप उठती। आजतक वह जिस घर की रानी बनकर रही, वही घर उसे दासी भी बना सकता है। न जाने आनेवाली दूसरी पत्नी का व्यवहार उसके साथ कैसा हो? उधर अमरनाथ भी ज्यों ज्यों दूसरी शादी का दिन करीब आता गया त्यों त्यों वह अपने आप ही में रह रहकर बौखला सा उठता था। कभी कभी उसे ऐसा लगता जैसे वह कोई भारी गुनाह करने जा रहा हो। सोचते सोचते उसका माथा पसीने से तर हो जाता, और बहुत सी संभावनाओं से घिरा भविष्य अन्त में एक सवाल उठा ही देता कि अगर दूसरी पत्नी से भी कोई संतान न हुई तो?

शादी के अब दस दिन और बाकी थे। गले के लिये सोने का हार और दोनों हाथों के लिये दो सोने के कंगन भी बनकर आगये। मन के न चाहने पर भी अमरनाथ का दल शादी की तैयारी में अपने दोस्तों के साथ कुछ उसी तरह से लगा हुआ था जैसे कोई बेगारी पर लगाया गया हो। रह रहकर अमरनाथ को अपने आप से घृणा हो उठती थी। अभी कल ही दफ्तर से लौटते समय उसने एक स्वामी जी के

सुना कि मनुष्य व्यर्थ की इच्छाओं के जाल में फँसकर रही सही शांति से भी हाथ धो बैठता है। व्यर्थ की इच्छाएं ही वास्तव में हमारे दुःख का कारण बनती हैं। मनुष्य चाहे जहां और जैसी भी हालत में हो। भगवान् को जो मंजूर होगा वह तो अपने आप होकर ही रहेगा। जीवन का सबसे चरम-लक्ष्य है तृप्ति, और वह तृप्ति है संतोष में, न कि नाना प्रकार के सांसारिक साधनों के पीछे पागल होकर भटकने में।

इन्हीं विचारों के सागर में डूबते डूबते अमरनाथ सहसा उछल पड़ा, जैसे कि उसने किनारा पा लिया हो। उसने तुरन्त ही अपनी पत्नी को बुलाया जो उस तरह से धीरे धीरे आ रही थी जैसे कोई फाँसी के तख्ते पर चढ़ने के लिये आ रहा हो। उसकी आँखें धँस गईं थीं। चेहरा पीला पड़ गया था। मुस्कान का अभिनय करते हुये नयना ने आश्चर्य से पूछा 'क्या आपने मुझे बुलाया!' और फिर बिना इसका कुछ उत्तर दिये ही भावुक अमरनाथ ने झपटकर उसे अपने प्यार भरे आलिंगन में बांध लिया। गले में हार और दोनों हाथों में कंगन पहनाते हुये अमरनाथ ने सिर्फ इतना ही कहा कि 'आज यह मेरी दूसरी शादी हो रही है नयना।' और फिर अमरनाथ की आँखों से आँसू की दो बूदें लुढ़क कर नयना के आंचल पर गिर पड़ी।

* * * * *

एक मौलिक विचार पूर्ण लेख

# उपनैषदिक सर्व श्रेष्ठता

लें० ज. ल. श्री वास्तव

आदिकाल से मनुष्य के विकास के लिए जो चिन्तन-धारा हमारे पूर्वजों के मन में चल रही थी उसकी पूर्ण परिण उपनिषदोंमें हुई है। इसका यह अर्थ नहीं है कि आज के यु में उस विचार-धारा का विकास ही नहीं हुआ है। हुआ है। परन्तु उपनिषदों में जिस तत्त्वज्ञान का वर्णन हुआ है वह ए शाश्वत सत्य है। इसी कारण उपनिषदों की शिक्षा आज भी पुरानी नहीं हुई है। उपनिषदोंकी इस श्रेष्ठतापर आज के विचारक और दार्शनिक भी आश्चर्य-चकित हैं और एक स्व से उन्होंने उनकी श्रेष्ठता स्वीकार की है। क्या पाश्चात्य और क्या पौर्वात्य, सभी दार्शनिकों ने उपनिषदों के ज्ञान को सरा है और उनके अध्ययन की सिफारिश की है।

ऐसा है वह उपनिषदों का ज्ञान। वैसे तो उपनिषदों में अनेक विषयों का वर्णन है। परन्तु उनमें सर्वप्रमुख यह सिद्धां है कि मनुष्य ही सर्वश्रेष्ठ है। मनुष्य ही संसार की सारी गति-विधियों और हलचलों का केन्द्र है। इसी को लक्ष्य करके छान्योग्य उपनिषद् में कहा गया है—

"सर्वमस्मीत्युपासीत तद्व्रतं तद्व्रतम् ॥" (छा० उ० २।२१।४) अर्थात् (सर्वम्) सब कुछ (अस्मि) मैं ही हूं (इति) ऐसी (उपासीत) उपासना करे। (तद्) यही (व्रतम्) व्रत है यानी नियम है। यही नियम है इस बात को "तद्व्रतम्, तद्व्रतम्" इस प्रकार दो बार कहकर उपनिषद् इस बातपर जोर देती है कि यही विचार करो। इसके अतिरिक्त दूसरी भावना मनमें न लाओ।

कुछ लोग इस कथन पर शंका प्रकट करते हैं कि यदि सब कुछ मैं ही हूं। तो क्या इस संसारमें अन्य जो कुछ दिखाई देता है वह भी मैं ही हूं। उनकी यह शंका व्यर्थ है। वे इस वाक्य का शाब्दिक अर्थ लेते हैं। इस कथन का यह तात्पर्य नहीं है कि सचमुच वह सब कुछ मैं ही हूं। बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि मैं अर्थात् यह आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ है, अन्य सब गौण हैं। आज भी लोक-व्यवहार में ऐसा कहते हैं कि अमुक नगर में तो श्री अमुक जी ही सबकुछ हैं। इसका अर्थ यह थोड़े ही होता है कि वे सज्जन ही सचमुच सबकुछ हैं। इसका अर्थ केवल यह होता है कि उस नगर में वे सज्जन ही प्रमुख हैं। अन्य व्यक्ति नगण्य से हैं। ठीक वही अभिप्राय उपनिषद् के इस कथन का भी है। उपनिषदें भी बोलचाल की भाषा में लिखी गई हैं जिससे सभी लोग उसका ठीक-ठीक अर्थ समझ सकें। यह दूसरी बात है कि अब संस्कृत सामान्य बोलचाल की भाषा नहीं रह गई है।

वह आत्मा ही सर्वश्रेष्ठ है उसका एक बहुत सुन्दर उदा-

हरण बृहदारण्यक उपनिषद् के याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी-सं प्रकरण में भी मिलता है। वहां याज्ञवल्क्य स्पष्ट शब्दोंमें क है कि पति, पत्नी, पुत्र, धन इत्यादि इनके लिए प्रिय न होते हैं बल्कि अपने लिए ही ये सब प्रिय होते हैं। वे क हैं—

"न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मन कामाय सर्वं प्रियं भवति। आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोत मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रव मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम् ॥" (बृ० ३०२।४।५)।

अर्थात् सबके मतलब के लिये सब प्रिय नहीं होते, ही मतलब के लिए सब प्रिय होते हैं। अतः हे मैत्रेयी, आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय और ध्यान किये योग्य है। हे मैत्रेयी, इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, तथा विज्ञान से इस सबका ज्ञान हो जाता है।

इस मन्त्रमें स्पष्ट कहा गया है कि आत्मा ही देखने, सुन विचारने और ध्यान करने योग्य है। इसके अगले मंत्र में बात को और स्पष्ट करके समझा दिया गया है। फिर आज कल भौतिकवादी इस आत्मा की महत्ता को भूल हैं। परन्तु उपनिषदोंमें जगह-जगह इस आत्मा की सर्वश्रेष्ठ को अनेक प्रकार से स्वीकार किया गया है।

कठोपनिषद् का एक प्रकरण देखिए:—

"इंद्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः॥
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् परः॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ॥”
( क० उ० १।३। १०–११)

अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों (आंख, कान, नाक, जीभ तथा त्वचा) से उनके विषय (रूप, शब्द, गंध, स्वाद तथा स्पर्श) श्रेष्ठ हैं। उन विषयों से श्रेष्ठ या बड़ा मन है। मन से श्रेष्ठ बुद्धि, बुद्धि से श्रेष्ट महत्तत्त्व या अवचेतन मन, उससे श्रेष्ठ अव्यक्त या अचेतन मन तथा उससे श्रेष्ठ पुरुष या आत्मा है। यह आत्मा ही अन्तिम सीमा है। उससे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है

इससे अगला मंत्र कहता है—

“एष सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते ॥
दृश्यते त्वग्रयया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ॥’
(क० उ० १।३।१२)

अर्थात् इन सभी प्राणियोंके भीतर छिपा हुआ यह आत्मा दिखाई नहीं देता है। ( इन सभी प्राणियों में एक आत्मा है परन्तु वह आंखों से नहीं देखा जा सकता है।) उसे तो केवल सूक्ष्म दृष्टिवाले या पैनी बुद्धिवाले ही अपनी बुद्धि की आंखों से देख सकते हैं।

इन तीनों मंत्रों का अर्थ स्पष्ट है। इंद्रियों से उनके विषय श्रेष्ठ हैं और उनसे श्रेष्ट है मन। यहां मन से अभिप्राय हमारे सामान्य मन से है जिसे आजकल की मनोवैज्ञानिक भाषा में चेतन मन कहा जाता है। उस मन से बुद्धि श्रेष्ठ है। बुद्धि

को श्रेष्ठ कहने का कारण यह है कि मन सदा बुद्धि के वश में रखा जा सकता है। बुद्धि पर मन का नियंत्रण नहीं हो सकता है। इसी कठोपनिषद् में ही अन्यत्र कहा गया है कि—

> "बुद्धि तु सारथि विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ॥"
> (क० उ० १।३।३)

अर्थात् मन यदि लगाम है तो बुद्धि उसे संभालनेवाला सारथी। इसी कारण बुद्धि को मन से श्रेष्ठ कहा गया है। तत्पश्चात् उपनिषद् कहती है कि बुद्धि से भी महत्तत्त्व या अवचेतन मन श्रेष्ठ है। अनेक टीकाकारोंने यहां पर महत्तत्त्व का अर्थ आकाश किया है और इसके आगे जो कहा गया है कि महत्तत्त्व से अव्यक्त श्रेष्ठ है वहां अव्यक्त का अर्थ मूल प्रकृति किया है। परन्तु मेरी समझ से यह अर्थ भ्रामक है। एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। परन्तु जहां संदर्भ के दृष्टिकोण से जो अर्थ उपयुक्त होता है वहां वही ग्राह्य है। यहां बात शरीर तथा उसके नियामक चेतन तत्त्वों की चर्चा हो रही है। फिर इन शब्दों का जड़-अर्थ-वाची अर्थ लेना अभिप्रेत नहीं हो सकता है। वास्तवमें महत्तत्त्व का अर्थ अवचेतन मन तथा अव्यक्त का अर्थ अचेतन मन से है। मन की ये श्रेणियां आज के मनोवैज्ञानिकों से छिपी नहीं है। उपनिषत्कालीन विचारक ऋषियों को भी मन के ये विभेद ज्ञात थे। अन्तर केवल यह था कि वे इन्हें, आजकल के मनोवैज्ञानिकों की भांति, मन के विभेद न मानकर स्वतंत्र तत्त्व मानते थे और उन्हें क्रमशः महत्तत्त्व तथा अव्यक्त कहते थे।

सांख्यदर्शन के प्रणेता कपिलमुनिने इनका प्रयोग इसी अर्थ में किया भी है। सांख्यदर्शन के पहले अध्याय के ६१ वें सूत्र में वे कहते हैं "प्रकृतेर्महान्, महतोऽहंकारः॥" अर्थात् प्रकृति से महान् या महत्तत्वकी उत्पत्ति होती है और उस महत्तत्वसे अहंकार की। आज मनोवैज्ञानिकों के लिए यह सामान्य ज्ञानकी बात है कि अहंकार की उत्पत्ति अवचेतन मन से ही होती है। अतः स्पष्ट है कि महत्तत्त्व से अभिहित होने वाला तत्त्व और कुछ नहीं, वही है जिसे आजकल की भाषा में अवचेतन मन या अंग्रेजी में ( सबकॉनसियस माइण्ड ) कहा जाता है।

आगे उसी सांख्यदर्शन में स्पष्ट कहा गया है कि जिसे महत्तत्त्व कहा गया है वह मन है।

"महदाख्यमाद्यं कार्य्यं तन्मनः॥" १।७२॥

अर्थात् पहले (अ० १ के ६१ वें सूत्र में) जिसे महत्तत्त्व कह आए हैं वह मन है। यहां मन से अभिप्राय अवचेतन मन से ही है।

अचेतन मन या ( अनकॉनसियस माइण्ड ) के लिये अव्यक्त शब्द प्रयुक्त हुआ है, यह ठीक भी है। हिन्दी में अंग्रेजीकी देखा-देखी (अनकॉनसियस माइण्ड)के लिये अचेतन मन शब्द प्रयुक्त होने लगा। उस समय किसी ने यह ध्यान दिया कि अचेतन का अर्थ जड़ होता है। परन्तु मन के जिस भाग के लिये हम अचेतन मन विशेषण प्रयुक्त करते हैं वह किसी अर्थ में जड़ नहीं है। हां, अव्यक्त अवश्य है। हिंदी के

लेखकों तथा विद्वानों को इस ओर ध्यान देना चाहिये अब से भी यह भूल सुधार लेनी चाहिए।

इसके आगे उपनिषद् यह कहती है कि उस अव्यक्त अचेतन मन से भी श्रेष्ठ हमारी आत्मा है। और वह आत्मा सर्व श्रेष्ठ है। उससे श्रेष्ठ कुछ भी नहीं है (पुरुषान्न किंचित्)। वही अंतिम सीमा है (स काष्ठा)। यही अंतिम ज्ञान है (सा परा गतिः)।

इसपर साधक उस आत्मा को देखने या ज्ञानेन्द्रियों से अनुभव करने का प्रयत्न न करे इसलिये उपनिषद् चेतावनी देती है कि वह आत्मा यों तो सभी प्राणियों में विद्यमान है परन्तु वह उसके भीतर छिपा हुआ है, उसे सामान्य इन्द्रियों से नहीं जाना जा सकता है (एषु सर्वेषु भूतेषु गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते) परन्तु यदि साधक जानना ही चाहे तो कैसे जान सकता है ? इस प्रश्न के उत्तर में कहा गया है कि वह आत्मा सूक्ष्म बुद्धि वालों द्वारा अपनी तीव्र बुद्धि से ही जाना जा सकता है। (क० १।३।१२)।

इतना ही नहीं, उपनिषद् वह साधन भी इसके आगे मंत्र में बता देती है कि किस प्रकार साधक उस आत्मा को प्राप्त कर सकता है।

यच्छेद्वाङ्मनसी प्राज्ञस्तद्यच्छेज्ज्ञान आत्मनि ॥
ज्ञानमात्मनि महति नियच्छेत्तद्यच्छेच्छान्त आत्मनि ॥
(क० उ० १।३।१३)

अर्थात् साधक को चाहिये कि वह वाक् इत्यादि इन्द्रिय विषयों को मन में लीन करे, उस मन को बुद्धि में, बुद्धि को अवचेतन मन में और अवचेतन मन को शान्त आत्मा में लीन करे। इस प्रकार साधन करने से ही साधक को आत्मोपलब्धि हो सकती है। इस मंत्र में भी साधन की पराकाष्ठा आत्म-दर्शन या आत्मोपलब्धि तक ही आकर समाप्त हो जाती है।

प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह इस आत्मा की उपलब्धि या आत्म-दर्शन के लिये प्रयत्न करे। यह प्रयत्न किस प्रकार किया जाय जिससे शीघ्र और निश्चित रूप से सिद्धि मिल सके यह बात श्रेष्ठ व्यक्तियों को ही ज्ञात है। इसी कारण अगले मंत्र में उपनिषद् यह सन्देश देती है।

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।।
(क० उ० १। ३। १४)

यह सन्देश आत्म-कल्याण की याचना वाले मनुष्य-मात्र के लिये है। उठो, मोह-निद्रा से जागो और श्रेष्ठ व्यक्तियों को ढूँढ़कर उनसे आत्म-दर्शन के इस गुप्त-रहस्य को सीखलो। यह याद रखो कि यह कोई सहज कार्य नहीं है। इस मार्ग को जाननेवाले बताते हैं कि छुरे की तेज धार पर चलने के समान ही यह मार्ग भी कठिन है। फिर भी साहस न छोड़ो और इस ओर अग्रसर होओ। उठो, मोह निद्रा से जागो।

* * *

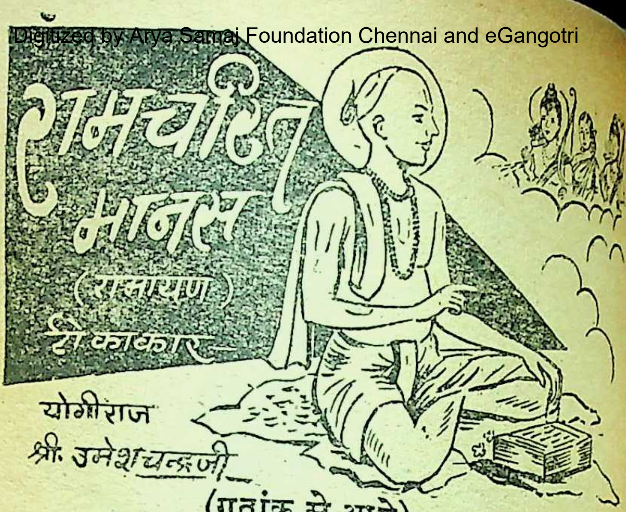

# रामचरित मानस (रामायण)

टीकाकार

योगीराज

श्री उमेशचन्द्रजी

(गतांक से आगे)

अब रघुपति पद-पंकसह; हिय धरि पाय प्रसाद।
कहौं युगल मुनिवर्य कर, मिलन सुभग संवाद॥

अब कवि तुलसीदास भगवान् राम के पद-पंकजों को हृदय में धारण कर और उनका अभिमत सिद्धिदायक प्रसाद प्राप्त कर दो मुनिवरों के मिलन और उनके सुभग संवाद का वर्णन करने जा रहा है।

भरद्वाज जिमि प्रश्न किय, जागवलिक मुनि पाय,
प्रथम मुख्य संवाद सोई, कहिहौं हेतु बुझाय।

याज्ञवल्क्य महामुनि का साक्षात्कार पाकर महर्षि भरद्वाज ने उनसे जैसे प्रश्न किया, सर्व प्रथम वही मुख्य संवाद समझाकर बताने जा रहा हूँ।

भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा,
जिनहिं रामपद अति अनुरागा;
तापस शम-दम, दयानिधाना,
परमारथ पथ परम सुजाना।

महर्षि भरद्वाज त्रिवेणी तटपर स्थित पवित्र तीर्थराज-प्रयाग में निवास करते हैं, भगवान् राम के चरणों में वे अत्यंत अनुराग भक्तिभाव-रखते हैं। वे परम तपस्वी, शान्त स्वभाव, ऐन्द्रियिक विषयों से परे; दयानिधान और पारमार्थिक मार्ग पर कुशलतापूर्वक चलते रहते हैं।

माघ मकरगत रवि जब होई,
तीरथपतिहिं आव सब कोई,
देव-दनुज-किन्नर-नर-श्रेणी,
सादर मज्जहिं सकल त्रिवेणी।

माघ मास में जब सूर्य मकर-संक्रान्ति में प्रवेश करता है, उस पुण्यकाल में तीर्थराज की पावन भूमि में पहुंचते हैं और देव, दानव, किन्नर और मानव आदि सभी वर्ग के लोग सादर-श्रद्धापूर्वक त्रिवेणी-स्नान कर पुण्यार्जन करते हैं।

पूजहिं माधव-पद-जल जाता,
परसि अछय वट हर्षहि गाता।
भरद्वाज आश्रम अति पावन,
परम रम्य मुनिवर-मन भावन।

वे पुण्यात्मा तीर्थसेवी माधवदेव के पाद-पद्मों की भक्तिभावपूर्वक पूजा अर्चना करते हैं और पवित्र अक्षयवट का स्पर्श पाकर उनके अंग-प्रत्यंग पुलकायमान हो उठते हैं। यहां तीर्थराज में मुनिवर भरद्वाज का पावन आश्रम है, जो परम रमणीक और ऋषि-मुनि-पुंगवों के मन में रमने की उत्कण्ठा उत्पन्न करनेवाला है।

तहां होय मुनि-ऋषय समाजा,
जाहिं जे मज्जहिं तीरथराजा,
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा,
कहहिं परस्पर हरि--गुण--गाहा।

वहीं--भरद्वाज मुनि के आश्रम में उन ऋषि-मुनियों का समाज एकत्र होता है—सम्मेलन होता है, जो तीर्थराज में स्नान करने के लिये जाते हैं। वे सब प्रातःकाल उत्साह पूर्वक पवित्र त्रिवेणी--संगम में स्नान करते और परस्पर भगवान् का गुणानुवाद करते हैं।

ब्रह्मनिरूपण, धर्मविधि, बरनहिं तत्त्व--विभाग,
कहहिं भक्ति भगवंत की, संयुत ज्ञान-विराग।

वे परस्पर ब्रह्मज्ञान—वेदान्तविषयक वार्तालाप करते और धर्म के वास्तविक विधान का निरूपण करते हैं। वे विश्व के दार्शनिक तत्त्व के भिन्न--भिन्न रूपों का वर्णन करते हैं और ज्ञान वैराग्यसंपन्न भगवद्—भक्ति की महिमा बताते हैं।

यहि प्रकार भरि मकर नहाहीं,
पुनि सब निज निज आश्रम जाहीं,
प्रति संवत् अस होय आनन्दा,
मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा।

इस प्रकार वे मकर- प्रभावित सम्पूर्ण माघ मास में स्नान-पूजन और धर्म-विधान में व्यतीत करते हैं और तत्पश्चात् अपने-अपने आश्रमों को लौट जाते हैं। प्रतिवर्ष यहां यह आनन्द समारोह होता और मकर स्नान कर लेने के बाद सभी मुनिवृन्द गमन करते हैं।

एकबार भरि मकर नहाये,
सब मुनीस आश्रमन सिधाये,
जागबलिक मुनि परम विवेकी,
भरद्वाज राखे पद टेकी ।

एकबार समस्त मकर मास में स्नान कर के सभी ऋषि मुनीश्वर अपने-अपने आश्रमों को चले गये । इन सबमें मुनीश्वर याज्ञवल्क्य, जो परम ब्रह्मज्ञानी थे, को महर्षि भरद्वाज ने अनुनय-विनय करके रोक लिया-उन्हें जाने नहीं दिया ।

सादर चरण-सरोज पखारे,
अति पुनीत आसन बैठारे,
करि पूजा मुनि सुयस बखानी,
बोले अति पुनीत मृदु बानी ।

उनके चरण-सरोजों की भक्तिभाव पूर्वक पूजार्चना कर उन्हें अत्यन्त पवित्र आसनपर सुशोभित किया । तत्पश्चात् उनकी पूजार्चना कर और उनकी सुयश-गाथा-महिमा की भूरि-भूरि सराहना करते हुये अति पुण्यमयी वाणी से नम्रता-पूर्वक बोले—

नाथ एक संशय बड़ मोरे,
करतल वेद-तत्व सब तोरे,
कहत मोहिं लागत भय लाजा,
जो न कहौं बड़ होय अकाजा ।

भगवन् ! मेरे मनमें एक बहुत बड़ा संशय-सन्देह उत्पन्न हो गया है । समग्र वेदतत्व आपके करतलगत है-आप परम वेदज्ञ हैं । फिर भी, अपना उक्त सन्देह बताते हुये मैं अति

लज्जित और भयभीत हो रहा हूँ और यदि मैं अपना अभि व्यक्त नहीं करता तो बहुत बड़ी हानि भी होगी।

सन्त कहहिं अस नीति प्रभु, श्रुति पुराण मुनि गाव,
होय न विमल विवेक उर, गुरुसन किये दुराव।

भगवन्! सन्तगण ऐसी नीति कहते हैं–अपना मत व्यक्त करते हैं और वेद, पुराण तथा मुनिवर्यों का भी यही अभिप्राय प्रकट करते हैं कि गुरु के समक्ष अपनी वास्तविक स्थिति छिपाने से हृदय में निर्मल ज्ञान की प्रकाश रेखाएँ प्रस्फुटित नहीं होतीं–ज्ञानमयी भक्ति का स्फुरण नहीं होता।

अस विचारि प्रकटौं निज मोहू,
हरहु नाथ करि जनपर छोहू,
राम–नाम कर अमित प्रभावा,
सन्त–पुराण उपनिषद गावा।

यही सब सोच–समझकर मैं अपना मोह-मानसिक-विकार आपके समक्ष प्रकट कर रहा हूँ। भगवन् आप मुझे अपना स्वजन–अनुचर मानकर इस मोहभ्रम का निवारण करें। सन्तों, पुराणों और उपनिषदों ने रामनाम के अमित प्रभाव का गान किया है।

सतत जपत शंभु अविनाशी,
शिव भगवान् ज्ञान–गुणराशी,
आकर चारि जीव जग अहहीं,
काशी मरत परम पद लहहीं।

अविनाशी-नित्य जीवन और महान् ज्ञानराशि भगवान् शिव इस राम नामका सतत जप कीर्तन करते रहते हैं और

76347

जो चार विभागों में विभक्त जीव हैं, उनकी मृत्यु यदि पुण्यधाम काशी में होती है, वह परमपद प्राप्त करता है -जीवन्मुक्त हो जाता है-उसे फिर इस संसार में जन्म लेना नहीं पड़ता।

सोऽपि राम महिमा मुनिराया,
शिव उपदेश करत करि दाया,
राम कवन प्रभु पूछौं तोहीं,
कहहु बुझाय कृपानिधि मोहीं ।

हे मुनिवर्य ! क्या उन्हीं बहुवर्णित रामकी महिमा का उपदेश भगवान् शिव करते रहते हैं। हे कृपानिधि! मैं आपसे पूछता हूँ-जानना चाहता हूँ कि यह राम कौन हैं? आप कृपा करके मुझे यह सब विस्तारपूर्वक समझाइये।

एक राम अवधेशकुमारा,
तिन कर चरित विदित संसारा,
नारि विरह दुख सहेउ अपारा,
भयो रोष रण रावण मारा ।

एक राम तो अवधराज दशरथ के पुत्र हैं और उनका चरित समस्त संसार जानता है। उन रामने पत्नी के वियोग में अपार दुःख सहा और जब उनका रोष पराकाष्ठा पर पहुंच गया, तब रणभूमि में रावण का संहार किया।

प्रभु सोइ राम कि अवर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि,
सत्यधाम सर्वज्ञ तुम, कहहु विवेक विचारि ।

हे भगवन्! क्या यह वही राम है, जिनका जप-कीर्तन भगवान् त्रिपुरारि निरन्तर करते रहते हैं। हे प्रभु! आप

सत्यधाम हैं, सर्वज्ञ हैं। विवेकपूर्वक विचारकर आप यह स मुझे समझायें।

जैसे मिटै मोह भ्रम भारी,
कहहु सो कथा नाथ विस्तारी,
जागबलिक बोले मुसकाई,
तुमहिं विदित रघुपति प्रभुताई।

हे भगवन्! जिससे मेरा भ्रम दूर हो सके, वही कथा आप मुझे विस्तारपूर्वक सुनाने की कृपा करें।

प्रत्युत्तर में महर्षि याज्ञवल्क्य ने हँसकर कहा-आप भगवान् रामकी महिमा से पूर्णतया परिचित हैं।

रामभक्त तुम मन क्रम-बानी,
चतुराई तुम्हारि मैं जानी,
चाहहु सुनइ राम गुण गूढ़ा,
कीन्हेउ प्रश्न मनहु अति मूढ़ा।

तुम मन, कर्म-वचन से भगवान् राम के परम भक्त हो। मैं तुम्हारी चातुर्यपूर्ण वाक्प्रणाली को भलीभान्ति समझ गया हूँ। वस्तुत: तुम राम के गूढ़ गुणानुवाद सुनना चाहते हो और प्रश्न इस रूप में उपस्थित किया जैसे अति अज्ञानी हो, कुछ जानते नहीं।

तात! सुनहु सादर मन लाई,
कहहुं राम के कथा सुनाई,
महामोह महिषेश विशाला,
रामकथा कालिका कराला।

हे बन्धु! अब सादर श्रद्धापूर्वक मन लगाकर राम की

न कथा सुनो, मैं तुम्हें सुनाने जा रहा हूँ। यह रामकथा
ामोह-अज्ञानान्धकार रूपी महिषेश को पददलित करने के
ये भगवती कालिका के समान प्रचण्ड है।

रामकथा शशिकिरन समाना,
संत चकोर करहिं जेहि पाना,
ऐसे हि संशय कीन भवानी,
महादेव तब कहा बखानी।

यह रामकथा चन्द्रकिरणों के समान शान्ति-शीतलता-
यिनी है और सन्तरूपी चकोरगण इस जीवन-रस का सतत
न करते रहते हैं। ऐसे ही-तुम्हारी भवानी गिरिजाने भी
ना मन का सन्देह व्यक्त किया था और भगवान् शिवने
ह कथा सुनाकर उनके सन्देह का समाधान किया था।

कहहुँ सो मति अनुहारि अब, उमा-शंभु-संवाद,
भयउ समय जेहि, हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटहिं विषाद।

उसी उमा-शंभु के दिव्य संवाद को अब मैं अपने बुद्धि-
ल के अनुसार बता रहा हूँ—जिस समय और जिस उद्देश्य
ो लेकर यह सब कथनोपकथन हुआ उसे सुनकर सारे दुःख
र जायेंगे।

एकबार त्रेता युग मांहीं,
शंभु गये कुंभज ऋषि पाहीं,
संग सती जगजननि भवानी,
पूजे ऋषि अखिलेश्वर जानी।

एक बार त्रेता युगमें भगवान् शिव महर्षि कुंभज-अगस्त्य
के आश्रम में पधारे। उनके साथ जगन्माता भवानी सती भी

थीं। ऋषिवर ने अखिलेश्वर जानकर भक्तिभावपूर्वक
स्वागत और पूजन किया।

रामकथा मुनिवर्य बखानी,
सुनी महेश महा सुख मानी,
ऋषि पूछी हरि भगति सुहाई,
कही शंभु अधिकारी पाई।

मुनिवर अगस्त्यने रामकथा का वर्णन किया और
शिवने बड़ी प्रसन्नताके साथ श्रवण किया। तदुपरान्त
ने भक्तितत्त्व के विषयमें जिज्ञासा प्रकट की, अतः
उन्हें अधिकारी भक्त मानकर विस्तारपूर्वक भगवद्-
रहस्य समझाया।

कहत-सुनत रघुपति-गुन-गाथा,
कछु दिन तहां रहे गिरिनाथा,
मुनिसन बिदा मांगि त्रिपुरारी,
चले भवन सँग दक्ष कुमारी।

इस प्रकार राम की गुण-गाथा को परस्पर कहते
गिरीश शिव उस ऋषि आश्रम में कुछ दिन रहे, तत
त्रिपुरारि शिव ने मुनिवर अगस्त्य से बिदा मांग कर
निवासस्थान के लिये प्रस्थान किया। उनके साथ दक्ष
भगवती सती भी थीं।

तेहि अवसर भंजन महिभारा,
हरि रघुवंश लीन अवतारा,
पिता बचन तजि राज उदासी,
दण्डक वन विचरत अविनासी।

उसी अवसर पर भू–भार को मिटाने पृथ्वीपर फैले हुए पाप-संताप को मिटाने के लिये भगवान् विष्णु रघुके वंश में अवतीर्ण हुए और पिता के आदेश से वह अविनाशी प्रभु उदासीन-साधु के रूपमें दण्डकारण्य में विचरण कर रहे थे।

हृदय बिचारत जात हर, केहि विधि दर्शन होय,
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, जानि गये सब कोय।

भगवान् शिव मन में विचार करते हुए जा रहे हैं कि किस प्रकार राम का दर्शन प्राप्त हो। भगवान् विष्णु ने गुप्त रूपसे अवतार लिया है—वे सर्वत्र प्रकट होना नहीं चाहते, किन्तु मेरे साक्षात्कार से लोग उन्हें पहचान न लें।

शंकर मन अति क्षोभ, सती न जानहिं मर्म सोई,
तुलसी दर्शन–लोभ, मन उर लोचन लालची।

भगवान् शंकर का मन उस स्थिति में पड़कर अत्यन्त क्षुब्ध हो उठा, परन्तु भगवती सतीपर यह रहस्य प्रकट नहीं हो सकता। भगवद्–दर्शन का प्रलोभन प्रबल हो उठा—आंखें लालायित हो उठीं, परन्तु हृदय में भय की भावना भी जाग्रत है।

रावण मरण मनुज कर जांचा;
प्रभु विधि वचन कीन चह सांचा,
जो नहिं जाउँ रहै पछतावा,
करत विचार न बनत बनावा।

रावण ने ब्रह्मा से वरदान मांगा है कि मेरी मृत्यु हाथ हो, अतः भगवान् ब्रह्माके उस वचनको प्रामाणिक चाहते हैं। यदि नहीं जाऊँगा तो केवल पश्चात्ताप रह इस प्रकार शिवजी विचारमग्न हैं, कुछ वनाव वन नहीं

यहि विधि भये सोचवश ईशा,
तेही समय जाय दसशीशा,
लीन नीच मरीचहिं संगा,
भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा।

इस प्रकार भगवान् शिव विचारधारा में गोते लगाते इसी बीच नीच कर्म दशानन रावण मरीच को वहां अपने मायावी प्रभावसे तुरन्त कपट मृग बन गया।

छल करि हरी मूढ़ वैदेही,
प्रभु प्रभाव तस विदित न तेही,
मृग वधि बन्धु सहित प्रभु आये,
आश्रम देखि नयन जल छाये

उस मोहमूढ़ रावण ने कपट जाल फैलाकर भगवती का अपहरण किया क्योंकि भगवान् के अनन्त बल विक्रम प्रभावसे वह तनिक भी परिचित नहीं था। जब उस मृग का संहार कर प्रभु बन्धुसहित आश्रम में लौटकर तब उसे सूना-सीतारहित देखकर उनके लोचन जलार्द्र उठे—वे रो पड़े।

विरह विकल नर इव रघुराई,
खोजत विपिन फिरत दोउ भाई,
कबहूँ योग-वियोग न जाके,
देखा प्रकट विरह-दुख ताके।

वे (इन्द्रियातीत) प्रभु राम मानव की तरह विरह वेदना से व्याकुल होकर उस बीहड़ वन में भाई के साथ यत्र-तत्र सीताजी की खोज में भटकने लगे। जो प्रभु योग--वियोग के सुख-दुःख से सर्वथा-सर्वदा परे है, उसमें विरह की वेदना स्पष्ट रूप से प्रकट हो उठी-दिखाई देने लगी।

अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं मर्म सुजान,
जो मतिमन्द विमोह वश, हृदय धरहि कछु आन।

भगवान् राम के चरित्र अत्यन्त विचित्र हैं, ज्ञानी विवेकी सज्जन ही उनके इस रहस्य को समझने में समर्थ होते हैं। जो बुद्धिहीन अज्ञानी हैं, वे अपनी मोहमूढ़ता के कारण किसी और ही तरह से विपरीत ढंगसे विचार करते हैं। --क्रमशः

# बंगाल की महिलायें

ले.- पं. राजयोगी
साहित्यरत्न

बंगाल की महिलाओं ने जिस प्रकार मधुर भाषिणी होने में ख्याति प्राप्त की है, उसी प्रकार वे सुसांस्कृतिक जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में भी किसी से पीछे नहीं है। आज वे रुढ़ीवादी नहीं हैं। अन्य देशों की परिष्कृत रुचि के प्रभाव से वे शिक्षा दीक्षा तथा सार्वजनिक जीवन में बड़ी दिलचस्पी लेती हैं।

यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बंगाल अपनी रुचिपूर्ण संस्कृति, लोक-कला तथा लोक जीवन संबन्धी उच्च स्तर के लिए विख्यात है, इसका मुख्य कारण वहां के समाज में महिलाओं का पुरुषों-से अधिक सन्मान होना है। यही कारण है कि वे रूढ़ीवाद के संकुचित दायरे को तोड़ कर

वर्तमान समाज के नव-निर्मित विशाल मैदान में निर्भयता के साथ उत्तर आई हैं। कालेज के फाटक से निकलने वाली झुण्ड की झुण्ड बंगाली नव-युवतियों को उपहारगृह रेस्टोरेंट सांस्कृतिक समारोह के मंडप तथा अन्य सार्वजनिक क्षेत्रों में स्वतंत्रता और सुसंस्कृत सभ्यता से विचरण करते देख कर यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि लड़ाई, अकाल और मंहगाई से बंगाल त्रस्त है, पुरुष के प्रति बंगाली महिलाओं की भावना अवश्य ही संवेदना शील रहती है, मगर पुरुष की मुखापेक्षी अथवा आश्रित होकर रहना उन्हें पसंद नहीं है। दफ्तरों में पुरुषों की भांति स्वच्छंद कार्य करना और अपने आप संबंधी अधिकारों को प्राप्त करने में पूर्णरूप से सामूहिक प्रयत्न-रत रहना इस बात का सुदृढ़ प्रमाण है।

स्त्री-पुरुष के मिलन क्षेत्र में बंगाल की महिला के आगे कोई लक्ष्मण-रेखा नहीं है। इसी लिए उनमें समाज को खोखला कर देने वाली जाति-पांति की कट्टरता, पृथकता लाने वाली प्रान्तीयता के भाव नहीं है, साहित्य में इस बात का प्रमाण मिलता है कि वे परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप को सुव्यवस्थित कर लेती हैं।

धार्मिक पर्व, तीर्थ, त्यौहार आदि में वे उतनी ही दिलचस्पी लेती हैं जितनी जीवन और समाज के क्षेत्रों में लेती हैं सामाजिक जीवन में उनकी अभिरुचि अपने देश प्रेम के आधार पर पुरुषों से भी अधिक देखी जाती है। शिक्षा-दीक्षा आदि में जिस प्रकार वे तत्परता से काम लेती हैं उसी तत्परता से समाज कल्याण के कार्यों में तन्मयता से लगी रहती हैं, उनकी यह जागरूकता और तत्परता इस बात की द्योतक है कि भारत के अन्य प्रान्तों से पहले ही बंगाल की महिलायें भारत के भावी जीवन में अपना प्रमुख स्थान बना लेंगी तथा सामाजिक जीवन के विकासमें अधिक सहयोग दे सकेंगी।

# उपेक्षिता

ले.-पं. राजयोगी 'साहित्यरत्न'

केलिराज सुप्रबुद्ध की कन्या यशोधरा जितनी सुन्दर थी उतनी ही बुद्धिमान थी। राजा शुद्धोधन ने उसके गुणों की प्रशंसा सुन कर उसके साथ अपने पुत्र सिद्धार्थ के विवाह का प्रस्ताव भेजा। वे चाहते थे कि सिद्धार्थ के जन्मजात वैराग्य पूर्ण विचारों पर अनुराग और प्रेम की विजय हो, और उनका पुत्र सिद्धार्थ भी उनकी राज्य-लक्ष्मी को भोगने वाला राजा बने। सिद्धार्थ के वैराग्य पूर्ण विचारों से केलिराज अनभिज्ञ न थे। सारा संसार जानने लगा था कि सिद्धार्थ अवश्य ही एक न एक दिन परिव्राजक होकर संसार त्याग देगा।

अतः केलिराज ने महाराज शुद्धोधन का प्रस्ताव ठुकरा दिया। कोई पिता अपनी इकलौती, गुणवती, सुन्दर और प्रिय पुत्री का अनिष्ट जान बूझ कर कैसे कर सकता है ? किन्तु पिता के इस विचार से यशोधरा विचलित हो उठी। वह बोली---सिद्धार्थ परिव्राजक हो या नहीं, किन्तु मैं पति रूप से उनके सिवा किसी और को वरण नहीं कर सकती। और उस काल की विवाह रीति के अनुसार स्वयंवर-प्रतियोगिता का आह्वान किया गया सिद्धार्थ अस्त्र-नैपुण्य, बल-वीर्य, एवं सर्व शास्त्र--पारदर्शिता के आगे स्वयंवर में आये सभी उम्मीदवारों को हार माननी पड़ी तथा यशोधरा के साथ मंगलमय मुहूर्त में सिद्धार्थ का विवाह हो गया। कुछ समय पश्चात् यशोधरा के राहुल नाम का सुन्दर पुत्र-रत्न उत्पन्न हुआ, किन्तु यह सांसारिक ममता के बन्धन सिद्धार्थ को नहीं बांध सके। व एक दिन गहन रात्रि में निद्रित यशोधरा और अपने पुत्र राहुल को छोड़कर संसार--त्यागी हो चले। यशोधरा को लगा मानो सर्वत्र अंधकार छा गया हो, जैसे समस्त पृथ्वी शृंगार विहीन और शोभाहीन हो चली हो। किन्तु जब उसकी चेतना ने उसे यह कहा कि यशोधरा तुम यह क्या कर रही हो ? तुम्हारा स्वामी विश्व-मानव कल्याण व्रत से दीक्षित हुआ है। क्या तुम्हें ऐसे महान् कार्य-कर्ता के शुभ कार्य के लिये इस प्रकार दुखी होकर आंसू बहाना चाहिये ? नहीं। तुमको तो विश्व-कल्याण कर्ता पति पाकर गर्व होना चाहिए। जानती हो-वह मानव के मन से जरा मरण का शोक और भय दूर करेगा। यशोधरा ने अपने हृदय की इस मूक घोषणा को सुनकर

अपने क्षुद्र-स्वार्थ, और व्यक्ति गत विलास को तुच्छ मान लिया। राजसी वस्त्राभूषण त्याग कर चीर--वसन धारण किया विलास और सुख-सामग्री को त्याग कर सिद्धार्थ की ही भांति वह भी एकाहारी बन गई। अब वह भूमिपर शयन करती और मिट्टी के बरतनों में भोजन करती।

यह सुन कर तत्कालीन रीति के अनुसार अनेकों राजकुमार उससे पाणि-ग्रहणार्थ इच्छुक हुवे किन्तु वह सती साध्वी नारी जिस पर आज भारत माता को अभिमान है उपेक्षिता होकर भी विचलित नहीं हुई। संसारका कोई वैभव, कोई शक्ति उसके धैर्यके बांध को न तोड़ सका। वह अपने पथ से तनिक भी विचलित न हुई। नारी विश्व की महाशक्ति है, उसका हृदय बज्र से भी कठोर है, किंतु वह फूल से भी अधिक कोमल भी है। यही कारण है कि यशोधराका जो बज्रवत कठोर हृदय पति-वियोग में अनेकों यातनाएं सह कर भी विचलित न हुआ; एक दिन तपस्या समाप्त कर सिद्धार्थ के लौट कर यशोधरा के महल में भिक्षा लेने को आने पर मोम की तरह पिघल उठा। उसके धैर्य का सुदृढ़ बांध टूट गया। अपने सामने अपने पतिदेव को भिक्षा के लिए हाथ फैलाए देखकर प्रेमाश्रु उमड़ चले और वह युगल अश्रुधारा से गौत्तम के पद युगल पखारने लगी। और कुछ दिन बीत जाने पर यशोधराने अपने पुत्र राहुल को भेजा--पितृ धन मांगने के लिये।

बुद्धने स्नेह सहित आशीर्वाद देकर कहा—धन, रत्न,

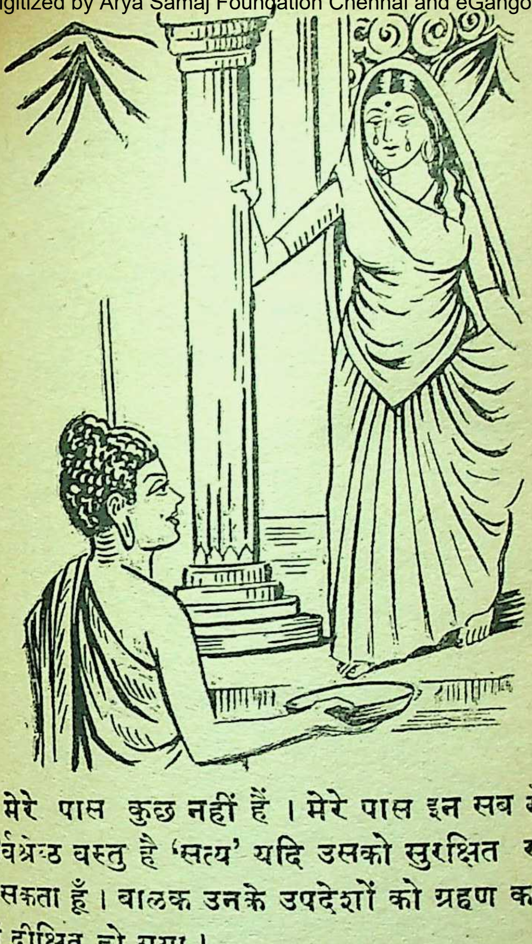

राज्य मेरे पास कुछ नहीं हैं । मेरे पास इन सब से बढ़कर एक सर्वश्रेष्ठ वस्तु है 'सत्य' यदि उसको सुरक्षित रख सको तो दे सकता हूँ । बालक उनके उपदेशों को ग्रहण कर भिक्षु-धर्म में दीक्षित हो गया ।

कालक्रम में केलिराज और शुद्धोधन काल कवलित हुवे और यशोधरा पति-कुल और पितृ-कुल दोनों के वैभव का अधिकारिणी हो गई । किन्तु पत्नी का सर्वश्रेष्ठ धन तो पति होता है यशोधरा सबकुछ त्यागकर भिक्षुणी हो गई । वह

भिक्षुणी-व्रत धारण कर प्रव्रजा के रूप में श्रावस्ती पहुँची, अपने सिद्ध पति सिद्धार्थ को प्रणाम किया। बुद्धदेवने उसे उपसम्पदा प्रदान की।

यशोधरा की पति---भक्ति से अधिक महत्व उस मूल मंत्र का है जो उसे चेतना द्वारा प्राप्त हुआ था। अर्थात् तेरा स्वामी विश्व मानव के कल्याण के व्रत से दीक्षित हुआ है।

यशोधराने ७८ वर्ष की आयु में निर्वाण लाभ प्राप्त किया। गुप्तजीने 'यशोधरा' में अनेकों दृश्य स्पर्शी भाव-रत्न इस सुन्दरता से जड़ दिये हैं जिन को पढ़कर भावुक हृदय तड़प उठता है जैसे बालक राहुल अपने पिता से मिलने की सुन्दर कल्पना करके भी असहाय है; निरुपाय है। वह कहता है-

विहग समान यदि अम्ब पंख पाता मैं
एक ही उड़ान में तो ऊँचे चढ़ जाता मैं,

मंडल बनाकर मैं घूमता गगन में-
और देख लेता पिता बैठे किस वन में।

यशोधरा की रचना करते समय गुप्तजी स्वयं अपने आंसु न रोक सके और अबला जीवन का मूल्यांकन कर उनके मुँहसे 'हाय' निकल पड़ी। तभी तो वे कहते हैं—

'अबला जीवन हाय! तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।

फिर भी नारी की प्रिय दर्शन की आशा कितनी सुदृढ़ है। उसे गुप्तजीने यशोधरा द्वारा इस प्रकार व्यक्त की है–वह कहती है–

उन्हें समर्पित कर दिये, यदि मैंने सब काम।
तो आवेंगे एक दिन निश्चय मेरे राम।
यहीं, इसी आंगन में।

साथ ही मानव हृदय का दृढ़ निश्चय भी देखिये। गौत्तम कहते हैं–

ये चन्द्र सूर्य निर्वाण नहीं पाते हैं।
ओझल हो होकर दृष्टि में आते हैं।
झोंके समीर के झूम झूम जाते हैं।
जा जा कर नीरद नया नीर लाते हैं।

तो क्या जाकर मैं भी लौट न आऊँ,
कह मुक्ति भला किस लिए तुम्हें मैं पाऊँ।

# अनमेल विवाह के कुपरिणाम का भागी कौन?

ले.-पं. राजयोगी, 'साहित्यरत्न'

समय की गति धनुष से छूटे हुये तीर की तरह आगे की ओर है पीछे की ओर नहीं। जीवन की जिन रूढ़ियों को हम पीछे छोड़ आये हैं उनको बटोर-घसीटकर साथ लिये हुये आगे बढ़ना नूतन भावी जीवन पथ पर बढ़ने में रुकावट का साधन पैदा करना है। जिन लकड़ियों की नाव बनाकर हम प्राचीन युग में जीवन रूपी नदी की संकीर्ण धारा को पार कर आये हैं, उन लकड़ियों को मोहवश आजके वैज्ञानिक युग में भी बांधकर कंधे पर लादे रहना हास्यास्पद है। उसी प्रकार आजके विकसित समाज में प्राचीन रूढ़ियों से चिपके रहने के कुपरिणामों में "अनमेल विवाह" भी है।

प्राचीनता की दुहाई देनेवाले कुलों में बिना देखे सुने जिस प्रकार कन्याओं का क्रय-विक्रय हो जाता है वह तो

लज्जा का विषय है ही, किन्तु नवीनता के उपासकों में भी विवाह योग्य कन्या को बिकने के लिये मूक पशु की भांति खड़ी देखकर लज्जा से सिर झुके बिना नहीं रहता। भावी पति परिवार के व्यक्ति उसे चलाकर, हँसाकर, लिखाकर, पढ़ाकर देखते हैं, तथा उसकी लम्बाई, चौड़ाई, मोटापन दुबलापन, नख शिख आदि के विषय में अपनी धारणाएँ बनाते हैं उसे देख सुनकर दास-प्रथा के समय बिकने वाली दासियों की याद आये बिना नहीं रहती। जहां के समाज में इस प्रकार एकांगी अनमेल विवाह कन्या की इच्छा के विरुद्ध कर दिया जाय वहां यदि आदर्श पत्नी और आदर्श माताओं का अभाव दिखाई दे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं। हमारे समाज की इस दशा का मुख्य कारण है अतीत को जीवित रखने के लिये वर्तमान की बलि देना। किन्तु याद रहे पूर्व के अंधकार से फूट निकलनेवाली प्रकाश की रेखाओं को आकाश के किसी एक कोने में बांधकर नहीं रखा जा सकता वैसे ही जागृति की दिग्व्यापिनी लहर को भी किसी देश के एक कोने में समेटकर रखना असम्भव है।

आज तक पत्नी की इच्छा के विरुद्ध अयोग्य अथवा प्रतिकूल विचारवाले पति के साथ जबरदस्ती कर दिए विवाह का परिणाम भी नारी ही भोगती आ रही है। पुरुष तो एक पत्नी के होते हुये कई विवाह कर सकता था लेकिन स्त्रियों के लिये यह निषेध रहा है। आज स्वाधीन भारत की सरकार ने हिन्दू-कोड-बिल की पहली धारा के अनुसार स्त्री को पुरुष के समान ही विवाह अधिकार देकर अनमेल विवाह

के विरुद्ध पहला कदम उठाया है, जिसके अन्तर्गत पुरुष व स्त्री कोई भी एक विवाह करने के बाद जब तक विच्छेद नहीं करते तब तक दूसरा विवाह नहीं कर सकते। परन्तु क्या इससे स्त्री और पुरुष में अधिक कटुता उत्पन्न नहीं होगी। इस कटुता और घृणा को समाप्त कर देने का एक मात्र उपाय कन्याओं को स्वावलम्बी और वैवाहिक क्षेत्र में स्वतंत्र बना देना है। प्राचीनता के पुजारी जो भविष्य की ओर से आँखें बंद किये हुये हैं अवश्य ही कहेंगे कि इस प्रकार की स्वतंत्रता से दुराचार बढ़ेगा, गृहस्थ धर्म में अराजकता फैल जायगी, क्योंकि वे यह सोच ही नहीं पाते कि स्वाभाविक रूप से विवाह में किसी व्यक्ति के साहचर्य की इच्छा तो प्रधान होनी ही चाहिये, और सफल साहचर्य स्वतंत्र चुनाव के बिना नहीं हो सकता। अनमेल विवाह का मुख्य कारण भी यही है कि स्त्री को उसकी इच्छा के विरुद्ध समाज ने सुरक्षित बना रखा है और पुरुष अपनी इच्छानुसार विचरण के लिये स्वतन्त्र है। कारागार का बंदी और हम दोनो आकाशके उन्मुक्त वातावरण के नीचे दीवारों को घिरे रहते हैं किंतु हम सांझ को घर लौट कर द्वार बंद कर अपने को सुरक्षित समझते हैं और बंदी सुरक्षित होते हुये भी रातभर जेल की दीवारें तोड़कर बाहर निकल जाने का उपाय सोचता रहता है। यदि इच्छा रहित अनमेल विवाह के विरुद्ध नारी भी रूढ़ीवाद की जंजीरों को तोड़कर मुक्त होने का प्रयत्न करे तो कोई अत्युक्ति न होगी।

मनुष्य का मन विविध प्रकार के भावों से भरा रहता है और जिनको साथ रहकर सारा जीवन व्यतीत करना हो, उनका स्वभाव यदि आपस में जरा भी न मिले तो परिणाम उसका कटुता पूर्ण ही होगा। भयंकर भी होगा। जिसका भागी अथवा जिम्मेदार समाज का वह अंग है जो भविष्य को जीवन के अनुकूल उपयोगी और उत्तम तथा सुन्दर बनाने के बदले अनुपयोगी अतीत को जीवित रखने के लिये वर्तमान की बलि दे देने में ही अपना गौरव समझता है।

विदेशों की तरह हमारे देश में तलाक--लेना और देना निश्चय ही बहुत वर्षांतक नहीं चलेगा, क्योंकि यह तो प्रेम बंधनों को काट फेंकनेवाली कैंची है जो पति--पत्नी के व्यक्तिगत स्वार्थों को उभारने में सहायक है। भारतीय पति--पत्नी कानून का सहारा लेने के लिए बाध्य ही न हो इसका एकमात्र उपाय यही है कि माता-पिता लड़के लड़कियों को अपनी देखरेख में मिलने और एक दूसरे को परखने की स्वतंत्रता दे दें। जातिपांति का बंधन भी जो इस विषयमें बाधक है तोड़ दिया जाय और रूढ़ी ग्रस्त मनोभावों वाले बड़े--बूढ़े एवं समाज के विशिष्ट जन इस कार्य में किसी प्रकार की बाधा न दें, वर्ना अनमेल विवाह के अब तक के कुपरिणामों के पाप का भार जिसके लिये वे स्वयं जिम्मेदार हैं उनके सिर पर से कभी कम न होगा, और इस कुपरिणाम की सताई नारी की आहें उनको मृत्यु के पश्चात् भी जलाती रहेंगी।

*

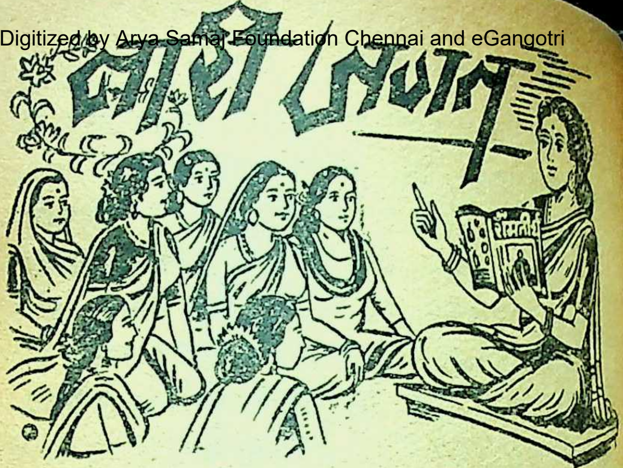

# बालों का सौंदर्य

### ले०—सुमित्रादेवी अग्रवाल विशारद

बाल ही नारी सौन्दर्य के प्रतीक हैं। संसार की ऐसी कौन सी स्त्री होगी जो अपने सिर के बालों को लम्बे काले चमकीले न देखना चाहती हो ? लंबे बाल एक ओर जहां स्त्रियों की सुन्दरता बढ़ाते हैं वहीं दूसरी ओर लंबे बाल सुख और सौभाग्य के चिन्ह हैं। जिन स्त्रियों के बाल जितने ही अधिक लंबे होते हैं वे निश्चय ही भाग्यशाली होती हैं। बाल ही हमारे व्यक्तित्व को आकर्षक बनाते हैं। वैसे शरीरके प्रायः हर अंग में बाल रहते हैं और उनका अलग २ महत्व है। स्त्रियों के लिये तो सर के बाल ही उनके लिये सब कुछ हैं। बिना सिर के लम्बे और काले बालों के तो नारी की कल्पना तक नहीं की जा सकती। मनुष्य शरीर में सिर से लेकर पैर तक बाल जाल सा बिछाए हुये हैं। हो सकता है कि आप शरीर पर इन बालों के होने पर अनेक अर्थ लगावें, किन्तु सत्य बात

यह है कि बाल शरीर के विभिन्न अंगों की रक्षा करते हैं अतः शरीर के किसी भी अंग के बाल निरर्थक नहीं हैं।

हमारे शरीर के बाल सर्दी और गरमी के दिनों में त्वचा और समस्त शरीरकी रक्षा करते हैं और जाड़े गरमी से बचाते हैं। बालों के कारण ही हमें शीत ऋतु में अधिक ठंडक का अनुभव नहीं होता और गरमी के दिनों में गरमी भी इसी कारण नहीं लगती। सिर के बालों की उपयोगिता तो विदित ही है किन्तु शरीर के अलग अलग स्थानों पर भी बालों का होना प्रकृति की दृष्टि से आवश्यक है क्योंकि सभी अंगों में उगे हुये बाल अंग विशेष की रक्षा करते हैं। शरीर को नीरोग रखने में हमारे शरीर के बाल हमारी सहायता करते हैं।

शरीर के विभिन्न अंगों में जो बाल होते हैं उन्हें भौंहें, पलकों के बाल, नाक कान के बाल, मूँछें, दाढ़ी इत्यादि नामों से जाना जाता है। भौंहें, गरमी के दिनों में पसीने को आंखों के अन्दर जाने से रोकती हैं। पलकों के बाल आंखों में किसी भी प्रकार का कूड़ा-करकट, रेत, आदि नहीं जाने देते। इस प्रकार आंखों की रक्षा करने में पलक के बाल हर समय सहायता करते हैं। इसी प्रकार नाक और कान के बाल भी नाक और कान के अन्दर किसी भी प्रकार की बाहरी गंदगी एवं कीड़े को जाने से रोकते हैं। मूछें पुरुष के व्यक्तित्व को स्पष्ट करती हैं। सच बात तो यह है कि पुरुषों का व्यक्तित्व उनके मूछों और दाढ़ी की आकृति से जाना जा सकता है।

मूँछ के बाल मुंह के अन्दर धूल जाने से रोकते हैं। साथ ही पसीना, नाक की गंदगी और आंखों से निकले हुये आंसुओं को भी मूंछ के बाल मुंह के अन्दर जाने से रोकते हैं। दाढ़ी के बाल गर्दन और गले की रक्षा करते हैं। इसी प्रकार शरीर के अन्य अंगों के बालों से भी उन उपयोगी अंगों की रक्षा होती है।

बालों की सुन्दरता और उनकी रक्षा के लिये हर समय सावधान रहना चाहिये। जरा सी असावधानी दिखाने से सिर के बाल झड़ने और टूटने लगते हैं। बालों की चमक चली जाती है और बाल पकने लगते हैं जिससे असमय ही वृद्धावस्था के लक्षण दिखलाई पड़ने लगते हैं। बालों की रक्षा के लिये बालों की सफाई के संबंध में महिलाओं को विशेषरूप से जानना आवश्यक है। हमारे शरीर की त्वचा में चिकनाई बनाने वाली ऐसी ग्रंथियां होती हैं जो अपनी चिकनाई से बालों का पोषण करती हैं। इसी चिकनाई के मिलते रहने से शरीर के अंगों के बाल चिकने व कोमल रहते हैं और बालों की बढोतरी होती है। शरीर के अलग अलग स्थानों की ग्रंथियों में शक्ति कम और अधिक रहती है जिससे कहीं बालों की वृद्धि तेजी से होती है कहीं मन्द गति से। बालों का पोषण रक्त के द्वारा होता है। जब खून का दौरा ठीक प्रकार से होता है तब बाल शीघ्रता से बढ़ते हैं और चमकदार व कोमल रहते हैं।

आजकल सिर धोने के लिये प्रायः साबुन का ही प्रयोग

अधिकता से किया जाता है। साबुन से धोने से बालों की चिकनाई धुल जाती है फलस्वरूप बाल सूखने लगते हैं। बालों को अधिक सोड़ा मिले हुए साबुन या कपड़ा धोने वाले साबुन से न धोकर चिकने एवं मुलायम साबुन से बालों को धोना चाहिये। चिकनी एवं काली या पीली मिट्टी से बाल धोने से बाल चिकने और चमकीले धुलते हैं। बालों को धोने के लिये दही, रीठा, बेसन, आंवला, और मुलतानी मिट्टी का प्रयोग लाभदायक एवं गुणकारी है। बाल धोने के बाद बालों को अधिक देर तक गीला न रहने दें। बाल अधिक देर तक गीले रहने से टूटने लगते हैं। शीघ्र ही बालों का पानी किसी मुलायम तौलिये के सहारे सुखालें और बालों में तेल लगावें जिससे बालों की चमक बनी रहे।

शरीर रक्षा के लिये बाल जब इतने उपयोगी हैं तब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक ही है कि क्या बालों को काटना ही न चाहिये। इस संबंध में यह जानना आवश्यक है कि शरीर स्वास्थ्य और सौन्दर्य को दृष्टि में रखते हुये शरीर में उतने ही बाल रहने चाहियें जितने आवश्यक हों। शरीर के बालों की सफाई समय समय पर होती रहनी चाहिये। जहां तक बाल कटाने का प्रश्न है पुरुषों के लिये सिर मूछ और दाढ़ी के बाल स्वास्थ्य और सुन्दरता दोनों ही दृष्टि से कटवाना आवश्यक है। स्त्रियों के लिये यह प्रश्न ही नहीं उठता। स्त्रियों के लिये तो सिर के बाल ही उनके लिये सुन्दरता का कोष है। सच बात तो यह है कि सिर के बालों के कारण ही नारी के सौन्दर्य की वृद्धि होती है और लम्बे लम्बे काले बालों के कारण ही स्त्री पूजनीय है। जिस स्त्री के बाल जितने लम्बे

चमकीले और कोमल होते हैं, उसे अपने लम्बे बालों पर गर्व और नाज होता है और ऐसा होना भी चाहिये।

लम्बे, काले, मुलायम और चमकीले
बाल स्त्रियोंका आभूषण है।

बालों की जड़ों को साफ करने के लिये मुलायम कंघा और ब्रुश का उपयोग करना चाहिये। इस विधि से बालों को साफ करने से सिर में पड़ी हुई धूल मिट्टी और जूं आदि निकल जाती हैं, साथ ही बालों का पोषण भी ठीक प्रकार से होता रहता है। बहुत सी बहिनों के बाल टूटने और झड़ने लगते हैं इससे उनके स्वास्थ्य और मन पर गहरा असर पड़ता है। बाल टूटने के अनेक कारण होते हैं। बाल टूटने के कारणों में प्रमुख कारण है खून की कमी। इसी प्रकार बालों की जड़ों में रोग का होना, धूप में हमेशा सिर को खुले रखना, बालों का पोषण आदि रुक जाना भी बाल टूटने के कुछ कारण है।

बालों के लम्बे काले मुलायम और चमकीला बनाने के लिये प्रायः सभी बहिनें हर समय उत्सुक रहती हैं। बालों को लम्बे करने के लिये अनेक उपाय हैं। निम्नलिखित इन कुछ उपायों से आपके बाल निश्चय ही लम्बे होंगे, और बाल लम्बे हो जाने पर आपका व्यक्तित्व एवं चेहरा इतना आकर्षक हो जायगा कि आप अपने लम्बे बाल देखकर स्वयं आश्चर्य में पड़ जायेगी। बालों को लम्बे करने के लिये आप इन विधियों को जरा आजमा कर तो देखें।

नीबू के रस में सूखे आंवलों का चूर्ण पीसकर लेप करने से बाल काले मुलायम और चमकीले होते हैं। रीठा, शीकाकाई और आंवले के पानी से धोने से बाल चिकने मुलायम और लम्बे होते हैं। शीकाकाई की फलियां रात में पानी में भीगने के लिये डाल दें प्रातःकाल उठ कर गुठलियां अलग कर के गूदा पीस लें और शीघ्रता से बाल बढ़ना शुरू कर; देंगे। एक कच्चा नारियल लेकर उसमें जितना पानी हो उसी अन्दाज से चने की दाल रात में भीगने के लिये डाल दें। प्रातःकाल दाल फूल जाने पर दाल को सुखाकर बेसन बनायें इस बेसन से सिर के बाल धोने से बाल चमकीले और लम्बे होते हैं। इसी प्रकार सूखा आंवला एक पाव, शीकाकाई आधा पाव, रीठा आधा पाव, इन चारों चीजों को मेथी एक पाव, को कूटकर एक डिब्बे में भरकर रखलें। जिस दिन बाल धोने की इच्छा हो उससे एक दिन पहले रात में दो चम्मच यही पाउडर पानी में भिगो दें। प्रातःकाल इस

मिनट तक चूल्हे पर रखें। महीन कपड़े से छान कर बालों को धोकर सुखा लेने से बाल लम्बे होते हैं।

कभी कभी हमारी ही असावधानी से बालों में गंदगी हो जाती है जिससे जूँ और लीख पैदा हो जाती है। को साफ करने और जूँ का नाश करने के लिये निम्न करना चाहिये।

लहसुन को पीसकर उसका रस निकालकर नीबू के रस में मिलाकर बालों में मलने से सिर की जूँ-लीख का नाश होता है। इसी प्रकार शरीफे के बीजों को सुखाकर नारियल के तेल में मिलाकर रात में सोते समय बालों में लगा लें और प्रातःकाल बालों को कंघी से ठीक कर लें। आप देखेंगी कि सिर के सभी जूँ मर गये हैं और कंघी के साथ मरे हुए निकल जायेंगे। नीबू के रस में लहसुन का पानी लगाने से भी जुयें मर जाते हैं।

आप की सुविधा के लिए यहां कुछ ऐसी विधियां दी जा रही है जिनका प्रयोग करने से बाल भी स्वच्छ होते हैं और बालों का झड़ना रुक जाता हैं। बालों के लिए नीबू विशेष गुणकारी है। नीबू का टुकड़ा सिर में मलने से बालोंका झड़ना रुक जाता है। नीबू के रस से सिरके बाल धोने से बाल साफ होते हैं। नीबू का रस और चीनी लगाकर पांच छः घण्टे बाद सिर धो डालने से रूसी भूसी नष्ट होकर बाल स्वच्छ हो जाते हैं। नीबू के रस में अरहर की दाल पीसकर सिर धो

सिर के बाल स्वच्छ हो जाते हैं। नीबू के ही रस में थोड़े की जटा पीस कर बालों में मलने से और बालों को धोकर नारियल का तेल लगाने से बालों का झड़ना रुक जाता है और बाल लम्बे होते हैं।

बालों में चमेली और काले तिल का तेल लगाने से बाल काले लम्बे तथा घने होते हैं। सिंदूर, चूना, तथा गोपीचन्दन मिलाकर बालों पर लेप करने से बाल काले होते हैं। आंवला ब्राह्मी और मोगरा का घर में बना हुआ तेल लगाने से बालों का गिरना रुक जाता है। शीकाकाई और आंवले के पानी से सिर धोकर बालों में शुद्ध गोले का तेल लगाने से सफेद बाल काले होने लगते हैं।

स्त्रियों के लिए तो सिर के बालों की रक्षा जरूरी ही है। आप अपने काले और लम्बे बालों को जितना ही सम्हाल कर रखेंगी व स्वच्छता की ओर ध्यान देंगी उसी के अनुसार आप का व्यक्तित्व भी निखरता जायगा। नारी के सौंदर्य के रक्षक सिर के बालों की सफाई और देखभाल आवश्यक है।

# मल्लयुद्ध में भारत की श्रेष्ठता

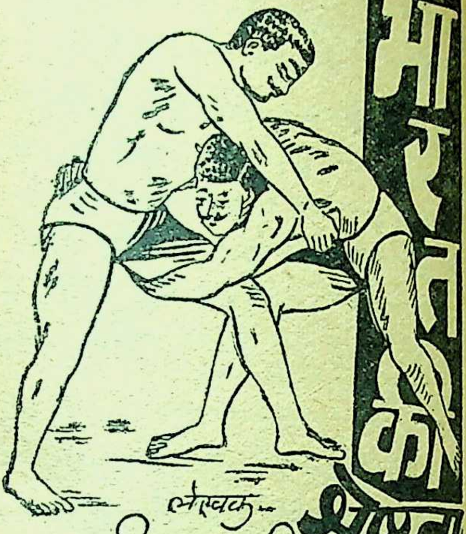

लेखक—

आचार्य सत्यपालजी

धनुर्विद्या विशारद

मल्लयुद्ध-कला में भारत का स्थान सदैव अग्रणी रहा भारत के कुछ पहलवान विश्वविख्यात हो चुके हैं और ने तो विश्वविजय की प्रतिष्ठा स्थापित की, परन्तु दुख की है कि विदेशों में तो हमारी ललित कलाओं का विशेष है, परन्तु भारतीय जन इसकी महत्ता का अनुभव नहीं कर वे हमेशा बर्लिन, मास्को, इंगलैण्ड, न्यूयार्क की ओर देखने इच्छा करते हैं। एक वर्तमान उदाहरण लीजिये। आज जो फ्री-स्टाइल की कुश्तियां हो रही हैं, उनमें पुरातन

धा का कोई स्थान नहीं है। जितने भी पहलवान आये हैं, सब विदेशी हैं, फलतः सभी कुश्तियों (मल्ल-द्वन्द्वों) में देशी पद्धति का ही अनुसरण किया जाता है, शक्ति-प्रदर्शन ही किया जाता। इन मल्ल-द्वन्द्वों में ट्रिक और चालाकी धिक लक्षित होती है, वास्तविकता अत्यल्प। लाखों रुपये विदेश चले जाते हैं। मैंने कुछ कुश्तियों के दाँव-पेंच सीखे और इस आधारपर मैं कह सकता हूँ कि भारतीय मल्ल-कलाका पूर्ण विकास प्रकट होता है। उसमें बल दांव-पेंचों का प्रदर्शन मुनहसर है। मैं कह सकता हूँ कि पट निकाल र बड़े-से-बड़े आदर्श को गिराया जा सकता है, मात्र स्फूर्ति तथा चुस्ती आवश्यक है। जापानी भाषा में जिसे जिज़ुत्सू कहते हैं, उसमें नियम है मर्मस्थलपर प्रहार करने का। निर्बल व्यक्ति भी अति सबल व्यक्ति को क्षणमात्र में पछाड़ देता है। मैंने इस जापानी पद्धतिके कुछ दांव--पेंच सीखे हैं। मैं जानता हूं कि उसमें कितनी फुरती की जरूरत होती है। यदि बल हो तो सोने में सुगन्ध का काम करेगा।

प्रत्येक कला के लिये साधना की आवश्यकता होती है। भारत में यह कला अत्यन्त प्रशंसनीय मानी जाती थी। देशी नरेशोंने आश्रय देकर इसे बहुत प्रोत्साहन दिया था। कुश्ती के शौकीन राजा पहलवानों को अपने संरक्षणमें रखकर उन्हें अच्छी तरह खिलाते--पिलाते थे और आवश्यक खर्च भी दिया करते थे। इसमें सन्देह नहीं कि कुश्तियां आज भी होती हैं। पिछले दिनों राजधानी में देशी--विदेशी पहलवानों का

दंगल इस बात का प्रमाण है, परन्तु यह कुश्तियां अमेरिक पद्धति की थीं, भारतीय पद्धति की अब पहले जैसी लो प्रियता नहीं, यह खेदकी बात है। अब भारत में पुरातन कु को प्रोत्साहन न देकर विदेशी फरी--स्टाइल कुश्तियों को विशेष महत्त्व दिया जा रहा है।

यहां मैं कुछ विशिष्ट पहलवानों का परिचय दे रहा हूं, जो विश्वविजयी हो चुके हैं। कीकड़सिंह पंजाब का प्रसिद्ध पहल-वान था। उसे रुस्तमे--हिन्द की पदवी प्राप्त थी। उसका नाम कीकड़सिंह इसलिये पड़ा कि एक बार बल--वीरता की बात-चीत चल पड़ी। इस सिलसिले में आवेश में आकर कीकड़-सिंह ने कहा— मैं जो काम करता हूँ, वह तुम भी करके दिखाओ। कीकड़ एक वृक्ष का नाम है। उसे फाड़ करके उसने एक ईंट जमा दी और कहा जो व्यक्ति इस ईंट को बाहर निकाल लेगा, उसीसे मैं कुश्ती का द्वन्द्वयुद्ध करूँगा। परन्तु उस ईंटको कोई निकाल न सका। तभी से उसका नाम कीक-ड़सिंह हो गया। कीकड़सिंह अतुल बलशाली था। मल्लयुद्ध करते हुए जब वह किसी का हाथ पकड़ लेता तो वह हाथ सदा के लिये निकम्मा बन जाता था। हाथ की सारी नस-नाड़ियां टूटकर शिथिल हो जाती थीं। कीकड़सिंह की मृत्यु को अभी बहुत समय नहीं हुआ। बहुतेरे लोगोंने उसकी कुश्तियां देखी हैं। पंजाब निवासी विश्वविजयी गामा पहल-वान ने अपने बल--विक्रम और दांव--पेंचोंकी कलासे सारे संसार को आश्चर्य चकित कर दिया और जगत् में भारत की

तिरा बढ़ाई। सन् १९०९--१० में मि० बेंजामिन गामा और मामबक्स पहलवानों को अपने साथ युरोप ले गये। वहां मेरिकाके प्रसिद्ध पहलवान शेलरके साथ गामा का द्वन्द्व युद्ध आ और इमामबक्श स्विट्जरलेण्ड के यशस्वी मल्ल लेम के थ लड़ा। गामाने २० मिनट तक कला--प्रदर्शन के पश्चात् लर को चित्त कर दिया। इमामबक्सने भी मात्र १२ मिनट लेम को पराजित कर दिया। गामा और इमामबक्स के इस द्भुत पराक्रम को देखकर युरोपवासी आश्चर्यचकित रह ये और उन्हें भारतीय मल्लों की श्रेष्ठता स्वीकार करनी ड़ी। इस विजय के उपलक्ष्य में गामा को पंजाब केसरी की पाधि मिली। इसके अतिरिक्त लन्दन में युरोप के प्रसिद्ध हलवान जेबिस्को—जो पोलेण्ड का निवासी था—के साथ गामा की भिड़न्त हुई। तीन घण्टे कुश्ती होती रही, किन्तु कोई निर्णय नहीं हो सका--जीत-हार का कोई परिणाम नहीं निकल सका। अधिक समय हो जाने से कुश्ती स्थगित कर दी गई--दूसरे दिन के लिये। किन्तु गामा से जेबिस्को इतना भयभीत हो गया था कि दूसरे दिन वह गामा के सामने आने का साहस नहीं कर सका। गामा को विश्वविजयी होने का श्रेय मिला। इसके बाद कुछ दिनों के बाद जेबिस्को गामा को पछाड़ने के लिये पुनः लालायित हो उठा, परन्तु विधि की विडम्बना! मनुष्य सोचता कुछ है और होता कुछ और है।

"देवाधीनं जगत्सर्वम्"के अनुसार जेबिस्को को क्या सूझा कि वह पटियाला आ पहुंचा और गामा को मल्लयुद्ध के लिये

ललकारा। गामाने इस चुनौती को स्वीकार किया और मल्ल-युद्ध के लिये ७ फरवरी, १९२८ का दिन निश्चित हुआ। दोनों ओर से प्रतिज्ञा पत्र लिखे गये कि जो इस मल्लयुद्ध में जीतेगा, वही विश्वविजयी माना जायेगा। सहस्रों दर्शकों-जिन में राजा महाराजा और सरकारी अफसर भी थे-के समक्ष मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुआ। गामाने दो मिनट में ही जैबिस्को को पछाड़ दिया और गामाने विश्व विजेता की उपाधि धारण की।

कलियुगी भीम प्रो० राममूर्ति नायडूको कौन नहीं जानता! इनके अद्भुत शारीरिक कामों को देखकर सारा संसार स्तब्ध रह जाता था। आपका जन्मस्थान मद्रास प्रान्त का विजय-नगर है। आपने सन् १९१२ में समस्त युरोप का भ्रमण किया और जहां भी आप गये, वहां की जनता आपके कलात्मक कार्यों को देखकर आश्चर्यचकित हो गई। दो दौड़ती हुई मोटरों को एक साथ रोक देना, हाथी को छातीपर चढ़ाना, लोहे की मोटी-मोटी जंजीरों को तोड़ फेंकना, सौ मन के पत्थर को वक्ष ( छाती ) पर रखकर तुड़वाना आदि अलौकिक कार्य आपके लिये साधारण थे। अन्तिम दिनों में जब काशी विश्वविद्यालय में प्रोफेसर थे, मैं उनसे मिला था। वे बड़े ही उदारचेता थे। सदैव जनजागृति की भावना उनमें विद्यमान रहती थी। वे हमेशा यही चाहते रहे कि भारत के नर-नारी शक्तिशाली बनें। उनके व्याख्यानों की यही ध्वनि होती थी। वे ही प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने जनता को व्यायाम की प्रेरणा

दी। आपने समग्र युरोप के पहलवानों को मल्लयुद्ध के लिये ललकारा, परन्तु आपसे भिड़ने का कोई साहस कर नहीं सका। हां स्विट्जरलेण्ड के एक दो पहलवानों ने आपसे लड़ने का साहस तो प्रकट किया, किन्तु दोनों ही राममूर्ति के शिष्योंद्वारा परास्त कर दिये गये। राममूर्ति ने स्वयं सेण्डो को भी ललकारा, किन्तु सेण्डोने आप के आह्वान को स्वीकार नहीं किया।

युरोप के कुछ भागों में एक अति क्रूर खेल खेला जाता था एक बलिष्ठ सांड को अखाड़े में लाया जाता था। एक अश्वारोही एक नग्न तलवार लेकर उसपर टूट पड़ता था और उसके टुकड़े-टुकड़े कर देता था। प्रो० राममूर्ति को यह क्रूर दृश्य देखकर अत्यन्त दुःख हुआ और उन्होंने समस्त दर्शकोंसे कहा कि यदि वास्तव में कोई वीर है तो वह शस्त्रहीन बनकर सांड को वश में करे, परन्तु इतना साहस किसीमें नहीं था। तब प्रो० राममूर्ति ने कहा कि यदि आप लोग सदा के लिये इस खेल को बन्द कर देने की प्रतिज्ञा करें तो मैं सांड को देखते ही देखते वश में कर लूंगा। लेकिन उनकी बात किसी ने नहीं मानी।

## तारा बाई का यश

पुरुषोंने ही नहीं, भारत की नारियोंने भी अपने विलक्षण शारीरिक कला-कुशलता के प्रदर्शनोंद्वारा पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की है। ताराबाई एक भारतीय महिला थीं। उनके माता-पिता

का स्वर्गवास उनकी बाल्यावस्था में ही हो गया था। इनके के पास ही एक अखाड़ा था, जिसमें प्रायः कुश्तियां आदि करती थीं अतः उनकी भी रुचि इस ओर प्रवृत्त हुई उन्होंने बड़ी ही लगन के साथ प्रयत्नपूर्वक बल का किया। भारी पत्थर को सिरके बालों द्वारा उठाना, ३० पत्थर को छातीपर रखना, भालोंकी शय्यापर लेटना कार्य आपके बायें हाथ के खेल थे।

इनके अतिरिक्त गुलाम अहमदबक्स, काली, गोबर भी ऐसे ही पहलवान थे, जिन्होंने विदेशों में जाकर बलका सिक्का जमाया। गुलामको पं० मोतीलाल नेहरू ले गये थे। गुलामने वहां मादर अली नामक तुर्की को हराकर पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। अहमदबक्सने के अत्यन्त बलशाली पहलवान मारिस डि-रचाय को बार कुछ ही सेकण्डोंमें और दूसरी बार कुछ ही मिनटों चित्तकर दिया। कुछ भारतीय पहलवान-जिन की चुनौती युरोप में किसीने भी स्वीकार नहीं किया—इस आशा अमेरिका गये कि वहां संसार के श्रेष्ठ पहलवान फ्रैंक गोल लड़ेंगे, परन्तु फ्रैंक गोल भी उनसे लड़ने को उद्यत नहीं हुए यह है भारतीय प्राचीन पद्धति के मल्लों - पहलवानों गौरवगाथा!

* * *

# (गतांक से धर्मोपदेश आगे)

ले. स्वामी रामतीर्थ

* * *

## आत्मसाक्षात्कार की कुछ बातें

उपर्युक्त 'आत्मसाक्षात्कार की विधि' शीर्षक के अन्तर्गत बताई गई बातों के सम्बन्ध में जो प्रश्न उठाए गए हैं, उनका निराकरण यहां किया जाता है।

प्रथम प्रश्नः— मुझसे कहा गया है कि जो विधि आपने बताई है, वह काल्पनिक है-कल्पना तथा विचार को विकसित कैसे किया जाये, मात्र इतनी ही बात उसमें कही गई है।

प्रिय पाठक वृन्द, इस प्रश्न का उत्तर वेदान्त देता है और कहता है कि जगत् की सभी वस्तुएँ-हमारा शरीर भी कल्पना शक्ति की परिणति हैं। आपकी कल्पना और विचार अनुचित मार्ग की ओर प्रवृत्त हैं, इसीलिए दुःख, कठिनाइयां और चिन्तायें आपको बन्धन में जकड़े हुए हैं। मात्र सत्य मार्ग का अनुगमन करने वाले विचारों और कल्पनाओं से ही मुक्ति प्राप्त होती है। सीधे मार्ग का ही सीधा परिणाम होता है।

जिस उच्च स्थिति से आप नीचे आ गिरे हैं, वही आपको ऊपर भी चढ़ाएगी। जिस मार्ग पर पुनः अग्रसर होने से सत्य की ओर बढ़ना कहा जाएगा। जिस उलटे मार्ग पर चलकर

आप नीचे उतर आये हैं, उस विपरीत मार्ग को भी अनुकूल बना लेने से वह गन्तव्य लक्ष्य पर पहुंचा देता है।

वेदान्त सिद्ध करता है कि यह विश्व मात्र आपकी ही कल्पना है—आपका ही विचार है, अन्य कुछ नहीं। विचारों को विशुद्ध बनाओ, उच्चगामी बनाओ, उन्हें सत्य-पथ की ओर उन्मुख करो, अतः आप स्वयं ही प्रकाश के प्रकाश बन जायेंगे।

अतिसार और जुलाब—ये दोनों एक ही प्रकार का प्रभाव डालते हैं, परन्तु जुलाब एक उपचार है और अतिसार रोग है। जड़ जगत् के विचार दासत्व की शृंखला में जकड़ देते हैं, ये दुःखों का अनुभव कराते हैं, अतः वेदान्त जिस प्रकार का जुलाब देता है, वह प्रसन्नता पूर्वक ले लें। सांसारिक विचार अतिसार के समान हैं और वेदान्तके विचार जुलाबके समान। यह जुलाब लेकर अतिसार रूपी दुःख को दूर करो।

कुछ स्थानों पर लोग हाथ धोने में साबुन का उपयोग नहीं करते, बल्कि राख को काम में लाते हैं। यह एक प्रकार का कूड़ा ही है, अतः आपके हाथ भी कूड़े से सन जाते हैं। परन्तु ऐसा करने के बाद पानी से हाथ धोते ही हाथ का मैल तुरन्त निकल जाता है, इतना ही नहीं राख भी उसके साथ ही निकल जाती है और हाथ पूर्णतया स्वच्छ हो जाता है। इसी प्रकार वेदान्त के विचार एक प्रकार की राख के समान हैं। उनसे सब प्रकार की अपवित्रता, मलिनता और निर्बलता दूर हो जाती है और अन्तरतम निखर उठेगा।

आज तक के जो विचार मन में रम रहे हैं, वे विदा हो जायेंगे और आप उन्नत स्थिति पर पहुँचेंगे।

स्वप्न में अनेक प्रकार की वस्तुएँ हम देखते हैं। ये वस्तुएँ मात्र हमारी कल्पनायें ही हैं। मान लीजिए, कोई मनुष्य सिंह, व्याघ्र, या सर्प देखे, तो उस समय उसकी स्थिति क्या होगी? नींद से वह एकदम जाग उठता है। मात्र उसके मनका विचार ही व्याघ्र का रूप धारण करता है, अन्य सभी स्वप्न उड़ जाते हैं और मात्र व्याघ्र ही आप देखते रहते हैं और कदाचित् वह घास या पत्थर खाते हुए दिखाई देता है। इसी प्रकार छोटी सी पुस्तक में जो विचार प्रकट किये गए हैं, वह स्वप्न में देखे गये व्याघ्र के समान हैं। समग्र जगत् स्वप्नवत् है। यह व्याघ्र सभी असत्य विचारों से आपको मुक्त करेगा। और उसके साथ ही जागने पर जैसे स्वप्न का व्याघ्र भी अदृश हो जाता है, उसी तरह इस विचार रूपी व्याघ्र का भी अस्तित्व मिट जायेगा। जहां वाणी की भी पहुंच नहीं, ऐसे सत्यधाम में आप पहुंच जायेंगे। समग्र जगत् और आप स्वयं एक सत्यस्वरूप में लीन हो जायेंगे।

द्वितीय प्रश्नः—जब इस स्थिति में पहुंचेंगे, तो क्या उस स्थिति को विचारहीन, आत्मविस्मृत स्थिति नहीं कहा जायेगा? ऐसी आत्मविस्मृत स्थिति प्राप्त करने से क्या लाभ है?

वेदान्त उत्तर देता है कि भाइयो! ओ मेरे आत्मस्वरूपो! जल्द बाज मत बनो। तनिक विचार करो। समाधिस्थ अवस्था और मूर्च्छा की अवस्था में बहुत बड़ा अन्तर है। इन दोनों

स्थितियों में विचार का अभाव इतनी ही सामान्यता है। फिर भी दोनों में आकाश-पाताल का अन्तर है। मूर्च्छा में विचार गति स्थगित हो जाती है। संचालन शक्ति के अभाव में मूर्च्छा में विचार अवरुद्ध हो जाते हैं। मूर्च्छा मृत्यु के साथ मिलती-जुलती है, परन्तु साक्षात्कार की स्थितिमें शक्ति पूर्ण प्रभावमें रहती है। यह स्थिति ज्ञानमय और आनन्दमय होती।

यदि किसी खण्ड में प्रकाश नहीं होता तो हमें अन्दर की वस्तु दिखाई नहीं देती और अतिशय प्रकाश हो तो भी कुछ देखना संभव नहीं होता। विज्ञान का कथन है कि यदि तेज के दो अणु आमने सामने हों तो हम उन्हें देख नहीं सकते। परन्तु तेज के अभावों में परिव्याप्त अन्धकार और अतिशय प्रकाश के कारण दृष्टि बन्द हो जाती यह दोनों सर्वथा विभिन्न स्थितियां हैं।

अन्तः दोनों के परिणाम में जान पड़ता है। कोई मानव जब वायुरोग से पीड़ित होता है, तब संज्ञाहीन (बेहोश) हो जाता है और पुनः संज्ञा (होश) में आने पर निर्बल बन जाता है। द्वितीय व्यक्ति जब साक्षात्कार की ध्यान-मग्न स्थितिमें होता है, तब उसकी भी हिलने-चलनेकी क्रियास्थगित जान पड़ती है, परन्तु उस स्थिति से जाग्रत होने पर वह पूर्ण आल्हादमय, परम ज्ञानमय बन जाता है। वह अन्य को आनन्द प्रदान कर सकता है और दूसरे के दुःखों को मिटा सकता है। इसमें विचार की गति स्थगित होना तो ऊपर की दोनों स्थितियों में हैं, परन्तु दोनों में अन्तर आकाश पाताल का है।

—क्रमशः

# विश्वदर्शनका तत्त्व-निरसन

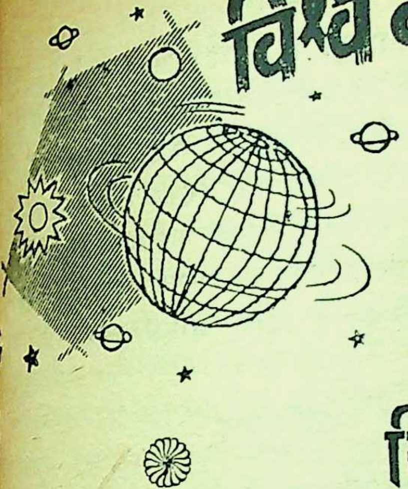

लेo कालूभाई बसिया जगत्प्रवासी

## नीहारिकावाद

आकाशमें व्यवस्थित पतले बादलोंके तेजोमय समूह फैले हुये हैं। उन्हें नीहारिका कहा जाता है। इन नीहारिकाओं का निर्माण जगमगाते बादलोंसे हुआ है। वे आकाश की अतिशय शीत के बीच घिरी हुई हैं। इन नीहारिकाओं में से जब उष्णता कम हो जाती है, तब उनकी ऊपरी तह सघन बन जाती है, परन्तु अन्दर अतिशय उष्णतावाले उसके गर्भ से अविरत गति से आकाश में घूमती रहती हैं, जिससे उनके शीतल पड़ गये ऊपरी पर्त के गति के संघात से टुकड़े-टुकड़े

बनकर उड़ने लगते हैं। इन्हीं नीहारिकाओं के संयोजन से सूर्यों और ग्रहों की रचना हुई है। नीहारिकाएं आगे आकाश में दौड़ती चलती हैं। उनमें हलन-चलन होने के कारण कहीं वायु के गोलाकार यत्र-तत्र बिखरे हुये गोले बँधकर अखिल विश्व का निर्माण हुआ है। एक नीहारिका (जलकण) के एक चक्कर-एक फेरा पूर्ण करने में एक करोड़ से भी अधिक वर्ष लग जाते हैं। ऐसी नीहारिका का अगाध संयोजित स्वरूप ही विश्व के रूप में अवस्थित है और नीहारिकाओं से ही उसकी सृष्टि हुई है।

## ग्रह आकर्षणवाद

आदिकाल में अखिल विश्व तेजोमय वायु के रूप में अवस्थित था। उसकी गति के कारण उनमें सूर्य जैसे असंख्य तेजोमय गोलों की रचना हुई और वे आकाश में यत्र-तत्र घूमते फिरते थे उनमें से सूर्य से भी अति विशाल और शक्तिशाली गोला जो वेगगति से दौड़ रहा था एकाएक सूर्य के साथ टकरा गया, फलतः सूर्य से टूटकर प्रकाश के टुकड़े आकाश में दूर-दूर तक उड़ने लगे और सूर्य का गुरुत्वाकर्षण उन्हें पुनः खींचकर स्वयं में-सूर्य में मिला न सका। फिर भी सूर्य का गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव उनमें शेष रहने से वे सब प्रकाश खण्ड अपनी कक्षा में रहकर ग्रहरूप में सूर्य के चतुर्दिक प्रदक्षिणा करने लगे। इसी प्रकार अखिल विश्व का तदनुसार ही ग्रहों के आकर्षण के कारण निर्माण हुआ। यह मत विज्ञान-शास्त्र में प्रामाणिक माना जाता है और अनेक गुत्थियों को सुलझाने वाला है।

## वायुवाद

अखिल विश्व वायु के रूप में अवस्थित था। उसमें गति का उदय होने से उष्णता और प्रकाश का उद्भव हुआ। वह सर्वव्यापी उष्ण प्रकाश वायु का गोला अपनी धुरीपर मध्य-बिन्दु के आसपास भ्रमण करने लगा और उसके शीतल होते ही उसमें से प्रकाश-खंड विच्छिन्न होकर सूर्य मण्डलों और नक्षत्र मण्डलों की रचना हुई और तदनन्तर क्रमानुसार पृथ्वी और ग्रहों का निर्माण होकर अन्त में वनस्पति और जीवधारी चेतन सृष्टि संभरित पृथ्वी का सर्जन हुआ। इस प्रकार अखिल निर्माण में वायु ही मूल तत्व के रूप में निहित है। वायु में से कार्बन डायोक्साइड द्वारा मानव सहित समग्र प्राणियों और वनस्पति सृष्टि का उद्भव हुआ। जब वे मरते हैं; सड़ते अथवा जल जाते हैं,तब उनका कार्बन डायोक्साइड तत्व वायु में पुनः मिल जाता है। इस प्रकार पृथ्वी और वायु के बीच कार्बन डायोक्साइड के आदान--प्रदान की परम्परा सतत चलती रहती है और सृष्टि में सर्जन विसर्जन होता रहता है।

## विद्युद्वाद

विद्युत एक शक्ति है, लेकिन उसका रूपान्तर अनेक शक्तियों में होता रहता है। शीत में, उष्णता में, प्रकाश में इस प्रकार सभी शक्तियों में विद्युत् ·शक्ति रूपान्तरित होती रहती है।

विश्व में जो कुछ भी दृष्टिगोचर हो रहा है, वह सब विद्युत है। विश्व विद्युत कणों का एक समूह है। उसमें विद्युत

के सिवा अन्य कुछ भी नहीं। सभी वस्तुओं की रचना विद्युत् कणों के भिन्न भिन्न परिमाण के माप या भाग (अंश) के द्वारा हुई है। यह विश्व विद्युदणुओं के संयोजन से निर्मित मूल तत्वों का खेल है। विद्युदणुओं द्वारा निर्मित मूल तत्वों की संख्या ३०० है, जिनमें सबसे पहला तत्व हाइड्रोजन है और सबसे भारी भारयुक्त (वजनदार) तत्व युरेनियम है। इन सभी तत्वों को भिन्न सुव्यवस्थित गठन और मिश्रण से समग्र विश्व का आविर्भाव हुआ है और सभी विभिन्न घटकों ने गठन और स्वरूप धारण किया।

विद्युत् क्या है ? और कहां से आती है ? यह अभी कोई जान नहीं सका है। परन्तु विद्युत् उत्पन्न करने की पद्धतियां जानी जा सकी हैं, किंतु अभी यह नहीं जाना जा सका कि इसका मूल कहां पर है ? केवल इतना समझ में आ सका है, कि सभी अणुओं के आधार रूप इलेक्ट्रोन, और प्रोटोन परमाणुओं के कणों में विद्युत् समाई हुई है।

इलेक्ट्रोन में नेगटिव विद्युत् है और प्रोटोन में पोजीटिव विद्युत् है। परन्तु यह नहीं जाना जा सकता कि उसमें वह कहां से आई ? परन्तु इलेक्ट्रोन की नेगेटिव और प्रोटोन की पोजिटिव विद्युत् से अखिल विश्व संभूत हुआ है। अखिल विश्व विद्युत् ही है।

—क्रमशः

* * * *

# 'मड़ई' देवी की पूजा और कथा

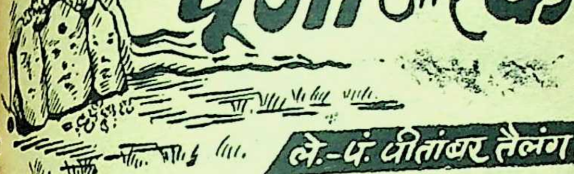

**ले.-पं. पीताम्बर तैलंग 'देव'**

बुन्देलखण्ड की वन्य जातियों में "गौंड" नामक एक विशिष्ठ जाति है। जो अपने को क्षत्रिय जाति के अन्तरगत मानती है और अपना मूल पुरुष महर्षि विश्वामित्र को बताती है। बुन्देलखण्ड अंचल के विभिन्न स्थानों पर अद्यावधि इनके शासन-काली‍न, वैभवशाली हर्म्य, प्रासाद, किले--महल तथा गढ़ियों के खण्डहर, इस बात के पुष्ट--प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि किसी समय वर्तमान समस्त बुन्देलखण्ड गौंड राजाओं के आधीन था। इसके अतिरिक्त यत्र तत्र बिखरी हुई अन्य ऐतिहासिक सामग्री भी इसकी सम्पुष्टि करती है कि गौंड जाति आर्यों की ही एक शाखा थी, जिसका जीवनाधार वैदिक संस्कृति थी।

कालान्तर में असंगठित होने के कारण काशीश्वर ग्रहनिवार बुन्देला क्षत्रियों ने इन पर आक्रमण करके इन्हें पदच्युत कर दिया। इन्हें लूट लिया और फिर इनकी भूमिपर अपना शासन जमाकर उसे बुन्देलखण्ड नाम दे दिया। उस समय

बचे खुचे लुटे पिटे अथच्च पद दलित गौंड जन नगरों को त्यागकर छोटे गांवों एवं उनके समीपवर्त्ती वन पर्वतों की उपत्यकाओं को अपनी लीलाभूमि बनाकर वहीं रहने लगे। तब से अबतक ये सब "वन्य–उपज" के क्रय विक्रय द्वारा ही अपने तथा अपने परिवार का पालन पोषण कर रहे हैं। ये निर्धन हैं परिश्रमी हैं और हैं यथा लाभ सन्तोषः।

इनके यहां वन्यदेवताओं के साथ यदा कदा "मनसादेवी" की भी पूजा होती है। और जो किसी मनोवांछित कार्य सिद्धि का प्रतिफल बनती है। अतः जिस दिन जो 'गौंड-परिवार' पूजा करने का निश्चय करता है, उसके एक दिन पहिले वह अपनी झोपड़ी की द्वारभूमि पर बैठकर अपने कुटुम्ब एवं अन्य सजातीय लोगों के साथ "दाई" की मैयां के गीत-गाता है। और उसका यह क्रम सायंकाल से प्रारंभ होकर आधी रात तक जारी रहता है। अस्तु।

प्रातः होते ही मुख्य पूजक सपरिवार 'दाई के बाड़े में [पूजास्थान] में पहुंच जाता है। वहां पूजास्थान की शुद्धि करने के उपरान्त समागत समस्त अबालवृद्ध स्नान करते हैं और फिर पूजा प्रारम्भ होती है। पत्तल के आसन पर मुख्य पूजक बैठता है जो सरश्रीफ होता है। पूजा प्रारम्भ होने के पूर्व ही कोई सौभाग्यवती स्त्री पूजक एवं उसकी स्त्री के पैरों में महावर जैसा रक्तवर्ण किसी वन्य--बेल का रस लगाती है। उस समय सब स्त्रियां और पुरुषः क्रमशः एक ही गीत को गाने लगतीं हैं। जब तक पूजा होती रहती है तब तक पूजास्थान

समीपवर्ती वन्य स्थल उन शक्ति आराधकों के निसर्ग मधुर प्राणवान्-कण्ठ स्वर लहरियों से निनादित होते रहते हैं।

पूजा पद्धति—घर का मुखिया सर्व प्रथम 'मनसादेवी' (किसी की जड़ में रखे हुए काले तीन पाषाण खण्डों) के समक्ष बैठता है; हाथ जोड़ता और बार बार उनके पैर पड़ता है। फिर स्नान कराकर हल्दी का टीका लगाता है, वन्य-पुष्प चढ़ाता है। और फिर कंडा की अग्नि में महुआ [ मधूक पुष्प ] का धूप देता है। हाथ जोड़ता है। तदुपरान्त गुनियां (जिसके शिर देवता आता है) को बुलाकर उसके माथे में विभूति लगाता है और फिर 'मनसा देवी' की जय बोलता है जिसे समागत समस्त जन समाज दुहराता है।

देवी अवतरण–'गुनियां' वीरासन में बैठकर आँख मीचता है और फिर थोड़ी से देर में ही 'मनसा देवी' की जै बोलता हुआ उछल कूद करने लगता है। इसके बाद जब गुनियां की कूद बंद हो जाती है तब मुख्य पूजक उससे कतिपय प्रश्नोत्तर करने लगता है। प्रस्तुत प्रश्नोत्तर में शारीरिक व्याधिनाश, कौटुम्बिक-कुशलता समाज कल्याण एवं जन मंगल आदि विषयों पर आराध्य देवी की सम्मति किंवा आशीर्वाद प्राप्त करने के उपरान्त मुख्य पूजक देवी के समक्ष बकरा अथवा सुअर की बलि चढ़ाता है। और फिर बलि पशु के शिर को मनसादेवी को समर्पित कर शेष 'धड़' को अपने साथी कुटुम्बी जनों को दे देता है जिसे वे काट छीलकर पकाने लगते हैं।

तत्पश्चात् 'गुनियां' चुपचाप एक ओर बैठ जाता है और

मुख्य पूजक मनसादेवी की कथा करता है जिसे उपस्थित समाज शान्तभाव से सुनता है।

### 卐 मनसा की कथा 卐

कार्तिक का महिना–उजयाला पाख और मंगलवार का दिन था। इसलिये गांव के तमाम आदमी 'मनसादेवी' की 'जत्रा' [ यात्रा ] देखने ठाकर बाबा के बाड़े की ओर जा रहे थे। जिन्हें देखकर पलाश की जड़ें कूटते हुये 'रमैया' गौंड़ ने अपनी वृद्धमाता से कहा कि, 'मताई ओ! देखु–गाम के सवैई–लुगवा सिहरियां 'दाईमंसा' के धांखें जाय रये, एं, इसे कदाच तू कहदे, तो मैं ऊं जाऊं'।

यह सुनकर रमैया की मां ने कहा कि बेटा, दर्शन करआ। और कछू मनौती मान आ। मेरे शिर में यदि आज दर्द न होता, तो मैं भी तेरे साथ चलती। फिर भी तू जा।

इसे सुनते ही रमैया ने पलाश की जड़ें कूटना बंद कर दिया। और फिर हांथ पांव धोकर वहां से चल पड़ा और यथा शीघ्र गांव के बाहर पीपल के पेड़ के नजदीक 'ठाकर बाबा के बाड़े' में जा पहुंचा। वह उसने देखा कि मनसादेवी के पूजास्थल के समीप एक वृद्ध 'गुनियां' बैठा हुआ झूम रहा है। और कभी कभी पान के पत्ते से सामने के अग्किुण्ड में तेल की आहुति देता जाता है। उसके चारों ओर थोड़ी दूर पर गांव के तथा अन्य गांवों के छोटे बड़े बूढ़ें स्त्री एवं पुरुषों का एक विशाल जमघट बना हुआ बैठा है। और उस जमाव में से क्रमशः एक एक आदमी अपनी अपनी पूजा भेंट लेकर आगे आता है और उसे देवी को समर्पित करके अपनी मनोकामना पूर्ति की प्रार्थना करता है। इसके बाद 'गुनियां' उसके

माथे में हवन की विभूति लगाता है। तदुपरान्त वह व्यक्ति अपने स्थान पर आ जाता है और उसकी जगह पर दूसरा व्यक्ति पहुंच जाता है। इस प्रकार से जब बहुत से व्यक्ति निपट चुके, तब कहीं 'रमैया' की बारी आई और वह फौरन वहां से चलकर गुनियां के पास इष्टस्थल पर जा पहुंचा। वहां उसने विनम्र भाव से अपनी भेंट पूजा 'मनसा देवी' को समर्पित की, दुहाई दी, जय बोली और फिर प्रार्थना करने लगा कि 'मंसा दाई–ओं ! सत्त की सांची होई, तो मोरी मताई के मूड़े को दरद दूर कर देय और मोंय राजा बना देय।'

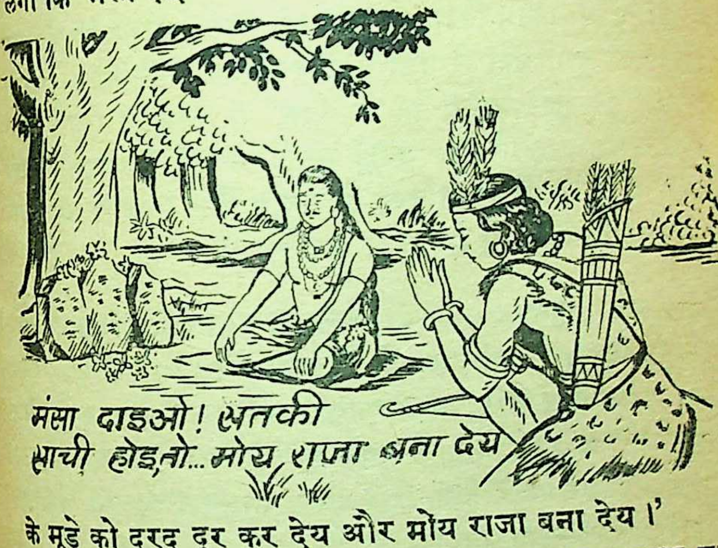
मंसा दाइओ! सतकी
साची होइ,तो... मोय राजा बना देय

रमैया की इस प्रार्थना को सुनकर जमा हुए तमाम नर नारी हंसने लगे और यह भी कहने लगे कि, देखो, तो यह गौंड का मौंडा 'राजा' बनना चाहता है, यह सुनकर 'गुनियां' झूमता हुआ बोला, कि ऐसा मत कहो, क्योंकि यदि देवी

मनसा माता की कृपा हो जी, तो यह 'राजा' बन जायगा। बोलो दाई मनसा की जय। इसके बाद 'गुनियां' ने फिर कहा कि, बेटा-रमैया, ले यह विभूति ले जा-अपनी मां के माथे इसे लगा देना, इससे उसका शिरदर्द अच्छा हो जायगा। और जा, मनसा माता की कृपा से कुछ ही समय में; तू राजा भी बन जायगा। बोल मनसा माता की जय।'

यह सुनकर रमैया ने बड़े भक्ति भाव से माता मनसा के चरणों में प्रणाम किया, विभूति ली और फिर माता की जय बोलता हुआ वहां से हटा और यथाशीघ्र अपने घर आ पहुंचा। आते ही उसने अपनी मां के शिर में विभूति लगाई और फिर कहने लगा कि, 'मताई गुनाई' ने कई कै, भभूत लगाये सें, मताई के शिर कौ दरद मिट जय और कजन्त की दार मैया कृपा करै, तो मैं 'राजा' बन जैय।'

यह सुनकर उसकी माता ने कहा कि, बिटुवा! ऐसे अपुत के भाग कहां धरे, जो तैं राजा बनें। काये सें कै, अपुत तौ गरीब गौंड आंय, सो मेहनत मजूरी करके, अपुनो पेट पाल रये है। रई, जां, कै अपने पुरखां पैलां राजा रये हैं, सो कजन्तकीदर अपुनें दिन फिरें और मनसा दाई की किरपा हुइयै, तो तैं राजा बन जैय।'

ऐसा सुनते ही रमैया विचार करने लगा कि, जब मेरे पुरखा कभी न कभी राजा रहे आये हैं, तब तो मैं क्यों न राजा बनूंगा। और फिर जब मनसा दाई ने वरदान दे दिया

है, तब तो मैं जरूर ही राजा बनूंगा। इसके बाद वह थोड़ी र तो अपनी माता के सिरहाने बैठा रहा और फिर जमीदार के घर दुहनी करने चला गया।

इसके पश्चात् कुछ वर्ष व्यतीत होने पर एक दिन उसके गांव 'विला-विलखुरा' में कालिंजर के राजा के कुछ प्यादे आये और उन्होंने रमतूला बजवाकर यह घोषणा करवाई कि दिल्ली की ओर से कोई यवन राजा अपने 'दशार्ण' देश को गुलाम तथा मलेच्छ बनाने के लिये आ रहा है। इसलिये हर एक स्त्री पुरुष को अपने अपने धनुषबाण-ढाल तरवार और भाला बरछी तैयार कर लेना चाहिये। और जिनके पास उक्त हथियार न हों, घोड़ा न हों, वे सब कालिंजर से ले आवें। उन्हें वहां अपेक्षित हथियार दिये जायेंगे। घोड़के साथही बहुतसा अन्न एवं धन भी दिया जायगा।

तदुपरान्त उन्होंने यह भी कहा कि, जो व्यक्ति यवन और उनके सहयोगियों को सहायता पहुंचायेगा, उसे शूली दी जायगी। यह सुनते ही गांव के समस्त स्त्री पुरुष इकट्ठे हो गये अपनी अथाई रोपकर यह निश्चय किया कि, हम सब 'जवन राजा' के गुलाम न बनेंगे और न अपने धर्मका त्याग ही करेंगे। और यदि कभी जवन राजा यहां लड़ने आयेगा तब हम सब लड़ेंगे। इसके साथ ही उन्होंने यह भी निश्चय किया कि, वे सब प्रातः काल कालिंजर जायेंगे और वहां से बहुत से हथियार, घोड़े, हांथी, ऊंट तथा अन्न-धन भी लायेंगे। साथ ही युद्ध की तैयारी भी करेंगे। तदुपरान्त उन्होंने अपने

इन निर्णयों की सूचना समागत कालिंजर राज सेवकों के पास भेज दी।

इसके बाद ज्यों ही प्रातः हुआ और गांव के साथ लोग क्रमशः कालिंजर जाने लगे, तब रमैया अपनी माता के पास गया और उससे कहने लगा कि, 'मताई-ओ! अपुने गामड़े के सबई लुगवा-मिहरियां कालिंजर के राजा लौ जा रये हैं, सो [illegible] की हार तूँ कै दे, तौ मैकुँ जाऊँ और हथियार ले आऊँ।

यह सुन कर माता ने पूछा, कि बिटवा-रमैया! जा-जब गांव के सब लोग जारहे हैं, तब तू भी जा, और हथयार ले लेकिन घोड़ा और धन जरूर लाना। जल्दी आना।

इस प्रकार मां की आज्ञा पाकर गांव के स्त्री-पुरुषों के साथ जाकर रमैया ने भी कालिंजर की राजसभा में अपना नाम--धाम लिखाया और फिर वहां से बहुत साधन हथियार तथा हाथी घोड़े लेकर अपने घर आगया।

आते ही उसने अपने हिस्से का धन तो अपनी माता को दे दिया और फिर यथोचित रीति से गांव वालों में हथयार बंटवाकर उनके साथ नित्य ही सायं प्रातः तीर-तलवार चलाना तथा हाथी घोड़े की स्वारी करना सीखने लगा।

इसके कुछ महीने बाद जब दशहरा आया तब कालिंजर के राजाके एक सेनापति और कुछ प्यादे पुनः 'बिला-बिलखुरा' आये और उन्होंने उन सब को, जो कालिंजर की राज सभा में अपना नाम धाम लिखा आये थे, धसान नदी के पहिले पार [illegible] पर चलने का निमंत्रण दिया। सेनापति का आदेश

सुनते ही गांव के समस्त स्त्री पुरुष हथयार बांध कर अपने अपने हाथी घोड़ों पर सवार हुए और धसान नदी की ओर चल दिये। उसी समय रमैया ने भी अपना घोड़ा सजाया, धनुषवाण बांधा और फिर सबके पीछे २ चल दिया। तीन दिन पड़ाव करने के बाद सब लोग क्रमशः इष्ट स्थान पर पहुंच गये और वहां डेरा डालकर विश्राम करने लगे।

इसके बाद रमैया–कालिंजर के राजा के पास गया और उन्हें विनम्र भावसे प्रणाम कर यह कहने लगा कि, 'महाराज ! मैं आपकी सेवा में आगया हूं। मेरे साथ गांव के समस्त गौंड क्षत्रिय भी आये हैं, जो एक विशेष प्रकार के बाणों से अग्नि वर्षा करने में बहुत ही प्रवीण हैं। इसलिए युद्ध प्रारंभ होते ही आप मुझे और मेरे साथियों को अपनी सेनाके अग्रभाग में लड़ने की आज्ञा देने की कृपा करें। यह सुनकर राजा ने बहुत ही प्रसन्न होकर रमैया से कहा कि, 'बेटा रमैया! आज तुम सब थके मांदे आये हो, इसलिये अभी एक दिन तुम सब विश्राम करो, इसके बाद मैं तुम्हें युद्ध में भेज दूंगा।'

इस प्रकार से राजा की आज्ञा प्राप्त कर रमैया ने राजा को बारम्बार प्रणाम किया और फिर गांव वालों के पास आकर कहने लगा कि देखो, महाराजा कालिंजर ने हम सब गौंडों को अपनी सेना के अग्रभाग में रखना मंजूर कर लिया है। अतः सावधान होकर आज विश्राम करलो और फिर जब महाराज आज्ञा दें तब युद्ध प्रारंभ कर दो।' अस्तु

इसके तीन दिन बाद महाराज का आदेश पाते ही रमैया अपने छटे हुए पांच सौ घुड़ सवारों को लेकर पुनः राजा के पास पहुंचा और कहने लगा कि, 'महाराज श्रीमान् की सेवा में उपस्थित हो गये हैं। इसलिये आज्ञा दें, ताकि हम सब युद्ध प्रारंभ कर दें'। यह सुन कर राजा ने कहा कि, 'बेटा रमैया, अच्छी बात है, जाओ, तुम सब पीछे की ओर से शत्रु पर आक्रमण कर दो। भगवान् नीलकण्ठ तुम्हें विजय प्रदान करेंगे। किन्तु बेटा! देखो आज एक भीषण युद्ध चल रहा है अत: बहुत ही सावधानी से आगे बढ़ना। क्यों कि आज के युद्ध में स्वयं यवनराज एवं उनका प्रधान सेनापति आगया है। और मुझे गिरफ्तार करने के लिये प्रयत्न शील हैं। इसलिये तुम सब मेरी सेना के उत्तर भाग से भिड़कर शत्रु सेना के पृष्ठ भाग में पहुंच जाओ। और फिर शत्रु सेनापति के सफेद हाथी को घेर कर सेनापति को बांध लो या उसका शिर काट लो। बेटा यदि तुम ऐसा कर सकोगे तो मैं तुम्हें 'राजा' बना दूंगा।'

यह आज्ञा पाते ही रमैया ने राजा के सामने तलवार हाथ में लेकर प्रतिज्ञा की कि, 'आज मैं शत्रु सेनापति का शिर काट लाऊँगा। और यदि ऐसा न कर सका, तो अपना शिर काट कर स्वयं मर जाऊंगा।'

इसके बाद रमैया राजा को प्रणाम कर शिविर के बाहर आगया और फिर अपने घोड़े पर सवार होकर अपने साथियों से जा मिला। साथ ही उसने राजा के समक्ष प्रस्तुत की गई

अपनी-प्रतिज्ञा और राजा की इच्छा का विवरण समझाते हुए आज के युद्ध की विलक्षणता अथवा भयंकरता बताकर आगे बढ़ चला। साथी घुड़सवार उसके पीछे चलने लगे। चलते चलते रमैया पहिले तो अपनी सेना के उत्तर भाग में जा घुसा और फिर धीरे धीरे शत्रु सेना के पृष्ठभाग में पहुंच गया।

तत्पश्चात् रमैयाने अपने साथियों को अचानक आक्रमण करने एवं फिर पीछे हटकर पुनः पुनः आगे बढ़कर शत्रु-संहार करनेकी रीति समझाई और फिर सबको सौ सौ की टुकड़ियों में बांटकर एक साथ विभिन्न स्थानोंपर आक्रमण करने के लिये प्रोत्साहित किया। इसके बाद ही सब लोग तिरछे होकर आगे बढ़ने लगे और शत्रुसेना की पीठमें बाणवर्षा करके उसे वहांसे हटकर तितर बितर होने को विवश करने लगे जिसके फल-स्वरूप थोड़ी ही देरमें रमैया और उसके साथी यवन सेनापति के हाथी के सामने पहुंच गये। उस समय यवन सेना भी सावधान हो गई और फिर अपने सेनापति एवं उसके हाथी की संरक्षतामें तत्पर होगई। फिर भी रमैया और उसके साथी दल ने स्थिति की गंभीरता समझकर अपने बाणों से अचानक अग्निवर्षा प्रारम्भ कर दी। जिसके फलस्वरूप यवन सेना में घबड़ाहट पैदा हो गई और वह उससे बचने के लिये ही यत्र-तत्र सर्वत्र भागने लगी। उसी समय रमैया ने आगे बढ़कर पहिले सेनापति के गर्दनपर तलवार का पूरी शक्ति से प्रहार किया और सेनापति का शिर काट लिया। सेनापति का शिर कटते ही उसके सहायक अन्य बहुतसे नायक वहाँ से

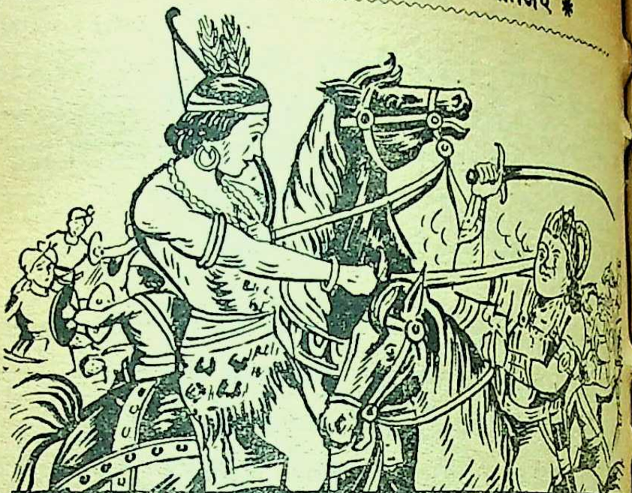

"रमैयाने तलवारके अेक फटकारसेही सेनापतिक सिर उतार लिया"

खिसकने लगे। फलतः रणक्षेत्र शत्रुसेना रहित हो गया। और उसे लक्ष्यकर यवनराज तथा उसके साथी सरदार वहां से नौ दो ग्यारह हो गये।

तदनन्तर कालिंजर सेनापतिने अपनी विजय का उद्घोष करवाया और उसके साथही रमैया अपने साथी घुड़ सवारोंके साथ ही विजय का डंका बजवाता हुआ अपने राजा के शिविर के पास आ गया। सूचना पाते ही महाराजा कालिंजर शिविर से बाहर आये और उन्होंने अपनी विजय और रमैया के शौर्यपूर्ण रणकौशल की प्रशंसा की। उसी समय रमैयाने अपनी ढालपर रखकर लाये शत्रु सेनापतिके शिरको महाराजके समक्ष उपस्थित किया। और उसे देखते ही महाराज ने रमैया को अयने हृदय से लगा लिया। साथ ही उसे अपना पांचवा बेटा मान लिया।

इसके बाद जब राजा की समस्त सेना और सेना नायक शत्रुसेना के अस्त्र-शस्त्र-हाथी घोड़े एवं बहुत सा धन लूटकर ले आये, तब राजाने एक दिन सायंकाल विशेष विजय दरबार किया और उसमें सबको उक्त लूट का अधिकांश बांट दिया। तदुपरान्त राजा सबको लेकर कालिंजर आया और वहां उसने अपने पण्डितों की सम्पत्ति से नीलकण्ठ महादेवजी का समारोहपूर्वक पूजन किया और फिर एक सभा हुई। और उसमें उसने समस्त उपस्थित नर नारियों को सोने के थाल में रख कर शत्रु सेनापतिके शिर का दर्शन कराया। साथ ही दुष्कर शत्रु सेनापतिके शिर का दर्शन कराया। साथ ही इस कार्य को सम्पन्न करनेवाले रमैया गौंड की सबके समक्ष भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए जमुना और नर्मदा के बीच के भूखण्ड का 'राजा' रमैना को बना दिया।

इसके कुछ समय उपरान्त रमैया कालिंजर से बहुत साधन हाथी घोड़े आदि लेकर अपने गांव-'विला विलखुरा' आया। उसे आया देखकर उसकी माता ने और गांव की स्त्रियोंने एकत्रित होकर मंगल गीत गाते हुए उसकी आरती उतारी और फिर गरीबों को अन्नदान देकर सन्तुष्ट किया।

तत्पश्चात् एक दिन रमैया ने जमुना और नर्मदा नदी के बीच रहनेवाली समस्त जनता तथा गौंड क्षत्रियोंको आमंत्रित कर विशेष उत्सव मनाया और उसमें गौंड राज्य की पुनः स्थापना की घोषणा करते हुए उक्त भूखण्डका नाम गौंडवाना प्रसिद्ध कर दिया। और फिर उक्त नव निर्मित गौंडराज्य के प्रत्येक गांव एवं खेरे में "मनसादेवी" के चौतरा बनवाकर उनके मानने अथच पूजने का ढिढोरा पिटवा दिया।

इस प्रकार से रमैया गौंड राजा बन गया। और उसी राज्य में उसकी जनता रामराज्य का उपभोग करती हुई दिन प्रतिदिन समस्त ऐश्वर्य सम्पन्न हो गई।

**विसर्जन**—प्रस्तुत कथा के उपरान्त मुख्य पूजक देवी को प्रणाम करके सबके साथ मनसा की परिक्रमा करता है, प्रणाम करता है और फिर उपस्थित समाजको 'प्रसाद' वितरण करने लगता है। तदनन्तर सबलोग पंक्तिबद्ध होकर बैठते हैं और यथाप्राप्त भोजनकर सन्तुष्ट होते हैं।

**गीत-नृत्य**—भोजन के बाद दो व्यक्ति अपनी अपनी कमर में ढोलक बाँधकर उसे बजाते हैं और उनके चारों ओर नर-नारी नाचते गाते हैं। जो अपने ढंग के विशेष आकर्षक तथा प्रभावोत्पादक होता है। इसके थोड़ी देर बाद सब लोग अपने अपने घर चले आते हैं।

**वैशिष्ट्य**—मैं १० सितम्बर १९४७ को 'विला-विलखुरी' गया था। जो एक छोटासा पहाड़ी कस्बा है और अजयगढ़ तथा चरखारी राज्य की प्राचीन सीमा पर है। किसी समय यह गौंड क्षत्रियों की राजधानी था। और एक विशाल नगर के रूप में अवस्थित था। जिसके चिन्ह अभी प्राप्त होते हैं और इसकी सुविस्तृत सीमाको दूर दूर तक प्रमाणित करते हैं।

श्री कुंदन सिंह–उपनाम कुन्दूगौंड इस ग्राम के सर्ववृद्ध क्षत्रिय हैं, जिनकी आयु ९३ वर्ष की है। और जो नितान्त निरक्षर किन्तु भक्त व्यक्ति हैं। इन्होंने मुझे अपनी आराध्या मनसादेवी—की पूजा पद्धति और कथा लिपिबद्ध कराई।

इन्होंने मुझे यह भी बताया था कि हमारे प्राचीन गोंड राजवंश के व्यक्ति अब भी 'विला-विलखुरा' में हैं। किन्तु अब वे सर्वथा निर्धन तथा निरक्षर कृषक अथवा श्रमजीवी मात्र हैं। फिर भी उनके पास टूटी फूटी गढ़ी में ऐसे कागजात एवं अन्य राजसी चिन्ह हैं, जो उनके प्राचीन वैभव और आर्यत्व को प्रमाणित कराते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने यह भी बताया कि प्राचीन-परम्परानुसार-विजया दशमी-के-दिन-अब भी उक्त गोंड राजवंश के घर में-राजदरबार जैसा समारोह होता है और उसमें बहुत से गोंड क्षत्रिय एवं अन्य जातीय व्यक्ति सम्मिलित होते हैं।

उक्त दरबार में गोंड राजा गद्दी पर बैठता है और ग्राम का पटवारी उसकी पुरानी बहियों पर यह लिखता है कि "गोंडवाने की तमाम जमीन अनेक बुन्देला सरदरों को दे दी गई है और खासी बैठक के लिये एकमात्र 'विला विलखुरा' रक्खा गया है"।

इसके बाद गोंडराजा अपना निशान अंगूठा लगाकर उस पर सही करता है और फिर समुपस्थित समाज क्रमशः उसको परनाम (प्रणाम) करता है। राजा की ओर से दरबारियों को महुआ-अचार-अदि वन्य-उपज-वितरित की जाती है। और दरबार समाप्त होता है। साथ ही गोंड समाज अपने जातीय गीत-नृत्य में संलग्न होकर प्रसन्नता प्राप्त करता है।

* * *

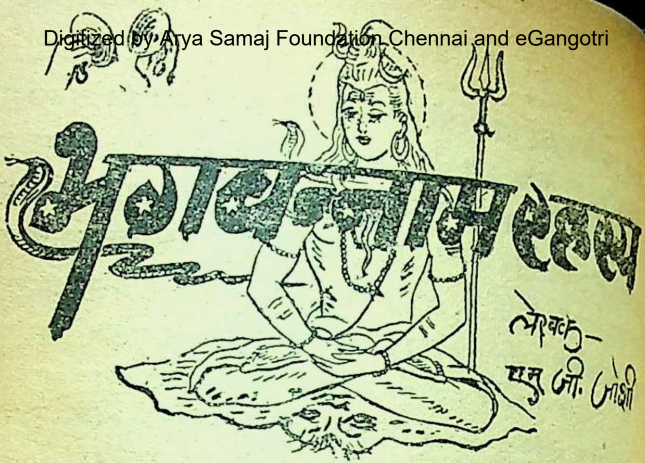

# भगवन्नाम रहस्य

लेखक—
एम. जी. जोशी

नाम संकीर्तनं यस्य सर्व पाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं पदम्॥
—श्रीमद्भागवत

सम्पूर्ण भागवत का आलेखन हो जानेके बाद उसका सार सर्वस्व जिसमें भर दिया गया है, वह उपरिनिर्दिष्ट भागवत का अंतिम श्लोक भगवान् वेदव्यासजीने लिखा है। समस्त सृष्टि की रचना करने के बाद—पशु—पक्षी, सब तरह के जीवजन्तु, नदी, पर्वत, वृक्ष-लता-गुल्म और तदनन्तर यक्ष-किन्नरियों की उत्पत्ति करने के बाद भी जब भगवान् ब्रह्मा को सन्तोष न हुआ, तब उन्होंने विचार किया कि "इन में से कोई भी ऐसा समर्थ नहीं है, जो मेरे स्वरूप को प्राप्त कर सके। तदुपरान्त वे एकाग्र चित्त से ध्यान मग्न होकर—धारणा लगाकर विचार करने लगे कि मैं कैसे प्राणी की रचना करूँ, जो मेरी स्वरूप-स्थिति को प्राप्त करने—उसकी अनुभूति करने में पूर्णतया समर्थ हो। इस धारणा से प्रेरणा पाकर कुछ ही क्षणों

बाद उन्होंने मानव का निर्माण किया और उसे देखकर वे परम सन्तुष्ट हुए। क्योंकि मानव ने जन्म-मृत्यु के फेरे से छुटकारा पाने और उसी परब्रह्म सच्चिदानन्द में विलीन हो जाने को ही अपने जीवन का लक्ष्य बनाया और उसी को मानव-जन्म का सच्चा पुरुषार्थ मानकर ग्रहण किया। यही बात ब्रह्माजी के उपर्युक्त मत से स्पष्ट है।

एकमात्र मनुष्य-योनि ही कर्म-योनि है। इसमें पाप-पुण्य मय कर्म स्वेच्छानुसार न्यूनाधिक रूपमें करता रहता हैं। मनुष्य के अलावा अन्य योनियां भोग-योनियां है। इन योनियों में पाप-पुण्य का फल भोगा जाता है। अनेकशः जन्मों में गोते लगाते-लगाते जब पुण्य-पाप सम-समान स्थितिपर पहुंच जाते हैं, तभी मनुष्य जन्म पाने के लिये जीवात्मा सौभाग्यशाली होता है—(कर्म-विपाक शास्त्र)

सब साधनों में नाम-स्मरण के समान सुलभ और सहज साध्य साधन अन्य कोई भी नहीं है। नाम-स्मरण एक ऐसी नौका है, जिसकी सहायता से मानव इस भव सागर को सरलता से पार कर सकता है। भगवान् का अखण्ड और किसी भी परिस्थिति में स्मरण करने से-हर समय भगवद्विषयक अनुसन्धान करते रहने से मानव इस अगम्य मायारूपी भवसागर को आत्मनिर्भरता के साथ पार कर सकता है।

“तुका म्हणे जन्मा आल्याचे सार्थक
विठ्ठलाचें एक देख लिया ॥

तुका म्हणे जन्मा अल्याचें फल।
स्मरावा गोपाल तेंचि खरें॥"

—सन्त तुकाराम

उपर्युक्त पद—सन्त तुकाराम की वाणी से भी यही स्पष्ट हो रहा है कि इस मानवजन्म की सार्थकता आत्मप्राप्ति या परमात्म दर्शन में ही है।

परमात्मा-प्राप्ति के लिये शास्त्रों में बहुत से अन्तरंग तथा बहिरंग साधन बतलाये गये हैं, लेकिन इनमें से अनेकशः साधन कठिन तथा कष्टदायक हैं। इस कलियुगमें सबसे सुलभ और सहज साध्य साधन 'नामस्मरण' ही है। "मंत्रचले थोड़ा तरी घडयि होय बेंडा।" "साधने घालती कालाचिये मुखे।" उनमें जरा भी अशुद्धि होनेसे 'रक्षन्ति ये भक्षन्ति' की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ९९ यज्ञ करने के बाद भी नहुष नृपति सर्प बन गया। क्यों? मन्त्र में अशुद्धि (गलती) होने से। इसी प्रकार नृगराजा को क्षुद्र कीट बनना पड़ा। लेकिन भगवान् का नाम-स्मरण करनेवाला कोई साधक अधोगामी हुआ हो, ऐसा दृष्टांत कहीं दिखाई नहीं देता। सन्तोंने तो ललकार कर घोषणा कर दी है कि "नामे तरला नाही कोण। ऐसा द्यावा मिवडून॥" जो एकनिष्ठ होकर एकाग्र चित्त से हमेशा हरि-स्मरण करता है, वह उसी हरि के समान परब्रह्म स्वरूप बनकर बाद में उन्हीं में विलीन हो जाता है। हरि-नाम-स्मरण में 'हरि' शब्द का अर्थ है हरण कर लेना, अर्थात् मनुष्यमें जो दुर्गुण हैं, दुष्ट वासनाएँ हैं, दोष हैं, पूर्व-जन्मकृत

पाप हैं, उन सबको हरकर---दूरकर मानव स्वच्छ, निर्मल और शुद्ध-बुद्ध बना देना ही 'ह' अक्षर का अर्थ अभिप्रेत है। भगवन्नाम लेने का सब जातियों को अधिकार है। उसमें किसी के लिये भेदभाव नहीं है। "सकलांसी येथे आहे अधिकार। कलियुगी उद्धार हरिच्या नामे।" "ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य-शूद्र चांडालांहि अधिकार। जाले मोले नारी---नर। आदि करून वेश्याहि॥' श्री भगवन्नाम भगवान् को बहुत ही प्रिय होने से परमेश्वर नामधारकका ऋणी बनकर साधकके सब काम करता रहता है। भगवन्नाम से ऋद्धि--सिद्धि, सर्वसिद्धि, भुक्ति--मुक्ति सायुज्य मुक्ति, वैकुण्ठ, मोक्ष, कैवल्य--पाद--सबकुछ प्राप्त होती है। "तुका म्हणे नामापासि चारी मुक्ति। ऐसे बहुता ग्रंथां बोलियेले॥" "मुखी नाम हाथी मोक्ष। ऐसी साक्ष बहुतांची' इस प्रकार का सर्वोत्तम साधन दुर्लभ है। नाम-स्मरण से मायाजाल, अविद्या, भवसिंधु, आधि--व्याधि, जन्म-मृत्यु, जरा, पुनरावृत्ति, गर्भवास; प्रारब्ध, क्रियमाण, बन्धन, तमोज्ञान सबकुछ जड़ से उखड़ जाते हैं।

भगवन्नाम महामन्त्रों का भी मन्त्रराज है। भगवन्नाम का स्मरण चाहे जैसे भी किया जाये, उससे लाभ ही होता है। इतर मन्त्रों के लिये शौचाशौच. शुद्धि---अशुद्धि, उत्तम स्थान आदि कई नियमों का विधिवत् पालन करना पड़ता है और यदि मन्त्र-जप में थोड़ी भी अशुद्धि (गलती) हुई तो नरक प्राप्त होता है। "अशोचिया जपो नये। आणि काते एको नये। ऐसिया मन्त्राते जग बीहे। त्याचें फलणे थोडे परी क्षोमणे। बहुत तैसा हा मंत्रराज नव्हे रे। नारायण नाम नारायण नाम'

**योग से तन मनका विकास कीजिए**

नाम–स्मरण से प्रारब्ध--रेखा भी बदल सकती है। कहते हैं कि प्रारब्ध का भोग किये बिना छुटकारा नहीं। परंतु पुरुष अपने प्रयत्नों के द्वारा 'प्रारब्ध को भी टाल सकता है। विश्वामित्र, मार्कण्डेय, सत्यवान, जटायु आदि इसके उदाहरण हैं। नाम और नामी अभेद हैं। इससे स्पष्ट है कि यदि मानव नाम-स्मरण का आधार लेकर नामी का अनुसन्धान करे तो उसी स्वरूप को प्राप्त कर लेता है, अर्थात् परमात्म स्वरूप बन जाता है। ऐसी कथा है कि एक कीटकने एक जन्तु को पकड़ कर अपने घरमें रखा था। यह कीटक थोड़ी देरके बाद आकर उसे बार बार सताता था। इसका परिणाम यह हुआ कि उस क्षुद्र जन्तु को उसी कीटक का हमेशा ध्यान लग गया और अन्ततः वह भी कीटक बनकर घर से उड़कर चला गया। यदि मनुष्य परमात्मा का ही अखण्ड ध्यान लगाकर बैठ जाये या उसका नामस्मरण करता रहे और परमात्म स्वरूप बनकर उस परब्रह्म में विलीन हो जाये तो इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है। ? "अबद्धो वा सुबद्धो वा"—नामस्मरण उलटा हो या सीधा सबका एक ही फल है—भगवत् साक्षात्कार। उलटा नाम जपकर भी वाल्मीकि अपना उद्धार करने में समर्थ हुए। भगवन्नाम ऐसा श्रेष्ठ है।

अतः आप भी आज से नहीं बल्कि अभी से भगवन्नाम का स्मरण प्रारम्भ कर दीजिये। इस लेख को पढ़कर यदि एक भी साधक 'नाम धारक' बन जाये तो इस लेख का उद्देश्य बहुत कुछ सफल हो हो जायेगा। नामस्मरण की महत्ता बताने के लिये जहां ब्रह्माजी की वाणी भी पर्याप्त नहीं हुई—समर्थ नहीं हुई और उन्हें भी अन्ततः मौन धारण करना पड़ा, वहां मेरे जैसा मानव इससे अधिक और क्या बता सकता है!

(धारावाहिक उपन्यास)

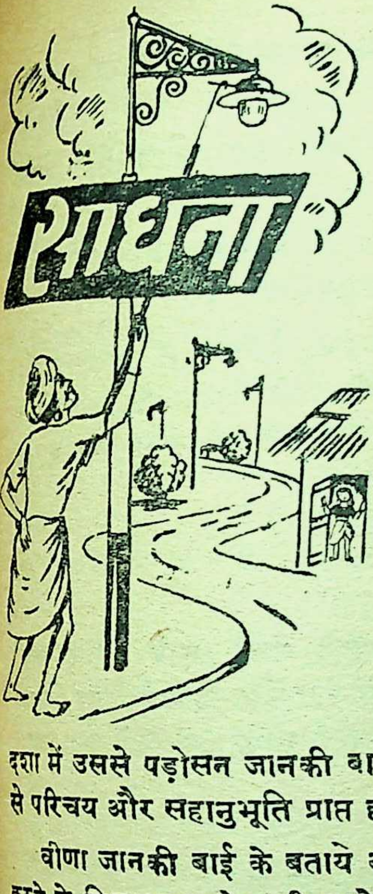

ले०—साहित्याचार्य
पं. देवेश्वर शर्मा, बी.ए.
साहित्यरत्न आदि

⁂

इससे पूर्व पाठक पढ़ चुके हैं कि वीणाको किस तरह रंगूबाई पूने से लाई और उसके द्वारा तिरष्कृत होने पर वह कैसे सेवकरामके आश्रय में पहुँची। वहां पर बीमारी की दशा में उससे पड़ोसन जानकी बाई तथा उसके पुत्र देवदत्त से परिचय और सहानुभूति प्रात होती है।

वीणा जानकी बाई के बताये अनुसार सेवकराम की सेवा करने के लिए तत्पर हो चुकी आगे का हाल पाठकों के समक्ष प्रस्तुत हैं—

देवदत्त के पिता उस मंदिर में काम करने जा रहे थे। वीणा ने आवाज दी। "मैं भी आपके साथ चल रही हूँ।"

'नहीं मैं अकेले ही जाऊँगा।'

'आने दीजिये मुझे । मैं आपको पहुंचाकर वापस आ जाऊँगी ।'

वीणा देवदत्त के पिता के साथ साथ चली गई । उसने उनका हाथ पकड़ा ।

'हाथ पकड़ने की जरूरत नहीं; मैं गिरूंगा नहीं ।'

'पकड़ने दीजिये न हाथ । इसमें क्या है ?'

उसने उनका हाथ पकड़ा । वे मन्दिर में आए । दोनों अंदर गये । देवदत्त के पिताजी अपने स्थान पर बैठ गये । उधर कूचियां थी, रंग थे कई प्रकार के । वे अपना काम करने लगे ।

'मैं चली जाऊँ न अब ?'

'चली जा घर ।'

वीणा चल पड़ी । परन्तु पहले उसने सारे मंदिर की परिक्रमा की । उसे एक कोने में बैठा कौन दिखाई दिया । वह खड़ी रह गई । वह कौन था ? कोई आंखें बन्द किये बैठा था, वीणा पास में गई ।

'कौन है ।' उसने पूछा ।

'मैं वीणा । तुम ऐसे क्यों बैठे हो ?'

'इस मंदिर में एक गवैया आने वाला था । इसलिए पिताजीने मुझे यहां लाकर बिठाया और वे कहीं गये हैं वह गायक अभी नहीं आया । इसलिये बैठी हूँ ।'

'तुम्हें दीखता नहीं ।'

'इस चला चली के संसार की चलायमान वस्तुएं नहीं दीखतीं।'

'फिर कहां की वस्तुएं दीखती हैं ?'

'मानसिक जगत में क्या होगा ? बाहर ही सच्चा आनन्द है। तुमको कत्तई नहीं दीखता फूल पत्तियां, पक्षी, बत्तियां, पेड़, पौधे, आकाश के तारे आदि कुछ नहीं दीखते।'

'नहीं नहीं कुछ भी नहीं दीखता।'

'तुमने मेरी आंखें नहीं देखीं। वे अब अच्छी हो गई हैं।'

'क्यों मेरा मजाक उड़ाती है।'

'ऐसा नहीं। परन्तु रंगूबाई सदा ही नाम रखा करती है।'

'कौन रंगूबाई ?'

'वह मुझे मारने वाली, मेरे खरगोश के बच्चों को उबलते पानी में फेंकने वाली। मुझे घर से बाहर करने वाली।'

'तू क्या वही वीणा है ? सेवक काका के यहां तू ही रहती है क्या ?

'हां वही। तो सेवक काका तुम्हारे पहचान के हैं।'

'हां तू अब मजे में है न।'

'अब मैं बड़े आनन्द में हूँ। घर में काम काज कर लेती हूँ।'

'तू पाठशाला में भी जायगी क्या ? अब पाठशालायें खुलने वाली हैं। मैंने सेवक काका को कह रखा है। अवश्य पढ़। जब पढ़ने को आ जायगा फिर मेरे पास आती जाती रह। मैं तुझे अच्छी अच्छी पुस्तकें दूँगी। वे मुझे पढ़कर सुना। होशियार बन।'

'तुम्हारा घर किस जगह है ?'

'तुम्हारा काका दिखायेगा।'

'तुम्हारी आँखें नहीं। यह कितने दुःख की बात है। आँखें प्रभु करे सबके ही रहें।'

'प्रभु इच्छा से जिसकी नहीं हैं उसका क्या इलाज! परन्तु प्रभु ने मुझे अन्तः चाक्षुस दिये हैं। वहां सभी सुन्दर और भला दीखता है। वहां तेरी रंगूबाई तक भली और सुन्दर दीखती है।

'वह दुष्ट रंगूबाई। मैं परसों देवदत्त के साथ जा रही थी। रास्ते में उसका घर आया। देवदत्त आगे जा चुका था, मैंने एक पत्थर उठाकर उसकी खिड़की पर मारा और भाग गई।'

'मैंने कहते सुना था।'

'किसने कहा तुमसे, काका ने ?'

'हां। ऐसा फिर न करना। तेरे मां बाप नहीं। तुझे इतने दिन रंगूबाई ने पाला। ठीक है न? उसने खरगोश का बच्चा क्रोध में फेंका वह दैववशात गरम पानी में पड़ा। होश हवास में फेंका था क्या ?'

भले ही क्रोध में फेंका। परन्तु फेंका क्यों।'

'वह गिर पड़ी और तू उसके ऊपर हँसी। इससे उसको क्रोध आया। चलो ऐसा समझो कि रंगूबाई दुष्ट है तो क्या अपने को भी वैसा ही बनना चाहिए। अपने को पत्थर मारने चाहिए ? वह एक दुष्ट तू दूसरी दुष्ट होने वाली है क्या! संसार में सज्जन बढ़ने चाहिए दुष्ट क्यों ? ठीक है न वीणा! तुझे देवदत्त सिखाता है न ?'

'हां देवदत्त भला आदमी है। चित्र बनाता है। अच्छा बोलता है। पत्थर फेंकने पर उसने मुझे झिड़की भी दी थी। मैं गुस्सा हो गई तो मुझसे बाद में कहने लगा—'वीणा गुस्सा नहीं करते, बुरा काम नहीं करते।'

'देवदत्त बहुत अच्छा लड़का है। उसका अपनी मांके प्रति अगाध प्रेम है। और मां का भी वही एक मात्र सहारा है।'

'देवदत्त अब पढ़ना छोड़कर नौकरी करेगा।'

'इतनी सी उम्र में नौकरी ?'

'वह कहा करता है कि अब मुझे मां का सहायक बनना चाहिए। मां कितना कष्ट उठावेगी। अब मां को बैठकर खाना चाहिए। ऐसा उसे लगता है। ऐसी बातचीत वह काका के साथ कर रहा था।'

'उसका कहना ठीक है।'

इसी बीच वहां कोई आया। वीणा स्तम्भित हो गई।

'कान्ता! तेरे से वीणा बातचीत करने आई लगती है।'

'हां कितना सुन्दर बोलती है ?'

'आपको मेरा नाम कैसे मालूम ?'

तू बीमार थी, मैं उस समय डाक्टर लेकर तुझे देखने आया था। इसी कान्ता के कहने से डाक्टर व स्वीटर के लिए ऊन लेकर गया था।

'उस स्वीटर की ऊन आपने ही दी थी क्या ?'

'हां कान्ता ने ही दी थी।'

'यह बात तो मुझे मालूम ही नहीं। आपने क्यों देने का कष्ट किया ?

'सेवक काका एक अनाथ बालिका का जब मां बाप ब सकता है।' तो इतना भी न करें। जैसा हृदय प्रभु ने गरीबों को दिया है वैसा अमीरों को भी दिया है। जब काका ने तेरे घर लाने की बात कही थी, तो मेरा दिल भर आया था, मैंने उससे कहा कि वीणा को बड़ा करो। चिन्ता करने की आवश्यकता नहीं। हम भी मदद करेंगे। वीणा! हम भी तेरे ही हैं। मेरे पिताजी हैं। ठीक है न? हमारे यहां आया जाया कर।'

'आपका घर देखकर रखूँगी।'

'अभी हमारे साथ ही चल।'

वे तीनों चल पड़े। एक बंगले में घुसे। मझले आकार का वह बैठा बगला था। रामनाथ कान्ता को उसके कमरे में ले गया। कमरा साफ सुथरा था।

'वीणा! आ पास में बैठ। कान्ता ने कहा। रामनाथ ने एक प्लेट में कुछ नमकीन और मीठा लाकर वीणा को दिया। वीणा चारों ओर गौर से देख रही थी।

'ये तो बहुत सी पुस्तकें हैं। इन्हें कौन पढ़ता है।'

'पहले तो मैं पढ़ा करती थी। अब पिताजी पढ़कर सुनाया करते हैं। कोई भी नई पुस्तक नजर पड़ती है तो लेकर आते हैं। तू जल्दी पढ़ना सीख। फिर तू ये पुस्तकें पढ़ा करेगी।'

'मुझे क्या पढ़ना आवेगा।'

'जरूर आवेगा। मेहनत करने से सब कुछ प्राप्त होता है।'

'अच्छा तो मैं खूब मेहनत करूँगी, खूब सीखूँगी। देवदत्त भी कहता है, खूब सीख।'

—क्रमशः

# प्रश्नोत्तर

श्री० शिवरामा ईश्वर, वज्रल्ली (मैसूर)

पत्र-संख्या-१ प्रश्न-संख्या-१

प्रश्न—मुद्रा किसे कहते हैं ? अश्विनी मुद्रा कैसे की जाती है ? आप ऐसी १-२ मुद्राएँ बताने की कृपा करें, जिनसे तन-मन की शक्ति बढ़ती है। शवासन की विधि और उसके लाभ भी बताएँ।

उत्तर—आपके प्रश्न के उत्तरमें निवेदन है कि यम; नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि-यह अष्टांग योग का पूर्ण रूप है। अनुलोम, विलोम, सूर्यभेदन, चन्द्रभेदन, शीतली, सीत्कारी, भ्रामरी, भस्त्रिका-१, भस्त्रिका-२ मूर्च्छा, और प्लाविनी-इन ११ प्रकारके प्राणायामों का पूर्णतया अभ्यास कर लेने के पश्चात् मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है। जैसे सामान्य ज्ञान-सम्पादन के पश्चात् विशेष ज्ञान का सम्पादन किया जाता है, उसी तरह प्राणायाम के अभ्यास में पारंगत हो जाने और उससे यथेच्छ लाभ उठा लेने के बाद मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है। प्राणायाम के विशेष

स्वरूप को ही यदि मुद्रा कहा जाये तो कोई हर्ज नहीं। प्राणायाम की अपेक्षा मुद्राओं के अभ्यास से कहीं अधिक लाभ होता है। मुद्रा करने से पहले अमुक प्रकारके आसन के अभ्यास में पारंगत होना पड़ता है। जैसे कि महामुद्रा के समय शिरासन, विपरीत करणी मुद्राके समय विपरीत करणी आसन महत्त्व मुद्रा के दूसरे प्रकारके अभ्यास के समय लोलासन, अर्थात् विभिन्न मुद्राओंके विभिन्न आसनों और विशिष्ट प्रकार के प्राणायामों का अभ्यास किया जाये, तभी मुद्रा का पूर्ण अभ्यास माना जायेगा।

## कुछ आवश्यक बातें

मुद्रासे पहले प्राणायाम के समय जो पूरक, रेचक और कुंभक किया जाता है, उसका अभ्यास अधिक समयतक करना जरूरी है, अन्यथा मुद्राओं के समय पूरक, कुंभक और रेचक ठीक समय तक नहीं होंगे और मुद्रा का अभ्यास अपूर्ण ही छोड़ देना पड़ेगा। सामान्यतः ११ प्राणायामों से किसी भी प्राणायाम के समय १६ मात्रातक पूरक, ६४ मात्रातक कुंभक और ३२ मात्रातक रेचक करना अनिवार्य है। यह पूरक, कुंभक और रेचक आराम से आनन्दपूर्वक करना चाहिये। शरीर के आन्तरिक और बाह्य अवयवों में प्राणायाम के समय तनाव अथवा दबाव न पड़े। लपाविनी प्राणायाम में कुंभक के समय हाथ की उँगलियों से सूर्य तथा चन्द्र नाड़ी के श्वासोच्छ्वास को रोक दिया जाता है। मुद्राभ्यास में कुंभक के समय हाथ का स्पर्श नहीं किया जाता। यह भी सम्भव है कि प्राणायाम

अभ्यास परिपक्व न होने से मुद्रा कालीन कुंभक के समय श्वासावरोध अधिक समय तक न हो सके। बम्बई से दूर रहनेवाले लोग श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में आकर योग-शिक्षा नहीं ले सकते, इसलिये 'रामतीर्थ' मासिक में प्रतिमास आसन प्राणायामादि योगाभ्यासों के सम्बन्ध में प्रतिमास बताया जाता है। क्रमबद्ध समाधि तकके अभ्यास बताये जाते हैं। 'रामतीर्थ' के प्रथम वर्ष १९६० के अंकों में नेति, धौति आदि ६ प्रकार के मलशोधन कर्म विस्तार पूर्वक बताये गये हैं।

## महामुद्रा की विधि और लाभ

जानुशिरासन की विधि से बैठ जायें। दोनों हथेलियोंको घुटनों पर सीधा रखें। कमर के ऊपर के भाग को सीधा रखें। प्रारंभ में बायें पैर को घुटने से मोड़कर पैर की एड़ी को सिवनीमें रखें और दाहिने पैर को सीधा रखें। दोनों नाड़ियों (सूर्य और चन्द्र) अर्थात् दोनों नासिका-छिद्रों से ५ बार घर्षण से श्वास-प्रश्वास करें। नाक के छिद्रों से हवा साधारण गतिसे आये, इस प्रकार घर्षण करें। घर्षण के पश्चात् दाहिनी नाड़ी को दाहिने हाथ की उँगली से बन्द कर बाई नाड़ी से पूरक करें। कुंभक के समय नासिका का स्पर्श घुटने से करायें और दोनों हाथों की उँगलियों से दाहिने पांव के अंगूठे को पकड़ रखें। कुंभक के समय जलंधर बन्ध करें। पूरक १६ मात्रा, कुंभक ६४ मात्रा और रेचक ३२ मात्रातक करना चाहिये। अन्यथा लाभ नहीं होगा। कुंभक के बाद सीधे बैठकर कमरके ऊपर के भागको सीधा रखकर बाई नाड़ी को दाहिने हाथ की उँगली से बंदकर दाहिनी नाड़ी से रेचक करें। फिर तुरन्त पैर बदल देना चाहिये। दाहिने पांव को घुटने से मोड़कर एड़ी

को सिवनी पर रखें। बायें पैर को सीधा रखें। बायें पैर के घुटनेपर दोनों हाथों के पंजे रखकर दोनों नाड़ियों से ५ घर्षण करें। तदुपरान्त दाहिनी नाड़ी से पूरक करें। कुम्भक के समय बायें पैर के अंगूठे को दोनों हाथों की उँगलियों से पकड़ रखें। कुम्भक के बाद पैरों को यथास्थिति में ले आवें। केवल कमर के ऊपर के भाग को सीधा रखकर दाहिनी नाड़ी को दाहिने हाथ के अंगूठे से दबा रखें और बाई नाड़ीसे रेचक करें। यह एक महामुद्रा का अभ्यास पूर्ण हुआ। दोनों पावों से एक एक बार अभ्यास किया जाये तो एक मुद्रा पूर्ण होती है। अन्य मुद्राओं से पहले ही महामुद्रा का अभ्यास कर लेना चाहिये।

### स्मरणीय नियम

जैसे प्राणायाम के समय मूलबन्ध का अभ्यास आरंभ से अन्त तक और रेचक के समय उड्डीयान बन्ध किया जाता है, उसी तरह मुद्रा अभ्यास के समय भी किया जाता है। प्रत्येक मुद्रा के आरंभ से अन्त तक १ से ३ बार नौलिकर्म करना अनिवार्य है। किसी मुद्रा के समय जालन्धर बन्ध नहीं किया जाता। जैसे परिधान मुक्ति परिचालन मुद्रा के समय जालंधर बन्ध लगातार नहीं रखा जाता। मुद्राओं के समय आंखों को बन्द रखा जाये। मन में अत्यन्त उच्च कोटि के पवित्र विचार रखे जायें। प्रातःकाल स्नान-सन्ध्या के पश्चात् अथवा सायंकाल भोजन से एक घण्टा पहले मुद्रा का अभ्यास किया जाये। कमसे कम तीन मुद्राएँ करें और अधिक से अधिक ६ मुद्राएँ। दिन में एक बार करें। प्रातःकाल का समय उत्तम है।

## महामुद्रा के लाभ

सप्तधातु ( रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, हड्डी, वीर्य ) का शुद्धी करण होता है। छः प्रकारके मलशोधनकर्म, आसनाभ्यास प्राणायाम और मुद्राओं के अभ्यास से कायाकल्प हो जाता है। सचमुच यह अभ्यास करणीय और अनुभवनीय है। गृहस्थी, ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ, और सन्यासी कोई भी वर्णाश्रमधर्मी बिना किसी रोक टोक के निस्सन्देह रूप से योगाभ्यास द्वारा कायाकल्प रूपी महान् लाभ उठा सकते हैं। महामुद्रा प्रारंभिक है। इसके बाद और भी अनेक मुद्राएं हैं। जैसे खेचरी, अश्विनी; महाबन्ध, महावेध नं० १, महावेध नं० २, विपरीतकरणी मुद्रा, परिधान युक्ति परिचालन मुद्रा, वज्रोली मुद्रा, शक्तिचालन मुद्रा आदि-आदि। मुद्राओं के अभ्यास से शरीर नीरोग रहता है, भूख बढ़ती है और ऐसा अनुभव होता है, मानो शरीर में विविध प्रकार की नवीन शक्ति का संचार हो उठा है। शरीर हलका हो जाता है। काम करने और चलने में थकावट नहीं मालूम होती। और प्रत्येक इन्द्रियों में शक्ति का भंडार संचित मालूम पड़ता है। प्रत्येक अवयव से वात-पित्त-कफ विकार जन्य विजातीय द्रव्य नष्ट हो जाता है। रक्त शुद्ध होता और बढ़ता भी है। स्मरण-शक्ति अच्छी रहती है। मन आशावादी, आनन्दमय तथा स्फूर्तिदायक विचारों से भरपूर रहता है। यहां तो एक मात्र महामुद्रा के शारीरिक और मानसिक लाभ बताये गये हैं। अनेक महत्त्वपूर्ण लाभ बाकी हैं। केवल एक मुद्रा में इतने लाभ भरे हुये हैं, तो अनेक मुद्राओं में कितने अलभ्य लाभ होंगे, यह पाठक स्वयं समझ लें। इतने से ही मुद्राओं का महत्त्व पूर्ण नहीं होता।

## कुण्डलिनी शक्ति

सर्व सामान्यतः मुद्राओं द्वारा शरीर तथा मन को अलभ्य लाभ तो प्राप्त होता ही है, साथ इनके कुछ विशेष लाभ पाठकों को बतायेंगे। नाभि से ४ अंगुल नीचे स्वाधिष्ठान चक्र में कर्माशय कोष को वेष्ठित कर कुण्डलिनी शक्ति सोई हुई है। मुद्राओं के अभ्यास द्वारा कुण्डलिनी को जाग्रत कर अनेक कमलों (चक्रों) में प्रवेश कराकर उसे ब्रह्म रन्ध्र तक पहुंचाया जाता है। कर्माशय कोष का शुद्धीकरण करना, और समाधि अवस्था का आनन्द अनुभव लेना, मुद्राओं का अभ्यास, कुण्डलिनी शक्ति का उत्थान, चक्र-भेदन क्रिया-यह सब महान् ऐश्वर्यदायी उत्तम प्रकार के अभ्यास हैं। इनमें अनेक मुद्राओं की गणना बहिरंग अभ्यास के अन्तर्गत है और कुछ मुद्राओं का अभ्यास, षट्चक्र भेदन-क्रिया शरीरगत देवता (गणपति; ब्रह्मा, विष्णु, ईश्वर आदि के मन्त्र) आराधन आदि अन्तरंग गुप्त अभ्यास, के अन्तर्गत माना जाता है। जब योगसाधक पूर्ण रूप से अधिकारी हो जाता है, तब दीक्षा देकर गुरु उसे अन्तरंग अभ्यास सिखाते हैं। श्री रामतीर्थ योगाश्रम में योग के अन्तरंग तथा बहिरंग अभ्यास के सिखाने का प्रबन्ध है।

श्री० शिवरामा ईश्वर ! आपका प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। ऐसे प्रश्न कोई विरले ही स्त्री--पुरुष पूछते हैं। यह प्रश्न जन्म को सार्थक करनेवाला है। जैसा आपका नाम है, वैसा ही जीवन भी है, ऐसा प्रतीत होता है। पूर्व-जन्म के संचित कर्म के फल और वर्तमान जन्म के परम पुरुषार्थ से ही इतनी प्रबल इच्छा योगाभ्यास के प्राप्ति हो सकती है। धन्य है आपका जीवन !

# जानुशिरासन

(उमेशयोगदर्शन ग्रन्थ से)

सीधे बैठ जाने के पश्चात् बायें पैर को घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी को सिवनी स्थान ( अण्डकोश के नीचे के भाग ) में लगा रखें। पैर के तलुवे को दाहिने पैर की जानु से लगा दें और हो सके तो एड़ी को सिवनी में लगा दें। दाहिने पैर को सामने की ओर फैला रखकर उसके अँगूठे को दोनों हाथों की मध्यमा, तर्जनी और अंगूठे से पकड़ लें। तदनन्तर मस्तक (ललाट) को घुटने से लगा दें। घुटने से ललाट को लगाते समय घुटना जमीन से उठने न पाये और बायें पैर का घुटना भी जमीनसे उठने न पाए और न टेढ़ा होने पाये श्वासोच्छ्वास चालू रखें। आँखें बन्द रखें अथवा खुली रखें। इस अभ्यास के पूर्ण हो जाने पर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर सिवनी-स्थान (अण्डकोश के नीचे के भाग) पर स्थापित करें और बायें पैर को सामने की ओर फैलाकर उसके अंगूठे को दोनों हाथों की मध्यमा, तर्जनी और अँगूठे से पकड़ लें। शेष क्रिया दाहिने पैर के अनुसार ही करें।

बायें पैर को घुटने से मोड़कर जानु के ऊपर के भागपर रखें। दाहिने पैर को सामने फैलाकर दोनों हाथों की उँगलियों से अँगूठे को पकड़ रखें। शिर को दाहिने पैर के घुटने से

लगायें । श्वासोच्छ्वास चालू रखें । आंखें बन्द भी कर सकते हैं और खुली भी रख सकते हैं । तत्पश्चात् जो पैर मुड़ा हुआ है, उसको सीधा सामने की ओर फैला दें और जो पैर फैला हुआ है, उसको मोड़कर बायें पैर की जानु पर रखें। शेष क्रिया ऊपर की विधि के समान है।

फिर बायें पैर को सामने की ओर फैला दें। फिर दाहिने पैर को मोड़कर जानुमूल और कन्धस्थान पर रखें। बायें हाथ की उँगलियों से फैले हुये बायें पैर के अंगूठे को पकड़ लें और दाहिने हाथ को पीठ की ओर ले जाकर दाहिने पैर अंगूठे को पकड़ लें। तदनन्तर ललाट को बायें पैर के घुटने से स्पर्श करें। श्वास-प्रश्वास चालू रखें। आंखें खुली रखें अथवा बन्द रखें। इस अभ्यास के बाद जो पैर मुड़ा हुआ है, उसे सीधा फैला दें और फैले हुए पैर को मोड़ कर जानुपर रखें। शेष क्रिया ऊपर के समान है।

## विशेष सूचना

जिन स्त्री-पुरुषों का पेट चरबी से भरा हुआ हो अथवा कमर झुकती न हो, पैर के सांधे भी जब अधिक कठोर हों उन लोगों का शिर घुटनों के पास पहुंच न सकेगा। कदाचित् थोड़ा बहुत शिर नीचे झुक जाने पर पैर के घुटने का भाग उठ जाता है, जिससे लोग इस आसन को कठिन समझकर इसके अभ्यास को छोड़ बैठते हैं। इतना ही नहीं। ५। ६ दिन तक कमर और पैरों के सांधों में कुछ अंशों में वेदना होने की सम्भावना रहती है। इससे भी लोग इसे

छोड़ भागते हैं। ऐसे लोगों के लिए अति अनुकूल हो और वेदना भी कम से कम हो एवं अभ्यास-काल में निराशा की भावना उत्पन्न न हो, नित्य-प्रति कुछ न कुछ प्रगति के पथपर आगे बढ़ने का लक्षण प्रतीत हो, ऐसा अभ्यास निम्नलिखित रूप में है।

वायें पैर को मोड़कर उसकी एड़ी को सिवनी-स्थान पर लगा दें, एड़ी से घुटने तक का भाग जमीन पर रखा रहे। तत्पश्चात् दाहिने पैर को ऊपर की ओर मोड़कर रखें। एड़ी और जानु के मूल भाग में लगभग एक फीट का अन्तर रहे। तदुपरान्त दाहिने हाथ की तर्जनी और मध्यमा उंगलियों से दाहिने पैर के अगूंठे को पकड़ कर पैर को यथासम्भव आगे फैलाने का प्रयास करें। जहां तक पैर पहुंच सके वहां तक ले जाकर वहां कुछ देर तक स्थापित रखें। फिर उसी पैर को संकुचित करें आगे वढ़ाते जायें। इस प्रकार का अभ्यास वारंवार करते रहने से सांधे, कमर और पैर के सांधे ढीले और नरम होते जायेंगे और शिर भी घुटने के पास अनायास पहुंचने लगेगा। यही अभ्यास पैरों को वारी-वारी से वदल-वदल कर करते रहें। सर्वसामान्य रूप से व्यवहार-युक्त जानुशिरासन का जो प्रथम प्रकार बताया गया है, वही सर्वत्र सिखाया जाता है, किया और कराया जाता है। दूसरे और तीसरे प्रकार के जो जानुशिरासन है, उनका अभ्यास श्रमसाध्य होने के कारण वह न तो कहीं किये जाते हैं और न सिखाये ही जाते हैं। साधक लोग नीचे लिखे अनुसार समय को पहले प्रकार के जानुशिरासन के समान ही समझें।

## समय

४ दिन तक २ मिनट । ५ से १० दिन तक ३ मिनट । १ से २० दिन तक ४ मिनट । २० दिन के पश्चात् यथाशक्ति लाभ और आयु के अनुसार ३ मिनट तक बढ़ावें । यह समय दोनों पैरों का अलग-अलग समझना चाहिये ।

## लाभ

वीर्य के अनेकशः रोग–जैसे कि वीर्य का पतलापन, पेशाब के साथ वीर्य का जाना, पसीने के साथ वीर्य का जाना, स्वप्नावस्था में वीर्य-स्खलन, वीर्य–दौर्बल्य के कारण शिश्नेन्द्रिय का अकारण अकड़ जाना, अण्डकोश की दुर्बलता आदि अनेकशः व्याधियां पूर्णतः निर्मूल हो जाती हैं । यकृत मजबूत बनता है और वीर्यकोश तथा मूत्राशय में दृढ़ता और शक्ति आती है पथरीके रोगियों के लिये भी यह आसन अतीव हितकर है । अतिशार ( मरोड़ ) पाण्डु रोग और कृमिरोग इस आसन से मिट जाते हैं । दन्तरोगी इस आसन को करते समय नीचे ऊपर के दांतों को जकड़ कर रखें, जिससे दांत के मूलों में मजबूती आती है । शिरागत वायु, मज्जा-अस्थिगत वायु और पक्षाघात के रोगियों को भी यह आसन लाभ पहुंचाएगा इस जानुसिरासन के जो अन्य दूसरे और तीसरे प्रकार बताये गए हैं, उनके करने से अनेक लाभ मिलते हैं । इससे स्त्रियों के गर्भाशय का रोग पूरी तरह से दूर हो जाता है । गला सुख जाना, अति तृषा आदि विकारों का पूर्ण रूप से प्रशमन हो जाता है ।

## श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम

१-इस योगाश्रम में प्रविष्ट होने के बाद साधक को बीड़ी-सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२-ली हुई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३-अभ्यासकाल में सबके साथ हिल-मिलकर रहना होगा तथा इस सम्बन्ध में कोई शिकायत होगी तो उसका निर्णय संचालक ही करेंगे, जो अन्तिम होगा।

४-अभ्यास प्रारम्भ करने के समय से निवृत्त होने के समय तक साधकको संचालकके आदेशानुसार आचरण करना होगा।

५-टूवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

६-सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

७-योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

८-कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवस्था वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

### फीस सम्बन्धी नियम

आश्रम में प्रवेश करने की फीस ५ रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के के लिये १ महीने की फीस १० रुपये और तीन मास के २७ रु.

है। योगाभ्यास–संबंधी वस्तुओं (नेति धौति आदि) का

फीस से कोई संबध नहीं। इनका प्रबन्ध साधक को खुद करना होगा। जितनी अवधि के लिये फीस भरी गई हो, उसका सम्बन्ध दूसरी अवधि की फीस से न माना जायेगा। योगाश्रम से एक बार निवृत्त होने के एक वर्ष के बाद पुनः प्रवेश पाने की इच्छा रखनेवाले साधक का नवीन प्रवेश समझा जायेगा। एक साल से पहले पुनः प्रवेश की इच्छा रखनेवाले साधकों की गणना पुराने साधकों में होगी। नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच में प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधक को फीस अग्रिम देनी होगी समय प्रातःकाल ७ से ९ और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो में से किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं। महिलाओं के लिये अपराह्न में ४ से पांच है। फीस पुरुषों के समान है। प्रातःकाल आनेवाले साधकों को स्नान, सन्ध्या आदि से निवृत्त होकर आना चाहिये। इस योगाश्रम में योगशिक्षकों को भी प्रशिक्षित किया जाता है। एतदर्थ योग प्रवेश, योग मध्यमा और योग-पारंगत उपाधियां नियत हैं। योग--प्रवेश के अभ्यास क्रम की अवधि ३ महिने की है। योग--मध्यमा की साधना की अवधि ६ महिने की और योग--पारंगत की १ से ३ वर्ष की है। इस अवधि में योगाभ्यासी अपनी अभीष्ट भूमिका का पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेता है और तदनुसार योग–शिक्षक बन सकता है। योगाश्रम में होनेवाले व्याख्यानों से सर्वसाधारण जनता निःशुल्क लाभ उठा सकती है।

योगाश्रम में आनेवाले प्रत्येक व्यक्ति को नियमों का पालन करना अनिवार्य होगा जब तक वे योगाश्रम में रहें, शांति और सभ्यता का पालन करें, अन्यथा संचालक की आज्ञानुसार उन्हें आश्रम छोड़ देना होगा।

# श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

## (महत्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति)

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और ध्यान का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचार आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

**पुरुषों के लिये समय:**—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायकाल ६ से ७॥

**महिलाओंके लिये समयः**—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सवेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रम के संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आनेवाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता है।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन. कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

**विशेष सूचना:**— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने. तथा भोजन का प्रबंन्ध नहीं है।

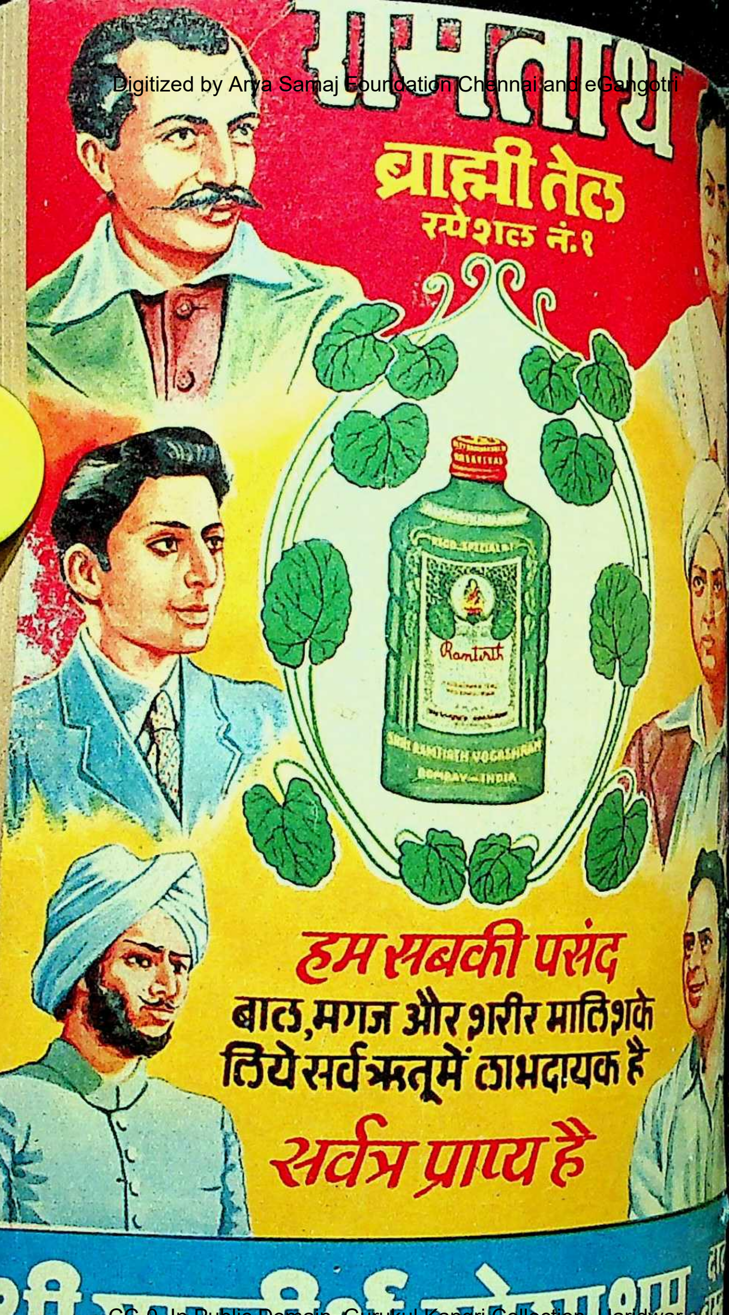

# रामतीर्थ

## ब्राह्मी तेल

स्पेशल नं. १

Ramtirth

SHRI RAMTIRTH YOGASHRAM

BOMBAY-INDIA

**हम सबकी पसंद**

बाल, मगज और शरीर मालिशके लिये सर्व ऋतूमें लाभदायक है

**सर्वत्र प्राप्य है**

श्री रामतीर्थ योगाश्रम,

# मतीर्थ

विकासक

म

प्रेक

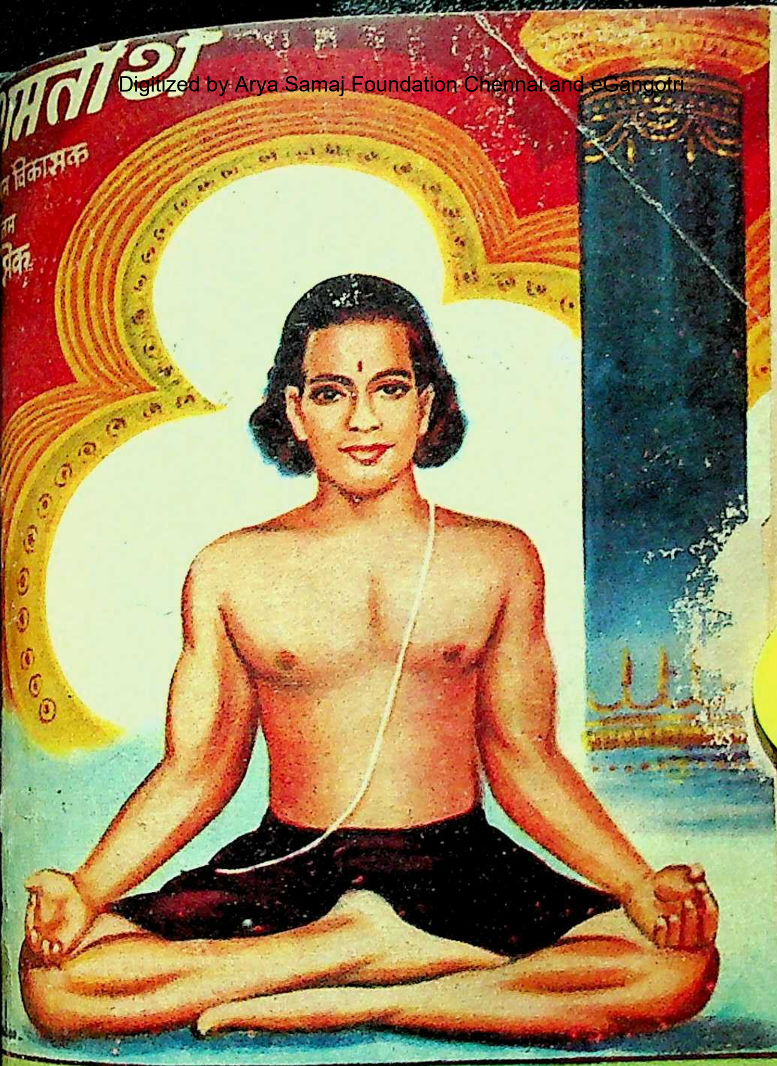

म्बर १९६४

## सिद्धासन

50 पैसे

श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई.१४ (भारत)

# श्री रामतीर्थ योगाश्रम

(बम्बई १४) के

महत्वपूर्ण निर्माण तथा प्रकाशन

(घर-घर में उपयोगी)

## रामतीर्थ ब्राह्मी तेल

(स्पेशल नं, १)

बाल, मस्तिक तथा शरीर की मालिश के लिये सभी प्रकृतिके लो के लिये सभी ऋतुओंमें अनुकूल है। सर्वत्र प्राप्य है।

## उमेश योगदर्शन

(प्रथम खण्ड)

( लेखकः—योगिराज श्री. उमेशचन्द्रजी )

अंग्रेजी, गुजराती, हिन्दी, मराठी भाषाओंमें मिलता है। यह ६ प्रका के मलशोधन कर्म, आसन, प्राकृतिक चिकित्सासे रोगनिवारण औ मानसोपचारका ज्ञान करानेवाला परमोत्तम ग्रन्थ है। ग्लेज आर्ट पे र विभिन्न आसनों तथा षट्कर्मों के १०८ चित्र हैं। पृष्ठ-संख्या ४०० के अन्तर्गत योगाभ्यासका विस्तृत बोध कराया गया है। मूल्य, १५ रु, डाकव्यय २ रु.

**योगासन चित्रपटः**—योगासन चित्रपट अनेक रंगोसे तैया किया गया है। यह चित्रपट अनेकों आसनों से परिचित कराता है। इसके आधारपर अपने घरपर ही आसनों का अभ्यास करके सदैव नीरोग त सशक्त रह सकते हैं।

मूल्यः—डाकव्यय सहित ३ रु.

रुपया भेजनेका पताः—श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, पो. दादर, (बम्बई १४)

मध्यप्रदेश की शिक्षण संस्थाओं और पुस्तकालयों
के लिए स्वीकृत

मानव जाति के उत्थान का प्रतीक
हिन्दी जगत् का सर्वोत्तम मासिक

# रामतीर्थ

सम्पादक-
योगीराज
उमेशचन्द्रजी

वर्ष-५-अंक ९
दिसम्बर १९६४

स अंक का मूल्य
५० पैसे
वार्षिक शुल्क ५ रु.
डाकव्यय सहित

टेलीफोन
सम्पादक
व्यवस्थापक } 62899
विज्ञापन
तार-प्राणायाम दादर

| लेख | लेखक | पृष्ठ |
|---|---|---|
| वैदिक प्रार्थना | संकलित | ८ |
| उमेशवाणी | | ९ |
| सिद्धासन | उमेश योगदर्शन ग्रंथसे | १० |
| मंत्रयोग और कुण्डलिनी | वीतराग नारायण स्वामी | ११ |
| तक्र | डॉ. गंगाप्रसाद गौड़ नाहर | १७ |
| प्राकृतिक चिकित्सा का चमत्कार | डॉ. जे. पी. वर्मा | २६ |
| ीता के उत्कृष्ट भक्त | डा. गोपाल प्रसाद वंशी | ३८ |
| रामचरित मानस | टीका-योगीराज उमेशचन्द्रजी | ४५ |
| प्रश्नोत्तर | सम्पादकीय कलम से | ८० |
| जीवन का सदुपयोग | रवीन्द्रकुमार शास्त्री | ८३ |
| प्रकृतिकापुजारीएकमहानघुमक्कड़ | हरिमोहनलाल श्रीवास्तव | ९० |
| तुलसी जस भवितव्यता | अवध अनुपम | ९५ |
| शाहजादी के आराध्य (कहानी) | नरेशचन्द्र मिश्र | १०२ |

| लेख | लेखक | |
|---|---|---|
| भारत और भारतीय भाषा | दिनेश प्रसाद पाठक | ११ |
| महान् मोरध्वज (कहानी) | रामदास एस. पाटील | ११५ |
| फेकूचंद (प्रहसन) | नामवर | ११८ |
| परमार्थ ही मनुष्य जीवन | कु. कृष्णा प्रधान | १३१ |
| मिट्टी की महिमा | श्री. कुन्तल गोयल | १४१ |
| मनोबाध | टीका. वाय. वी. खेड़कर | १४५ |
| ये कीटाणु नाशक दवाएं | गोस्वामी बालकराम | १५१ |
| बाल्य, युवा और वृद्धावस्था के दोष | भगवतीप्रसाद श्रीवास्तव | १६१ |
| मैं कौन हूँ ? | आचार्य मित्रसेन | १७८ |
| योग और भौतिक जीवन | आचार्य सर्वे | १८१ |
| योग साधना और शक्ति | रामनारायण सिन्हा | १९० |

## मुख पृष्ठ का परिचय

श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के संचालक-संस्थापक की स्थिति सिद्धासन में दर्शनीय है। विशेष विवरण के हेतु इसी अंक के पृष्ठ १० पर देखें।

---

## विशेष सूचना

लेखकों से आग्रह है कि वे लेख भेजने से पूर्व 'लेखकों से' वाले पृष्ठ को पढ़ लें। फिर केवल अपनी रचना को निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११ के पते पर भेजें। लेख भेजने के बाद यदि किसी प्रकार का पत्र व्यवहार करना आवश्यक समझें तो उत्तर के लिये जवाबी कार्ड भेजना आवश्यक है। अन्यथा कोई उत्तर न भेजा जायेगा।

---

सम्पादक श्री योगीराज उमेशचन्द्रजी ने निराला मुद्रक १४० आर्थर रोड बम्बई ११ में मुद्रित कर, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम के लिये विन्डेल स्ट्री
२ दादर बम्बई १४ से प्रकाशित किया।

# लेखकों से

## 'रामतीर्थ' मासिक में स्वीकार करने योग्य मुख्य विषय—

शारीरिक रोग निवारण, सशक्त एवम् सदानिरोगी मानसिक रोग दूर करके मन की शांति, एवम् आत्म साक्षात्कार करने योग्य, उपरोक्त लाभ प्राप्त करा देने योग्यअष्टांग योग, (यम, नियम आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार धारणा, ध्यान, समाधी, राजयोग, भक्ति योग, लय योग, मंत्रयोग, शिवस्वरोदय, वेद उपनिषद, गीता ,रामायण, महाभारत, महात्माओं का जीवन चरित्र एवम् उपदेश, प्राकृतिक चिकित्सा, (आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी द्वारा इलाज) महिलाओं के जीवन सुधार के लिये, बालकों के संस्कार सुधारने के लिये, अनुरूप लेख, कहानी, धारावाहिक उपन्यास, गीत, कविता, निबंध, प्रवास वर्णन, नाटक, धर्मकथादि रचनायें स्वीकारकी जाती हैं कागजकी एक ओर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखी हुई रचनायें भेजनी चाहिये, अश्लील विषयोंकी रचनायें स्वीकार नहीं की जायेंगी।

**विशेषः**—अन्यत्र प्रकाशित रचनायें रामतीर्थ मासिक के लिये न भेजें केवल स्वीकृत रचनाओं की सूचना एक मास बाद दी जाती है, अस्वीकृत रचना को वापस मंगाने वाले लेखकों को पोस्टल टिकिट साथ में अवश्य भेजना चाहिए, स्वीकृत रचनायें समयानुकूल छपेंगी, लेखकों को चाहिये कि वे इस विषय में वारंवार पत्र लिखने का कष्ट न लें, रचना प्रकाशित होने के बाद, रचना जिसमें छपी होगी वह मासिक अंक, और आश्रम की ओर से निर्धारित किया गया पुरष्कार भेजा जायेगा, रचना में लिया गया कोई द्रष्टांत हो तो वह किस ग्रन्थ के आधार से लिया गया है य अवश्य लिखें। अन्य पत्र पत्रिकाओंमें रामतीर्थ मासिककी रचना अन्य भाषाओं में अनुवादित की इच्छावालोंको रामतीर्थ मासिकके संपादकसे लिखित अनुमंति लेना आवश्यक है

रचना भेजनेका पता: निराला मुद्रक १४०, आर्थर रोड बम्बई ११.

# ग्राहकोंसे

१. 'रामतीर्थ' अंग्रेजी मासकी पहली तारीख को प्रकाशित होकर ग्राहकों को डाक से भेजा जाता है।

२. वार्षिक शुल्क रु. ५ विदेशों के लिए १५ शिलिंग अथवा रु. ७॥ है।

३. रामतीर्थ का नया वर्ष अप्रैल से शुरू होकर मार्च में पूरा होता है, परन्तु ग्राहक किसी भी मास से बन सकते हैं।

४. ग्राहकों को अंक विशेष देखभाल से भेजा जाता है तिस पर भी यदि किसी को १५ तारीख तक अंक न मिले तो अपने डाक घर से पूछिए वहाँ से जो उत्तर मिले उसे हमारे पास भेज दीजिए ताकि उस पर गौर किया जावे।

५. पताबदलने के लिए कमसे कम १५ दिन पूर्व सूचना साफ साफ अक्षरों में लिखे पतेके साथ मिलनी चाहिए। वह भी अधिक समय के लिए पता बदलना हो तभी हमें लिखें।

६. ६५ न० पै० मिलने पर ही नमूना अंक भेजा जाता है परदेशवालों को एक शिलिंग भेजना चाहिए।

७. पत्र व्यवहार करते समय ग्राहक अपना पता तथा ग्राहक संख्या अवश्य लिखें।

८. वार्षिक शुल्क मनीआर्डर से भेजना लाभदायक है क्योंकि वी० पी० से एक तो रजिस्ट्री खर्च लगकर ६ रु० पड़ेगा दूसरे देरी से अंक मिलेगा तथा विदेश में वी० पी० तो होती ही नहीं।

९. रामतीर्थ के साथ पुस्तकें आदि नहीं भेजी जातीं।

१०. व्यवस्था सम्बन्धी समस्त पत्र व्यवहार निम्न पतेपर करें।

व्यवस्थापक

रामतीर्थ मासिक, श्रीरामतीर्थ योगाश्रम, दाद

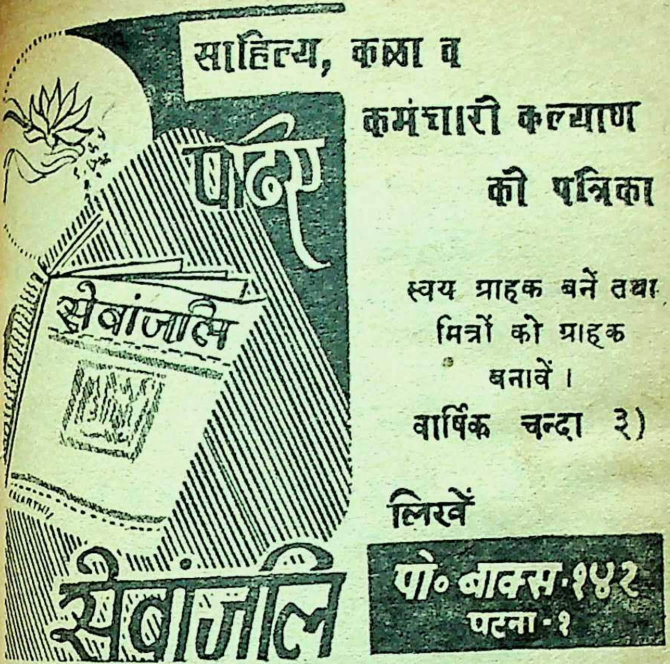

साहित्य, कला व
कर्मचारी कल्याण
की पत्रिका

पढ़िए

सेवांजलि

स्वयं ग्राहक बनें तथा
मित्रों को ग्राहक
बनावें।
वार्षिक चन्दा ३)

लिखें
पो० बाक्स १५२
पटना-१

धर्म + संस्कृति + उपासना और ज्ञान का
प्रचारक मराठी मासिक

श्रीधर संदेश

वार्षिक चंदा रु. ४) ( वी. पी. की पद्धत बंद है।)

संदेश कार्यालय
७२२, सुन्दर नारायण, नासिक शहर

हँसोड़

हास्य व्यंग प्रधान सचित्र मासिक
एक प्रति ४० पैसे : वार्षिक ४-५०
हँसोड़ पढ़िये और
ठहाका लगाइये
पूरे परिवार का
प्यारा "हंसोड़"

एक प्रति ४० पैसे : वार्षिक ४ रु. ५० न. पै.
हंसोड़ कार्यालय, हिन्दपीढ़ी, राँची

तुलसीदल

* अमृतबिन्दु
* आध्यात्मिक दीप
* संजीवनी बूटी

हाँ,
सुरुचिपूर्ण
स्थायी
सत्साहित्य
के
श्रेष्ठ
प्रकाशन
'तुलसीदल'
को
स्मरण
रखिये।

* 'तुलसीदल' अमृत बिन्दु है। जीवनसे निराश, जगतसे क्षुब्ध तथा जन जन के प्रति शंकित मानवको इस अमृत बिन्दु की अपेक्षा है।

* 'तुलसीदल' आध्यात्मिक दीप है। भौतिकता और स्वार्थ परता के इस अधकार पूर्ण युगमें दिग्भ्रान्त जनजीवन के लिए इस आध्यात्मिक दीपकी आवश्यकता है।

* 'तुलसीदल' संजीवनी बूटी है युगके पापताप एवं घोर अनाचारसे अस्त म्रियमाण मानवता के लिए यह संजीवनी बूटी चनिवार्य है।

व्यवस्थापक-तुलसीदल मासिक
मानसप्रेस इब्राहिमपुरा भोपाल म. प्र.

नैतिक एवं सांस्कृतिक विचारों का श्रेष्ठ मासिक

ज्ञान यज्ञ

० आध्यात्मिकता का सही--सही स्वरूप देने वाला । ० जीवन-निर्माण में सहायक । ० वैयक्तिक दोष एवं सामाजिक कुरीतियों को उखाड़ फेंकने में तत्पर । ० आकर्षक कलेवर । ० शिक्षाप्रद लेख ० मर्म-स्पर्शी साहित्य से परिपूर्ण ।

वार्षिक मूल्य आज ही ३)रु. भेजकर ग्राहक बनिए। नमूने के लिये ३१ पै. के टिकिट भेजें ।

पता—'ज्ञान-यज्ञ' मासिक
युग निर्माण प्रेस, बिलासपुर (म. प्र.)

प्राकृतिक चिकित्सा-साहित्य का अग्रदूत

'प्राकृतिक जीवन'

प्रधान सम्पादक : डा० के० आर० दिलकश
संयुक्त सम्पादक : डा० गंगाप्रसाद गौड़ 'नाहर'
एक प्रति—३७ नये पैसे : वार्षिक ४) रुपये मात्र

स्वास्थ्य सम्बन्धी सुन्दर और उपयोगी साहित्य के साथ अपने प्रश्नों के उत्तर लें । शंकाओं का समाधान करावें तथा अपने स्वास्थ्य को उन्नत करने, नीरोग रखने तथा दीर्घजीवी बनने के उपाय जानें । आज ही ४) रुपया भेजकर ग्राहक बन जाइये और मौका न चूकिये । नमूने की प्रति मुफ्त मंगावें ।

कार्यालय—
आरोग्य निकेतन, डालीगंज
लखनऊ (उ. प्र.)

भद्रकर्णेभिः श्रणुयाम देवा भद्र पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितंयदायुः ॥

सम्पादक - रामतीर्थ योगीराज श्री उमेशचन्द्रजी

वर्ष ५ ] दिसम्बर १९६४ [ संख्या १

# वैदिक-प्रार्थना

तस्याः समुद्रा अधि वि क्षरन्ति तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः।
ततः क्षरत्यक्षरं तद् विश्वमुप जीवति ।

ऋ. वे. आ. सू. १-१६४-४२

भवार्थ—मध्यमा वाणी के अनन्तर वैखरी वाणी से मुख द्वारा वाणी के महान् प्रवाह प्रकट हो रहे हैं। उस वाणी के प्रकट स्वरूप से चारों दिशाओं में व्याप्त वाणी के उपासक मानव अपने जीवन में प्रेरणा प्राप्त करते हैं। उस मूल कारण प्रणव-अक्षर अविनाशी से अक्षर-वर्ण प्रकट होते हैं और उसी से विश्व को जीवन मिलता रहता है।

(१७४) कायदा-कानून जनता के जीवन सुधारने का हेतु होना चाहिये । जबतक जनता का चरितार्थ (आचार, विचार, रहन-सहन, खान-पान) सुधारेंगे नहीं तबतक कायदा-कानून से जनता का जीवन सुधरेगा नहीं । जैसे गुनाह, अपराध जनता में बढ़ते जायेंगे वैसे २ कायदा-कानून परिवर्तन तथा कड़क नियम बनाने पड़ेंगे । वर्तमानकाल की परिस्थितियों से अवगत होता है कि दिन ब दिन अपराध, चरितार्थ अधिक संख्या में बढ़ते जा रहे हैं । पुत्र--माता पिता तथा पालकों के साथ, शिष्य गुरु के सामने, पति--पत्नी के साथ, पत्नी--पति के साथ, कर्मचारी मालिक के साथ, मालिक--कर्मचारियों के साथ, भागीदार भागीदार के साथ, रिस्तेदार रिस्तेदार के साथ, मित्र-मित्र के साथ दगाबाजी, छल, कपट, विरोध, दुश्मनी मारा--मारी, चाल--बाजी, अपमानीत कृत्य, निन्दनीय गालियां, असह्य कर्म कर रहे हैं । समाज एवं देश के लिये यह दुष्कृत्यमय व्यवहार हानिप्रद होगा । देश अवनति के गड्ढे में चला जायगा ।

# सिद्धासन

(उमेश योग दर्शन ग्रंथ से)

बायें पैर को घुटने से मोड़कर गुदा और अण्डकोश के बीच में स्थापित करें। फिर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसके ऊपरी भाग को पिण्डलियों पर रखें। शरीर को बिलकुल सीधा रखें। आंखों को चाहे तो खुला रखें, चाहे बन्द। अधिक देरतक करना हो तो बन्द रखना ही उचित है। मेरुदण्ड को सीधा रखें। लिंगमूल (कंधस्थान) पर एड़ी का दबाव रखना चाहिये।

## समय

कम से कम आध घण्टे और अधिक से अधिक ३ घण्टे तक सिद्धासन पर बैठ सकते हैं।

## लाभ

सिद्धासन का अभ्यास सभी कर सकते हैं। यह सब के लिये समान रूप से अनुकूल है। परन्तु गृहस्थाश्रमी लोग आध घण्टे से अधिक एक आसन पर न बैठें। इसका कारण यह है कि वीर्यवाहिनी नलिपर एड़ी का दबाव पड़ने से वीर्य हृष्ट-पुष्ट होता है; परन्तु वीर्यवाहिनी नाड़ी में कुछ अंशों में निर्बलता आ जाने की सम्भावना है। मंत्र-जप, पूजा-पाठ, संध्या-विधि और धारणा, ध्यान तथा समाधि की साधना के समय सिद्धासन पर बैठ सकते हैं। इस आसन से सिद्धि प्राप्त होती है और मुद्रा का अभ्यास भी किया जाता है।

# मंत्रयोग और कुंडलिनी

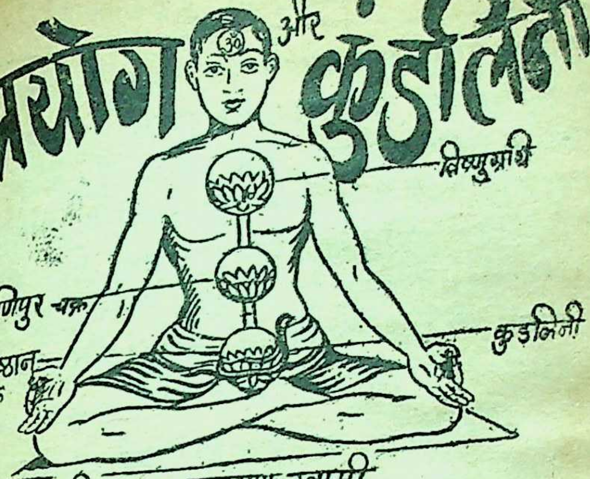

लेखक

वीतराग श्री १०८, नारायण स्वामी

योग शब्द का अभिप्राय जड़ प्रकृति का चेतन आत्म में विलय कर देने का है। इस लिये प्रकृति एवं पुरुष के एकात्म प्रवाह को योग शब्द कहा जाता है। हठ योग, मंत्र योग, लय योग तथा राज योग उक्त प्रकार से योग के चार भेद योग शास्त्र में वर्णित हैं। हठ योग द्वारा शरीर का मल कफ, वात, पित का परिमार्जन, मन्त्र योग द्वारा असंख्य चित्त वासनाओं का अपाकरण, लय योग द्वारा बुद्धि की एकाग्रता एवं राज योग द्वारा आत्म साक्षात किया जाता है। अतः प्रत्येक साधक के लिये राज योग के समान इतर सब योग भी उपादेय हैं।

उक्त योग चतुष्टय में से किसी एक योग हो भी आत्मा का साक्षात् सम्भव है। परन्तु इन सब योग मार्ग में से मंत्र योग ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा आत्मा एवं पर-

आत्मा का एकात्मज्ञान उत्पन्न हो सकता है। उक्त योग से मानव ऐसी विद्या का साक्षात् कर सकता है जिसका उद्देश्य पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत किया जाता है। वैदिक काल के इतिहास से, आज के युग पर्यन्त मंत्रविद्या का विकास सदैव उज्वलित रहा। परन्तु मध्य युग में उसका कुछ अभाव सा भी प्रतीत था। उपरान्त कुछ विद्वानों ने उक्त विद्या को केवल तंत्र शास्त्रों की शैली बताते हुये, उसकी ओर उतना ध्यान नहीं दिया जितना कि देना चाहिये था।

सच कहा जाय तो यह विद्या उपनिषद् का सार गर्भित है और इसी विद्या से समूचे विश्व तथा दृश्यमान विश्व से अतीत अतिन्द्रिय तत्व का ज्ञान भी सम्भव है।

> द्वे विद्ये वेदितव्ये इति हस्म यद्ब्रह्मविदो वदन्ति,
> परा चैवापरा च ॥ मु. उ. १.५॥

इस मानव संसार में मनुष्य मात्र के लिये ज्ञातव्य दो ही विद्या हैं, जिसे ब्रह्म ज्ञानी महात्मा सदैव प्रचार किया करते हैं। जैसे श्रेय-प्रेय, विद्या-अविद्या, विषयक ज्ञान उपनिषदों में पाया जाता है। वैसे ही परा और अपरा भी हैं। पराविद्या से प्रत्यक् चैतन्य, जराजन्म विकार रहित आत्मा का साक्षात और अपरा से, आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, मन, बुद्धि एवं अहंकार का ज्ञान होता है। अथवा परा विद्या का परिणाम श्रेय और इसकी उपासना विद्या से तथा अपरा-विद्या का परिणाम प्रेय, इसकी उपासना अविद्या से की जाती है।

उक्त दोनों विद्याकी समापत्ति एक अक्षर तत्व ओंकार में ही सम्भव है। 'सर्वमोंकार एव' इस न्याय से केवल ओंकार के ज्ञान से ही सम्पूर्ण स्थूल सूक्ष्म पदार्थों का तात्विक ज्ञान हो सकता है। यद्यपि 'सर्वं ह्येतत्ब्रह्म' उपनिषद् के कथनानुसार संपूर्ण जड़ चेतन पदार्थ ही परमात्मा का स्वरूप है तथापि इसके समझने वास्ते चार भेद बतलाये गये हैं। जिन में प्रथम तीन भेद ( अधि मात्र ) जड़ प्रकृति के ज्ञान में प्रयुक्त होते हैं और चौथा मात्र व्यवहारातीत तत्व के परिज्ञान में उपादेय है।

अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपंचोपशमः
शिवोऽद्वैत एवमोंकार, ॥ मा. उ. १२ ॥

कहने का आशय यह है कि, अपरा विद्या के द्योतक अधिमात्र विषयक ओंकार के तीनों पाद और पराविद्या के द्योतक अमात्र विषयक ओंकार का चौथा पाद, उभय विध ज्ञान एक ओंकार से सम्भव है। इसलिए ओंकार को ही परमात्मा का स्वरूप बतलाया गया है यद्यपि उपनिषद् की दृष्टि से परमात्मा का स्वरूप बाणी के वर्णन का विषय नहीं है, तथापि उसकी व्याख्या क्यों की गई है ? इस प्रसंग को एक पद्धति के रूप में जानना परमावश्यक है। यह पद्धति है:—

## —ओंकार की उपासना—

किसी भी ज्ञात विषय को जाने बिना उसका जप अथवा ध्यान करना साधक के लिये उतना फलप्रद नहीं हो सकता जितना कि उसके रहस्य को समझ लेने के उपरान्त मिलता

है। यद्यपि परमात्मा का रूप नहीं है, तथापि उसका मा ओंकार है। उक्त ओंकार के दो भाग हैं। जिसका एक भा समूचे संसार के रूप में तथा दूसरा भाग प्रपंचातीत के रू में अर्थात् अवांग मनसगोचर के रूपमें व्यापित है।

ओंकार के जिस भागमें संपुर्ण जड़प्रकृतिक त्रिगुणा विश्व व्याप्त है उसकी उपासना (अविद्या) अधिमात्र के रू से तथा जिस भाग में चैतन्य पूर्णतत्व परमात्मा का रूप है, उसकी उपासना (विद्या) अमात्र के रूप से की जाती है। साथ उक्त अधिमात्र की तीन अवस्था भी हैं। जिसमें जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति के द्वारा क्रमशः स्थूल-सूक्ष्म एवं कारण प्रपंच में जीवात्मा का संचरण होता है।—अस्तु, उ अधिमात्र का स्वरूप क्रमशः अ,कार–उ,कार एवं मकार के रूप में प्रसारित है। साधक जिस अवस्था में उक्त ओंकार की प्रथम मात्रा, केवल अ-कार को जीवात्मा की जागृत अवस्था के साथ मिलाकर उपासना करता है अर्थात् अकार से अभि जागृत अवस्था को समझते हुये उसपर मनको एकाग्र करता है, तब उसे एहिक जगत में महान् ख्याति मिलती है। उस साधक का जीवन भी तपसे निर्मल, ब्रह्मचर्य से स्वस्थ एवं श्रद्धा से सौम्य हो संसार की संपूर्ण भूतिओं का उपभोग करता है।

एवं प्रकार से ओंकार की दूसरी मात्रा उकार का भी महत्व है। परन्तु इसकी उपासना सूक्ष्म उपायों से की जाती है। जब साधक संपूर्ण स्थूल प्रकृतिक विश्व से अपना मन हटाकर सूक्ष्मता की ओर अपने मनको कर्षित करता है, त

उसे एकान्तिक जगत् का दर्शन होता है। उक्त जगत के संपूर्ण दृश्य वर्ग भी मनके द्वारा ही संकल्पित होते हैं, अतः इनका संसर्ग स्वप्न अवस्था के सदृश्य ही होता है। जिस अवस्था में साधक का मन इस प्रविविक्त अवस्था के साथ मकार को अभिन्न रूप से समझ लेता है, अर्थात् इनको एक समझते हुये उपासना करता है तब उसे एहिक समृद्धि के साथ आमुष्णिक आनन्द भी उपलब्ध होते हैं। यानी वह इस लोक में वरीष्ठ ज्ञानी जनों से सम्मानित होकर सोमलोक में चिरकाल पर्यन्त अनुमोदित होता है। इस अवस्था में योगी को अनेक मानसिक सिद्धियां भी होती हैं।

यदि साधक ॐकार की संपूर्ण मात्राओं का आत्माके साथ एकात्म-तादात्म करते हुये उनकी अभिन्न रूपेण उपासना करता है,तो वह तेजोमय सवितामें प्रवेश करते हुये ब्रह्मलोक में जाता है, और वहां समष्टि ब्रह्माण्ड के संपूर्ण ऐश्वर्यों से अनुमोदित होकर अन्त में मोक्ष लाभ करता है। इस प्रकार से ध्यान करने वाले योगी को फिर से जन्म मरण के चक्र में नहीं आना पड़ता, अपितु प्रकृति से परे जो दिव्य जगत् हैं, जहां तेजोमय आत्मायें रहा करते हैं, वहीं पर प्रतिष्ठित हो सदाके लिये रहना पड़ता है। ओंकार की यह चरम उपासना आत्मा से ही की जाती है देह अथवा मन से नहीं।

अब संपूर्ण मानव के लिये अभ्युदयप्रद ओंकार के अधिमात्र भाग का निरूपण हुआ, जिन साधकों के मन में संसार वासनाओं का बीज जमा हुआ है, उनके लिये यही मार्ग उचित है। क्योंकि उन्हें प्राकृतिक जगत् में रहकर ही

समृद्धि लाभ करती है। परन्तु जिनका मन बहुजन्यकृत भूरि पुण्य पुंज के प्रभाव से निष्काम हो चुका है, ऐसे साधक कदापि उक्त जड़ प्रकृतिक नश्वर प्रपंच के सुखों में तन्मय न होंगे, अपितु उन्हें ऐसी जिज्ञासा सदैव बनी रहेगी कि, इस गुणमय जगत से परे पहुंचकर, अर्थात् तुरीयातीतपद में स्थित हो परमानन्द महा समुद्र में निमज्जित होने का क्या उपाय है? अखण्ड निर्विकल्प समाधि द्वारा अनुभूत परमात्मा का अपरोक्ष अनुभव किन उपायों से सम्भव है?

सच कहा जाय तो निष्काम आत्मानुरागी साधक के मन में ऐसी जिज्ञासा उत्पन्न होना कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है। परन्तु उक्त जिज्ञासा का समाधान केवल ओंकार का चौथा तुरीय (अमात्र) पाद के विवेक से ही सम्भव है इतर उपायों से नहीं। अमात्र ही बिन्दु है और उक्त बिन्दु के विवेक हो जाने पर ही साधक सिद्ध हो सकता है।

इस पर स्वयं गौड़पादाचार्य भी कहते हैं कि:—

अमात्रोऽनन्त मात्रश्च प्रपंचोपशमं शिव।
ओंकारं विदितं येन समुनिर्नेतरो जनः ॥०॥

सारांश यह है ॐकार का तुरीपद बिन्दु ही अमात्र है और इसी अमात्रसे अनन्त मात्राओं का उद्भव होता है, अतः जिस साधक ने अपने अनुभव से उक्त अमात्र को संपूर्ण जड़ चेतन पदार्थों में व्याप्त समझा है वही मुनि अर्थात् मन्त्रद्रष्टा मनिषि हो सकता है दूसरे नहीं। अब साधक को इस पर विचार करना चाहिये कि वह बिन्दु जिसे अमात्र कहा गया

(शेष पृष्ठ १९: पर)

# मृत्युलोकका अमृत तक्र

लेखक
डॉ. गंगाप्रसाद गौड
नाहर एन. डी.

गुण-धर्म के लिहाज से दूध उत्तम है, दही, दूध से भी उत्तम, और तक्र, दूध, दही—दोनों से उत्तम। अर्थात् सर्वोत्तम। दूध को जमाकर दही बनाया जाता है। उस दही को मथकर उसका मक्खन अलग कर लेने के बाद जो तरल पेय बच रहता है, उसी को तक्र, मठा, मट्ठा, छाँछ अथवा मही कहते हैं। पंजाब में तक्र को लस्सी कहते हैं, तथा अमेरिका एवं योरोप के देशों में तक्र को लैक्टिक और जोघर्ट आदि कई नामों से पुकारते हैं।

तक्र को दूध अथवा दही का उत्कृष्ट रूप मानना चाहिये। वैद्यक शास्त्रों में तक्र की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई है। वहां तक्र को मृत्युलोक का अमृत कहा गया है। यथाः—

'न तक्रसेवी व्यथते कदाचित,
न तक्र दग्धा प्रभवन्ति. रोगाः।

यथा सुराणाममृतं सुपेयम्,
तथा नराणाम् भुवितक्र माहुः ॥,

अर्थात् तक्रसेवी कभी रोगी नहीं होता। जो रोग तक्र के सेवन से एक बार नष्ट हो जाते हैं, वे फिर पुनः उत्पन्न नहीं होते। जिस प्रकार देवलोक में अमृत सर्वोत्तम पेय पदार्थ माना जाता है, उसी प्रकार मनुष्यों के लिये पृथ्वी पर तक्र है। और भीः—

'तक्र शक्रस्य दुर्लभं'

अर्थात्, तक्र इन्द्रादि देवों को भी दुर्लभ है। एक तरह से यह तक्र अमृत से भी बढ़ाचढ़ा है क्योंकि अमृत का गुण तो मनुष्य को मात्र अमर कर देता है, पर तक्र मनुष्य को चिरयौवन, दीर्घायु तथा अक्षय आरोग्य—तीन-तीन चीजें प्रदान करता है।

एक कविने तक्र के विषय में उसके गुणों का बखान करते हुये लिखा है कि कैलास में यदि तक्र उपलब्ध होता तो भगवान् शंकर नीलकण्ठ न हुये होते। मतलब यह कि गरल, जिसको पान कर लेने के बाद मृत्यु-भय के कारण उन्होंने उसे गले के नीचे न जाने दिया और वहीं रोक रखा, वह घोंट गये होते और गले में ही उसे न रोक लेते और बाद को उसके भयंकर प्रभाव को तक्र द्वारा शमन कर देते। यदि बैकुण्ठ में तक्र होता तो विष्णु भगवान् श्यामवर्ण न होते। तात्पर्य यह कि तक्र का सेवन करके वह अपनी श्यामता को गौरवर्ण में बदल देते। इसी प्रकार यदि स्वर्ग में तक्र होता

तो उसके द्वारा इन्द्र का दुरभगता-दोष, चन्द्रमा का क्षय रोग, तथा गणपति का वृहतोदर-दोष कभी का दूर हो गया होता। इन अतिशयोक्तियों को दर्शाने का मतलब कवि का यही है कि तक्र इस संसार में एक असाधारण वस्तु है जिसमें इतने सारे गुण भरे पड़े हैं कि जिसकी वजह से यदि उसे अमृत से भी बढ़कर माना जाय तो अतिशयोक्ति न होगी।

भारत के गांव में तक्र का प्रचलन अति प्राचीन काल से भलीभांति रहा है, और इस आधुनिक कहे जानेवाले युग में भी, जबकि तक्र और शर्बत का स्थान चाय, काफी आदि कृत्रिम एवं दूषित पेय पदार्थों ने ले लिया है, हमारे ग्रामीण भाई आज भी अपने अतिथियों का सत्कार दूध और तक्र से ही करते हैं। भारत में तक्र का सबसे अधिक प्रयोग पंजाब में होता है। उत्तर प्रदेश के पूर्वी इलाकों में भी इसका काफी प्रचलन है।

## तक्र के स्वास्थ्यवर्द्धक गुण

आज भारत के ही नहीं अपितु संसार के सभी विद्वान् स्वास्थ्य विशेषज्ञ गम्भीर गवेषणा के बाद इस तथ्य पर एक मत हैं कि तक्र ही वह खाद्य पदार्थ है जिसका सेवन कर मनुष्य सम्यक्रूप से उत्तम स्वास्थ्य एवं लम्बी आयु प्राप्त कर सकता है। इसके प्रथम पाश्चात्य देश वाले तक्र के आश्चर्यजनक गुणों से केवल अनभिज्ञ ही नहीं थे बल्कि इसे घृणा की दृष्टि से भी देखते थे। किन्तु जब से पेरिस के 'पास्तियर इन्स्टीट्यूट' के भुतपूर्व प्रधानाध्यक्ष स्वर्गीय

डाक्टर मेच्चिनकाफ ने अपने जीवन पर्यन्त दीर्घ गवेषणा तथा अन्वेषण के बाद इस सत्य का आविष्कार करके नोबेल पुरस्कार प्राप्त किया कि मानव-शरीर में जितने भी रोग उत्पन्न होते हैं, उन सबका मूल कारण मनुष्य की पाकस्थली में जमा होते रहनेवाले कीटाणु ही हैं, और उन कीटाणुओं के विनाश के लिये उक्त विद्वान् डाक्टर ने जिस एकमात्र अमोघ औषधि का आविष्कार किया है वह है लैक्टिक एसिड जो तक्र में पूर्ण मात्रा में पाया जाता है। तब से युरोपवाले तक्र से घृणा करने के बदले, उससे अतिशय प्रेम करने लगे हैं। इतना ही नहीं, वहां अब तक्र बनाने के सैकड़ों कारखाने भी खुल गये हैं जिनमें हजारों मन दही और तक्र प्रतिदिन तैय्यार होता है, और जिसे सभी युरोपियन बड़े शौक से खाते पीते हैं, और लाभ उठाते हैं। मिश्र और रूस में प्राचीन काल से तक्र, भोजन का एक जरूरी अंग समझा जाता है।

डाक्टरों ने पता लगाया है कि संसार में जिन-जिन देशों के लोग दीर्घजीवी रहे हैं या हैं, उन देशों के निवासियों के उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु का मूल कारण केवल तक्र का विशेष रूप से सेवन ही है। बलगेरिया की पिछली जनगणना से पता लगा है कि वहां ३५० व्यक्ति ऐसे हैं जिनकी आयु इस समय १०० वर्ष से भी ऊपर है। वहां के लोगों के दीर्घजीवी होने का कारण यही बताया गया है कि वे लोग मठा या तक्र अधिक सेवन करते हैं।

प्रयोगों से जाना गया है कि तक्र का सेवन प्रतिदिन भोजनोपरांत करने से मनुष्य कभी बीमार नहीं पड़ता

और उसकी शारीरिक स्फूर्ति तथा मस्तिष्क सम्बन्धी चेतना-शक्ति मृत्यु पर्यन्त पूर्णमात्रा में विद्यमान रहती है। बात यह है कि दूध और दही की भांति तक्र में चिकनाई का अंश नहीं रहता। इसलिये दूध, दही की अपेक्षा तक्र अधिक हल्का, पाचक और गुणकारी होता है। चिकनाई निकल जाने से तक्र की गरिष्ठता तो कम हो जाती है, परन्तु बाकी सब गुणों में वह दही, दूध के समान ही होता है। इसलिये यह उत्तम स्वास्थ्य के लिये अधिक अनुकूल होता है।

गाय के दूध का तक्र अधिक गुणकारी होता। प्राचीन भारत के लोग जो लम्बी-लम्बी उमरें पाते थे, उसका प्रधान कारण यही था कि उस जमाने में भारत में दूध, दही की नदियां बहती थीं और लोग छक कर तक्र का व्यवहार करते थे, फलतः बलिष्ठ और दीर्घजीवी होते थे।

कहा जाता है, संसार के बड़े देशों, अमेरिका और रूस आदि द्वारा जो आजकल अणुबमों के परीक्षण हो रहे हैं और उसके फलस्वरूप मानव के स्वास्थ्य पर जो असाधारण कुप्रभाव पड़ रहे हैं, या आगे पड़ेंगे, उनका कोई इलाज नहीं, और यदि कोई इलाज है तो वह नियमित रूप से तक्र का सेवन ही है।

तक्र में एक प्रशंसनीय गुण यह भी है कि इसको अधिक पी लेने से भी यह कभी हानि नहीं पहुंचाता, जबकि अन्य पेय पदार्थों में यह बात नहीं होती। तक्र में शतप्रतिशत क्षारपन (अल्कलीन) होता है, इसीलिये यह शरीर के लिये

स्वास्थ्यवर्धक है।

आयुर्वेद के मतानुसार तक्र स्वादिष्ट, कसैला, खट्टा, हल्का, उष्णवीर्य, अग्निदीपक, हितकारी, मधुर, तथा संग्रहणी, वातशूल, आमातिसार, हैजा, वायु से ज्वर, पीलिया, प्रमेह, वायुगोला, उदर-विकार, बवासीर, भोजन के पश्चात् की उदर पीड़ा, कै, प्यास, अरुचि, सूजन, चर्बी, विष, कफ, वात, मूत्रविकार, साधारण ज्वर एवं तेल अथवा घृत से हुये अजीर्ण को नष्ट करता है। यह त्रिदोष नाशक है। अपने खट्टेपन से वायु का, मधुरता से पित्त का, तथा कसैलेपन से कफ को नाश करता है। यूनान के हकीम तक्र को यकृत और आमाशय तथा विषाक्त रक्त के रोगों में सफलता के साथ प्रयोग करते थे।

लू के दिनों में जब मुँह सूख रहा हो तक्र का एक गिलास नेत्रों को तरावट और कलेजे को ठंडक पहुंचाता है। इसके सेवन से बाल असमय में सफेद नहीं होते। बदहजमी, तिल्ली, पेचिश आदि पेट के सभी रोगों में तक्र जादू का असर दिखाता है।

यदि छोटे बच्चों को तक्र रोज पिलाया जाय तो उनके दांत आसानी से निकलें और वे सभी रोगों से सुरक्षित रहें। तक्र से मोटापा भी कम होता है।

तक्र का सीधा प्रभाव शरीर की रक्तवाहिनी शिराओं पर होता है। इन शिराओं और शरीर के संधि भागों में एकत्र विजातीय द्रव्य ( विष ) को तक्र मूत्र मार्ग द्वारा बड़ी सरलता

से बाहर निकाल देता है। इसका प्रभाव मूत्र-पिंड पर भी होता है जिससे मूत्र खुलकर और साफ आने लगता है। इस तरह शरीर के भीतर साफ-सफाई होते रहने के कारण मनुष्य पर वृद्धावस्था का आक्रमण असमय में नहीं होने पाता। क्योंकि गुर्दों द्वारा शरीर की सफाई होती रहती है। तक्र के सेवन से आमाशय भी सशक्त और निर्मल बना रहता है जिससे भूख खूब खुलकर लगती है और जो खाया जाता है वह पच जाता है।

वात और कफ के समस्त विकारों में तक्र से उत्तम अन्य कोई औषधि नहीं है। वायुजनित रोग ८० प्रकार के और कफ जनित २० प्रकार के होते हैं। ये भी सभी रोग तक्र के सेवन से मन्त्रवत् दूर हो जाते हैं और तत्पश्चात् जीवन भर कभी नहीं होते।

तक्र में कैलशियम, मैगनेशियम; सोडियम, फास्फोरस, क्लोरोडीन तथा सलफर आदि खनिज लवण अच्छी मात्रा में होते हैं। ये सब तत्त्व मांस और अस्थियों को पोषण देने वाले होते हैं। जिस दूध से तक्र बनता है उसकी समस्त प्रोटीन तक्र में आ जाती है। इसलिये तक्र को शरीर की पुष्टता का एक जबर्दस्त साधन माना गया है।

## तक्र के रोगनाशक गुण

यक्ष्मा तथा अन्य ज्वर—यक्ष्मा में तक्र अमृत का काम करता है। तक्र के सेवन से सभी प्रकार के ज्वर आसानी से दूर हो जाते हैं। मलेरिया, चौथिया तथा बारी के ज्वर सभी तक्र के सेवन से भाग जाते हैं।

**संग्रहणी**—संग्रहणी एक बड़ी दुखदायी बीमारी है। इससे रोगी के अंग-अंग ढीले पड़ जाते हैं। कभी पेचिश, कभी हरे-पीले दस्त प्रारम्भ होकर कमजोरी बढ़ने लगती है। मूत्र विकार हो जाता है। वायु का निस्सरण नहीं हो पाता है। पेट में अफरा हो जाता है। जो कुछ खाया जाता है। इन दशाओं में तक्र से बड़ा उपकार होता है इस रोग में तक्र में हींग, जीरा और नमक मिलाकर सेवन करना चाहिये। ४० रोज तक केवल तक्र पीकर रहने से पुरानी से पुरानी संग्रहणी भी दूर हो जाती है।

**बवासीर**—इस रोग में भी तक्र के सेवन से अवश्य लाभ होता है।

**काँच का चूर्ण खा लेने पर**— यदि कोई काँच का चूर्ण खा ले तो उसे तुरन्त गाय के दूध का तक्र दिला देना चाहिये। ऐसा करने से उससे उत्पन्न उपद्रव शांत हो जाते हैं।

**पतले दस्त में**—दिन में दो-चार पतले दस्त आते हों, अपच हो, पेट खराब हो तो गाय के दूध के मट्ठे में भुना हुआ सफेद जीरा पीस कर मिलावे और उसे सेवन करें। अवश्य लाभ होगा।

**शरीर की दाह**—गाय के दूध के तक्र में स्वच्छ वस्त्र भिगोकर शरीर पर मलने से शरीर की दाह मिटती है, साथ ही त्वचा का वर्ण भी निखरता है।

आधा शीशी—आधे सिर का दर्द अत्यन्त दुखदाई होता है। इसके लिये सूर्योदय से पूर्व तीन-चार दिन तक लगातार तक्र के साथ मिश्री मिले चावल खाने चाहियें।

मूत्र की जलन—तक्र में तीन माशा शुद्ध गन्धक मिलाकर पीने से मूत्र की जलन शांत होती है और रुक-रुककर मूत्र आना भी ठीक हो जाता है, योनिरोगों में भी इस नुस्खे से लाभ होता है।

मूत्र कृच्छता—इस रोग में गुड़ के साथ तक्र सेवन करना चाहिये।

भारतीय युवक-युवतियों का प्रिय मासिक पत्र

युवक

सम्पूर्ण भारत के घरों, विद्यालयों एवं पुस्तकालयों की शोभा बढ़ाता है। इसमें ज्ञानवर्द्धक लेख, सुरुचिपूर्ण कहानियाँ, भावपूर्ण कविताएँ, स्त्रियों, बालकों, सिनेमा तथा स्वास्थ्य-सम्बन्धी अनेक स्तम्भ उपयोगी एवं पढ़ने योग्य हैं। आप भी ग्राहक बन 'युवक' की सेवाओं से लाभ उठाइये। वर्ष भर में चार उत्तम विशेषांक पढ़िये।

वार्षिक मूल्य ४ रु० ५० पै. एक प्रति का ४० पै.
नमूनाँक के लिए ४० पै. का डाक टिकट भेजिये।

पता :—
'युवक' मासिक पत्र
जीवनी मंडी, आगरा

(प्राकृतिक चिकित्सा का चमत्कार)

# एक्जीमा

लेखक
डॉ. जे. पी. वर्मा
डी. एन. एच. एम. डी.

एकजीमा को हिन्दी भाषा में उकवत कहते हैं। यह एक प्रकार का चर्म रोग है। यह शरीर के किसी एक अंग पर अथवा समस्त शरीर पर होता है। ग्रसित अंग की त्वचा मोटी हो जाती है। कभी कभी रुपए के बराबर गोल गोल धब्बे पड़ जाते हैं और मध्य में छोटे २ दाने पड़ जाते हैं तथा पानी बहने लगता है। यह आधुनिक प्रचलित चिकित्सा प्रणाली से आरोग्य नहीं होता। कुछ समय के लिये दब जाता है और फिर प्रकाश में आता है, बल्कि दवा के प्रयोग से दूसरे रोग भी जन्म पाते हैं।

प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली में यह कोई रोग नहीं अपितु लक्षण मात्र है। रोग का कारण है शरीर में विष का संचय होना। शरीर से विष निष्कासन के रास्ते नाक, त्वचा फेफड़ा, गुदा एवं शिश्न हैं। अशुद्ध वायु, पसीनादि त्वचा

से न निकलना, प्रकाश का अभाव, पानी उचित मात्रा में न पीना, कब्ज का रहना।

वातावरण के साथ साथ भोजन का भी बड़ा महत्व है। भोजन में क्षारीय पदार्थों का कम लेना, अम्ल पदार्थों का अधिक सेवन करना, क्योंकि भोजन में ८० प्रतिशत क्षारीय एवं २० प्रतिशत अम्ल पदार्थ होने चाहियें। परन्तु इसके विपरीत ही व्यवहार होता है। जबकि भोजन में फल तरकारी की मात्रा दोतिहाई और अनाज की केवल एक तिहाई मात्रा होनी चाहिए, उस जगह तली भुनी वस्तुयें, मैदा, शक्कर, मशीन से कुटा हुआ चावल, मसाले, चाय, काफी, तम्बाकू का प्रयोग धड़ल्ले से होता है जो कि शरीर में अम्लता की वृद्धि कर रोग को जन्म देती हैं।

इसके अतिरिक्त आज का मनुष्य मानसिक उद्वेगों से घिरा हुआ है। चिन्ता, भय, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, लोभ, मोह संचय वृत्ति आदि में इतना जकड़ गया है कि रोगी होना साधारण सी बात हो गई।

चूंकि एक्जीमा के रोगी की पाचन शक्ति भी ठीक नहीं होती। इसे कोष्ठ बद्धता की शिकायत रहती है जिसके प्रभावसे रक्त भी अम्लमय हो जाता है। इसलिये भोजन में नीबू तथा नीबू जातीय जैसे संतरा, मोसम्बी, चकोतरा आदि, नाशपाती, सेब, अमरूद, गाजर, मूली, टमाटर, ककड़ी किशमिश का सलाद, चोकर समेत गेहूं की रोटी, अर्थात फुजले वाले पदार्थों का लेना, जिससे कब्ज न होने पावे।

नमक, मसाले, चाय, काफी, तम्बाकू, दाल, मांस, मछली, अण्डा, शक्कर, चावल, गांजा, भांग, शराब आदि का पूर्ण त्याग करना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त खरबूजा कल्प और गाजर कल्प बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुए हैं। कब्ज को तोड़ने में गाजर अद्वितीय साधन है कल्प के पूर्व तीन से सात दिन का उपवास करना और गुनगुने पानी के पनीमा से आंतों की सफाई करना आवश्यक है। जिस दिन उपवास तोड़ना हो उसके एक दिन पूर्व रात्रि में एक छटांक किशमिश एक पाव पानी भिगा देना चाहिए। दूसरे दिन यही पानी घूंट २ कर पीना चाहिये पश्चात् किशमिश खा लेने चाहिये फिर खरबूजा या गाजर बहुत ही अल्प मात्रा में ग्रहण करना चाहिए। यह कल्प दिन में तीन बार, ११ बजे दोपहर के बाद तीन बजे और पुनः छः बजे चलाना काफी होगा। पहले दिन एक छटांक, दूसरे दिन डेढ़ छटांक, तीसरे दिन आध पाव, चौथे दिन ३ छटांक और ५ वें दिन १ पाव या आवश्यकतानुसार दो दो घूंट पर लिया जा सकता है। परंतु एक पाव से मात्रा अधिक न हो। समय में उलट-फेर किया जा सकता है। कल्प आठ बजे दिन से रात्रि के आठ बजे तक समाप्त करना चाहिये। रोग को आराम होने तक धैर्यपूर्वक चलाना चाहिये। वैसे अनुभव में आया है कि इस रोग के जाने में तीन माह लग जाते हैं। परन्तु यह तो शरीर में संचित विष पर निर्भर है। कल्प के मध्य में किसी भी अन्य वस्तु का सेवन भूलकर भी नहीं करना चाहिये। नीबू, शहद मिला पानी पिया जा सकता है। गुनगुने पानी का पनीमा

लेना आवश्यक है। खरबूजा कल्प करते समय, शहद नीबू का शरबत या ताजे गन्ने का रस अवश्य पीना चाहिये। इससे गुर्दे पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

रोगी के लिए कटिस्नान, सप्ताह में दो बार संपूर्ण शरीर का वाष्प स्नान, फौवारा स्नान आवश्यक है। स्नान लेने के वाद शरीर को खुरदरे तौलिये पर खूब रगड़ना चाहिये। धूप स्नान लेना भी अच्छा है। रात को सोते समय पेट की गीली पट्टी, ग्रसित भाग पर मिट्टी की पट्टी लगाना भी आवश्यक है। पट्टी गर्म होने पर बदलते रहना चाहिए। विभिन्न स्नानों का पूर्ण विवरण 'रामतीर्थ' के मार्च ६४ से अभी तक के अंकों के 'वैज्ञानिक जल चिकित्सा' शीर्षक में वर्णित हैं। इसके अतिरिक्त संपादक महोदय द्वारा रचित 'उमेश योगदर्शन' प्रथम खण्ड से भी लाभ उठाया जा सकता है। अब मैं दो उदाहरण भी दे रहा हूं जिसके आरोग्य करने में बड़ी कठिनाइयां उपस्थित हुईं। आधुनिक चिकित्सकों से होड़ लेनी पड़ी और उन्हें प्रमाणित करके दिखाना पड़ा कि बिना औषधि के जटिल रोगों से किस प्रकार छुटकारा पाया जा सकता है।

(१) यह घटना सन् १९५५ की है। मेरे एक मित्र बनारसी लाल शाह, बस कण्डक्टर उम्र २५ वर्ष, उनके दोनों हाथों में एक्जीमा हो गया था। रुपये बराबर गोल गोल चकत्ते पड़ गये थे और उनसे पानी बहता रहता था। देखने में बहुत ही बुरा लगता था उसे ठीक करने के लिये

रक्त की जांच हुई, जोंक लगाई गई, सुइयां लगीं, मलहम का प्रयोग हुआ। परन्तु परिणाम कुछ भी न निकला।

एक दिन मैं जब पाठशाला से शाम को लौट रहा था तो उन्होंने बुलाया और सारा वृत्तांत कह सुनाया। मैंने दूसरे ही दिन से चिकित्सा शुरू कर दी। कल्प तो पूर्ण अवधितक नहीं चल पाया। गाजर और खरबूजे की कमी हुई। इसलिए उन्हें चोकर समेत गेहूं की रोटी, उबली हुई भाजी (बिना नमक मसाले और तेल की) नीबू, संतरा, तथा दूसरे फल खाने को दिए। सूर्य किरण चिकित्सा पद्धति से तैयार किया हुआ गहरा नीला जल पीने के लिये, घाव पर हरे जल की पट्टी। रात को मिट्टी की पट्टी देता था।

प्रथम दिन ही आराम मिला। परन्तु तीन चार दिन के पश्चात् तकलीफ बढ़ गई। परन्तु वे घबराये नहीं, क्योंकि इस उभार से मैं उन्हें पूर्व ही परिचित करा चुका था। धीरे धीरे तकलीफ कम हो गई। परन्तु पूर्ण आरोग्य में तीन माह लग गये। वे बीड़ी के बहुत शौकिन थे। इन्होंने बीड़ी पीना बन्द तो नहीं किया, बल्कि कम कर दिया था। इसकी सूचना मुझे ठीक होने पर मिली। इसी से चिकित्सा में समय अधिक लगा। उनका हाथ बिल्कुल ठीक हो गया बल्कि स्वास्थ्य भी ठीक हो गया। आजकल वे इन्स्पेक्टर (बस) के पद पर कार्य कर रहे हैं और स्वस्थ हैं।

(२) दूसरे सज्जन इन्हीं मित्र के साथी थे। इनके पिता उम्र ६० वर्ष, एक्जीमा से सारा शरीर ही ग्रसित था। वे

सज्जन सान्ताक्रुज बम्बई के बी. ई. एस. टी. क्वार्टर में रहते थे। मैंने जब देखा तो दंग रह गया। शरीर की त्वचा मोटी हो गई थी और बहुत ही पीड़ा हो रही थी। पैसा काफी खर्च कर चुके थे। उन्हें भी मैंने गाजर, खरबूजा, फल और सलाद खाने के लिये दिया। समस्त शरीर पर हरा प्रकाश, पीने के लिये गहरा नीला जल तथा हरा तेल शरीर पर मालिश करने के लिये दिया। पहले तो इनका भी रोग बढ़ने लगा, क्योंकि दवा, सुई का प्रयोग काफी किया गया था। उन्हें भी समझाया कि शरीर से विष का निष्कासन हो रहा है चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं है। शरीर से विष निकल जाने पर तकलीफ घटती गई और वे चार मास में ठीक हो गये।

### 'स्वप्नदोष'

(३) एक सज्जन उम्र २२ वर्ष, पीला चेहरा मुर्दनी छाई हुई। स्वप्नदोष से बहुत परेशान थे। आज के शौकीन युग में यदि यह रोग उत्पन्न हो जाय तो कोई आश्चर्य नहीं। क्योंकि वीर्य रक्षा के लिये सात्त्विक आहार होना चाहिये। शुद्ध वातावरण होना चाहिये। इस रोग का कारण मन चले लोगों का साथ जिनसे हस्तमैथुन के टेव पड़ना; गलत आहार, रहन-सहन जिससे शरीर में उत्तेजना उत्पन्न हो। कामोत्तेजक उपन्यास कहानियों का पढ़ना, स्त्रियों के संपर्क में रहना आदि। शरीर में विजातीय द्रव्य का संचय होना।

मैंने उन्हें उबली हुई भाजी, चोकर समेत गेहूँ की रोटी, फल, मठा, सलाद लेने की सलाह दी। प्रातः चाय के स्थान

पर गुनगुने पानी में एक चम्मच शहद और नीबू शाम पीने के लिये कहा। सुबह शौचादि के बाद शीर्षासन आधे मिनट, शवासन दो मिनट, बद्ध पद्मासन १ मिनट, पश्चिमोत्तानासन १ मिनट, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, मयूरासन, चक्रासन, सर्वांगासन, हलासन आदि एक-एक मिनट करने के लिये कहा। शीर्षासन का समय प्रति तीसरे दिन आधे मिनट बढ़ाने के लिये कहा। धीरे धीरे वे सज्जन १० मिनट तक शीर्षासन करने लगे। शरीर में लाली दिखाई देने लगी। मुझाया चेहरा खिलने लगा रात में सोते समय पेट की गीली पट्टी बांधने की रीति बतला दी। प्रातः एवं सायं मेहन स्नान दो मिनट से प्रारंभ कर प्रतिदिन १ मिनट बढ़ाते हुये आधे घंटे तक प्रयोग करना। मेहन स्नान के बाद ही आसन गुणकारी समझकर करने की सलाह दी। इस कार्यक्रम से दो माह में ही स्वस्थ हो गये। शरीर पुष्ट कसा हुआ चेहरे में चमक, शरीर फुर्तीला बन गया और वे अपना कार्य बड़े उत्साह से करने लगे। इस प्रकार दो वर्ष से भुगतते हुये रोग से उन्होंने सहज ही छुटकारा पा लिया है।

### (४) 'उदर-शूल'

एक युवक उम्र ३५ वर्ष, एक दिन रात्रि के दस बजे पेट फूल गया। दर्द के मारे छटपटाने लगा। बाजार पहुंचना भी कठिन था। इसलिये परीक्षा के तौर पर मुझे ही बुलाया। मैंने पेट पर गर्म मिट्टी की पट्टी दी और आधे घंटे के बाद ही गुनगुने पानी का एनीमा दिया जिससे आँतें साफ हो

गई। पीने के लिये नारंगी मिश्री से तैयार किया हुआ जल दस मिनट के अन्तर पर दिया जिससे १ घंटे में ही स्वस्थ हो गया। पेट के दर्द में लाल तथा नीला रंग बहुत ही गुणकारी है प्रयोग अनुभूत है।

### (५) 'सदमा'

एक लड़का उम्र १६ वर्ष, विवाह हो चुका था। पत्नी मायके में बीमार हुई और इस संसार से कूच कर गई। इस समाचार के पाने के बाद ही वह पागल सा हो गया। वह चिल्लाता फिरता "मैं तुझे भी साथ ले जाऊँगी।" उसका शरीर काला पड़ गया हड्डियां निकल आयीं। मुझे कुछ ऐसी सूझ उत्पन्न हुई कि शरीर में विषमयता होने पर शोक का प्रभाव बुरा पड़ता है। मैंने डाक्टर लुई कूने की पद्धति से सारे शरीर पर बाष्पस्नान आधे घण्टे तक दिया, पश्चात ठण्डे जल से खूब नहलाया, जब कुछ ठण्ड मालूम देने लगी बन्द कर दिया। शरीर को सूखे तौलिये से रगड़कर शरीर को लाल कर दिया। पश्चात् अपने साथ कुछ दूर तक टहलाया। इस प्रयोग से वह दो घंटे में ही अच्छी तरह बात करने लगा। सबके साथ शिष्टता से व्यवहार करता और प्रसन्न दिखाई देने लगा और उसे भविष्य में कोई वेदना न हुई।

### (६) 'परवाल'

एक युवती उम्र २२ वर्ष, बी. डी. डी. चाल वर्ली में रहती थी उसकी पलकों के भीतरी भाग में बाल उग गये

जिससे पुतलियां लाल हो गई थीं। दर्द बना रहता था डाक्टरों ने तीन बार आपरेशन किया। परन्तु कोई लाभ न हुआ। मैं जब देखने गया तो उसकी पलकें कटी थीं। चेहरा बिगाड़ दिया था। मैंने दाहिनी आंख में पीला जल और बायीं आंख में हरा जल डालना शुरू किया। बालों को चिमटी से उखाड़कर आंखों के बाहरी भागपर लाल तेल लगाने के लिये दिया। भोजन में उबली भाजी (बिना नमक, मसाले, तेल की) चोकर समेत गेहूं की रोटी, फल और सलाद दिया। इसके अतिरिक्त सभी वस्तुयें बन्द कर दी गयीं। इस चिकित्सा क्रम से बालों का निकलना बन्द हो गया और वह तीन माहमें स्वस्थ हो गई। साथ ही इसने एक सुन्दर स्वस्थ बच्चे को जन्म दिया।

## (७) 'ज्वर'

एक सज्जन उम्र ४० वर्ष, टाइफाइड ज्वर से पीड़ित हुये। ज्वर में भोजन तो बन्द रहता ही है। परन्तु अन्य चिकित्सक दूध पिलाते रहते हैं। दूध भी पूर्ण भोजन है। इसलिये ज्वर में देना ठीक नहीं पड़ता। प्रथम शरीर के विष को निकालने का प्रयत्न करना चाहिये। प्राकृतिक चिकित्सा में उपवास अचूक साधन है। अधिक दिन तक चलनेवाला मियादी बुखार कम समय में समाप्त हो जाता है। मैंने इस सज्जन को गुनगुने पानी में नीबू का रस पीने के लिये दिया। उपवास कराया। गुनगुने पानी के एनीमा से पेट की सफाई कराई। गहरा नीला और हरा जल पीने को दिया जिससे ११ दिन में ही स्वस्थ हो गये। उपवास तोड़नेपर

किशमिश का पानी दिया। फिर गाय का दूध थोड़ी मात्रा में देना शुरू किया। उपवास के बाद शरीर की क्षति-पूर्ति के लिये दूध अद्वितीय साधन है। १५ दिन में अपना साधारण कार्य करने लगे। अन्य प्रणाली में यह ज्वर २१ दिन का समय लेता। परन्तु प्राकृतिक चिकित्सा में यह समय के पूर्व ही बिदा हो गया। उपवास के बाद दूध, भाजी का सूप, भाजी एवं केवल एक रोटी क्रमशः देना ठीक होता है और धीरे धीरे साधारण भोजन पर आना चाहिये। भोजन में क्षारीय पदार्थ लेना हितकर होता है फल, दूध, तरकारी, दही, मठा, सलाद, मेवा, उबली भाजी, गेहूँ की चोकर समेत रोटी लेना चाहिये। उपवास लेते समय कभी भी भूलकर पानी शहद नीबू के अतिरिक्त कोई चीज मुँह में नहीं डालनी चाहिये अन्यथा लाभ के बदले हानि होगी। उपवास तोड़ने में सावधानी रखनी चाहिये। हमेशा मोसम्बी के रस या किशमिश के पानी से उपवास तोड़ना चाहिये कोई ठोस पदार्थ नहीं लेना चाहिये। पश्चात् दूध, फल, भाजी का सूप, भाजी, सलाद और बाद में रोटी शुरू करनी चाहिये। किसी नशीली या उत्तेजक वस्तु का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

## (८) 'चेचक'

एक बालक उम्र २ वर्ष अचानक सारा शरीर तमतमा आया और चेचक के दाने दिखाई देने लगे। यह भी छूत का रोग है। लोग बहुत डरते हैं। दूरदूर रहते हैं। कोई किसी के दरवाजे पर नहीं जाता। मैंने हिम्मत करके उसे लाल

मिश्री खिलाई जिससे शरीर पर दाने पूर्ण तौर से निकल गये। पश्चात् नीला-हरा जल पिलाना प्रारंभ किया। पीने के लिये पानी मिला गाय का दूध बताया। स्वच्छता का काफी ध्यान रक्खा गया। दरवाजों पर नीम की हरी ताजी पत्तियां बांध दी गई। इस प्रयोग से वह दस रोज में ही ठीक हो गया। पश्चात् सारे शरीर पर बाष्प देकर ठण्डे जल का प्रयोग करने से शरीर पर दाग भी न पड़े। उसका शरीर पूर्ववत् स्वच्छ हो गया। नारियल का कच्चा पानी कपूर मिलाकर शरीर पर मालिश करने से यही लाभ उठाया जा सकता है।

### (९) 'कब्ज'

एक युवती उम्र २२ वर्ष, पेट में कई वर्षों से दर्द रहता था। भोजन अच्छी तरह नहीं पचता। खाने के बाद पेट फूल जाता। खट्टी डकारें आतीं। हमेशा कब्ज बना रहता। सिर में भी दर्द रहता। मैंने तीन भाग नारंगी और एक भाग हरा जल दिन में चार बार एक औंस की मात्रा में पिलाना शुरू किया। पेट पर लाल तेल की मालिश। केवल इन्हीं प्रयोगों से वह तीन सप्ताह में ठीक हो गई।

### (१०) 'आधा शीशी'

एक युवती उम्र २६, दो वर्ष से लगातार आधाशीशी के दर्द से परेशान रहती थी। उसे हरा जल और नीला जल समभाग में दो घंटे के अन्तर से छः खुराक १ औंस की मात्रा में पिलाना शुरू किया। सिर पर नीला प्रकाश आधे घंटे तक, नीला तेल लगाने को दिया। पेट पर नारंगी प्रकाश देने से वह एक माह में ही चंगी हो गई। पेट पर बाष्प देकर मेहनरस्नान

या कटिस्नान देना भी लाभप्रद है। भोजन-सुधार होना आवश्यक है। भोजन में सात्विक पदार्थ दूध, फल, दही, मठा, सलाद, भाजी आदि की मात्रा अधिक होनी चाहिये।

(११) एक युवती उम्र १८ वर्ष, श्वेतप्रदर से पीड़ित थी। उसने बहुत चिकित्सा कराई। परन्तु स्थायी लाभ न हुआ। चेहरा एकदम फीका मालूम पड़ता था। शरीर में दाह बनी रहती थी। किसी कार्य में मन नहीं लगता था। भूख नहीं लगती थी। कब्ज की शिकायत रहती थी। मैंने उसे नारंगी जल तीन भाग हरा जल एक भाग दिन में चार खुराक तीन घंटे के अन्तर से देना शुरू किया। पेट पर हरे तेल की मालिश करने, हरे जल का डूस देने से वह दो माह में स्वस्थ हो गई और एक स्वस्थ बालक की माता बन गई।

उपरोक्त प्रकार के अनेकानेक उदाहरण प्राकृतिक चिकित्साके चमत्कार के प्रस्तुत किये जा सकते हैं।

रामतीर्थ
रामतीर्थ में
विज्ञापन देकर
लाभ उठाइये

# गीताके उत्कृष्ट भक्त

डॉ. गोपाल प्रसाद
वर्मी

गीता सर्वशास्त्र संग्रह है। इसके बाद की कोई ऐसी धार्मिक अथवा दार्शनिक रचना हिंदु शास्त्रों में नहीं है जिस पर एक या दूसरे प्रकार से उसका प्रभाव न पड़ा हो, न कोई ऐसा महात्मा ही मिलेगा जो उसके ऋण से नितान्त मुक्त हो। तब रामचरित मानस, जिसके रचियता गोस्वामी तुलसीदास हैं और जो हिंदुओं का 'बायबिल' कहा जाता है, गीता के प्रभाव से कैसे स्वतन्त्र रह सकता। आप यहां 'मानस' तथा 'गीता' की कतिपय ऐसी पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं जिनसे पाठक सहज ही अनुमान कर सकेंगे कि गोस्वामी जी गीता के कैसे उत्कृष्ट भक्त थे और रामचरित मानस की रचना में उन्होंने उससे कितनी सहायता ली है। मानस की जो पंक्तियां यहां उद्धृत की गई हैं उनमें कुछ तो गीता की पंक्तियों का विशुद्ध अनुवाद हैं, कुछ आंशिक अनुवाद और कुछ भावानुवाद। जैसे--

(१)

रामभक्त जग चारि प्रकारा, सुकृती चारिउ अनघ उदारा।
.... ... ... ज्ञानी प्रभृति विशेष पियारा॥

ये पंक्तियां

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
उदाराः सर्वे एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्॥

का बिलकुल अनुवाद है। हां, अनुवाद में एक शब्द 'अनघ' अधिक आ गया है, जिससे संस्कृत का भाव अधिक स्पष्ट हो गया है। संस्कृत का 'अर्जुन' हिंदी में स्वभावतः नहीं आया है, क्योंकि गीता का यह श्लोक भगवान् कृष्ण ने अर्जुन के प्रति कहा है और मानस में गोस्वामीजी उस सिद्धांत का प्रतिपादन पाठकों के लिए कर रहे हैं।

(२)

जब जब होइ धर्म की हानी,
बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी।

× × ×

तब तब हरि धरि विविध शरीरा,
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।
असुर मारि आपहिं सुरन, राखहिं निज श्रुति सेतु।

ये गीता के

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे॥

का अनुवाद है। 'अभ्युत्थानमधर्मस्य' का 'बाढ़हिं असुर अधम अभिमानी' अनुवाद स्पष्ट नहीं है। 'अधर्म का अभ्युत्थान-मधर्मस्य' और 'असुर-अधम-अभिमानी' का। जो अधर्म की जीती-जागती मूर्ति हैं। बढ़ना एक ही बात है। ऊपर की भांति 'भारत' यहां भी हिंदी में नहीं आया है।

( ३ )

एहि जग जामिनी जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच वियोगी।

यह चौपाई

या निशा सर्वभूतानां तस्यां जागर्ति संयमी।

का अनुवाद प्रतीत होती है। यहां भी 'संयमी' शब्द को गोस्वामी जी ने हिंदी में 'जोगी, परमारथी, प्रपंच वियोगी' शब्दों से स्पष्ट किया है। सन्दर्भ के अनुकूल गीता में 'संयमी' का सचमुच इतना ही व्यापक अर्थ है।

( ४ )

संभावित कहं अप जस लाहू, मरन कोटि सम दारुन दाहू।

यह चौपाई

संभावितस्य चाकीर्तिर्मरणा दतिरिच्यते।

का प्रायः शाब्दिक अनुवाद है। थोड़ा सा उलट-फेर है। संस्कृत में 'मरण से. अधिक है' है और हिंदी में 'कोटि मरण

के समान दुःखदायी है' है । वस्तुतः कोई भेद नहीं है । 'मरण से बढ़कर' और 'कोटि मरण के तुल्य' दोनों बातें एक ही हैं ।

(५)

तुम्हरे भजन प्रभाव अघारी, जानो महिमा कछुक तुम्हारी ।

यह चौपाई

भक्तया मामभिजानाति यावान्पश्यामि तत्त्वतः।

को सामने रखकर लिखी गई है । सिद्धांत दोनों में एक ही प्रतिपादित है, केवल शैली भिन्न है । जब हम स्मरण करते हैं कि 'भजन' 'भक्ति' का एक अंग है तब हमें 'भजन प्रभाव आधारी' को 'भक्तया' का अनुवाद करने में कोई संकोच नहीं होता । संस्कृत में भगवान् स्वयं कह रहे हैं। इसलिए 'मुझे तत्त्वतः जान लेना है' कहा है । उसे हिंदी में एक भक्त कह रहा है । इसलिए शिष्टतावश 'आपकी महिमा कुछ जान पाते हैं' कहना पड़ा है ।

(६)

उमा दारु योषित की नाईं, सबहिं नचावत राम गुसाईं ।

यह चौपाई

ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्व भूतानि यन्त्रारुढानि मायया ॥

के आधार पर लिखी गई प्रतीत होती है, यह अवश्य है कि श्लोक के प्रथमार्द्ध का भाव नहीं लिया गया है, उत्तरार्द्ध का भाव ही पूर्णतया अपनाया गया है ।

(७)

काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक कर पंथ।
सब परिहरि रघुवीर पद, भजहु कहहिं सद् ग्रन्थ॥

यह दोहा

त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत्॥

इस श्लोक का प्रायः पूर्ण अनुवाद ही है। काट छांट केवल यह है कि श्लोक में 'त्रिविधं' गिना दिया गया है और 'आत्मा के नाश' का कारण बतलाया, जो दोहे में नहीं आया है। 'कहहिं सद्ग्रन्थ' दोहे में और जोड़ दिया गया है। इसी प्रकार—

(८)

निन्दा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्राण-प्रिय, गुणमन्दिर सुख पुंज॥

यह दोहा

तुल्यनिन्दास्तुतिर्मौनी संतुष्टो येन केनचित्।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्तिमान् मे प्रियो नरः॥

का भावानुवाद है। दोहे में श्लोक के और पद तो ज्यों के त्यों आये हैं, अन्तर केवल यह है कि 'संतुष्टो येन केनचित्' 'अनिकेतः' तथा 'स्थिरमतिः' के स्थान में गोस्वामी जी ने 'गुणमन्दिर' तथा 'सुखपुंज' लिखा है।

( ९ )

नर सहस महं सुनहु पुरारी,
कोउ इक होय धर्मव्रतधारी।
धर्मशील कोटिन महं कोई,
विषम विमुख विरागरत होई।
कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई,
सम्यक ज्ञान सुकृत कोउ लहई।
ज्ञानवन्त कोटिन महं कोई,
जीवन्मुक्त सुकृति कोई होई।
तिन सहसन महं सब सुखदानी,
दुर्लभ ब्रह्मनिरत विज्ञानी।

ये पांचों चौपाइयां गीता के

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चित्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मांवेत्ति तत्वतः॥

श्लोक के भाव का स्पष्ट रूप से अनुसरण करती हैं। जो बात श्लोक में शास्त्रीय शैली में निर्दिष्ट है वही चौपाइयों द्वारा पौराणिक शैली से व्यक्त की गई है।

( १० )

सर्वेन्द्रियगुणाभास सर्वेंद्रियविवर्जितम्।

के गूढ़ भाव को प्रकट करने के लिए तुलसीदास जी को

बिनु पद चलै सुनै बिनु काना,

कर बिनु कर्म करे विधि नाना
आनन रहित सकल रस भोगी.
बिनु बाणी वक्ता बड़ योगी।
तनु बिनु परस नयन बिनु देखा,
ग्रहै घ्राण बिनु गन्ध विशेषा।

ये तीन चौपाइयां लिखनी पड़ी हैं।

दोनों महामान्य ग्रन्थों की इन पक्तियों से विदित हो है कि गोस्वामी तुलसीदासजी ने गीता का अच्छा अध्य किया था। उसके सुन्दर विचारों पर वे इतना मुग्ध कि कतिपय स्थानों में उन्होंने गीता के ही सरस तथा भाव-व्यञ्जक शब्दों को अपने वृहत् ग्रन्थ में रख लिया है।

* * *

# सुखमार्ग

## मासिक-पत्र

सुख सम्पति पाने के लिये सामाजिक, धार्मिक, वैद्य एवं स्वास्थ्य आदि सभी सामयिक समस्याओं से ओत-प्रोत ४० वर्षों से भारतीयों में जागरण का शंखनाद करने वाले सचित्र 'सुखमार्ग' को अवश्य पढ़ें। यह बड़े-बड़े विद्वानों के लेख लेकर हजारों की संख्या में छपता है। विशेषांक भी निकलते हैं। प्रश्न उत्तर और लेख समाचार मुफ्त छापता है।

वार्षिक मूल्य केवल १) नमूना मुफ्त।

पता—सुखमार्ग, केमीकल प्रेस, अलीग

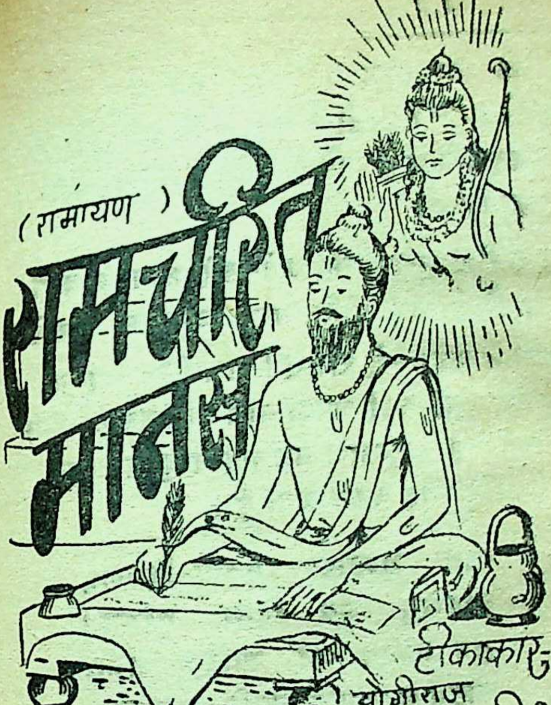
(रामायण)
रामचरित मानस
टीकाकार:-
योगीराज
श्री उमेशचन्द्रजी

( गतांक से आगे )

सुनि महीश तापस वश भयऊ,
आपन नाम कहन तब लयऊ।
कह तापस, नृप जानौं तोहीं,
कीन्हेउ कपट लाग भल मोहीं॥

उस उपस्वी की यह आश्चर्यजनक बातें सुन कर राजा उसके प्रभाव के वशीभूत हो गया और अपना वास्तविक नाम बता दिया कि मैं प्रतापभानु राजा हूं। ( सर्वप्रथम राजा

ने स्वयं को प्रतापभानु का मन्त्री कह कर अपना परिचय दिया था।) उस तपस्वी ने कहा—मैं तुम को अच्छी तरह जानता-पहचानता हूं। फिर भी तुम्हारा कपट (दुराव) मुझे अच्छा लगा।

सुनु महीश अस नीति, जहं-तहं नाम न कहहिं नृप।
मोहिं तोहिं पर प्रीति, परम चतुरता निरखि तव॥

तापस ने कहा—हे राजन्! राजनीति का यह नियम है कि राजागण जहां-तहां अपना नाम नहीं बताते-अपना सच्चा परिचय नहीं देते। तुम्हारा यह महान् बुद्धिचातुर्य देख कर मैं तुम्हारे प्रति स्नेह करने लगा हूं।

नाम तुम्हार प्रताप-दिनेशा,
सत्यकेतु तव पिता नरेशा।
गुरु प्रसाद सब जानिय राजा,
कहिय न आपन जानि अकाजा॥

तुम्हारा नाम प्रतापभानु है और तुम्हारे पिता को सत्यकेतु कहा जाता था। गुरुदेव के कृपा-प्रसाद से मैं सब जानता हूं, परन्तु अपना अहित जानकर किसी से कभी कुछ कहता नहीं।

देखि तात तव सहज सुधाई,
प्रीति-प्रतीति नीति-निपुणाई।
उपजि परी ममता मन मोरे,
कहेउं कथा निज बूझे तोरे॥

हे राजन् ! तुम्हारी यह सहज सुधाइ-स्वाभाविक सरलता, प्रेम-विश्वास; नीति-कुशलता देखकर तुम्हारे प्रति मेरे मन में ममत्व भाव उमड़ पड़ा है और तुम्हारे पूछने पर मैंने अपनी सारी कहानी तुम्हें कह सुनाई है।

अब प्रसन्न मैं संशय नाहीं,
मांग जो भूप भाव मनमाहीं।
सुनि सुवचन भूपति हरषाना,
गहि पद विनय कीन विधि नाना।

अब मैं निस्सन्देह प्रसन्न हूं, अतः हे राजन् ! तुम जो कुछ चाहो, मांग लो। तापस के यह वचन सुनकर राजा प्रसन्न हो उठा और तापस के चरण पकड़ कर अनेक प्रकार से विनय की।

कृपासिंधु मुनि दर्शन तोरे,
चारि पदारथ करतल मोरे।
प्रभुहिं तथापि प्रसन्न विलोकी,
मांगि अगम वर होउं विशोकी॥

हे कृपासिंधु मुनिवर आप के शुभ दर्शन पाकर चारों पदार्थ मेरे हस्तामलक हो गये, अर्थात मैं चारों पदार्थ पा गया, जीवन कृतकृत्य हो गया। फिर भी प्रभु को प्रसन्न देख कर इच्छा उत्पन्न हुई है कि कोई अगम्य मांग कर सांसारिक दुःख-क्लेशों से मुक्त हो जाऊं-सदा के लिये।

जरा-मरण-दुख रहित तनु, समर न जीतै कोऊ।
एक छत्र रिपुहीन महि, राज्य कल्प शत होऊ॥

अतः मैं आप से मांगता हूं कि मेरा शरीर जरा (वृद्धता) मरण के दुःखों से रहित हो, संग्राम-भूमि में मुझे कोई जीत न सके, और मैं सौ कल्प पर्यन्त पृथ्वी पर शत्रु हीन राज्य करूं-मेरा राज्य कोई छीन न सके।

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ,
कारण कठिन एक सुनु सोऊ।
कालहु तव पद नाइहि शीशा,
एक विप्रकुल छांड़ि महीशा॥

तब तपस्वी ने कहा—हे राजन्! ऐसा ही होगा-तुम्हारी इच्छा फलीभूत होगी, परन्तु एक कठिन कारण-प्रश्न उपस्थित हो रहा है। वह भी सुन लो। काल भी तुम्हारे पैरों पर शिर झुकायेगा—एक विप्र-ब्रह्म-कुल को छोड़ कर।

तपबल विप्र सदा बरियारा,
तिन के कोप न कोउ रखवारा।
जौ विप्रन वश करहु नरेशा,
तौ तव वश विधि-विष्णु-महेशा॥

तपोबल के प्रभाव से ब्राह्मण अप्रतिहत बलधारी और निर्भीक है। यदि ब्राह्मण कुपित हो जाये तो फिर कोई रक्षा कर नहीं सकता। हे नरेश! यदि तुम विप्रों को अपने वश

में कर लो तो ब्रह्मा; विष्णु, महेश भी तुम्हारे वशीभूत हो जायेंगे ।

चल न विप्रकुल सन बरियाई,
सत्य कहौं दोउ भुज उठाई ।
विप्रशाप विनु सुनु महिपाला,
तोर नाश नहिं कौनेउ काला ॥

विप्रकुल पर बल प्रयोग कभी सफल नहीं हो सकता, यह मैं दोनों भुजाएं उठा कर सत्य कह रहा हूं । यदि विप्रों के शाप से स्वयं को सुरक्षित बना लो । तो हे महिपाल! तुम्हारा विनाश किसी काल में भी संभव नहीं ।

हरषेउ राउ वचन सुनि तासू,
नाथ न होय मोर अब नाशू ।
तब प्रसाद प्रभु कृपानिधाना,
मो कहं सर्वकाल कल्याना ॥

उस तापस के बचन सुन कर राजा परम प्रसन्न हुआ और बोला—हे नाथ! अब ऐसा उपाय कीजिये, जिससे मेरा कभी नाश न हो । आप कृपानिधान हैं, प्रभु-प्रभाव-शाली हैं, अतः आप के प्रसाद-अनुग्रह से मेरा हर समय कल्याण है ।

एवमस्तु कहि कपटमुनि, बोला कुटिल बहोरि ।
मिलब हमार, भुलाब निज, कहहु न हमहिं न खोरि ॥

तब उस कपट मुनि ने कहा—एवमस्तु-ऐसा ही हो। फिर कहने लगा कि हमारा मिलन और अपना मार्ग भूलना यह बात किसी को बताना नहीं। यदि कभी यह सब बातें किसी के सामने प्रकट करोगे और उनका कोई अचिन्त्य परिणाम प्रकट होगा—तुम्हारा किसी प्रकार का अनिष्ट होगा तो उस का दोष मेरे शिर पर नहीं होगा।

तातें मैं तोहिं बरजेऊं राजा,
कहे कथा तव परम अकाजा।
छटें श्रवण यह परत कहानी,
नाश तुम्हार सत्य मम वाणी॥

हे राजन्! इसीलिये मैं तुमको वारंबार सावधान करता हूं—निषेध करता हूं कि यह कहानी किसी को सुनाना नहीं। यदि सुनाओगे तो तुम्हारा महान् अकल्याण होगा। छटे कान में इस कहानी के पहुंचते ही तुम्हारा निश्चित विनाश है यह मैं सत्य कहता हूं।

यह प्रकटे अथवा द्विज शापा,
नाश तोर सुनु भानुप्रतापा।
आन उपाय निधन तव नाहीं,
जो हरि-हर कोपहिं मन माहीं॥

हे भानुप्रताप! सुनो हमारे तुम्हारे बीच की इन बातों को प्रकट करने अथवा ब्राह्मणों के शाप से ही तुम्हारा

निधन संभव है । इसके अतिरिक्त अन्य किसी उपाय से तुम्हारा निधन-नाश हो नहीं सकता, चाहे भगवान् विष्णु और शंकर ही क्यों न कुपित हो उठे हों । वे तुम्हारा कुछ बिगाड़ नहीं सकते ।

सत्य नाथ पदगहि नृप भाखा,
द्विज-गुरु कोप कहौ को राखा ।
राखहि गुरु जो कोप विधाता,
गुरुविरोध नहिं कोउ जगत्राता ॥

तब राजा धूर्त तपस्वी के चरण पकड़ कर कहने लगा—हे नाथ ! आपका कथन सत्य है । ब्राह्मणों और गुरु के प्रकोप से भला कौन बचा सकता है ? यदि विधाता-भगवान् कुपित हुए हो तो गुरु रक्षा करने में समर्थ हैं परन्तु गुरु का विरोध होने पर कोई बचा नहीं सकता ।

जौ न चलब हम कहे तुम्हारे,
होय नाश नहिं सोच हमारे ।
एकहि डर डरपत मन मोरा,
प्रभु महिदेव शाप अति घोरा ॥

यदि हम आपकी सलाह की अवहेलना-तदनुसार आचरण न करेंगे, और हमारा नाश हो जायेगा, तो उसका कुछ भी अफसोस मुझे नहीं होगा । मेरा मन केवल एक ही डर से डर रहा है—आतंकित हो रहा है—हे प्रभो ! ब्राह्मणों का शाप अत्यन्त घोर होता है ।

होहिं विप्र वश कवन विधि, कहौ कृपा करि सोउ।
तुम तजि दीनदयालु निज, हितू न देखौं कोउ॥

अतः अब आप कृपा करके यह बताइये कि ब्राह्मणों को किस प्रकार वशीभूत किया जा सकता है। हे दीनदयालु! इस समय मुझे तुम्हें छोड़ कर और कोई भी अपना हितैषी नजर नहीं आता।

सुनु नृप विविध जतन जगमाहीं,
कष्ट साध्य पुनि होहिं कि नाहीं।
अहै एक अति सुगम उपाई,
तहां परन्तु एक कठिनाई॥

हे नृप! जगत् में कार्य सिद्धि के नानाविधि उपाय-आयोजन हैं, परन्तु वे इतने कष्ट साध्य हैं कि उनकी सिद्धि में सन्देह हो सकता है। एक उपाय अत्यन्त सुगम है, परन्तु वहां भी एक कठिनाई है।

मम आधीन युक्ति नृप सोई,
मोर जाब तव नगर न होई।
आजु लगे अरु जब ते भयऊ,
काहू के गृह-ग्राम न गयऊ॥

हे राजन्! वह युक्ति-वह उपाय मेरी मुट्ठी में है, परंतु, तुम्हारे नगर में मेरा जाना कदापि संभव नहीं। आज तक जब से इस जगत् में अवतीर्ण हुआ हूं, मैं किसी के घर या गांव कभी नहीं गया हूं।

जौं न जाब तब होय अकाजू,
बना आय असमंजस आजू।
सुनि महीप बोले मृदु बानी,
नाथ निगम अस नीति बखानी॥

यदि मैं नहीं जाऊंगा तो तुम्हारा काम बिगड़ जायेगा-अभीष्ट सिद्ध नहीं होगा। आज बड़े ही असमंजस का समय आ पड़ा है—कुछ समझ में नहीं आता कि क्या करूं। तापस की बात सुन कर राजा विनम्र स्वर से बोला—हे नाथ! हमारे शास्त्रों ने इस नीति का निरूपण किया है कि—

बड़े सनेह लघुन पर करहीं,
गिरि निज सिरनि सदा तृण धरहीं।
जलधि अगाध मौलि बह फेनू॥
संतत धरणि धरत शिर रेनू॥

जो महान् विभूतियां हैं, वे सदैव छोटों के प्रति प्रेमभाव रखते हैं। उन्नत-मस्तक पर्वत सदैव अपने शिर पर तुच्छ लता-गुल्म-तृणादि धारण किये रहते हैं। समुद्र कितना गहरा है! फिर भी उसके मस्तक पर फेन फैला रहता है, पृथ्वी भी आदिकाल से अपने सर पर धूल को धारण करती आ रही है।

अस कहि गहे नरेश पद, स्वामी होइ कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिय प्रभु, सज्जन दीनदयाल॥

इतना कहकर राजा ने उस तपस्वी के चरण पकड़ लिये

और कहा कि हे स्वामिन्! मेरे लिये इतना कष्ट सहे। आप मेरे स्वामी हैं, सज्जन हैं, दीनदयालु हैं।

जानि नृपहिं आपन आधीना,
बोला तापस कपट प्रवीना,
सत्य कहौं भूपति सुनु तोही,
जगमहं नहिं दुर्लभ कुछ मोहीं।

राजा को संपूर्ण रूप से-तन-मन से अपने वशीभूत जानकर वह धूर्त कपटमूर्ति साधु बोला-हे भूप! मेरी बात सुनो। मैं तुमसे सत्य कहता हूं। इस जगत् में मेरे लिये कुछ दुर्लभ नहीं, असम्भव नहीं। मैं सब कुछ कर सकता हूं।

अवशि काज मैं करिहौं तोरा,
मन-क्रम-वचन भक्त तैं मोरा,
योग युक्ति जप मंत्र प्रभाऊ,
फलैं तबहिं जब करिय दुराऊ।

मैं अवश्य ही तुम्हारा कार्य सिद्ध करूंगा, क्योंकि मन-कर्म-वचन से तुम मेरे भक्त हो। योगशक्ति, तप, और मन्त्र आदि का प्रभाव तभी फलीभूत होता है, जब उनको भलीभांति गुप्त रखा जाये।

जौ नरेश मैं करौं रसोई,
तुम परसौ मोहिं जान न कोई,
अन्न सो जो-जो भोजन करई,
सो-सो तव आयसु अनुसरई।

हे नरेश ! यदि मैं रसोई करूं और तुम परोसो। मेरी स्थितिका किसीको तनिक ज्ञान न हो। उस दशामें जो कोई उस अन्न को ग्रहण करेगा—भोजन करेगा, वह निस्सन्देह तुम्हारे आदेश का अनुसरण करेगा।

पुनि तिनके गृह जेवँ जोई,
तव वश होय भूप सुनु सोई,
जाय उपाय रचहु तुम पऊ,
संवत भरि संकल्प करेऊ।

हे नरेश ! फिर उनके घर में जो-जो भोजन करेंगे, वे सब तुम्हारे वशवर्ती हो जायेंगे। अब तुम अपने घर जाकर इसी उपाय का विधान करो और एक वर्ष पर्यन्त इसी संकल्प में तन्मय रहो।

नित नूतन द्विज सहसशत, वरौ सहित परिवार,
मैं तुम्हरे संकल्प लगि, दिनहिं करब ज्योंनार।

नित्य नये एक लाख ब्राह्मणों को सपरिवार निमंत्रित करो। मैं तुम्हारे संकल्प की सिद्धि के लिये प्रतिदिन दिन में ही ज्यौनार-भोजन तैयार कर दिया करूंगा।

यहि विधि भूप कष्ट अति थोरे,
होइहिं सकल विप्र वश तोरे,
करिहैं विप्र होम मख सेवा,
तेहि प्रसंग सहजहिं वश देवा।

इस प्रकार हे भूप ! बहुत थोड़े कष्ट से समग्र ब्राह्मण तुम्हारे वश में हो जायेंगे। यह ब्राह्मण नित्य ही यज्ञ, होम, देवों की सेवा आदि कर्मकाण्ड में लगे रहते हैं, इस उपलक्ष्य में समग्र देवगण भी सरलता से तुम्हारे वशीभूत हो जायेंगे।

और एक मैं कहौं लखाऊ,
मैं यहि वेश न आउब काऊ,
तुम्हारे उपरोहित कहँ राया,
हरि आनब मैं करि निज माया।

एक और बात मैं तुम्हें बताता हूं, मैं इस तपस्वी वेश में कभी तुम्हारे यहां नहीं आऊंगा। हे राजन् ! मैं तुम्हारे उपरोहित को अपनी माया के बल से हरण करूंगा और यहां ले आऊँगा।

तपबल तेहि करि आपु समाना,
रखिहौं यहां वर्ष परमाना,
मैं धरि तासु वेश सुनु राजा,
सब विधि तोर संवारब काजा।

तपोबल से मैं उसे अपने समान बनाकर यहां एक वर्ष रखूंगा। हे राजन् ! मैं उसी का वेश धारणकर तुम्हारा सब कार्य संपन्न करूंगा—अभीष्ट सिद्ध करूंगा।

गइ निशि बहुत शयन अब कीजै,
मोहिं तोहिं भेंट भूप दिन तीजै,

मैं तपबल तोहि तुरंग समेता,
पहुंचैहौं सोवतहिं निकेता ।

अब रात बहुत व्यतीत हो चुकी है, इसलिये अब तुम निश्चिन्त मन से विश्राम करो। आज से तीसरे दिन मैं तुमसे भेंट करूंगा मैं अपने तप: प्रभाव से तुम्हें अश्वसहित तुम्हारे घर पहुंचा दूंगा।

मैं आउब सोइ वेश धरि, पहिचानेउ तब मोहिं,
जब एकान्त बुलाय सब, कथा सुनावौं तोहि ।

मैं उसी पुरोहित का वेश धारण कर आऊंगा। मेरा परिचय तुम्हें तभी मिलेगा, जब मैं एकान्त में बुलाकर यह सब कहानी बताऊंगा तब मुझे तुम पहचान लेना।

शयन कीन नृप आयसु मानी,
आसन जाय बैठ छल ज्ञानी,
श्रमित भूप निद्रा अति आई,
सो किमि सोव शोच अधिकाई ।

तापस की आज्ञा शिरोधार्य कर राजा शय्यापर जाकर लेट गया और कपटज्ञानी अपने आसन पर जा बैठ गया। राजा तो अत्यन्त श्रमित—थका हुआ था, अतः वह तत्काल गहरी निद्रा में डूब गया, परन्तु वह धूर्त तपस्वी भला कैसे सो सकता था! वह अपनी योजना के विचारों में श्रमित हो रहा था।

कालकेतु निशिचर तहँ आवा,
सोइ शुकर ह्वै नृपहिं भुलावा,
परम मित्र तापस नृप केरा,
जानै सो अति कपट घनेरा ।

उसी समय वहां कालकेतु नामक राक्षस आ पहुंचा। वही शुकर का रूप बनाकर राजाको भुलाकर यहांतक ले आया था। वह निशाचर उस धूर्त तापस राजा का परम मित्र था और नाना प्रकार के कपटपूर्ण विधानों को भली भांति जानता था ।

तेहिके शत सुत अरु दस भाई,
खल अति अजय देव दुखदाई,
प्रथमहिं भूप समर सब मारे,
विप्र संत सुर देखि दुखारे ।

इसी सत्यकेतु के सौ पुत्रों और दश भाइयों—जो बड़े ही दुष्ट, अजेय और देवों को दुख देने वाले थे—को राजा प्रतापभानु ने संग्रामभूमि में मार गिराया था क्योंकि वे ब्राह्मण, साधु-सन्त, देव आदि शुभ तत्त्वों के लिये अत्यन्त दुःखदायी थे।

तेहि खल पाछिल वैर सँभारा,
तापस नृप मिलि मंत्र विचारा,

जेहि रिपुक्षय सो रचेसि उपाऊ,
भावीवश न जान कछु राऊ ।

उस दुष्ट राक्षस को पिछले शत्रुभाव का स्मरण हो आया और उस धूर्त तपस्वी राजा के उसके प्रतिकार के सम्बन्ध में विचार परामर्श किया और ऐसे उपायका विधान किया, जिससे शत्रु का नाश हो। भवितव्यतावश राजा प्रतापभानु उनकी इस दुरभिसंधि को जान न सका। —क्रमशः

---

# उद्योग भारती

## दीपावली विशेषांक मुफ्त

दीपमालिका के पुनीत पर्व पर उद्योग-भारती का दीपावली विशेषांक खूब सज-धज के विभिन्न सामग्रियों से विभूषित सचित्र २०० पृष्ठों में प्रकाशित हो गया है। देश भर के अर्थ-शास्त्रियों, लेखकों, साहित्यिकों का सहयोग प्राप्त हुआ है। ३० नवम्बर तक ४) रु. मनीआर्डर से भेज कर वार्षिक ग्राहक बनने वालों को विशेषांक मुफ्त भेजा जायगा। जो लोग सिर्फविशेषांक चाहते हैं वे १ रु. २५ न. पैसे मनीआडेर से या डाक टिकट के रूप में भेजें। विशेषांक वी. पी. से नहीं जाता। आज ही अपनी प्रति सुरक्षित करें।

व्यवस्थापक उद्योग भारती
१६१/१. महात्मा गान्धी रोड, कलकत्ता ७.

# प्रश्नोत्तर

[यह स्तम्भ पाठकों के शारीरिक आध्यात्मिक प्रश्नों के समाधान हेतु रखा गया है यदि आप किसी समस्या का समाधान चाहते हों तो लिख कर भेजें—सम्पादक]

**श्री गनेशप्रसाद बंसल आगरा**
**पत्र संख्या १ प्रश्न १**

मेरी प्रकृति वात प्रधान है। मैं नियमित रूप से ११ बैठक, ११ दंड, ५ मिनट सर्वांग आसन, १ मिनिट पादासन, १/४ मिनिट सुप्त धनुरासन (रामतीर्थ में देख पढ़कर अभी शुरू किया है पूर्ण अभ्यास नहीं हुआ), १॥ मिनिट पश्चिमोत्तानासन १॥, १॥ मिनिट अर्ध मत्स्येन्द्रासन दांये बायें इस क्रम से आसनाभ्यास करता हूँ तथा १ मिनिट प्राणायाम रोकता हूं। यह अभ्यास करीब ९ माह से कर रहा हूं। इधर

२ माह से मेरी गर्दन में तथा कान के पीछे सिर में दर्द होने लगा है। कृपया बतावें कि दर्द सर्वांगासन करने से गर्दन पर खिंचाव पड़ने से होता है या अन्य कारण से जिसको दूर करने का उपाय बतावें तथा आसनों का जो क्रम मैंने लिखा है वही क्रम चालू रखा जावे अथवा बदलने की जरूरत है। मैं पतले दुबले शरीर का हूं तथा मेरा वजन ४१ किलो है अतः मैं चाहता हूं कि मेरा वजन भी बढ़े। कृपया इस विषय में भी प्रकाश डालें उम्र मेरी २९ वर्ष है।

उत्तर-१—वात प्रधान प्रकृति होने से आहार के विषय में ध्यान देना होगा। वायु प्रधान पदार्थ जैसे आलू, अरहर की दाल आदि का सेवन कम करें। वजन बढ़ाने के लिये प्रातःकाल रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से सारे शरीर की मालिश ३५ मिनट करें। उसके बाद ११ से बढ़ाकर २५ दंड और २५ बैठकें लगावें। २० मिनट आराम करने के बाद स्नान करके आसनाभ्यास चालू रखें। वजन बढ़ाने में सहायक पदार्थ चावल, दूध और केला, सेव, घी मक्खन आदि का सेवन करें। आम और दूध के सेवन से भी वजन बढ़ सकता है। आसन करते समय श्वासोच्छ्वास चालू रखें अथवा अल्प मात्रा में श्वास फेफड़ों में भरकर करें। आसन करते समय शक्ति तथा अवयवों के विकास के अनुकूल श्वास भरें और आसन करें। २–३ आसनाभ्यास करने के बाद ३ मिनट शवासन करके फिर अन्य आसन करें। ऐसा करने से किसी प्रकार की वेदना न होगी। शरीर बलवान बनेगा। मानसिक शान्ति बढ़ेगी। जीवन सात्विक बनेगा। सदा आनन्द, उत्साह,

सद्विचार, सत्संग, योगाभ्यास के प्रति आदरभाव रखिये जीवनभर सुखी रहोगे। आपकी जितनी छोटी सी उम्र में किसी प्रकार की शारीरिक तथा मानसिक बीमारी नहीं होनी चाहिये। वजन योग्य रूप से बढ़ना चाहिये। गेहूं की रोटी इच्छा होने पर भी कम खाइये और चावल भोजन में हमेशा अवश्य खाइये। अल्पावधि में आपको जीवन सुधार की सिद्धि प्राप्त होगी।

**श्री प्रभाकर महादेवराव घंदरे नागपुर**
**प्रश्न पत्र संख्या २ प्रश्न १.**

ब्रह्मचारी जीवन जीने के लिये कौन कौनसी बातें ध्यानपूर्वक करनी पड़ती हैं? जगविख्यात स्वामी विवेकानन्द ने ब्रह्मचारी रहने के लिये कौन कौन सी बातें कीं थीं?

उत्तर १—विवेक वैराग्य, षट् सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितीक्षा, संतोष और मुमुक्षुत्व) यह छ प्रकार की संपत्ति, छः प्रकार के मलशोधन कर्म, (नेती, धौति, बस्ती, नौली, त्राटक, कपालभाति) आसन, प्राणायाम, सत्संग, सत्पुरुषों की जीवनी पढ़ना, सच्छास्त्र, शुद्ध सात्विक गुण संपन्न शाकाहार का सेवन, मिताहार से ब्रह्मचर्य का पालन किया जाता है। चित्ताकर्षक वेशभूषा, सिनेमा, बीड़ी सिगरेट तपकीर, सुखा (तम्बाकू और चूना), शराब, मांस, मछली, अंडा, सोडा, पूरी, पकोड़ी, तली हुई वस्तुएं, आचार (कच्चे आम के टुकड़ों में मिर्च, तेल, राई आदि के मिश्रण से बनाया गया), पापड़ आदि का वर्ज्य करना पड़ता है।

विभत्स साहित्य, दुष्टों का संग, अपवित्र स्थान में निवास का त्याग करना पड़ता है। रातको आठ घंटे नींद लेनी चाहिये। मलावरोध न रहने पावे ऐसी व्यवस्था कर लेनी चाहिये। रात को सोते समय हाथ पांव धोकर, (ठंडे जलसे) गुप्तांग को ५ मिनट ठंडे पानी से धोकर सोना चाहिये। सिर और नाभि पर ३ मिनट तक ठंडे जलमें भिगोया हुआ सफेद कपड़े का टुकड़ा रखें। रात को शयन के पूर्व वज्रासन और सुप्त वज्रासन एक एक मिनट अवश्य करें।

## मानसिक भावना

मानसिक भावना के साथ ब्रह्मचर्य का विशेष संबन्ध है। उपरोक्त उपचार का तभी विशेष फल प्राप्त होगा जब कि मानसिक भावना का साथ रहेगा। प्रातःकाल स्नान के बाद प्रातःस्मरण स्तोत्र का पाठ करें और उसका अर्थ मन से ग्रहण करें। पश्चात् स्वामी शंकराचार्य कृत सदाचार स्तोत्र का अर्थ ग्रहण के साथ पाठ करें। रात को शयन से ३० मिनट पूर्व चर्पट पंजरी स्तोत्र का अर्थ ग्रहण के साथ पाठ करें। उमेश योगदर्शन (प्रथम खंड) में लिखे गये मानसिक उपदेश का अवश्य अवलोकन करें। स्वामी रामतीर्थजी के उपदेश भी अवलोकनीय हैं।

स्वामी विवेकानन्दजी के जमाने में पुरातन पद्धति के अनुसार लोग जीवन यापन किया करते थे। लोग सादा जीवन व्यतीत करते थे। स्वाभाविक रूप से उनका जीवन त्याग वैराग्यमय था। आजकल के रहन सहन से ब्रह्मचर्य

पालन करने के लिये अधिक प्रयत्नशील रहना होगा। पहले भोग विलास के साधनों की कमी थी आज प्रचुरता है। स्वामी विवेकानन्दजी ने ब्रह्मचर्यपालन हेतु अनेक प्रकार की साधना की थी, उनमें से ये साधन भी सम्मिलित हैं।

## ब्रह्मचर्य के नियम

अखण्ड ब्रह्मचर्य के पालने में मन, वचन और कर्म से सदा जाग्रत रहना चाहिये। वर्णाश्रम धर्म के अनुसार २५ वर्ष तक अखंड ब्रह्मचर्य का पालन कर उसके बाद ग्रहस्थाश्रम में प्रवेश करें। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने के बाद सन्तानोत्पत्ति हेतु ही खंडन करें। गृहस्थाश्रम में यदि ब्रह्मचर्य का खंडन अधिक किया जाय तो उससे श्वास, दमा, अशक्ति, अनिद्रा रोग, त्रिदोष विकार (वात, पित्त, कफ) क्षय, वातरोग, पित्तरोग, हृदय विकार, शिरोवेदना, कमर की वेदना, युवावस्था में बालों का पक जाना, दांतों में दर्द, नेत्रदृष्टि में दोष, मानसिक चिन्ता आदि अनेक रोग होते हैं। गृहस्थी लोग यदि वर्ष या ६ मास में एक आध बार ब्रह्मचर्य का खंडन करें तो उत्तम, ३ मास में एक बार होवे तो मध्यम, महीने में एक बार होवे तो कनिष्ट प्रकार के गृहस्थाश्रमी कहे जायेंगे। उससे अधिक बार ब्रह्मचर्य का खंडन करने से किसी न किसी रोग से पीड़ित रहेंगे। वीर्य सप्तधातु (रस, रक्त, मांस, मज्जा, मेद, हड्डियां और वीर्य, (स्त्रियों में सप्तम धातु रज) में श्रेष्ठतर गिना जाता है। वीर्य पुष्टि-वृद्धि तथा पवित्रता से पांच ज्ञानेंद्रिय तथा मनकी शक्ति बढ़ती है, अन्य छः धातुओं में बल, शुद्धी तथा

आरोग्यता रहती है। योगी लोग ब्रह्मचर्य के बारे में विशेष महत्व देते हैं। पूर्व काल में कमसे कम १०० वर्ष आयुवाले लोग सर्व साधारण रहा करते थे। उसके अनेकानेक कारणों में एक महत्वपूर्ण कारण योगाभ्यास का आचरण था। योगाभ्यास में महान् शक्ति का भंडार है। इससे इन्द्रियां वश में करने की शक्ति आती है। जीवन का निजी आनन्द अन्तर में अनुभूत होता है। अनुचित गुण, कर्म, स्वभाव से अलिप्त रहने का बल बढ़ता है। जो व्यक्ति (पुरुष या स्त्री) प्रतिदिन प्रातःकाल अथवा सायंकाल कम से कम ३० से ६० मिनट नियमबद्ध शास्त्रीय ढंग से मल शोधन कर्म, आसन, प्राणायाम करेगा उसे अनेक प्रकार की ऋद्धि-सिद्धियां प्राप्त होंगी। सुखमय जीवन, आनन्दमय जीवन, शांतिमय जीवन व्यतीत करेगा। वर्णाश्रम धर्मानुसार ब्रह्मचर्य अवश्य पालन कर सकेगा।

**श्री लछमन प्रसाद अग्रवाल कुम्हेर (भरतपुर)**
**प्रश्नपत्र ३ प्रश्न १**

अधिक पसीना आने का क्या कारण है क्योंकि मैं जब भी दो-तीन फर्लांग चलता हूं तो पसीने के कारण मेरी कमीज भीग जाती है। और सांस भी जल्दी फूल (भर) जाती है। इसलिये पसीना कम आवे और सांस न फूले ऐसा, प्राकृतिक और आयुर्वेदिक इलाज बतलाने का कष्ट करें। आपकी अतिकृपा होगी।

उत्तर-१—शरीर में समशीतोष्णंता रहने से पसीना

कम आता है। शरीर में चर्बी अधिक होने से पसीना अधिक आता है। अथवा शरीर में शारीरिक अशक्ति की अवस्थामें भी पसीना अधिक आया करता है। जिस प्रदेश में खुश्की रहती है उस प्रदेश में पसीना कम निकलता है तथा जहां की हवामें नमी तथा नमक का अंश रहा करता है वहां पसीना अधिक आता है। उदाहरणार्थ बम्बई, मद्रास, कलकत्ता आदि अनेक शहरों के समीप समुद्र होने से हवा में नमक व जलांश की विद्यमानता से अधिक पसीना आया करता है; पूना, अहमदाबाद, आदि अनेक शहरों में चैत्र वैशाख मास में भी पसीना नहीं बहता। इस प्रकार जहां प्राकृतिक कारण से पसीना अधिक निकलता हो उसका उपाय तो स्थान परिवर्तन के सिवा दूसरा कोई नहीं। किन्तु शारीरिक रोग के कारणों के (मेद वृद्धि, कमजोरी, शरीर का विशेष पतलापन) होने से निम्न लिखित उपचार करने से अधिक पसीना निकलना बन्द हो जायगा।

सूखे प्रदेशों में पसीना सूक्ष्म रूप से निकलता है। शरीर में से विजातीय द्रव्यों को निकालने के लिये प्रकृतिने नख, बाल, मल-मूत्र, नाक-कान के छिद्र, आंख, रोमछिद्र शरीर के साथ ही उत्पन्न करके रखे हैं। आरोग्य के दृष्टिकोण से शरीर से विजातीय पदार्थों का निकलना अनिवार्य है।

पसीने में दुर्गंधी होनेपर सप्त धातुओं में खराबी है ऐसा समझना चाहिये। योगियों के पसीने में दुर्गंधी की जगह

दुर्गंधी हुआ करती है। योगाभ्यास से सप्त धातुओं की शुद्धि होती हैं।

उपचार—नवली कर्म १ मिनट, आकर्ण धनुरासन २ मिनट, विपरीत करणी ४ मिनट, हलासन १ मिनट, कपाल भाति ५ मिनट, उष्ट्रासन १ मिनट, तोलांगुलासन १ मिनट, गरुड़ासन १ मिनट, लाड़ासन १ मिनट, सूर्य नमस्कार ३१ बार, शवासन ६ मिनट।

आहार—पौष्टिक शुद्ध शाकाहार, दही, छास, फल।

स्नान—ठंडे जल से करें। स्नान के समय पाव भर छास (मठा) ५० ग्राम पीली मिट्टी और ४० ग्राम चने का बेसन मिलाकर स्नान के पूर्व ५ मिनट सारे शरीर तथा सिर पर लगावें फिर ठंडे जल से स्नान करें। साबुन न लगावें। कदाचित् ७–८ दिन के बाद जुकाम होवे तो ४ दिन साबुन से स्नान करें। अधिक ठंडी के दिनों में सामान्य गर्म पानी से स्नान करें। चाय, बीड़ी, सिगरेट आदि अन्य व्यसन की वस्तुओं का त्याग करें। उपरोक्त उपचार करने से शरीर की अशक्ति दूर होकर कम पसीना निकलेगा तथा शरीर आरोग्य पूर्ण तथा बलवान बनेगा।

**श्री अमरचन्ददास फारबिसगंज (बिहार)**

**प्रश्न पत्र ४ प्रश्न १**

मेरी इष्ट, जगज्जननी, आदिमाता, माया की अधिष्ठात्री आदिमाता "मां चण्डी" है और मैं अपने को इष्ट के बदलने में असमर्थ पा रहा हूं। ऐसे मेरे आराध्य तो

लिये, सत्संग, योगाभ्यास, घर परिवार के लालन-पालन के लिये, इष्ट मित्रों को मिलने के लिये, अति आवश्यक समारंभों में जाने के लिये समय का व्यय करके बाकी का समय आपके उपास्य देव की उपासना ( जप–तप, कीर्तन, वंदन, पूजा, स्तुति, नैवेद्य, ध्यान ) के लिये व्यतीत करिये। दिन के काम काज से मन की वृत्तियां स्थिर नहीं रहती है। संभवतः रजोगुण स्वभाव रात के समय में रहता है। इस कारण से रात्रि के समय से अधिक प्रसन्नता का समय प्रातःकाल ५ बजे से ८ बजे तक है।

## समय का प्रभाव और गुण

प्रातःकाल ३ बजेसे १०बजे तक मनकी वृत्तियां शांत रहती हैं, अन्तकरण में पवित्र विचार आते हैं। प्राकृतिक दृश्य शांत और देदीप्यमान है। पक्षी, पशु आदि के शब्दों से वातावरण में शांतता दीखती है। वृक्ष–लतादि में सौन्दर्यता अनोखी रहती है। प्रातःकाल ३ बजे से सत्वगुण प्रधान है। अधिकांश मंगलमय शुभकार्य प्रातःकाल में आरंभ किया जाता है योगाभ्यास, ध्यान, धारणा, समाधि इत्यादि प्रातःकाल करने से अच्छा है। प्रातःकाल १० बजे से सायंकाल ६ बजे तक रजोगुण प्रधान है। काम–काज में जीवन व्यस्त रखना पड़ता है। संध्याकाल ६ से प्रातः ६ बजे तक तमोगुण प्रधान समय कहा जाता है।

किसी कारण वश प्रातःकाल समयाभाव होने के समय प्राप्त हो तब दिन अथवा रात्रि को उपासना कर सकते हैं॥

प्रातःकाल का समय उत्तम है। रातको ८-३० बजे शयन करिए और प्रातःकाल ४-३० मिनट में उठकर के स्नान के पश्चात् उपासना और अन्य अभ्यास चालू रखिए।

उ०-३—किस वास्ते उपासना करना चाहते हो उसके अनुसार उपासना की विधियों में परिवर्तन होता है। कोई कीर्ति, धन, ऐश्वर्य, व पुत्र-संतान, राजनैतिक नेतागिरीके लिये, शरीर बलवान बनानेके लिये उपासना करते हैं, और अन्य साधक लोग, अष्टांगयोग, वेद, उपनिषद, गीता, अवधूतगीता, अष्टावक्र गीता, योगवाशिष्ठ, हमेशा योगदर्शनका श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा आप मंत्रों में जय प्राप्त कर आत्मज्ञान प्राप्त करते है। सत् चित्, आनन्द प्राप्त कर लेते हैं। आपके प्रश्न में कोई निश्चित ध्येय नहीं बता सके हो?

उ०-४--सर्व प्रथम गुरु का स्थान माताजी को देना चाहिये, पश्चात् पिताजी, तीसरे गुरु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ योगी गुरु हैं। माता-पिता श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ होने पर तीसरे गुरु उपनयन आदि बाह्य संस्कार के लिये तथा उदर निर्वाह के लिये तथा मान के साथ धनोपार्जन के लिये डिग्री (उपाधि दिलाने वाले) दिलाने वाले लौकिक विद्या गुरुओं की आवश्यकता पड़ती है। परोपकार से अन्तःकरण शुद्ध होता है। किंतु ब्रह्म ज्ञान के लिये योग-वेदांत का आश्रय लेना होगा।

उ०-५--जीवन निर्वाह, परिवार का निर्वाह तथा परोपकार के लिये सकाम कर्म करना होगा। त्याग वैराग्य के लिये निष्काम कर्म करना होगा अपने-अपने स्थान में दोनों कर्म श्रेष्ठ हैं। केवल अनाचार, चोरी, डाकूगिरी, अत्याचार आदि निन्द्यकर्म वर्जित हैं।

उसके लिये भी यही समय अधिक उपयुक्त जंचता। लगभग चार घंटे उसके बाद तथा आधा से एक घंटा तक दिन में निद्रा की शरण लेता हूं और इतना ही मेरे लिये पर्याप्त हो जाता है। अब देव! पुनर्विचार कर आदेश दें कि यही नियम चालू रखूं या आदेशानुसार प्रात:काल का समय साधना के लिये निश्चय करूं?

३-उपासना विधान:—विगत छः वर्षों के अनुभव से मैं इस निष्कर्षपर पहुंचा हूं कि मैं कुछ भी करनेमें असमर्थ हूं—मुझ से कुछ हो नहीं सकता—जब साधारण पूजा ध्यान तक निहित रूपों में मुझसे नहीं हो सकता—तो इतने आसनादि योग साधन कहां संभव है? अतः मुझे यह समझ कि मैं एक यंत्रमात्र हूं—इसकी संचालिका 'मां' है—वह जितना जो कुछ मुझ से कराना चाहेगी वही मुझ से हो सकेगा। अतः "माम् एकम शरणंव्रज" के अतिरिक्त मुझ जैसे पतिताधम के लिये दूसरा कोई चारा ही नहीं। पर यह धारणा दृढ़ होना ही तो महा दुष्कर है--यह दृढ़ होना ही मैं सच्चा आत्मदर्शन एवम् अपना लक्ष्य समझता हूं। इसके लिये अति कठिन प्रयास एवम अभ्यास की आवश्यकता है। अत: मैं अपने को उसी प्रयास में लगाना श्रेयस्कर समझा हूं। प्रगति तो अत्यन्त धीमी है—नगण्य ही समझें फिर भी अनुभव होता है कि 'मां' ने इतने पर ही मेरे योगक्षेम का भार अपने ऊपर ले लिया है। समय समय पर उनकी अहेतुकी कृपा से अचंभित हो जाता हूं। असंभव संभव हो उठता है। यदि किसी दूसरे से कहूं तो कोई मुझपर विश्वास नहीं करेगा।

तब कभी कभी बहुत दुःखी हो उठता हूं—आखिर मेरे हृदय में कामना जागृत होती है तभी तो 'मां' को मेरे लिये कष्ट सहना पड़ता है—यह तो एक महाकष्ट का काम हो रहा है कि मैं अपने स्वार्थ सिद्धि के लिये सदा 'मां' के समक्ष कभी विलख विलख कर रोने लगता हूं और मात्र मृत्यु की कामना करने लगता हूं। माया जाल में फँसा रहकर विधि-विधान का पालन मुझ से संभव हो नहीं सकता। वर्ष के चार महीने तो निश्चित रूपेण मेरा प्रवास जीवन रहता है, और उस अवधि में सारा नियम विधान छूट जाता है। इसके अतिरिक्त यदाकदा बाहर निकलना ही पड़ता है और उस समय भी साधन घट जाते हैं। केवल थोड़ा बहुत मानस जप एवम् ध्यान मात्र ही अवश्य चालू रहता है। स्वभावतः लोकप्रदर्शन से मैं बहुत भयभीत रहता हूं क्योंकि उसे मैं अहंभाव का उत्पादक समझता हूं। एकबार एक प्रेमी मित्र ने मुझे प्रेत आवाहन तथा उनसे प्रश्नोत्तर सम्बन्धी विधान बता दिया। मुझे उसमें सफलता मिली। दो चार बार मैंने आजमाया—उत्तर भी सही प्रमाणित होने लगे। साक्षात्कार होने पर मैंने आराध्य गुरुदेव से उसकी चर्चा की। उन्होंने अपने समक्ष मेरे द्वारा कई विशिष्ट आत्माओं के आवाहन कराये और मुझे सफलता मिली। उन्होंने मुझे आदेश दिया कि मैं एक वर्ष लगातार मध्यरात्रि में उसका अभ्यास करूं तथा विशिष्ट आत्माओं का आवाहन कर उनसे कोई प्रश्न नहीं पूछ प्रणाम कर बिदा कर दूं। एक वर्ष उपरान्त एक बार रावण का आवाहन कर प्रश्नोत्तर किया

जायगा। किन्तु बाद में मैं सोचने पर भयभीत हो गया कि इसके चलने से मैं अहं के चक्कर में फंस जा सकता हूं और मैंने गुरु आदेश का उल्लंघन कर दिया तथा बाद में सारी बातें बता उनसे क्षमा प्राप्त की। अब देव! मेरी सारी दशा को विचारते हुये आदेश दें कि क्या परिवर्तन लाना मेरे लिये अनिवार्य एवम् उपयुक्त होगा ?

४-परोपकार—मेरी दृष्टिकोण में इसका अर्थ है यथाशक्ति दूसरों का उपकार करना चाहे उसके लिये व्यक्तिगत कष्ट भी उठाना पड़े। सारा विश्व का ही उपकार कर सके यह क्षमता तो मात्र उस सवशक्तिमयी में ही है। तब हर किसी को निकटतम से प्रारम्भ कर शक्ति अनुकूल अपने परोपकार का क्षेत्र विस्तृत करते जाना चाहिये। निज परिवार के आश्रित जन भी उस 'पर' के बाहर नहीं। अतः जो स्वयम् कष्ट सहकर परिवार का भरण-पोषण भी कर सकता है वह भी परोपकार ही कर रहा है। यदि यह दृष्टिकोण सही हो तब तो मेरा भी जीवन परोपकारमय अवश्य रहा है क्योंकि मैंने तो कभी किसी का अनिष्ट नहीं सोचकर यथाशक्ति अपने परोपकार क्षेत्र का विस्तार भी करता रहा हूं। किन्तु जब साधन न हों तो एक को भूखा रखकर दूसरे को खिलाने में और इस प्रकार दानी कहलाने में मैं कुछ महत्व नहीं समझता। निकटतम को पहले देखना आवश्यक है। अब मैं समझ नहीं पा रहा हूं कि मेरा दृष्टिकोण सही है या गलत। अतः करबद्ध प्रार्थना है कि इस विषय पर प्रकाश डालें।

उत्तर-१—आप अनेक देवों के उपासक हो और अनेक देवता लोग आपकी उपासना से प्रसन्न हैं। इतना होते हुए भी आपका मन मल, विक्षेप तथा आवरण से मुक्त नहीं बना ऐसा आपके प्रश्नों से प्रतीत लगता है। मां चण्डी तमोगुण प्रधान है। अपराधियों को कठोर दण्ड हिंसात्मक रूप से देती है। मा चण्डी के उपासकों में अधिकांश लोग मांस, दारु, मच्छियां आदि तमोगुणी आहार सेवन करने वाले होते हैं। दया, विनय, नम्रता, आदि सात्विक गुण के अभाव से उनके जीवन मलिन संस्कार युक्त कर्मों से सदा कष्ट साध्य दुःखों से जीवन स्वयं और अपने सगांतियों से बिताते। इस हेतु से मा चण्डी की उपासना आपके लिये वर्जनीय है। भगवान् शंकर तमोगुण प्रधान हैं। ऋद्धि सिद्धियों के दाता हैं। योगविद्या के आदि प्रणेता हैं। तमोगुणी होते हुये भी अच्छे-अच्छे विचार करते हुये जहां दया रखने योग्य है वहां सत्व गुणी बन जाते हैं। जहां रजोगुण की आवश्यकता है वहां रजोगुण अपनाते हैं और जहां अनिवार्य रूप से तमोगुण से कार्य लेना है वहां तमोगुण को प्रधान अवस्था में उपयोग करते हैं। भूत दया, साम, दाम, दंड, भेद इत्यादि उपाय, नास्तिकों को आस्तिक बनाना, आस्तिकों को श्रद्धा सम्पन्न रखना, उपासकों का सुख, सामर्थ्य समृद्धि बढ़ाना, भौतिक सुखकी निःसारता और पारमार्थिक सुख का सरल मार्ग बताना, धारणा, ध्यान समाधि तक के मार्ग बतलाकर जीव को जन्म-मृत्यु से मुक्त करना, शिवस्वरोदय, शिव संहिता आदि अनेक ग्रंथों का लोककल्याणार्थ

रचना इत्यादि अनेक प्रकार से जगदोद्धारक भगवान् शंकर जी हैं। सारे भारत भर के सर्व प्रांतों में भगवान् शंकरजी के उपासक सर्वाधिक संख्या में हैं। अन्य देवी देवताओं से अधिक संख्या में भगवान् शंकर जी के मंदिर हैं। अधिक प्रसिद्ध मंदिर पहाड़, गिरी-कंदरों में, एकान्त स्थानों में, गहन पर्वत प्रदेशों में, गहन एवं घने जंगलों में हैं। उनमें से बारह ज्योतिर्लिंग, चार धाम मुख्य हैं। हिमालय में बद्रीनाथ, केदारनाथ, प्रसिद्ध स्थान हैं। रामेश्वर देवस्थान मद्रास प्रांत में, मंजनाथ धर्म स्थल मैसूर प्रांत में, वालकेश्वर वम्बई में, बाबुलनाथ बम्बई में, घृणेश्वर अजंता (औरंगाबाद के पास) में, अन्य अनेक प्रसिद्ध स्थान हैं। केवल हिन्दू धर्म वाले भगवान् शंकर जी के उपासक हैं ऐसा नहीं। मुसलमान, क्रिश्चन, बुद्ध पंथी-जैन धर्मी, फारसी और भिन्न धर्म वाले मानते हैं। कोई गुप्त रूपसे और कोई प्रकट रूप से मानते हैं। आपके लिये भगवान् शंकरजी को उपास्य देव मानना उचित होगा।

### श्री हनुमान जी।

श्री हनुमान जी भगवान् रामचन्द्र जी के परम भक्त थे। उनकी उपासना करने से हानि नहीं होगी। किन्तु यदि आपका जीवन का ध्येय सिद्ध करना हो तो अनेक देवता की उपासना के समय में मन छिन्न-बिछिन्न अवस्था में रहेगा, अस्थिर रहेगा। जबतक एकाग्रता मनमें न आवे तबतक इष्ट सिद्धि नहीं होगी। सबसे अधिक जिस देवता के ऊपर आपको संपूर्ण विशुद्धमय श्रद्धा होगी उस देवता की तन,

मन, धन से उपासना करिए। अवश्य लाभ होगा। शौर्य, धैर्य, सेवा, भावना, आज्ञा पालन, शरीर एवं मनोबल से धीर-गंभीर, शक्ति का भण्डार, दास्य वृत्ति इत्यादि अनेक सद्गुणों के भंडार श्री हनुमान जी में थे। शुद्ध शाकाहारी थे। उनकी उपासना करने में लाभ होगा। फिर भी आप अपने मन से पूछ लीजिये कि सबसे अधिक श्रद्धा किस देवता में है। उस देवता के उपासक बनिये।

५-कर्म और वैराग्यः—मेरे हृदय में सतत अन्तर्द्वन्द्व चलता रहता है। कभी कर्म प्रबल होता है तो कभी वैराग्य। गम्भीरता से सोचता हूं तो आखिर जगन्नियन्ता ने मेरी सृष्टि किसी अभिप्राय से की है और उसकी पूर्ति के लिये कर्म करना अनिवार्य है। उन्होंने मुझ में विवेक भी दिया है। अतः मुझे चाहिये कि जो भी कर्म मेरे समक्ष आये विवेकपूर्वक करते हुये समय निकाल अपने कल्याणार्थ भी यथाशक्ति करता चलूं। मैं निष्कर्ष पर पहुंचा कि 'गीता' के दो ही श्लोक सार हैं—'कर्मण्ये वाधिकारस्ते......' एवम् 'माम् एकम् शरणम्.......।' अतः फल की चिन्ता त्याग कर्म करते चलना ही श्रेयस्कर है। इसी की प्राप्ति के लिये अभ्यास कर रहा हूं किन्तु प्रगति बहुत धीमी है और मंजिल अति दूर अतः बहुत घबड़ाता हूं। देव ! यदि मेरे विचार सही समझें तो इस अति सेवक को प्रगति तीव्र बनाने के लिये राह बतायें।

उ०-२--१२ घंटे रात के १२ घंटे दिन के कुल २४ घंटे में से ८ घंटे रात्रि में नींद के लिये, दिन में नौकरी-धन्दे के

भूतभावन भगवान शंकर भी हैं ही और यह भी सही है कि यह उन्हीं की अति विशेष कृपाओं का फल है कि मैं साधनाभिमुख भी हो सका हूँ। यहांतक कि उन्होंने ही स्वयम मेरे लिये गुरु ढूंढ़ हम दोनों के अनजाने में ही मेरी दीक्षा तक सम्पन्न करा दी और संपन्न हो जाने पर ही मेरे आराध्य गुरुदेव को भी चकित हो जाना पड़ा कि वह क्या और कैसे हो गया ? इस घटना को अवसर आने पर कभी सेवा में निवेदन करूंगा—अधिकांश लोग तो उसपर विश्वास ही नहीं कर सकते। अतः मैं उनकी भी भक्ति से रत रहता ही हूं। इसके अतिरिक्त विशेष घटना के आभार पर ही मेरे हृदय में दृढ़भावना बैठ गई है कि महावीर श्री हनुमानजी मुझे शिष्यरूप में स्वेच्छा से ही स्वीकार कर लिये हैं और साधनारंभ में गुरुध्यान काल में मेरे उसी कल्पित रूप में प्रथम वे ही मुझे तिलक करते हुये ध्यान में आते हैं बाद में भौतिक गुरु। अतः मैं पूरी आस्था के साथ उनकी भी आराधना अवश्य करता हूं। किन्तु मैं इन सभी की भी अधिष्ठात्री अपनी इष्ट को ही मानता हूं और जप उन्हीं के मंत्र "शरणागत् दीनार्त्त परित्राण परायणे ......"का बहुत दिनों से करता आ रहा हूं। ऐसी स्थिति में क्या "ॐ नमः शिवायः" का जप प्रारम्भ करना नियमित रूप से उपयुक्त होगा ? तथापि अनियमित रूप से इस मंत्र को मैं पूर्व से ही जपता हूं।

प्र० २-उपासना के लिये समय—दुनियादारी से अवकाश अभीतक नहीं पा सकने के कारण विकल साधना मुझ से

हो सकना संभव नहीं है। प्रथम कई वर्षों तक मैंने ऊषाकाल उपासना का ही नियम बना रखा था किन्तु कई विघ्नों का अनुभव हुआ यथा:—(क) प्रातः होने के बाद से मनुष्य एवम् पशुपक्षी का आवागमन एवं कलरव व आदि से ध्यान मे बाधा पड़ती थी-(ख) किसी को मुझ से कुछ जरूरत होती तो मेरा ध्यान आकर्षण करने के लिये समीप कहीं खड़ा हो जाता या बैठ जाता -(ग)-विभिन्न दृष्टिकोण के लोग देखते और अपने अपने अनुकूल टीका टिप्पणी करते जिससे राग द्वेष की संभावना होती थी -(घ) उससे एक प्रकार का लोक प्रदर्शन होता था और फलस्वरूप कुछ लोगों से अनुपयुक्त सम्मान प्राप्त होता था जिस से अहं की भावना को बल मिलता था- (च) अढ़ाई तीन घंटे तो मैं समय लगाता ही हूं अतः कभी कभी दुनियादारी की चिन्ता व्यग्र कर देती थी इत्यादि। बहुत सोचने के बाद मैंने निश्चय किया कि यह शरीर यदि आत्मदर्शन कराने के उपयोग में नहीं आया तो फिर इसका प्रयोजन ही क्या? इस शरीर की चिन्ता व्यर्थ है—मरने से डरना मूर्खता है वह तो एक दिन अनिवार्य है अतः क्यों न अपने नींद में ही कटौती कर दी जाय तथा रात के समय को ही सर्वश्रेष्ठ उपयोग में लाया जाय जिसमें ऊपरोक्त किसी भी विघ्न का भय न रहे। अनुभव ने बताया कि इसके लिये रात का भोजन छोड़ना भी आवश्यक है और मैंने वैसा ही किया। कई वर्षों से यही नियम रखे हूं और मुझे इसमें अधिक आनन्द मिलता है। तंद्रा एवम् अस्वस्थता ये ही दो विघ्न अब यदाकदा मुझे सताते हैं। मैं दृष्टिसाधन का भी अभ्यास करता हूं और

रामतीर्थ
ब्राह्मी तेल
स्पेशल नं. १
(रजिस्टर्ड)
RAMTIRTH
REGD. SPECIALS
Ramtirth
BRAHMI OIL
SHRI RAMTIRTH YOGASHRAM
BOMBAY - INDIA

## रामतीर्थ ब्राह्मी तेल [स्पेशल नं. १] का महत्व और लाभ

विगत २० वर्षों से यह तेल अनेक महत्व पूर्ण वनस्पतियों (जड़ी बूटियों) से निर्मित किया जाता है। ग्रीष्म ऋतु (गर्मी के दिन) वर्षा ऋतु (बरसात के दिन) हेमन्त ऋतु (ठंडी के दिन) में स्वास्थ्य के लिये सर्वथा उपयोगी रहे, ऐसी शास्त्रीय विधि से तैयार किया जाता है। रामतीर्थ ब्राह्मी तेल में वनौषधीय मधुर सुगंध होने से उपयोग करने वाली महिलायें तथा पुरुष वर्ग हमेशा के लिये इसे अपना लेते हैं, और अन्य लोगों को महत्व बताकर व्यवहार में लाने के लिए सलाह देते हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल युवक तथा वृद्धों के लिए ही उपयोगी नहीं अपितु छोटे से छोटे बच्चे तक के लिए लाभ-

*योग से तन मनका विकास कीजिए.

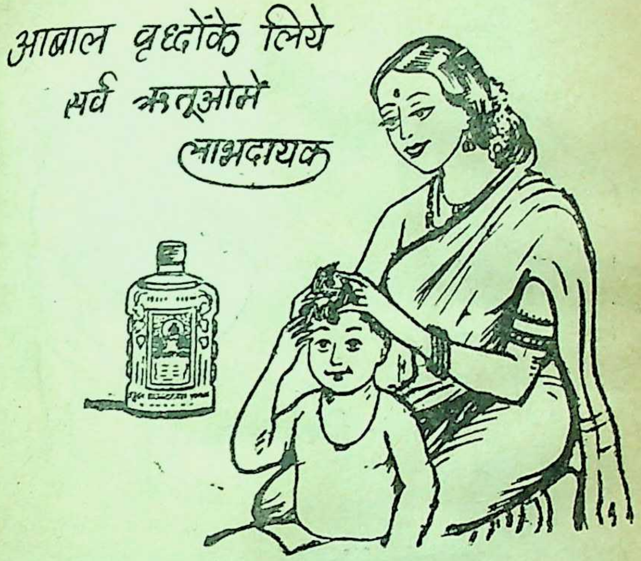

दायी है ऊपरोक्त रेखाचित्र में माता अपने बच्चो के सिर में रामतीर्थ ब्राह्मी तेल की मालिश करके सौन्दर्य, स्मरण शक्ति वृद्धि तथा आंखों की दृष्टि अच्छी बनाए रखने के लिए प्रयत्नशील है।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल केवल सिर के बालों के लिये ही नहीं है, किन्तु शरीर मालिश के लिये भी लाभ दायक है। आगे के रेखा चित्र में आप देख सकते हैं कि लोग अपने हाथों से तैल मालिश कर सारे शारीरिक अवयवों को नीरोग एवं सशक्त बना रहे हैं। प्रतिदिन प्रातःकाल स्नान के १० मिनट पहले सारे शरीर तथा सिर की तैल मालिश १० से २५ मिनिट तक अवश्य करें। ऊंचांई और आयु के हिसाब

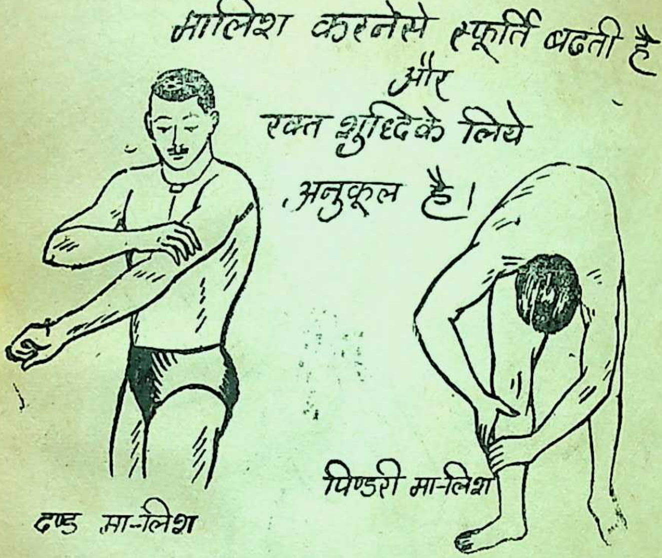
मालिश करनेसे स्फूर्ति बढती है
और
रक्त शुद्दिके लिये
अनुकूल है।
दण्ड मा-लिश
पिण्डरी मा-लिश

से शरीर का वजन कम होने से वजन बढ़ जायगा। अधिक वजन होने की हालत में आहार परिवर्तन के साथ २ रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का प्रयोग करने से आवश्यक परिमाण में रहेगा।

आप आगे के रेखाचित्र को सूक्ष्म दृष्टि से देखिये। हाथों को, पेट को तथा पीठ के ऊपर मालिश करने के सुलभ तरीके बताए गये हैं। अनेक महिलाओं तथा पुरुषों का विचार है कि अपने हाथों से तैल मालिश अच्छी प्रकार से नहीं कर सकते हैं। दूसरों से करानी पड़ेगी। यदि दूसरों से मालिश कराने की सुविधा होवे तो अवश्य करा सकते हैं। सुविधान होने पर आलस्य, शंका, और शर्म को छोड़कर अपने हाथों से हर दिन मालिश करने की आदत डालें, किसी कारण से

योग से तन मन का विकास कीजिए

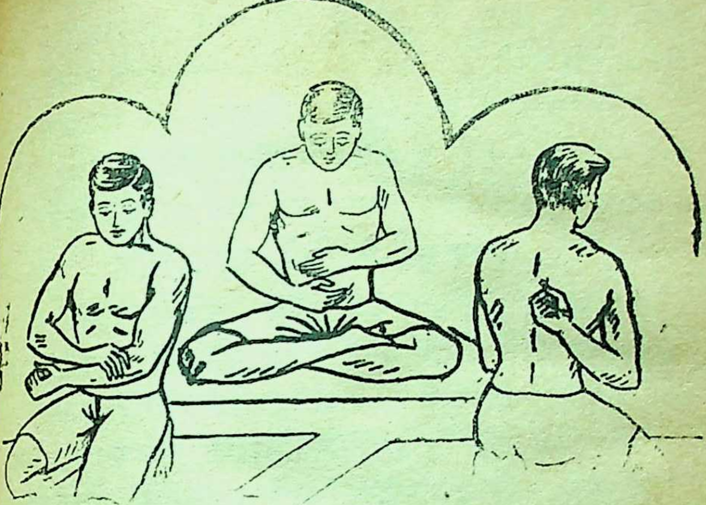

यदि हर रोज मालिश न हो सके तो सप्ताह में १ से २ बार रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य मालिश करें या करावें।

## विशेष सूचना और लाभ

आपने ऊपर छपे सर्व रेखा चित्रों को देखकर यह समझ लिया ही होगा कि रामतीर्थ ब्राह्मी तैल की मालिश से आबाल वृद्ध-बालक, माता, (महिला) तथा पुरुष वर्ग कितने आरोग्य-मय सुडौल शरीर वाले तथा आकर्षक मुख मुद्रा वाले और कितनी सुन्दर केशभूषा वाले हैं। इतना ही नहीं हरेक अवयवों को हृष्ट-पुष्ट बनाने में सामर्थ्यवान बन गये हैं।

रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के प्रयोग से गहरी नींद, स्मरण शक्ति की वृद्धि, बाल काले, घने तथा लम्बे बनाने में अनुकूल है तथा इससे बालों का झड़ना बन्द कर गंजा पन दूर करने में लाभ

दायी है। कान में डालने से कान के सूक्ष्म अवयव नीरोग बने रहते हैं। ऐसे अनेकानेक महत्त्वपूर्ण लाभों की दृष्टि से ही वैद्यराज, डाक्टर, प्रख्यात विद्वान् वर्ग, राजनीतिज्ञ और अन्य प्रतिष्ठित वर्गों से रामतीर्थ ब्राह्मी तेल के गुणों के विषय में स्वानुभव पूर्ण अनेक प्रमाण पत्र प्राप्त हो चुके हैं।

## छात्र वर्ग के लिये लाभदायक

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी ऋषि-मुनि, साधु-सन्त, त्यागी--वैरागी उदासीन वृत्ति के लोगों को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अनेक प्रकार के लाभ अवश्य ही प्राप्त होंगे।

महत्त्वपूर्ण जड़ी बूटियों के कारण से छात्र-छात्राओं, (सिक स्कूल, मिडिल स्कूल, हायस्कूल तथा कालेज के) को रामतीर्थ ब्राह्मी तेल से अवश्य लाभ प्राप्त होगा। जैसे, । मस्तिष्क शान्त रहेगा। स्मरण शक्ति बढ़ जायेगी। शरीर मालिश से शरीर में स्फूर्ति बढ़ेगी, स्नायु संस्थान तथा रस ग्रन्थियों में शक्ति का संचार होगा।

वैसे तो त्वचा की कान्ति, रक्त परिभ्रमण के साथ २ स्वस्थ रहना, चर्मरोग निवारण, शारीरिक जोड़ों में बल, समस्त शरीर में समशीतोष्णता आदि अनेक लाभ सबको प्राप्त होता है। यदि आपने अभी तक रामतीर्थ ब्राह्मी तेल का उपयोग कर लाभ नहीं लिया हो तो आज ही अपने शहर अथवा गांव के दवा बेचने वाले अथवा जनरल मर्चेन्ट से खरीद करें। दो साइजों में प्राप्त है।

न मिलने पर निम्न पते पर लिखें।

**श्री रामतीर्थ योगाश्रम दादर बम्बई १४.**

# जीवन का सदुपयोग

ले० रवीन्द्र कुमार शास्त्री, विद्यावागीश

श्वेत केश, पिचके हुये कपोल, ज्योतिर्हीन भीतर की ओर घुसी हुई आँखें, झुकी हुई कमर, लकुटिया टेकते हुए, एक वृद्धा पाटलिपुत्र के राजपथ पर जा रही थी। अकस्मात उधर परम नीति कुशल महामात्य चाणक्य निकले। उस स्थविरा को देखकर महामात्य चाणक्य को कुछ चुहलवाजी सूझी और उसके समीप जाकर बुढ़िया से प्रश्न किया—

अधः पश्यसि किं बाले ? पतितं तव किं भुवि ?

"बाले तेरा जमीन में क्या खो गया है, जिसे तू इतना झुककर सावधानी से खोज रही है ?

बुढ़िया भी कम चतुर न थी। वह पीछे मुड़ी और उसने अपने प्रति सहानुभूति दिखलाने वाले बुद्धिवरिष्ठ चाणक्य को देखा और दूसरे ही क्षण उसके पोपले मुख पर हास्य की रेखाएं उभरीं, किन्तु वे अधिक देर तक स्थिर न रह सकीं और कुछ झुंझलाहट के साथ गंभीरता में परिणत हो गई। उसने उत्तर दिया —

रे रे मूर्ख, न जानासि गतं तारुण्य मौक्तिकम् ?

अरे मूर्ख, तू यह भी नहीं जानता कि मेरा यौवनरूपी मोती खो गया है ?

पाठक, यह नीतिमान् चाणक्य के उपर्युक्त श्लोक के आधार पर एक रूपक की योजना की गई है। किन्तु है तथ्य, क्या आज भी आपके सामने से प्रतिदिन ऐसे अनेकशः वृद्ध और वृद्धाएं अपने गत तारुण्य चिन्तामणि के अन्वेषण में नहीं निकलते ? अवश्य ही निकलते हैं। ऐसा क्यों ? जिस तरुणाई की अरुणाई में उन्होंने जिसको ठुकराया और भौतिक सुखों के पीछे बर्बाद कर दिया, उसी के लिये यह पश्चात्ताप और अन्वेषण का क्रम कैसा ? अवधूतराज भर्तृहरि ने इस विषय पर कुछ सोचा और समझ कर उन्होंने मनुसन्तानों को एक सलाह दी, वह यह कि—

अर्था: पाद-रजोपमा गिरिनदी-वेगोपमं यौवनम्,
आयुष्यं जललोलबिन्दुचपलं फेनोपमं जीवितम्।
धर्मं यो न करोति निन्दितमति: स्वर्गार्गलोद्घाटनम्,
पश्चात्तापयुतो जरापरिगत: शोकाग्निना दह्यते ॥

जिस धन को तुम अपना सर्वस्व समझ बैठे हो वह पैरों की धूलि के समान है। जिस यौवन की उद्दाम तरंगों में धर्म और ईश्वर को भूल कर अविरत बहते चले जा रहे हो वह केवल पहाड़ी नदी के वेग के समान है। जो एक बार अनन्त शक्तियुक्त प्रबल झंझावात के समान आता है और दूसरे ही क्षण समाप्त हो जाता है। जिस आयु पर तुम इतराते हो दूसरों को ऊपर उठने से पहले कुचल देने की कोशिश करते हो और सोचते हो, मैं ही निरवधि काल तक इन समस्त भोगों का स्वामी बना रहूंगा, गलत है। याद रखो,

यह आयु चंचल जल की बूँद के समान है। और यह जीवन एक क्षणभंगुर पानी का बुदबुदा है। यदि ऐसी अवस्था में भी स्वर्ग की जंजीर खोल देनेवाले धर्म का आचरण नहीं करते तो अन्त समय में जब बुढ़ापा और मौत दोनों ही भूखे भेड़िये की भांति तुम्हारे ऊपर टूट पड़ेंगे तो पश्चाताप की लपटों से परिवेष्टित हो शोक की धधकती आग में जलकर क्षार हो जाओगे। और इस शोक की अग्नि में झुलसता हुआ मानव चीख उठता है—

जन्मेदं वन्ध्यतां नीतं, भव भोगोपलिप्सया।
काच मूल्येन विक्रीतो, हन्त ! चिन्तामणिर्मया॥

मेरा यह जन्म विविध भोगों की लिप्सा में व्यर्थ ही बीत गया। हाय मैंने अपना यह जीवन रूपी चिन्तामणि कांच के टुकड़ों पर लुटा दिया। किन्तु अब पछताए का होत है जब चिड़िया चुग गई खेत।

यौवन के सुरम्य कासार में कमल की भांति मुखड़ा खिलता है। बड़ी बड़ी आंखें पंखुड़ियों की समता करता है। इस कमल दल के भीतर अभिलाषाओं का भंवरा बैठा बैठा न जाने क्या क्या कल्पनाएं किया करता है। किन्तु होता क्या है ? इन कल्पनाओं की ऊहापोह समाप्त भी नहीं हो पाती कि मौत का मतवाला हाथी आता है और बुढ़ापे की सूंड़ से खींच कर उदरस्थ कर लेता है। "हा हन्त हन्त, नलिनीं गज उज्जहार।" ओह ! कितना दयनीय मानव जीवन है!! क्या इसी भांति विविध कल्पनाओं के वशीभूत हो, तज्जन्य अग्नि में जीवन को हुत कर देना ही जीवन है ?

याद रखो, जीवन मणि यों ही खो देने के लिये नहीं मिला है। और भोग ? ये तो कभी भी खत्म नहीं हुये। और न होंगे। बल्कि एक दिन ऐसा आयेगा जब हमीं समाप्त हो जायेंगे——

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ता, तपो न तप्तं वयमेव तप्ता,
कालो न यातो वयमेव याता, तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णा॥

ये समस्त भोग कभी भी नहीं भोगे जा सके हैं बल्कि हमें ही ये भोगते हैं। हम कभी भी तप को समाप्त न कर सके, बल्कि हम ही तपते तपते समाप्त (तप्त) हो गये। समय कभी नहीं समाप्त होता बल्कि हम ही समाप्त हो जाते हैं। तृष्णा कभी भी बूढ़ी नहीं हो सकी बल्कि इसके चक्कर में पड़कर हमारे ही बाल सफेद हो गये। (बूढ़े हो गये।)

और यह कामनाओं की तृष्णा ? इसे तो जितना ही तृप्त करने का प्रयत्न करोगे उतनी ही तीव्र वेग में भड़क उठेगी। घी छोड़ने से क्या आग की लपटें कभी शान्त हुई हैं ?

न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति।
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते ॥

स्मरण रहे, ये कामनायें समुचित उपकरणों से कभी शान्त नहीं होतीं। ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार आग की लपटें घी छोड़ने से ऊपर की ओर लपलपाती हुई बढ़ती हैं।

यह जीवन अस्थिर है, कबीर की भाषा में पानी केरो बुदबुदा कहा है।

इसी लिये उन्होंने एक स्थान पर यह सलाह दी है कि

किसी कार्य को यदि कल करना हो तो उसे आज ही कर डालिये। और जिसे आज करने की सोच रहे हैं उसे तुरन्त ही शुरू कर दीजिये। आखिर हाथ पर हाथ धरे क्यों बैठे हैं। कुछ इसी प्रकार के भाव एक संस्कृत सूक्ति में भी व्यक्त किये गये हैं। गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत—मानो मौत मेरे बालों को पकड़े खींच रही है अतः मुझे शीघ्र धर्म का आचरण करना प्रारंभ कर देना चाहिये। महर्षि व्यास ने महाभारत में मनुष्य को सचेत करते हुये कहा है—

तिष्ठन्तं च शयानं च मृत्युरन्वेषते सदा।
निर्वृत्ति लभते कस्मादकस्मान्मृत्युनाशितः॥

मनुष्य खड़ा हो या सो रहा हो— मृत्यु उसे सदा ढूंढती रहती है। जब इस प्रकार मनुष्य अचानक मृत्यु का ग्रास बन जाता है तो फिर न जाने क्यों निश्चिन्त सा बैठा हुआ है। धर्मराज युधिष्ठिर ने इसे संसार का सबसे बड़ा आश्चर्य कहा है:—

अहन्यन्यहनि भूतानि,
गच्छन्ति यम मंदिरम्।

शेषास्थातुमिच्छन्ति,
किमाश्चर्यमतः परम्॥

प्रतिदिन सहस्रशः व्यक्ति यमालय में प्रवेश करते हैं। फिर भी सायंकाल जो शेष रह जाते हैं—वे समझते हैं—हम अमर हैं। इससे बढ़कर इस संसार में और कौन सा आश्चर्य हो सकता है। एक अन्य श्लोक में युधिष्ठिर महाराज ने जीवन की वास्तविक स्थिति का चित्रण यों किया है:—

मासर्तु संज्ञा परिवर्तकेण,
सूर्याग्निना रात्रिदिवेन्धनेन।
स्वकर्म निष्ठा फल साक्षित्रेण
भूतानि कालः पचतीतिवार्ता॥

यह काल रूपी रसोइया बलपूर्वक सभी प्राणियों को पका रहा है। मास और ऋतु नामक कलछुल से वह सबको उलटता पलटता रहता है। सूर्य अग्नि के समान है। कर्म फल के साक्षी रात और दिन ईंधन बने हुये हैं। इन्हीं परिस्थितियों का भलीभांति अनुभव करके ही महात्मा कबीर ने इस जीवन को काल का चबेना कहा है। साथ ही इन झूठी तृष्णाओं में फंसे हुये मनुष्य को एक तीखी फटकार बताते हुये कहा है:—

झूठे सुख को सुख कहें, मानत हैं मन मोद।
खलक चबेना काल का, कुछ मुंह में कुछ गोद॥

जीवन का भयानक किन्तु ठीक चित्रण है। एक दिन आता है, जब मनुष्य इस स्थिति का अनुभव करता है, और वह अनुभव कबीर की ही भाषा इस प्रकार प्रकट हुआ है:—

हम देखत जग जात है जग देखे हम जांहि।
ऐसो कोई ना मिले जो पकड़ छुड़ावे बांहि॥

इसी अनुभूति का मर्मबेधक चित्र महात्मा कबीर ने एक स्थान पर और उपस्थित किया है। जिससे प्रभावित होकर मिट्टी भी कुम्हार से कहने लगती है:—

माटी कहे कुम्हार से तू क्यों रूँधे मोंहि।
इक दिन ऐसो आवेगो हूँ रूँधूगी तोहि॥

और यह अनुभूति तब और भी तीव्र एवं हृदय विदारक हो जाती है जब उपवन की अधखिली कलियां भी भयभीत होकर चीख पड़ती हैं:—

माली आवत देखकर कलियां करें पुकार।
फूली फूली चुन लई काल्हि हमारी बार॥

ओह! कितना दयनीय है यह जीवन! फिर भी हमें कुछ होश नहीं है। भोगवाद की मोहमयी हाला का प्याला पीकर उन्मत्त हैं। किन्तु यह भी स्मरण रहे:—

क्षिपसि शुकं वृषदं शक वदने,
मृगमर्पयसि मृगादन रदने।
वितरसि तुरगं महिष विषाणे,
निदधच्चेतो भोग विताने॥

अरे, तुम जो अपने मन को सांसारिक भोग विलास में रमा रहे हो, याद रखो! तोते को विलाव के मुख में फेंक रहे हो, हिरन को बघेरे के जबड़े में झोंक रहे हो और घोड़े को भैंस के सींगों पर पटक रहे हो।

अतः जागो, इस जीवन चिन्तामणि को यों ही मत खोओ। यह बड़े भाग्य से मिलता है। बार बार नहीं मिलता ईश्वर की कृपा से यह मिलता है। अतः इसे उन्हीं को अर्पण कर दो। इसीमें इसका कल्याण है। इसी में इसकी अवन्ध्यता है। इति।

# प्रकृति का पुजारी एक महान घुमक्कड़

लेखक
श्री हरिमोहनलाल श्रीवास्तव
एम. ए. एल. एल. बी. एल. टी.

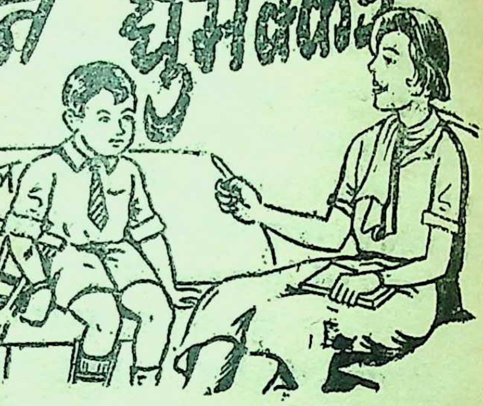

प्रकृति एक महान् शक्ति है, जिसके आगे बड़े-बड़ों ने शीश झुकाया है। प्रकृति की पूजा अपने आप में एक बड़ी आध्यात्मिकता है, जो हृदय को कल्मष निकाल फेंकने के लिये प्रेरित करती है। प्राकृतिक वैभव का उदार कोष बिना किसी भेद भाव को लिये हुए सभी प्राणियों के बीच समता की प्रतिष्ठा करता है। इसी लिये संसार के महान् विचारक प्राकृतिक सौन्दर्य पर मुग्ध रहे हैं।

अदम्य उत्साह और अटूट लगन के सामने शारीरिक हीनता ने सदैव हार मानी है। स्कॉटलैण्ड के पर्वतीय प्रदेश के एक वकील का बेटा कुछ लंगड़ा था। परन्तु यह लंगड़ा बालक विश्व का एक महान् घुमक्कड़ सिद्ध हुआ। प्रकृति के प्रति उसके प्रबल मनोयोग ने लंगड़ेपन के शारीरिक दोष पर भरपूर विजय दिलाई।

कुछ अच्छे संस्कारों के बीच पलने वाली उसकी जन्मजात प्रतिभा ने जब लेखनी का सहारा लिया, तो उसने अपने भ्रमण से जितनी कुछ सजीवता सहेजी, उसे जनसाधारण को बांट कर विश्व के विख्यात साहित्यकारों में अपना बेजोड़ स्थान बनाया।

लंगड़े बालक को प्रथम प्रबल प्रेरणा अपनी माता से प्राप्त हुई। उसकी माता उसे अतीत की कुछ रोचक कहानियां सुनाया करती थी। वाल्टर स्कॉट नाम का यह प्रतिभाशाली बालक उन चित्ताकर्षक कहानियों को बड़े चाव से सुनता था अद्भुत स्मरण-शक्ति से उसने कहानियों का एक वृहत कोष संचित कर रखा।

निश्चय ही उसकी स्नेहमयी माता ने अतीत के रोचक दृश्यों को अपने स्वाभाविक सौन्दर्य के साथ उसके सुकोमल मस्तिष्क-पटल के सामने प्रस्तुत करते हुए उसके मन में एक ऐसी भूख जगा दी, जो मरते दम तक शांत होने वाली न थी।

प्रकृति और परम्परा के लिये एक ललक लेकर वह लंगड़ेपन को एक दम भुला कर संसार-सौन्दर्य के लिये लालायित हो उठा। पितामह के फार्म की ताजी हवा में प्रारंभिक बाल्यावस्था के दिन बिताते हुए उसने उत्तम स्वास्थ्य और स्वस्थ मनोरंजन की शिक्षा प्राप्त की।

गड़रियों का प्रेम पात्र यह प्रसन्नचित्त बालक भेड़ों की संगति में घास पर लेट कर कल्पना के सतरंगी ताने-बाने बुना करता था। बूढ़े गड़रियों के पास वीरत्व के रोचक

लोकगीतों और सजीव लोक कथाओं का एक वृहत् भाण्डार था, जिससे वे उसका मनोरंजन करने के लिये सदैव प्रस्तुत रहते थे। बादामी बालों और हल्की नीली आंखों वाला यह लंगड़ा बालक जब छोटे घोड़े पर ऊबड़-खाबड़ चट्टानी भूमि पर दौड़ लगाता, तो उनका अपना मन भी तो मोह लेता था।

विधाता ने उसे जो लंगड़ापन दिया था, वह यहीं पर तो व्यर्थ हो जाता था—"मनके हारे हार है, मनके जीते जीत।"

पिता के साथ एक उम्मीदवार के रूप में कार्य करते हुये उसे कुछ थोड़ा सा पारिश्रमिक ही मिल पाता था। अतः एक बैठक में १२० पेज तक लिखने की अद्भुत गति लेकर उसने 'सीमान्त के अभियान' के लिये कानूनी कागज-पत्रों की नकल से अच्छा पैसा कमाया।

जब भी कभी उसे कुछ अवकाश मिल पाता, वह आस-पास के ग्रामों में घूमने चल देता। भला यह कैसा लंगड़ापन था, जो एक दिन में तीस मील तक चल सकता था। उसकी इस घुमक्कड़ प्रवृत्ति को उसके पिता से कठोर फटकार मिलती वे उसे चल-फिर कर माल बेचने वाले फेरीवाले के काम के योग्य बताते।

किन्तु यह महान् घुमक्कड़ तो अपनी अपूर्व साधना से एक विख्यात साहित्यकार बन कर अमर हो गया। जब उसने अपनी अर्जित पूंजी का एक अच्छा कोष देखा, तो जग को अपनी प्रतिभा का प्रसाद बांटना प्रारम्भ किया। 'सीमान्त प्रदेश के गायन' के तीन वर्ष बाद ही एक पद्यबद्ध आख्यान, के

रूपमें 'अन्तिम चरणका गायन' आया और उसने वाल्टर स्काट को एक ही रातमें विख्यात कर दिया, उसकी अपूर्व सफलता ने 'मार्मियन' जैसी कुछ लम्बी पद्य बद्ध कथाओं के लिये पथ प्रशस्त किया।

बढ़ती हुई समृद्धि ने उसे एक जंगली क्षेत्र में एक जागीर खरीदने के लिये उत्साहित किया। प्रकृति की गोद में पलने वाले इस महान् घुमक्कड़ को इसके द्वारा बागबानी की व्यस्तता भी तो मिल गई। जब तक उसने दिन-दिन भर काम करके वहां पर सुन्दर उद्यान, हरे-भरे चरागाह और आल्हाद दायक निकुंज उगा लिये, वह संतोष नहीं कर सका।

उसके जीवन का महान् लक्ष्य अभी भी पूर्ण होने को था। मछली पकड़ने के कांटे की खोज करते हुये उसे अपनी मेज की दराज में से एक अधूरे कथानक की अपनी पांडुलिपि मिल गई। वह जुट गया, और तीन सप्ताह में ही 'वेवरली' नामक अपने उपन्यास को उसने पूरा कर लिया। न-जाने कैसी क्या सफलता मिले—इस विचार ने उसे लेखक रूप में अपना नाम प्रकट करने से रोक दिया।

परन्तु इस ऐतिहासिक उपन्यास ने तो इतिहास की सूखी हड्डियों में जान डाल कर दिखाई थी। अतः उसका जोरदार स्वागत हुआ, और स्काट एक 'अज्ञात महान्' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। फिर तो उसने कई उपन्यास लिखे, और एक सामन्त का सम्मान प्राप्त करने के साथ ही उसने अच्छी सम्पत्ति अर्जित की।

किन्तु व्यवसाय-बुद्धि की व्यावहारिकता से वंचित रह

कर यह महान् घुमक्कड़ पचपन वर्ष की अपरिपक्व अवस्था में नितान्त निर्धन हो गया। लक्ष्मी की चपलता ने उसकी अपनी प्रकाशन संस्था 'बैलेन्टाइन एण्ड कम्पनी' को असफल बना दिया। अपनी समस्त सम्पत्ति देकर भी वह ऋण का एक अंश ही चुका सकता था। शेष के भुगतान को वह सहज ही एक छोटी-सी चाल से बचा सकता था। किन्तु अतीत के मोहक दृश्यों से जिसने वीरता और सचाई की शिक्षा पाई थी, वह आज के युग की भ्रष्टाचारी चालबाजी से दिवालिया नहीं बन सकता था। उसने १४ घंटे प्रति दिन लिख कर ऋण की एक अच्छी निधि चुका दी।

किन्तु वह एक बड़ा दबाव था। वह दिनों दिन दुर्बल होता गया। अन्त में पक्षाघात के आक्रमण ने उसे इटली के जलवायु में निवास के लिये बाध्य किया। वहां भी उसके मित्र जब कभी लोग उसे एक कुर्सी पर बैठा कर पास-पड़ोस के दृश्यों को दिखाने के लिये ले जाते थे।

भ्रमण को व्यसन बनाते हुए प्रकृति का वरदान संसार के अपने पाठकों को उदार हस्त से लुटाने वाला यह घुमक्कड़ साहित्यकार अन्त में अपने देश में ही चिर-विश्रांति पाने के लिये आ गया। अपने प्रिय झरने के किनारे ड्राइबर्ग गिरजे के खण्डहरों में इस महान् घुमक्कड़ ने शांतिपूर्वक धरती का बिछौना और धरती का ओढ़ना ग्रहण किया। स्काटलैण्ड का यह महान् साहित्यकार विश्व का एक अद्भुत कलाकार बना। इतिहास के वीरता भरे पृष्ठों को कल्पना के रंग से वह ऐसा सुन्दर रंग गया है कि उसके चित्र सदा के लिये अमर हो गये हैं।

# तुलसी जस भवितव्यता

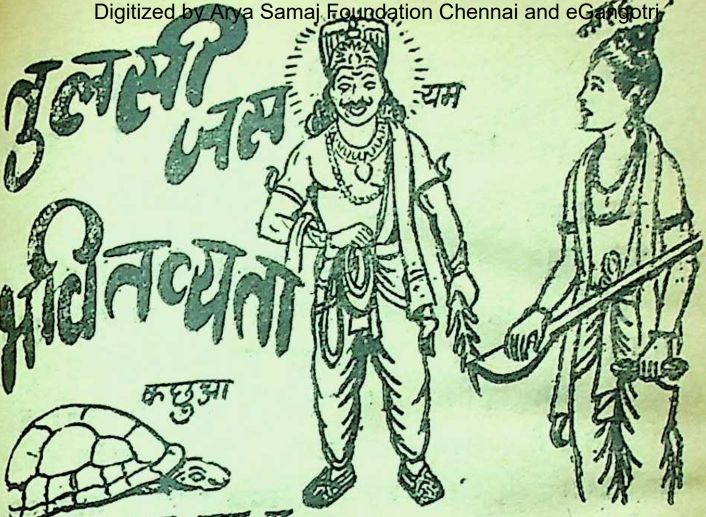

अनुपम, एम. ए.

तुलसीदासजी ने रामचरितमानस में लिखा है:—

तुलसी जस भवितव्यता वैसेहि मिलई सहाई
आपन आवे ताहि पे ताहि तहां ले जाई।

भले ही आज के पढ़े लिखे लोग उनकी इस उक्ति में विश्वास न करें किन्तु यह सत्य है कि उन्होंने इन पंक्तियों को काफी सूझ-बूझ लेकर ही लिखा है। बीसवीं शताब्दी में आज जो कुछ भी हो रहा है वह कुछ नया नहीं है। जिसे हम विज्ञान की महिमा मानते हैं वह पहले सामान्य थे। साधारण सो योग क्रिया के बल से एक स्थान से लेकर दूसरे स्थान की आंखों देखी घटना मालूम की जा सकती थी, की जाती भी थी।

खैर तो बात चल रही थी तुलसीदास की उपरोक्त

उक्ति की। उसकी सत्यता को यदि हम पूर्वकाल की इस घटना को लेकर परखें तो अतिशयोक्ति का अंश भी न मिलेगा।

घटना इस प्रकार हैः—

एक कछुए और गरुड़ की घनिष्ट मित्रता थी। दोनों एक दूसरे के शुभचिन्तक थे दोनों एक दूसरे के दुःख में समानुभूति रखते थे। कछुए का अन्त जब निकट आ गया तो उसके अंग शिथिल पड़ने लगे। पानी में गहरी डुबकी लगाने तक में असमर्थ हो गया, क्योंकि सांस की गति उखड़ी उखड़ी सी थी। गरुड़ एक सच्चे मित्र के नाते उसकी देख रेख में लगा रहता। फिर भी जीवन यापन की सामग्रियों को जुटाने इसे इधर उधर जाना ही पड़ता था और तब वह मन पर पत्थर रखकर कछुए को अकेला छोड़ कर जाता था।

उस दिन जब गरुड़ को कछुए के पास से जाना पड़ा तो उसका मन कुछ अशान्त सा था। मन तो नहीं चाहता था कि वह कछुए को छोड़कर कहीं जाए, किन्तु न केवल उसकी वरन् कछुए की क्षुधा तृप्ति के हेतु जाना आवश्यक मान वह वहां से चला।

उसे वहां से चले कुछ ही समय बीता होगा कि यमराज और नारदमुनि उधर से जा निकले जिधर कछुआ जीवन और मृत्यु से संघर्ष कर रहा था। यमराज ने उस कछुए को देखा तो क्षण भर के लिये उन्होंने कुछ सोचा और बरबस हंस पड़े।

नारद मुनि ने यमराज को हंसते देखा तो अचकचा गए। समस्त जीवों को अपने कृत्यों से रुलानेवाले यमराज हंस क्यों रहे हैं यह पूछे बिना उनसे रहा न गया। पूछ ही बैठे, 'धर्मदेव आपका विहंसना और वह भी अचानक मुझे विस्मय में डाल रहा है। यहां तो कुछ ऐसी वस्तु नहीं है जिसे देखकर आप जैसे गम्भीर प्रकृति के व्यक्ति को भी हंसी आ जाए। क्या आश्चर्य आपने देख लिया देव, तनिक मुझे भी तो सूचित करें।'

धर्मराज ने कहा, 'देवऋषि तनिक उस ओर दृष्टिक्षेप कीजिये तो!'

नारद जी ने देखा एक कछुआ अचेतन अवस्था में पड़ा है। बोले, "कच्छप है कदाचित् शिथिलता से ग्रस्त हो गया है।'

'मेरे हंसने का कारण यही है देवऋषि'

नारदजी की भंगिमा तनिक कुंचित हुई, शुष्क स्वर में बोले, धर्मराज यदि आप ही निर्बलों को असहाय अवस्था में देखकर इस प्रकार उपहासजनक हंसी हंसेंगे तो साधारण प्राणियों का क्या होगा। मानव जाति जो उत्तरोत्तर स्वार्थी एवं अधर्मप्रिय होती जा रही है उनमें तो आपकी यह हंसी एक गलत उदाहरण बन जाएगी और वह भी दीन अनाथों की विवशता और असहायता पर न केवल हंसी उड़ायेगी वरन् उनका शोषण भी करने लग जाएगी।'

यमराज ने नारद के स्वर की शुष्कता समझी और संकुचित हो उठे। स्वर में गम्भीरता का पुट देकर बोले,

'अन्यथा न समझिये मुनिराज, मेरी हंसी का कारण यह नहीं है कि मैं उसकी खिल्ली उड़ा रहा हूं। प्रत्युत बात यह है कि कछुए का यह अन्तिम दिवस है। अब से दो घड़ी बाद मेरे दूत आकर इसके प्राण बांध ले जायेंगे। किन्तु आश्चर्य तो मुझे यह होता है कि इसकी मृत्यु सामने के चार माले के मकान के चौथे माले से गिर कर होनी है। जबकि यह कछुआ तो हिलडुल भी नहीं पा रहा है फिर किस प्रकार यह वहां तक पहुंचेगा और किस प्रकार वहां से गिर पायगा। आश्चर्य तो मैं विधना के लेख पर कर रहा हूं जो मुझे गलत होता सा लग रहा है।'

'क्या कहा धर्मराज विधाता ने इसकी मृत्यु चौथे माले से गिरने पर लिखी है!'

हां मुनिराज। यही तो आश्चर्य है।'

'है तो आश्चर्य की ही बात। किन्तु विधना का लेख न तो मिथ्या ही हो सका है, और न ही मिटा सका है कोई। अवश्य कोई चमत्कार होगा और यह रेंग सकने में अयोग्य कच्छप भी वहां जा ही पहुंचेगा।'

'यही असम्भव को सम्भव कर पाने का विचार कर रहा हूं।' यमराज बोले।

यमराज और नारद मुनि तो आगे बढ़ लिए मन में कौतुहल दबाए। इधर काम पर जाते गरुड़ के मन में बीच राह में विचार आया कि बेचारा कछुआ असहाय अवस्था में पड़ा हुआ है। न जाने किस असावधान परों के तले आकर कुचल न जाए। उसका मन संतप्त हो उठा। शीघ्रगति से

वापस आया। और वापस आकर कछुए से बोला, 'मित्र यहां राह में आशंका है कहीं किसी के पैरों तले आकर दब न जाओ। कहो तो सामने के मकान की मुंडेर पर बिठा दूं तुम्हें। खुली धूप से शरीर में फुरहरी भी आएगी, कुछ स्वस्थता अनुभव करोगे स्वयं और निरापद भी रहोगे।'

कछुए की समझ में बात आई और उसने अपनी सहमति दे दी। गरुड़ ने कछुए को यत्नपूर्वक अपने पंजों में सम्हाला और उड़कर मकान की चौथी मंजिल की मुडेर पर रख दिया। उसके बाद वह वहां से फिर खाने की सामग्री जुटाने चला गया।

समय अपनी गति से आगे बढ़ा। कछुआ अपने आप को धूप में रखे थे। धीरे धीरे उष्णता का ताप अधिक बढ़ जाने से उसने प्रयास किया कि कुछ अंश एक ओर को हटकर साये में विश्राम ले।

विधाता को कुछ और ही मजूर था। कछुआ अपनी अर्ध निमीलत आंखों से यह न देख सका कि वह किधर बढ़ रहा है—जिसे वह साया समझे है वह साया न होकर खाली जगह है नीचे की। और वह अपने बढ़ने के उपक्रम में नीचे जा गिरा। नीचे आते आते उसके प्राण पंखेरु उड़ गए।

इस घटना को लोग कपोल कल्पना भी कह सकते हैं। किन्तु यह एक उदाहरण है। यदि आजकल की अचानक हो जाने वाली मृत्युओं को देखा जाये तो यह बात सच लग सकती है। नित्य प्रति समाचारों में पढ़ने को मिलता है कि अमुक स्थान पर नाव उलट जाने से ४० व्यक्ति डूब

गये। अमुक स्थान पर विस्फोट हो गया और उसमें १४ व्यक्ति मर गये, अमुक स्थान पर भूकम्प आया, अमुक स्थान पर नई बनी इमारत गिर पड़ी, अमुक खदान में इतने मनुष्य फंस कर मर गये। कहीं कुछ, कहीं कुछ। प्रायः नित्य ही विश्व के किसी न किसी कोने में कोई न कोई दुर्घटना होती ही रहती है जो सर्वथा अप्रत्याशित होती है। यदि मनुष्य यह जान पाये कि अमुक स्थान पर प्राणहानि का भय है तो वह वहां कदापि न जाये। साहसी से साहसी व्यक्ति भी ऐसी अप्रत्याशित मृत्यु को स्वीकार करना नहीं चाहेगा।

विधि के विधान से अनजान लोग मरते हैं। बिना किसी प्रकार की पूर्व आशंका के मरते हैं। लेखक को स्पष्ट अनुभव है कि कहीं कहीं कुछ व्यक्ति ऐसे भी मर गये हैं जहां उनकी अनुपस्थिति अपेक्षित ही नहीं थी।

एक महाशय जो धर्म-कर्म भाग्य-ज्योतिष आदि में तनिक भी विश्वास नहीं करते थे। उन्हें हमारी मौजूदगी में एक व्यक्ति ने कहा, आप के नक्षत्र आजकल बुरे है। अच्छा हो सावधानी से रहें।'

वह महाशय अपने स्वभाव से विवश थे, अड़ गये, परिहास भरे स्वर में बोले, 'जीवन का तो भय नहीं है।'

'नहीं जीवन से तो भय नहीं है लेकिन संकट कुछ ऐसा है कि यदि आप हठ कर गये तो जीवन पर भी बन सकती है वैसे आर्थिक हानि यथेष्ट उठायेंगे।'

उन महाशय ने मुंह बिचका दिया था। चार दिन बाद ही उन्हें आवश्यक कार्य से कलकत्ता जाना था। गाड़ी में सीट सुरक्षित करा चुके थे। जाना टल नहीं सकता था फिर

भी हितैषी के नाते उन्हीं ज्योतिष-गणित ज्ञाता ने कहा था, 'यूं आपके जाने का प्रयत्न निष्फल जाएगा। फिर आप अपनी ओर से हठ छोड़कर जाने का प्रोग्राम टाल दें।'

लेकिन वह माने नहीं थे। ठीक गाड़ी छूटते समय उन्हें याद आया कि टिकट तो बान्द्रा (अपने घर) पर ही छोड़ आये हैं। बोरीबन्दर से घर तक क्या आ पाते? विवश हो गाड़ी छोड़नी पड़ी थी। और उसके बाद जब पता चला गाड़ी इटारसी के पास दुर्घटना ग्रस्त हुई है तो उन्होंने भाग्यपर विश्वास करना पड़ा। करते भी क्यों न हानि भी उन्हें दस बारह हजार से कम नहीं हुई थी।

ऐसी ही घटनाएं उल्टी भी होती हैं। नहीं जाना होता है तो भी होनी उन्हें निरुद्देश्य ही उस स्थान तक खींच ले जाती है।

दूर क्यों जायें? अपने प्रिय नेता श्री नेहरू को ही क्यों न लें। चार दिन देहरादून में रहें, पूर्ण स्वस्थ होकर वापस दिल्ली लौटे किन्तु मृत्यु उनकी प्रतीक्षा कर रही थी और वह वहां पहुंच गये। यह भी हो सकता था कि देहरादून में रुक जाते। किन्तु वही बात 'भवितव्यता' तो दिल्ली में घटनी थी तो देहरादून में कैसे रह जाते?

और अमेरिका के राष्ट्रपति केनेडी का टैक्सास में खींच कर ले जाने वाली अज्ञात शक्ति भी तो भवितव्यता ही थी। अन्यथा वह अपने स्नेहीजनों का आग्रह टालकर भी वहां क्यों पहुंचते? वही गोलियां जो केनेडी के लगने पर उनकी मौत का बहाना बन गई, गवर्नर कानोली के लग कर भी उनको कुछ न कर सकीं।

बात इतनी ठोस है कि उसे केवल अंध विश्वास कह कर टाला नहीं जा सकता, विश्वास करना ही होता है।

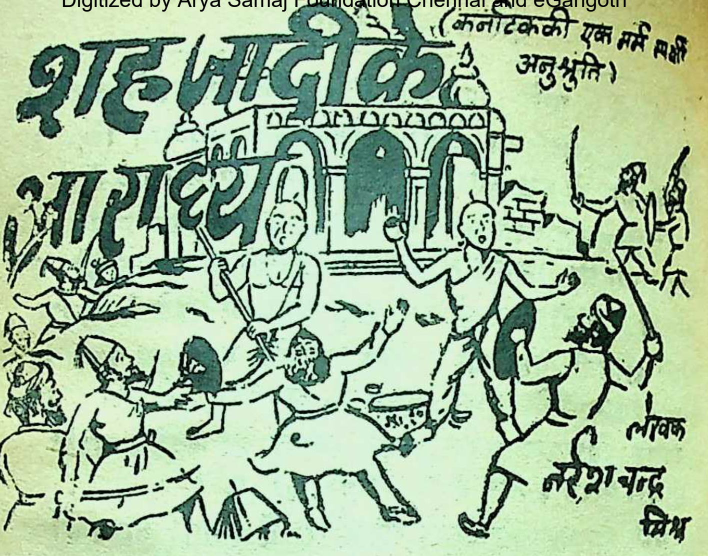

# शहजादी के आराध्य

(कर्नाटककी एक मर्म स्पर्शी अनुश्रुति)

लेखक
नरेशचन्द्र मिश्र

[ दक्षिण के प्रसिद्ध वैष्णव केंद्र मेलकोट-मन्दिर में भगवान् चेलुवरय पिल्लई...चतुर्भुज विष्णु के चरणों में एक मुस्लिम उपासिका की मूर्ति प्रतिष्ठित है। इस मूर्ति ने अपने अतीतमें जिस हृदयग्राही अनुश्रुतिकी सृष्टिकी है,वह आज भी धर्मांधिजनों को शिक्षा दे सकती है वह पुकार-पुकार कर कहती है कि जो भी प्रभु का नाम निष्ठा पूर्वक लेता है, उसे ही वे गले लगाते हैं। प्रभु अपने भक्तों की प्रार्थना से रीझते हैं, उसके धर्म से नहीं। —सम्पादक]

"एम्मादु...एम्मादु"

अर्धरात्रि के सन्नाटे को चीर कर एक करुण स्वर गूंज उठा। पवित्र वैष्णव तीर्थ मेलकोट यह स्वर सुन कर चौंक उठा।

तलवार की चमक से अनभिज्ञ वैष्णव पुजारी, जिनका

सारा जीवन ही विश्वम्भर विष्णु की पूजा-प्रार्थना में बीत रहा था, आतुर गति से विशाल मंदिर के गोपुरम की ओर दौड़ चले।

शंखध्वनि, कोलाहल और करुण प्रार्थनाओं से मेलकोट गूंज उठा।

कुछ ही क्षण बाद निकट की पहाड़ियों पर सहस्रों मशालें चमक उठीं। निस्तब्ध रात की काली चादर जलाते, दिल्ली साम्राज्य के असंख्य अश्वारोही विजय घोष के साथ तूफ़ानी चाल से आगे बढ़े जा रहे थे।

और देखते-देखते चमकीले नेजोंवाले इन मुस्लिम सैनिकों ने मेलकोट की छोटी-सी बस्ती घेर ली। प्रतिरोध करने वाले वीर क्षत्रियों का वहां नाम न था। सल्तनत के सिपाही गलियों और बाजारों को रुधिर से रंगते मन्दिर पर टूट पड़े।

उनके नेता एम्मादु-मुहम्मद ने गाजी का पद पाने के लोभ से निरीह वैष्णवों के रक्त से अपनी तलवार की प्यास बुझाई।

आक्रमण का दूसरा लक्ष्य पूरा करने के लिये मन्दिर सहित समस्त नगरी को निराश भाव से लूटा गया।

पवित्र नगरी को महाश्मशान का रूप दे कर एम्मादु वापस लौटा तो वह बुरी तरह श्लथ हो रहा था। तीव्र मदिरा को छक कर पीने के बाद खुम्मार की जो लहर शरीर की नस-नस तोड़ कर रख देती है, कुछ ऐसी ही लहर एम्मादु अपने शरीर में अनुभव कर रहा था।

* * *

आक्रमण की झंझा के बाद मेलकोट का शांत आकाश, आकाश की ओर गर्व से सिर उठाये खड़ा चेलुवरय पिल्लै मंदिर का भग्न शिखर और शिखर को देखकर हिमालय-सी चिरंतन आस्था को ढाढ़स बंधाते असंख्य विष्णु-भक्त।

चक्र सुदर्शनधारी की भुवन मोहन मूर्ति के अभाव में नगर निर्जीव था। दूर-दूर तक नगरवासियों का दल बिखर कर अगम्य वनों और दुर्गम पहाड़ी रास्तों में ढूंढ चुका था, केवल इसी दुराशा में कि आक्रामक पस्मादु ने उस पवित्र मूर्ति को शायद कहीं छोड़ दिया हो। किंतु दुराशा के बीज अनुर्वर होते हैं। उनमें फल कहां?

और एक शाम विग्रह के अभाव में सांध्य आरती करते पुजारी को लगा कि मूर्ति अब कभी न मिलेगी। भग्न आस्था को संजो कर वह अब तक साकार विष्णु का निराकार ध्यान करता आया था। किंतु गोधूलि की मटमैली-सी धुंध उसके हृदय में विराजे चेलुवरय की मूर्ति को ढंके ले रही थी।

"प्रभु......पुराण पुरुष......विश्वंभर कहां हो तुम!" आरती को हवा में घुमाता पुजारी बिलख पड़ा।

'मैं यहां हूं भक्त!'

सहज स्निग्धवाणी सुनकर पुजारी ने आंखें खोलीं तो परमवैष्णव श्री रामानुज भगवत्पाद शांत-मुस्कान लिये हाथ से अपने हृदय की ओर संकेत कर रहें थे।

आरती में उपस्थित सहस्रों भक्तजनों की आंखों से

आंसुओं की गंगा जमुना उमड़ पड़ी।

पुजारी ने कंपित हाथों आरती महात्मा रामानुज की ओर बढ़ा दी, 'अब तो हृदय में स्थित मूर्ति भी धुंधली हो गयी देव, मेरे प्रभु कहां गये ? उनके दर्शन कराइये अन्यथा मैं अन्न की ही भांति जल भी त्याग दूंगा।"

'तुम्हारे हृदय की मूर्ति कौन खंडित करेगा। किसी भी यवन के खड्ग में यह शक्ति नहीं। तुम्हारी आस्था की मर्यादा से भरतखंड का भाग्य बंधा है। सहज ही उससे च्युत हुये तो आर्यावर्त का भविष्य संदिग्ध हो उठेगा।'

आचार्य रामानुज ने आरती पर हाथ फेर उसे नेत्रों से लगाते हुये कहा।

'क्षमा करें आचार्य, मैं विह्वल हो उठा था।' पुजारी ने उत्तरीय से आंखें पोंछीं और गम्भीर स्वर में बोला, 'किंतु मूर्ति का प्राप्त होना आवश्यक है। यह मेरी नहीं समस्त वैष्णव जनों की भक्ति की परीक्षा है।'

'हम उस परीक्षा में उत्तीर्ण होंगे।' श्री रामानुज ने प्रणाम करने के लिये गर्भगृह की ओर जाते हुये कहा 'तुम जैसे सेवकों की प्रार्थना ने ही भगवान् को नीचातिनीच योनियों में अवतार लेने को विवश किया है। इस बार भी तुम्हारा हठ पूर्ण करने के लिये ही उन्होंने मुझे भेजा है।"

'आप का कथन सत्य है भगवत्पाद ?'

'अवश्य भक्तराज, चेलुत्ररय पिल्लई ने मुझे स्वप्न में अपना संकेत दिया है। वे इस समय दिल्लीश्वर के कोष में

विराज रहे हैं । तुम मेरे साथ चलकर स्वयं उनके दर्शन कर सकते हो ।'

* * *

'मूर्ति दे दीजिये सम्राट, उसमें जितना सुवर्ण, आभूषण है उसका सौगुना मैं आपको भेंट दूंगा ।' पुजारी का स्वर दीनता के छोर पर पहुंच चुका था ।

'नामुमकिन ! बुत शिकन कभी बुत फरोश नहीं होता ।' सुल्तान की गर्वित आंखें सारे दरबार को घूर आयीं 'यह जवाब मेरा नहीं मरहूम जेहादी सुल्तान महमूद इब्ने सुबुक्तगीन का है ।'

उसके स्वर से हजार खंभों वाला विशाल दरबार प्रतिध्वनित हो उठा । मेलकोट से आए ब्राह्मणों के चेहरे विवशता से बुझ गये ।

तभी पीछे खड़े श्री वैष्णव मत के आदि संत ब्राह्मणों को हटा कर आगे आये और निर्भीक दृष्टि से सुल्तान को घूरने लगे ।

'मूर्ति का खंडन आपके सामर्थ्य में नहीं सम्राट ! आप व्यर्थ हठ करते हैं । देवाधिदेव अछेद्य हैं, अभेद्य हैं ।'

अट्टहास कर उठा सुल्तान, 'यह तुम्हारी पाक किताबों की आवाज होगी साधू, लेकिन यह आवाज बेजान है ।'

'नहीं यह सृष्टि का आदि स्वर है, यह कभी मंद नहीं पड़ता । विश्वास न हो तो इसे झुठला कर देख लीजिये ।'

चुनौती भरा स्वर, विश्वास की सिलवटों में सिमटा माथे का तिलक । सुल्तान का मन अनजाने ही कांप उठा ।

वह एक क्षण रुक कर बोला, 'बुत मेरे खजाने में है। मैं उसे इसी दम मंगा कर चूर-चूर कर दूंगा।'

'मूर्ति आप के कोष में नहीं है। विश्वास न हो तो देख लीजिये।'

सुल्तान उठा। सामने खड़े सारे दरबारी हाथ बांधकर सिर झुकाये रह गये। केवल वैष्णव संत का मस्तक अभी भी गर्व से चुनौती देता उसे घूर रहा था।

"मैं उस बुत को ढूंढ निकालूंगा और तुम्हें उसकी इबादत के लिये खजाने में चलना होगा साधू।' सुल्तान ने आगे बढ़ते हुये कहा, 'मैं चाहता हूं कि टूटने से पहले तुम्हीं उस बुत का मर्सिया पढ़ो।'

o o o o

सुल्तान समेत बड़े-बड़े अमीर उमरा, दीवान और कोषरक्षक खोज कर थक गये, किन्तु चेलुवराय पिल्लई का पता न लगा। मेलकोट की लूट में मिला एक-एक सामान फेहरिस्त के अनुसार खजाने में मौजूद था। केवल विष्णु की वह मूर्ति नटनागर का छल प्रदर्शित कर, जाने कहां चली गयी थी।

विवश होकर सुल्तान गरज उठा, उस नाचीज बुत को तुरंत मेरे हुजूर में पेश करो। जिसने उसे चुराया होगा मैं उसे सजाए मौत दूंगा।'

हँस पड़े श्री रामानुज, 'मृत्यु का भय उसे नहीं है। वह तो भगवान् का दर्शन पाते ही भय और लज्जा के बंधन तोड़ चुकी है। वह जन्म जन्मांतर से भगवान् के इसी रूप की

प्रार्थना कर रही थी।

'कौन.........तुम किस की बात कर रहे हो साधू।'

'आप की प्रिय पुत्री की।' हंस पड़े वैष्णव संत, 'आश्चर्य है सम्राट, जिसे खंडित करने को आपकी बांहें फड़क रही हैं, वह उसी की छवि निहारने में क्षुधा निद्रा तक बिसर चुकी है। उसी की प्रार्थना हेतु वह ध्यान लगाए बैठी है।

'तुम जादूगर मालूम पड़ते हो साधू।' सुल्तान ने लपक कर रामानुज को झकझोर दिया, 'लेकिन मैं तुम्हें यों ही नहीं छोड़ूंगा। तुम्हें हरम में चल कर अपनी बात का सबूत देना होगा।'

शाही हरम के कोने में स्थित शाहजादी का कक्ष। शाहे हिंद अमीर उमरा और दरबारियों के साथ कक्ष के फाटक पर पहुंचा, तो पहरे पर तैनात तातर स्त्री बदहवास-सी अंदर की ओर भागी।

सुलतान ने पीछे चल रहे गूंगे-बहरे हब्शी अंग-रक्षक को संकेत किया। उन्होंने पलक मारते झपट कर तातार द्वार-रक्षिका को दबोच लिया। सुलतान की अंगारे-सी दहकती आंखें द्वार रक्षिका पर स्थिर हो गयीं; 'तुम्हें पहले से दौड़कर शाहजादीको मेरी खबर देने की जरूरत नहीं। मैं आज उसकी असली सूरत देखना चाहता हूं।'

और वह लूं के तपे झोके-सा अन्दर चला गया। संगमरमर से नहाये चौकोर कक्ष के कोने में ऊदबत्तियां और धूप का मीठा धुंआं उड़ रहा था। मीठे धुएं के झीने पर्दे के पार चंदन के सिंहासन पर चतुर्भुजी विष्णु की सुवर्ण मूर्ति दिव्य प्रभा-

मंडल का आभास दे रही थी। मूर्ति के अगल-बगल खड़ी दो खवासनें सुरागाय के चंवर से भगवान चेलुवरय पिल्लई को पंखा कर रही थीं।

'गुल-सनोवर।' चीख पड़ा सुल्तान। दोनों खवासनों ने चंवर डुलाना बंद कर थरथर कांपती गर्दनें झुका दीं।

पीछे खड़े वैष्णव संत मुस्का दिये,' सेविकाएं निर्दोष हैं, सम्राट, उन्होंने स्वामिनी की आज्ञा का पालन किया है।'

'लेकिन यह कुफ्र है, यह ऐसा कुसूर है जिसकी सजा सिर्फ मौत ही हो सकती है।' और वह खवासनों की तरफ घूम पड़ा, तुम लोग नहीं जानतीं कि बुतपरस्ती पाक इस्लाम की रू से जुर्म है।'

लड़खड़ाये स्वर में गुल बोली,' शाहजादी का हुजूर हुक्म…………

'खामोश, कहां है शाहजादी।'

'वे पूजा के लिए गुस्ल करने गई हैं।'

'शिद्दत की इस सर्दी में' फुसफुसाया सुल्तान फिर अपने को संयत कर पूछ बैठा, 'शाहजादी ने यह बुत कहां पाया?'

'उन्हें सपना हुआ था, वे रातो·रात उसे खजाने से उठा लाई और……और……

'बयान जारी रहे।'

खवासन शाहंशाह को समझाने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं सोच पा रही थी, और वे अब इसी बुत की खिदमत में सारा दिन गुजार देती हैं। वे इसे नहलाती हैं, खाना खिलाती हैं, इसके लिए गीत गाती और इसी का नाम जपती हैं।'

'बस, बस' सुलतान ने हाथ हवा में उठाये और आँखें बंद करलीं, 'साधू, तुमने इन्द्रजाल करके मेरी बेटी के दिमाग पर काबू पा लिया।'

संत रामानुज मुस्कराये, 'आपका विचार सत्य हो, तब भी मूर्ति हमें दे दीजिए सम्राट। मूर्ति प्राप्त हो जायगी तो यह इन्द्रजाल स्वयं समाप्त हो जायगा।'

'तुम ठीक कहते हो। ले लो अपना बुत और शाहजादी के लौटने से पहले ही हरम से बाहर हो जाओ। हरम ही नहीं तुम दिल्ली से भी बाहर चले जाओ। जल्दी से जल्दी। शाही हुक्म से तुम्हें दक्कन पहुंचाने के लिए तेज से तेज सवारी दी जायगी। जाओ अभी जाओ।'

और सम्राट सिर पकड़ कर पास रखे रुपहले मसंद पर बैठ गया।

* * *

'गुल……सनोबर। लहराते गेसु से शबनम-जैसी बूंदे छिटकाती शाहजादी चीख पड़ी।

'हुक्म हुजूरेवालिया।'

'मेरे विष्णु भगवान्?'

'उन्हें सुलतान के हुक्म से पहुंचा दिया गया।'

'पहुंचा दिया गया……कहां?' शाहजादी का चेहरा फक पड़ गया।'

'मेलकोट के मन्दिर में, जहां से वे लाये गये थे। गुल की ठंडी आवाज बड़ी कठिनता से निकल सकी। मूर्ति के प्रति शाहजादी के सहज, अकुण्ठ और तन्मय स्नेह से वह

अपरिचित नहीं थी ।

'गुल, सद्र ड्योढ़ी को जाकर मेरा हुक्म दो । मुझे एक तेज हवादार घोड़े की जरूरत है ।'

'आप ड्योढ़ी पर नहीं जा सकतीं आप अपने महल से बाहर कदम नहीं रख सकतीं । मैं भी नहीं जा सकती, सुल्तान का हुक्म है ।'

'गुल, आह मैं मर जाऊंगी, मर जाऊंगी मैं ।'

और शाहजादी कटे वृक्ष-सी अचेत गिरी । वह होश में आई तो दूर लश्कर छावनी में दोपहर रात गये का गजर बज रहा था । पलंग के पास दवाओं के प्याले और खरल रखे थे । यह शाही हकीम के आने की सूचना थी ।

रेशमी झीना पर्दा हटाकर शाहजादी बाहर आयी । कक्ष में घोर अन्धकार था । सम्मोहित–सी चाल चलती वह फाटक तक गयी । हब्शी ड्योढ़ीदार ऊंघ रहा था ।

वह विचित्र हंसी के साथ फुसफुसाई, कंस के कैदखाने से तुम इसी तरह निकल गये थे न । मैं भी निकल जाऊंगी । मुझे कोई ताकत रोक नहीं सकती । मुझे शक्ति दो प्रभु, मैं तुम्हारा नाम जपती हूं । तुम्हारा भजन गाते हुए ही मैं बाहर निकलूंगी । अपने नाम की लाज रखना ।

और तीव्र गति से झटपटाती हुई वह हरम के सद्र फाटक पर पहुंची । सामने ही एक कद्दावर अरबी नस्ल का घोड़ा मध्य रात्रि की हवा में टापें पटकता खड़ा था ।

शाहजादी दौड़ती हुई उसके पास गई । उसके ओंठ निरंतर प्रभु का ही नाम बुदबुदा रहे थे । वह उछलकर घोड़े की पीठ

पर जा बैठी।

*   *   *   *

महीनोंके पश्चात् मेलकोटकी धरती पर निराशाकी घटाएं चीर कर आशा और प्रफुल्लता का सूर्य चमका था।

वेद ध्वनि और शंख, घण्टे, तुरही, नगाड़ों का नाद दूर-दूर तक पहाड़ियों में प्रतिध्वनित हो रहा था, मंदिर के द्वार पर शहनाई गूंज रही थी।

अन्दर वैष्णव संत रामानुज वेलुवरय पिल्लई की भव्य मूर्ति की पुनर्प्रतिष्ठा कर रहे थे।

तभी निकट का पर्वतीय मार्ग घोड़े की टापों से चौंक उठा। मन्दिर में एकत्रित भक्त जन टापों की इस समवेत ध्वनि से सावधान हो गये। क्षत्रिय सैनिक शस्त्र साधकर बाजार की ओर भागे।

और शीघ्र ही हवा से बातें करते अरबी घोड़े पर सवार एक श्लथ, क्लांत; युवती सामने से आती दीखी। उसके होठों से अनवरत गति से अस्फुट स्वर निकल रहे थे।

क्षत्रिय सैनिकों ने घोड़े को रोकने का प्रयत्न किया, किंतु वे छिटक कर दूर जा गिरे। मार्ग पर एकत्रित भयभीतजन समूह को काई की तरह फांदती युवती सीधे मन्दिर की सीढ़ियों तक आयी।

'भगवान्, विष्णु। कहां हो तुम?' मन्दिर की सीढ़ियोंको फांदती युवती मर्माहत कुरर के स्वर में चीख पड़ी।

'कौन हो तुम? किसे पूछती हो?'

युवती ने सामने खड़े प्रश्नकर्त्ताओं को ढकेल दिया और

ऊपर चढ़ती फिर चिल्लाई 'भगवान् कहां हो तुम बोलते क्यों नहीं ?'

मन्दिर के द्वार पर खड़े कई पुजारी चिल्लाए।

'यवन·······यवन स्त्री·······दूर·······दूर रहो।

'उसे अन्दर आने दो, वह परम वैष्णव है।' तभी संत रामानुजका गम्भीर स्वर सुनाई दिया। पुजारी युवती का मार्ग छोड़ कर हट गए।

शाही वस्त्रों में सजी हुई वह लहू-लुहान युवती तीर की तरह गर्भ गृह में आ गई। घृत के सहस्त्रों दीपकों के प्रकाश में भव्य सौंदर्य बिखेरते हुए भगवान् चेलुवरय पिल्लई अब प्यासे नेत्रों के समक्ष थे।

'तु-तुम मेरे गरीब खाने से भाग आये। बड़े छलिया हो। नटनागर हो न। अब देखूं कैसे भागते हो मेरी गिरफ्त से।'

हांफती युवती घिसट कर मूर्ति के चरणों तक आई। उस के थरथराते हाथों ने पूरी शक्ति से भगवान विष्णु के पवित्र चरणों को जकड़ लिया, उसके ओठ प्रभु का नाम बुदबुदाये, फिर वह निश्चेष्ट हो गई।

कई क्षण बीत गये तो प्रधान पुजारी ने नम्र स्वर में कहा, 'उठो' भक्त भगवान् के दर्शन कर चुकीं न।

'हां, दर्शन भी किये और पद्मनाभ के चरणों में शांति भी पा गई।' संत रामानुज की आंखों से अविरल आंसू बह रहें थे, 'यवन सम्राट की यह पुत्री अमर लोक के प्राणियों को लज्जित करेगी। भगवन्नाम प्रार्थना ने इसे देवताओं से श्लाध्य बना दिया।

इस दिव्य उत्सर्ग के कुछ दिनो बाद भक्तों ने भगवान् के चरणों में उसकी उपासिका को भी प्रतिष्ठित कर दिया।

हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा
हिन्दी हमारी राष्ट्रभाषा

# भारत और भारतीय भाषा

लेखक
दिनेशप्रसाद पाठक
विशारद

वर्तमान भारतवर्ष में चारों ओर अविश्वास असन्तोषादि की महती वृद्धि हो रही है। इसका वास्तविक कारण भारतीय लोगों में संगठित समाज का न होना है।

आज भी इतिहास में हमें मिलता है कि उस समय घरों में ताले नहीं लगाये जाते थे जब रामचन्द्र जी, चन्द्रगुप्त, अशोक का राज्य था। उस समय विदेशी भाषा मुख से निकाली नहीं जाती थी, आज तो सर्वत्र अंग्रेजी का बोलबाला है कहीं २ उर्दू भी बोली जाती है आज कल हम भारतीयों में भी कुछ न कुछ विदेशी शब्द भरे पड़े हैं।

आजकल लोग पूछ उठते हैं कि आपने हिन्दी की शिक्षा कहां तक पाई है अयोग्य छात्र कहते हैं मैंने इण्टर, बी. ए., एम. ए. उत्तीर्ण किया है उन लोगों को ऐसा मालूम नहीं कि हिंदी को अंग्रेजी बना रहे हैं—यह कहां तक की बुद्धिमत्ता है।

आजकल क्यों चीन, पाकिस्तान भारत को जीतने के लिये उद्यत हो उठे हैं। उन लोगों की मजालकी इस भारत भूमिपर नजर रक्खे लेकिन नहीं आज विदेशी लोग भी देखते हैं कि भारतवासी मूर्ख हैं उनमें संगठन की शक्ति नहीं है। अपनी भाषा को राष्ट्रभाषा न बना कर दूसरे देश की भाषा को राष्ट्र भाषा बना रहे हैं यह उन लोगों को अपूर्व अवसर मिल गया है। दूसरे देशवासी अपने देश से अलग देश में भी अपने देश की भाषा, अपने देश का आचार विचार दूसरे देश में फैला रहे हैं और फैला चुके है एसी दशा में भारत दूसरे देश में अपनी हिन्दी भाषा को एवं शील को नहीं फैला रहा है तब उसको अपने देश में भी तो हिन्दी का प्रचार करवाना चाहिये।

किन्तु नहीं आज के उच्च पदाधिकारी आंग्लभाषा (म्लेच्छ भाषा) को पाकर अपने हृदय में प्रसन्न हो रहे हैं। भारत विदेशियों को अमूल्य मणि देकर कांच को प्राप्त किया है और कर रहा है।

आज कल के स्कूल एवं कालेजों के छात्र गन्दी आदतों, बुरी आदतों की आपस में शिक्षा पाकर शिक्षित बनते हुए जा रहे हैं।

क्यों कि जैसी भाषा वैसा गुण होना अनिवार्य है क्यों कि बिना संस्कार से युक्त संस्कृत नहीं पढ़ सकता है ब्रह्म (वेद) को जानने वाला ही ब्राह्मण है।

आज सरकार ने ही यह प्रस्ताव भी स्वीकृत किया है कि कक्षा ३ से ही अंग्रेजी की शिक्षा बालकों को दी जाय।

अभी कुछ दिन बालकों में गुण पाये जाते थे अब यह भी सरकार से सहन न हो सका और कक्षा ३ से ही बालकों को राक्षस बनाने में तल्लीन है। सत्य में हम चारों ओर भारत में यह देखते हैं कि कहीं संगठन नहीं है। हिन्दुओं में संगठित किसी को न देख कर ही महमूद गजनवी, और मुहम्मद गोरी ने सर्व प्रथम मुस्लिम शासन का झंडा फहराया ऐसा इतिहास के स्वर्ण पृष्ठों पर आज भी मिलता है।

अभी अभी वाराणसी से निकलने वाले "गाण्डीवम्" संस्कृत साप्ताहिक ६ सितम्बर १९६४ के अंक के ६ वें पृष्ठ में लिखा है कि—"सर्वाधिकम् आंग्लभाषायां पुस्तकानि प्रकाशितानि" और अभी अभी अयोध्या से "संस्कृतम्" साप्ताहिक पत्र के ता. १४-७-६४ के दूसरे पृष्ठ में लिखा है कि—

[श्री नेहरुः संस्कृतम् जानातिस्म, परं व्यक्तं विरोधं तस्य कदापि नाकार्षित्, परं संस्कृतज्ञोऽपि श्री लाल बहादुर शास्त्री संस्कृत राजभाषाया व्यक्तं विरोधंकरोति।"

भला ऐसी दशा में यह देश कभी भी सुधर सकता है? अर्थात् नहीं जब संस्कृत और हिन्दी दोनों में से एक भी न रहे तो भारत का सुधरना अत्यन्त कठिन है। हिन्दी और संस्कृत में फर्क ही क्या है।

जब उच्चपदाधिकारी (शिक्षित समाज) ही हिन्दी और संस्कृत का विरोध करने लगे तब अन्य लोग क्यों न विरोध करें?

आज यदि भारतवर्ष को (हिन्दुस्तान) की अपेक्षा अन्य शब्द से पुकारा जाय तो कोई अत्युक्ति न होगी।

हम को विश्वास है कि यह देश जितना ही उन्नत शील था उतना ही अवन्नत होकर उन्नत होने का झूठा गर्व कर रहा है।

आज कल के भारतीय लोगों में क्यों नहीं विद्या, बल, बुद्धि की वृद्धि हो रही है? इसका यथार्थ कारण म्लेच्छ भाषा की भारत में वृद्धि करना और अपने धर्म-कर्मादि को भ्रष्ट करना ही तो है। इस सम्बन्ध में हो तो निम्नांकित पौराणिक वचन ही प्रमाणित कर देता है—

न पठेत् यावनीं भाषां, प्राणैः कंठ गतैरपि।
हस्तिना पींडय मानोऽपि, न गच्छेत् जैन मंदिरम्॥

अभी २ एक भारतीय भाई ने वाराणसी से निकल ने वाले 'संसार' साप्ताहिक पत्र के १० सितम्बर सन् १९६४ के तीसरे पन्ने पर 'हिन्दी के प्रति सरकारी अनाचार' शीर्षक लेख रघुनाथसिंह ने प्रकाशित करवाया है—उसके उपलक्ष्य में मैं निर्धन मनुष्य लाखों बार धन्यवाद देता हुआ आनन्द सिंधु में रस लेता हुआ महान् सुख का अनुभव कर रहा हूं।

मैं इस लेख को लिख कर भारतीय जनों से निवेदन करता हूं कि भाषा सम्बन्धी प्रश्न हर विदेशी भाषा का महान विरोध करें। और अपनी भाषा को ही राष्ट्र भाषा पद दिलावें।

रामतीर्थ के पाठक पाठिकाओं से मेरा नम्रनिवेदन है कि सब लोग अंग्रेजी का विरोध कर हिन्दी भाषा को राष्ट्र भाषा का पद दिलाने में अपना अमूल्य सहयोग पहुंचावें।

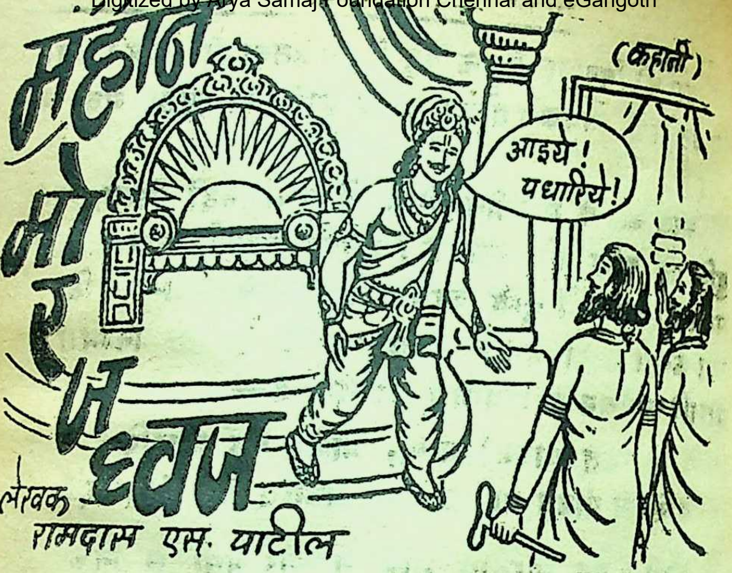

# महान मोरध्वज

(कहानी)

लेखक
रामदास एस. पाटील

राजा मोरध्वज की महानता को जानने वाला पुरुष भारत-भूमि में कदाचित ही मिल सकता है। उनकी सत्यता, धर्मता, दानीता और सहनशीलता से भारत-भूमि पवित्रता का महान् दृष्टांत आज भी दे रही है। यह महान् कहानी उस महान् राजा की है।

कभी भी कोई भी साधु-संत, भिखारी तथा ब्राह्मण मोरध्वज के द्वार से भूख तृप्ति तथा मन की शांति के किये बिना वापिस नहीं जाते थे। एक समय कुछ चोरोंने विचार किया कि मोरध्वज के राज्य में जाकर उनकी संपत्ति को लूट लिया जाय। सब उसी दिन साधुओं का वेष धारण कर उनके द्वार पर जा खड़े हुए।

द्वार पर खड़े होते ही द्वारपालों ने उन्हें भीतर विराजित होने का आग्रह किया।

'महाराज कहां है ?' उन्होंने द्वारपाल से बड़े अहंकार से कहा।

'जी, अभी मैं उन्हें आपके यहां आनेकी सूचना देता हूं।' द्वारपाल भीतर जाकर महाराज को साधुओं के आने की सूचना देता है। थोड़े ही क्षण में द्वारपाल के साथ महाराज आते हैं।

'आइये।' वे उन साधुओंके निकट आकर आश्चर्यचकित होकर खुशामदी स्वर में बोले—'आपने हमारे यहां पधारकर इस भूमि को पवित्र किया है, अतः आप भीतर विराज कर हमारी सेवा को ग्रहण करिये।'

महाराज की बातें सुनकर साधु वेषधारी चोरों ने अपने चरणों को राज दरबार में प्रवेश करने की आज्ञा दी। राजदरबार में आते ही महाराज ने उनके भोजन, शयन, फल, आहार इत्यादि का प्रबन्ध किया। तदुपरांत महाराज ने उनसे पूछा—'आज आप पूर्ण रात्रि ही हमारे यहां व्यतीत कीजिये तथा आपकी सेवा करने का सौभाग्य हम भक्त-गण को प्राप्त होवे।' उन वेषधारी साधुओं ने प्रति-उत्तर देते हुए कहा—'राजन आप हमें रहने का आग्रह करते हैं, तो हम आज पूर्ण रात्रि आपके दरबार में व्यतीत करेंगे, किंतु एक शर्त है। वह शर्त यह है कि हमारे सत्संग में केवल महारानी ही भाग ले सकती हैं, अन्यथा कोई नहीं। बात को सुनकर महाराज को अत्यन्त आनन्द हुआ और उन्होंने कहा—'जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा।' महाराज ने उनके रहने का तथा भोजनादि का सुन्दर प्रबन्ध कर दिया। चोरों ने भी इस अवसरके लाभ

उठाने का निश्चय कर लिया। उन्होंने महाराज की आंख बचाकर रानी को विष पिलाने का संकल्प किया।

रात्रि के समय महाराज ने उनके भोजन, शयनादि की सुन्दर व्यवस्था कर दी और स्वयं वहां से सत्संग करने के लिये ऋषि-मुनियों के गण में जाकर विराजित हुए।

उन वेषधारी चोरों ने समय का लाभ उठाकर महारानी को विष पिलाया। वहां का सोना, चांदी, हीरे, जवाहिर लेकर पलायन करने की चेष्टा कर रहे थे। उस समय प्रातः काल हो रहा था और महाराज भी उसी रास्ते से वापिस राज दरबार आ रहे थे।

साधु-संत भागे-भागे कहां जा रहे हैं। महाराज ने मन-ही-मन विचार किया और उन वेषधारियों से पूछा-'ऋषि-गण आप भागे-भागे क्यों जा रहे हैं ? आपके आतिथ्य मैं में कुछ कमी तो नहीं हुई है ? आपका किसी ने अपमान तो नहीं किया ? महाराज के प्रश्न सुनकर वे वेषधारी साधु यथा-स्थान स्तब्ध रहे। कुछ देर मौन होकर एक दूसरे की ओर घूरने लगे। उनमें से एक ने कहा-'महाराज आप जो समझ रहे हो यह बात नहीं है।' उस पर महाराज ने कहा-'फिर आप क्यों भागे जा रहे हैं ? यदाकदाचित् महारानी से आपकी सेवा में कुछ कमी रही होगी, तो उसके लिए मैं आपसे क्षमा याचना करता हूं।' महाराज के अनेक प्रेमरूपी तथा आदर्शदर्शक प्रश्न सुनकर उन्होंने शर्म से अपना सर झुका लिया, तथा कुछ ही क्षण के लिये मौन रहे। तदनन्तर

एकने कहा–'महाराज वास्तविकतः आप जो हमारे विषय में सोच रहे हैं, वह बात नहीं है। हम साधु नहीं हैं। हम इस गांव में रहने वाले चोर हैं हम साधुओं का वेष धारण कर आपकी सम्पत्ति लूटने का विचार कर के यहां आये थे और महारानी को भी हमने विष पिलाया है।'

आप जो बोल रहे हैं उस पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा है। आप ऐसा नहीं कर सकते हैं, आप साधु-गण हैं। अवश्य ही महारानी से कोई भूल होगई होगी और आपके आतिथ्य में कुछ कमी हो गई होगी। आप मेरे साथ दरबार में विराजने को कृपा करें। महाराज ने उन वेष-धारियों से कहा–'आइये मेरे साथ।'

महाराज की महान श्रद्धा, धार्मिक भावना और सत्यता के बल पर उन असत्यवादी चोरों की अंतरात्मा कांपने लगी और वे महाराज के पीछे-पीछे जाने लगे। कहावत है–"सच्चाई छुप नहीं सकती कभी झूठे उसूलों से, खुशबू आ नहीं सकती कभी कागज के फूलों से।" इसी तरह उन वेष-धारी साधुओं का महाराज की सत्यता पर हाल हुआ।

दरबार में पहुंचते ही महाराज ने भीतर जाकर महारानी को देखा, तो महारानी विषबाधा से बेसुधावस्था में थी। तब उन्हें विश्वास हुआ, ये साधुओं के वेष में चोर ही हैं। तत्काल महाराज ने कुछ वैद्यों की मदद लेकर महारानी को विषबाधा से बचा लिया। यह सब देखकर महाराज क्रोधांकित हो गये। किंतु वे धर्माभिमानी, और सहनशील थे। वे

किसी मानव को उसके अपराधों की शिक्षा नहीं देते थे तथा वे शत्रु से भी प्रेमत्व रखते थे। उन्होंने सोचा और अपने पास सोना-चांदी, हीरे जवाहिरात इत्यादि हैं इसलिये यह सब चोर साधुओं का वेष धारण करते हुए यहां आये हैं, अगर यह अपने पास नहीं होता तो यह सब अनर्थ नहीं होता ।

सोना-चांदी, हीरे, जवाहर इत्यादि लाकर महाराज ने उन उपस्थित चोरों से कहा-'यह सब सम्पत्ति आप लोग ले जाइये। केवल इस जड़ वस्तु के लिए आप मानव का सर्वनाश करने के लिये आये थे। लीजिये, लीजिये उठा लीजिये। हमें इस विनाशकारी जड़ वस्तु से कोई संबन्ध नहीं है, हमारा संबन्ध तो केवल धर्म, सत्य और परमात्मा से ही है, हम नहीं चाहते कि आप इस जड़ संपति के लिये अपने धर्म, सत्य और ईश्वर को भी भूल जायं तथा अनेक प्रकार के पाप करें। मानवता का विनाश करें। जो मानव केवल धनके लोभ में जाकर किसी मनुष्य की हत्या करे, ऐसे मनुष्य का मानव योनी में आना ही मानवता को कलंकित करना है। ऐसे मनुष्य को कभी भी जीवन में शांति प्राप्त नहीं होती। उसके लिये जीवन में केवल धन ही धन सब-कुछ बन जाता है; वह अपने माता-पिता, बहिन-भाई बेटा-बेटी किसी की भी चिंता नहीं करता हुआ धन की भयंकर ज्वाला में जलकर भस्म हो जाता है।

महाराज की औदार्यता, सहनशीलता, धर्मनिष्ठा और सत्यता को सुनकर भगवान विष्णु ने अपनी नागशय्या छोड़-

र मृत्युलोक में विराजित मोरध्वज को दर्शन दिया तथा आशीर्वाद देते हुए कहा—'मेरा सुदर्शन चक्र तुम्हारी और तुम्हारी प्रजा की रक्षा के लिये सदैव विराजमान रहेगा।'

उपस्थित चोर भी इस चमत्कार को देखकर धर्माभिमान तथा भगवत् प्रेम का अपने अन्तःकरण में स्वाद ले रहे थे। मानव को पाप कर्मों से मुक्त करने वाला महाराज का प्रवचन सुनकर तथा सत्यता का साक्षात् दृष्टांत देखकर उनकी आंखों पर से पाप-रूपी पर्दा हट गया। तत्पश्चात् उन्होंने कभी भी वैसा कुकर्म नहीं किया।

मोरध्वज के राज्य में किसी भी पुरुष पर कभी भी अन्याय नहीं किया जाता था। सभी एक दूसरे पर प्रेम करते हुए, भगवान का भजन, कीर्तन इत्यादि धार्मिक कृत्य करते रहते थे। राज दरबार में भी सत्संगादि तथा भगवद् गीता, रामायण महाभारत, भागवत महिमा इत्यादि विषयों पर वक्तागण प्रवचन करते थे। चारों दिशायें भक्तीमय हो गई थीं। वहां के जल-वायु और सृष्टि में भी सत्यता और धर्म का सुभोग होता था। मोरध्वज का राज्य मृत्युलोक का एक भाग जरूर था लेकिन वह स्वर्ग से भी बढ़कर प्रतीत होता था। इन्द्रासन की भांति मोरध्वज का सिंहासन लग रहा था और उनका मानव समुदाय भी देवताओं के भांति प्रतीत होता था।

मृत्युलोक में जन्म लेने वाले प्रत्येक मानव की मृत्यु होती है। इस जन्म मरण के कुछ नियम हैं तथा उन नियमों का शासन यम महाराज चलाते हैं। जिस मानव के मृत्युलोक में

जीवित रहने के दिवस पूर्ण हो जाते हैं, तभी यमराज अपने दूतों को उसे लाने के लिये आज्ञा देते हैं। इसी तरह मोरध्वज के राज्य में भी किसी एक मानव के मृत्युलोक में रहने के दिवस पर्याप्त हो गये थे और उसे लाने के लिये यमराज ने अपने दूतों को आज्ञा दी।

यमराज के दूत मृत्युलोक में आकर मोरध्वज के राज्य में जाने की चेष्टा कर रहे थे परन्तु भगवान विष्णु के विराजित सुदर्शन चक्र ने उन्हें जाने से रोक लिया और कहने लगा—'आप अन्दर नहीं जासकते, मुझे भगवान विष्णुने इनकी रक्षा करने के लिये यहां रखा है।' तदुपरांत दूत कहने लगे—'हे विराजित सुदर्शन चक्र हमको यमराज ने यहां भेजा है तथा उनके शासन के नियमानुसार फलां मानव का मृत्युकाल आया है और उसे लाने के लिये उन्होंने कहा है। तत्काल चक्र ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा—'हे दूतो मैं अपने स्वामी की आज्ञानुसार किसी को भी अंदर नहीं जाने दूंगा।' दूतों को निराश होकर वापस जाना अनिवार्य हुआ।

दूत यमराज के पास आकर कहने लगे—'यम देवता हमारा अत्यन्त अपमान हुआ है, आपके दूत होते हुए भी हम एक मानव को न ला सके। क्या आपका शासन मृत्यु लोक में नहीं है? अपने दूतों की बातें सुनकर यमराज अत्यन्त क्रोधान्वित हुए और कहने लगे—'ऐसा कौन मृत्युलोक में विराजित है जो यमदूतों का अपमान कर सके।' यम दूत अहंकारके स्वर में बोले—'यम देवता वहां कोई साधारण शक्ति

नहीं है, वहां तो भगवान विष्णु का सुदर्शन चक्र विराजमान है।' भगवान् विष्णु का नाम सुनकर यम देवता आश्चर्य में डूब गये तथा अपने दूतों का अपमान द्वेष भी निर्माण हुआ। तदनन्तर वे विष्णु भगवान की ओर चल पड़े।

अखण्ड शेषशय्यापर पद्मधारी विराजमान थे तथा लक्ष्मी अपने कर कमलों से उनकी सेवा कर रही थीं ऐसी अवस्था में यमराज वहां प्रकट हुए। यमराज को प्रकट हुआ देखकर भगवान् बोले—'आइये, यम देवता आज कैसे आपने हमारे यहां पधारने का कष्ट किया? आज तो आप बहुत ही क्रोधांकित प्रतीत हो रहे हैं। कुछ ही क्षण मौन रह कर व्याकुलता से यमराज ने कहा—'भगवन अनर्थ हो रहा है, अन्याय हो रहा है, मृत्युलोक में मेरा शासन है लेकिन उसका पालन करने में आपका सुदर्शन चक्र बाधा दे रहा है। मेरे दूत मृत्युलोक में स्थापित मोरध्वज के राज्य में गये थे लेकिन उन्हें भीतर जाने से आपके भयंकर चक्र ने इन्कार किया। इसलिये मुझे आपके पास आना अनिवार्य हुआ। यमराज की व्याकुलता देखकर भगवान् हंसते हुए कहने लगे—'यमराज, मोरध्वज धर्मनिष्ठ, सत्यवादी और प्राणिमात्र पर दया करने वाला है, इसलिये वह मुझे बहुत-ही प्रिय है। वैसा ही मानव मेरा भक्त हो सकता है तथा उसकी मैं सदैव रक्षा भी करता हूं।' आश्चर्य-चकित होकर यमराज ने पूछा—"मृत्युलोक में ऐसा भी कोई मानव आपका भक्त है, तो मैं स्वयं उसे देखना चाहता हूं।' भगवान ने कहा—'यमराज, सोने को जितनी बार अग्निमें डालो, वह उतना ही चमकता है। ठीक है, अगर

आप मेरे भक्त की परीक्षा लेना चाहते हैं तो आज ही चलिये मैं आपको अपने भक्त को अटल धर्मता, सत्यता और सहनशीलता का साक्षात् दर्शन दिखाता हूं।

यमराज और भगवान् मृत्युलोक में विराजमान हुए। उन्होंने अपना वेष परिवर्तन किया अर्थात् भगवान साधु और यमराज सिंह बनकर मोरध्वज के द्वार पर प्रकट हुए।

साधु और सिंह को द्वार पर देखकर मोरध्वज को अत्यन्त आनन्द हुआ और उसने उन्हें भीतर पधारने का आग्रह किया। साधु के वेष में विष्णु तथा सिंह के वेष में यमराज ने मोरध्वज के सुख-शांति का विनाश करते हुए कहा—'हे राजन्, हम अन्दर पधारते हैं लेकिन हमारे भोजन तथा शयनीय व्यवस्था में किसी प्रकार की बाधा निर्माण नहीं होनी चाहिये। इस पर महाराज बड़ी गौरवता से कहने लगे-'हमारे द्वार से कोई मन शांति तथा भूख तृप्त किये बिना वापिस नहीं गया। और हम उसे जाने भी नहीं देते।' इस प्रश्न को सुनकर भगवान् बड़े उग्र स्वर में बोले—'राजन् आज-तक जो भी तुम्हारे द्वार पर आया उसकी इच्छा पूर्ण कर दी होगी। लेकिन हमारी इच्छा आप पूर्ण नहीं कर सकते तथा हमारा नियम यह है कि जब तक हमारा सिंह भोजन नहीं करता तब तक हम भी भोजन नहीं करते।' महाराज बड़ी उत्सुकता से कहने लगे--'आपका सिंह कौनसा भोजन करेगा? भेड़ बकरी तथा अन्य प्रकार के जानवरों का मांस खायेगा, उसे जो भी मांस पसंद हो, हम उसे देने के लिये

तत्पर हैं।' भगवान् आश्चर्य मुद्रा में होकर कहने लगे— 'राजन् हमारे सिंह को वह किसी भी प्रकार का मांस पसन्द नहीं है, हमारा सिंह तो आपके पुत्र ताम्रध्वज का दाहिना अंग ग्रहण करेगा, अगर तुम और तुम्हारी पत्नी दोनों आरा लाकर हमारे सामने ताम्रध्वज का दाहिना अंग काटेंगे, यह क्रिया करते समय तीनों में से एक के भी मुख पर शोक-चिन्ह दिखाई दिया तो हमारा सिंह उसे ग्रहण नहीं करेगा, तुम को यह दान देना मंजूर है तो हम भीतर विराजते हैं, नहीं तो लौट जाते हैं महाराज ने उस साधु के रूप में भगवान् के वचन सुन कर उनकी आत्मा को अत्यन्त दुःख हुआ। ऐसा कौन पिता है, जिसे अपना पुत्र प्रिय न हो। महाराज को तो भगवान् ने एकलौता ही बेटा दिया था। मोरध्वज मन ही मन विचार कर रहे थे- अपने को भगवान् ने एक ही बेटा दिया है और आज उसका भी धर्म के लिये त्याग करना पड़ेगा। मोरध्वज के लिये पुत्र से बढ़ कर धर्म था। उन्होंने धर्म और दान से पुत्र तुलना करते हुए मन ही मन विचार किया और ताम्रध्वज की ओर चल पड़े।

बेटा ताम्रध्वज, आज धर्म और ममता के संघर्ष का विकट संकट अपनेपर आगया है। उसका निवारण केवल हम दोनो ही कर सकते हैं।

पिताजी आप क्या कह रहे हैं, मेरी समझमें नहीं आया।

हमारे द्वार पर साधु और सिंह दोनो भिक्षा के लिये आये हैं और वे भिक्षा में तुम्हारा दाहिना अंग मांग रहे हैं।

मेरी समझ में नहीं आ रहा है, मैं क्या करूं और क्या नहीं ?

मोरध्वज के समान ही ताम्रध्वज भी धर्मनिष्ठ और दानी था। उसने बड़ी उत्सुकता से कहा—'पिता जी, मैं अपना दाहिना अंग सिंह को देने के लिये तैयार हूं।

महाराज की पत्नी भीतर से पिता और पुत्र की धर्मता और महान् दानीत्व का संवाद सुन रही थी। उसके भी अंतः करण में धर्म और दान का महासागर निर्णय हो गया। वह भी आरा लेकर उस महादानी पिता--पुत्र के पास आकर खड़ी हुई और बड़ी उत्सुकता से कहने लगी—'चलिये, तीनों भी चलकर यह महान् कार्य पूर्ण करेंगे।' महाराज को अपने पत्नी की उदारता देख कर बड़ा अभिमान हुआ और वे तीनों भी सिंह और साधु के सामने विराजमान हुये।

ताम्रध्वज को खड़ा करते हुये पति और पत्नी ने दोनों ओर आरे को पकड़ लिया और उसके शिर पर रखते हुये आरा चलाना शुरू कर दिया।

इस भयंकर दृश्य को देख कर ऐसा प्रतीत होता था कि, दश दिशायें अपना स्थान छोड़ने की चेष्टा कर रही हों, आकाश में देवगण उन्हें देखने के लिये इधर-उधर भाग रहे और उनके पैरों की भयानक आवाज आकाश में निर्माण हो रही हो, समुद्र भी उनके दानित्व पर खींचे जा रहा हो और चांदी के समान शुभ्र लहरें उनकी ओर खींचती हुई जा रही हों। इसी भांति पूर्ण सृष्टि में हाहाकार हो रहा था, उनकी धर्मता और दानित्व को देख कर।

मोरध्वज और उनकी पत्नी का ताम्रध्वज पर आरा चलाना शुरू था, खून से ताम्रध्वज का शरीर भीग रहा था, उसी क्षण ताम्रध्वज की बांयीं आंख में आंसू आना शुरू हो गये । ताम्रध्वज के आंख में आंसू देखते ही साधु वेषधारित भगवान् विष्णु ने कहा—'ठहरिये, हमें यह दान नहीं चाहिये ! क्योंकि ताम्रध्वज की बायीं आंख से आंसू निकल रहे हैं । हम वापस जाते हैं ।' तत्काल ताम्रध्वज ने कहा—'साधू महाराज, आप निराश क्यों हो रहे हैं । मेरी बायीं आंख में आंसू इसलिये निकल रहे हैं कि आपका सिंह केवल दाहिने अंग को ग्रहण करेगा, केवल वही अंग पवित्र होगा और बायां वैसा ही अपवित्र हो जड़ ही रहेगा, इसलिये बायीं आंख से आंसू निकल रहें हैं ।'

इस भयङ्कर त्याग, दान और धर्मनिष्ठा को देखकर यमराज और भगवान् विष्णु आश्चर्य में डूब गये और उन्होंने अपना असली रूप प्रकट करते हुए कहा—'राजन्, स्तब्ध हो जाइये । आरे को छोड़कर मोरध्वज, उनकी पत्नी और ताम्रध्वज पूर्वावस्था में हो गये । भगवान् और यमराज को वेषांतर हुए देखकर तीनों ने भी अपने मस्तिष्क को उनके चरणों में रख दिया ।

भगवान् और यमराज उनकी उदारता और धर्मता को देखकर प्रसन्न हुए तथा उन्हें आशीर्वाद देते हुये कहा—जब तब सूर्य और चन्द्र आकाश में हैं तबतक तुम्हारा नाम अमर रहेगा और जहां जहां हमारा नाम लिया जायगा वहां-वहां तुम्हारा भी लिया जायेगा ।

धन्य है, उन धर्मनिष्ठों को जो अपने धर्म के लिये अपने पुत्र का भी बलिदान देने से पीछे नहीं हटते। धन्य है वह माता जिसने ताम्रध्वज जैसे पुत्र को जन्म दिया। धन्य है वह जननी जिसमें ऐसे दानी, धर्माभिमानी, सहनशील और उदार मानवों का जन्म हुआ।

'सम्पदा'

हिन्दीमें अर्थ शास्त्रीय साहित्य का पर्याय बन गई है।
सम्पदा हिन्दी की सबसे पुरानी आर्थिक पत्रिका है।
सम्पदामें सार्वजनिक और निजी उद्योग विषयक संतुलित
और युक्ति संगत दृष्टिकोण
सम्पदा के विशेषांक अनुपम होते हैं।
सम्पदा के स्थायी स्तंभ-योजना, कृषि, उद्योग, श्रम, परिवहन, कोयला, बिजली, बैंक, बीमा, सर्वोदय आदि
सम्पदा विविध राज्योंद्वारा शिक्षालयों के लिए स्वीकृत है।
सम्पदा छात्रों, कालेज के प्राध्यापकों के लिए आर्थिक
विश्व कोष है।
ज्ञान वर्द्धक, नवीनतम आर्थिक जानकारी से युक्त 'सम्पदा' के आज ही ग्राहक बनिये। वार्षिक मूल्य ८ रु. ५० न. पै.
नमूनांक के लिए ६० न. पै. भेजें।
व्यवस्थापक—सम्पदा २८/१७ शक्ति नगर दिल्ली ६.

(विनोदी एकांकी)

# फेकूचंद

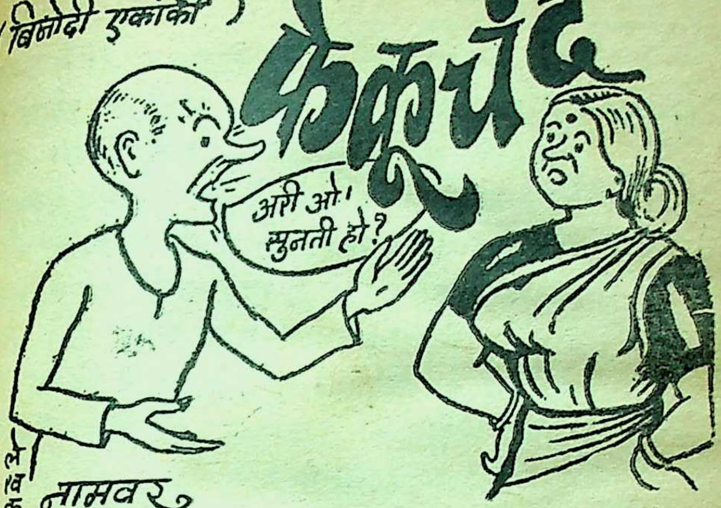

लेखक नामवर

(दुनियां में कुछ ऐसे भी लोग हैं जो अपने आप को हर फन में माहिर ही समझते हैं। ऐसे लोगों का अहम् इतना घिनौना होता है कि ये लोग किसी भी बात में दखल देने से बाज नहीं आते—चाहे वे इस बात की पूंछ भी न जानते हों। ऐसे पढ़े-लिखे जाहिलों में फेकूचन्द जी भी एक थे, जो अपनी डींग हांकने लगते तो जल्दी चुप होने का नाम भी न लेते थे।)

पात्र :-१—फेकूचन्द
२—शीला (फेकूचन्द की धर्मपत्नी)
३—विनोद (फेकूचन्द जी का पुत्र, उम्र १२ वर्ष)
४—भामा (फेकूचन्द जी की पुत्री, उम्र १५ वर्ष)

### ५--प्रोफेसर साहब (फेकूचन्द जी के मित्र)

**फेकूचन्द**--अरे ओ सुनती हो! विनोद अभी तक स्कूल से आया कि नहीं? पता नहीं इन दिनों इस छोरे को न जाने क्या हो गया है कि इधर एक पखवारे से स्कूल तो जाता है शायद सबसे पहले और लौटता है सबसे पीछे। भाई नाकों दम आ गया है छोरे की इस हनुमान छाप पढ़ाई से। और पूछो तो हर विषय में जीरो ) एक मैं भी था कि जिससे स्कूल का हर मास्टर हर विषय में मारे डर के कांपता रहता था।

(दरवाजे पर दस्तक)

(प्रोफेसर साहब का आगमन)

**फेकूचन्द**--आइए, आइए प्रोफेसर साहब। आज कैसे इधर का रास्ता भूल गए। खैर चलिए ना चीज को भी आपने दर्शन देने की कृपा तो की। यही क्या कम है?

**प्रोफेसर साहब**--आप भी कैसी बातें करते हैं मिस्टर फेकूचंद जी! मैं तो यदि हफ्ते में एक बार आप से न मिलूं तो राम कसम न जाने क्यों चैन ही नहीं मिलता! भाई मानो न मानो पर आप से मिलकर बड़ा मजा आता है। आप से मिलकर एक सिनेमा शो की कसर पूरी कर लेता हूँ।

**फेकूचंद**—इसका मतलब है कि मैं एक सिनेमा शो हूँ। खैर,

दोस्तों ने मुहब्बत से बन्दे को इतना सस्ता बना दिया। कोई बात नहीं। किसी ने ठीक ही सोचा था, कि घर की मुर्गी दाल बराबर।

**प्रोफेसर साहब**—अजी साहब क्या कहते हैं आप ? सिनेमा शो आपके सामने क्या है ? खैर हटाइए इन बातों को इधर मैं एक पखवारे के लिए कहीं बाहर गया हुआ था। कल लौटा हूं। सोचा चलूं लगे हाथों भाई फेकूचंद जी से मुलाकात हो जाय। कहिए ! इन पन्द्रह दिनों के भीतर अपनी निजी नगरी का हाल-चाल।

**फेकूचंद**—क्या कहूं प्रोफेसर साहब ! आप ठहरे सौ नए पैसे ब्रह्मचारी याने कि हनुमान जी के पक्के चेले। आगे नाथ न पीछे पगहा। खांड की तरह जिंदगी मजे से बिता रहे हैं। वर्ना विवाह करते तो आटे का भाव खूब अच्छी तरह से मालूम पड़ता। यहां देखो तो रातों-दिन तरह-तरह की फिक्र हमेशा सिर पर सवार रहती है। देखिए न अभी तक विनोद का पता नहीं। स्कूल ६ बजे ही छूट गया होगा, और इस समय लगभग ८ बज रहे हैं, पर छोटे का पता ही नहीं। पढ़ाई के बारे में पूछ ताछ कीजिए तो एक अक्षर से भी भेंट नहीं। मानिए या न मानिए प्रोफेसर साहब कि एक मैं था कि ठीक समय से स्कूल जाता था, और ठीक समय पर घर आकर हाजिर हो जाता था। हर दर्जे में

अव्वल आता था। हर सब्जेक्ट के टीचर तक मुझसे डरते रहते थे।

**प्रोफेसर**—अजी साहब, इसी बात को आपने मुझ से और अपने और दोस्तों से भी कितनी बार कहा है। पर हो सकता है फेकूचंद जी कि सभी सब्जेक्ट के टीचर आपकी किसी और चीज की और वजह से आप से डरते हों।

**फेकूचंद**--आप भी क्या फरमाते हैं प्रोफेसर साहब! खैर छोड़िए इन बातों को। क्या लीजिएगा गर्म या ठण्डा। देखिए न अभी तक छोरा स्कूल से लौटकर नहीं आया।

**प्रोफेसर**--आता ही होगा। रास्ता तो भूल सकता नहीं। हां अपने किसी सहपाठी के साथ बात में उलझ गया होगा।

**फेकूचंद**--अजी ओ सुनते हो कि नहीं। मैंने कहा कि विनोद स्कूल से आया कि नहीं। तुमने तो लाड़-प्यार से उसकी आदत ही बिगाड़ दी है। कुछ डांट डपट तो रखती ही नहीं हो, फिर क्यों न छोरा बिगड़ जाय? उसे लाड़ प्यार देकर इतना आसमान पर चढ़ा दिया है कि जैसे किसी ने आज तक तुम्हारे सिवा पैदा ही नहीं किया हो।

**शीला**—( झल्लाकर ) कितनी बार मैंने आप से कहा कि अरी ओ, अरी ओ, सुनती हो—यह क्या है जिस ढंग से आप मुझे बुलाते हैं। यह भी कोई बुलाने का

तरीका है। मेरा नाम लेकर क्या आप मुझे बुला नहीं सकते ? और फिर क्यों आप जरा सी बात में सारा घर सिर पर उठा लेते हैं ? छोरा आता ही होगा, थोड़ी देर से ही सही। मैं भी तो हमेशा कुछ न कुछ काम में ही लगी रहती हूं। कोई खाली थोड़े ही बैठी हूं।

**फेकूचंद**--देख लीजिए प्रोफेसर साहब। आज-कल तो घर में बीबियों का एक छत्र राज्य हो गया है बड़े लोगों ने कहा है पत्नी पुरुष का आधा अंग होती है। पर आज कल की पत्नी तो अब पुरुष का पूरा अंग बनने पर उतारू है। भला बताइए खाना पकाना भी कोई काम है ! हम लोगों को देखो गृहस्थी का असल काम तो हम सब करते हैं। सुबह ९ बजे से घर छोड़ते हैं और शाम को ७-८ बजे कहीं आकर वापस लौटते हैं। क्यों प्रोफेसर साहब क्या मैं गलत कह रहा हूं ?

**प्रोफेसर**—अजी साहब, बात तो आपकी सौ नए पैसे सच है। और फिर आपकी बात भी भला कहीं झूंठ हो सकती है। कर्म यज्ञ के तो आप पक्के पुजारी ठहरे। पर भाभी जी के सामने तो मैं आपका पूरा समर्थन नहीं कर सकता। मुझको तो इस घर में बार-बार आना पड़ता है।

**फेकूचंद**--(हंसते हुए) समझा, खूब समझा। पर क्या प्रोफेसर सच्चाई के लिए आप में इतना भी साहस नहीं

है। वैसे तो आप काफी चतुर निकले। (थोड़ी देर रुककर) अजी साहब हिम्मत की घटना याद आ गई। एक मैं था कि अकेले अपनी ताकत से पूरे कॉलेज को बन्द करा दिया। पर प्रिंसिपल साहब ने मुझसे माफी मांगी, मिन्नते की तब जाकर कहीं कॉलेज खुला। इसीलिए जलकर मुझे फर्स्ट-इयर आर्ट्स में प्रिंसिपल ने लगातार तीन साल तक फेल करवाया, और उसका जवाब भी मैंने अच्छा दिया कि मैंने चौथे साल में जाकर पढ़ना ही छोड़ दिया।

**प्रोफेसर**—अजी साहब कौन नहीं जानता उस घटना को और आपकी पढ़ाई छोड़ने के असली कारण को। सही अर्थों में तो आप देश के एक बड़े भारी नेता थे। किन्तु परिस्थितियों ने आपको हर तरफ से दबा दिया। इस तरह से देश ने अपने एक बड़े भारी नेता को खो दिया।

**फेकूचंद**—प्रोफेसर साहब, कहीं आप मुझको पेड़ पर तो नहीं चढ़ाते हैं!

**प्रोफेसर**—अजी साहब इस दुनियां में आजतक, इस समय तक अभी भी कोई ऐसा आदमी पैदा नहीं हुआ है जो आपको पेड़ पर चढ़ाये। आप तो पहले से ही पेड़ पर चढ़े हुये हैं।

(शीला का चाय की ट्रे के साथ प्रवेश)

**शीला**— अरे चाय तो पीजिये प्रोफेसर साहब! कहिये

आज बहुत दिनों के बाद दर्शन दे रहे हैं। कहां थे इतने दिनों तक?

प्रोफेसर--अरे भाभी, नमस्ते तो पहले लो। इधर १५ दिनों से पूना चला गया था। कल शाम को लौटा हूँ।

शीला-- खैर कोई बात नहीं। चाय पीजिये। यदि आप इनकी बातों में पड़ेंगे तो आपकी चाय भी ठण्डी होकर पानी बन जायेगी।

फेकूचंद--अरे चलो बड़ी आई हैं चाय पिलाने वाली। बात करने में तो औरतों से शायद ब्रह्मा भी हार जाय।

शीला-- खैर, पुरुषों में से तो आपसे ब्रह्मा भी जरूर हार मान लेंगे।

फेकूचंद--चाय क्या बनाती है, जैसे कोई नमकीन गर्म पानी। खाना बनाती है तो उसमें भी कोई खास स्वाद नहीं आता! एक मैं था कि जब मैंने एक बार अपने पंडितजी के लिये खाना बनाया तो लगे वाह, वाह करने!

शीला-- और जरा इनसे पूछिये तो सही कि एक दिन मेरी अनुपस्थितिमें जब इन्होंने खाना बनाना शुरू किया तो मुहल्ले भर के लोग जान गये कि आज हमारे बीच कोई कुशल रसोइया आया है। चावल पक कर भीतर से आधा जल गया, और आप साहब हैरान कि यह जलने की गंध कहां से आ रही है! जब पड़ोस की १२ वर्ष की लड़की मुझे पूछती आई तो उसने इन्हें बताया कि आपने तो आधे

से ज्यादा चावल जला डाले। तब इन्होंने उसे बहुत पुचकार कर कहा, देख किसी से मत कहना।

**फेकूचंद**--अजी प्रोफेसर साहब, बात ऐसी थी कि मैं उस समय एक दिलचस्प किताब पढ़ने में लग गया, और मुझे चावल का ध्यान ही नहीं रहा।

**शीला**-- वैसे बात बनाने के लिये इससे बढ़िया तरीका और हो ही क्या सकता है। नाच न आवे आंगन टेढ़ा।

**प्रोफेसर**—(हंसते हुए) वाह साहब वाह। एक कॉमेडी प्ले का मजा आ गया। बड़ी शुभ मुहूरत में चला था।

**भामा**····· पिताजी ! कल मैंने जो गणित का सवाल आपसे पूछा था उसे हमारे गणित के मास्टर साहब ने गलत काट दिया। जब मैंने कहा मास्टरजी यह कैसे गलत हो सकता है, इसे तो मेरे पिताजी ने बतलाया है, तो जानते हैं उन्होंने क्या कहा ?

**फेकूचंद**--(क्रोध से) क्या कहा भला तेरे मास्टर ने ?

**भामा**····· उन्होंने कहा--चल तेरे पिताजी भी नम्बरी बुद्धू हैं। तुम्हारे पिताजी को इतना सरल छोटे से बच्चों का सवाल भी नहीं आता।

**फेकूचंद**····तेरे मास्टर की तो ऐसी-तैसी। बड़े आये हैं मास्टर साहब। सदा सौ की नौकरी दिमाग आसमान पर।

(दरवाजे पर दस्तक की आवाज)

**फेकूचंद**—(व्यंग्य से) आइये, आइये, रास्ते में आपको कोई खास तकलीफ तो नहीं हुई। बड़ी देर कर दी आपने, आखिर कौन सा जरूरी काम पड़ गया था आपको रास्ते में ?

**विनोद**— बात ऐसी है पिताजी कि मैं आजकल अपने दोस्त नरेश के साथ उसके घर पर एक आध घंटे पढ़ता हूं।

**फेकूचंद**—अबे ! तू गुरु का भी गुरु निकला। मैं तुझको तेरे नरेश और नरेश के बाप को भी अच्छी तरह जानता हूं नरेश के पिताजी तो अपने परिवार के साथ आज पन्द्रह दिनों से दिल्ली में पड़े हैं और तू नरेश के साथ दिल्ली में पढ़कर आ रहा है।

**विनोद**—(असमंजस में) पर पिताजी वे सब तो लौट भी आये।

**फेकूचंद**—अरे चल! लौट आये के बच्चे। साफ क्यों नहीं कहता कि सिनेमा गया था। रास्ते में सोचा होगा जब मैं पूछूंगा तो तू यही रेकार्ड मेरे सामने बजायेगा। खैर, आज तो छोड़ देता हूं, आइन्दा ऐसी चालबाजी की तो फिर यह जूता और तुम्हारा सर। एक मैं था कि क्या मजाल है कि, स्कूल से घर तक किसी भी कार्य में कहीं भी मुझसे छोटी सी भी गलती हो जाय, और पढ़ने-लिखने की बात ही और थी। मैं जब तक पढ़ा, हर क्लास में फर्स्ट क्लास फर्स्ट !

**विनोद**—अरे हां !!! पिताजी ! कल जब आपने जल्दी जल्दी में अपनी आलमारी खोली तो आपकी मैट्रिक क्लास का यह सर्टिफिकेट ठीक आलमारी के नीचे गिरा पड़ा मुझे मिला।

**प्रोफेसर**—देखूं तो भला आपका सर्टिफिकेट ?

**फेकूचंद**—अजी कौनसी देखने वाली बड़ी बात है उस सर्टिफिकेट में।

**प्रोफेसर**—खैर, दिखाइये तो सही। अरे आप तो इसमें बड़ी मुश्किल से तृतीय श्रेणी में पास हुये हैं।

(एकाएक सभी ठठाकर हंस पड़ते हैं)

**फेकूचंद**—जाओ!, जाओ !! सभी अपना अपना काम करो। अरे क्या प्रोफेसर साहब। आपने भी किस जन्म का बदला लिया मुझसे ! अरे यार इन बच्चों के सामने तो आपने मेरी मिट्टी पलीद कर दी। आप शायद नहीं जानते कि उस साल मैं इतना बीमार हो गया था कि बड़ी मुश्किल से मरते मरते बचा, फिर भी परीक्षा दे ही डाली। वर्ना दिखा देता कि परीक्षा में कैसे बैठा जाता है।

**प्रोफेसर**--खैर श्रीमान् भाई फेकूचंदजी, नाचीज को तो माफ कीजिये, फिर फुरसत मिली तो बहुत शीघ्र ही दर्शन होंगे !

# परमार्थ ही मनुष्य जीवन है

लेखिका
कु. कृष्णा
प्रधान

सन्त महात्माओं के जीवन चरित्र हमें दीपक की भांति जलने की प्रेरणा देते हुये समझाते हैं कि यदि क्षुद्र से महान् बनना है तो अपने शरीर के स्वार्थ को मिटा दो तभी संसार में अमर हो जाओगे और जीवन में उन्नति के पथ पर अग्रसर हो सकोगे 'राजा जनक' महाभारत में कहते हैं—'कि जब ऐसी बुद्धि होगी कि लोकोपकार के लिये ही मैं देह धारण करता हूं। तभी इन्द्रियां काबू में रहेंगी और लोक कल्याण होगा। तुलाधार जांजलि को उपदेश करते हुये कहते हैं।' कि हे जाजले उसी ने धर्म को जाना है जो कर्म से, मन से वाणी से सबका हित करने में लगा हुआ है व सभी का स्नेही है, 'दास बोध" में समर्थ रामदास कहते हैं।' जो परोपकार ही करता रहता है उसकी सबको जरूरत ही बनी रहती है ऐसी दशा में उसे भूमण्डल की किस बात की

कमी रह सकती हैं। 'महात्मा भर्तृहरि' का वचन है 'परमार्थ ही को जिस मनुष्य ने अपना स्वार्थ बना लिया है। वही सब सत्पुरुषों में श्रेष्ठ है। 'संत तुकाराम' का कहना है 'संतजनों की विभूतियां केवल जगत के कल्याण के लिये हैं यह लोग परोपकार करने में अपने को कष्ट दिया करते हैं। 'लोकमान्य' अपने 'गीताभाष्य' में लिखते हैं 'लोक कल्याण में जुटे रहने वाले पुरुष का योग क्षेम कभी अटकता नहीं है केवल परोपकार करने के लिये उसे निष्काम बुद्धि से तैयार रहना चाहिये। एक बार यह भावना दृढ़ रहने पर भी सभी लोग मुझ में हैं और मैं सभी लोगों में हू फिर यह प्रश्न ही नहीं उठ सकता कि परमार्थ से स्वार्थ सिद्ध है। 'स्वामी विवेकानन्द' ने एक बार कहा था--'इस बात को आप कभी न भूलें कि आपका जन्म देने के लिये है लेने के लिये नहीं। इसलिये आपको जो कुछ देना हो आपत्ति किये विना बदले की इच्छा न करके दे दीजिये, नहीं तो दुःख भोगने पड़ेंगे। महात्मा जरस्थु कहते हैंः—'ईश्वर ने जो कुछ हम लोगों को दिया है वह बटोर कर रखने के लिये नहीं प्रत्युत योग्य पात्रों को देने के लिये है।'

अतः पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि मनुष्य जीवन परमार्थ के लिये है स्वार्थ के लिये नहीं, परमार्थ कब उदय होगा जब मनुष्य मात्र में एक दूसरे के लिये प्रेम होगा-प्रेम से सब कुछ सम्भव है क्यों कि प्रेम मानव जीवन की सर्वोदय प्रेरणा है शेष सभी भाव आश्रित भाव हैं। स्वाधीन और सद्गति दिलाने वाली आंतरिक प्रेरणा प्रेम है जिससे संसार

की रचना होती है। जीवन समृद्ध बनता है और मानव जीवन के लक्ष्य की प्राप्ति होती है। इसीलिये गीताकार ने सन्देश दिया है।

आत्मानं सर्वभूतेषु सर्वभूतानि चात्मनि।
ईक्षिते योग युक्तात्मा सर्वत्र समदर्शिनः॥

अर्थात् सभी भूत प्राणियों में एक ही आत्मा समाई हुई है इसीलिये सभी को समभाव से देखते हुए सभी के साथ प्रेम करना चाहिये। प्रेम वास्तव में संसार की सबसे बड़ी शक्ति है। जिसे बड़ी २ मशीनें अस्त्र शस्त्र और बलवान् मनुष्य नहीं जीत पाये उन्हें प्रेम की कोमल भावनायें जीतने में समर्थ हुई हैं और जहां प्रेम है वहां स्वार्थ नहीं हो सकता यह निश्चित है। वास्तव में इस असार संसार में अमरता वे ही प्राप्त कर पाये हैं जिन्होंने प्रेम के साथ परमार्थ को अपनाया है। कृष्ण प्रेम में मतवाली मीरा को यमुनामें फेका गया, विष दे दिया गया। घरसे निष्कासित कर दिया किन्तु उसकी निष्ठा में राई रत्ती कमी नहीं आई। तब कहीं मीरा महान् बनी। देश प्रेम के दीवाने राणा प्रताप जंगलों में भटके, मिट्टी के बरतनों में घास की रोटियां खाई किन्तु अकबर की दासता उन्होंने स्वीकार नहीं की। राणा प्रताप इस परीक्षा में खरे उतरे।

इस संसार में आये दिन लोग जन्म लेते हैं और सैकड़ों की तादाद में रोज मरते रहते हैं किन्तु जिन्होंने अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ता पूर्वक विश्वास किया, जो अपनी

आस्थाओं के प्रति सदैव ईमानदार बने रहे जिन्होंने प्रेम और परमार्थ में आखिरी सांस तक अपने व्रत का पालन किया उनका हाड़ मांस का शरीर भले ही नष्ट हो गया हो पर उनका यश-शरीर युग-युगान्तरों तक लोगों को प्रेरणा व प्रकाश देता रहता है ।

चरित्र का उत्कृष्ट रूप प्रेम और परमार्थ ही है यह मानवता की सर्वश्रेष्ठ साधना है जिससे आत्मबल प्राप्त होता है निर्भीकता, दृढ़ता, साहस, पवित्रता, त्याग सत्य निष्ठा और कर्तव्य-भावना का आधार शुद्ध और निस्वार्थ प्रेम ही है। इसे अपने जीवन में धारण करने वाला व्यक्ति मानव न रह कर महामानव और देवता बन जाता है ।

महात्मा गांधी अपने आश्रम में अपने हाथों से एक कोढ़ी की सेवा सुश्रुषा किया करते थे । इसमें उन्हें कभी भी घृणा पैदा नहीं होती थी क्यों कि प्रेम की विशालता में ऊपर से जान पड़ने वाली मलीनताएं वैसे ही समा जाती हैं जैसे हजारों नदियों का कूड़ा कबाड़ समुद्र के गर्भ में विलीन हो जाता है । महान् व्यक्तियों ने क्या नहीं त्यागा ? मनुष्य सेवा में महर्षि दयानन्द ने परमार्थ हेतु ही मोह, माया और घर छोड़ा, सुकरात ने जहर पिया, स्वामी विवेकानन्द ने सब कुछ त्याग दिया केवल इसलिए कि वे 'वसुधैव कुटुम्बकम' के महत्व को दुनिया में फैला सकें और मनुष्य एक दूसरे को भाई मानकर प्रेम के साथ रहें दूसरों का दुःख अपना दुःख समझें और दूसरों का सुख अपना सुख ! महानता इसी

में है। मानव जीवन का ध्येय वास्तव में परमार्थ में है स्वार्थ में नहीं यदि ८४ लाख योनियों में भटक कर पाये हुये इस अमूल्य मानव जीवन को यों ही बिता दोगे। संसार के मोह, क्रोध और माया जाल में तो कुछ न पाओगे पर दूसरों के हेतु कुछ कर दोगे तो तुम्हारी मृत्यु के बाद भी तुम्हारा साथ रहेगा, अतः हे मनुष्यों इसे मनुष्य जन्म का मूल्य पहचानो और परमार्थ को ही अपना स्वार्थ समझो क्यों कि परमार्थ ही मनुष्य जीवन है।

सामूहिक हित को देखिये व्यक्तिगत स्वार्थ को नहीं!

शिक्षक, शिक्षार्थी और पालकों के लिए
समान रूप से उपयोगी

विचार पूर्ण
शैक्षणिक मासिक
शिक्षा प्रदीप
अवश्य पढ़िये

पत्र व्यवहार का पताः—
व्यवस्थापक,
शिक्षा प्रदीप,
हवेली निकट सिटी कोतवाली
भोपाल (म. प्र.)

# मिट्टी की महिमा

लेखिका

श्रीमती कुंतल गोयल, एम. ए.

धरती को मां कहा जाता है और है भी सच। धरती पर रह कर ही मनुष्य जीवन धारण करता है। धरती के गर्भ में मनुष्य को स्वस्थ, सुखी एवं निरोग बनाने की अशेष शक्तियां निहित हैं। यह तो आज की इस सभ्यता का परिणाम है कि मनुष्य धरती की पावन गोद से निकल कर शहर की कृत्रिम विनाशकारी वायु में ही जीवनयापन को प्रमुखता देने लगा है। इसीलिये उसे धरती की उन असीम पोषक शक्तियों से वंचित होना पड़ा है, जो उसे निरोग, सबल एवं स्फूर्तिमय बनाती है। मिट्टी, पानी, धूप, हवा के खुले सम्पर्क से सर्वथा पृथक् रह कर वह पक्के सीमेंटेड मकान की मोटी-मोटी दीवारों में कैद हो गया है। खुले बदन, खुल कर स्वांस लेना तो आज असभ्यता की स्पष्ट परिभाषा बन गई है।

जिस तरह हमारी सभ्यता में गांव एक पिछड़ेपन की निशानी कहलाते हैं उसी प्रकार मिट्टी की बात कहना भी शहरातियों के सम्मुख हास्यास्पद ही प्रतीत होगी। पर नहीं, मिट्टी की महिमा अकथनीय है, अपार है। इसे तो भुक्त भोगी ही जान सकता है। डाक्टरों की बड़ी-बड़ी फीस और महंगी औषधियों के सामने मिट्टी का मूल्य है भी क्या? बढ़ते हुये डाक्टरों की बढ़ती हुई चिकित्सा पद्धतियों में पड़ कर मनुष्य वास्तव में मिट्टी की महत्ता भूल गया है। यदि मिट्टी के गुणों को देखा जाये तो उसके सम्मुख बड़े-बड़े डाक्टरों का सारा इलाज, उनका सारा ज्ञान व्यर्थ सिद्ध होगा। मिट्टी में सने-लिपटे गांव के बच्चे, धरती की उन्मुक्त गोद में पले-बढ़े, जीवन-धारी सबल, हृष्ट-पुष्ट नर-नारियां इसके गौरव युक्त प्रमाण हैं। शुद्ध मिट्टी का सम्पर्क मनुष्य को निरोग एवं सबल व दीर्घायु बनाता है। मिट्टी एक श्रेष्ठ औषधि है। एक प्रसिद्ध प्राकृतिक चिकित्सक एडोल्फ जुस्ट ने अनुभवों के आधार पर यह सिद्ध किया है कि संसार भर में ऐसा कोई भी रोग नहीं है जो मिट्टी के उपचार से दूर न किया जा सकता हो। आज भारत ही नहीं, विदेशों में भी चिकित्सक मिट्टी का महत्व भली प्रकार समझने लगे हैं। और मिट्टी के द्वारा विविध रोगों का सफल उपचार किया जा रहा है।

महात्मा गांधी मिट्टी की चिकित्सा के बड़े समर्थकों में से थे। उन्हें रोगों के प्रतिकार के लिये औषधियों के प्रयोग

में बहुत अरुचि थी। इस सम्बन्ध में उनका यह मत था कि क्षण-क्षण में वैद्य, हकीम और डाक्टरों के यहां दौड़ने और शरीर में अनेक जड़, छाल, पत्ते और रसायन ठूंसने से मनुष्य अपनी जिन्दगी छोटी कर लेता है। इतना ही नहीं, अपने मन पर उसका काबू नहीं रह जाता। इससे वह मनुष्यत्व खो बैठता है और शरीर का गुलाम बन जाता है। मिट्टी के प्रति उनके मन में आरम्भ से ही श्रद्धा का भाव था। उन्होंने अपनी आत्मकथा में इस बात का उल्लेख किया है कि "मिट्टी का प्रयोग करने का, एक जगह जम कर बैठने का मुझे मौका ही नहीं मिला फिर भी मिट्टी के और पानी के प्रयोग के विषय में मेरी जो श्रद्धा थी वही आज भी है। आज भी मर्यादा के अन्दर रह कर मिट्टी के उपचार खुद अपने ऊपर तो करता ही हूं और अपने साथियों को भी काम पड़ने पर सलाह देता हूं।" उनका यह दृढ़ विश्वास था कि मनुष्यों को दवा लेने की शायद ही जरूरत हो। पथ्य और पानी, मिट्टी आदि के घरेलू उपचारों से हजार में से नौ सौ निन्यान्वे रोगी चंगे हो सकते हैं।

मिट्टी के किये गये उपचारों से उनका यह विश्वास दृढ़तर होता गया। कब्ज और सिर दर्द से पीड़ित होने पर मिट्टी के उपचार से ही उन्हें लाभ मिला। दवाओं एवं खाने-पीने के परिवर्तन से भले ही क्षणिक लाभ मिल सके पर उससे पूर्णतया व्याधि मुक्त नहीं हुआ जा सकता। कब्ज की शिकायत रहने पर गांधीजी ने एक स्थान पर लिखा है कि "जुस्ट" की "प्रकृति की ओर लौटो" नामक पुस्तक से मैंने

मिट्टी के उपचार के बारे में पढ़ा और मिट्टी का इलाज शुरू किया। उसका आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ा। उपचार इस प्रकार था-- साफ, खेत की लाल या काली मिट्टी लेकर उसमें अंदाज से पानी मिला कर साफ गीले कपड़े में लपेट कर पेट पर रखा जाय। यह पुल्टिस रात को सोते समय बांधी जानी चाहिये जो सबेरे या रात्रि को नींद खुलने पर खोल दी जाये। इससे पुराने से पुराना कब्ज भी ठीक हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं।"

प्रकृति ने मिट्टी में महान् शक्तियां भरी हैं। सभी तत्व उनमें विद्यमान हैं जो मनुष्य का रक्षण और पोषण करते हैं। मिट्टी के उपचार से शरीर का समस्त विजातीय द्रव्य खींचकर बाहर निकल जाता है इस तरह रोगो का शमन बड़ी शीघ्रता से होता है। गीली मिट्टी में शरीर की उष्णता तथा विषाक्तता खींचने की अद्‌भुत शक्ति होने के कारण किसी भी रोग में इसका प्रयोग सफल होता है। यही नहीं, बिना मोल की मिट्टी का उपचार ऐसा अचूक व स्थायी होता है कि मनुष्य आश्चर्य चकित रह जाता है। मिट्टी कभी रोगी के लिये हानिप्रद नहीं होती। वह तो एक तरह से मनुष्य के रोगो तन--मन का काया कल्प करती है जबकि ये डाक्टरी औषधियां अपने विषाक्त प्रभावों से मनुष्य को इतना जर्जर, निर्बल तथा विवश बना देतीं हैं कि वह जीवन से ही निराश हो बैठता है और फिर जितने रोग उतनी दवाइयां और उनसे भी उत्पन्न नये--नये रोग। जब तक एक रोग का उपचार हो नहीं पाता कि दूसरा रोग मनुष्य

के भीतर अपनी जड़ें तैयार कर लेता है। यहीं तक नहीं, मनुष्य को इसका प्रतिफल और आगे भी भोगना पड़ता है। जब रोगों का तांता उसे भीतर से ही नहीं आर्थिक रूप से भी खोखला बना देता है। लेकिन इस मिट्टी का जादू तो गरीब-अमीर का भेद भाव नहीं रखता। इसके सम्मुख तो चाहे कितने ही प्रकार के रोग हों, चाहे कितने ही प्रकार के रोगी, सब पर इसका जादू एक सा ही चलता है। मन में आपके शंका हो तो अजमा कर ही देख लें। हां, मिट्टी के विविध रूप-रंगों का चमत्कार भी अपनी विशेषता रखता है।

काली मिट्टी का प्रयोग चर्म रोगों के उपचार में अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुआ है। एक्जिमा, खुजली, दाद फोड़े-फुन्सी, जलन शील दाने, मकड़ी आदि में इसका प्रयोग आशातीत लाभ पहुंचाता है। चिकनी मिट्टी भीतरी सूजन में अत्यन्त लाभदायक होती है। यकृत या आंतों की सूजन में भी इससे लाभ होता है। अमाशय की झिल्लियों के प्रदाह में पेडू पर मिट्टी की पट्टी का प्रयोग करना चाहिये। इससे अमाशय में रक्त संचरण में वृद्धि होती है तथा मिट्टी की शोषण शक्ति विषाक्त द्रव्य को सोख लेती है और कीटाणुओं को नष्ट कर देती है। नेत्र रोगों के लिये—आंखों में जलन तथा पीड़ा को दूर करने तथा आंखों को निर्मल रखने के लिये सोने से पूर्व गीली मिट्टी की पट्टी रखना चाहिये। मिट्टी की यह पट्टी प्रतिदिन बदलते जाना चाहिये ताकि रक्त संचार ठीक से होता रहे।

नींद न आने अथवा गाढ़ी नींद लेने के लिये काली मिट्टी का प्रयोग लाभ-प्रद होता है। साथ ही मस्तिष्क संबंधी रोगों का भी निदान हो जाता है।

कब्ज में गीली मिट्टी की पुल्टिस बांधने से भी लाभ होता है। इससे अन्दर का विकार निकालने में सहायता मिलती है।

जीर्ण रोगों, अनिद्रा, मूत्राशय के रोगों में भी मिट्टी का प्रयोग लाभकारी है। इससे रक्त शुद्ध होकर ठीक तरह से प्रवाहित होने लगता है।

टाइफाइड, इन्फ्लुएन्जा, जुकाम, खरास आदि में पेड़ू पर मिट्टी की पट्टी बांधनी चाहिये। क्योंकि ये रोग पेट की खराबी से ही होते हैं।

दंत रोगों को दूर करने के लिये माटी में फिटकरी व मीठा तेल मिलाकर दंतमंजन करना चाहिये।

बालों के समस्त रोगों के उपचार के लिये मिट्टी अचूक लाभ पहुंचाती है। और तो और गंजे रोग में चिकनी काली मिट्टी का लेप लाभप्रद सिद्ध होता है। बालों को स्वस्थ रखने के लिये मिट्टी से बढ़कर कोई दूसरा टानिक नहीं है। सिर व बालों के समस्त विकारों को दूर करने के लिये माटी महौषधि भी है। काली माटी से बाल धोने से बाल चिकने, चमकीले तथा नरम तो होते ही हैं, साथ ही मस्तिष्क शीतल रहता है। सिर की रूसी, खुजली आदि बीमारियां भी ठीक हो जाती हैं। माटी के नियमित प्रयोग से बालों का झड़ना,

टूटना आदि भी रुक जाता है ।

साबुन के स्थान पर माटी लगाकर स्नान करना, अभी भी पुराने लोगों को स्वास्थ्य को सुन्दर बनाने के लिये प्रिय है ।

माटी की महिमा अपार है । बस माटी को प्यार करना सीखिये । माटी की इस महिमा को स्वीकारते हुये फ्रांसीसी वैज्ञानिकों के एक दल ने काश्मीर की यात्रा कर यह पता लगाया है कि यहां के लोगों का दुनिया भर में सबसे अच्छा स्वास्थ्य होने तथा उनकी दीघायु का राज क्या है ? उन्हें यह जान कर आश्चर्य हुआ कि हुन्जा की इन घाटियों के लोगों की खुराक चट्टान तथा माटी है । वहां के लोग इन चट्टानों तथा माटीको बारीक पीस कर दूध में मिलाकर पीते हैं । वैज्ञानिकों का यह विचार है कि इन चट्टानों तथा माटी के चूर्ण में अपूर्व स्वास्थ्य प्रद तत्व विद्यमान है । उन्हें यह देखकर आश्चर्य हुआ कि यहां के लोग कभी अपने दांत साफ नहीं करते और न तो वे कभी बीमार ही पड़ते हैं। निस्सन्देह यह सब माटी का वरदान ही है । यदि मनुष्य इस माटी की महिमा समझ ले तो न केवल वह स्वयं अपने रोगों पर विजय प्राप्त कर सकता है वरन् वैद्य, डाक्टरों के चक्कर में नष्ट होने वाला स्वास्थ्य एवं धन की भी सुरक्षा कर सकता है, और फिर वह यही क्यों भूले कि धरती हमारी मां है । माटी से ही हम बने हुये हैं अतः उसी की कृपा से हम स्वस्थ सुखी और जीवन का गौरव पा सकते हैं ।

अध्यात्म-पथ के साधकों को प्रेरणा देने तथा
सन्मार्ग पर ले जाने वाली वेदान्त-ज्ञान की
अनुपम मासिक-पत्रिका

अखण्डप्रभा

सितम्बर में प्रकाशित विशेषाङ्क अपनी
अमूल्य सामग्री के कारण सभी के लिए संग्रहणीय है।

चन्दा—
आजीवन १००)
वार्षिक ४)

-: कार्यालय :-
११२/२३४, स्वरूपनगर,
कानपुर-२

पृथ्वी के स्वर्ग काश्मीर की रमणीय धरती से प्रकाशित हो रहे
उत्तर भारत के एक मात्र सांस्कृतिक व साहित्यिक पत्र

"हिम-हास" मासिक में पढ़िए :—

- आकर्षक कहानियाँ, ज्ञानवर्धक तथा मनोवैज्ञानिक लेख, धारावाहिक उपन्यास
- महिलाओं, बालकों और सामयिक राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं से संबन्धित स्थायी स्तंभ।
- तीन निःशुल्क प्रतियोगितायें।

एक प्रति ३५ पैसे वार्षिक ४ रुपये मात्र।

एजेन्सी के लिए आज ही लिखें :—

व्यवस्थापक "हिम हास" मासिक,
पुष्प निवास, बारामूला, काश्मीर

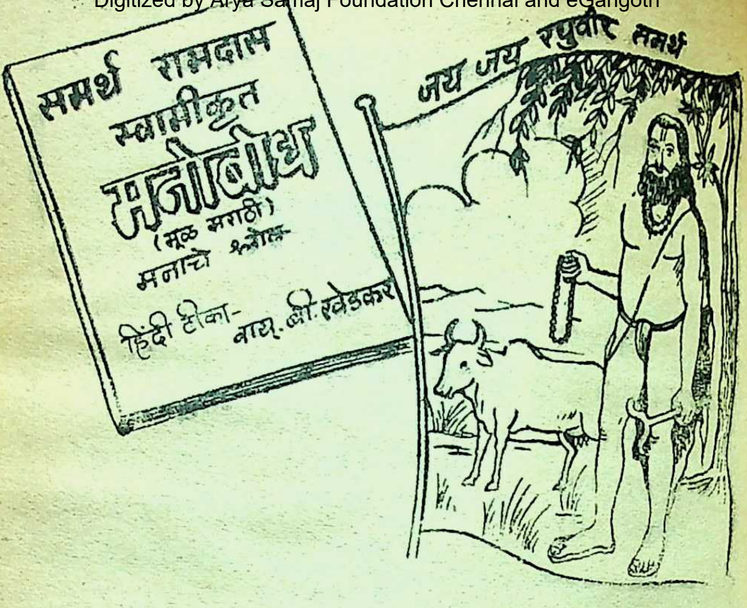
समर्थ रामदास
स्वामीकृत
मनोबोध
(मूळ मराठी)
मनाचे श्लोक
हिंदी टीका-
ना.श्री. खेडकर
जय जय रघुवीर समर्थ

[नवम्बर १९६४ के दीवाली विशेषांक में समर्थ रामदास स्वामी के 'मनोबोध' का थोड़ा भाग आप पढ़ चुके हैं। इस अंक में उसके आगे का भाग प्रस्तुत कर रहे हैं। महाराष्ट्र के राष्ट्र संत समर्थ रामदास स्वामी के विषय में आजकी पीढ़ीको कुछ ज्ञान होगा यह संभव नहीं। विशेषकर हिन्दी भाषी नवयुवक युवतियों को उनका परिचय जरा भी न होगा। अतएव महाराष्ट्र के सन्तों का परिचय हिन्दी जगत् को करा देना उचित होगा यह हमारी धारणा है। यही कामना मनमें रखते हुये 'मनोबोध' का विषय समाप्त होते ही समर्थ रामदास स्वामी का जीवन परिचय सारांश रूपमें यथावकाश देने का प्रयत्न किया जायेगा। 'मनोबोध' को आपके सम्मुख रखते हैं। सम्पादक.]

जयाचेनि संगें समाधान भंग ।
अहंता अकस्मात येऊन लागे ।
तये संगतीची जनीं कोण गोडी ।
जिये संगतीनें मती राम सोडी ।।३१।।

जिसका संग या साथ करने से, केवल संगति के कारण हे मन ! तेरी शांति या समाधान नष्ट हो जाता है और अहंकार की माया में अकस्मात् फस जाता है, जिस संगति के कारण मतिभ्रष्ट होकर रामनाम छूट जाता है, जो मति प्रभु राम को छोड़ देती है उस संगति की इस संसार में क्या जरूरत है ? क्या मूल्य है ? अर्थात् कुछ नहीं । अतएव मनोदेव ! मायावी संगत को पहचानो और उससे दूर रहो ।

मना जे घडी राघवावीण गेली ।
जनीं आपली ते तुवां हानि केली ।
रघुनायकावीण तो शीण आहे ।
जगीं दक्ष तो लक्ष लावून पाहे ।।३२।।

हे मन ! जागृत हो और आंख खोलकर इस संसार की ओर देख । जीवन क्षणभंगुर है यह ठीक समझकर एक पल भी बिना रामनाम के खोना नहीं । अरे ! जो भी क्षण तूने बिना राम के ही गवां दिया तो यह पूरा समझ ले कि अपनी ही मूर्खता से तूने अपनी हानि कर ली । रघुराम के बिना सारी क्रिया एक शीणमात्र है । अतएव इस जगत् में नित्य दक्ष रहकर सावधानी से आचरण करना यही उचित है ।

सदा देवकाजीं झिजे देह ज्याचा।
सदा रामनामे घदे नित्य वाचा॥
स्वधर्मेंचि चाले सदा उत्तमाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥३३॥

उस नरनारीका जीवन धन्य है जो कि सर्वोत्तम प्रभु राम का दास है। देवकार्यार्थ जिसकी काया चंदन समान घिसती रहती है, जिसकी वाचा नित्य रामनाम की धुनमें व्यस्त रहती है, जो सदाचार संपन्न हो स्वधर्म का पालन निष्ठापूर्वक करता है वही ईश्वर का भक्त है और जगत् में आदरणीय है।

सदा बोलण्या सारिखें चालसाहे।
अनेकीं सदा एक देवासी पाहे॥
सगूणीं भजे लेश नाहीं भ्रमाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥३४॥

प्रभु का वही सच्चा भक्त है और वही संसार में धन्य है जो जैसा बोलता है वैसा चलता है—आचरण करता है। अनेकों में एकही देव देखता है, चराचर में एकही तत्व भरा है यह भलीभांति समझता है। नि:शंक मनसे जो सगुणोपासना करता है। इसी आचारधर्म का पालन करने से मानव जन्म धन्य होता है। आया समझ में मनोदेव।

कमी वेळ जो तत्वचिंतानुवादें।
नलिंपे कदा दंभवादें विवादें॥
करी सूख संवाद जो ऊगमाचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥३५॥

और सुनो हे मन ! जो अपना समय निरंतर तत्व चिंतन में, प्रभु की सेवा में व्यतीत करता है और जो दंभवाद, पाखंडवाद आदि निरर्थक शब्दाडंबर में लिप्त नहीं होता, सत्य वस्तु की जिसे विस्मृति नहीं होती, वही धन्य है। और जो वाद करना ही हो तो नरका–मनुष्य का जो मूल-स्वरूप--'तत्वमसि' इस सिद्धान्तपर ही जो विवाद करता है वही प्रभु का दास धन्य होता है--धन्य कहलाता है। आया समझ में मनराजा !

सदा सेवी आरण्य तारुण्यकाळीं।
मिळेना कदा कल्पनेचेनि मेळीं॥
चळेना मनीं निश्चयो दृढ ज्याचा।
जगीं धन्य तो दास सर्वोत्तमाचा॥३६॥

समर्थ रामदास मनको और समझाते हैं।

सुनो हे मन ! युवावस्था यह ऐसा कालखंड है कि जिस समय मनुष्य संसार के क्षणिक माया मोह में देखते २ फंस जाता है। परन्तु विवेक से काम लेकर संसार में रहते हुये भी जो उससे अलिप्त रहता है, तारुण्यकाल में ही जो वनमें भ्रमण कर प्रत्येक वस्तुमें प्रभुका रूप देखता है, केवल कल्पना तरंगोंमें जो लिप्त होता नहीं और आपत्ति से टकराते हुये भी जो अचल रहता है वही प्रभुका दास है और संसार में वही धन्य कहलाता है।

जगीं होइने धन्य या रामनामें।

क्रिया भक्ति ऊपासना नित्य नेमें ।
उदासीनता तत्वतां सार आहे ।
सदा सर्वदा मोकळी वृत्ति राहे ॥३७॥

सुनो मनोदेव ! मेरे प्रभुकी महिमा सुनो ! नित्य नेम से रामप्रभू की भक्ति---उपासना करने से, शुद्ध और सात्विक भाव से रामनाम का जो जप करता है वह धन्य होता है। संसार में जो रहता है, कर्म करता है परंतु संसार के प्रति जो उदासीन है कमलस्य जलबिंदुवत् जो निर्लेप रहता है यही वास्तव में संसार का सार है। इससे मनुष्य की वृत्ति नित्य विकसित और प्रफुल्ल रहती है। यही जीवन का सार है मनोदेव !

मना कल्पना कल्पितां कल्पकोटी ।
नव्हे रे नव्हे सर्वथा रामभेटी ॥
मनीं कामना राम नाहीं जयाला ।
अती आदरें प्रीति नाहीं तयाला ॥३८॥

अरे ! ईश्वर है या नहीं, होगा तो कैसा होगा, सगुण या निर्गुण, काला या गोरा इस प्रकार यदि तू कल्पना ही कल्पना करता रहेगा, तर्कवाद के असंख्य गुलछर्रे उड़ाते रहेगा तो रामदर्शन तुझे कदापि न होगा। राम तुझसे दूर रहेगा। देखो मन ! जिसमें वासनाही वासना पूर्ण रूप से भरी है उसको 'राम' कैसे मिल सकता है ? प्रभु राम के प्रेमादर को कैसे प्राप्त हो सकता है ? अर्थात् बिना कृतिके, नामस्मरण,

अपजाप्य, साधना, तपस्या बिना राम का दर्शन असंभव।

घरीं कामधेनू पुढें ताक मागे।
हरी बोध सांडोनि वीवाद लागे॥
करी सार चिंतामणी कांचखंडें।
तया मागतां देत आहे उदंडें ॥३९॥

घरमें कामधेनू खड़ी है। जो इच्छा करो वह दे सकती है। 'वरं वृही, वरं बृही' भगवान् कहते हैं। परन्तु कोई अच्छा वर मांगने के बदले केवल एक प्यलाभर छाछ मांगता है तो ऐसे दरिद्री मनुष्य को क्या कहना? हरिभक्ति को छोड़कर व्यर्थ के वितंडावाद में अपना समय, सारा जीवन नष्ट कर देता है तो उस पगले को राम कैसे मिले? सवँ कांचखंडों का राजा जो चिंतामणि वही तेरे पास है, उससे भाव भक्ति से मांगने से तुम्हें उदंड मिळेगा। केवल निःसीम भक्ति की आवश्यकता है।

अती मूढ त्या दृढ बुद्धि असेना।
अती काम त्या राम चित्ती वसेना॥
अती लोंभ त्या क्षोभ होईल जाणा।
अती विषयीं सर्वदा दैन्यवाणा ॥४०॥

समर्थ रामदास मनको समझाते हैं। हे मन! तूं तो बड़ा चतुर है। परंतु जो मूढ़ होता है उसका भी परिचय तुझे होना चाहिये। तो सुनो। जो अति मूढ (मूर्ख) होता है

उसकी बुद्धि या विचार कभी दृढ़ न रहेगा। और जो अति कामी है उसके चित्तमें प्रभु राम का वास कभी न रहेगा। जो महान लोभी है उसके चित्त में नित्य क्षोभ उत्पन्न होता रहेगा। वह निरंतर चंचल और क्रोधी रहेगा। और अन्तमें जो अति विषयासक्त है वह तो संसार में सदा सर्वकाल दीन हीन और परवश होता है। सारांश, तुम इन सब दुर्गुणों से दूर रहो मेरे मनराजा !

—क्रमशः

वातायन

(अभिनव विचारों का साहित्यिक मासिक)

* वातायन में प्रकाशित कहानियाँ मानवीय संश्लेषण हैं।

** वातायन में प्रकाशित कवितायें जन-मानस की भाषा है।

*** वातायन में प्रकाशित निबन्ध चिंतन और अध्ययन के नवीन आधार हैं।

**** वातायन में प्रकाशित अन्य साहित्यिक विधाओं के साथ स्थायी-स्तंभ नवीन आयामों के प्रतीक हैं।

वार्षिक ८)

प्रधान कार्यालय
५, डागा बिल्डिंग, बीकानेर

एक प्रति ७० पै.

शाखा : २२, शिब ठाकुर लेन, कलकत्ता ७.

# ये कीटाणुनाशक हानिकारक दवाएं

लेखक
गोस्वामी बालक, सा. रत्न, शिक्षा विशारद

कीटाणु नाशक औषधियों के नाम से लोग आए दिन शायद उतने परिचित न होंगे, जितने कि डी. डी. टी. के नाम से। आज प्रायः सभी जानते हैं कि डी. डी. टी. मच्छरों को मारने के लिये प्रत्येक घरों में छिड़की जा रही है। यह छिड़काव मलेरिया को समाप्त करने के उद्देश्य से देश के कोने कोने में एक राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में सन् १९५३ ई. के लगभग आरम्भ हुआ था तथा प्रायः उसी समय से लोग इस डी. डी. टी. शब्द से भी परिचित हो गये हैं।

इस राष्ट्र व्यापी आन्दोलन के अन्तर्गत जो कीटाणुनाशक औषधियां घरों में छिड़की जा रही हैं, उनमें प्रमुख हैं—

(१) डी. डी. टी.
(याने डायक्लोरो डायफिनाइन ट्रायक्लोरी थीन)

(२) बी. एच. सी.

(याने बेन्जीन हेग्जा क्लोराइन)

( ३ ) डायलड्रीन

इन औषधियों को जल में घोलकर घरों की भीतरी दीवारों एवं छप्पर, छतों पर छिड़क दिया जाता है, जिससे कि इन औषधियों के कण निर्धारित मात्रा में छिड़क गए स्थानों पर चिपके रहें। ये औषधियां रासायनिक प्रक्रिया द्वारा उत्पादित केवल संसर्ग, विष मात्र ही है। कान्टैक्ट प्वाइजन तथा इनकी एक बहुत बड़ी विशेषता यह है कि, इनके कण लगभग चार से आठ सप्ताहों तक सक्रीय रहते हैं। छिड़के गये स्थानों पर जब कभी कोई मच्छर या उसके सरीखा ही अन्य कोई छोटा जीवधारी बैठ जाता है, तब ये कण उसकी त्वचा की चिकनाई (फेट सबस्टेंस) के साथ चिपक जाते हैं, तथा कालान्तर से चर्बी में घुलकर उसके स्नायु मण्डल को बुरी तरह से प्रभावित करते हैं, जिससे उस जीव को लकवा, पक्षाघात, मारे जैसी स्थिति घर दबाती है, तथा बच्चा कोई तीन चार घण्टों की तड़पन के बाद मर ही जाता है। इसी प्रकार इन विषाक्त कणों के संसर्ग में आकर अनेक कीटाणु प्राय: चार से आठ सप्ताहों तक मरते ही रहते हैं।

डी. डी. टी. अपने ढंग का वह पहला ही विष है, जिसका आविष्कार जर्मनी में सन् १८७४ ई. में श्री जिडलर ने किया था। किन्तु अपनी व्यावहारिक उपयोगिता के लिये इस विष को एक लंबे समय तक इंतजार करना पड़ा। आज इस बात

76347

के शायद ही कोई अस्वीकार करे कि, यह युग एक परिपूर्ण विषाक्त वातावरण से ओतप्रोत है एवं आज जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विषों की ही प्रधानता दी जा रही है। ठीक इसी विचारधारा के अनुरूप ही बहुत दिनों से इस विष की उपयोगिता पर भी नाना भांति के परीक्षण तथा संशोधन होते रहे एवं अन्ततः द्वितीय-महायुद्ध के आसपास मच्छरों को समूल नष्ट करने के उद्देश्य से इसके प्रयोग आरम्भ हुए।

आरम्भ में डी. डी. टी. के छिड़कते समय बड़ी सतर्कता बरती जाती थी। जिस घर में ये छिड़काव होते थे, वहां के प्रायः सभी खाद्य पदार्थ, पानी, वर्तन आदि को हटा दिया जाता था। छिड़काव करने वाले श्रमिकों को भी एक विशेष वस्त्र 'एप्रीन्स', आंखों को बचाने के वास्ते बड़े २ चश्मे, हाथ धोने के लिये साबुन तथा शरीर पर चुपड़ने के लिये मलहम दिया जाता था, जिससे कि वे विष के निरन्तर-संसर्ग में रहने पर भी उसके घातक प्रभाव से सुरक्षित रह सकें।

लेकिन इतना सब प्रबन्ध होने पर भी देखा गया कि इसके श्रमिकगण इस विष की अनेक प्रतिक्रियाओं के शिकार होनेसे बच न सके। जैसे—इसके घोलके सम्पर्कमें आने वाले शरीर के भागों, विशेषतः हाथों, बाहों आदि का जलना एवं त्वचा पर फुन्सियां हो जाना, कइयों की आंखें जलीं एवं बहुतों ने एक विशेष प्रकार की कमजोरी का भी अनुभव किया। परन्तु बाद में उनका क्या हुआ, यह किसी ने नहीं

देखा, किसी ने पूछा तक नहीं। यदि कुछ हुआ भी हो तो, उनके प्रत्येक लक्षणों के लिये पृथक बीमारी के नाम तो निर्धारित रहते ही हैं।

इसी भांति जब सर्व प्रथम यह 'डायलड्रीन' के छिड़काव आरम्भ हुए तो, उसको कई अच्छे, बुरे परिणाम लोगों के समक्ष आये। देश के प्रायः सभी भागों के लोगों ने इसे डी. डी. टी. से भी अच्छी तथा एक अति प्रभावकारी सफल कीटाणुनाशक औषधि कह कर पुकारा, क्यों कि इससे मच्छर, मक्खी, खटमल, छिपकलियां, चींटी, मकड़े आदि बहुत से कीड़े तो मरे ही, परन्तु चूहे, बिल्लियां, मुर्गियां आदि अनेक प्रकार के पालतू तथा मानवों के सहारे रहने वाले पशु पक्षी भी मृत्यु को प्राप्त हुए। बात इतने तक ही सीमित रहती तो एक हद की भी बात होती है। इस दवा को छिड़कने वाले भी इसके घातक दुष्परिणामों से बच न सके।

ऐसी ही घटनाओं का हवाला देते हुये केंद्रीय मलेरिया संस्थान दिल्ली द्वारा निर्णय लिया गया कि, इस कीटाणु नाशक दवा का उपयोग बड़ी सावधानी से किया जाय। खाने पीने के सामानों एवं बर्तनों आदि को ढक दिया जाय, या वहां से दूर हटा ही दिया जाय तो अच्छा है इस दवा को घोलने आदि के लिये काम में लाये गये बर्तनों को रखने या खाने पीने के काम में बिना अच्छी तरह साफ किये हुये व्यवहार में कभी न लाया जाय। दवा छिड़कते वक्त अपनी आंखों पर चश्मा, मुंह के लिये नाक सहित एक विशेष

आवरण तथा इसके सम्पर्क में आये अपने अंगों को साबुन से भली भांति धोने के आदेश शुरू किये जाएं और उन व्यक्तियों को, जिन्हें मिर्गी आती हो या जिनके परिवार में किसी को मिर्गी की बीमारी हो, उन्हें इन छिड़कावों से दूर ही हटाकर रखा जाए।

दरअसल बात इस तरह शुरू हुई कि, एक दिन कीटाणुनाशक औशधि डायलड्रीन को छिड़कने वाले एक श्रमिक को मिर्गी जैसा दौरा हुआ। पर इसे मिर्गी ही समझ कर छोड़ दिया गया। लेकिन फिर दूसरे आदमी को भी ठीक वैसा ही दौरा आया और तब यह अनुमान लगाया गया कि, हो न हो इस कीटाणुनाशक दवा के ही विष का यह प्रभाव है। उसकी जांच-पड़ताल करने पर अधिकारियों ने यह ढंग निकाला और कहा कि उन्होंने रात्री में भूल से डायलड्रीन का घुला हुआ पानी पी लिया था। पेट में इस पानी के अधिक मात्रा के पहुंचनेके कारण ही यह हानि हुई। अन्यथा जिस परिमाण में यह छिड़की जा रही है, वह तो निरापद ही है।

परन्तु देखते ही देखते इस मिथ्या भ्रम का निराकरण कर दिया और तब कहीं अन्त में मानना पड़ा कि, डायलड्रीन के निरन्तर के संसर्ग से ही ये व्याधियां उत्पन्न हुई हैं।

यहां पर यह बता देना भी असंगत न होगा कि इन व्याधियों को अनुभव करने वाले कोई भी मजदूर अधिक आयु के न थे। सब के सब तरुण और पूर्ण स्वस्थ थे। यह बात ऐसी भी नहीं कि उन्हें एक २ दौरा आकर ही इस

बीमारी से मुक्ति मिल गई हो, लेकिन लोगों को ये दौरे दो या अढ़ाई माह तक भी आते रहे।

सामान्य जनता पर इसके कोई दुष्परिणाम हो सकते हैं आज इसे कोई मानने के लिए तैयार नहीं है। जैसा कि हम पाठकों को पहले ही बता आए हैं कि कीटाणुनाशक औषधियां विष हैं और इसीलिए इससे कीटाणु मरते भी हैं, फिर कीटकों को मारने के असफल प्रयासों द्वारा सामूहिक रूप से, मानवीय आवासों को इससे छिड़कर सम्पूर्ण वातावरण को विषमय ही बना देना स्वास्थ्य के लिये कहां तक हितकर हो सकता है? इस पर शायद ही कभी विचार किया हो।

थोड़ा अनुमान लगाइये कि हमारे चारों ओर चाहे वह बहुत थोड़ी मात्रा में ही क्यों न हो, विष बिखेर दिया गया है। उठते, बैठते, झाड़ते, बुहारते, उसके कण वायु में अवश्य ही तरंगित होते रहते होंगे उसके स्पर्श से हम अपने आपको नहीं बचा पावेंगे। चक्षु जैसी सुकोमल इन्द्रियों में उनके पहुंचने पर क्या होता होगा, यदि छींकों द्वारा पुनः बाहर न फेंक दिये गए। छिड़कावे के ठीक बाद छींके आना सामान्य तथा बहुतायत से देखा भी गया है। क्यों कि श्वास प्रणाली द्वारा शरीर के अन्दर जाकर ये विषकण क्या निष्क्रिय हो जाते होंगे? एक गढ़ की प्राचीर की भांति यह त्वचा बाह्य शत्रुओं से हमारी रक्षा करती है—'हमारी' से यहां मेरा प्रयोग है उन सूक्ष्म सजीव घटकों का जो मच्छरों से भी कई गुणा छोटे और नाजुक होते हैं। जिनका सामुदायक सहयोगी अस्तित्व ही हमारा जीवन है। उन पर प्रहार

अप्रत्यक्ष रूप से हम पर ही प्रहार होगा और उनका नाश ही हमारा नाश, चाहे वह कितने ही सूक्ष्मरूप में और क्रमशः ही क्यों न हो। इस प्रकार चाहे कुछ समय के लिए भले ही मलेरिया पर अंकुश लगाया जा सके. परन्तु यह सन्देह से परे नहीं कि, आज भांति--भांति के बढ़ते हुए रोगों के नामकरण और उनके नित नए रूपों के मूल में ऐसे ही अनेक अप्राकृतिक तत्व विद्यमान् न हों।

जब पहली बार भारत में विशाल पैमाने पर डी. डी. टी. के छिड़काव शुरू हुए तो यहां के लोग इससे अधिक प्रभावित हुए। विशेष कर ग्राम्य जनता ने इसका बड़ा स्वागत किया, क्योंकि जब उनके घरों में इस कीटाणुनाशक ओषधि का छिड़काव हुआ, तो उन्होंने देखा कि इसके प्रभाव से मच्छर, मक्खी, खटमल; पशुओं की चिचिलियां, सिर के जुएं, चूहे आदि सब एक साथ साफ होने लगे। गांवों के लिये यह कोई साधारण सी बात तो थी भी नहीं, इसलिये छिड़काव एक दो वर्षों तक तो बड़ी धूमधाम से चले, किंतु कालांतर से इनमें शिथिलता आने लगी और आज तो देश के कोने २ से यही समाचार आ रहे हैं कि, इन दवाओं से मच्छर मरना तो दूर वरन् और भी बढ़ जाते हैं। इन औषधियों के जिन घोतक प्रभावों का ऊपर उल्लेख किया गया है, उसे देखते हुए ये समाचार जंचते नहीं, परन्तु यह बात भी सत्य है कि आज इन औषधियों से मच्छर मर नहीं रहे हैं। दूसरी बात यह कि जिन घरों में इसके श्रमिक छिड़काव के लिये जाते हैं, तो उन्हें सभी घरबारका हाल मालूम हो जाता

है और इनके द्वारा चोरियां और डकैतियों की शिकायत बढ़ी हैं।

मानव अपने कृत्रिम साधनों से सृष्टि के विधान को बदलने पर यदि तुल गया है, तो प्रकृति भी अपने ऊपर पूर्ण तथा निर्भर इन छोटे निरीह जीवधारियों को एक विशेष सम्बल प्रदान कर रही है, जिससे इन कीटकों को सृष्टि से निर्मूल करने के सारे स्वप्न ही स्वाहा हो गए हैं। और इसलिए आज इन विषाक्त छिड़काओं को रोकने का भी विचार बड़ी तेजी से निर्णय की प्रतीक्षा कर रहा है।

डी. डी. टी. से मच्छरों को न मारो, निरोध नामक एक पृथक ही विषय है, जिस पर अलग से बिचार करने योग्य स्थान चाहिए।

* * *

आप जीवन सफल बनाना चाहें तो आज ही एक कार्ड भेजकर

'गोरक्षण' मासिक पत्रिका

का एक अंक बिना मूल्य मंगाकर पढ़ें। यह मासिक पत्र १२ वर्ष से गोरक्षा, अहिंसा तथा जीवदया-प्रचार के लिये संसार के कोने-कोने में प्रसारित किया जा रहा है। अनेक राजा-महाराजा एवं सेठ-साहूकार इस पत्र के संरक्षक हैं।

'गोरक्षण' मासिक पत्र का साधारण वार्षिक शुल्क ५ रु.) प्रतिष्ठित शुल्क २५ रु. और आजीवन संरक्षक शुल्क १०१रु. है, गोरक्षा तथा अहिंसा प्रचार इच्छुक एजेण्ट पत्र-व्यवहार करें।

गोरक्षण साहित्य मन्दिर, पो० रामनगर, वाराणसी: (उ. प्र.)

# बाल्य, युवा और वृद्धावस्था के दोष

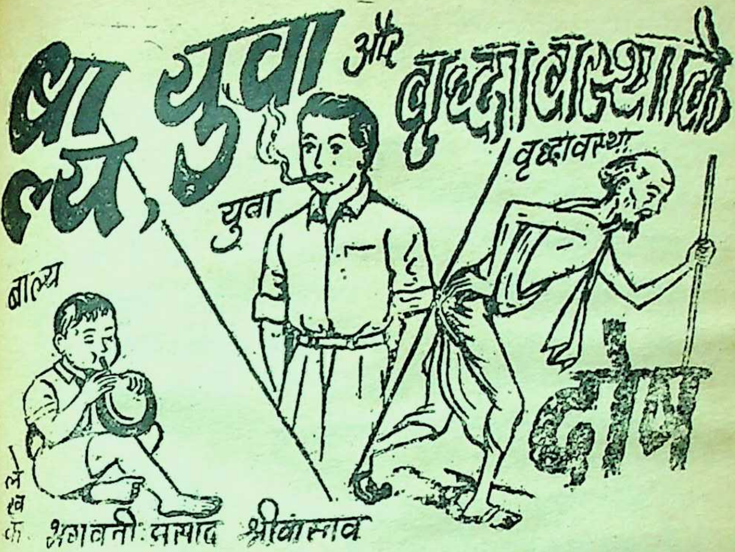

लेखक भगवती प्रसाद श्रीवास्तव

१—बाल्य अवस्था के दोषः—असमर्थता, आपत्तियां, तृष्णा, मूकता, (बोल न सकना), मूढ़ बुद्धिता (बुद्धि के द्वारा कुछ ज्ञान न पाना), खिलौने आदि की आवश्यकता, चंचलता और दीनता आदि सारे दोष बाल्यावस्था में ही प्रकट होते हैं। बाल्यावस्था में पशु-पक्षियों की-सी चेष्टायें होती हैं। बालक सभी लोगों के द्वारा तिरस्कृत होता है। बालकों की चपल चेष्टा मृत्यु से भी बढ़ कर दुःख देने वाली होती है। बाल्यावस्था में अज्ञानवश जल, अग्नि और वायु से निरन्तर उत्पन्न होने वाले भय के कारण पग-पग पर जो दुःख प्राप्त होता है, वह आपत्ति काल में भी किसी को होता होगा ? बालक भांति-भांति की लीलाओं, दुर्विलाशाओं, दुश्चेष्टाओं तथा दूषित अभिप्राय में हठात् प्रवृत होकर बड़े भारी मोह में पड़ जाता है। बाल्यावस्था में बालक जिस

किसी के भी कहने से निष्फल कार्य में प्रवृत हो जाते हैं, अनेक प्रकार की दुश्चेष्टायें करते हैं तथा किसी प्रकार भी प्रतिष्ठा की प्राप्ति उनके लिये दुर्लभ है। इस तरह मनुष्य का शैशवकाल केवल गुरुजनों का शासन स्वीकार करने के लिये ही है, सुख और शांति प्रदान करने के लिये नहीं। जैसे उल्लू दिन में अन्धकार से भरे हुये दूषित गड्ढों में छिपे रहते हैं, उसी प्रकार जो जो दोष जितने दुराचार तथा जो २ दुर्लक्ष्य दुश्चिन्ताएं हैं, वे सब की सब बाल्यावस्था में ही जीव के हृदय में छिपकर बैठी रहती हैं।

जो लोग 'बाल्यावस्था बड़ी रमणीय है,' ऐसी कल्पना करते हैं, उन सब की बुद्धि व्यर्थ है। उन हतचित मूढ़ बुद्धि लोगों को बारंबार धिक्कार है। जहां झूले के समान चंचल मन विविध विषयों के आकार को प्राप्त होता है तथा जो तीनोंलोकों में अमंगल रूप है, वह बाल्यावस्था कैसे संतोष दायक हो सकती है? सभी प्राणियों का मन अन्य सब अवस्थाओं की अपेक्षा बाल्यावस्था में ही दस गुना चंचल हो उठता है। मन स्वभाव से ही चंचल है और बाल्यावस्था सम्पूर्ण चंचल पदार्थों में सबसे बढ़ कर है। जहां उन दोनो का संयोग हो, वहीं अन्त करण में चपलता जनित अनर्थ से बचाने वाला कौन है। बचपन और मन ये दोनो सभी वृत्तियों (व्यवहारो) में सदा दो सहोदर भाइयों के समान दृष्टिगोचर होते हैं। इन दोनो की ही स्थिति क्षणभंगुर है। बालक कुत्ते के समान थोड़ा-सा ही खाना देने या पुचकारने से वश में हो जाता है और थोड़ा-सा घुड़कने या

छड़ी आदि दिखाने से बिगड़ जाता या डर जाता है। वह सदा अपवित्र स्थान में ही रमता या खेलता है। सर्दी, गरमी का अनुभव तो होता है, परन्तु जो उनका निवारण करने में समर्थ नहीं होता, उस बालक और वृक्ष में क्या अन्तर है ? बाल्यकाल में गुरु से, माता-पिता से, अन्य लोगों से तथा अपनी अपेक्षा बड़े बालकों से भी भय प्राप्त होता है। अतः बाल्यावस्था भय का मंदिर ही है बाल्यावस्था में समस्त दोषपूर्ण दशाओं द्वारा अन्तःकरण दूषित होता है और बाल्यकाल अविवेक नामधारी विलासी का विलास भवन है। इस लिये इस जगत में यह बाल्यावस्था किसी के लिये भी पूर्ण संतोषदायक नहीं है।

२—युवावस्था के दोष:—बचपन के बाद मनुष्य बाल्यावस्था के अनर्थों का त्याग कर भोग भोगने के उत्साह, भ्रांति अथवा काम रूप पिशाच से दूषित-चित्त होकर नरक में गिरने के लिये ही यौवनारूढ़ होता है। यौवनावस्था में मूर्ख मनुष्य अनन्त विलास (चेष्टा) वाले अपने चंचल चित्त की राग-द्वेषादि वृत्तियों का अनुभव करता हुआ एक दुःख से दूसरे दुःख को प्राप्त होता है। अपने चित्त रूपी बिल में स्थिर हो नाना प्रकार भ्रांति पैदा करने वाला कामरूपी पिशाच अपने वश में हुए पुरुष का बलपूर्वक तिरस्कार करता है। युवावस्था में स्त्री, द्यूत और कलह आदि दुर्व्यसनों को उत्पन्न करने वाले वे राग लोभ आदि प्रसिद्ध एवं दुष्ट दोष वैसे (काम, चिन्ता आदि के वशीभूत) अन्तःकरण वाले पुरुष को, जो काम आदि में तन्मय हो रहा है, यौवन के ही सहारे

नष्ट कर डालते हैं । जो महान् नरक का बीज है और सदा भ्रांति पैदा करने वाला है, उस यौवन के द्वारा जिनका नाश नहीं हुआ, वे मनुष्य दूसरे किसी से नष्ट नहीं हो सकते। श्रृंगार आदि नाना प्रकार के रसों से पूर्ण और अनेक प्रकार के आश्चर्य जनक वृत्तान्तों से युक्त भीषण यौवन रूपी भूमि को जिसने पार कर लिया, वही पुरुष धीर कहलाता है। जो क्षण भर के लिये प्रकाशमान, चंचल मेघों की गम्भीर गर्जना (अभिमान पूर्ण वचन) से व्याप्त और बिजली की तरह चमककर लुप्त हो जाने वाला है, वह अमंगल मय यौवन अच्छा नहीं लगता । जो भोग के समय मधुर अतएव स्वादिष्ट (मनोरम) और अन्त में दुखदाई होने के कारण तिक्त प्रतीत होता है, जिस में दोष ही दोष भरे हैं, जो सब दोषों का आभूषण तथा मदिरा के मद विलास के समान मोहक है, वह यौवन मुझे कदापि अच्छा नहीं लगता । जो असत्य होकर भी सत्य सा प्रतीत होता है, शीघ्र ही धोखा देने वाला है तथा स्वप्नावस्था में किये स्त्री सहवास के समान है, वह यौवन मुझे अच्छा नहीं लगता । यह क्षण भर के लिये सुन्दर प्रतीत होने वाली सम्पूर्ण वस्तुओं में अग्रगण्य हैं । सारी आयु बीत जाने पर दिखाई देनेवाले गन्धर्वनगर के समान है । यह सब लोगों को क्षणमात्र के लिये मनोहर प्रतीत होता है। अत: मुझे यह अच्छा नहीं लगता ।

यह यौवन ऊपर से तो रमणीय प्रतीत होता है, किंतु भीतर से सद्भावशून्य है । अतः वेश्या स्त्री के समागम के समान घृणित होने के कारण मुझे रुचिकर नहीं जान पड़ता

जैसे प्रलयकाल में सब को दुःख देनेवाले बड़े २ उत्पात सब ओर से उमड़ उठते हैं, उसी प्रकार युवावस्था में सबको कष्ट प्रदान करने वाले जो कोई भी आयोजन हैं, वे सब निकट आ जाते हैं। युवावस्था का मोह मंगलमय आचार को भुला देने वाले और बुद्धि को कुण्ठित कर देने वाये भ्रम का अतिशय मात्रा में उत्पादन करता है। जैसे दावाग्नि वृक्ष को जला देती है, उसी प्रकार युवावस्था में जीव प्रियतमा के वियोग जनित दुस्सह शोकाग्नि से मन ही मन जलता रहता है। जैसे अत्यन्त निर्मल, विस्तृत एवं पवित्र नदी भी वर्षाऋतु में मलिन हो जाती है, उसी प्रकार परम, निर्मल, विशाल एवं शुद्ध बुद्धि भी युवावस्था में कलुषित हो जाती है। बहुत सी उत्ताल तरंगों से युक्त भयानक नदी लांघी जा सकती है, परन्तु भोग तृष्णा की चपलता स युक्त युवावस्था नहीं लांघी जा सकती। वह प्राणवल्लभा उसके वे मोटे-मोटे स्तन, वे मनोहर विलास और वह सुन्दर मुख कितना मनोरम है। युवावस्था में इसी तरह की चिन्ताओं से मनुष्य जर्जर हो जाता है। रजोगुण और तमोगुण से पूर्ण यह विषम यौवन रूप आंधी सम्पूर्ण सद्गुणों की स्थिरता को नष्ट करने में दक्ष है। मनुष्यों के यौवन का उल्लास (विकास) दोष समूहों को जगाता और सद्गुण-समुदाय का मूलोच्छेद करता है। अतएव उसे पाप वैभव का विलास कहा गया है। शरीर रूपी उपवन में उत्पन्न हुई यौवन की बेल बड़ी रमणीय है। वह ज्यों २ बढ़ती या ऊंचे चढ़ती है, त्यों ही त्यों अपने से सटे हुये मनरूपो भ्रमर को उन्मत्त बना देती है। शरीर

रूपी मरुभूमि में कामरूपी घाम के ताप से प्रकट हो भ्रांति रूप में प्रतीत होने वाली जो यौवन रूपिणी मृगतृष्णा है, उसकी ओर दौड़ते हुए मनरूपी मृग विषयों के गड्ढे में गिर जाते हैं। यह युवावस्था देहरूपी जंगल में कुछ दिनों के लिये प्रकाशित होने वाली शरदऋतु के समान है। लोगो! तुम इस पर विश्वास न करो।

जब जब यौवन अपनी चरम सीमापर आरूढ़ हो जाता है। तब तब संतापयुक्त कामनायें केवल विनाश के लिये ही बढ़ने या नृत्य करने लगती हैं। ये राग-द्वेषरूपी पिशाच तभी तक विशेष रूप से नाचते फिरते हैं जबतक कि यह यौवनरूपिणी रात्रि पूर्ण रूप से नष्ट नहीं हो जाती। जो महामुग्ध पुरुष मोहवश क्षणभंगुर यौवन से हर्ष को प्राप्त होता है, वह मनुष्य होता हुआ भी निरा पशु ही माना गया है। जो मनुष्य अभिमान या अज्ञान के कारण मदोन्मत्त यौवनावस्था की अभिलाषा करता है, उस दुर्बुद्धि को शीघ्र ही पश्चाताप का भागी होना पड़ता है। इस भूतलपर वे ही पुरुष पूजनीय हैं और महात्मा हैं, जो यौवनरूपी संकट से सुख पूर्वक पार हो गये हैं। बड़े २ मगरों से भरे हुये महासागर को सुखपूर्वक पार किया जा सकता है, किंतु विषय चिंतन आदि महातरंगों के कारण उमेड़े हुए और दुर्गुण-दुराचाररूप अनेक दोषों से भरे हुये इस निन्दनीय यौवन के पार जाना बहुत ही कठिन है। विनय से अलंकृत, श्रेष्ठ पुरुषों को आश्रय देने वाला, करुणा से प्रकाशित तथा साम, दाम, क्षमा, दया, शांति, सन्तोष सरलता आदि विविध गुणों

से युक्त उत्तम यौवन इस संसार में उसी तरह दुर्लभ है, जैसे आकाश में वन।

३—वृद्धावस्था के दोष:—जैसे हिमरूपी वज्र कमल को, आंधी ओसकण को और नदी तटवर्ती वृक्ष को नष्ट कर देती है, उसी प्रकार वृद्धावस्था शरीर का नाश कर डालती है। जैसे लेशमात्र विष का भक्षण शरीर को शीघ्र ही कुरूप बना देता है, उसी प्रकार बुढ़िया जरावस्था मनुष्य के सारे अंगों को जर्जर करके शीघ्र ही कुरूप कर देती है। जिनके सारे अंग शिथिल होकर झुर्रियों से भर गये हैं और जरावस्था ने जिनके सारे अंगों को जर्जर बना दिया है, उन समस्त पुरुषों को कामिनियां ऊंट के समान समझती हैं। वृद्धावस्था के कारण जिसके अंग कांपते रहते हैं, ऐसे मनुष्य को नौकर चाकर, स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव, तथा सुहृदगण भी उन्मत्त के समान समझ कर उसकी हंसी उड़ाते हैं। जो दीनता रूपी दोष से परिपूर्ण, हृदय में संताप पहुंचाने वाली तथा समस्त आपत्तियों की एक मात्र सहचरी है, वह विशाल तृष्णा, वृद्धावस्था में बढ़ती ही जाती है। 'हाय' बड़े खेद की बात है, मैं परलोक में क्या करूंगा ? इस प्रकार का अत्यन्त दारुणमय, जो प्रतिकार के योग्य नहीं है वृद्धावस्था में बढ़ता जाता है। बुढ़ापे में 'मैं बेचारा कौन हू ? मेरी हस्ती ही क्या है ? मैं किस प्रकार क्या करूं ? अच्छा मैं चुप ही रहता हूं।' इस प्रकार की दीनता का उदय होता है। 'मुझे किसी स्वजन से कब, क्या और किस प्रकार का स्वादिष्ट भोजन

प्राप्त हो सकता है?' इस प्रकार चितारूपिणी दूसरी जरावस्था बुढ़ापे में निरन्तर चित्त को जलाती रहती है। वृद्धावस्था में मनुष्य अपनी शक्ति का संतुलन खो बैठता है—कभी खाने की शक्ति होने पर पचाने की शक्ति नहीं रहती और कभी पचाने की होने पर खाने की शक्ति नहीं रहती। इस प्रकार शक्ति के ह्रास के कारण भोग की इच्छा तो बड़ी प्रबल हो उठती है; परन्तु उपभोग किया नहीं जा सकता। उस दशा में निश्चय ही हृदय जलता रहता है। शरीर रूपी वृक्ष के सिरे पर बैठी हुई जरावस्था रूपिणी वृद्धा बगुली, जो नाना प्रकार के क्लेशों से शरीर का उपकार करने वाली है, रोग रूपी सर्पों से आक्रांत होकर ज्यों ही चें-चें करने लगती है, त्यों ही मूर्छा रूपी गहरे अन्धकार की इच्छा रखने वाला मृत्युरूपी उल्लू कहीं से झट पट आया हुआ ही दिखाई देता है।

जैसे सायंकाल की संध्या प्रकट होते ही अन्धकार दौड़ पड़ता है, उसी प्रकार शरीर में जरावस्था को देखते ही मृत्यु दौड़ी चली आती है। सूना नगर, जिसकी लतायें कट गई हों वह वृक्ष तथा जहां वर्षा न हुई हो, वह देश भी कुछ २ शोभित होता है, किन्तु जरा से जर्जर हुये शरीर की तनिक भी शोभा नहीं होती। वृद्धावस्था की मार खाकर जर्जर हुआ शरीर हिमसमूह से आक्रान्त हो मुरझाये हुये कमल की सी शोभा को धारण करता है।

मस्तकरूपी पर्वत के शिखर पर उगी हुई यह वृद्धावस्था

रूपिणी चांदनी वातरोग और खांसीरूपिणी कुमुदिनी को यत्नपूर्वक विकसित कर देती है। यह बुढ़ापा रूपिणी वेगवती गंगा आयु के समाप्त होने पर शरीर रूपी तटवर्ती वृक्ष की जड़ों को तुरन्त ही काट गिराती है। जैसे श्वेत पत्र वाली और फूलों से लदी हुई पतली लता कुछ टेढ़ी हो जाती है, उसी प्रकार जिसके सारे अवयव सफेद हो गये हैं, मनुष्यों का वह दुबला-पतला शरीर वृद्धावस्था से टेढ़ा हो जाता है—कमान की तरह झुक जाता है। जैसे कपूर से सफेद हुये केले के पेड़ को हाथी क्षण भर में उखाड़ फेंकता है, उसी प्रकार मृत्यु रूपी गजराज वृद्धावस्था से कपूर की भांति सफेद हुई देह को निश्चय ही क्षण भर में उखाड़ फेंकता है। जो वृद्धावस्था को प्राप्त होकर भी जीता है उस दुष्ट जीवन के लिये दुराग्रह रखने से क्या लाभ? भूतल पर किसी से पराजित न होने वाली यह जरावस्था मनुष्यों की की समस्त एषणाओं का तिरस्कार कर देती है—उनकी किसी भी इच्छा को सफल नहीं होने देती।

(एक वैराग्य युक्त शिष्य का अपने सुपूज्य गुरु के प्रति उद्गार पुराणोक्त विषय।)

卐 ॐ शांतिः शांतिः शांतिः 卐

# मैं कौन हूं?

लेखक
आचार्य मित्रसेन
एम. ए.

सभी प्राणी 'मैं' जानते है। पुरुष, स्त्री, बालक, वृद्ध सभी को 'मैं' की अनुभूति होती है। विश्व की सभी भाषाओं में 'मैं' के व्यवहार के लिये शब्द विद्यमान हैं। सभी 'मैं' का व्यवहार करते हैं। मैं, मेरा, के लिये दुनिया में पाप और पुण्य होते हैं। इस 'मैं' को जानना बहुत सरल है पर 'मैं' कौन हूं'? यह जानना बहुत कठिन है। इस युग में जो प्राणी निवास करते हैं चाहे वे धर्म पर विश्वास करते हैं या नहीं अथवा वे चाहे विज्ञान की शक्ति पर या प्रकृति पर विश्वास करते हैं, सभी यह जानना चाहते हैं कि 'मैं' कौन हूं'? यह पहेली नई नहीं है, वेद ने कहाः—

न वि जानामि यदि वेद मस्मि
निण्यः सन्नद्धो मनसा चरामि। ऋक् १।१६४।३७

अर्थात् 'मैं' (शरीर) नहीं जानता कि मैं क्या यही हूं, मैं तो सन्नद्ध होकर मनन शक्ति द्वारा गति करता हूं। फिर भी कुछ लोगों का यह विचार है कि यह प्रश्न व्यर्थ का है। इस पर हमें विचार न करना चाहिये, इस विषय को तथ्यहीन जानकर पाश्चात्य विद्वान् श्री कारलायल महोदय लिखते हैं "सृष्टि के आरम्भ से आजतक कुछ लोग व्यर्थ ही 'मैं क्या हूं' की जटिल समस्या को सुलझाने में लगे रहे हैं और उन्होंने अपना जीवन-श्रम व्यर्थ ही खो दिया, अब उनको ऐसे व्यर्थ और अनुपयोगी परिश्रम से बचकर यह सोचना चाहिये कि "मैं क्या करूं ?"

दूसरी ओर भारतीय विद्वान् दार्शनिक अपना समस्त जीवन इसी की खोज में लगा दिये, तब कहीं वे इस प्रश्न के उत्तर का अनुसन्धान कर पाये। छान्दोग्योपनिषद् में इन्द्र और विरोचन की कथा के माध्यम से इसी प्रश्न का उत्तर दिया गया है। महर्षि प्रजापति कहते हैं:—

प्रतिबो विदितम्

अर्थात्—साक्षी के लिये बोध की आवश्यकता है। जैसे शरीर के साथ छाया हर समय विद्यमान रहती है उसी भांति प्रत्येक बोध अपने बोधक के साथ रहा करता है। साक्षी के लिये स्वयं की साक्षी अत्यावश्यक है, यह साक्षी ही 'मैं कौन हूं' का उत्तर है। और वह उत्तर है 'आत्मा'। इस आत्मा का अनुसन्धान करना ही प्रत्येक प्राणी का अन्तिम लक्ष्य है। महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं:—

"अपनी आत्मा को खोजो उसी से तुम्हें सब बातों का पता चलेगा, इस ज्ञान की गुत्थी सुलझाने के लिये अपनी आत्मा को जान लेना ही सबसे बड़ा साधन है।"

आत्मा समस्त अन्य वस्तुओं से महान् है यह मत केवल भारतीय ही नहीं है अपितु पाश्चात्य विद्वान् भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं। डा० विक्टर ह्यूगो ने लिखा है:—

"समुद्रों से एक बड़ी चीज है आकाश, आकाश से एक बड़ी चीज है और वह है मनुष्य की आत्मा।" गेटे ने इस विषय में लिखा है "जिनकी आत्मायें छोटी हैं वे बड़े बड़े पापों के रचियिता होते हैं।" एमर्सन महोदय ने दुनिया की सबसे अधिक कीमती चीजों में इसकी गणना की है।

जिसके लिये 'मैं' शब्द का प्रयोग किया जाता है वह शरीर स्वयं जड़ है न उसमें ज्ञान होता है और न प्रयत्न, वह स्वयं गतिशील भी नहीं, इससे ज्ञात हुआ कि मैं शरीर से भिन्न तत्व है और वह है आत्मा। आत्मा में उक्त शक्तियां विद्यमान हैं, ऋग्वेद इस विषय में कहता है:—

अपाङ् प्राङेति स्वधया
गृभीतोऽमर्त्योमर्त्येन सयोनिः ॥

शरीर अजर, अमर नहीं परन्तु आत्मा अजर और अमर है। वह मरण धर्मा शरीर के साथ रहकर अपनी इच्छा से जकड़ा हुआ किसी वस्तु की ओर आकर्षित होता है जैसे चुम्बक की ओर लोहा, इससे यह तथ्य भी प्रकट होता है कि आत्मा में राग द्वेष की शक्ति विद्यमान है। जिसे वह

स्वतन्त्रता पूर्वक प्रयोग कर सकता है। आत्मा में राग द्वेष क्यों होता है? इस प्रश्न का उत्तर है कि इसके कारण हैं सुख और दुःख। जिस वस्तु से हमें सुख प्रात होता है उसे प्राप्त करने की इच्छा होती है यह इच्छा राग कहाती है। और जिससे दुःख मिलता है उससे द्वेष उत्पन्न होता है। इसे हम व्यवहारिक जगत् में देखते ही है। हां राग और द्वेष का भान शरीर को नहीं होता क्योंकि वह तो अचेतन है। प्रत्युत इनका भान चेतन आत्मा को ही होता है।

## आत्मा के लक्षण

न्याय दर्शन ने आत्मा के छः लक्षण बताये हैं। सुख, दुःख, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न और ज्ञान। वैशेषिक दर्शन से प्राण, अपान, निमेष, उन्मेष, गति और इन्द्रियों के अन्तर विकारण को भी आत्मा का लक्षण माना है। चरकने भी इसका समर्थन किया है:—

प्राणापानौ निमेषाद्या जीवनं मनस्तो गतिः।

ऋग्वेद ने इसे अधिक परिमार्जित एवं स्पष्ट भाषा में कहा:—

सङ्जानां स प्रथमा हुरेषन-
षडिद्यमा ऋषयो देवजा ॥

अर्थात—सात प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों को जिनमें से छः (सुखको छोड़कर) को एकत्रित करके जो ज्ञान की प्रतीति कराता है उसे आत्मा कहते हैं। महर्षि दयानन्द ने आत्मा लक्षण लिखा है—"जो इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और ज्ञानादि

गुण युक्त अल्पज्ञ नित्य है, उसीको जीव (आत्मा) मानता हूं।"

## गुण और धर्म

दार्शनिक विचारकों ने आत्मा के गुण और धर्मों का विस्तार से वर्णन किया है। हम यहां उन्हें स्थानाभाव के कारण संक्षेप में वर्णित करते हैं।

### १–नित्य

भारतीय विवेचकों ने आत्मा को चेतन और सत्-चित् माना है। इसका तात्पर्य हुआ कि आत्मा नित्य और ज्ञान दायी है। वेदने भी कहा

अमर्त्यो मर्त्येनसयोनिः ॥

अर्थात् अमरण धर्मा (आत्मा) मरण धर्मा (शरीर) के साथ रहता है और ये दोनों नित्य हैं। शरीर प्रकृति से तो नित्य है परन्तु वह मरण धर्मा है जबकि आत्मा सदा ही नित्य है। शरीर प्रकृति से तो नित्य है परन्तु वह मरण धर्मा है जबकि आत्मा नित्य है। गीता ने कहा:—

न जायते म्रियतेवा कदाचिन्नायं
भूत्वा भविता वानभूयः।
अजोनित्य: शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥

एक और स्थान पर गीता आत्मा की अमरता बताते हुये कहती है:—

नैनं छिन्दतिशास्त्र णि नैनं दहति पावकः
ने चैनं क्लेदयन्त्यापो नशोषयति मारुतः॥

### २–अणुता

अथर्ववेद ने इस विषय में कहा है कि आत्मा बाल से भी अधिक सूक्ष्म है और दूसरा ( परमात्मा ) मापा नहीं जा सकता।

बालोदकणि यस्कमुक्तं नैव दृश्येत।

व्यावहारिक जगत् में भी हम यह देखते हैं कि एक व्यक्ति दूसरे की आत्मा नहीं देख सकता क्यों कि वह अत्यन्त सूक्ष्म है। गीता ने इसका समर्थन करते हुए कहाः—

इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रियेभ्यः परं मनः।
मनस्तु परा बुद्धिः बुद्धेः परस्तु सः॥

अर्थात् इन्द्रियां बहुत सूक्ष्म हैं, इन्द्रियों से भी अधिक सूक्ष्म मन है। सब से सूक्ष्म बुद्धि है और बुद्धि से भी सूक्ष्म आत्मा है।

### ३–अल्पज्ञता

यह सर्वांश में सत्य है कि आत्मा सत्-चित् अर्थात् ज्ञानी है किन्तु वह सर्वज्ञ नहीं है, क्यों कि इसका कोई ज्ञान निश्चित् नहीं होता, उसमें परिवर्तन आता रहता है। वैसे भी आत्मा प्रत्येक बात नहीं जानता। संसार की बात तो बहुत बड़ी है आत्मा इतना अल्पज्ञ है कि वह स्वयं अपने घरकी सम्पूर्ण बातोंको नहीं जानता। यहां तककि कुछ समय पूर्व की हुई क्रियायें उसे स्मरण न रहतीं, इससे यह सिद्ध होता है कि आत्मा ज्ञानी होते हुये भी अल्पज्ञ है।

## आत्मा की अवस्थायें

आत्मा की वृत्ति दो प्रकार की होती है। बहिर्मुखी और अन्तर्मुखी, जब बहिर्मुखी वृत्ति होती है उस समय इसकी अवस्थाएं ३ प्रकार की होती हैं। १-जागृत, २-स्वप्न और ३-सुषुप्ति। जब आत्मा की वृत्ति अन्तर्मुखी होती है तब उसकी इस चौथी अवस्था को शास्त्रकार तुर्यावस्था कहते हैं।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि आत्मा अपने गुण और धर्मों के कारण शरीर एवं मन से पृथक है। उक्त लिखित आत्मा का स्वरूप दर्शनों के आधार पर वास्तविक स्वरूप है। यही 'मैं कौन हूं' का उत्तर है।

---

भारत के अनेक राज्य सरकारों द्वारा शिक्षा-संस्थाओं, वाचनालयों के लिये स्वीकृत

उत्तर प्रदेश तथा बिहार राज्य में सबसे अधिक बिकने वाला उद्योग व्यापार का सचित्र हिन्दी मासिक।

भारत व्यापार पत्रिका

जो गत पांच वर्षों से * उद्योगपतियों * व्यापारियों * अर्थशास्त्र के छात्रों की समान रूप से सेवा कर रहा है,

आप भी हर महिने पढ़िये

वर्ष में दो भव्य विशेषांकों सहित वार्षिक चन्दा ६ रु.) केवल
साधारण अंक ५० पैसे

विज्ञापन दर तथा अन्य जानकारी के लिये लिखें:—

व्यवस्थापक, : भारत व्यापार पत्रिका
पोस्ट बाक्स न० ४९, राजा दरवाजा वाराणसी (उ. प्र.)

# योग और भौतिक जीवन

लेखक
आचार्य सर्वे

(१) मन (२) प्राण और (३) प्रकृति--इन तीन परिवेशों में भी आज आध्यात्मिक शक्ति का दखल हो चुका है। अतएव इन तीनों परिवेशों के रोग, शोक, लाभ, हानि आदि योग से प्रभावित हो सकते हैं।

## 'धारा का प्रवेग'

भावातिशयता की अवस्था में आत्मा की शक्ति का प्रवाह मनकी राह प्राण और भौतिकी के क्षेत्रों में भी प्रवेश पाता है। जब यह धारा उन्नत प्रवाह में होती है तब पहले मनोमय फिर प्राणमय और तदनन्तर अन्नमय कोशों का परिष्कार करती है। परिष्कृत कोश पहले वाले रुग्ण, गलित अथवा शोषित कोषों का स्थान ग्रहण करते रहते हैं। यह शुद्धिकरण अथवा नवीनीकरण की क्रिया योगाभ्यास द्वारा अधिक

स्वस्थ एवं समीचीन रूपमें होती है जैसी कि संयम की शुद्ध स्थिति में हुआ करती है। यदि बाल ब्रह्मचारी हो तो पैतृक दोषों के परिहार के अतिरिक्त और किसी स्थिति में योगाभ्यास की साधारणतया आवश्यकता नहीं होती।

## 'योग की आवश्यकता'

सृष्टि के आरंभकाल में योग की आवश्यकता नहीं थी चेतना का प्रवाह सर्वत्र अकुण्ठित एवं प्रचुर मात्रा में था उसमें जलावर्त्त भी नहीं थे। सभी योनिथों को समता पूर्वक चैतन्य का वितरण होता था। अतएव, मानवीय चेतना कहीं भी शेष कुल प्राणियों की चेतना से भिन्न नहीं थीं। क्रमशः चैतन्य के मनोमय परिवेश तक ही सीमित रह जाने से चित्त की वृत्तियों के निरोध द्वारा चेतना के प्रवाह को कुछ परिवेशों में अबाध गति से चालू रहने की आवश्यकता अनुभव हुई। आवश्यकता से आविष्कार हुआ। और महामुनि पातंजलि ने पहला सूक्त लिखा—योगश्चित्तवृत्ति निरोधः।

## 'आजकी स्थिति'

आज तो बहुत कुछ टूट-फूट गया है ऐन्द्रिक सत्ता का ही घूमनेवाली अथवा स्थिर प्राणसत्ताओं द्वारा अपने अधिकार द्वारा विकेन्द्रीकरण हो चुका है अतएव अन्नमय क्षेत्र में भी चेतना की उपयोगिता आ पड़ी है। पिछला इतिहास (योगसाधना) यह बताता है कि विश्व को जब जैसी आवश्यकता हुई वैसे २ आविष्कारक आगे आते चले गये

और क्रमशः इस प्रस्थापना का जन्म हुआ कि सभी योगी हैं। ज्ञान का स्रोत सभी के भीतर से प्रस्फुटित हो दूसरों से उधार माँगे ज्ञान में विजातीय तत्व अधिक होने से सुदृढ़ आधार के प्रस्तुतीकरण में उसका बहुत ही कम उपयोग उठाया जा सकता है।

## 'नये विश्व की समस्यायें'

युद्ध, समन्वय, आध्यात्मिक शान्ति आदि आज के विश्व की प्रधान समस्यायें हैं, जिनके रूप विभिन्न राष्ट्रों की अन्तरात्मा भिन्न २ प्रकार से प्रतिक्रीत करती है। जैसे भारत में इनका रूप मिलेगा—रोग, भ्रष्टाचार, सेक्स अपराध और अकाल मृत्यु में। ये सब प्रधानतया अतृप्त–आकांक्षा मुक्त प्रेतात्माओं वा अमुक्त प्राणसत्ताओं (अनकन्ज्यूम्ड वायटल रिक्रयर्स) के कारण उठती हैं। महंगाई, जो कि महज प्रलोभन व आशंका की उपज प्रतीत होती है वस्तुतः ऐसी ही प्राणसत्ताओं द्वारा अधिकृत मुनाफाखोरों, अधिकारियों व नेताओं द्वारा प्रसार पाती है। जिनमें से कुछ अब ला-इलाज हो चुके हैं जिन्हें प्राणसत्ताओं से मुक्त करने का अन्तिम रास्ता उन्हें देह से मुक्त कर देना ही है तथापि अधिकांश अधिकृत मनोरोगियों का इलाज योग द्वारा हो सकता है। 'कन्सण्ट्रेशन' एक ऐसी स्थिति है जिससे प्रायः सभी बुरी आदतों रोगों आदि का विधिपूर्वक उपचार किया जा सकता है। बौद्धिक दिवालियापन, मानसिक निर्भयता एवं शारीरिक असमर्थता का उपचार भी चेतना के प्रवाह

को सम्बन्धित क्षेत्र में अनवरत बनाने से हो सकता है।

## 'उपचार का वैज्ञानिक रूप'

वैज्ञानिक पद्धति से बिजली के 'शाक' आदि लगा कर जो उपचार, मानसिक-सन्तुलन अथवा बौद्धिक जड़ता की दिशा में किये जाते हैं, वे अपने परिणाम में विषैले प्रभाव छोड़ते हैं। उनसे जीवन-धारा विषमय हो उठती है, जिसकी शुद्धि हेतु प्रकृति-माता का बहुतसा कोष रिक्त होता है, हमारी बहुतसी भौतिक शक्ति का क्षय होता है, प्राणिक चेतना का अपव्यय होता है और आयुष्य के कुछ बड़े अंश बिखर जाते हैं। अतएव, क्यों न योगाभ्यास द्वारा शक्ति-सन्तुलन स्थापित करते हुये कुल शारीरिक, मानसिक व प्राणिक रोगों की चिकित्सा की जाय और इसका सबसे पहला उपाय है प्राकृतिक सरल जीवन की ओर लौटना। क्योंकि, केवल सहज प्राकृत स्थिति में ही चैतन्य को आगे बढ़कर शुद्धिकरण का प्राकृतिक अवसर समाप्त होता हैं। क्योंकि प्रकृति के प्रतिकूल होनेपर प्रकृति भी प्रतिकूल प्रतिफल प्रदान करती है।

## 'समर्पण का महत्त्व'

जो समूह, अधिक साम्यतापूर्वक चेतनाको समर्पित होता है, वही राष्ट्र में ऊपर आकर क्रियाशील होता है। फिर शेष कुल चैत्य समूह उसका ही अनुसरण करने लगते हैं। अतएव अपने निष्ठागत धर्म की सुरक्षा हेतु समर्पण का अतिशय

महत्त्व है। अभीप्सा सहित भागवत चेतना को समर्पित हो जाना, आधुनिक योग की नवीनतम उपलब्धि है, जिससे भावातिशयता, कर्मशीलता, ज्ञानमग्नता आदि किसी भी माध्यम पर चेतना को भौतिकी क्षेत्र (चैत्य-संवित) में उतर कर स्वच्छंदता पूर्वक क्रियाशील होने के अवसर हाथ लगते हैं, जिनसे सभी प्रकार के रोग शोकादि का विलयन होता है—यह ध्रुव-सत्य है।

आइये, हम विश्व के हितार्थ भी पूर्ण समर्पित रहें!

प्रेम, सेवा और जागृति का प्रमुख हिन्दी पाक्षिक

समाज--हितैषी

जिसमें साहित्यिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, धार्मिक, व आर्थिक लेख, कवितायें एवं कहानियों के अतिरिक्त निम्नलिखित स्तम्भ भी रहते हैं।

* सम्पादकीय
* महिला-जगत
* शिशु-जगत
* जनमत
* राजस्थान का रंगमंच
* हास्य-व्यंग
* प्रश्नोत्तर
* भविष्य फल

साधारण एक प्रति २५ पै. विशेषांक के सहित वार्षिक ६)
आज ही नमूने की प्रति के लिए लिखें अथवा वार्षिक ग्राहक बनकर लाभ उठावें।

पता-समाज-हितैषी कार्यालय, बिसाऊ (राजस्थान)

# योग साधना और शक्ति

लेखक
रामनारायण सिन्हा
एमए
एम् ए

योग का अर्थ बड़ा ही व्यापक है। भारतीय साहित्य में यह व्यापक रूप में व्यवहृत होता आया है। जैसे जीवात्मा और परमात्मा का योग, चन्द्र सूर्य का मिलन, प्राण और अपान का संयोग, शिव और शक्ति का संयोग आदि।

योग-शिखा उपनिषद् में इसकी विस्तृत चर्चा है, एवं नाना रूपों में विश्लेषण हुआ है। जैसे—महायोग, पूर्णयोग, मंत्रयोग, जपयोग, अस्पर्शयोग, शब्दयोग, वाकूयोग आदि। दूसरी तरफ योग के अन्तर्गत नाना प्रकार के शारीरिक आसनों का भी विवेचन होता है। मैं यहां पर इन सब विषयों का विश्लेषण न कर शारीरिक योग और साधना के महत्त्व एवं उससे प्राप्त शक्ति और सामर्थ्य का ही विश्लेषण करूंगा।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। वह विचारशील और

चेतनशील जीव होता है। अच्छाइयों और बुराइयों की पहचान है उसमें। अस्तु।

हर मनुष्य सुखी, सम्पन्न होना चाहता है। मूर्ख से मूर्ख और विद्वान से विद्वान मनुष्य भी सुखी और सभ्य जीवन बिताना चाहता है। यह मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है। परन्तु, सुखी जीवन कैसे बिताया जाय, यह बहुत ही कम लोग जानते हैं। मैं यहां पर योग और साधना द्वारा जीवन को किस तरह सुखी और सम्पन्न बनाया जा सकता है, इसकी विवेचना करने जा रहा हूं।

मैंने जैसा लिखा, हर मनुष्य सुखी और सम्पन्न होना चाहता है। स्वस्थ जीवन बिताना चाहता है। और यह सत्य है कि मनुष्य के पास खूब धन हो, जन हों, पुत्र हों, सुन्दर पत्नी हो, परन्तु उसे सुन्दर और स्वस्थ स्वास्थ्य प्राप्त न हो तो वह कतई सुखी नहीं कहा जा सकता। अतः जरूरी है कि मनुष्य हर तरह से अपने स्वास्थ्य को कायम रखने के लिये तन्दुरुस्त और स्वस्थ रहे। दुनिया में वह सब से सुखी और सम्पन्न रहेगा ही, इस सत्य का कोई प्रतिवाद नहीं।

परन्तु, स्वास्थ्य कैसे तन्दुरुस्त और स्वस्थ रहे? यह एक प्रश्न है। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये अच्छा भोजन, अच्छी हवा तो है ही, परन्तु सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है—योग और साधना की। बिना योग और साधना के शक्ति का उदय कथमपि संभव नहीं। और जब

मनुष्य हर तरह से शक्तिहीन हो जाता है तो नाना प्रकार की आधि-व्याधियां सतायेंगी ही। यही सत्य है।

योग और साधना से मेरा मतलब यह नहीं कि मनुष्य घर छोड़कर जंगल में जाकर तपस्या में लीन हो जाय, बल्कि शरीर को स्वस्थ रखने के लिये योग और साधना की कुछ सामान्य क्रियाओं को अपनाना चाहिये। इसी योग और साधना की सामान्य क्रियाओं को गांधीजी ने व्यायाम नाम दिया था। उन्होंने कई बार लिखा—"व्यायाम उतना ही आवश्यक है जितना कि हवा, पानी और भोजन। व्यायाम के बिना दिमाग भी वैसे ही कमजोर पड़ जाता है—जैसे शरीर। पुष्ट दिमाग का पुष्ट शरीर में होना ही नीरोगता है। व्यायाम शारीरिक स्वास्थ्य की कुंजी है। जो नवयुवक व्यायाम में अधिक रम जाता है, वह स्वस्थ और सच्चरित्र बन जाता है।"

यहां पर व्यायाम का अर्थ योग और साधना से है। योग और साधना में संयम एवं नियम की आवश्यकता पड़ती है व्यायाम में भी यह अपेक्षित है। व्यायाम की जितनी भी क्रियायें हैं, वे योग और साधनाके अन्तर्गत आती हैं। व्यायाम के तो कितने आसन ऐसे हैं जिससे शरीर के अन्दर भयंकर से भयंकर उत्पन्न रोग भी दूर किये जा सकते हैं—जिसकी विस्तृत विवेचना योगासन की पुस्तकों में देखी जा सकती है।

हमारे पूर्व पुरुष ऋषि-मुनि जितने हुये, वे सभी योग

के प्रायः सभी आसनों एवं साधनों से भिज्ञ थे। वे योग के तमाम आसनों में पारंगत होते थे। और, यही कारण था कि उन्हें दिव्य शक्ति, अलौकिक ज्योति प्राप्त होती थी।

आज भी कितने ऐसे व्यायाम और आसन हैं, जिसकी सफल क्रिया द्वारा मनुष्य उस शक्ति को प्राप्त करता है, जिसे उसने वर्षों पहले खो दिया हो। एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है—'आज वनस्पति युग में जहां शुद्ध घी और दूध का अभाव है, फल और मधु का दर्शन दुर्लभ है, बाल का कम उम्र में पक जाना स्वाभाविक सा हो गया है। पेट की गड़बड़ियां आम बात बन गयी है। और यह सत्य है कि शरीर की सारी आधि-व्याधियों की जड़ पेट को ही गड़बड़ी है इससे शारीरिक और मानसिक दोनों गड़बड़ियां उपस्थित हो जाती हैं। परन्तु, थोड़ा समय निकाल कर जिसे हम डाक्टर के यहां जाने में बिताते हैं, चाय खानेमें, गप्प लड़ाकर गंवाते हैं, किसी चौराहे पर खड़े होकर यों ही आवारागर्दी में नष्ट कर देते हैं, अगर उसका सदुपयोग योग के छोटे-छोटे, हल्के-हल्के आसन एवं साधन में लगाया जाता, तो मेरा ख्याल है, वह मनुष्य बड़ा ही सुन्दर और स्वस्थ बन सकता है। शीर्षासन द्वारा बाल का कम उम्र में पकना रोका जा सकता है यह निर्विवाद है।

अतः यह तय बात है कि मनुष्य स्वयं चाहे तो अपने को सुखी और सम्पन्न बना सकता है, या नरक के गहरे गर्त्त में भी लेजा सकता है। मनुष्य सच पूछिये तो अपने

भाग्य का निर्माता स्वयं है। योग और साधना में वह शक्ति है जिस से देवत्व तक की प्राप्ति होती है। गांधीजी ने लिखा है--"योग और साधना से काया कांचनमय होती है। योग और साधना से संसार की बड़ी से बड़ी सिद्धि प्राप्त की जा सकती है।" "योग और साधना से मनुष्य का मन उच्चस्तर प्राप्त करता है। प्राचीन काल में योग और साधना का बड़ा महत्त्व था। आज लोग इसके अभाव में ही जीवन-पथ से भटक जाते हैं। योग और साधना से जब देवताओंने मृत्यु पर विजय प्राप्त कर ली थी,--तो, भला मनुष्य उससे अभीष्ट सिद्ध नहीं प्राप्त कर सकता?"--(गांधीजी)

बातें बिल्कुल साफ और स्पष्ट हैं। जिन्दगी का सुनहला स्वप्न योग और साधना की शक्ति में ही निहित है। योग और साधना के बल पर अलौकिक शक्ति प्राप्त की जा सकती है। एक नयी ताजगी, एक नया जोश, एक नयी जवानी और ताकत पैदा होती है।

योग और साधना, तन और मन दोनो के सुख और समृद्धि की कुंजी है। योग और साधना में वह शक्ति है जिससे मृत्युतक पर भी विजय प्राप्त की जा सकती है।

अतः प्रत्येक मनुष्य को किसी न किसी रूप में कम या अधिक मात्रा में, योग और साधना की क्रिया को अवश्य अपनाना चाहिये।

आज हर मनुष्य, स्वभाव से ही, परिश्रम और मेहनत से दूर भागता है, भागना भी चाहता है। कोई नहीं चाहता कि मेहनत कर, देश को समृद्ध और सुखी बनायें। ईमान-

दारी और वफ़ादारी से थोड़ा भी काम करें। आज चाहे, वह दफ्तर में काम करनेवाले बाबू हों, या अफसर, कारखाने में काम करने वाले मजदूर हों, या इंजीनियर, खेतों में काम करनेवाले किसान हों या जमींदार, सभी की यही हालत है----काम से जी चुराना। काम में मन नहीं लगाना। आखिर ऐसा क्यों? एक ही कारण है—मन साथ नहीं देता, तन घबड़ाता है। मन और तन उस वातावरण में कभी पला नहीं। वह शरीर का तो ढांचा मात्र है। भीतर तो खून नहीं, पानी है पानी। भला उस तन और मन में ऐसी लगन कहां जो अलौकिक शक्ति का परिचय दे? और अगर मनुष्य थोड़ा बहुत भी योगासन एवं संयम नियम की ओर ध्यान देता, तो तन का आलस्य और मन को थकान, मेरा ख्याल है, अवश्य दूर होती। कभी पास नहीं आती। योग और साधना में तन के आलस्य और मनकी थकावट को दूर करने की अपूर्व शक्ति है।

और यह भी हम जानते हैं कि प्राचीन काल में जो ऋषि-मुनि बहुत बड़ी-बड़ी सिद्धियां प्राप्त करते थे, वह कुछ नहीं, उनके योग एवं साधना का ही फल था।

आज प्रत्येक नर-नारी, आबाल-वृद्ध-वनिता को योग और साधना, अर्थात् तन के सौन्दर्य विकास, स्वस्थ शरीर के लिये, योगासन की आवश्यकता है। वैसे ही, मनकी थकावट दूर करने, मन में सदा सुख और उल्लास की छटा बिखरने के लिये संयम, नियम अर्थात् साधना की आवश्यकता है। फिर तो उससे जो अलौकिक शक्ति प्राप्त होगी, वह हर तरह अभीष्ट सिद्धि की प्राप्ति में अपूर्व सहायक होगी।

( पृष्ठ १६ का शेष )

है, अनुभव कैसे हो ? इसके लिये सबसे उत्तम उपाय है मंत्रयोग का विवेक। कारण कि मंत्रयोग के बिना साधक षडचक्रों का भेदन करते हुये उक्त बिन्दु का साक्षात् नहीं कर सकता।

मंत्रद्रष्टा महर्षियोंने उक्त बिन्दुकी चार अवस्था का पृथक २ अनुभव किया है। जिसमें प्रथम नाद, दूसरी बिन्दु, तीसरी कला एवं चौथी कलातीत अवस्था है। ॐकार की इस कलातीत चरम अवस्था को ही तुरीयातीत अवस्था कहा जाता है। जो योगी यहांतक अपने साधन के बल से पहुंच जाते हैं उन्हें जीवन्मुक्त आनन्द मिलता है।

अस्तु--जिन साधकों के मन में यहां तक पहुंचने की तीव्र जिज्ञासा है उन्हें प्रथम नाद का ही आश्रय लेना अत्युत्तम है। यद्यपि उक्त नादानुसंधान के विषय में विभिन्न विचार आज भी उपलब्ध होते हैं और कुछेक साधक तो इसी नाद को शब्द गोचर करके ही अपने को कृतार्थ भी समझते हैं, तथापि इस पर वास्तविक रूप से कुछ कहा जाय तो नाद न तो शब्द गोचर का विषय है न इसके श्रवण से ही साधक कृतार्थ हो सकता है, अपितु यह उस बिन्दु तत्व तक साधक को पहुंचाकर निर्विकल्प समाधि में स्थित करने का साधन है।

### नाद का अनुसंधान

यद्यपि नादानुसंधान का स्वरूप अर्थात् चैतन्य आत्मा की झंकार अन्तराकाश में उद्दीप्त होना अन्तः चक्षु का विषय है,

तथापि उस विषय में अनेक साधकों के मन में जो तर्क-वितर्कात्मक धारणायें हैं उनका निवारण करने हेतु उक्त विषयक विचार पाठकों के सन्मुख उपस्थित किया जाता है।

जैसा कि महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है कि:—

आमूर्ध्नो वर्तते नादो वीणादण्ड तदुत्थितः।
शङ्खध्वनी निभस्त्वादौ मध्ये मेघध्वनीर्यथा॥
॥ यो. या. ६.५५

नाद का तात्विक स्वरूप अत्यन्त सूक्ष्म होने से अनुभवातीत भले ही हो, किन्तु यह तो तथ्यानुभव का विषय है कि नाद मूलाधार चक्र से लेकर सहस्राधार तक व्यापित है। जैसे बिजली की चमक घने बादलों के मध्य में प्रखर गति से बहती है, वैसे ही योगाभ्यासी के अन्तर हृदय में नाद, चैतन्य ज्योति से जगमगाता हुआ, मूलाधार से सहस्राधार (मूर्धन्य) चक्र पर्यन्त बहता है।

अस्तु: उक्त नाद के दो स्वरूप हैं एक ध्वन्यात्मक तथा दूसरा चैतन्यात्मक है। प्रथम जो ध्वन्यात्मक नाद का अनुभव है, वह प्रथम साधक के मस्तिष्क में वीणा की झंकार के समान अथवा शंखध्वनि के समान अनुभव होता है।

योग शास्त्रों में उक्त ध्वनि का श्रवण प्रथम मेघनाद के रूप में, मध्यमें घण्टानाद के रूप में तथा अन्त में शंखनाद के रूप में बतलाया है। यदि जिज्ञासु साधक गण इसका अभ्यास करना चाहते हैं तो उन्हें स्थानीय योगाश्रम अथवा किसी विविक्त देश में जाकर, मध्यरात्रि में दोनों हाथ के

अंगुठे से दोनो कानों को दबाकर तथा इतर तर्जनी व अनामिका से चक्षु एवं नासिका के भाग को दबा कर इसे श्रवण करना चाहिए। जब अभ्यास दृढ़ हो जाय तब हाथ आदि का सहारा लिये बिना ही यह ध्वनि सुनने को मिलती है।

साधक इसी ध्वनि के सहारे मन को एकाग्र करते हुए इसके अन्त में पहुंच कर उस बिन्दुतलका साक्षात् कर सकता है, जिसे ओंकार का तुरीय पद कहा गया है। कारण की यह ध्वनि अन्तमें जाकर सहस्राधार चक्र में विद्युतके समान चमकती है, और यहीं पर सुषुम्ना नाड़ी का आखिरी भाग भी है। अतएव जहां पर सुषुम्ना नाड़ी का आखिरी हो वहीं पर ध्यान करने से उक्त नाद (ध्वनि) का साक्षात् सम्भव है। उक्तस्थानके विषयमें विशेष परिचय षटचक्र विषयक विचारों में देखें।

अस्तु:—दूसरे जो चैतन्यात्मक नाद का प्रत्यक्षीकरण करते हुए बिन्दु (तुरीय) तत्व में आसीन होना चाहते हैं, उन्हें मूलाधार चक्र में मन को संयम करते हुए, तदुपहित चिन्मयी ज्वाला से व्याप्त संपूर्ण व्यष्टि ब्रह्माण्ड का ध्यान करना चाहिये। यह ध्यान भी दो प्रकार से अभिहित है। (१) गुरु द्वारा आपादित शक्ति संचालन क्रिया से (२) स्वयं संयमादि प्रबल साधनों द्वारा। इसमें प्रथम शक्ति संचालन क्रिया को तन्त्र शास्त्रों में वेध दीक्षा भी कहा है। कारण की इसमें स्वयं क्रिया दक्ष व योगशास्त्र में प्रवीण गुरु, शिष्य को अपने सन्मुख उचित आसन पर बैठा कर, अपने शरीरस्थ

मूलाधार, हृदय (अनाहत), अथवा आज्ञा व सहस्राधार चक्र से स्वयं शक्ति (चैतन्यात्मक नाद) का अभ्युत्थान करते हुए शिष्य ( दीक्षित ) के ब्रह्माण्ड चक्र का विभेदन करके, अर्थात् साधकके सहस्राधार चक्रस्थ आवरणयुक्त स्नायु ग्रंथिओंको मुकुलित (खुलासा) कर, उसके शरीरस्थ चक्र में संस्थापित करता है, जैसे भगवान् सूर्य ने याज्ञवल्क्य ऋषि के प्रति किया था।

इस प्रकार की दीक्षा अथवा शक्ति संचालन क्रिया से प्रत्येक साधक के शरीरस्थ चक्र में स्वभाव से ही नाद शक्ति (चिन्मय ज्योति) को अविर्भाव होने लगता है, साधकको इसमें प्रयास नहीं करना पड़ता। हां यह तो अवश्य उसे स्वीकार करना पड़ेगा कि, जैसे गुरु-दीक्षा के सहारे शिष्य के भीतर शक्ति का उत्थान किया हुआ होता है, वैसे ही साधक उस स्थिति को सुदृढ़ अभ्यास द्वारा बानये रखें क्योंकि साधक के प्रमाद से वह निष्ठा बदल भी सकती है।

जिनके लिये ऐसे सद्गुरु का समागम नहीं, उन्हें स्वयं यम, नियमादिक उचितयोगानुष्ठान द्वारा सुनिष्ठित हो मूलाधार चक्र में ध्यान लगाना चाहिये। उक्त मूल चक्र के ऊपरी भाग में ही सुषुम्ना नाड़ी है। जिसे ज्ञान नाल भी कहा गया है। योगी को इसी नाल के सहारे चिन्मय नाद का प्रत्यक्ष होता है।

तापयन्त स्वकंदेहमापाद तल मस्तकम्।
निवात दीपवत् तस्मिन् दीपितं हव्यवाहनम्॥

दृष्ट्वा तस्य शिखा मध्ये परमात्मा तमक्षरम्।
नील तोयद मध्यस्थ विद्युल्लेखेव भास्वरम्॥
॥ योग याज्ञवल्क्य. ९. २१. २२॥

भावार्थ यह है कि, जो तीव्रसंवेग से अभ्यास करता हुआ साधक, अपने शरीर के भीतर मूलाधार चक्र के ऊपरी भाग में स्थित चिदग्नि को, 'जो हवा से रहित दीपक के समान उज्वलित हो संपुर्ण देह को तपायमान करता, देख लेता है। और उसके मध्य में काले बादलों के मध्य चमकती हुई बिजली के समान, अक्षर परमात्मा का साक्षात् कर लेता है, वही योग शास्त्र के मत में पूर्ण सिद्ध माना जा सकता है।

## षट्चक्र

बहुत से साधक अन्तः चक्षु की सहायता से चिन्मयात्मक उक्त नाद को परा, पश्यन्ती, मध्यमा एवं वैखरी बाणी के रूप में साक्षात् करते हैं। प्रथम परा, मूलाधार चक्र से मणिपूरक पर्यन्त झंकारित होती हुई, उपरान्त पश्यन्ति के रूप में अनाहत चक्र पर्यन्त प्रकाशित होती है। अनन्तर यही चिन्मयी वाणी विशुद्ध चक्र में मध्यमा का रूप धारण करती हुई, आज्ञा चक्र के संसर्ग से बैखरी बनती है। इसमें प्रथम की तीनों बाणी तो क्रमशः सूक्ष्म, सूक्ष्मतर, सूक्ष्मतम है और चौथी स्थूल है। यहां समूची बाणी का उद्गम प्रथम, मूल चक्र से, षड्ज, आदि सप्त स्वरों के रूप में, प्लुत-दीर्घ ह्रस्वकार नाद से उत्पन्न होकर पदुपरान्त संपूर्ण व्यवहारोप-

योगी पद वाक्य के आकार में विभाजित होती है।

यह चिन्मयी वाणी ही संपूर्ण स्वर, व्यंजन-अष्ण मात्राओंकी जननी है। मंत्र का आकार भी इन्हीं वर्णमालाओंसे उत्पन्न होता है। अतः बीज मंत्र का स्थूल रूप वर्णमाला, सूक्ष्म रूप ध्वनि एवं कारण स्वरूप चैतन्य आत्मा है। इस दृष्टि से मंत्र का तात्विक प्रयोजन प्रत्येक साधक के मन को स्थूल से क्रमशः सूक्ष्म एवं कारण की ओर ले चलने के लिये अर्थात् चैतन्य आत्मा-अवगति के लिये निष्पन्न होता है।

अब जिज्ञासुओं से निवेदन है कि इसे केवल पठन-पाठन की प्रणाली न समझ कर अन्तःपेक्ष का विषय समझें और उक्त जीवन की अन्तः शक्ति को सजग करने हेतु षटचक्रों का आश्रय लें। यद्यपि षट् चक्र विषयक विवेक गुरुगम्य है तथापि साधकों की प्रवृत्ति के लिये उनका संक्षेप उल्लेख यहीं दिया जाता है। ये क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, अनाहद्, विशुद्ध, आज्ञा हैं और इन चक्रों की उत्पत्ति पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से हुई है, सहस्रदल चक्र अत्यन्त सूक्ष्मतम एवं तत्वों से परे महान् है। इसी महाचक्र के मध्य में विन्दु है और इसके मध्य में कला तत्व है। जहां पहुंचकर योगी को परमानन्द महासमुद्र में निमग्न होना पड़ता है। इसपर स्वयं भगवान् शंकराचार्य ने सौन्दर्य लहरी में कहा है कि:—

तड़िल्लेखा तन्वीं तपनशशि वैश्वानरमयीं।
निषण्णां षण्णमप्युपरि कमलानां तव कलां॥

महापद्माटव्यां मृदितमल मायेन मनसा।
महान्तः पश्यन्तो दधति परमाह्लाद लहरीं ॥ सौ. २१ ॥

प्रत्येक साधक का अन्तः चैतन्य स्रोत उनके निर्मल मन द्वारा ही प्रत्यक्ष हो सकता है। जब मंत्रयोग के अभ्यास द्वारा मनुष्य अपने मन को प्रथम परिमार्जन कर लेता है, तब उसके भीतर बिजली के समान चमकती हुई एक रेखा 'जो कि सूर्य, चन्द्र, अग्नि के तुल्य है प्रत्यक्ष होती है। यह चिन्मयी रेखा ही नाद है, और इसी के सहारे संपूर्ण चक्रों को पार करते हुये योगी उस महापद्म में पहुंच कर ओंकार के चौथे पाद तुरीय तत्व को अनुभव करता है।

प्र.—उक्त महा चक्र में पहुंचने के लिए योगी को प्राण का आश्रय लेना पड़ता है अथवा मन का ?

उ.—मन एवं प्राण दोनों का आश्रय लेना पड़ता है। कारण कि प्रथम मनको प्राण में विलय कर लेने के उपरान्त प्राण द्वारा अपान का आकर्षण कर लेने से, अपान की गति अधोप्रवाह से ऊर्ध्व की ओर बहती है। जब यह अपान तीव्र अभ्यास के बल से सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर लेता है तब उसे समुचे चक्रों का आलोक स्वयं ही होने लगता है। सुषुम्ना के मूल में ही कुण्डलिनी है, साधक को प्रथम ही इसे सजग कर लेना चाहिये। कारण कि प्रसुप्त कुण्डलिनी के कारण अपान (प्राण) अत्यन्त स्थूल रहता है और इस दशा में प्राण का सुषुम्ना में प्रवेश भी असम्भव है।

## —नाड़ी शुद्धि एवं कुण्डलिनी उत्थान—

जबतक शरीर में कफ, वात, पित्त की आधिक्यता रहती है, तबतक प्राण में क्षुधा तृषा आदिक विकार बने रहते हैं, और इसी कारण शरीर एवं मन में भारीपन भी बना रहता है। उक्त धातुओं का परिमार्जन किये बिना साधक की योगाभ्यास में प्रवृत्ति भी असम्भव है। यद्यपि इन सब विषम धातु सम्बन्धि प्रतिकूल साधनों का निवारण हठयोग की क्रियाओं (नेति-धोति-नौली-साम्भवी मुद्रा, महावेध विपरीत करणी आदिक उपायों) से सम्भव है, और स्थानीय योगाश्रम द्वारा उक्त विध प्रकार से असंख्य साधक संघ को लाभ भी पहुंचता रहता है, तथापि अविरत प्राणायाम के अभ्यास बिना नाड़ियों के दोष निवारण होना असम्भव जान पड़ता है।

प्राणायाम चाहे पूरक-कुम्भव रेचक विध से अभ्यास करें अथवा अन्त: कुम्भक, बाह्य कुम्भक व केवल कुम्भक द्वारा, प्रतिदिन नियत समय पर एक घंटा अभ्यास लगातार तीन मास पर्यन्त करते रहने से नाड़ियां अत्यन्त निर्मल हो जाती है। प्राणायाम का अभिप्राय है प्राण एवं अपान की गति को रोधित करना। इस प्रकार के अभ्यास करते रहने पर मूलाधार चक्र में एक अग्नि की शिखा के समान चिन्मयी ज्वाला उत्पन्न होकर संपूर्ण शरीर में फैल जाती है, और इस संयम ज्वाला से संपूर्ण शरीर के धातु एवं नाड़ियों में स्थित मल अपने आप ही जल जाता है। यदि इस विषय

112558

में विशेष जानना हो तो ज्ञानेश्वर महाराज की गीता का छठा अध्याय देखें।

सारांश यह है प्रत्येक मनुष्य के गुदास्थान से दो अंगुल ऊपर और मेण्ढू (रीढ़ नामक अस्थिदण्ड) के नीचे मूलाधार नामक चक्र है। यह चक्र चतुस्दल वाला है। इसके ऊपर में चारकोणे की वेदी के समान छोटासा समतल स्थान है यह स्थान मूलचक्र के मध्य में कमल किंजल्क के समान स्थित है। इस चतुष्कोण पीठ के मध्य जलहरी के समान योनीयंत्र है, और इसके मध्य जैसे जलहरी के ऊपर शिवलिंग स्थित रहता है, वैसे ही एक सूक्ष्म मांसखंड है। इसी को कंद कहा गया है। उक्त कन्द का स्वरूप सचमुच शिवलिंग के ही आकार का है। जैसे शिवजी के ऊपर सर्प का आकार लपेटे हुये ऊपर फणी उठाकर रहता है, वैसे ही कुण्डलिनी भी उक्त कंद को लिपटी हुई अपनी फणी से सुषुम्ना के द्वार को पकड़े हुए है।

सुषुम्ना–कुण्डलिनीके मुखसे प्रारम्भिक होकर सहस्राधार पर्यन्त फैली हुई है। उक्त सुषुम्ना के भी तीन भेद हैं। जैसे रबड़ का ट्यूब अर्थात् सूक्ष्म नलि के भीतर एक और सूक्ष्म नली रहा करती है वैसे ही सुषुम्ना के भीतर चित्रिणी और उसके भीतर ब्रह्मनाड़ी रहती है। अस्तुः–योगी स्वयं अनुभव द्वारा इनका प्रत्यक्ष कर लेता है।

कन्द मध्ये स्थिता नाड़ी सुषुम्नेति प्रकीर्त्तिता।

तिष्ठन्ति परितः सर्वाश्चक्रेऽस्मिन् नाड़ीसंज्ञकाः ॥
यो० या० ४. २५ ॥

यद्यपि उक्त सुषुम्ना नाड़ी के सहारे ७२००० नाड़ी संपूर्ण शरीर में फैली हुई हैं, तथापि इन सब में चतुर्दश (१४) नाड़ी प्रमुख मानी जाती हैं। इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, पारणा पूषा, हस्तिजिह्वा, यशस्विनी, विश्वोदरा कुहू, शंखिनी, तपस्विनी, आलम्बुषा, गांधारी इन में से किसी एक की ग्रन्थी खुलजाने पर भी मनुष्य में असंख्य विद्या, बल, विवेक, ऐश्वर्य आदि सिद्धियां उपलब्ध हो सकती है।

परन्तु अभ्यासी साधक को इन सब बातों की ओर ध्यान न देकर केवल कुण्डलिनी के उत्थान के लिये प्रयत्न करना चाहिये। इसके सजग हो जाने पर मनुष्य में पूर्वोक्त सब गुण अपने आप ही आने लगते हैं। शरीर आरोग्य एवं सुन्दर, वाणी मधुर एवं विशुद्ध, सदैव प्रसन्न मन तथा दिव्य स्मृति कुण्डलिनी के उत्थान से स्वतः ही आने लगते हैं। साथ इन लक्षणों से कुण्डलिनी उत्थान का चिह्न भी समझना चाहिये।

संतप्त वह्निना तत्र वायुना च प्रचोदितः ।
प्रसार्थ फण भृद्भोगं प्रवोधं यातितत्तथा ॥
योग याज्ञवल्क्य अ. १२. १२ ॥

अपान से प्रेरित होकर चिदग्नि जब मूलाधार चक्र में

प्रज्वलित होने लगती है, तब कुण्डलिनी सुषुम्ना नाड़ी को परित्याग करती हुई जाग जाती है। तदुपरान्त योगी स्वेच्छा पूर्वक संपूर्ण चक्रों में संचार करने में समर्थ होता है। परन्तु उक्त चिदग्नि के उज्वलित करने के लिये प्रतिदिन तीन घंटा अभ्यास करने की आवश्यकता है। निर्मल ब्रह्मचर्य पूर्वक तीन मास लगातार अभ्यास करते रहने पर कुण्डलिनी तत्काल ही जाग जाती है और पूर्वोक्त गुण उसमें स्वभाव से ही स्फूटित होते हैं।

इसके लिये प्राणायाम ही सर्वोत्तम उपाय बतलाया जाता है। जब प्राण एवं अपान की गति ५ मिनट पर्यन्त रुक जाती है तब मन का प्राण के साथ विलय होने लगता है। मन प्राण की एकात्म हो जाने पर भी जब यह स्थिति लगातार १० मिनट पर्यन्त मूलाधार चक्र में सुदृढ़ रहती है तब साधक चिदग्नि का साक्षात् करता है। जब एक घंटा पर्यन्त उक्त चिदग्नि में मन एवं प्राण का एकात्म होने लगता है तब यह चिदग्नि इतना प्रज्वलित हो जाती है कि जिसकी ज्वाला में कुण्डलिनी की जड़ता अपने आपही जल जाती है।

उस दशा में अभ्यासी साधक को ऐसा जान पड़ता है कि, मानो हमारा समूचा शरीर जल रहा है। परन्तु वहां शरीर नहीं जलता अपितु कुण्डलिनी की जाड्यता ही जलती है। निर्मल आचरण के प्रभाव से उक्त देहज्वाला को सहन करते हुये जो श्रद्धालु साधक लगातार इसका अभ्यास करते रहते हैं, तब उनका शरीर कुछ ही समय में योगाग्नि से तपायमान

होकर निर्मल शरद चंद्रमा के तुल्य चमकता है। कुण्डलिनी प्रबोध के उपरान्त प्राण की गति अत्यन्त सूक्ष्म हो जाती है और सुषुम्ना नाड़ी का मुख भी खुल जाता है।

कुण्डलिनी जागने के उपरान्त साधक के जीवन में अनेक चमत्कार भी दिखलाई पड़ते हैं। संपूर्ण वेद पुराण, दर्शन इतिहास की स्मृति, वाणी में शक्ति, भूत भविष्य वर्तमान आदि पदार्थों का ज्ञान, सुषुम्ना के मुखपर ही योगी को साक्षात् बने लगते हैं। परन्तु साधक को महापद्म में पहुँचकर अखण्ड चिन्मय परमात्म साक्षात् के लिये इन सबका परित्याग ही श्रेयस्कर है। —क्रमशः

उन्नति के पथ पर निरंतर अग्रसर
आयुर्वेद और स्वस्थ-साहित्यकी प्रतिनिधि-पत्रिका
स्वास्थ्य सरिता
श्रीज्ञानप्रकाश जैन-द्वारा सम्पादित]
प्रतिमास पढ़ें :
* स्वास्थ्य-सम्बन्धी बौद्धिक-लेख
* सामाजिक-पृष्ठभूमि पर लिखी मनोरंजक-कहानियां
* नवोदित-रचयिताओं की कवितायें
* पारिवारिक-गुत्थियोंको सुलझानेवाले स्थायी-स्तम्भ
और * नये साहित्य पर कृष्णमुनि प्रभाकर का निर्भीक-विवेचन
एक प्रति पचास नये पैसे * वार्षिक-शुल्क केवल पाँच रुपये
नमूनांक मुफ्त नहीं भेजा जाता। अपना चन्दा आज ही भेजें
स्वास्थ्य-सरिता प्रकाशन, कोटगेट, बीकानेर (राजस्थान)

112558

# श्री रामतीर्थ योगाश्रम नियम

१-इस योगाश्रम में प्रविष्ट होने के बाद साधक को बीड़ी-सिगरेट, शराब आदि व्यसनों से दूर रहना होगा। यदि ऐसे किसी दुर्व्यसन अथवा दुश्चरित्रता की बात संचालक को मालूम होगी तो उसे किसी अग्रिम सूचना के बिना आश्रम से हटा दिया जायेगा।

२-ली ई फीस किसी भी दशामें वापस न होगी।

३-तुवाल, नोटबुक, नेति, धौति, ब्रह्मदातून आदि आवश्यक साधन की वस्तुयें उपयोग में लाने के बाद साफ कर निर्दिष्ट स्थान में रखनी होंगी।

४-सामान्य आरोग्य के साधारण अभ्यास में साधक यदि पारंगत समझे जायेंगे, तभी उन्हें योग के अन्तरंग अभ्यास की शिक्षा दी जायेगी इस सम्बन्ध में संचालक को पूर्ण संतोष होना आवश्यक होगा।

५-योगाश्रम के संचालक उचित और सात्विक दान स्वीकार कर सकते हैं और उसमेंसे एकत्रित सम्पत्ति संचालक की इच्छानुसार योगविद्या के प्रचारार्थ खर्च की जायेगी।

६-कमसे कम आठ वर्ष और इससे ऊपर की अवथा वाले ही योगाश्रम में प्रवेश पा सकेंगे।

७-आश्रम में प्रवेश पाने की फीस ५रु. है। रोगियों को रोग के आधार पर अधिक फीस देनी होगी। नीरोगियों के के लिये १ महीनेकी फीस १ रुपये और ३ मास के २७ रु. है

८-नवीन प्रवेश पहली या १५ को ही किया जाता है। बीच प्रवेश करनेवालों की फीस पहली या १५ तारीख से प्रारम्भ मानी जायेगी। साधकको फीस अग्रिम देनी होगी। समय प्रातःकाल ७।। से ९।। और सायंकाल ६ से ७॥ है। इन दो में से किसी भी समय को अपने अनुकूल बना सकते हैं।

# श्रीरामतीर्थ योगाश्रम की प्रवृत्तियां

## ( महत्वपूर्ण सूचनाएं और आपकी उन्नति )

छः प्रकार के मलशोधन कर्म, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार और संयम का अभ्यास तथा रोगियों के लिये जलोपचार, मालिश, मानसोपचर आदि प्राकृतिक चिकित्सा एवं योगोपचारकी व्यवस्था है।

**पुरुषों के लिये समयः**—प्रातःकाल ७ से ९॥
सायंकाल ६ से ७॥

**महिलाओंके लिये समयः**—मध्याह्न ४ से ५

महिलाओंका इलाज (अभ्यास) महिलाएं करती हैं। रविवार को सबेरे १० बजे योग, वेदान्त, गीता तथा रोग निवारण के लिये प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेदिक चिकित्सा आदि पर रामतीर्थ योगाश्रमक संचालक अथवा अन्य प्रतिष्ठित विद्वान का व्याख्यान होता है। व्याख्यानमें आनेवाली आम जनता से किसी प्रकारकी फीस नहीं ली जाती है।

प्रति शनिवार को सायं ५॥ बजे और रविवार को प्रातः १० बजे व्याख्यान होता है।

शनिवार तथा रविवार को व्याख्यानों के साथ-साथ भजन, कीर्तन वेदमन्त्रपाठ, ध्यानाभ्यास तथा व्याख्यानों के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष प्रयोग भी बताये जाते हैं।

**विशेष सूचनाः**— योगाभ्यास एवं रोग निवारणार्थ बाहर गांव से आनेवालों के लिये श्रीरामतीर्थ योगाश्रम में रहने तथा भोजन का प्रबंन्ध नहीं है।

AMTIRTH·
Regd No. B. 908,

11255 8

**WHEN**
**TRAVELLING**
**IN**
**TRAINS**

*Be*
*Careful*

TO EXTINGUISH THAT
LIGHTED CIGARETTE END
BEFORE THROWING AWAY,
OR USE THE ASHTRAY

●

DO NOT LIGHT STOVES
IN COMPARTMENTS

**FOR SAFETY**
**OBSERVE**
**FIRE**
**PREVENTION**
**RULES**
**IN TRAINS**

DO NOT CARRY
INFLAMMABLE ARTICLES
IN COMPARTMENTS

NEGLIGENCE CAN CAUSE SERIOUS FIRES
RESULTING IN LOSS OF LIFE & PROPERTY

Inserted in the interest of SAFETY in TRAVEL
by the CENTRAL RAILWAY

7634?

Compiled
1999-2000